समग्र ग्राम-सेवा की ओर

[भारतीय ग्राम-जीवन की पुनर्रचना की समस्याएँ और उनका समाधान]

लेखक

श्री धीरेन्द्र मजूमदार

ट्रस्टी भारतीय चर्खा संघ, संचालक रणीवाँ आश्रम

भूमिका—लेखक

आचार्य कृपलानी

संपादक

श्री रामनाथ 'सुमन'

प्रकाशक

साधना-सदन

इलाहाबाद

आठ रुपये

प्रकाशक

साधना-सदन

प्रयाग

प्रथम मुद्रणः सितम्बर, १९४७

::

::

मुद्रक

जगत नारायणलाल, हिन्दी साहित्य प्रेस,

प्रयाग

भूमिका

श्री धीरेन मजूमदार १६२० से, जब उन्होंने स्वतन्त्रता की लड़ाई में शामिल होने के लिए हिंदू यूनिवर्सिटी छोड़ी, मेरे साथ काम कर रहे हैं। वह, श्री गाधी आश्रम (युक्तप्रान्त) के मूल-सदस्यों मे से एक है। उन्होंने आश्रम के खादी और गावो के काम को संघटित किया। कुछ वर्षों के बाद उन्होंने अपना सारा ध्यान गावों के काम पर लगा दिया। सालो तक उनके काम का कोई प्रकट परिणाम नही निकला। फिर भी वह असाधारण श्रद्धा और धुन के साथ अपने काम मे लगे रहे।

आखिरकार इन गुणो का नतीजा निकला और उन्होंने ग्राम-सेवा के लिए फैजाबाद ज़िले में रणीवा केन्द्र की स्थापना की। यहा उन्होंने न केवल गावों की सेवा और सघटन के लिए कार्यकर्ताओं की शिक्षा की व्यवस्था की बल्कि स्वय ग्रामवासियो को दस्तकारी सिखाई और स्वतंत्र रूप से अपना काम करने तथा स्वतंत्र आजीविका प्राप्त करने मे उनकी सहायता की। युक्तप्रान्त की काग्रेस सरकार तक को अपने ग्राम-कार्यकर्ताओं के शिक्षण के लिए रणीवा आश्रम का उपयोग करना पड़ा। १६४२ मे यह संस्था नष्ट कर दी गई, और उसके साज-सामान, औज़ार और मशीनो को ज़ब्त कर लिया गया और इमारत पर ताला लगा दिया गया। श्रीधीरेन मजूमदार भी १६४५ तक नज़रबंद रहे। छूटने पर उन्होंने इस संस्था का फिर निर्माण किया।

अब उनका विचार बनारस के निकट दूसरा और रणीवाँ से बड़ा, पर उसी प्रणाली का, आश्रम स्थापित करने का है। आजकल वह उसी में लगे हुए हैं। इसलिए उन्होंने जो कुछ लिखा है अधिकाश अपने निजी अनुभवों के आधार पर लिखा है। उन्होंने किताबे नही

पढ़ी हैं ; जीवन की पुस्तक से सीखा है । इसलिए मुझे विश्वास है कि इस पुस्तक में उन्होंने जो कुछ लिखा है वह न केवल उन लोगों के लिए उपयोगी होगा जो गावो की पुनर्रचना के कार्य मे लगना चाहते हैं बल्कि उन सरकारो के लिए भी काम का होगा जो भारत के समाज-शरीर के चेतन कोश या घटक-स्वरूप गावो को नवजीवन देने के बारे मे सचमुच गभीर हैं ।

अगर लोकतत्र को वास्तविक और फलदायक बनाना है; अगर उसे हमारी जनता को अपने मामलों की विवेकपूर्वक व्यवस्था करने की शिक्षा देनी है तब तो हमे आर्थिक और राजनीतिक दोनों क्षेत्रों मे बहुत दूर तक विकेन्द्रीकरण को अपनाना होगा । केवल बालिग मताधिकार दे देने से सच्चा लोकतंत्र स्थापित नही होता ; न तो वह सार्वदेशिक प्रारभिक शिक्षण से ही स्थापित होता है । हमारे अन्नदाताओं (जनता—किसानों) का शिक्षण यो न होगा । उनको तो जीवन के द्वारा और जीवन के लिए ही शिक्षित करना पड़ेगा । इसका सर्वोत्तम उपाय उनको ऐसा क्षेत्र प्रदान करना है जिसमे वे सहकारिता के आधार पर प्रयत्न कर सके और अपने प्रयत्न के परिणाम को अपनी पैदा की सम्पत्ति के साकार रूप मे देख सके तथा खुद ही आपस मे उसका बॅटवारा कर सके । उनको अपने ही प्रयत्नों से गाँव में शान्ति रखने की कला भी सीखनी होगी । अपने चारों ओर स्वास्थ्यकर, स्वच्छ वातावरण और पड़ोस बनाने का मौका उन्हें देना होगा । सक्षेप मे, उन्हे अपने सारे मामलों का छोटे और व्यवस्था-योग्य पैमाने पर खुद ही इन्तजाम करना होगा । यहीं लोकतंत्र के लिए वास्तविक शिक्षण होगा । इतना हो जाने के बाद, आत्मानुभाव और आत्मावलम्बन के इस ढाँचे पर एक ऐसी शक्तिमान केन्द्रीय सरकार का निर्माण करना सरल होगा जिसका लोकतत्र सत्ता अथवा केन्द्रीकरण से धुँधला न होगा । आज की जटिल दुनिया मे लोकतंत्र के रक्षण का यही मार्ग है ।

सरकारों को केवल शक्तिमान और महत्वाकाक्षी राष्ट्रों से अपनी रक्षा करने के लिए ही शक्ति की आवश्यकता नहीं पड़ती, बल्कि स्वयं अपने राष्ट्र के अन्दर के शक्तिशाली व्यक्तियों और वर्गों वा समूहों की स्वार्थ-भावना के नियमन और नियंत्रण के लिए भी उसकी जरूरत होती है। आज की दुनिया मे न केवल कानून और सत्ता से बल्कि शक्ति के सहारे भी मुक्ति—स्वतन्त्रता—की रचना करनी पड़ेगी। ऐसा करना तभी सभव होगा जव स्थानीय इकाइया प्रभावपूर्ण ढग पर सक्रिय होगी। आज के विषम विश्व मे, जो विज्ञान और यत्र-कौशल की प्रगति से और भी जटिल वन गया है, लोकतंत्र के रक्षण का एक ही रास्ता है—गाँव की इकाई को पुनर्जीवन देना और शक्ति प्रदान करना। मुझे कोई सन्देह नहीं है कि इस कार्य मे श्रीधीरेन मजूमदार के विचार, ग्रामों की पुनर्रचना-सम्बन्धी वास्तविक अनुभवों पर आधारित होने के कारण, उन सव लोगों के लिए वहुत अधिक सहायक होंगे जिन्हे इस दिशा मे प्रकाश की आवश्यकता है या जो प्रकाश पाने के इच्छुक हैं।

६ जतर मतर रोड,
नई दिल्ली
२ अगस्त, १६४७

—जे० बी० कृपलानी

लेखक और उनकी कृति

कहने को बंगाली, जन्म से विहारी, दीर्घ निवास से युक्तप्रान्तीय और श्रद्धा से सर्वभारतीय, ऐसे इस पुस्तक के लेखक धीरेन भाई हैं। १९२० के असहयोग आन्दोलन में गांधी जी के आवाहन पर जो लोग सेवा क्षेत्र में आये और समय की कसौटी पर खरे उतरे, ऐसे गांधी जी के अनुयायियों मे वह, किसी पद की दृष्टि से नही पर अपनी लगन और सेवा से एक ऊँचा स्थान रखते हैं। हमारे देश मे कार्यकर्ताओं की संख्या नगण्य नहीं है; पर सच्चे, आत्मनिष्ठ कार्यकर्ता इने-गिने हैं, गणना की जाय तो नेताओं की सख्या उनसे अधिक होगी। जैसे गाँवों की लक्ष्मी की गति नगर की ओर रही है; वैसे ही सेवकों, कार्यकर्ताओं की गति भी गाँव से नगर की ओर दिखाई देती है। अधिकांश जो नगरों में रहने का प्रबन्ध कर सकते है, गाँवों से उधर भागते हैं। ग्रामों के जो युवक हमारी युनिवर्सिटियों से डिग्रियाँ प्राप्त करते हैं वे भी सदा के लिए नगरों मे खो जाते हैं। पर धीरेनभाई एक दूसरी कोटि के हैं। जन्मे नगर मे; बसे गाँव मे। और आज तो सूरत-शक्ल और भेष से गँवार ही लगते हैं। गाँवों के प्रति उनका आत्मार्पण कुछ ऐसा है कि नगरों मे उनका दिल घबराता है। वह गाँवों के प्रति एक सम्पूर्णतः आत्मार्पित सेवक है।

पर इतना ही सब कुछ नहीं है। उनमे बंगाली की भावुकता, विहारी की सहृदयता और युक्तप्रान्त की यथार्थता एक साथ पनपी है। बंगाली नीचे दब गया है; युक्तप्रान्त ऊपर छा गया है। इसीलिए पहली नज़र मे वह रूखे लगते हैं पर कुरेद दीजिए तो मधुचक्र की तरह मधु उनसे टपकने लगता है। उनके गद्यात्मक जीवन के भीतर जन सेवा की तन्मयता से प्राप्त गहरी संस्कारिता का आत्म-द्रवण है।

अपनी संस्कारजात भावुकता को उन्होंने खोया नहीं पर उसमें बहे नहीं गये; अपनी गहरी निष्ठा, लगन, किसी काम के पीछे सब कुछ भूल कर पड़ने की वृत्ति और सतत जाग्रत जिज्ञासा से उन्होंने उसे संस्कृत और नियंत्रित किया है। इसीलिए उनमें एक कवि की आर्द्रता और एक विवेचक की सर्वग्राही दृष्टि है।

उनकी इस कृति में उनकी ये विशेषताएँ मूर्त्त हैं। पुस्तक का प्रथम भाग उनकी सेवा की तैयारी और उसकी विविध अवस्थाओं के संस्मरणों तथा अनुभवों से भरा हुआ है। इसमे हम उनके हृदय की गहरी संवेदनाएँ और उनके बाद के सेवक जीवन की विकास-रेखाएँ पाते है। इसमें उनकी ग्राम-सेवा की दृष्टि का प्रकाश है। दूसरे भाग में अपनी कल्पना के अनुसार भावी ग्राम-व्यवस्था का पूरा नक़्शा ही उन्होंने रख दिया है। इसमें ग्रामीण जीवन के प्रत्येक विभाग की आवश्यकताएँ तथा उनकी पूर्ति के साधनों का उन्होंने अत्यन्त विशद, ब्यौरेवार विवरण दिया है, प्रत्येक विषय की प्रामाणिक तालिकाएँ दी हैं, आज का और भविष्य का एक-एक परिवार, एक-एक गाँव और सम्पूर्ण प्रान्त का बजट दिया है और किन किन परिवर्तनों के द्वारा एक सुखी, समृद्ध और संस्कार-सम्पन्न ग्रामीण समाज का निर्माण किया जा सकता है, इसका विवेचन किया है। खेती, भूमि, जल, वस्त्र, शिक्षा और उद्योग की कोई मद उनसे छूटी नहीं है। उन्होंने न केवल यह बताया है कि क्या चाहिए बल्कि यह भी बताया है कि कैसे वर्तमान साधनों मे सुधार करके, भारतीय ढंग पर, प्रत्येक गाँव को स्वावलम्बी स्थिति पर पहुँचाया जा सकता है। सब से बड़ी बात यह है कि उन्होंने इन सब सुधारों और परिवर्तनों में होने वाले विशाल व्यय की पूर्ति के साधन भी सुझाये है। इस प्रकार उन्होंने १९ वर्ष में गाँवों के पुनर्जीवन का एक अत्यन्त व्यावहारिक बजट-सा ही पेश कर दिया है।

आज जब देश राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करके आशा से उत्फुल्ल

है और जब हम पर राष्ट्र एवं समाज के निर्माण का ज़िम्मेदारी आ गई है और जब देश के सामने उद्योगीकरण की अनेक योजनाएँ आ रही हैं और बड़े-बड़े कल कारखानों की चिमनी का धुआँ शिक्षित युवकों के मस्तिष्क में भर रहा है; जब ग़लत धारणाएँ तेज़ी से फैल रही है तब धीरेन भाई की यह पुस्तक चौरस्ते पर खड़े दिग्मूढ़ यात्री के लिए दिशा-निर्देशक पट्ट का काम देगी; – हाँ, यदि हम कुछ सीखने और ग्रहण करने की दृष्टि से उसे पढ़े ।

इसीलिए जब मैंने पुस्तक देखी तो उसे प्रकाशित करने के मोह से मन भर गया और उसकी उपयोगिता देखकर ही साधना सदन ने अपनी साधन-हीनता की ओर दुर्लक्ष्य करके, इतनी बड़ी पुस्तक ऐसे समय छापने का उपक्रम किया जब काग़ज खाद्य-सामग्री से भी अधिक दुर्लभ है और काग़ज के लिए मिले सरकारी परमिट १९४२ के बर्मा के अंग्रेजी नोटों की भाँति तिरस्कृत हवा में मारे मारे फिर रहे है ।

स्वतंत्र भारत की केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तों की सरकारों के मंत्रियों, अधिकारियों तथा ग्राम सेवा-कार्य से सम्बन्ध रखनेवाली संस्थाओं और कार्यकर्ताओं को पुस्तक का अध्यन-मनन करना चाहिए ।

—श्री रामनाथ 'सुमन'

आत्म-निवेदन

दस साल पहले, श्रीमती आशादेवी ने, जब रणीवाँ-आश्रम के आसपास के गाँवों का काम देखा था तब उन्होंने मुझसे आग्रह किया था कि मैं अपने अनुभव लिख डालूँ। तब, समय के अभाव से, कुछ नहीं लिख सका लेकिन सन् ४१ मे व्यक्तिगत सत्याग्रह में नज़रबंद होकर, आगरा सेंट्रल-जेल चला गया तो आशाबहन ने फिर आग्रह किया। तब मेरे पास समय की कमी का बहाना न था अतः मैं उनके आग्रह की पूर्ति मे लग गया।

जब लिखने बैठा तो महसूस हुआ कि यह भी एक कला है और लिख वे ही सकते है जिनकी आदत लिखने-पढ़ने की है। छुटपन से, विद्यालय छोड़ कर जब से राष्ट्रसेवा के काम में आ गया तब से प्रायः गाँव में ही रहने को मिला। असहयोग-आन्दोलन के साथ साथ लिखने-पढ़ने से भी असहयोग कर देना पड़ा था। अतः मेरी समझ में यह नहीं आया कि मै किस तरह लिखूँ। बहुत सोच-विचार के बाद मैंने अपने अनुभवों की कहानी पत्रों-द्वारा ही आशा बहन को लिखनी शुरू की। ऐसा करने में खास सहूलियत यह थी कि लेख के सिलसिले, तर्ज और तरीके की रक्षा करने की आवश्यकता न थी। इस तरह दस माह आगरा जेल मे रहने के समय मैंने अपने ग्राम्यसेवा के अनुभव काफ़ी लिख डाले। सन् ४२ में बाहर आकर, इन पत्रों को इकट्ठा तो कर लिया था लेकिन समयाभाव से उसे फिर से देखने का मौका नहीं मिला। और कुछ ही दिनों बाद, सन् ४२ के आन्दोलन के कारण फिर नज़रबंद होकर एलाहाबाद सेंट्रल-जेल चल दिया। उस वक्त हमारे दादा (आचार्य कृपलानी), अहमदनगर किले में नजरबंद थे। वहाँ से उन्होंने मुझे यह आदेश लिख भेजा कि मै ग्राम समस्या और उसके समाधान पर कुछ लिखूँ। उनके आदेश का पालन करना ही था।

लेकिन इस बार कठिनाई यह थी कि मुझे पत्र लिखने की इजाज़त न थी। फिर सोचा भेजने की इजाजत नहीं है लेकिन लिख तो सकता ही हूँ। और पिछले पत्रों के सिलसिले से, आशा बहन के नाम, पत्र लिखकर, अपने पास ही जमा करता गया। सन् ४४ के नवम्बर मे, जब मै छूटकर आया तो मित्रों का आग्रह रहा कि उन पत्रावलियों को छपवा दूँ। पर काम की अधिकता के कारण वे छप न सकीं। इधर मेरे मित्र, भाई रामनाथ सुमन इन्हे देखकर छपाने के लिए अपने साथ ले गये और उन्हीं के परिश्रम से वे आज इस पुस्तक रूप में प्रकाशित हो रही हैं।

पुस्तक लिखना शुरू किये ६ साल हो गये। उसके बाद भारत के इतिहास में, युग परिवर्तन हुआ, अंग्रेज़ी-जेल के अंदर से लिखी पुस्तक छप रही है-- उस वक्त जब अंग्रेज़ भारत छोडकर चले जा रहे हैं। आज देश की परिस्थिति बदली हुई है और साथ साथ समस्याएँ भी। पिछले ६ साल तक लड़ाई जारी रहने के कारण, किसानों के अनाज के दाम में अधिकाधिक वृद्धि हुई। इस कारण आज यह समझा जाता है कि किसानों की हालत पहले से सुधरी हुई है। राष्ट्रीय सरकार होने के कारण, ज़मींदारी अत्याचार भी उनपर कम हो गये हैं। ऐसी हालत में, पॉच-छः साल के पहले की लिखी हुई बातों को आज छपाने की क्या आवश्यकता है, इससे किसे लाभ हो सकता है, यह शंका स्वभावतः पाठक के मन में उठ सकती है। लेकिन, जो लोग, मुल्क का पुनर्निर्माण करना चाहते हैं वे जब गाँव की मौलिक समस्याओं पर विचार करने लगेंगे तो उन्हे मालूम हो जायगा कि इन तमाम परिवर्तनों के बावजूद, हमारे देहातों की हालत वैसी ही है जैसी आज से दस वर्ष पहिले थी। फर्क इतना ही हुआ है कि आज के देहात के लोग किसी राष्ट्रीय जन को देखकर, उसके पास आकर पूछते है—"भइया! अब का होत बा?" पहले उनको इस बात का कुछ भी होश नहीं रहता था कि दुनिया में क्या हो रहा है। आज वे दुनिया की हर चीज़ को जानने के लिए

व्याकुल है। बाकी बातों मे विशेष परिवर्तन नहीं है। गल्ले की मँहगाई के कारण उन्हीं किसानों की हालत में सुधार हुआ है जिनके सामने पहले भी कोई समस्या नहीं थी याने जो खाने और कपड़े के अलावा बढ़ती अनाज बाज़ार मे बेचते थे। फायदा केवल उन्हीं को है। जिन किसानों के पास केवल इतनी ही जमीन है जिसकी पैदावार से उनको सिर्फ आधे पेट खाना और दो-एक कौपीन वस्त्र के सिवाय और कुछ नहीं बच सकता है उनको मँहगाई और सस्ताई से क्या मतलब? और भारत के ९५% किसानों की हालत यही है। अगर ५ सैकड़ा किसानों के पास दो पैसे ज़्यादा आ गये तो उसमें से अधिकांश किसान उस पैसे को अनावश्यक चीजों की खरीद मे फूँक देते है। अतः अनाज की मँहगाई के कारण, ग्राम्य-समस्या में कुछ परिवर्तन हुआ है, ऐसी बात नहीं दिखाई देती।

राष्ट्रीय सरकार होने पर किसानों के लिए कानून में जरूर कुछ परिवर्तन हुआ है। लेकिन बदकिस्मती से, आज अंग्रेज़ देश से चले गये हैं और छोड़ गये है अंग्रेज़ी। आज भी हम राज्य-व्यवस्था उसी तरह केन्द्रीय ढंग से चला रहे हैं जिस ढग से अंग्रेज़ चला रहे थे। इस तरह केन्द्रतंत्र का स्वाभाविक नतीजा नौकरशाही आज भी उसी तरह चल रही है। परिणामस्वरूप किसान के लिए जो अच्छे कानून बनते हैं उसका फायदा, नौकरशाही की दीवार लाँघकर, किसानों तक नही पहुँच पाता और किसान आज भी उसी तरह पददलित है जिस तरह आज से दस साल पहले था।

जैसा कि मैने पहले बतलाया है, सन् ४२ के जन-आन्दोलन के कारण और राष्ट्रीय सरकार होने के नतीजे से, आज ग्रामीण जनता पहले-जैसी बेहोश नही है और दुनिया मे क्या हो रहा है, इसे जानने के लिए बेचैन है। अतः यही सब से अनुकूल मौका है जब उनके बीच व्यापक काम करके, उनकी जिम्मेदारी और अधिकारों का ज्ञान उन्हे करा दिया जाय और उस जिम्मेदारी और उन अधिकारों को अपने हाथ

खोने की योग्यता उनमें पैदा की जाय।

इसलिए देरी होने पर भी, ग्राम-सेवा के मेरे अनुभव मुल्क के सामने आवें इसके लिए आज की परिस्थिति सबसे अनुकूल है।

इस पुस्तक मे मैंने अपने अनुभवों की कहानी लिखी है। उनके आधार पर हमारे देश के स्वतंत्र ग्राम सेवक, राष्ट्रीय संस्थाएँ और प्रांतीय सरकारें अपनी विशेषताओं और मर्यादाओं के अंतर्गत, किस प्रकार ग्राम-उत्थान का काम कर सकती है, उसकी अनुमानित योजना भी दी गई है। ये योजनाएँ गाँधी जी की बतलाये विकेन्द्रित आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था के आधार पर ही बनी है और इन्हीं आधारों पर, समाज का आर्थिक तथा राजनैतिक संघटन करने पर ही देश में, सही लोकतंत्र की स्थापना हो सकती है, इसमे सन्देह नहीं। केन्द्रीय आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था को कायम रखते हुए, प्रजा को चाहे जितना मताधिकार दिया जाय, मुल्क में, सच्ची लोकशाही के बदले, केन्द्रसंचालकों की तानाशाही ही प्रतिष्ठित होगी क्योंकि बेहोश जनता की राय लोकमत न होकर भीड़मत ही हुआ करती है। अगर आज की प्रान्तीय सरकारें चाहती है कि प्रजा, अपनी जिम्मेदारी अपने आप उठा कर, जनता का राज्य स्थापित करे और उसकी रक्षा भी कर सके तो उन्हे इस पुस्तक में बताई योजना के अनुरूप ही योजना बनानी पडेगी।

जब से देश में राष्ट्रीय सरकार कायम होने की बातचीत चली तब से गांधी जी मंत्रि-मंडलों और देश के नौजवानों को समग्र ग्राम-सेवा, विकेन्द्रित उत्पादन तथा विकेन्द्रित व्यवस्था की बात पुकार-पुकार कर कह रहे हैं। मालूम नहीं, आज के राष्ट्रीय जन सत्ता प्राप्ति के नशे में, गांधी जी की इन पुकारों को सुन सकेंगे या नहीं। लेकिन, जिस मुल्क को गांधी जी के बताये मार्ग पर चलकर, इतने सस्ते में स्वतन्त्रता मिली है वह अगर अपने को संघटित करने में, गाँधी जी का रास्ता छोड़ देगा तो अपने को भयंकर तानाशाही गुट्ट के शिकंजे में डाल

देगा। मुझे आशा है, लोकतंत्र के पुजारी राष्ट्रीयजन इस पुस्तक के पन्नों से लाभ उठा सकेंगे।

पुस्तक का नाम "समग्र ग्राम-सेवा की ओर" रखा गया है। क्योंकि ग्राम-समस्या जैसी अथाह समस्या के अंत तक पहुँचना मेरे-जैसे सामान्य सेवक की अब तक की शक्ति के बाहर है। अतः अभी तक मैं अपने को ग्राम-सेवा के योग्य बनाने की चेष्टा में हूँ। और इस पुस्तक के पन्नों में इसी प्रयत्न परम्परा की कहानी है। इसलिए इसे 'ग्राम सेवा" न कह कर "ग्राम-सेवा की ओर" ही कहना ठीक समझा।

पुस्तक में जो कुछ लिखा गया है वह मेरा निजी अनुभव है। यह अनुभव कुछ जिलों में सीमित है। हो सकता है, शास्त्रीय, दृष्टि से मेरी बातों मे कुछ फर्क हो। यह भी हो सकता है कि मैंने जिन जिलों मे काम किया है उन जिलों के अलावा दूसरे देहातों की स्थिति मे कुछ फर्क हो। लेकिन इन पन्नों में मैंने किसी के लिए सम्पूर्ण योजना बनाने की कोशिश नहीं की है। मैंने सिर्फ योजना बनाने के लिए एक रास्ता बतलाया है। जो कोई भी मेरे बतलाये तरीके से प्रयोग करना चाहेंगे उन्हें अपने क्षेत्र की परिस्थिति के अनुसार स्वतन्त्र योजना बनानी होगी।

मुझे अपने अनुभव बतलाने में कुछ लोगों की आलोचना भी करनी पड़ी। संभव है, कहीं-कही यह आलोचना सख्त हो गई हो। मुझे आशा है, विज्ञ लोग क्षमा करेंगे।

दादा (राष्ट्रपति कृपलानीजी) का मुझ पर सहज वात्सल्य है। इसलिए उन्होंने चल-चित्र की तरह तेज़ी से बदलते हुए देश की वर्तमान स्थिति मे अत्यन्त कार्यव्यस्त होते हुए भी पुस्तक के लिए विचारपूर्ण भूमिका लिख दी है। उनके प्रति हृदय की कृतज्ञता प्रकट करना भी अकृतज्ञता होगी।

रणीवाँ
स्वाधीनता दिवस १९४७ } —धीरेन्द्र मजूमदार

विषयानुक्रम

प्रथम भाग

[संस्मरण, संस्कार और अनुभूतियाँ]

१—३६०

आप एक कंगाल मालिक के सेवक हैं, कुसंस्कारों के मलबे के नीचे मानवता दबी पड़ी है, यहीं की आग से यहां के दीप जलाओ !]

द्वितीय भाग

[विवेचन, निष्कर्ष और योजनाएँ]

३६१—७२८

समग्र ग्राम-सेवा की ओर

श्री धीरेन्द्रनाथ मजूमदार

भाग १

संस्मरण, संस्कार और अनुभूतियाँ

[१]

सेवक की अड़चन

सेंट्रल जेल, आगरा
१—६—४१

प्रिय आशा दीदी,

पिछले दो साल से तुम पीछे पड़ी रही कि मै देहात मे काम करने की बावत अपने अनुभव लिख डालू। मै यही कहता रहा कि लिखना-पढ़ना मुझसे नहीं होता है। क्योंकि मै हूँ एक कारीगर, न कि लेखक और यह बात मैने कभी नही छिपाई। इत्तफाक़ से सरकारी प्रहार मेरे ऊपर भी हो गया और मै जेल मे आ बसा। बापू जी ने लिखा था कि "तुम्हारी कैद मेरी समझ मे ही नहीं आई।" तो फिर मेरी समझ में कैसे आती? एक बात तो निर्विवाद है कि मुझे आराम चाहिये था और वह बाहर मिल नही सकता था। इसलिए शायद ईश्वर ने यही उपाय किया कि मुझे काम के क्षेत्र से हटा लिया। ख़ैर, अब तो जेल आये दो महीने हो गये। दफा २६ भी लग गई। मै सोचता हूँ कि अब अपनी बाते तुमको लिखता रहूँ जिससे तुम्हारे बहुत दिनों के अनुरोध का भी पालन हो जाय। यह तो तुम्हे मालूम ही है कि लिखने-पढने से मेरा कितना सम्बन्ध रहता है। यह पत्र भी मै अपने एक मित्र से लिखा रहा हूँ। इसलिए सम्भव है कि मै तुम लोगों के सन्तोष के लिए पूरा मसाला न भेज सकूं। लेकिन यदि कोई बात छूट जाय या तुमको मेरी किसी बात पर शंका हो तो मुझसे पत्र-द्वारा पूछ लेना। जहाँ तक सम्भव होगा मै सारी बाते साफ-साफ लिखने की कोशिश करूँगा।

गिरफ़्तारी से पहले आख़िरी वार जब मै वर्धा गया था तो रात को खाना खाते समय हम लोग गाँव मे काम करने वालों की बावत वात-चीत कर रहे थे। तुमको याद होगा, मैने कहा था कि हमारे शहरो के रहने वाले पढे-लिखे लोग, जिनमे कुछ बुद्धि और सस्कार है, गाँव मे टिकते नही है। इसका कारण उनका शहरी संस्कार और शिक्षा है और साथ-साथ है उनकी (... camplex) वड़प्पन की उलझन की भावना। शिक्षित समाज के लोग देश-सेवा के लिए बहुत-कुछ त्याग करते हैं। वे रुपया-पैसा छोड़ते है, जेल जाते हैं, तकलीफ भी उठाते हैं। और उनके इस त्याग से हमारे देश की राष्ट्रीय भावना मे उन्नति भी हुई है। उनका इस प्रकार का सारा त्याग और कष्ट सहने की इच्छा राष्ट्रीय भावना पैदा कर सकती है, लेकिन इससे ग्राम-सेवा एवं संघटन नही हो सकता। उस समय तुमने पूछा था—"तो फिर उनमे क्या कमी है कि वे इतना त्याग करने पर भी गाँव मे नहीं बैठ सकते हैं?" मैने उस समय यही उत्तर दिया था कि वे सब कुछ त्याग कर सकते हैं लेकिन अपने वड़प्पन की भावना नहीं छोड़ सकते। वे समझते हैं कि अपनी शिक्षा के द्वारा उन्होंने जो गुण प्राप्त किये हैं, गाँव मे रहने से उनकी हत्या हो जाती है। और उनके अभ्यास और विकास का गाँवो मे कोई भी साधन नही है। "मैने इतना पढ़ा है! दुनिया मे घूम कर इतना अनुभव प्राप्त किया है; भला इन मूर्खों के बीच कैसे रहूँ? इससे तो मेरी हस्ती ही मिट जायगी!" गाँव वालों का उद्धार तो दर-किनार यही वजह है कि हमारे देहात मे योग्य कार्य-कर्ता नही दिखाई पडते। तारीफ तो यह है कि किसी भी राष्ट्र-वादी मित्र से बात करो तो यही सुनने को मिलता है कि बिना ग्राम-सेवा तथा ग्राम-सुधार के हमारे देश में कुछ हो सकना सम्भव नहीं।

ग्राम-सेवा की कठिनाई

कभी कोई मित्र मुझसे गाँव में काम करने की बावत पूछता है

तो मैं सबसे पहले उससे यही प्रश्न करता हूँ कि आप किसी गाँव में ग्रामीण बन कर बैठने को तैयार हैं या नहीं ? क्योंकि कुछ दिन देहात में काम करने से मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि जब तक हमारे शिक्षित लोग अपनी बड़प्पन की भावना का अहंकार छोड़ कर गाँव वालों के साथ जहाँ तक सम्भव हो सके मिल न जायँ और अपनी आदत, सभ्यता और बहुत सी गन्दगी आदि के खिलाफ अपने संस्कार के साथ समझौता न कर लें, तब तक वे ग्रामीण जनता के प्रति श्रद्धा की भावना नहीं रख सकते और उनको हमेशा छोटा ही समझते रहेंगे।

ग्राम में काम करने की पहली शर्त

आखिर हम सेवा उन्हीं की कर सकते हैं जिन पर हम श्रद्धा भी रख सकें। नतीजा यह होता है कि जो गाँव में पहुँचते हैं, वे गाँव वालों के सामने ग्रामोद्धारक के रूप में ही प्रकट होते हैं, ग्राम-सेवक के रूप में नहीं। गाँव की जनता को हम चाहे जितना मूर्ख समझें, किन्तु अनादिकाल से एक खास किस्म की ज़िन्दगी होने के कारण वे अपने तरीक़े, रीति-नीति आदि सभी चीज़ों को श्रेष्ठ समझते हैं और उस विषय पर किसी दूसरी सभ्यता वाले शिक्षक या उद्धारक को वे सहन नहीं कर सकते। ग्रामीण सभ्यता का अभिमान उनके अन्दर कूट-कूट कर भरा हुआ है। यहाँ तक कि वे तुम्हारी सहानुभूति के थोड़े से शब्द भी बरदाश्त नहीं कर सकते। वे गरीब हैं, दरिद्रता उनके जीवन को ग्रसती जा रही है। लेकिन जिस प्रकार थोड़े दिनों से, विशेष कारणों से बिगड़े हुए रईस कौटुम्बिकों के सहानुभूति के शब्दों को व्यंग समझ कर नाराज़ हो जाते हैं, उसी तरह वे भी हमारी सहानुभूति को पसन्द नहीं करते। इसलिए अगर हम गाँव के अन्दर कुछ करना चाहें तो हमें उनके सेवा-कार्य के योग्य बनना होगा और उसी प्रकार की मनोवृत्ति भी बनानी पड़ेगी। तभी वह हमको ग्रहण कर सकते हैं, अन्यथा नहीं।

ग्रामवासी की मनोधारा

शहर का शिक्षित समाज पश्चिमी सभ्यता के चक्कर मे पड़ कर और अपनी आर्थिक सुविधाओ के अभिमान के कारण गाँव की विशेषताएँ समझ ही नही सकता; अपने जीवन में उनका अभ्यास करना तो बहुत दूर की बात है। इसलिए ग्राम-सेवक को काफी समय तक अनुकूल परिस्थिति मे रह कर अपने आपको ऐसी सेवा के योग्य बनाना पड़ता है। कुछ लोगो को परिस्थिति भी घसीट कर अनुकूल बना देती है। मैं जो आज थोड़ी सेवा देहात मे कर पा रहा हूँ इसके लिए मुझको भी बड़ी तैयारी करनी पड़ी थी। और यह सब कुछ तो अपनी चेष्टा और कुछ परिस्थिति के दबाव के कारण ही सम्भव हो सका। मै गाँव को पसन्द करने लगा। यह सब एक लम्बी कहानी है जिसे मै फिर कभी लिखूंगा। यहाँ मै बहुत स्वस्थ हूँ। आराम ख़ूब मिल रहा है। कभी-कभी अधिकारियो से झगड़ने मे भी मज़ा आता है। तुम सब लोग तो आज कल ख़ूब व्यस्त हो। अब तो सरकारी सहारा भी नही रह गया। अब तालीमी सघ के पास केवल अपनी शक्ति ही शेष है। यह भी अच्छा ही हुआ। सिन्धबाद के कन्धे पर से 'समुद्र के वृद्ध पुरुष' के उतर जाने पर ही वह निश्चिन्त हो सका था। तुम लोग भी अब सरकारी महकमों को अपने कन्धे पर से उतार कर हल्के हो गये, यह अच्छा हुआ।

नमस्कार।

---

[२]

पहला अनुभव

सेंट्रल-जेल, आगरा

७—६—४१

पिछले पत्र में मैंने यह बताने का वादा किया था कि मै किस तरह ग्राम-सेवा की ओर बढ़ा और अपनी मनोवृत्ति आज जैसी किस तरह

बन सकी। आज उसी का थोड़ा इतिहास लिखने की कोशिश करूँगा।

सन् १९२१ में असहयोग आन्दोलन का तूफान जब मुझको विश्वविद्यालय से घसीट कर जन-सेवा के कार्य-क्षेत्र में लाया तो मैं भी एक शहरी मनोवृत्ति वाला शिक्षित नौजवान था। पहले ही दिन आश्रम मे और भाइयों के साथ जब नित्य-क्रिया के लिए खुले मैदान मे जाना पड़ा तो मै परीशान हो गया। खाना-पीना, रहन-सहन सब बातों से घबड़ाता ही रहा, परीशानी यहाँ तक बढ़ गई कि मै अपना खाना अलग ले लेता था और दूसरो की आँख बचा कर फेक देता था और पास के होटल मे जाकर खाना खा आता था। दूसरे भाइयों का सहज-जीवन देख कर आश्चर्य होता था। और अपने प्रति

आश्रम में

धिक्कार की भावना पैदा होती थी, किन्तु आन्दोलन की गर्मी ने बहुत सी तकलीफों को महसूस नहीं होने दिया और मैं भी सर्वदा के लिए गाधी आश्रम में सम्मिलित हो गया। काशी में आश्रम था, शहर का वातावरण था, गाँव से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। गाँव है क्या वस्तु, कुछ पता ही नही था। लेकिन गाँधी जी तथा दूसरे नेताओं के लेख पढने लगा, लेक्चर भी सुनता ही था, मन में यह बात बैठ गई कि वास्तव में हिन्दुस्थान देहात में ही रहता है। देहात की आबादी ही मुल्क की आबादी है और देहात की बरबादी मुल्क की ही बरबादी है। ग्रामसेवा और ग्राम-जीवन की तरह-तरह की कवित्व-पूर्ण-धारणाएँ मस्तिष्क में बैठती गईं। साल भर बाद जब आन्दोलन की धूम-धाम कम हो गई, और बहुत से भाई अपने अपने घरेलू जीवन में जा फँसे, तो आश्रम के बचे हुए भाइयों ने आचार्य कृपलानी जी की प्रेरणा से यही निश्चित किया कि अब देहात मे चल कर चर्खे-आदि द्वारा ग्राम-संगठन का काम किया जाय। भाई रामाश्चर्य को, बनारस से २० मील दूर धौरहरा गाँव भेजा गया। वह भाई वहाँ

जा कर बस गये। आश्रम के बड़े भाई लोग भी उस गांव में आते जाते थे। मै उन दिनों अपने भाई लोगों का देहात में आना-जाना देखा करता था और उनकी आपस की बातचीत भी ध्यान से सुना करता था। मन मे देहात देखने की इच्छा प्रबल होती गई। इसी बीच आश्रम के एक भाई देवनन्दन दीक्षित जेल से छूट कर आये और घर के किसी अनुष्ठान के बहाने आश्रम-वासी भाइयो को अपने घर चौबेपुर गाव मे आमंत्रित किया। चौबेपुर बनारस से १६ मील की दूरी पर है। हम सब ने यही तय किया कि पैदल जायँगे और पैदल आयँगे। चौबेपुर जाते समय रास्ते मे कई गाव पड़े। देहात मे पहले-पहल जाना हुआ। हरे-भरे खेतो के बीच सुंन्दर-सुन्दर झोपड़िया देखने को मिलीं। सीधे-सादे किसानों को अनन्त आकाश के नीचे खुली हवा मे काम करते हुए देखा। छोटे-छोटे बच्चो को

प्रथम दर्शन

देहात के बग़ीचे मे खेलते-कूदते और हँसते हुए गौवें चराते देखा। रास्ते भर देहाती जीवन की झलक देखते हुए चौबेपुर पहुँचे। चौबेपुर का एक दिन का रहना बहुत दिलचस्प रहा। देहाती भाइयों का सीधा-सादा और हँसमुख व्यवहार एक दृश्य ही था। अतिथि-सत्कार भी एक खास तरह की दिली चीज थी। चौबेपुर से उसी दिन लौट आया। जिस देहात और देहातियों के विषय मे पढता और सुनता आया था, उन्हें अपनी आखो देखा और प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच का उनका जीवन बहुत अच्छा मालूम हुआ। कभी-कभी यह भी भावना पैदा हुई कि ऐसे ही सुन्दर स्थान मे जाकर रहना चाहिए। परन्तु तत्काल ऐसा अवसर न प्राप्त हो सका। कुछ समय पश्चात् इस प्रकार का अवसर प्राप्त हो ही गया।

राजाराम भाई एक सप्ताह के लिए धौरहरा गाव को जा रहे थे। मैं भी उनके साथ हो लिया और रेलगाड़ी से राजवाड़ी स्टेशन उतर कर ३ मील पैदल चलने के बाद धौरहरा पहुँचा। धौरहरा

मे ५-६ दिन कोई काम नही था। वहाँ के मिट्टी के छोटे-छोटे और दूसरे घरो से घिरे हुए मकान, छोटे-छोटे आँगन, दरवाजो के निकट ही गलियो मे नाबदान के दृश्य, रसोईघरो से निकलते हुए धुये के जमघट एवं आँगन और घरों की सदियो से जमी हुई नमी के कारण पृथ्वी से निकलते हुए भाप आदि ने मेरी देहात के सम्बन्ध में इतने दिनों की कविता-पूर्ण धारणा और उस दिन की मधुर स्मृति, सबको एक साथ मिट्टी मे मिला दिया। रामआश्चर्य के तो देहाती लोग मित्र बन गये थे। उन्होंने गाँव के खास-ख़ास लोगों मे परिचित कराने के लिए मुझको उनके घरों में ले जाना शुरू किया। हमारे

एक झटका

जाने पर लोग हमसे ख़ुशी से मिलते थे। लेकिन बात-चीत मे उनके सीधे-सादे लट्ठमार जवाब सुन कर तथा उनकी अपनी बात पर हर वक्त ज़िद करने की प्रवृत्ति देख कर मुझे परीशानी हुई। हम लोगों की ख़ातिर करने के लिए वे अपने घरों से तोशक और कथरी लाते थे। इन चीज़ो से इतनी अधिक बदबू निकलती थी कि उन पर बैठने को जी नही चाहता था। लेकिन न बैठने मे उनके अपमान की आशका थी। कहीं-कही लोग बैल और घोड़ा बाँधने के गन्दे और बदबूदार स्थान के पास ही चारपाई बिछा कर बहुत ख्वातिर के साथ हम लोगों को बैठाते थे। इस प्रकार गाँव मे रहना बड़ी परीशानी की बात थी। इतनी अधिक झुण्ड के झुण्ड मक्खियो के बीच बैठ कर खाना खाना भी मेरे लिए एक अपूर्व अनुभव था। पाँच-छः रोज़ मे ही मै परीशान हो गया और वहाँ से बनारस चल दिया। देहात मे जाकर रहने का स्वप्न समाप्त हो गया। मैने अपने मन मे विचार किया कि जब ये लोग इतने सुस्त, इतने मूर्ख और इतने गन्दे हैं तो इनकी यह हालत होना तो स्वाभाविक ही है। मुझे उनके प्रति एक घृणा सी हो गई। सोचने लगा कि इन पर क्या रहम किया जाय। ये तो इसके पात्र ही हैं। मुझको तो इनके नमी से भरे हुए मकान ही विचित्र प्रतीत होते थे

तिस पर उनमे इतना अँधेरा था कि ५ मिनट मे दम घुट जाय। ये लोग मकान वनाते हैं तो ठीक ढंग से क्यों नही वनाते ? इस प्रकार के विचार भी रह-रह कर दिमाग मे घूमने लगे। कुछ दिन के वाद रामआश्चर्य भाई वनारस आये। मैने उनसे कहा कि भाई इतने दिनों से उस गाव में हो किन्तु उन्हें थोड़ी सफ़ाई भी न सिखा सके। रामआश्चर्य भाई ने हँसकर जवाब दिया कि वे इसी प्रकार रहते हैं; उनके रहने के तरीके मे सुधार नही हो सकता और न तो वे सुधरने को तैयार ही हैं। फिर सुधार किस वात का किया जाय ? शहर के सुधरे हुए और साफ़ रहने वाले लोगों से वे अधिक स्वस्थ और मजबूत हैं। परिश्रम अधिक कर सकते हैं। फिर उनका क्या सुधार करोगे ? रामआश्चर्य भाई से इस प्रकार की वहुत सी वातें हुईं। हम लोग वात कर ही रहे थे कि एक दूसरे भाई वहा आ पहुँचे और हमारी वाते सुनकर हमारा मज़ाक़ उड़ाने लगे। "शहर के वाबू लोग देहात की बातों को क्या समझेंगे ?" इत्यादि-इत्यादि। मैने इन लोगो से वाते तो की लेकिन दिमाग़ में परीशानी वनी रही। रह-रह कर यही ख्याल आता था कि क्या मैं इस योग्य हूँ कि हिन्दुस्थान के जन-सेवा-कार्य मे सफल हो सकूँ ? यह मै तुम्हे पहले ही लिख चुका हूँ कि किताबें पढ़ने और नेताओं के व्याख्यान सुनने से यह वात हृदय मे भली-भाति बैठ चुकी थी कि हिन्दुस्थान की जनसेवा का अर्थ ग्राम-सेवा है। और गाव की हालत यह है कि वहा जाकर एक दिन भी टिकना मुश्किल है। वहा की गन्दगी से वचना तो कुछ आसान है, गाव के वाहर कही कुटिया वनाई जा सकती है किन्तु वहा जाकर वातचीत किससे करूँ ? और कहाँ जाकर वैठूँ ? रामआश्चर्य जिन ख़ास-ख़ास प्रतिष्ठित लोगों के घर मुझे परिचय के लिए ले गये थे, उनसे अधिक सभ्य तो शहर के दरवान और चपरासी भी मालूम पड़ते हैं। जव इन वड़े समझे जाने वाले लोगों की दशा यह थी तो फिर दूसरे छोटे लोगों का कहना ही क्या ? फिर उनके प्रति ऐसी अश्रद्धा रखते हुए

उनकी सेवा ही क्या करूँगा? इस प्रकार के ख्याल भी रह-रह कर दिमाग़ मे आते रहे। दो-तीन माह तक मै इसी प्रकार की चिन्ताओं में बहुत परीशान रहा। कई बार यह भी मन मे आया कि बहुत से अन्य भाइयो की तरह पुनः कालेज मे वापिस चला जाऊँ किन्तु एक बार जो निश्चय कर चुका था, उससे पीछे हटना भी कठिन ही प्रतीत होता था। इस द्विधा और परीशानी के

किंकर्त्तव्यविमूढ

बीच मै कर्तव्याकर्त्तव्य का कुछ निश्चय न कर सका और लाचारी की अवस्था मे जिस तरह पहले दिन व्यतीत करता था, उसी तरह व्यतीत करने लगा। मेरी तबीयत भली-भाँति किसी काम मे नही लगती थी, जिससे लोग मुझे खब्ती समझने लगे। बाद को परिस्थिति और मेरी मनोवृत्ति मे कुछ तबदीली हुई और मेरा दिमाग़ अधिक स्थिर होने लगा। यह तब्दीली किस प्रकार हुई इसे दूसरे दिन लिखूँगा। आज इतना ही कह कर पत्र समाप्त करता हूँ।

आज कल यहा का जीवन खूब अच्छा है। पढने की भी धीरे-धीरे आदत पड़ रही है। नजरबन्दी के जेल-जीवन का क्या ठिकाना। एक तरह से अच्छा भी है, लामियाद होने से दिन तो नहीं गिनने पड़ते। तुम सब को मेरा नमस्कार।

---

[३]

ज़िन्दगी की तैयारी

सेंट्रल जेल, आगरा
१३—६—४१

उस दिन से मैं कोई पत्र नहीं लिख सका। इधर जेल मे कुछ लड़ाई-झगड़ा था। उस झगड़े के सिलसिले मे लिखने-पढने की फ़ुरसत ही नहीं मिली।

उस दिन मैने तुम्हे लिखा था कि गाव की बुराइयों को देख कर गाव वालो के प्रति मुझे कैसी घृणा हो गई। इतने दिन से गाव के प्रति इतनी मधुर धारणा रखने पर भी इतनी जल्दी सारा स्वप्न समाप्त हो गया, यह क्या बात है ? क्या गाँव की हालत देख कर ही ऐसा ख्याल पैदा हुआ या कुछ भीतरी संस्कार, जो कविता-मय भावना से दबे हुए थे, एकाएक उभर पड़े ? यह सोचने की बात थी। तुमको तो मालूम ही है कि बंगाली मध्यम श्रेणी के लोगो में छोटे लोग और भद्र लोग के नाम से दो श्रेणी का विकट संस्कार कूट-कूट कर भरा हुआ है। उनके लिए छोटे लोग मनुष्य श्रेणी मे नही गिने जाते। वे हेय और नीच समझे जाते हैं। मै भी तो बगाली बाबू श्रेणी का एक युवक था। इसलिए जो लोग सफेद कपड़ा नहीं पहनते उनको मेरा छोटे लोग अर्थात् नीच और हेय समझना स्वाभाविक ही था। उस वक्त यह बात कहाँ मालूम थी कि गाँव के सीधे-सादे लोग दीन हो सकते हैं लेकिन हीन नही। मेरी परिस्थिति के एक नौजवान के लिए यह समझना नामुमकिन था कि सदियों के अवसर और साधन के अभाव ने ही उनकी हालत ऐसी बना दी है। उस समय मुझमे श्रेणी-भेद का संस्कार इतना प्रबल था कि मेरे लिए यह भी समझना असम्भव-सा था कि इस गन्दगी और अक्खड़ प्रकृति की तह मे भी हजारों वर्ष की सुसंस्कृति चिनगारी की तरह राख के नीचे दबी हुई पड़ी है। यह सब बातें मुझे सालो बाद मालूम हुईं। जिनकी बाबत मे फिर कभी समय पाकर लिखूगा। उस समय तो गाव की बात सोच कर मुझे परीशानी ही होती थी और उनके प्रति अश्रद्धा की भावना ही उत्पन्न होती थी। मै समझता हूँ कि भारत के सैकड़ों नौजवानों की यही मन.स्थिति है। ग्राम-सेवा की उत्कट इच्छा रखते हुए भी यहाँ की ज़िन्दगी के प्रति वितृष्णा की भावना उत्पन्न हो जाती है।

श्रेणीगत अहंकार

बनारस लौट कर मै अपने काम मे लग गया। मेरे ज़िम्मे बढई-

विभाग के संचालन का काम था। इञ्जीनियरिङ्ग कालेज मे पढने की वजह से यह काम मेरे अनुकूल भी था। स्वभावतः ही मै अपने काम मे मशगूल हो गया। लेकिन रह-रह कर धौरहरा का ख्याल मेरे दिमाग़ मे आता ही रहता था। "तो क्या मै राष्ट्रीय सेवा के योग्य नहीं हूँ।" मै देखता था कि मेरे कुछ दूसरे भाई काफी आसानी से देहात का काम कर लेते थे लेकिन उनका घर देहात मे ही था और उनके लिए देहाती वायु-मण्डल स्वाभाविक था। मै इस चिन्ता मे काफी वक्त बिताता था और अपने मन मे काफी दुखी रहता था। कभी-कभी यह भी ख्याल आता था कि मैने असहयोग आन्दोलन मे नाहक़ भाग लिया। उस समय के वायुमण्डल मे नवयुवकों के बीच एक निराशा-सी छाई हुई थी। मेरे सैकड़ों साथी प्रति दिन एक-एक करके कालेज वापिस जा रहे थे, जिसकी ख़बर हमे मिलती रहती थी; यह चिन्ता भी मुझे काफी परेशान करती थी, लेकिन जब-जब सोचता था तब-तब दिल से यही आवाज़ उठती थी कि अब आगे बढे हो तो वापिस क्यो जाओगे? अगर कुछ करना है तो आगे ही बढना ठीक है, पीछे हटना तो नामर्दी का काम होगा। इस प्रकार आख़िरी निश्चय यही हुआ कि आगे बढना ही उचित है। यह तो मै पहले ही लिख चुका हूँ कि मेरे दिल मे यह बात पहले ही से बैठ चुकी थी कि हिन्दुस्थान गाँव मे बसता है और इस मुल्क की सेवा तभी हो सकती है जब कि हम गाँव की सेवा करे। लेकिन क्या अपने भीतर उच्च वर्ग की मनोवृत्ति रखते हुए गाँव की सेवा सम्भव है? इस प्रकार की भावना के साथ तो गाँव मे दो दिन टिकना भी मुश्किल हो जायगा। फिर जिनके प्रति श्रद्धा नहीं है, उनकी सेवा क्या कर सकेंगे? मै पहले भी लिख चुका हूँ कि सेवा उसी की की जा सकती है जिसके प्रति हम श्रद्धा रख सके। मैं सोचने लगा कि यह श्रद्धा आये कैसे? इसके लिए तो सर्वप्रथम अपने भद्र-पन की भावना को छोड़ना पड़ेगा। यों तो

हृदय-मंथन

मैने जब से कालेज छोड़ा था तभी से अपनी रहन-सहन बहुत सादी कर लिया था। आश्रम का वायुमण्डल ही वैसा था। किन्तु उस समय से मैने अपने कपड़ों को देहाती की तरह बनाने की कोशिश करना प्रारम्भ किया। आश्रम मे यह रिवाज सा था कि रोज़-रोज़ साबुन से कपड़े धोकर साफ रखे जायँ। मैं कपड़े तो रोज़ धोता था, किन्तु उन्हें अधिक सफेद नही करता था। अपने आपको कुछ ऐसे रंग में रंगना चाहता था कि देहातियों के साथ उठना-बैठना सहज हो सके। आश्रम के दूसरे भाई इस पर काफी टिप्पणी करते थे, मेरा मज़ाक़ भी उड़ाते थे, लेकिन मै इन बातों को हँस कर उड़ा देता था। उनसे कहा करता था कि भाई यह भी एक स्टैंडर्ड है। आख़िर कही धब्बा तो है नहीं ? शुरू से आख़िर तक एक ही रंग मिलेगा। इत्यादि, इत्यादि।

बनारस मे यही सोचा करता था कि किस तरह अपने को गाँव के कार्य के योग्य बना सकूं। इसी बीच श्री दिनेशचन्द्र चक्रवर्ती नाम के एक नौजवान ने बनारस मे अछूतोद्धार का काम प्रारम्भ किया था।

अछूतों से सम्पर्क

मै कभी-कभी उन्हे चन्दा इकट्ठा करने के काम में सहायता दे दिया करता था और कभी-कभी उन्ही के साथ अछूतों के मुहल्ले मे भी जाया करता था। धीरे धीरे उनके दरवाज़े पर उठना-बैठना भी शुरू कर दिया। इस प्रकार क्रमशः मेरा उनके साथ उठना-बैठना सहज होता गया। दिनेश बाबू के साथ अछूतों के मुहल्ले मे आने-जाने से सब से बड़ा लाभ यह हुआ कि मेरे हृदय मे उनके प्रति घृणा की जो भावना भरी हुई थी वह धीरे-धीरे दूर होती गई और मै गन्दगी को सहन करने का अभ्यासी होता गया। लोगों के इस प्रकार के जीवन को बदलने के अभिप्राय से जब मै उनसे बार-बार मिलने लगा तो मुझमे भी कुछ परिवर्तन होने लगा। इस बात की आशका भी होने लगी कि कहीं मेरी अवनति न हो जाय। मेरे मस्तिष्क मे इस धारणा ने घर बना लिया था कि देहात की जनता

को उठाने मे ही देश का कल्याण है। मै सर्वदा इस प्रकार का अवसर प्राप्त करने के लिए व्यग्र रहा करता था, किन्तु हृदय के पूर्व संस्कार इतने प्रबल थे कि धौरहरा जाते ही वाबू मनोवृत्ति उमड़ आई। तुम पूछोगी कि जो संस्कार प्रारम्भ मे खेत गोड़ने, वर्तन माँजने और ठेला खींचने पर भी नही मिट सके थे वे बाद मे किस तरह मिट सके। सचमुच यह सोचने और समझने की वात है। शुरू मे जव हम मज़दूरी का काम करते थे, तो आश्रम-जीवन के रवैया के साथ यंत्रवत् चलते रहे। उस समय किसी ख़ास ढंग की ओर अपने को ले जाने की नीयत नही थी। वह जीवन सम्मिलित जीवन का एक अंग था। साथ मिल कर नियमित रूप से परिश्रम करने और तकलीफ़ उठाने के कारण आश्रम-वासियो मे आपसी प्रेम और भ्रातृ-भाव गम्भीर होता जाता था, किन्तु उन कामों के द्वारा मध्यम श्रेणी की भद्रता की भावना दूर करने मे कोई सहायता नहीं मिलती थी। क्योंकि उस समय हमारी दिमाग़ी प्रवृत्ति मे इस प्रकार की कोई भावना नही थी। किन्तु वाद मे जव मै इस दिशा मे प्रयत्न करने लगा तो एक विशेष प्रकार की नीयत और धारणा के साथ करने लगा जिससे यह पिछला प्रयास भीतरी संस्कार को कम करने मे अधिक सहायक हुआ। फिर भी इस वात मे कोई सन्देह नही कि यदि आश्रम मे आरम्भ से ही शारीरिक परिश्रम का आदर्श और अभ्यास न रहता तो वाद का प्रयास भी सम्भव नही होता। अतः आश्रम के हर एक काम को अपने हाथ से करने के अभ्यास ने हम लोगों को ग्राम-सेवा के योग्य वनाने मे विशेष सहायता दी।

इस तरह साल भर वनारस मे ही वीत गया और मै किसी तरह गाँव मे जाकर काम करने का मौका ढूँढ़ता ही रहा। कई वार धौरहरा जाने का विचार हुआ किन्तु अवसर नहीं मिला। मैं आश्रम में अपने लिए किसी काम की माँग नहीं करता था। जो ही काम मुझे दिया जाता था, उसे ही अपनी शक्ति भर करने की कोशिश

करता रहा। इसलिए मैंने किसी से गाँव भेजे जाने के सम्बन्ध मे बात-चीत नहीं की। और ऐसे अवसर की प्रतीक्षा करने लगा जब आश्रम के लोग स्वयं ही मुझे गाँव मे भेज दे। आज पत्र बहुत बड़ा होगया और अपने ही विषय की कहानी लिखते-लिखते समाप्त हो गया। इसका कुछ ख़्याल न करना। मैंने इसलिए लिखा कि तुम्हे यह बात स्पष्टतः ज्ञात हो जाय कि किस प्रकार मेरी मनोवृत्ति ग्राम-सेवा की ओर मुड़ी। उसके बाद ही मुझे गाँव मे जाने का मौक़ा मिला था; इसकी कहानी अगले पत्र में लिखूंगा।

---

[४]

सेवा की ओर

सेंट्रल जेल, आगरा
१४—६—४१

ग्राम-सेवा की मनोवृत्ति का महत्व

तुम्हारा पत्र मिला। हाँ, मुझको तो अपना ही अनुभव लिखना था। एक शहरी युवक के लिए अपने आप को पहले पहल ग्राम-सेवा वृत्ति का बनाने का अनुभव ही तो प्रधान अनुभव था। मेरी इस कहानी से यह भी मालूम हो जायगा कि गाँव मे रह कर काम करने की वृत्ति उत्पन्न करना भी सेवक के लिए एक विशेष प्रोग्राम है। वह इस प्रोग्राम को पूरा करने के बाद ही कुछ काम शुरू कर सकता है। अस्तु, पिछले पत्र मे मैंने लिखा था कि मै गाँव मे जाकर काम करने का अवसर ढूंढ़ रहा था। इसी बीच मुझे उसकी सुविधा मिल गई। इधर कुछ दिनों से मैंने होमियोपैथिक-चिकित्सा-पद्धति का अध्ययन करना और उसी के अनुसार दवा देना शुरू कर दिया था कि अगर मै गाँव में जाऊँगा तो वह विद्या मदद करेगी। इसकी

सूझ मुझे बनारस के रामकृष्ण मिशन से मिली थी। श्री रामकृष्ण की जीवनी और रामकृष्ण मिशन की सेवा-वृत्ति ने मुझे पहले से ही उस ओर प्रेरित किया था। मै प्रायः रोज सेवाश्रम मे जाता था और वहाँ के सेवकों से वार्तालाप किया करता था। श्री कालिका महाराज मुझको काफी स्नेह की दृष्टि से देखा करते थे। उनसे मै प्रायः कहा करता था कि मै देहात मे ही काम करना चाहता हूँ और देहात मे किस तरह घुसा जा सकता है, इस पर विचार-विनिमय किया करता था। उन्होंने बताया था कि देहातियों को जीतने के लिए उनको दवा देने का काम पहिले हाथ मे लेना चाहिये। वह ईसाइयो के काम की मिसाल भी दिया करते थे। आश्रम मे आये तीन वर्ष हो चुके। सन् १६२३ के सितम्बर का महीना था। अब तक धौरहरा के अलावा फैज़ाबाद ज़िले के अकबरपुर मे चर्खा और खादी का केन्द्र खुल चुका था। श्री अनिल भाई वहाँ के इचार्ज थे। अनिल भाई और राजाराम भाई बनारस आये हुए थे। बढई विभाग भी बन्द हो चुका था। मै खादी की फेरी करता था और मौज से घूमा करता था। आश्रम के बड़े लोग आश्रम-सम्बन्धी कार्य के विषय मे आपस मे वार्तालाप किया करते थे। मुझे इन बातों से बहुत ज्यादा दिलचस्पी नहीं थी किन्तु अनिल भाई से पहले ही से घनिष्ठता थी। मैं एक प्रकार से उन्हे गुरु मानता था। तुमको यह मालूम ही है कि कुछ दिन पहले मै अपने ही विचारों मे अधिक परीशान रहता था। सर्वदा इस चिन्ता मे रहा करता था कि क्या करूँ? उन दिनों अनिल भाई की संगति से मैने हर बात मे निश्चिन्त रहना सीख लिया था और उन्ही के द्वारा यह पाठ भी पढ़ लिया था कि अपने विषय मे आश्रम के किसी व्यक्ति से कुछ न कहूँ। इसलिए अनिल भाई से अलग ही बात-चीत हुआ करती थी। उन्होंने मेरे कमरे मे होमियोपैथिक दवाओं के बक्स को देखकर पूछा कि यह क्या शुरू किया है? मैंने उन्हें बताया कि आज कल

श्री अनिल और राजाराम भाई

यही सीख रहा हूँ। अगर कभी गाँव में जाने का अवसर मिला तो यह काम देगा। इस पर उन्होंने फिर पूछा कि तुम देहात जाना चाहते हो क्या? देहाती जीवन पसन्द आयेगा? वहाँ की तकलीफ सह सकोगे? इत्यादि-इत्यादि। मैने उन्हे उत्तर दिया कि मै नही कह सकता कि सह सकूगा या नही, लेकिन यह मै ज़रूर चाहता हूँ कि मुझे देहात का काम दिया जाय। यहाँ मै तुम्हे एक बात बता देना चाहता हूँ कि आश्रम के भाई लोग शुरू से ही यह समझते थे कि मैं देहात का काम नही कर सकता इसलिए सन् १९२१ ई० मे जब लोगों को देहात मे काम करने के लिए भेजा गया था, तब मै बनारस मे ही रक्खा गया था। बाद मे भी जब जब देहात मे काम करने का समय आया, तब तब लोगों को मेरे विषय मे सन्देह ही रहा। अनिल भाई भी उस समय शायद ऐसा ही सन्देह रखते थे, इसलिए उन्होने निश्चित रूप से कोई उत्तर नहीं दिया और दूसरे ही दिन वे और राजाराम भाई अकबरपुर चले गये। मेरे मन मे आया कि मै उनसे कहूँ कि मुझे भी साथ ले चलें। किन्तु अपने विषय मे किसी से कुछ न कहने के निश्चय के कारण कुछ न कह सका।

मुमकिन है, अनिल भाई ने राजाराम भाई से कुछ सलाह ली हो। थोड़े ही दिन बाद अकबरपुर से मुझको वहाँ बुलाने के लिए राजाराम भाई का पत्र आया। मै तो जाना ही चाहता था, जल्दी से सामान वगैरह बाँध कर रवाना हो गया। अकबरपुर स्टेशन पर अनिल भाई वगैरह आये हुए थे। मै सबके साथ आश्रम पहुँच गया। अकबरपुर तहसील का केन्द्र-स्थान है।

अकबरपुर में

अच्छा सा कस्बा है। गाँव से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था। मैंने बनारस से चलते समय अकबरपुर के विषय मे धौरहरा जैसे किसी गाँव की ही कल्पना की थी। आश्रम का मकान भी अच्छा था; सड़क भी काफी अच्छी थी, इसलिए यहाँ आने पर देहात का अनुभव नहीं हो सका। किन्तु मन मे इतना ही

सोच कर सन्तोष किया कि बनारस के मुकाबिले मे तो देहात ही है।
और कभी न कभी देहात मे आने जाने का मौक़ा तो मिलेगा ही।
यहाँ के बाज़ारो मे जो लोग आते जाते थे, वे भी तो देहाती ही थे,
इसलिए मै वहाँ आने से प्रसन्न ही हुआ। प्रारम्भ मे दो-तीन दिन
तक मुझे कोई काम न रहा, तत्पश्चात् मैंने अनिल भाई से काम के
सम्बन्ध मे बात-चीत की। उन्होंने कहा कि मैंने तुम्हे इसलिए
बुलाया है कि तुम लोगों 'को होमियोपैथिक दवा दिया करो। मै
बनारस से बहुत सी किताबे और काफी दवा लाया था। इस मनोनुकूल
काम से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। और मैंने अपना सारा समय होमियो-
पैथिक अध्ययन एवं बीमारों को दवा देने के काम मे लगा दिया।

'डाक्टरसाहब'

आश्रम के लोगों ने चारों ओर प्रसिद्ध कर दिया कि
आश्रम मे एक डाक्टर साहब आये हैं और लोगों
को दवा देते हैं। इस प्रकार मैं डाक्टर साहब के
नाम से प्रसिद्ध हो गया। कभी कभी देहात के लोग भी आकर दवा
ले जाते थे लेकिन अधिकतर क़स्बे के लोग ही दवा लिया करते थे।
शुरू-शुरू मे मैं होमियोपैथी के पढ़ने मे और दवा देने के काम मे
इतना तल्लीन हो गया कि मुझे और किसी बात की चिन्ता ही न रही।
किन्तु फिर एक या डेढ़ माह के बाद मुझे ख्याल आया कि इस तरह
तो मुझे गाँव का कोई अनुभव नहीं हो रहा है, अतः गाँव मे जाकर
कुछ करने के लिए मै चिन्तित रहने लगा। मै श्री राजाराम भाई के
पीछे पड़ा कि वे मुझे अपने साथ ले चले और गाँव दिखा दे। वे
तैयार हो गये और एक दिन मै चर्ख़ा-प्रचार करने के लिए गाँव को
रवाना हुआ। यद्यपि राजाराम भाई को रोज़-रोज़ गाँव जाने की कोई
रुचि नहीं थी, किन्तु फिर भी मेरे कहने से वे लगभग नित्य ही देहात
चले जाते थे। और आम तौर से उसी गाँव को जाया करते थे, जहाँ
कोई न कोई उनके परिचित होते थे। इस प्रकार मुझे देहात के लोगों
से बात-चीत और गप-शप करने का काफी अवसर मिल जाता था।

धीरे-धीरे मै भी देहात के लोगों के साथ काफी हिल-मिल गया। शुरू-शुरू में तो मुझे काफी परीशानी रही। यहाँ तक कि रास्ता चलते-चलते मै कई जगह रुक जाता था। गाँव में लोगों के दरवाज़ो के सामने अनाज सूखता हुआ देख कर मै उसे आँगन समझ लौट आता था। सोचता था कि प्राइवेट घरो के भीतर से किस तरह चलूँ? इस प्रकार की वहुत सी वातों को लेकर राजाराम भाई दूसरे लोगों के सामने मेरी हँसी उड़ाते थे। किन्तु इस तरह मेरे दिल की वहुत दिनों की इच्छा धीरे-धीरे पूरी होने लगी। और मैने गाव का काम करना शुरू कर दिया। रोज़-रोज़ आश्रम से गाव को जाने और फिर लौट आने के कारण देहात की गन्दगी वगैरह ने मुझे परीशान नही किया और मै विलकुल सहज भाव से काम करने लगा। और मेरे दिमाग से देहात के प्रति अश्रद्धा की भावना धीरे-धीरे हटती चली गई। भद्रता की भावना तो अव क़रीव क़रीव समाप्त हो रही थी। उसको तो मैने वनारस से ही हटाने का प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया था। जो कुछ वाकी थी वह भी देहात मे देहात के लोगों से रोज़-रोज़ के मिलने जुलने से समाप्त हो गई। इस वात से मुझे वहुत संतोष हुआ कि अव मै ग्राम-सेवा के लिए योग्य वनता जा रहा हूँ। आज इतना ही लिख कर पत्र समाप्त करता हूँ। तुम्हारा काम किस प्रकार चल रहा है? जुलाई में ट्रेनिंग सेंटर खोलने वाली थी उसका क्या हुआ? सवको मेरा नमस्कार कहना।

---

[५]

ग्राम-वासियों से सम्पर्क

सेंट्रल जेल, आगरा

१७—६—४१

पिछले पत्र मे मैने तुम्हें वताया था कि किस तरह मैने देहात में काम करने का श्रीगणेश किया। देहात के लोगों के साथ उठने-

बैठने से उनके प्रति मेरी मानसिक अश्रद्धा दूर होती गई, यह भी मैं लिख ही चुका हूँ। रहन-सहन और पोशाक आदि के विषय मे तो मैने बनारस से ही काफी लापरवाही शुरू कर दी थी। लेकिन दिमाग़ मे अपने को आम जनता से ऊँचा ही समझता था और इसी भावना के कारण अभी तक देहाती लोगों के साथ मिलना-जुलना उतना स्वाभाविक नही हो पाया था। इस प्रकार कहने के लिए तो मै क़रीब-क़रीब रोज़ ही देहातियों के बीच जाया करता था। लेकिन जैसा कि मै पहले लिख चुका हूँ उन्ही देहातियो के घर जाता था जिनसे राजाराम भाई से जान-पहचान थी और जो देहातियो की दृष्टि मे उच्च श्रेणी के लोग गिने जाते थे। इनसे मिलने मे बराबरी का व्यवहार रखने की स्वाभाविकता की रक्षा करना मेरे लिए कठिन होता था। जेल आने के बाद शुरू-शुरू मे मैने तुमको लिखा था कि गाव के भीतर रचनात्मक कार्य करने के लिए पढ़े-लिखे लोग नही तैयार होते हैं। और यदि तैयार भी होते हैं तो गाव वालों के समक्ष इस प्रकार का ढग और रवैया रखते हैं कि गाव वाले उनको तथा उनकी बातो को सहज रूप से ग्रहण नही करते। प्रतिफल यह होता है कि वे ग्राम-सेवा की इच्छा रखते हुए गाँव वालों से अप्रसन्न हो कर या निराश हो कर लौट आते हैं। मेरी तरह का एक नौजवान, जिसने निश्चय कर लिया था कि अपने जीवन मे देश और गॉव का ही काम करेगे और दो-तीन वर्ष से अपने को इसी के अनुरूप बनाने की कोशिश भी कर रहा था और जिसके लिए आश्रम का वातावरण और उसकी शिक्षा भी इस कोशिश के अनुकूल ही थी, अब गाँव के उच्च श्रेणी के लोगों के साथ मिलने मे भी कठिनता महसूस करता था, तो शहर के शिक्षित समाज के लिए, एकाएक गाँव में जाकर गाँव के लोगों को अपनाना कितना कठिन है, यह भली-भाँति समझ सकती हो। यही कारण है कि मै गांव के काम करने वालों के लिए अपनी श्रेणी-विशेषता का दूर करना सबसे अधिक

आवश्यक समझता हूँ। क्योंकि ऐसे लोग देहात मे जाकर उन बातों को हटवाने की कोशिश करने लगते है, जो उन्हें अपनी श्रेणी और अपने समाज के अनुकूल न होने से बुरी लगती हैं या जिनके कारण उन्हे स्वयं कष्ट अनुभव होता है। बरसात मे उन्हे गाँव के भीतर कीचड़ मे घूमना कष्टप्रद होता है; अतएव वे देहात की गलियो मे ईट बिछवा देना ग्राम-सुधार कार्य का एक आवश्यक अग समझते हैं। आर्थिक सुविधाओ मे जन्म लेने और शिक्षा पाने के कारण उन्हे क्या पता कि देहात के जन-समूह के पास इतनी ईंटे जुटाने का धन और साधन है या नही ? अगर वे कही बाहर से ईट माँग कर लायेगे तो उनके पास सोचने की इतनी शक्ति नही है कि उन ईटो को साफ और दुरुस्त रखने के लिए उन्हे क्या करना चाहिये। देहात के घरों मे बैठने से उनका दम घुटता है, इसलिए वे उनमें खिड़की की व्यवस्था कराने की कोशिश करते हैं। वे देहात मे जाते ही वहाँ के प्रचलित शादी, विवाह तथा अन्य अनुष्ठानो के रिवाज के विरुद्ध प्रचार एवं विवाद करने लगते हैं जिसे गाँव वाले सहन नही कर पाते। गाँव के भीतर जाकर हमें गाँवो के उसी बिन्दु पर उँगली रखनी है जिस बिन्दु पर गाँव वालों को सबसे अधिक कष्ट है। हमे सबसे पहले इसी का समाधान खोज निकालना है। मैने कई वर्ष देहात मे रह कर अनुभव किया है कि देहाती जनता के भीतर स्वाभिमान की भावना इतनी अधिक भरी हुई है कि वे बाहरी लोगों से हर प्रकार की बाते तो करेंगे, किन्तु जिन बातों का उन्हें कष्ट होगा, उन्हे हर प्रकार से गुप्त रखने का प्रयत्न करेंगे। वे यह सहन नही कर सकते कि कोई व्यक्ति उनके कष्टों को जान कर उन्हें किसी प्रकार से छोटा समझ ले। मुझे यह भी देखने मे आया है कि गाँवों में नीच कही जाने वाली जातियो के

उच्चता का अभिमान दूर रखने की आवश्यकता

केन्द्रबिन्दु को स्पर्श करो

ग्रामवासियों का स्वाभिमान

लोग अगर गाँव मे किसी भद्र पुरुष को देखते हैं तो उनसे अपनी ग़रीबी के साधारण दुखो का वयान करते हैं, इधर-उधर के छोटे-मोटे कष्टों को सुनाकर कुछ आर्थिक सुविधा भी प्राप्त कर लेते हैं किन्तु जिन वातो का उन्हे खास कष्ट है और जिनकी समस्या उनके सामने रात-दिन रहती हे उनका जिक्र तक नही करते। गाँव की दशा पूर्ण रूप से न जानने वालो के लिए ग्रामसेवा का काम कठिन हो जाता है इसलिए ग्राम-सेवक को सवसे पहले ग्रामवासियों को तुच्छ समझने की भावना का मूलोच्छेदन कर उनके साथ ऐसे सहज और स्वाभाविक ढंग से मिलना होगा कि वे उन्हे अपने ही कुटुम्व का एक व्यक्ति समझने लगे। यदि हम ऐसा नही करते तो उनकी समस्याओं को समझ ही नही सकते। सेवा और सुधार तो वहुत दूर की वात है।

अतएव मुझ-जैसे भद्र की भावना से पूर्ण और ग्रामीण-समाज की सम्पूर्ण समस्याओं से अनभिज्ञ व्यक्ति के लिए उनके साथ काफी घनिष्ठता का व्यवहार हो जाने पर भी उनसे एक हो जाने की भावना लाना सम्भव न हो सका। मै देहात में जाता था, उन्हे घर-द्वार साफ रखने की वात वताता था; और खास तौर से चर्खा चलाने के सम्वन्ध मे उनसे वहस किया करता था। किन्तु वे अधिकतर यही उत्तर देते थे कि हमारे घर की औरतों को चर्खा चलाने के लिए अवकाश ही नहीं मिल सकता।

ब्राह्मण और क्षत्रिय घरों की परदा पद्धति के कारण हम सीधे स्त्रियों से किसी प्रकार की वात नहीं कर सकते थे; किन्तु कुर्मी आदि किसानों मे स्त्रियों से भी वातचीत कर लेता था।

ग्रामीण नारी की सहज चेतना

इस प्रकार पुरुष और स्त्री दोनों वर्गों में काम करते-करते मैंने अनुभव किया कि ग्रामीण अर्थ-शास्त्र से सम्वन्धित वातों को गांव की स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट और शीघ्र समझ जाती हैं; पुरुषों से ज्ञान-

चीत कर के मैने यह देखा कि ये बाते वे जल्दी नहीं समझ पाते, उस वक्त मेरे दिमाग मे आया कि अगर हम देहात की स्त्रियो में काम करें तो गाँधी जी के प्रोग्राम को बहुत शीघ्र पूरा कर सकते हैं। उन दिनों मै इस बात का अनुमान न कर सका कि स्त्रियाँ हमारी बाते पुरुषों की अपेक्षा जल्दी समझ लेती हैं। इसका कारण क्या है, उस समय इतना सोचने की योग्यता भी नही थी। परन्तु कालान्तर में देहाती क्षेत्र मे लम्बी अवधि तक काम करते-करते मुझे इसका कुछ आभास मिलने लगा। मै धीरे-धीरे यह समझने लगा कि पुरुष जाति के लोग कभी न कभी किसी न किसी काम से शहर मे आया जाया करते हैं। और इस प्रकार शहरी और पश्चिमी सभ्यता के लोगो से उनका संसर्ग हुआ करता है जिसके परिणाम-स्वरूप वे शहरी तथा पश्चिमी सभ्यता की निकृष्ट बातों को अधूरे और विकृत रूप मे ग्रहण करते रहते हैं। नतीजा यह होता है कि उनके हृदय मे भारतीयता के स्थान पर एक निम्न प्रकार की शहरी सभ्यता टूटा-फूटा स्वरूप धारण कर लेती है। इधर हमारा प्रचार गाँधी जी के सिद्धान्त के अनुसार ही हुआ करता है जो ग्रामीण सभ्यता के बिल्कुल अनुकूल होता है। इसी से गाँव की स्त्रियाँ उसे ठीक-ठीक समझ लेती हैं क्योंकि वे नगर-निवासियो के अधिक संसर्ग मे नहीं आती। सदियों की ग़रीबी की मार पड़ने पर भी उनके अन्दर जो कुछ सभ्यता बाकी रह गई है वह प्राचीन भारत की ग्रामीण सभ्यता का अवशेष मात्र ही है और गाँधी जी उसी चीज़ का विकास करना चाहते हैं इसलिए गाँव की स्त्रियों की आत्मा का स्वर गाँधी जी के सिद्धान्त के साथ ठीक-ठीक मेल खा जाता है। यही कारण है कि वे हमारी बातों को जल्दी ग्रहण कर लेती हैं।

ग्रामीण सभ्यता का प्रकाश उनमें सुरक्षित है

इसी प्रकार सोचते-विचारते और काम करते हुए महीनो पर महीने बीतते गये और मैं देहात के विषय मे अधिक अध्ययन करने लगा,

और साथ ही अपने को देहाती जीवन के योग्य बनाने की प्रयत्न भी करता रहा। कुछ दिनों के वाद अकवरपुर से १२ मील दूर टाण्डा ग्राम में आश्रम का सूत केन्द्र खोला गया। शुरू-शुरू मे आश्रम के अन्य भाई लोग काम करने लगे लेकिन और कई केन्द्रों के खुल जाने से काम करने वालों की कमी पड़ने लगी। उस समय मेरे ऊपर कोई खास ज़िम्मेदारी का काम नही था। प्रचारार्थ देहातों मे घूमा करता था और आश्रम मे बैठ कर लोगो को दवा दिया करता था। इस प्रकार एक तरह से मुझे खाली देख कर लोगों ने मुझे टाण्डा भेज दिया और मै वहाँ किराये का एक छोटा-सा मकान लेकर रहने लगा। टाण्डा मे प्रति सप्ताह एक दिन सूत की अदल-बदल हुआ करती थी और बाकी समय देहात मे प्रचार का काम होता था। टाण्डा में रहते समय मै ग्रामीण जनता से अधिक घनिष्टता प्राप्त करने और उनको अधिक निकट से अध्ययन करने की कोशिश करता रहा। इसकी कहानी फिर कभी लिखूगा। आज पत्र लम्बा हो गया; यही समाप्त करता हूँ।

टाँडा में

---

[६]

भेदभाव और मातृहृदय

सेंट्रल जेल, आगरा
२१—६—४१

सन् १६२३ के नवम्बर का महीना था; जाड़े का मौसम। इसी समय मै टाण्डा पहुँचा। वहाँ जाकर शुरू-शुरू मे मुझे अपने रहने और और अपने खाने-पीने का प्रवन्ध करने मे कठिनाई प्रतीत हुई। यही सोचने लगा कि क्या प्रवन्ध करूँ? अकवरपुर से भी कभी-कभी टाण्डा का वाज़ार किया करता था और शुरू-शुरू मे चर्खा चलाने के कारण पहिले जव सूत वहुत मोटा होता था तो यहाँ उसकी दरी भी वनवाता था। उस दिन जव मैं वहाँ पहुँचा तो एक दरी बुनने वाला

लड़का मेरे साथ रह कर दिन भर मेरे कमरे की सफाई वगैरा कराता रहा। संध्या तक सफाई पूरी हो जाने पर मैने स्नान किया और अपने खाने-पीने की व्यवस्था सोचने लगा। लड़के से पूछा कि यहाँ कौन-कौन सी वस्तुएँ कहाँ-कहाँ मिलती हैं। कोई होटल है कि नहीं ? उसने बताया कि पूरी-मिठाई के अतिरिक्त खाने-पीने की कोई और चीज़ यहाँ नही मिल सकती। मैने उससे फिर पूछा कि क्या तुम अपने घर से रोटी बनवा कर दे सकते हो किन्तु ध्यान रखना कि मै किसी का जूठा नहीं खाता इसलिए खाना अलग से सफाई से बनवाकर दोगे तभी मै खा सकूँगा। वह मेरी बाते सुन कर आश्चर्य्य मे डूब-सा गया और कहने लगा कि आप हिन्दू होकर मेरे घर की रोटी कैसे खायँगे ? मैने उसे समझाना प्रारम्भ किया और कहा कि हिन्दू और मुसलमान कोई अलग-अलग प्राणी नहीं हैं; दोनों ही मनुष्य हैं। यदि दोनों का खाना-पीना एक में हो जाय तो मनुष्यता मे कोई अन्तर नही आयेगा। आज दोनो के खान-पान एक दूसरे से इसलिए अलग-अलग हैं कि दोनो ने अपने-अपने रस्म-रिवाज अलग-अलग कर रक्खे हैं और एक दूसरे से घृणा करते हैं। हाँ, दोनो मे थोड़ा अन्तर अवश्य है। वह यह कि तुम लोग जूठ से परहेज़ नही करते; लोटा गिलास साफ करके नही रखते किन्तु हम लोग इसका पर्याप्त ध्यान रखते हैं। यही दोनो मे मौलिक विभेद है और इसीलिए हमारा तुम्हारा खाना-पीना एक में नहीं होता अन्यथा तुम्हारे छूने मात्र से कौन-सी हानि हो सकती है। मेरी ये बाते सुन कर वह बहुत प्रसन्न हुआ। तत्पश्चात् वह तो अपने घर चला गया और मैं टहलने निकल गया। मै घूम कर लौटा ही था कि वह मुझे बुलाने का आमंत्रण ले कर आ पहुँचा। वहाँ पहुँच कर देखा कि उसका घर क्या था ? टूटा-फूटा, छोटा-सा घास-फूस का झोंपड़ा जो मिट्टी की तीन-चार नीची दीवारों पर रक्खा हुआ था। देखने से प्रतीत होता था कि दो चार दिन मे धराशायी हो जायगा।

मुसलमान माता का आतिथ्य

उसी मुहल्ले मे और दरीवालो का भी घर था लेकिन उनके घर कुछ अच्छे थे। उसके परिवार मे एक छोटी वहिन थी और दूसरी माँ थी। मैने उससे कहा कि मै खाना पकाने का स्थान देखना चाहता हूँ। वह मुझे भीतर ले गया। घर मे चारो ओर गन्दगी फैली हुई थी, कपड़े और बिस्तरे सभी गन्दे थे लेकिन खाना पकाने का स्थान लिपा-पुता और स्वच्छ था। वरतन भी साफ दिखाई दिये। मुझे देखते ही उसकी माँ, जो रोटी बना रही थी, हँस कर कहने लगी—"का भइया तू सब समझत हौ कि हमरे सब विल्कुल वाहियात गन्दगी कै खाना खाइत है। भइया हमरे सब भी मनई होई, हमहूँ नीक वेकार समझित है।" इत्यादि। उस स्थान पर एक मचिया पड़ी थी। मै उसी पर बैठ कर उसकी माँ से वाते करने लगा। वह लड़का भी वही चौखट पर बैठ गया। मैने यह देख लिया था कि खाना बनाने का स्थान लगभग अभी अभी थोड़े ही पहले लीपा गया था। और लोटा तथा थाली आदि भी तत्काल साफ किये हुए से प्रतीत होते थे। आँगन की सहन मे भी तत्काल ही झाड़ू लगाया गया था। मुझे यह समझने मे कोई असुविधा नही हुई कि यह सब स्वच्छता मेरी और उस लड़के के वार्तालाप तथा मेरे यहाँ आने के कारण ही सम्भव हो सकी है। साथ ही नज़ीर की माँ का सफाई देना भी इसके लिए एक बहुत वड़े प्रमाण की वात थी। मैने बैठे ही बैठे कहा क्यो माई मुझसे झूठ वोलने से क्या लाभ? मैने अच्छी प्रकार समझ लिया कि यह सव तुमने अपने वेटे के कहने पर ही किया है। पहले तो वह इन्कार करती रही किन्तु वाद मे उसने स्वीकार किया कि मेरे ही कारण उसने और उसकी लड़की ने लगभग एक घटे तक परिश्रम करके सफाई की है। उसने यह भी कहा कि मुझे तो अव तक विश्वास ही नहीं हुआ था कि आप सचमुच मेरे यहा खाना खायेंगे। तत्पश्चात् उसने रोटियाँ बनाई और मुझको प्रेम से खिलाना शुरू किया। इस खिलाने मे मुझे एक अपूर्व मातृ भाव का आभास मिल रहा था। भारतीय स्त्रियो के हृदय मे

मातृ भाव ने इस प्रकार घर कर लिया है कि उन्हे दूसरों के बच्चे भी अपने ही बच्चे जैसे प्रतीत होते हैं। संसार के अन्य किसी देश मे शायद ही इस प्रकार की भावना मिल सकेगी।

कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दुओ और मुसलमानों में मेल नहीं हो सकता। प्रत्येक की सस्कृति, भावना और प्रणाली भिन्न-भिन्न है और वे एक दूसरे से संस्कारतः घृणा करते हैं। वे उस समय एक वृद्धा मुसलमान स्त्री के द्वारा एक हिन्दू नौजवान को अपने बच्चे के समान प्रेम करते देख सकते थे। यही नही, यदि वे भारत के सैकड़ो गावों मे लाखो-करोड़ो हिन्दू और मुसलमान भारतीय रमणियो को जाकर देखें तो उन्हे उन दोनों ही की भावना मे एक स्वर, एक ताल और एक ही लय देखने को मिलेगी। मैने तुम्हारे पत्र मे एक बार पहले भी लिखा था कि भारतीय संस्कृति का अवशेष तो हमारी देहात की स्त्रियो मे ही मिलेगा। हिन्दू हो या मुसलमान, ब्राह्मण हो अथवा हरिजन सबकी भाषा, संस्कार, रंग-रूप, भावना आदि सब एक ही प्रकार के हैं। मै

भारतीय हृदय की एकता

खाना भो खा रहा था और उस माता से तरह तरह की बाते भी हो रही थीं। उसने स्वच्छता के विषय मे कहा "भइया तुहरे अस मनई हमरे घर मे खाय यह तो हम आज तक नाही देखेन। हमें तो भइया तुहरे सब जस कहिहौ वस करवै। हमरे ताई पाहुन ही तो सब कुछ है। उनके ताईं त हम सब कुछ करे के तैयार हईं। हमारे घर रोज खाव त रोज हम साफ करी।" मेरे पास बरतन आदि न था इससे दो एक रोज उसी के घर खाना खाने के लिए कह दिया और आश्रम को लौट आया। वह लड़का मेरे साथ-साथ आश्रम तक आया। मैंने उससे कहा कि जब तक हमारा इतजाम नही होता है तब तक तुम्हारे यहां खाना खायँगे और तुमको कुछ पैसा दे दिया करेंगे। लेकिन दूसरे ही दिन आश्रम के एक मित्र और सहायक श्री जानकीप्रसाद जी, जो कि टाण्डा के खास कांग्रेस कार्यकर्ता थे, मुझको अपने घर पकड़ ले

गये। मैने उस लड़के से कह दिया कि तुम्हारे यहाँ अब मै खाना खाने नहीं जाऊँगा। उसके दूसरे दिन बरतन आदि का प्रबंध करने के लिए मै अकबरपुर चला गया।

अकबरपुर पहुँच कर मैने अपना टाण्डा का दो तीन दिन का अनुभव भी बयान किया। दरीवाले के घर खाने की बात सुन कर आश्रम के भाई लोग बहुत नाराज़ हुए और कहने लगे कि हम ऐसी हरकतो से आश्रम की मर्यादा नष्ट कर रहे हैं। मुझसे उनसे बहुत वाद-विवाद हुआ किन्तु मै उनसे सहमत न हो सका। उन लोगो के विवाद मे दो बातो की झलक दिखाई देती थी, एक तो वही भद्रता की मनोवृत्ति जिसका जिक्र मै पहले तुमसे कर चुका हूँ और दूसरी मुसलमानों के घर खाने के विरुद्ध उनका साधारण संस्कार। मैं इन दोनो ही मनोवृत्तियों के विरुद्ध था, छुआछूत का संस्कार तो मुझमे था ही नहीं क्योंकि आज मे दो तीन पुश्त पहले ही यह मेरे पूर्व पुरुषों के परिवार से ही समाप्त हो चुका था तथा श्रेणी विभेद की मनोवृत्ति भी दो वर्ष के लगातार प्रयत्न से क़रीब-क़रीब समाप्त हो चुकी थी। मै अपने हृदय मे सोचने लगा कि अगर आश्रम-जैसी पवित्र संस्था मे छोटे-बड़े की मनोवृत्ति कायम रही तो देश-सेवा तथा ग्रामसेवा कृत्रिम हो जायगी। इसलिए मुझे कुछ कष्ट भी होने लगा किन्तु बड़ों की बातो मे पड़ने का मेरा अभ्यास नही था इसलिए मैने अधिक विवाद नही किया। किन्तु यह बात दिल मे चुभती ही रही और भद्र श्रेणी के मध्यमवर्गीय लोगो के विरुद्ध मुझ मे भावनाओ का बनना शुरू हो गया। एक समय था जब मै स्वय छोटे लोगों को अश्रद्धा की दृष्टि से देखता था किन्तु आज उन्हीं छोटों के प्रति, जिनको चमक-दमक की सभ्यता प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला और जो सफेदपोश बने रहने के साधन से हीन हैं, अश्रद्धापूर्ण बाते सुन कर दिल को तकलीफ होने लगी। यह परिवर्तन मुझमे तभी सम्भव हुआ जब मैने गरीब और निम्न श्रेणी के लोगों को जानने की कोशिश की। वस्तुतः आज श्रेणी श्रेणी में,

झगड़ों के मूल कारण — जाति जाति मे, धर्म धर्म में जो झगड़ा चल रहा है उसका एक प्रधान कारण यही है कि आज एक दूसरे को जानने या समझने को कोशिश नहीं करता। अगर इतना ही हो सके तो संसार के बहुत से झगड़े समाप्त हो जायँ।

अकबरपुर से बर्तन आदि सामान लेकर और आगामी काम के सम्बन्ध में कुछ हिदायतें पाकर दो ही तीन रोज के बाद मैं टाण्डा लौट आया और वहीं पर स्थायी रूप से बस गया। गाँव मे रहने और उसमें काम करने का अवसर मुझे इसी समय से मिलने लगा। आज यहीं तक लिख कर पत्र समाप्त करता हूँ। टाण्डा के देहातों मे घूमने से मुझे क्या क्या मालूम हुआ, दूसरे पत्र में लिखूँगा।

---

[७]

देहातियों के बीच

२३—६—४१

टाण्डा मे एक दिन सूत का बाज़ार करना पड़ता था, शेष छः दिवसों मे देहात जाने का अवसर मिल जाता था। प्रारम्भ में मैं सवेरे ही देहात चला जाता था और शाम होते-होते वापस आ जाता था, मेरा काम केवल चर्खे का प्रचार करना और रुई धुनना सिखाना था किन्तु मैं उनसे देहात के लोगों के विषय मे जानने के लिए तरह-तरह का वार्तालाप किया करता था। जैसा कि मैंने तुम्हे अपने पहले पत्र मे लिखा है, जब अकबरपुर के देहातों मे जाता था तो केवल उच्चवर्गीय लोगों को ही मिल पाता था परन्तु टाण्डा मे विशेष कर किसान कुर्मी जातियों के साथ ही मिलता जुलता था क्योंकि मैंने

यह समझ लिया था कि उच्च श्रेणी के लोग मेरी वातो को समझने को कोशिश ही नही करते। किसानों के घर मे एक प्रकार से स्त्रियाँ ही मालिकिन समझी जाती हैं। वही घर का और अनाज का सारा प्रवन्ध करती हैं। उनसे मिलने-जुलने से मुझे मालूम होता था कि किसान स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक योग्य है। गाँधी जी के आर्थिक और सामाजिक प्रोग्राम को वे अधिक समझ सकती हैं जिसका उल्लेख मैंने पहले भा किया है। इन्ही सब कारणो से मे अधिकतर स्त्रियों मे ही अपना प्रचार किया करता था। भारत के उद्धार के लिए सवसे पहले स्त्रियो का उद्धार होना अत्यावश्यक है। क्योंकि घर, गृहस्थी, समाज और भावी सन्तान का प्रवन्ध उन्ही के अधीन है। वे जिस ओर क़दम वढावेगी, उसी ओर मुल्क को जाना पड़ेगा। इस प्रकार की धारणा उसी समय से मेरे अन्दर बैठ गई थी। और वह आज भी वैसी की वैसी ही क़ायम है। प्रत्युत ग्राम-सुधार के कार्यों मे जितना ही आगे वढ़ता जाता हूँ, उतना ही इस वात का महत्व, मेरी समझ से, वढ़ता जाता है।

पिछले दिनों मैंने स्त्रियों के लिए एक कैम्प खोला था और आज-कल भी स्त्रियो के काम पर ज़ोर देता रहता हूँ। यह सव मेरे लिए नई कल्पनाएँ नहीं हैं। जव से मैं देहाती किसानों के सम्पर्क मे आया तभी से मेरे हृदय मे इस वात ने स्थान वना लिया था। इस काम को मैं पहले भी कर सकता था किन्तु अव तक मुझे इसका अवसर ही न मिल सका था कि मैं इस दिशा मे प्रयत्न करूँ। प्रतिदिन देहात मे जाने और आने मे अधिक समय खर्च हो जाता था, इस-लिए कुछ समय पश्चात् मै गाँवों मे ही टिकने लगा और इस प्रकार अव ग्रामीण किसानों के घर ग्रामीण तरीके से रहने लग गया। धौरहरा मे मुझे ग्रामीणों के गन्दे आँगन मे या मवेशीखाने के पास के गन्दे चौपाल मे मैली चारपाई के ऊपर गन्दी तोशक और गन्दी कथरी पर वैठने मे घृणा होती थी, उनको देख कर ही नाक भौ सिकोड़ता था।

आज दो साल के पश्चात् उसी वायुमंडल मे उन्हीं वस्तुओं को सहज और स्वाभाविक तौर से इस्तेमाल करने लगा। कभी-कभी ग्रामीण लोग कह उठते थे—"डाक्टर साहब तो बिल्कुल देहाती मनई होय गये"। इससे सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि वे अब मेरे साथ निस्संकोच उठने-बैठने लगे और अपनी बाते बताने मे किसी प्रकार की झिझक न रखते हुए मुझे भी अपने परिवार का एक सदस्य समझने लगे।

उन दिनों जाड़े का महीना था; देहाती लोग संध्या के समय एक स्थान पर आग जला कर उसके चारों ओर बैठते थे और बात बात मे गप लड़ाते थे। इस प्रकार की आग को अवध के ग्रामीण "तप्ता" कहते हैं। मै रात की उस बैठक को 'तप्ता-समाज' की बैठक कहा करता था। लोग इस शब्द को बहुत पसन्द करते थे। और थोड़े ही दिनो में यह शब्द खूब प्रचलित हो गया।

देहात का क्लब

देहात का 'तप्ता-समाज' देहात की पार्लियामेण्ट, अख़बार, मंत्रणा-सभा इत्यादि दुनिया भर की सभा-समितियो का एक समन्वित रूप है। संसार मे ऐसा कोई विषय नही कि जिसपर इस सभा मे विचार-विनिमय न होता हो; गम्भीर आध्यात्मिक विषय से लेकर बच्चों के छोटे मोटे पारस्परिक झगड़ों तथा उसके सम्बन्ध मे अन्तिम निर्णय आदि सभी प्रकार के विचार हुआ करते थे। मै भी अपने सिर पर एक गमछा बाँध कर उस सभा मे शामिल हो जाया करता था और उनकी सभी बातों मे दिलचस्पी लिया करता था और साथ देता था। 'तप्ता समाज' के द्वारा देहात को जानने का और अपनी बातों को ग्रामीण जनता के समक्ष रखने का जितना मौका मिला उतना आज तक किसी भी प्रकार से न मिल सका।

अवध के किसानों की अवस्था इस छोटे से पत्र में क्या वर्णन करूँ? इस विषय मे बहुत लिख चुका और कह चुका हूँ। तो पुनः उसी को नये सिरे से क्या दुहराऊँ? 'हरी', बेगारी, भूसा, और बेदख़ली

की मार तो इन पर रोज लगी ही रहती है। इसके अतिरिक्त भूत-भवानी और महामारी आदि का बोझ निरन्तर सिर पर लदा रहता है। इस कारण इनकी ज़िन्दगी में किसी प्रकार का रस नही। हम पढ़े-लिखे शहर के रहने वाले प्रायः कहा करते हैं कि गाँव के लोग इतने गन्दे और मूर्ख हैं कि उनमे काम करने से ही क्या लाभ?

लेकिन मैने देहात मे उनके साथ रह कर देखा कि जीवित रहने की समस्या इतनी कठिन है कि और बातों पर ध्यान देने की शक्ति ही नही रह जाती। जीवन मे जब रस ही नहीं तो अकल्पनीय गरीबी स्वच्छता, सभ्यता और सुन्दरता आदि की गुंजाइश ही कहाँ? फिर भी जो सभ्यता, धार्मिकता और अतिथि-सत्कार आदि बाते ग्रामीण जनता में पाई जाती हैं उन्हें अलौकिक समझना चाहिए।

उनकी गरीबी का वर्णन करना मेरे लिए एक प्रकार से असम्भव ही है। मै समझता हूँ कि बड़े बड़े लेखक भी उस गरीबी का यथा-तथ्य वर्णन करने मे असमर्थ ही रहेगे। क्योंकि उन्होंने कभी उस दयनीय परिस्थिति का भार नही उठाया और न तो स्वेच्छा से ही कभी उस प्रकार का जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न किया।

बेचारे किसानों के कितने ही परिवार महीनों तक आम की गुठली की रोटी खाकर गुजर करते हैं। मैंने देखा है कि इतने पर भी उन्हे ऐसे दिन व्यतीत करने पड़ते हैं जब कि कुछ भी खाने को नहीं मिलता। कितने ही लोगो को खलिहान का गोबर धोकर अनाज निकालते मैने स्वयं देखा है। देहात के कितने ही आदमियो के शरीर पर वस्त्र नही होता। जाड़े के दिनो मे सैकड़ो परिवार चारों ओर दीवारो से घिरे हुए कमरो में आग ताप कर रात काट देते हैं। हम उनकी गरीबी का अन्दाजा क्या लगा सकते हैं? जब अनुमान ही नहीं हो सकता तो बयान किस तरह हो सकता है। तुम कहोगी कि उनकी असुविधाओं और कष्टो का अनुमान तो उनको देख कर

ही किया जा सकता है। लेकिन वात ऐसी नहीं है। सम्भव है कि हम और तुम उनके लिए जिन वातो का कष्ट समझते हो उनसे उनको कतई कष्ट न पहुँचता हो। इस विषय मे मै पहले भी लिख चुका हूँ कि बहुत सम्भव है कि जिन वस्तुओ के अभाव से हमे कष्ट होता है उन्हीं वस्तुओ का अभाव गाव वालो मे देख हम उन्हें दुखी समझते हो किन्तु उस समय हम यह भूल जाते हैं कि बहुत सी वस्तुओ के आदी बन जाने से उनका अभाव हमे कष्टकर होता है किन्तु गाव वालों को उनसे कोई भी तकलीफ नहीं होती क्योकि वे उन वस्तुओ के आदी नही होते। हम देहात की गरीब जनता के कष्टों को ठीक-ठीक महसूस नही कर सकते हैं। यह वात मुझे गाँव के एक बूढ़े चमार ने ही सुझाई थी। उसकी भी एक छोटी सी कहानी है। उस कहानी का भी यहा जिक्र कर देना अच्छा होगा।

एक दिन टाण्डा के वाज़ार मे मैं रुई से सूत वदल रहा था। सूत वदलने का मैने यह नियम वना दिया था कि एक गांव की रहने वाली वहिनो का सूत लेना समाप्त करके ही दूसरे गावो की वहिनों का सूत लिया करूँगा। टाण्डा से पाच मील दूर के रामपुर गाव की सव की सव वहिने अपना सूत वदलने के वाद भी एक तरफ जा कर बैठी रहीं, सदा की तरह सूत वदल कर घर नही गई। उस समय संध्या का पूरा प्रसार हो चुका था। मैने उनसे बैठे रहने का कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि "वावा सवके गाव मे जाते हैं, हमरे गाव मे कव्वो नहीं गये, आज हमरे सव यही सोचे हैं कि वावा को लिवाय चलें।" इस स्थान की कत्तिनें आश्रम के सभी लोगों को वावा कहा करती थीं जिसका अर्थ था—गाधी वावा का चेला। उनकी वातें सुन कर मैने उत्तर दिया कि मैं किसी समय तुम लोगों के गाव में आ जाऊँगा। इस समय वहुत देर हो गई है। अभी रुई और सूत वगैरह चोरियों मे वन्द करने हैं, खाना वनाना है इसलिए काफी विलम्ब हो

रामपुर की वहिनों का हठ

जायगा। तुम लोग कब तक प्रतीक्षा करोगी ? मेरी बातों को सुनकर वे सब की सब एक साथ हँस पड़ीं और कहने लगीं—"का हमरे सब इतना नीवर हईं कि दुइ कौर खाये के नाहीं दे सकती ? हम तो बिना लिवाये नाही-चलब।" अतएव मुझे उसी समय उनके साथ रामपुर गाँव के लिए रवाना हो जाना पड़ा। मै रास्ते मे उनके साथ बात-चीत करता जा रहा था और वे सब बड़ी घनिष्टता के साथ घर और गृहस्थी को बाते कर रही थीं। जब हम रामपुर पहुँचे तो काफी अँधेरा हो चुका था। वहाँ पहुँचने पर मुझे प्रतीत हुआ कि गाँव वालों ने मुझे बुलाने के लिए पहले ही मे निश्चय कर लिया था, क्योंकि उनके रंग-ढंग से यह स्पष्ट प्रकट हो रहा था कि वे लोग मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मुझे एक सम्पन्न किसान के बरामदे मे बैठा कर मेरे साथ की बहिने अपने-अपने घर चली गईं। थोड़ी ही देर मे सम्पूर्ण गाँव मे मेरे आने की चर्चा फैल गई और लोग एक एक करके मेरे पास इकट्ठा होने लगे। रात मे बहुत देर तक बातचीत होती रही और बाद को मैं खाना खा कर सो रहा। मुझे रामपुर गाव मे तीन-चार दिन तक रुक जाना पड़ा। नित्य दोपहर को गाव की बहिने इकट्ठी होती थी। मै उन्हे गाधी बाबा, चर्खा तथा भारतवर्ष की प्राचीन सम्पन्नता के विषय मे बहुत सी बाते बताता और समझाता था। एक बात से मुझे आश्चर्य होता था कि गाव की बहिने बिना, कुछ पढे-लिखे भी इस बात से परिचित थीं कि प्राचीन काल में लोग काफी समृद्धिशाली थे। और अब ग़रीब हो गये हैं। वे यह भी जानती थीं कि इसका प्रधान कारण उनकी काहिली और आपस की फूट थी। वे कहा करती थीं "मेहरारू येह साइत शौकीन होइ गयी हैं तो गृहस्थी मे बरक्कत कहाँ से होई। तब कै मेहरारू जवन जवन टहल करत रही तब्बै न दूध घी खात रही।"

'मेहरारू शौकीन होइ गई हैं'

मै रामपुर मे तीन दिन तक रहा और इस बीच गांव के हर घर,

आँगन और भीतरी भागो मे भी घूम-घूम कर देखा करता था और शाम को अलाव ('तप्ता') के पास बैठ कर किसानों से बात-चीत किया करता था। मै उनसे प्रश्न करने को कहता था और उनके प्रश्न करने पर उत्तर देता था। एक दिन लोगों ने गाँधी जी के विषय में जानने की इच्छा प्रकट की और मैने उन्हे बताना शुरू किया और कहा कि गाँधी जी देहात के ग़रीब लोगों के कष्टों को भलीभाँति समझते हैं। इसीलिए वे केवल उतने ही कपड़े पहनते हैं जितने देहात के लोगो को मिल सकते हैं। ग़रीबो की तरह ६ पैसा रोज खाने मे व्यय करते हैं। उन दिनों गाँधी जी का केवल ६ पैसे मे भोजन करने की बात काफी प्रसिद्ध हो रही थी—इतने मे एक बूढा चमार बोल पड़ा "तो हमरे तकलीफ के बराबर उनके कइसन तकलीफ पड़ि गइल। वे जौन चार हाथ कै अँगोछा पहिनत हैं और ६ पैसा रोज

खात हैं, उनके फिकिर त नाही करे के पड़त है,
उस बूढ़े के गीर हमरे सबके त ज़िन्दगी भर फिकिर लाग रहत है,
से शब्द येही फिकिर मे हम सब मरे जात हई। अगर हमरे
सब के फिकिर न रहे तो हमके सोहारी नाही चाही,
मकुनी धकुनी से हमरे सब ढेर ख़ुश रहित।"

उस समय तो मैने उन्हे यह कह कर समझा दिया कि गाँधी जी ग़रीबो के लिए हमेशा चिन्तित रहते हैं। वह तपस्वी और सिद्ध पुरुष हैं। इसलिए उन्हें ग़रीबों की चिन्ता बनी रहती है। किन्तु उस बुड्ढे की बात रह-रह कर मेरे दिमाग़ मे उथल-पुथल मचाने लगी। रात मे बड़ी देर तक नींद नहीं आई और अन्ततः इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि हम प्रदर्शन और शौक के रूप मे कुछ दिनों तक भले ही ग्रामीण जीवन बिता लें किन्तु उनके वास्तविक कष्टों का सच्चा अनुभव हमें नहीं हो सकता। उस दिन मुझे यह भी अनुभव हुआ कि हम चाहे कितनी भी सहानुभूति और समवेदना से बात करें किन्तु देहात के लोग हमें एक दूसरे ही प्रकार का जीव समझते हैं। इस विषय मे मै

पहले भी लिख चुका हूँ। गाँधीजी को देहात के लोग भगवान की तरह पूजते हैं, और उनके सम्बन्ध मे इतनी ऊँची धारणा रखते हैं कि उस धारणा और पूजा-भावना के सामने हम जैसे व्यक्तियों का कोई भी अस्तित्व नहीं है। जो लोग देहात के वातावरण को जानने का दावा करते हैं और इसका उद्धार करना चाहते हैं, वे अगर इन बातों को ध्यान मे रक्खें तो कितना अच्छा हो ?

इसी तरह मै चर्खा प्रचार-कार्य के साथ-साथ देहात मे घूम-घूम कर ग्रामीण परिस्थितियो का अध्ययन करने लगा और मुझे इस काम मे काफी दिलचस्पी भी महसूस होने लगी। आज इतना ही लिख कर यह पत्र समाप्त करता हूँ। शेष फिर कभी।

---

[८]

कौन ऊँचा, कौन नीचा ?

१०—७—४१

पिछले पत्र मे मैने रामपुर गाँव मे रहने का अपना अनुभव बताया था। उन दिनों उसी तरह कितने ही गाँवों मे घूमा करता था। किसान और कुर्मी कौम के ही लोग मेरी बातों को अधिक सुनते थे और हमारे काम से सहानुभूति रखते थे। देहात के मध्यम श्रेणी के ब्राह्मण और क्षत्रिय जातियों के लोग कुछ तो मेरा मज़ाक उड़ाते थे; कुछ डर के कारण मुझमे घनिष्टता स्थापित नहीं करना चाहते थे। अवध के देहात के इस श्रेणी के लोग तो इस सम्बन्ध मे एक विचित्र प्रकार की मनोवृत्ति रखते थे। एक समय था जब यही लोग समाज का नेतृत्व करते थे; सभ्यता, कला और शिक्षा का इनमे पूर्ण प्रचार था। इसलिए यही लोग भारतीय शिष्टाचार के अधिकारी

पतनशील उच्च वर्ग

भी थे किन्तु आज न तो ये देहाती रह गये है और न शहरी। ग़रीब हो जाने के कारण शिक्षा के अवसर हाथ से निकल चुके हैं। उदारता भी समाप्त हो चुकी है, किन्तु फिर भी अपने बड़प्पन का अभिमान कूट-कूट कर भरा है। यही कारण है कि ये लोग शहर के लोगों की नक़ल करने की कोशिश मे लगे रहते है क्योंकि गाँव वाले लोग शहर वालों को ऊँचा समझते हैं। इस नकल करने मे अपनी अयोग्यता के कारण उनकी अच्छी चीज़ों की तो नकल नही कर पाते हैं किन्तु उनके अभिमान, उनकी-हृदयहीनता, छोटों के प्रति घृणा तथा शृंगार आदि बातों को तोड़-मरोड़ कर भद्दे तरीके से नकल कर लेते हैं जिससे वे गाँव मे रहते हुए भी गाँव के नही रह जाते। इसलिए जब मै देहात के सम्बन्ध मे कोई बात करता था तो वे उसको मज़ाक के ही रूप में ग्रहण करते थे। मैंने बहुत प्रयत्न किया कि इन लोगों मे चर्खे का प्रचार हो जाय और ये गाँधी जी की बात समझ ले किन्तु ये लोग मेरी कोई भी बात सुनने के लिए तय्यार न हो सके। इनके यहाँ हर एक घर मे अक्सर एकाध व्यक्ति बेकार रहते हैं किन्तु वे कोई भी काम करने को तैयार नही हो सकते। अपना छोटे से भी छोटा काम मज़दूरों से ही कराते हैं। मै पहले ही लिख चुका हूँ कि जब ग्रामीण लोग एक साथ मिल कर कही बैठते हैं तो संसार के समस्त विषयों की आलोचना किया करते हैं—जिसमे धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक सभी विषयों का सन्निवेश रहता है। किन्तु यह मध्यम श्रेणी के अपने को श्रेष्ठ समझने वाले लोग जब कही इकट्ठा होते हैं तो या तो उनमे पट्टीदारी के झगड़ों की बात होती है अथवा दुनिया भर की दुर्नीति और अश्लीलता की चर्चाएँ छिड़ती हैं। उनकी बात सुनने से यह आभास मिलता है कि ये लोग अपनी गोष्ठी के लोगों के अतिरिक्त संसार के सभी लोगों को चरित्र-हीन समझते हैं। मेरा यह भी अनुभव है कि ये लोग बहुत सुस्त और काहिल हुआ करते हैं।

दोनों श्रेणियों का अन्तर

एक देहात की मध्यम श्रेणी की ऐसी ही एक कहानी है जिसको लिख देना मै अच्छा समझता हूँ। उन्ही दिनों की वात है। एक दिन देहात मे घूमते हुए टाण्डा से १६ मील दूर हँसवर के पास एक गाँव में पहुँचा। अधिक समय वीत जाने के कारण उस गाँव का नाम मुझे भूल गया है। उस दिन काफी शाम हो चुकी थी इसलिए मैने सोचा कि इसी गाँव मे रातभर के लिए टिक जाऊँ। उस दिन से पहले मैं टाण्डा से इतनी दूर के गाँव मे कभी नही आया था। उसी गाँव के एक आदमी से पूछा कि इस गाँव में कौन लोग रहते हैं। जवाव मिला—"पचीस घर भलमनई और बाकी सब चमार-सियार।"

भलमनइयों द्वारा उपेक्षा

भलमनई का अर्थ था ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि उच्च श्रेणी के लोग। इसी एक वाक्य से तुम समझ सकते हो कि देहात के ये वड़े लोग छोटी जातियों को किस नज़र से देखते हैं। खैर! मैंने कोशिश की, इन भलमनइयों मे से किसी के घर टिक जाऊँ किन्तु मुझे टिकाने के लिए कोई भी तैयार नहीं हुआ। मार्च का महीना था इसलिए मै निश्चिन्त हो कर गाँव के बाहर ही एक पक्के कुएँ की जगत पर लेट गया। कही निकट मे वाज़ार न होने के कारण उस रात खाना भी न खा सका। सन्ध्या रात्रि मे परिणत हो चुकी थी, चाँदनी निकल आई थी, मुझे वह स्थान वहुत सुन्दर प्रतीत हुआ। मै क़रीव क़रीव सो गया था, इतने ही मे थोड़ी दूर पर आम के वाग़ से एक स्त्री ने पुकारा—"कुएँ पर के है हो?" मै उस गाँव से कुछ खीझ सा गया था, कुछ कर्कश स्वर मे उत्तर दिया—"मनई होई, मनई।" इतने मे वह स्त्री नज़दीक आगई और "कहाँ घर है?" इत्यादि पूछने लगी। मैने उसको सारा क़िस्सा कह सुनाया। सव हाल सुन कर वह वहुत दुखी हुई और उस गाँव के ठाकुरो को कोसने लगी और कहने लगी,—"हमरे घर चला, सीधा लकड़ी कै इन्तज़ाम कै देत हई, वनावा खा।" मै सोलह सत्रह मील चल कर देहात में प्रचार करते हुए वहाँ पहुँचा था। भूख

वहुत ज़ोर से लगी थी। मैं उस बहिन के साथ उसके घर चला गया। वहाँ जाकर देखा कि उसका घर वास्तव मे कोई घर नही था। केवल एक छोटी सी झोपड़ी थी जिसकी माप ६ × १२ फुट थी। तीन हाथ ऊँची और एक फुट चौड़ी मिट्टी की दीवार किसी तरह सरपत और खर से ढक दी गई थी, किन्तु उसके भीतर चाँद का प्रकाश छत से छन कर सम्पूर्ण घर मे फैला हुआ था। छोटा सा दरवाज़ा पटुये के डंठल और पलाश के पत्तो के टट्टर से ढका हुआ था। उसके आस-पास मे कोई घर नही था। दरवाज़े के सामने की ज़मीन काफी दूर तक लिपी हुई थी। उस पर एक बूढ़ा बैठ कर तम्बाकू पी रहा था। थोड़ी दूर पर एक छोटी सी लड़की एक छोटे से बच्चे के शिर पर घास और मिट्टी डाल रही थी और हँस रही थी। शायद वही उनके खेल की सामग्री थी ।

मेरे पहुँचते ही उस वहिन ने धान के पयाल का एक "वीड़ा" ला कर दिया और पूछने लगी "लोटा सोटा कुछ वाय" ? मेरे पास एक झोला था किन्तु उसमे लोटा नहीं था। "लोटा नही है" यह सुन कर वह वहुत परीशान हुई और कुम्हार के घर से कुछ वरतन और हँड़िया लाने के लिए रवाना हो गई। मै उसके इस व्यवहार से समझ गया कि वह किसी नीच जाति की है और इसीलिए इतना परीशान हो रही है। मैने उसे पुकार कर कह दिया कि मुझे तुम्हारे वर्तन मे खाना खाने मे कोई भी हिचक नहीं है । यह सुन कर उन दोनों के हृदय उसे अपार प्रसन्नता हुई और वह दौड़-दौड़ कर का अमृत मेरे खाने-पीने का प्रवन्ध करने लगी। मैंने उससे यह भी कह दिया था कि मुझे तुम्हारे हाथ का पका हुआ भोजन करने से भी काई एतराज नहीं है। उसकी तत्परता, प्रेम और सद्भावनाओं को देखकर मुझे प्रतीत होने लगा कि मै सचमुच अपनी वहन के घर आ गया हूँ।

अब तक उस बुड्ढे ने कुछ नहीं कहा था और निश्चिन्त हो कर

इस तरह तम्बाकू पी रहा था; मानो उसके दरवाजे पर कोई नई बात हुई ही नही। इस प्रकार की निश्चिन्तता मैने देहात की मजदूर श्रेणी के लोगों मे प्राय: देखी। उनके सामने से चाहे—कोई आये या जाये उसके प्रति वे कोई विशेष ध्यान नही देते। शायद सहस्रो वर्षों से समाज मे दलित अवस्था मे रहने के कारण उन्हे दुनियाँ के बारे मे कोई दिलचस्पी ही नही रह गई। जब उस बहिन ने आग जलाई तब उसने तम्बाकू पीते हुए पुकार कर पूछा—"का रे का बात है?" इस पर वह स्त्री हँस पड़ी और कहने लगी—"बूढ ह्वै गया, कुछ सूझत नाहीं।" जब उस बुड्ढे पर यह प्रकट हो गया कि वह मेरे निमित्त खाना बनाने जा रही है तो वह सिर हिला कर कहने लगा कि मै ऐसी बात नही होने दूँगा। "भला ठाकुर लोगन कै खब्बा तुही सब बना दीहो तो कुल उच्छिन्न न होइ जाई?" मुझे भूखा जान कर और मुझसे बात करने के बाद उस स्त्री मे जो प्रेम और उदारता की भावना जाग्रत हो उठी थी, उसने उसे यह सोचने का अवसर ही नही दिया कि मेरे एतराज़ न करने पर भी उसे एतराज़ करना चाहिए।

मैने उस बुडढे को समझाने की बहुत कोशिश की किन्तु वह किसी भी तरह तैयार नही होता था। अन्त मे मैने कहा कि यदि नही खिलाओगे तो भी कोई चिन्ता नही है, मै रात भर यही सोया रहूँगा और सबेरे चला जाऊँगा। वह बहिन अब तक खड़ी होकर हमारी और उस बुडढे की बाते सुन रही थी, मेरी अन्तिम बात सुन कर बोल उठी कि "रहे दो बाबा, हमारे मोहारे पर केहू भूखा नाही परा रहे; हम तो बनाय के जरूर खियाउब।" इस पर उस बुडढे ने अत्यन्त अप्रसन्न हो कर अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया और फिर तम्बाकू पीने लगा। जंगल की वह देवी खाना बनाने लगी और मै घास का 'बीड़ा' उठा कर उसी तरफ जा कर बैठ गया और उससे उसकी अवस्था के सम्बन्ध मे प्रश्न करने लगा।

उसकी जाति पूछने पर ज्ञात हुआ कि उसे लोग वनमानुष

कहते हैं।

वनमानुष भी कोई जाति है, यह मुझे अब तक मालूम नहीं था। वे लोग गृहस्थों को ढाक का पत्तल बना कर दिया करते हैं और उसके बदले मे जो कुछ अनाज मिल जाता है उसी पर जीवन-निर्वाह कर लेते हैं। उनके पास न घर था, न ज़मीन थी एक छोटी सी झोपड़ी थी जिस पर थोड़ा सा सरपत और खर रक्खा हुआ था। जिससे बारिश को रोक नही हो सकती थी। किन्तु वर्षा-काल मे क्या होगा इसके लिए अभी से चिन्ता करना उनके लिए आवश्यक नही था। वे ईसा-मसीह के इस उपदेश का कि "कल की चिन्ता न करो" पूरा पूरा अमल करने वाले प्रतीत होते थे। उस स्त्री की अवस्था देखने में लगभग २०—२२ वर्ष की मालूम होती थी। वह काफी स्वस्थ थी। बुड्ढा उसका बाप था और एक लड़का और एक लड़की उसकी सन्तान थे। उसका पति एक वर्ष पूर्व मर चुका था। इस जाति में दूसरा पति कर लेने का विधान होते हुए भी वह दूसरे के घर नहीं जाना चाहती थी। मेरे पूछने पर उसने उत्तर दिया "भगवान ने तक़दीर बिगाड़ दी तो भला हमारे जोड़ने से किस तरह जुड़ सकती है!" फिर मैने इस विषय पर उससे कोई भी बात नही की। अगर तुम बहिन को देखो तो आश्चर्य मे डूब जाओगी। अकथनीय अपार
दरिद्रता से पिसते हुए और समाज के अत्याचार
दरिद्रता की चक्की से दलित रहते हुए भी उसमे इतनी उदारता,
उनकी मानवता सर्वदा हँसमुख रहने की इतनी क्षमता, इतनी बुद्धि
को पीसने मे और इतना शिष्टाचार कहाँ से आता? खाना खाने
असमर्थ है के पश्चात् मै एक कमली बिछा कर लेट गया और
सोचने लगा कि गाँव के "भलमनई" अधिक ऊँचे हैं या "वनमानुष"? साथ ही भारतीय स्त्री के हृदय की थाह लगाने की कोशिश करने लगा तो मालूम हुआ कि वह अगम और अथाह है।

इनका स्नेह और इनका प्रेम किसी जात-पाँत का विचार नहीं रखता। ससार की कोई भी वस्तु नारी-धर्म के रास्ते का रोड़ा नही हो सकती और यह है गन्दे, फटे चीथड़े से लिपटी हुई हमारे भारत की ग्राम वासिनी।

स्त्रियों के सम्बन्ध मे मेरी धारणा दिन-प्रति-दिन दृढ होती गई। दूसरे दिन सवेरे उठ कर उस वहिन के प्रति महान कृतज्ञता प्रकट करके और उसके बच्चों को प्यार करके मै टाण्डा वापस चला आया। चलते समय मै उन्हें कुछ पैसा देना चाहता था, किन्तु उसने ऐसा जोरदार विरोध किया कि फिर कुछ कहने का मेरा साहस नहीं हुआ। आते समय केवल इतना ही कह सका कि "वहिनी, आज का दिन हम नाही भूलब।" उसने सिर नीचा करके जवाब दिया "अइसन भाग हमार कब होइ सकत हैं।" पन्द्रह साल बाद १९३८ मे जब मैं हँसवर गया था तो मैने उस वहिन का पता लगाने का पूर्ण प्रयत्न किया किन्तु शोक है कि उस वहिन का कुछ भी पता न लग सका। उस दिन की घटना मुझे जीवन-पर्यन्त नहीं भूलेगी।

---

[६]

कौन सभ्य ? कौन असभ्य ?

२२—७—४१

एक माह के करीब हो गया। मै इधर कुछ लिख नहीं सका। जेल में कई प्रकार के आन्दोलन चल रहे थे। वे जेल अधिकारियों की ज्यादती के विरोध मे भूख हड़ताल आदि के थे। ऐसे वायुमण्डल में १६—१७ वर्ष पहले की बातों को निश्चिन्त होकर लिखने मे कठिनाई होती थी। आगरे की अधिक गर्मी भी कुछ सुस्ती का कारण हो रही थी। जेल की बैरकों मे चैन लेने के लिए तो किसी भी प्रकार का आड़ है ही नहीं। भला ऐसी परिस्थिति में निश्चिन्त होकर कोई काम कैसे किया जा सकता है ?

अब कुछ फ़ुरसत मालूम होती है; इसलिए फिर पुरानी बातों को लिखने का विचार कर रहा हूँ। जिनसे तुम लोगो का मनोरंजन हो सके और मेरा भी जेल का समय कट जाय। हाँ, उस रोज़ मैने वनमानुष के घर मे रात बिताने की कहानी बताई थी। बात तो छोटी है, केवल एक रात बिताने का प्रश्न था लेकिन वह घटना मेरे लिए बड़े महत्व की थी। मै बचपन से ही घर मे तथा समाज मे सभ्यता और शिष्टाचार की बाते सुनता आया था कि कौन लोग सभ्य और कौन असभ्य हैं। कौन श्रेष्ठ हैं और कौन नीच है, इसकी चर्चा उस समाज के लोगों मे दिन रात हुआ करती है जो अपने को शिक्षित और सभ्य समझते है। किन्तु हम जब गहराई से विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि हमारी सारी सभ्यता, सारा शिष्टाचार उन लोगों के साथ है, जो पैसा ख़र्च करके अपने को चमकीला और रंगीला बनाये रहते है तथा विविध प्रकार के सामानों से अपने घरो को एक प्रकार का शोरूम बनाये रखते हैं। किन्तु अगर सीधा-सादा देहाती उनके अन्दर पहुँच जाय तो उसकी चटक-मटक-हीन सूरत देख कर और (अनुकूल परिस्थिति तथा अवसर न मिलने से) उसमे कुर्सी, मेज़ और बैठकख़ाने के आचारों की अज्ञानता को देख कर वे एक प्रकार की बेहूदगी और बदनमीज़ी से हँस पड़ते हैं। और उसके प्रति घृणा-पूर्वक इस तरह से नाक भौं सिकोड़ लेते हैं कि उस समय उन्हे देख कर महाशय डारविन की कही हुई प्राचीन मनुष्य जाति के किसी पूर्व पुरुष का रूप स्मरण हो आता है। और इसी को हम पढे-लिखे लोग मार्जित शिष्टाचार कहा करते हैं। अगर संस्कृति को ही कसौटी मान

इन शहरियों से वे लिया जाय तो हमारे देहात के नीच से नीच वन-
अधिक संस्कृत हैं मानुष भी शहर के लाखों-करोड़ों सुशिक्षित जनो से
अधिक सुसंस्कृत हैं, ऐसी धारणा मुझ मे दिन-प्रति-
दिन दृढ होती गई, और साथ ही शहर की छुरी-काँटा, चम्मच वाली, ऊपर से पालिश की हुई सभ्यता के प्रति घृणा पैदा होती गई। मुझको

ऐसा प्रतीत होता था कि बेवकूफ, गन्दे असभ्य और दीन ग्राम-वासी शहर के तथा-कथित उच्च श्रेणी के लोगों से कही अधिक ऊँचे हैं। यह धारणा मुझे आज-कल के गिरे हुए देहात को देख कर हुई। जिस दिन गाँव सभ्यता के उच्च शिखर पर थे उस दिन न मालूम वे लोग किस प्रकार के थे।

वन-मानुष की कहानी कहते-कहते मै दूसरी ओर बहक गया लेकिन मन का उद्गार कह देना ही था। इसलिए पत्र लम्बा हो जाने पर कुछ ध्यान न देना।

सवेरे के समय उसके घर से निकल कर टाँडा की ओर चला तो मन में तरह-तरह के विचार आने लगे। मै सोचने लगा कि ये वनमानुष कौन जाति हैं, ये कहाँ से आये, कैसे वस गये ? गाँव से वाहर जगल मे एक ही घर का होना भी आश्चर्य की वात थी। आखिर इनके पूर्व-पुरुष भी तो कोई होंगे ही ? उस बुड्ढे के घर भाई-विरादरी सव कहाँ गये ? उस के घर को देखने से भी तो यही मालूम होता था कि थोड़े दिन प्रवास मे रहने के लिए उसने अस्थायी झोंपड़ी वना ली है। लेकिन उनकी वात-चीत से तो यह मालूम होता है कि वे कई साल से यहीं पर वसे हुए हैं। यदि स्थायी रूप से ही रहना था तो अपना घर उचित रूप मे क्यों नहीं वना लिया।

इसी प्रकार के सैकड़ों प्रश्न दिमाग़ मे उठने लगे। किन्तु मै इन प्रश्नों को पूछता किससे ? रास्ते मे था ही कौन ? रात के समय जब उस वनमानुष की लड़की से वात-चीत कर रहा था, उस समय उसके शिष्टाचार से तवीयत इतनी भर गई थी और उसकी हालत पूछने मे इतना तल्लीन हो गया था कि ये सव वाते दिमाग मे आ ही नही सकीं। काफी दूर चले आने पर रामपुर गाँव के पास एक चमार मिला जिसने मुझे पहचान कर "जयराम जी" कह कर नमस्कार किया। मैंने तो उसे पहचाना ही नहीं, किन्तु उसकी वातों से ज्ञात हुआ कि वह रामपुर का रहने वाला है। रामपुर गाँव मे मैं कई वार जा चुका

था। घर-घर घूम चुका था इसलिए वह मुझसे काफी घनिष्ठतापूर्वक बातें करने लगा। उसी से मैंने वन-मानुषों के विषय में पूछा। उससे मालूम हुआ कि वन-मानुष चमारों से नीचे की जाति है। उनका छुआ हुआ पानी चमार लोग भी नहीं पीते। अर्थात वे अछूतों के भी अछूत हैं। ये लोग जंगलों में ही बसते हैं। उस चमार से वनमानुषों के विषय में इससे अधिक जानकारी न प्राप्त हो सकी। फिर उससे बात-चीत करते-करते रामपुर गाँव पहुँचा और दोपहर हो जाने के कारण उसी गाँव के एक कुर्मी जाति के किसान के यहाँ टिक गया। खाना खाने के पश्चात् जब बाहर के बरामदे में आकर बैठा तो गाँव के और कई व्यक्ति भी बात-चीत करने के लिए आ बैठे। उन लोगों से वन-मानुष के विषय में बात-चीत करने लगा। रात को उसके घर में टिकने की बात सुनकर लोग बहुत घबड़ाये तथा उस किसान को, जिसने मुझे खाना खिलाया था, नाराज़ हो कर भला-बुरा कहने तथा गाली देने लगे।

वनमानुषों के विषय में

मैंने उनको 'आदमी आदमी सब एक हैं' इसका सिद्धान्त समझाने की कोशिश की किन्तु छुआछूत का संस्कार इतना प्रबल था कि मेरा सारा समझना व्यर्थ हो गया, और वे लोग उन वनमानुष को बुरा भला कहते ही रहे। आखिर मैंने यह बातचीत बन्द कर दी और वनमानुषों की बाबत पूछने लगा। ज्ञात हुआ कि वनमानुष जाति के लोग कहीं गाँव में न रह कर जंगल में ही रहा करते हैं। जिसका जहाँ जीवन-निर्वाह हो जाय वह वहीं बस जाता है। यदि कभी उन्हें उस स्थान पर तकलीफ़ मालूम होती है तो दूसरे स्थानों पर चले जाते हैं। कहीं-कहीं दस-बारह घर इकट्ठे भी रहते हैं, किन्तु ऐसी बस्ती किसी बाज़ार या कस्बे के निकट ही होती है; नहीं तो गाँव के सहारे इनका जीवन-निर्वाह नहीं हो सकता। ये लोग विवाह शादी इत्यादि ख़ुशी और गमी के अवसरों पर पत्तल बना कर देते हैं और उसके बदले केवल

एक सीधा पाते हैं और पत्तल मे जो कुछ जूठन बच जाता है उसे इकट्ठा कर ले जाते हैं। इनके पास कोई खेती-बारी नही होती है। इसी उच्छिष्ठ भोजन से इनका गुज़र-बसर होता है अर्थात् ये लोग सामाजिक और आर्थिक दोनों दृष्टियों से गाँव की मज़दूर श्रेणी के लोगों से भी गिरे हुए होते हैं।

शाम को जब लौट कर टाडा आया तो वहाँ के लोगों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि ये लोग प्राचीन अनार्य जाति के एक अंग हैं जो यहाँ पड़े रह गये हे। यह भारतवर्ष भी विचित्र देश है। यहाँ कोई भी आता है तो सुख से बस जाता है और पुराने लोगो के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। अति प्राचीन जाति से लेकर अति आधुनिक सभ्य जाति के लोग पड़ोसी के रूप मे रहते हैं और कभी एक दूसरे को खतम करने का विचार नहीं करते हैं। क्या यूरोप या अमेरिका मे, आस्ट्रेलिया या कनाडा में हज़ारों साल की सभ्यता के बाद ऐसी प्राचीन जाति समाज के अंग विशेष के रूप में कही टिक सकती है ? वहाँ के सभ्य लोग अस्तित्व कभी सहन नहीं कर सकते। युरोप, अमेरिका और आस्ट्रेलिया के इतिहास के पन्ने ऐसे काले आदमियों को लुप्त कर देने की चेष्टा से भरे पड़े हैं। पता नहीं, पश्चिमी आदर्श से प्रेरित होकर देशवासी इस देश के गले के नीचे श्रेणी-युद्ध का पाठ कैसे उतार सकेंगे। अवध जैसे प्राचीन सभ्यता के केन्द्र पर भी वनमानुष आज "वनमानुष्य" के ही रूप मे टिके हुए हैं। ससार मे यह भी एक बड़े आश्चर्य की बात है। अवध की नीच जातियो के सम्बन्ध मे मैं किसी दिन फिर लिखूँगा। आज इतना ही लिख कर समाप्त कर रहा हूँ।

भारत की श्रेष्ठ सस्कृति

---

[१०]

वनमानुष और चमार

२४—७—४१

मार्च का महीना मेरे लिए विशेष रूप से काम करने का महीना था। तुम्हे यह मालूम ही है कि मुझे सर्दी बहुत लग जाती है इसलिए मै सर्दी के दिनों मे वाहरी काम बहुत कम कर पाता हूँ। फिर जाड़े मे ओढने विछाने का सामान लिये-लिये कहाँ-कहाँ फिर सकता था इस-लिए मै अब वाज़ार के दो दिनों को छोड़ कर शेष दिन देहात मे ही घूमा करता था। रात को भी टाडा नही लौटता था। गाँव गाँव घूम कर चर्खे का प्रचार और देहात के विषय मे जानकारी प्राप्त करता था। मेरे दिमाग़ मे इन दिनों वन-मानुष ही घूमता था, जंगली मुल्कों के कोल-भील आदि जातियों के विषय मे तो मै सुन चुका था किन्तु इतने प्राचीन सभ्य देश मे भी इस किस्म की जाति का होना विचित्र सा प्रतीत हुआ। फिर तो मै देहात मे वनमानुषो को ढूँढ़ ढूँढ़ कर देखने लगा कि वे किस तरह रहते हैं और उनकी आर्थिक, सामाजिक तथा नैतिक स्थिति कैसी है। मै जहाँ भी गया वहा उनके उसी प्रकार के गिरे-पड़े घरों को देखा। वे सब के सब काले रंग के होते है। यह किसी ने भी नही वताया कि वे कही एक गट्टा भी ज़मीन जोतते हैं। ये लोग जगल मे ही रहते है, वस्ती में कभी आवाद नही होते और स्थायी घर कभी नहीं वनाते। गाँवो से अरहर का डठल और ईख की पत्ती माँग कर वरसात से रक्षा के लिए ऊपर से आड़ कर लेते हैं। इन्हें कपड़े की आवश्यकता भी बहुत कम होती है। ये लोग वहुत हट्टे-कट्टे और स्वस्थ होते हैं; इसलिए मौसमी परिवर्तन का उन पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। इनसे पूछने पर मालूम हुआ

वनमानुषों के विषय मे और वातें

कि इनके धर्म मे एक स्थान पर स्थायी घर बना कर रहने, अथवा बस्ती मे निवास करने का निषेध है ।

गाँवो मे जब पत्तल पहुँचाने की आवश्यकता होती है तो पुरुष ही उसे गाँव मे ले जाते है । स्त्रियाँ गाँव-वालों के घर कभी नही जाती । वे या तो पत्तल बनाती हैं अथवा जगल से सूखी लकड़ियाँ चुन कर लाती हैं जिसे, अपनी आवश्यकता के लिए बचा कर, बाज़ारों मे बेच आती हैं । इन्हे बहुत सी जड़ी-बूटियो की जानकारी होती है, जिन से अनेक प्रकार की बीमारियाँ अच्छी हो सकती है । गाँव के लोग इनसे अनाज के बदले मे बहुत सी औषधियाँ ले जाते हैं ।

मै बहुत प्रयत्न करने के बाद भी उन औषधियो के विषय मे कोई जानकारी नही प्राप्त कर सका । वे अपनी औषधियाँ किसी दूसरे को नहीं बताते । उन औषधियो से वे कभी-कभी बड़े-बड़े भयानक रोग तक अच्छा कर देते है । एक बार एक मनुष्य को फीलपाँव हो रहा था, जिसको दवा के लिए एक वनमानुष ने एक श्वेत रंग की जड़ ला कर दी । उसके लेप से वह रोग अच्छा हो गया । इसी प्रकार एक मनुष्य को 'कारबकल' रोग भी एक वनमानुष ने अच्छा कर दिया था । वह एक प्रकार की लता पीस कर उसकी पुलटिस बाँधता था । ये दोनो घटनाएँ मेरे सामने की हैं । इन लोगो को भूत-प्रेत का कोई भी भय नही है । ये अपने बच्चो का विवाह बहुत छोटी अवस्था मे ही कर देते हैं । विवाह मे किसी प्रकार की धूम-धाम नही होती । इन लोगों मे भी एक पुरोहित होता है । ये ही पुरोहित लोग दो-चार कुटुम्बियों की उपस्थिति मे विवाह करा देते हैं । लड़की पक्ष के लोग लडकी को ही लड़के के घर ले जा कर विवाह कराते है ।

मै पहले ही लिख चुका हूँ कि इनकी स्त्रियाँ गाँव की उच्च जाति के घरों मे काम करने नहीं जातीं इसलिए इनका नैतिक चरित्र ऊँचा होता है । देहात मे यह प्रायः देखा जाता है कि निम्न श्रेणियो की स्त्रियो का नैतिक चरित्र प्रायः ऊँचा होता है । जो कुछ व्यभिचार

होता है वह केवल उच्च श्रेणी के लोगों द्वारा ही होता है। जब वनमानुषों का उच्च श्रेणी के लोगों से सम्पर्क ही नहीं होता तो फिर उनमे इस प्रकार की बाते हो ही कैसे सकती है? देहात मे जितने जगल होते है वे किसी न किसी के इलाक़े मे ही होते है। कोई किसी दूसरे इलाके से पत्ता व लकड़ी नहीं ले सकता। लकड़ी वाले ऐसे जंगल का भाग दहेज में दे देते हैं। इनमें भी एक जातीय पंचायत होती है जो इनके हर प्रकार के झगड़ों का निबटारा करती है। ये अपना झगड़ा तय करने के लिए किसी दूसरे के पास नही जाते। इन्हे दूसरी जातियों पर विश्वास ही नही होता। इनकी संख्या बहुत कम है। कही-कही पाँच-छः गाँवों के बीच दो-एक घर दिखाई देते है। लेकिन जब कभी इनकी जातीय पंचायत होती है तो बहुत दूर दूर के लोग पहुँच जाते हैं। मेरा जहाँ तक अनुभव है ये लोग बहुत सुस्त और काहिल होते हैं। मैने इन लोगो को बेकार देख कर इनमे चर्खा-प्रचार की कोशिश की किन्तु इसके लिए वे तैयार नही हुए। उनका कहना था कि वे काफी सुख से हैं। उन्हे किसी प्रकार का कष्ट नही है। अधिक पैसा कमाने से क्या लाभ? मैने इन्हे विचित्र सन्तोषी जाति पाया। वनमानुष बापू के अपरिग्रही का नमूना मालूम होता है। हाँ, यह अपरिग्रह बेहोशी मे ही है। मुझे आज तक किसी भी जाति ने चर्खा न कातने के लिए ऐसा सीधा और स्पष्ट उत्तर नहीं दिया था। सभी लोग चर्खा न कातने के लिए कुछ बहाना बनाते है किन्तु इस जाति मे चर्खा चलाने के सम्बन्ध मे सफलता न पाने पर भी इनका सीधा सच्चा व्यवहार मुझे बहुत पसन्द आया।

कुर्मियों मे चर्खे का खूब प्रचार हो चुका था और उनके साथ काफी घनिष्ठता भी हो गई थी। कुछ परिवारो के साथ तो मुझसे घर की तरह सम्बन्ध हो गया था। उन लोगों मे काम करने के सिलसिले मे मै गाव की मज़दूर-श्रेणी के चमारों के बीच भी कुछ-कुछ करने लगा था। इस जाति के लोग साधारणतः ब्राह्मणों और क्षत्रियों के यहाँ

मज़दूरी करते हैं। कुर्मी जाति के बड़े किसान भी इनसे मज़दूरी का काम लेते हैं। अवध के देहात में सबसे बड़ी संख्या की कौम यही है जो अछूत श्रेणी में गिनी जाती है। मैंने विचार किया कि इस जाति में भी चर्खे का प्रचार करूँ क्योंकि समाज में इन लोगों के समान दबी हुई जाति दूसरी नहीं है। अवध ताल्लुकेदारी का प्रान्त है। इन ताल्लुकेदारों का सम्पूर्ण भार इन्हीं ग़रीबों को उठाना पड़ता है। इनका आधे से अधिक समय बेगारी के कामों में लग जाता है। ताल्लुकेदारों के यहाँ कोई भी काम होता है तो इन्हीं ही पकड़ कर बेगार ली जाती है। सरकारी अफसरों का दौरा भी इन लोगों के लिए एक बहुत बड़ी आफत के तुल्य है क्योंकि उनका, उनके सिपाहियों का, तथा उनके खैरख्वाहों का सारा काम इन्हें बेगारी में ही करना पड़ता है। बेगारी करते-करते इन लोगों के स्वभाव में एक विचित्र प्रकार की काहिली, सुस्ती और लापरवाही आ गई है। इनको जीवन से किसी प्रकार की दिलचस्पी नहीं रह गई है। मैंने चमारों को ताल्लुकेदारों की जमीन पट्टे पर लेकर स्वतन्त्र रूप से खेती करते हुए नहीं देखा। फैजाबाद ज़िले में इतने दिनों तक काम करता रहा किन्तु इस अवधि में मुझे फैज़ाबाद से ११ मील दूर कुतुबपुर नाम का केवल एक ही गाँव इस प्रकार का मिला, जहाँ के चमार ताल्लुकेदारों के सीधे काश्तकार हैं और दूसरे की मज़दूरी नहीं करते। इतने दिनों तक दबे रहने के कारण इन्हें अपने जीवन के साथ किसी प्रकार की दिलचस्पी नहीं रह गई है, ऐसी परिस्थिति में वे काश्तकारी कैसे कर सकते हैं? फिर भला चर्खा चलाने की बात ही क्या है! इसके अतिरिक्त इन लोगों में प्रविष्ट होकर काम करना भी एक विकट समस्या है। गरीबी, हुकूमत और अत्याचार की मार खाते-खाते ये इतने बेहोश हो गये हैं कि इन पर किसी बात का प्रभाव नहीं होता। कोई चमार अपने दरवाजे पर बैठा हुआ तम्बाकू पी रहा हो और तुम उसके दरवाजे पर जाकर खड़े हो

चमारों की जड़ स्थिति

जाओ। किन्तु जब तक तुम उसे पुकार कर कुछ कहो नही या उसके किसी सामान पर हाथ न लगाओ तब तक वह उसी ढंग से इसप्रकार तम्बाकू पीता रहेगा मानो उसके दरवाजे पर कोई आया ही नही है। पूछने पर भी वह उसी प्रकार तम्बाकू पीते हुए दो-एक शब्दो मे उत्तर देकर चुप हो जायगा। ऐसी पिछड़ी हुई जाति के बीच जाकर उनसे बात-चीत करना, परिचय प्राप्त करना तथा उनमे किसी प्रकार के प्रोग्राम की चर्चा चलाना कितना कठिन काम है। मैने अनुभव किया कि इन लोगों मे चर्खा चलवाने की अपेक्षा पत्थर कूट कर उसमें से रस निकालना कही अधिक आसान है। उन लोगों में कोई काम कैसे किया जा सकता है? वे तो किसी से बात ही नही करना चाहते हैं। देहात मे एक कहावत है 'ब्राह्मण और चमार किसी की नहीं सुनते; ये अपने ही ढङ्ग मे मस्त रहते है।" यह कहावत बहुत अंशो मे ठीक जान पड़ती है। ब्राह्मण सर्वदा से गुरु और पुरोहित का काम करते करते इतने घमण्डी हो गये हैं कि दूसरो की बुद्धि को अपनी बुद्धि के सामने तुच्छ समझते हैं। और चमारो को हर एक श्रेणी के लोगों ने शताब्दियो से इतना अधिक दबाया है कि वे हर एक आदमी को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। उनको एक खटका हमेशा लगा रहता है कि ये महाशय भी किसी मतलब से ही बाते कर रहे हैं। लेकिन मै जितने ही निकट से इनके सम्बन्ध मे विचार करता था उतना ही अधिक परीशान होता था। इनमे बेकारी तो है ही, किन्तु यदि किसी जमींदार, ब्राह्मण या क्षत्रिय से पूछा जाय तो वे इन्हे कभी बेकार स्वीकार न करेंगे। इसीलिए मै सोचता था कि यदि इनमे चर्खे का प्रचार हो जाय तो कुछ अंशों में इनकी बेकारी भी दूर हो जाय और एक स्वतंत्र उद्योग का सहारा मिल जाने से इन मे उच्च श्रेणियों के दमन और अत्याचार के विरोध करने की प्रवृत्ति भी उत्पन्न हो जाय। किन्तु एक तो यह समस्त जाति ही बेहोशी का शिकार हो गई है, दूसरे उच्च श्रेणी के लोग सर्वदा इस बात के प्रयत्न मे रहते है

कि ये किसी स्वतंत्र व्यवसाय में न लग सकें।

मुझे इन बातों का अनुभव किस तरह हुआ इसकी कहानी अगले पत्र में बताऊँगा। मैं धीरे-धीरे चर्खा चलवाने के लिए इनसे परिचय प्राप्त करने की कोशिश करने लगा। किसी प्रकार की विशेष सफलता न मिलने पर भी हिम्मत नहीं हारता था और किसी न किसी बहाने इनके बीच जा कर बैठ जाता था और इनसे बातें करने लगता था। आज यह पत्र यहीं समाप्त करता हूँ क्योंकि इसके विशेष लम्बा हो जाने का भय है। आजकल मैं जेल में काफी स्वस्थ हूँ और सानन्द हूँ।

---

[११]

चमारों की हालत

२६—७—४१

मैं यह तो लिख ही चुका हूँ कि चमारों के मध्य काम करना बड़ा कठिन है। तुमने एक बार मुझे महाराष्ट्र के ग़रीब किसानों की अवस्था बताई थी। क्या उनकी हालत इनसे भी बदतर है? वहाँ जंगलों की अधिकता के कारण कम से कम उन लोगों को स्वच्छ स्थान तो मिल ही जाता है। ख़ैर, जो भी हो, इन चमारों की परिस्थिति को देखते हुए मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि इनमें चर्खा चलाना नितान्त आवश्यक है। मैं यूरोप और अमेरिका की प्राचीन दास प्रथा के विषय में पढ़ता था और उससे बहुत घबराता था। किन्तु यहाँ तो विचित्र दशा है। यद्यपि अवध के मजदूर क़ानूनन किसी भी प्रकार अपने मालिक के दास नहीं होते किन्तु उनकी विवशता ने उन्हें उन दासों से भी गई-बीती अवस्था में डाल दिया है। उन दासों के पास यदि कोई स्वतंत्र साधन नहीं था तो उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व भी नहीं था। उनके अस्तित्व का उत्तरदायित्व उनके मालिकों पर होता

था। किन्तु इन चमारो का स्वतन्त्र अस्तित्व तो होता है तथा अपने परिवार, वर्तमान और भविष्य की ज़िम्मेदारी भी होती है; किन्तु इनके पास इस ज़िम्मेदारी को निभाने का कोई साधन नही होता। मालिक अपनी आवश्यकता पर उन्हे काम देता है। अगर ज़रूरत न हुई तो नही देता। ऐसे समय वे क्या खाये, इसकी ज़िम्मेदारी मालिक पर नही है। ज़रूरत पर काम करते समय भी इन चमारो को इसका कोई भी निश्चय नहीं होता कि काम पूरा हो जाने के बाद उन्हे पूरी मज़दूरी मिलेगी। अवध की बेगार-प्रथा का इतना वर्णन हो चुका है कि मै फिर उन बातों को दुहरा कर व्यर्थ मे पत्र का कलेवर नही बढ़ाना चाहता। इसके विषय मे तुम लोगों को सम्पूर्ण बाते मालूम है। रामपुर गाँव की ओर का एक चमार स्वयंसेवक का काम करता था और वह कभी कभी आकर मेरे पास बैठता था। वह मुझसे गाँधी जी तथा कांग्रेस के विषय मे प्रायः पूछा करता था। मै भी चमारों से अधिक घनिष्ठता प्राप्त करने के लोभ में कभी-कभी इसके घर टिका करता था। उसके और उसकी टोली वालों के साथ संध्या समय बातचीत करते हुए मुझे यह मालूम हुआ कि जब जमीदारों का आपसी बँटवारा होता है तो उनकी सम्पत्ति व जानवरों के साथ ही साथ चमारो का भी बँटवारा हो जाता है। इस बँटवारे मे कौन किधर रहेगा, इस विषय मे चमारो को सम्मति देने का कोई भी अधिकार नही है। जिसकी राय से सब सम्पत्ति बँटती है उसी की राय से सब चमार भी बँट जाते हैं। प्राचीनकाल में गुलाम भी तो इसी प्रकार बाँटे जाते थे। ये लोग यह सारा अत्याचार चुपचाप इसलिए सहन कर लेते हैं कि ज़मीदारो के अतिरिक्त जीवित रहने का इनके पास कोई भी दूसरा स्वतन्त्र साधन नहीं है। इसीलिए मेरी यह धारणा थी कि चर्खा चलाने की सब से अधिक उपयोगिता इसी क़ौम के लिए है।

परमुखापेक्षी जीवन

गुलामों की भाँति बँटवारा

इन बातों को सोचते हुए जब उन दिनों देहात में इधर-उधर घूमा करता था और दो-दो तीन-तीन दिन तक देहात मे टिक जाता था, तो जहाँ तक सम्भव होता था मै चमारो के यहाँ ही टिकने की कोशिश करता था। क्योकि मै समझता था कि काफी घनिष्ठता हो जाने पर ही इन्हे चर्खे की तरफ लाने मे सफल हो सकूँगा। उस समय मार्च का महीना था। ये लोग मटर आदि की कटाई मे फँसे हुए थे जिससे तत्काल चर्खे की बात करना ठीक नही समझता था और केवल सम्बन्ध ही बढ़ाता जाता था।

चमारों की बस्ती आमतौर से गाव के दक्खिन मुख्य बस्ती से थोड़ी दूर हटकर हुआ करती है। इनको इतनी कम ज़मीन में इतनी अधिक संख्या मे बसने को बाध्य किया जाता है कि इन्हे बहुत छोटी-छोटी झोपड़ियाँ बनाकर एक दम सट-सट कर रहना पड़ता है। ये लोग अपने लिए ठीक ढंग से आँगन नही छोड़ सकते। फल यह होता है कि इनका सारा काम एक छोटी जगह मे होता है, जहाँ गन्दगी और पानी आदि के निकलने का कोई रास्ता नही होता। उनका टोला बहुत गन्दा और बदबूदार होता है। इस गन्दगी के लिए लोग मजबूर हैं क्योंकि इन्हें साफ रहने के लिए समाज ने कोई

गन्दगी का कारण साधन ही नही छोड़ा है। इधर जब से गाधीजी ने

हरिजनान्दोलन चलाया तब से शहर के पढ़े-लिखे देशभक्त बाबू लोगों मे कभी-कभी देहात के हरिजन टोलों की सफाई करने का फैशन चल पड़ा है। वे झाड़ू लेकर गाव जाते हैं और उनकी गलियों को साफ करते हुए गम्भीरता के साथ उन्हें साफ रहने का उपदेश दिया करते हैं; और कभी कभी सफाई करती हुई अवस्था का फोटो खिचवा कर ले जाते हैं; कभी-कभी पत्रों में भी अपना वक्तव्य दे दिया करते हैं। मै जब समाचारपत्रों मे इस प्रकार के कार्यक्रम के विषय मे पढ़ता हूँ या कभी मित्रों का ऐसे कार्य-क्रम में जुटे रहते हुए देखता हूँ तो हँसी आती है। भला हरिजनों की गलियों को साफ करने

से क्या सफाई हो सकती है ? पानी को निकास का मार्ग न मिलने के कारण उनके घरों मे तथा आँगन मे न जाने कब की सील सड़ती रहती है। गलियाँ तो उनसे कुछ साफ ही रहती हैं । कम से कम बरसात का पानी तो उनसे बह ही जाता है। इसके अतिरिक्त उन्हे अन्य मौसिमो मे धूप भी मिल जाती है । वर्षों तक एक ही तकिया और एक ही कथरी इस्तेमाल करते करते उनमे कितना पसीना, बच्चों का पेशाव, तेल और मैल जमा हुआ है, इसकी खबर इन सुधारक भाइयों को नहीं रहती। अगर हम वास्तव मे हरिजनों के मध्य काम करना चाहते हैं तो हमको किसी न किसी तरह उनकी आर्थिक दासता को ढीला करना है तथा उनकी वेहोश प्रकृति में चैतन्य का प्रसार करना है । नहीं तो चाहे कितना भी सफाई करने का एवं कुएँ वनवाने का तथा उनके वच्चों को वजीफा दे कर उन्हे शिक्षित बनाने का कार्य किया जाय किन्तु वे जीवन-यापन के मानवीय साधनो के अभाव मे ज्यो के त्यों रह जायँगे। उनके दरवाजे और गलियाँ साफ की जायँ तो वे अपने चिर-अभ्यस्त वच्चो से टट्टी करा देंगे। यदि कुवाँ वनवा दिया जाय तो वे उसके वनने के साल भर के भीतर ही उसकी दीवार और जगत की सारी ईंटें उखाड़ कर घरो मे चूल्हे आदि वना लेंगे और जिन बच्चों को वजीफा देकर पढाया जायगा वे अपने माता-पिता एवं कुटुम्बियों को घृणा की दृष्टि से देखने लगेंगे तथा अपनी एवं अपने परिवारवालो की जिन्दगी भार-स्वरूप वना देंगे। चमारों के घरों मे रहने का मुझे जितना अवसर मिला है उससे मैंने अनुभव किया है कि वे भी गन्दगी को घृणा की दृष्टि से देखते हैं तथा अपनी साधन-हीन दशा मे जहाँ तक सम्भव होता है वे अपने को तथा अपने घर-द्वार को साफ रखने का प्रयत्न करते हैं। उनके वर्तनों को तो प्रायः मैंने ब्राह्मण और क्षत्रियों के वर्तनो से भी अधिक साफ देखा है। वे काहिल तो अवश्य होते हैं और यदि काहिल न होते तो शायद इससे

मूल समस्या

भी अधिक सफाई से रहते। किन्तु काहिली भी तो जीवन से निराशा के कारण ही उत्पन्न होती है।

अतएव मैं उनके घरों मे जाता था, उनके बच्चों से खेला करता था, स्त्री-पुरुषों मे बातें करता था, उन्हे उनकी दशा से परिचित कराने एवं उससे मुक्ति प्राप्त करने के लिए उद्योग करने के निमित्त प्रयत्न किया करता था। किन्तु अपार प्रयत्न करने के पश्चात् भी उनके जड़ दिमाग़ पर जरा भी प्रभाव न डाल सका। प्रत्युत मैने यह अनुभव किया कि वे हमसे कुछ घबड़ाते से थे। वे मुझे खाना प्रायः पत्तल मे खिलाया करते थे। पहले तो मै यह समझता था कि बर्तन के अभाव से ही वे वैसा करते हैं किन्तु धीरे-धीरे यह मालूम हो गया कि वे जान-बूझ कर मुझे अपना बर्तन नहीं देते क्योंकि बर्तन देने से उनको अपनी जाति चली जाने का भय था। ऐसा रिवाज है कि जब उच्च जाति का आदमी किसी चमार के घर खाना खा लेता है तो उस खिलाने वाले के बराबर भ्रष्ट संसार मे कौन हो सकता है। मै समझने लगा—'इन से तो बनमानुष ही अच्छे हैं।'

चमारों मे काम करने के सिलसिले मे मुझे यह एक खास बात देखने मे आई कि कुर्मियों की औरतें तो हमारे काम से खास दिलचस्पी रखती थीं जैसा कि पहले मैं तुम्हे लिख चुका हूँ। वे मुझे अपने गाँवो मे बुला ले जाती थीं। मेरे वहाँ पहुँच जाने पर सब इकट्ठी हो जाती थीं। गाँधी बाबा कहाँ हैं, वह क्या करते हैं, क्या खाते हैं, किस तरह रहते हैं इत्यादि बातों को पूछती थीं। कांग्रेस के विषय मे, बाबा रामचन्द्र के विषय मे, हाकिम-अमला-वकील वगैरह के विषय मे सवाल किया करती थीं। किन्तु चमारों की औरतों मे किसी प्रकार की चेतनता देखने मे नहीं आती थी। पुरुष लोग तो कुछ विषयों पर बातचीत कर लेते थे। मै जब उनके घर टिकता था तो खाना भी पुरुष ही लाकर खिलाते थे। उनकी औरतों से तो मैं बात-चीत अवश्य कर लेता था किन्तु उस बातचीत मे कोई जीवन न होता था। बहुत

सी जगहो मे तो उनका रवैया ऐसा होता था कि मानों उन्हे पता ही नही था कि मै उनके घर पर टिका हुआ हूँ। मुझे इसके लिए काफी परीशानी रहती थी कि जब तक मै स्त्रियों से भलीभाँति परिचय नहीं कर लूगा तब तक उनसे चर्खा कैसे चलवाऊँगा?

बच्चों से परिचय अन्ततः सोचते-सोचते एक तरीका निकाल ही लिया। इनके बच्चों से घनिष्टता बढाना शुरू कर दिया। पहले तो जब बच्चो को इकट्ठा देख कर उन्हे बुलाने की कोशिश करता तो वे सब के सब ऐसी तेजी से भागते मानो कोई शेर उन्हे खाने दौड़ा हो। भागने मे जो बच्चे सबसे पीछे छूट जाते थे वे चिल्ला कर रो उठते थे। किन्तु धीरे-धीरे बच्चो से मेरा परिचय बढने लगा। मैं उन्हे कागज की नाव आदि बना कर दे दिया करता था। कभी-कभी मिट्टी के फल और हाथी-घोड़े आदि बना दिया करता था। इन चीजों मे बच्चे धीरे-धीरे बड़ी दिलचस्पी लेने लगे।

बच्चों के सम्बन्ध से धीरे-धीरे औरतों से भी परिचय होने लगा। अब औरते पहले की तरह जड़ता का भाव नहीं रखती थी। मै तुम लोगो से स्त्रियों के सम्बन्ध मे सर्वदा कहा करता हूँ।

स्त्रियों से परिचय तुम्हारा कहना है कि मै स्त्रियो के ख़िलाफ़ हूँ। भाई, तुम्हारी जाति ही ऐसी है। उन्हे छोटी-छोटी स्वार्थ-भरी बाते सूझती हैं। जब मैंने उनके बच्चो को अपने पक्ष मे कर लिया तो वे स्त्रियाँ मुझसे खूब बाते करने लगी। ऐसा वे इसलिए नही करती थीं कि मुझसे दिलचस्पी हो गई थी, बल्कि वे मेरे मुँह से अपने बच्चों की प्रशंसा सुनने के लिए ही बात-चीत करती थी। मै ये बाते ठीक कह रहा हूँ न? अब तो वे अपने घरो मे पहुँचने पर मेरे बैठने के लिए चारपाई आदि निकाल देने लगीं। उस समय फ़सल कट कर समाप्त हो गई थी। मैंने उनसे चर्खे की बात करने का यही उपयुक्त अवसर समझा। किन्तु थोड़े ही दिनों के प्रयत्न के पश्चात् यह अनुभव होने लगा कि जब तक, इनके घरों में पाव भर भी अनाज मौजूद

है तब तक ये किसी प्रकार का उद्योग करने के लिए नहीं तैयार हो सकते। इन दिनों इन लोगों के पास काफी अवकाश रहता था फिर भी इस समय चैत की फसल कटने से इनके घरों में इतना अनाज आ जाता था कि वे किसी भी प्रकार की गम्भीर बात करने के लिए तैयार नहीं होते थे। देहातों में यह कहावत प्रचलित है कि "चैत में चमार चैताय जात हैं।" इस समय वे किसी की नहीं सुनते हैं। यह जाति एक विचित्र प्रकार की जड़ जाति है। मैंने इतिहास का विशेष अध्ययन नहीं किया है। ज्ञात नहीं, इस जाति के पूर्व-पुरुष कौन थे। चाहे वे जो भी रहे हों किन्तु इतना तो निश्चित-सा है कि उनमें चैतन्य आत्मा का अभाव था। नहीं तो क्या कारण है कि पाँच-सात हज़ार वर्ष तक लगातार दबाये जाने पर भी इनमें किसी प्रकार की क्रान्ति या विद्रोह का आविर्भाव नहीं हुआ। आज भी इनको सुधारने के लिए गाँधी बाहर ही से उत्पन्न होता है। इनके भीतर से कोई बुकर टी वाशिङ्गटन नहीं पैदा होता है। डाक्टर अम्बेडकर भी तो वृटिश सरकार का ही बनाया हुआ पुतला है। इनके भीतर से उद्भूत कोई अवतार तो नहीं ही है।

चमारों की स्त्रियों के मध्य काम करने में एक और ही विचित्र समस्या खड़ी हो गई। मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि इनसे किसी गम्भीर विषय पर बात-चीत करना सम्भव नहीं होता था क्योंकि वे किसी प्रकार के विषय में दिलचस्पी नहीं लेती थीं। अतएव मुझे उनसे उनके बच्चों और खेती-गृहस्थी के ही सम्बन्ध में बात-चीत करनी पड़ती थी। इन बातों के सिलसिले में ये स्त्रियाँ प्रायः बहुत

स्त्रियों का फूहड हास्य

निम्न-कोटि का अश्लील और भद्दा मजाक कर दिया करती थीं। और कभी कभी तो उनके बात-चीत करने का ढंग भी अत्यन्त भद्दा हुआ करता था। उनमें से कोई एक स्त्री किसी प्रकार की अश्लील बात कर देती थी और शेष सभी की सभी एक अत्यन्त भद्दे तरीके

से हँस पड़ती थीं। एक तो मुझे इनमे चर्खे का प्रचार होना असम्भव प्रतीत होता था, दूसरे उनके इस प्रकार के व्यवहार से निराश होकर मैंने इनके बीच जाना ही छोड़ दिया।

चमारो मे भी कुछ लोग ऐसे थे जो पहले कॉग्रेस के स्वयंसेवक रह चुके थे। ये लोग प्रायः मेरे पास आया जाया करते थे। उनसे भी अक्सर मै इस प्रकार की बातो की चर्चा किया करता था। वे उत्तर देते थे—"बाबा, उनकी बात तोहरे समझ मे नाहीं आवत होइहै। वे फूहर मनई होयँ। अंट शट कहि दिहे होइहै। मुला उनके मन माँ कौनो किस्म कै गन्दगी नाही बा।" लेकिन मुझे इनकी बातो से तसल्ली नहीं होती थी। मै देहात के कुर्मियो के घर भी जाता था, उनकी स्त्रियाँ माता व बहिन के समान प्रेम का व्यवहार करती थीं। कभी-कभी एकाध बुढ़िया थोड़ा बहुत मजाक की बात जरूर कह देती थी, लेकिन अन्य स्त्रिया उसे तुरत सँभाल लेती थीं। इसलिए चमारो की स्त्रियो का इस प्रकार का व्यवहार मुझे स्वाभाविक नही लगा।

यह बात मेरे दिमाग मे रह रह कर आया करती थी। आखिर, एक दिन एक बूढे चमार से बातचीत करने मे मुझे इस बात की जड़ का पता लग गया। मै उन सभी चमारो से, जो मेरे पास आते जाते थे इस विषय मे पूछा करता था। एक दिन टाडा का बाजार समाप्त करके मै बोरो मे सूत भर रहा था। इतने मे वही रामपुर गाव वाला चमार आ कर बैठ गया। वह हाथ मे एक हरे कुम्हड़े का टुकड़ा लिये था। उसके साथ एक बुड्ढा भी था जिसे मै जानता नही था। वह भी कुछ सौदा लिये हुए था। मालूम होता था कि वे लोग बाजार करके लौट रहे थे। मै उस चमार से कहने लगा कि तुम्हारी बिरादरी कभी नहीं उठेगी। तुम्हारी जाति के अन्दर सुस्ती, गन्दगी, काहिली और चरित्र-हीनता फैल गई है। ठीक ही है कि तुमको दण्ड देने के लिए, तुमसे बेगार कराने के लिए परमात्मा ने इन तल्लुक़ेदारों को पैदा किया है। उस चमार ने कहा "बाबा, हमरे सब चमार होईं और उल्लू

मनई होई; कहाँ से ढ ग आवे । वावा, तुहूँ जौन् कुछ आवा जावा करत रहा तौन यहि साइत तो देखाइन नाही परत हो । ढेर दिन होइगा दरशन नाही भा । आज बाजार आय रहेन, सोचेन कि दरसन कइ लेई । तौन अउतै ही फटकार परै लागि । काव भलमनई ही पाप करी, कुछ समझ माँ नाहीं आवत । देश दुनियाँ के बीज बोते हैं सबै हमरे सब का फटकारै लागा थै । जौन गाँधी बावा कै सहारा रहा वहूँ फटकार ही सुनाय पड़त है ।"

मै बहुत देर तक उनके साथ बात-चीत करता रहा और उनकी स्त्रियों के अश्लील व्यवहारो के विषय मे भी आलोचना करने लगा । इसपर वह कहने लगा—"आप उन बातों का ख्याल न करे । उनकी आदत ही ऐसी है ।" मैने उनसे पूछा—आखिर ऐसी आदत क्यों है ? मै कुर्मियों के घर जाता हूँ तो उनकी स्त्रियों की तो ऐसी आदत नही है । कुर्मियो की बात सुनते ही उसके साथ का बुड्ढा नाराज हो गया और कहने लगा—"हमकाँ का कहत हौआ ? का कुर्मी कौनो बाबू कै मजूर हैं, वे तो आजाद हैं, जौन चाहैं तौन करैं । हमरे घर के मेहरारू कै आदत तो बाबू लोगन ही बिगारिन हैं, नाही तो हमरे सब मजूर मनई दिन मै मेहनत कइकै घर जाइ कै मुरदा अस परि जाइत हइ; हमरे सब कै ऐसन शौक करै का हियाव कहा । तोहरे ठकुरै सब हमरे सब की मेहरारुन का खराब करत हैं, उनकै आदत बिगाड़त हैं, उनके साथ हँसी मजाक करत हैं और हमरे सब कै धरम नाश करत हैं । हमरे सब टुकुर टुकुर ताकित है और कुछ कहि नायँ पाईत है । भला ठकुरन से लड़िकै केऊ रहि सका थै ।" जोश मे आकर वह बुड्ढा बहुत सी बाते कर गया । फिर तो मुझे प्रत्येक बात का तथ्य मालूम हो गया और उनसे पूछ-पूछ कर सभी बाते जानने की कोशिश करने लगा । उनसे बात-चीत करने पर प्रकट हुआ कि देहात के मध्यम श्रेणी के ज़मींदार घरों के पुरुष मजदूरों की स्त्रियों के साथ अश्लील मज़ाक किया करते हैं । इस प्रकार वे धीरे-धीरे उन्हे फुसला कर

उनके साथ व्यभिचार करते है। इन बातो का इतना आधिक्य है कि मज़दूरों की लड़किया बचपन ही से मज़ाक करना सीख जाती है। इनके समाज के लोग इन बातों को देखते हुए भी विवशतया अनदेखी कर जाते हैं। क्योकि अपने ठाकुरो के साथ झगड़ा करके वे किसी भी प्रकार जीवित नही रह सकते। आज-कल के जागरण के युग मे इन लोगों मे भी कुछ-कुछ हिम्मत आ गई है। लेकिन उस समय की स्थिति आज की सी नही थी।

देहात के ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि मध्यम श्रेणी के लोगो के प्रति मेरे दिल मे पहले से ही कोई श्रद्धा नही थी। किन्तु अब इन उपर्युक्त बातों को सुनने के पश्चात् इन भल मनइयो के प्रति इतनी घृणा हो गई कि मै अपने देहात-भ्रमण के समय इन लोगो से कोई सम्पर्क नहीं रखता था। दस-बारह साल के बाद भी जब ग्राम-सेवा का प्रोग्राम लेकर रणीवा मे जा बैठा था तब तक भी इन लोगों के प्रति मेरी भावना मे कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। इस विषय में फिर कभी लिखूंगा; आज का पत्र यहीं समाप्त करता हूँ। तुम मेरे प्रति किसी विरोध की भावना को स्थान न देना कि मै बहुत हठी हूँ और अपने मनमे इतना तीव्र विद्रोह इतने दिनो तक भरे रहता हूँ। किन्तु इतना तो जानती ही हो कि मै जल्दी अपनी राय नहीं बदला करता।

---

[१२]

गाँव के बच्चे

३०—७—४१

मैंने पिछले पत्र मे लिखा था कि चमारो की स्त्रियो से परिचय करने के लिए मैंने पहिले बच्चो से परिचय करना शुरू किया। कभी गाव के पास बच्चो को किसी पेड़ के नीचे इकट्ठा खेलते हुए देखता

था तो किसी न किसी बहाने उनसे बात-चीत करने की कोशिश करने लगता था। कभी किसी जगल मे गाय-भैस चराते देखकर भी उनसे बात-चीत करने लगता था, इन लड़को मे कुर्मी और चमार जाति के लड़के अधिक होते थे। बच्चों के खेल के साधन और ढ ग के विषय मे कुछ बताऊँ तो शायद अच्छा लगे। एक दिन कुछ बच्चो को एक गड़ही के पास इकट्ठा हुए देखा। उस गड़ही मे बहुत सी काई जमी हुई थी। बच्चे काई को निकाल निकाल कर एक जगह इकट्ठा कर रहे थे, और उसमे से एक एक दाना निकाल कर एक बच्चे के शिर और सम्पूर्ण शरीर मे नाना प्रकार से साटते थे। शुरू शुरू मे मै उनके पास न जाकर एक पेड़ के नीचें बैठ गया और दूर ही से उन लोगो का खेल देखने लगा। थोडी देर के बाद सब लड़कों ने उस लड़के को आगे रख कर ताली पीटते और हल्ला करते हुए उसे एक पेड़ के नीचे ले जाकर बैठाया। फिर सामने एक गड्ढा खोद कर उसमे पानी भरा और पानी भरने के बाद सब लड़के उसे प्रणाम करने लगे और उसी गड्ढे से पानी निकाल-निकाल कर उसे नहलाने लगे। ऐसा करके ये सब ताली बजा बजा कर ख़ूब हँसने लगे। जिस लड़के को चित्रित करके बैठाया गया था वह इतना गम्भीर हो कर बैठा था मानो उसके सामने कुछ बाते हो हीं नही रही हैं। सारा दृश्य देखने मे एक छोटा-मोटा सा नाटक प्रतीत हो रहा था। जब ये बच्चे इस प्रकार खेल रहे थे तो मै विचार रहा था कि ये बच्चे नाटक की यह कला मानों अपनी माँ के पेट से ही लेकर आये हैं। आख़िर इन्हें किसी ने सिखाया तो है ही नही तो फिर यह सूझ आई कहाँ से? निस्सन्देह, उनकी यह कला भी भारत के प्राचीन कलापूर्ण समाज के सस्कारों का भग्नावशेष है। मै धीरे धीरे उन बच्चो के पास पहुँचा। वे मुझे देख कर हँसने लगे। वे मुझे पहले ही से पहचानते थे, क्योंकि मै इस गाँव मे कई बार आ चुका था। मैने उनसे पूछा कि यह कौन सा खेल हो रहा है? उन्होंने जवाब दिया, "खेल नाही होय, देवी जी

कै पूजा होत वा। हमरे सब देबी बनाये हैं।"

एक दिन एक दूसरे गाँव के पास एक जंगल मे कुछ लड़के गाय-भैंस चरा रहे थे। वहाँ पर पहुँच कर मैने देखा कि वे आस-पास के पेड़ों की छोटी-छोटी डालियाँ तोड़-तोड़ कर और उन्हे गाड़-गाड़ कर बहुत दूर तक एक बागीचा बना रहे थे और छोटी-छोटी कंकड़ियाँ चुनकर बागीचे के बीच बीच मे सड़क का निशान भी बनारहे थे। उनकी यह क्रिया भी बच्चों के स्वाभाविक विकास की परिचायक थी। बच्चों के खेल इतने प्रकार के होते थे कि उनका वर्णन करना बहुत कठिन है। मुझे पूर्णतः याद भी नही है किन्तु यदि उनको ध्यान-पूर्वक देखा जाय तो उससे उनकी विशेष प्रकार से नई वस्तुओ के निर्माण करने की प्रवृत्ति का पता लगता था। वह नित्य खेलो की कोई न कोई नयी शैली ढूढ ही लेते हैं। कभी-कभी तो वे अजीब प्रकार के स्वाँग की रचना करते हैं। मैने शहर के बच्चो को भी खेलते हुए देखा है। वे वेही खेल खेलते रहते हैं जो उन्हें बताये जाते हैं। हाँ, कभी-कभी वे भी नये खेलो का आविष्कार कर लेते हैं। किन्तु यह आविष्कार की शक्ति जितनी देहात के बच्चो मे दिखाई पड़ी उतनी शहर के बच्चों मे नही।

इस प्रकार के खेलों के सिलसिले मे बच्चो के अन्दर घुसने का मौक़ा लग गया। ऐसी बातों से मुझे हमेशा दिलचस्पी रही। अब तो और भी मौक़ा मिल गया। मै उनके खेल मे घुस जाता था और उन्हे तरह तरह की चीजे बनाना सिखाता था। मिट्टी के फल और बर्तन आदि बनाने की क्रिया बताता था। मुझे यह देख कर आश्चर्य होता था कि मै एक वस्तु बनाता था तो वे अपनी ओर से दो-एक वस्तुएँ और बना डालते थे। कहीं कहीं मै जगल से लकड़ी और खर इकट्ठा करवाता था और उनसे घर बनवाता था। घर के सामने बग़ीचा भी लगवाता था; कहीं छोटे छोटे कुएँ भी खुदवा दिया करता था। बच्चों की आविष्कार-शक्ति का एक उदाहरण सुन कर तुम्हें

आश्चर्य होगा। एक बार जब मैंने बच्चों से मकान, आँगन और खेत वग़ैरह बनवा कर कुएँ के लिए ज़मीन पर एक छोटा सा गड्ढा खुदवाया, तो उसी समय एक लड़की उठ कर तेज़ी से एक ओर को भागी और थोड़ी ही देर के बाद एक धतूरे का फल लाई और कहने लगी—"बाबा यहमाँ से कूड़ बनी कूड़।" (उधर के देहात में कुएँ से ढेकुल द्वारा पानी निकालने के लिए जो बर्तन प्रयोग मे आता है उसे कूड़ कहते हैं।) कूड़ की आकृति भी धतूरे के ही समान होती है। मुझे उसकी बात से बहुत हँसी आई और मै दूसरे बच्चों से पूछने लगा कि इससे कूड़ किस प्रकार बनाई जायगी? सभी बच्चे सोचने लगे तथा विविध प्रकार के उपाय काम मे लाने लगे। वह लड़की बैठी-बैठी सारी क्रिया देखती और मुस्कराती थी किन्तु जब उससे नही रहा गया तो बोल उठी—"भीतरा कै गुदवा निकाल नाही देता, कूड़ अस तो होइ ना जाई।" कितने आश्चर्य की बात है कि मैंने सब कुछ प्लान उन्हे बताया किन्तु कुएँ के लिए कूड़ चाहिए और वह कूड़ भी उसी जंगल से मिल सकती है, यह कल्पना मुझे भी न सूझी। मैं प्रायः सर्वदा ही अपने झोले मे अख़बार वगैरह दूसरे काग़ज़ रखा करता था और उनसे बच्चों को नाव आदि खिलौने बना कर दे दिया करता था। किसी किसी को नाव आदि बनाना बता भी दिया करता था। इस प्रकार उनके खेलों मे शामिल होने से तथा उन्हे खेल के तरह-तरह के साधन बताने के कारण मैं उनमे बहुत हिल-मिल गया था। बचपन से ही मुझे बच्चों के साथ खेलना बहुत पसन्द आता था। बच्चे मुझसे बहुत जल्दी हिल मिल जाते है। जब बच्चे मिल जाते हैं तो मुझे दूसरी बातों से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। अब भी जब सेवाग्राम जाता हूँ तो मीतु ही मेरा आधा समय ले लेती है और जब उसे कहानी सुनाते समय किसी दूसरे से बात करता हूँ तो वह कैसी नाराज़ होती है। मानो मै उसी का साथी बच्चा हूँ!

कुछ दिनो मे ऐसा हो गया कि जब किसी गाँव मे जाता था तो

सब बच्चे इकट्ठे हो जाते थे। खेलने के सिलसिले में जो वस्तुएँ बना कर उन्हे देता था उन पर वे तरह-तरह के प्रश्न करते थे; "कागज़ की नाव पानी पर तैरती क्यों है? कुछ देर में डूब क्यों जाती है? मकान छप्पर आदि जब छाये जाते हैं तो वे ढालू क्यो बनते हैं? हाथी के सूड़ क्यो होती है?" इसी प्रकार के पचासो सवालो से मुझे तंग किया करते थे। वे मेरे आने की प्रतीक्षा में हफ्तो बिता देते थे और इसी अवधि में पचासो प्रकार की चीज़े इकट्ठी करके रखते थे। घोंघे का शंख, टूटी हुई चूड़ियाँ और टूटे हुए घड़े आदि जो भी सामान उन्हे मिल जाता था इकट्ठा करके इस आशा में रखते थे कि इस बार जब बाबा आयेंगे तो नया खेल बतायेंगे। उस समय तक बापू जी ने बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा की बात नही बताई थी अन्यथा इसके प्रयोग के लिए बहुत सुन्दर अवसर था और यदि उन बातो को उस दृष्टिकोण से देख सकता तो मै तुम्हारे वास्ते अच्छा मसाला दे सकता था। बच्चो मे भ्रमण करने तथा उनसे घुलने मिलने मे मुझे एक विशेष बात का अनुभव हुआ कि देहात के किसान और मज़दूरो के बच्चे काफी तेज़ होते हैं और उनमे नवीन आविष्कार की काफी शक्ति होती है। किन्तु ज्यों-ज्यों उनकी उम्र बढती जाती है त्यों-त्यों वे बुद्धू होते जाते हैं। इसका कारण क्या है, समझना चाहिये। बचपन मे वे संसार को देखते हैं तो उसके जानने के लिए अनेक प्रकार के प्रश्न करते हैं और उनकी प्रकृतिप्रदत्त विधायक शक्ति उनसे तरह-तरह की वस्तुओ का निर्माण कराती है। किन्तु दुःख का विषय है कि देहात मे उनके प्रश्नो का जवाब देने वाला कोई नहीं; उनकी निर्माण-शक्ति के विकास का कोई साधन नहीं। इस प्रकार बौद्धिक विकास मे लगातार रुकावट पड़ने के कारण उनके मस्तिष्क संकुचित हो जाते हैं। इसलिए अवस्था-वृद्धि के साथ-साथ उसी अनुपात में बुद्धि का विकास न होने के कारण वे अधिक बोदे लगते हैं। उनकी बुद्धि-हीनता का एक दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि ज्यों ज्यो

उनकी अवस्था बढती है, त्यो-त्यों वे अपने को असहाय परिस्थिति में जकड़े हुए पाते हैं। तथा साधन-हीन अवस्था मे जब उनके दायित्व बढ़ने लगते हैं तो उसका परिणाम यह होता है कि वे चौबीसो घंटे एक प्रकार से किंकर्तव्य-विमूढ बने रहते हैं।

ऐसी दशा मे उनका बुद्धि-हीन बन जाना कोई अस्वाभाविक नहीं। आश्चर्य तो इस बात का है कि वे पागल क्यो नही हो जाते।

देहात मे कही कहीं पर ही बच्चों के पढ़ने के स्कूल दिखाई देते हैं। किन्तु उनमे पढाई की जिस पद्धति से काम लिया जाता है उसमे बच्चों के स्वाभाविक प्रश्नो का उत्तर न देकर तथा उनकी प्राकृतिक निर्माण-शक्ति का विकास न करके, उनके मस्तिष्क मे ऐसी बाते ठूँसी जाती हैं, जिनमे न तो उन्हे अपने निकटस्थ वातावरण की झलक मिलती है और न उनसे उनका प्राकृतिक विकास ही होता है। आज जब मै बापूजी की बताई हुई बुनियादी राष्ट्रीय-शिक्षा के विषय मे सोचता हूँ तो उन दिनो की बात याद आती है और यह धारणा होती है कि शिक्षा का सबसे अच्छा और प्राकृतिक रूप यही है। बच्चों के सम्बन्ध मुझे यह भी अनुभव हुआ कि लड़कों की अपेक्षा लड़कियो की बुद्धि प्रखर होती है। जब मैंने लड़कियों का स्कूल प्रारम्भ किया तो मुझे इसका प्रमाण भी मिल गया।

हमारे गाँवो के बच्चे इतने होनहार हैं, किन्तु शोक की बात है कि हमारे पास उन्हे विकसित करने का साधन नही है। अशिक्षा और कुशिक्षा के कारण आगे चल कर वे एक विचित्र प्रकार के जीव बन जाते हैं। सबसे अधिक कुशिक्षा तो उन्हें अपने ग्रामीण घरो मे ही मिला करती है क्योकि समाज के रवैये के ही अनुसार उन्हें शिक्षा भी तो मिल सकती है। बच्चो के माता-पिता ही उन्हे विशेष रूप से गालियाँ देने की शिक्षा देते हैं। मैंने स्वयं अपनी आँखो से देखा है कि माँ-बाप अपने बच्चे को बुला कर स्वयं यह कहते हैं कि "बाबू बोलदे तो तोरी बहिनी कै . ..." और जब बच्चे इस प्रकार की

गालियाँ बकने लगते हैं तो उपस्थित लोग आनन्द से विह्वल होकर हँस पड़ते हैं। बच्चा भी समझता है कि उसने बड़ी वीरता का काम किया है। इसलिए वह भी प्रसन्न होता है। इसी तरह अनेकानेक गालियों को सीखते हुए ग्रामीण बच्चे बड़े होते है। इन बच्चों में यदि किसी को सौभाग्य से स्कूल मे जाने का भी सुअवसर प्राप्त हुआ तो वहाँ आज कल की प्रचलित निकम्मी शिक्षा-पद्धति के साथ ग्रामीण अध्यापक उन्हे तरह तरह की अनीति और दुर्नीति की शिक्षा देते रहते हैं। क्योंकि आख़िर वे भी तो उन्हीं व्यक्तियो मे से होते हैं जो अपने बच्चों को गाली देते हुए देख कर प्रसन्न होते है।

इसी प्रकार की प्राथमिक शिक्षा प्राप्त किये हुए व्यक्ति ही एकदिन उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् हमारे राष्ट्रीय जीवन के कर्णधार होते हैं। फिर हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन में मज़बूती आये तो कहाँ से? बच्चों की बाते कहते-कहते बहक कर मै दूसरी बात कहने लग गया। कहने का उद्देश्य यह कि मैने ग्रामीण बच्चो को जहाँ तक समझा है, वे इतने उच्चकोटि की सामग्री हैं कि यदि उन्हे कुछ ही दिनों तक श्रेष्ठ वातावरण मे शिक्षा मिले तो आगे चल कर वे गाँवों को सुचारु रूप से सगठित कर सकते हैं।

जब मै पूना मे बुनियादी तालीम के प्रथम वार्षिक अधिवेशन मे तुम्हारा भाषण सुन रहा था तो मुझे रह रह कर यही बात याद आ रही थी। तुम लोग सेवा-ग्राम मे बच्चों को जिस प्रकार की शिक्षा देती हो, मालूम नही कि हिन्दुस्थान के बच्चों को उस प्रकार की शिक्षा कब प्राप्त हो सकेगी? सम्भव है, यह मेरा स्वप्न ही हो, किन्तु कभी कभी तो स्वप्न भी सच्चे हो जाते हैं। तुम लोगों के प्रयत्न का भी कुछ न कुछ परिणाम तो होगा ही। सब को नमस्कार कहना। आज बस।

[१३]

गाँवों में पंचायत

३१—७—४१

कल एक पत्र लिखा था। वच्चो के साथ हिल-मिल कर जो कुछ देखने को मिला, लिखा। यदि कोई उनके विभिन्न खेलो के विषय मे लिखे तो एक वड़ी सी पुस्तक तैयार हो जायगी।

आज वारिश के मारे अपनी सीट—जगह पर ही बैठा हूँ। बैठे-बैठे क्या करूँ? पत्र ही लिखने बैठ गया। देखो, कैसा अच्छा जीवन मिल गया है।

हाँ, तो जिस काम मे मुझे प्रारम्भ से ही रुचि थी, अव टाँडा मे आकर वह पूर्णतः मिल गया था। जब से टाँडा बाज़ार की ज़िम्मेदारी मिली, तवसे ग्रामीण लोगो के साथ चौबीस घंटा रहने का मौका मिल गया था। उनके सुख-दु:ख की बाते सुनते और उन्हें अपने देश और देश के राष्ट्रीय आन्दोलन के विषय मे नई-नई वाते बताने मे समय वहुत आनन्द से कटता था। देहात मे घूम-घूम कर चर्खा-प्रचार करने के साथ-साथ अपनी तत्कालीन शिक्षा और अनुभव के अनुसार गाँवों के विषय मे अध्ययन करने का उद्योग भी करता था। इस बार के इस गाँव-भ्रमण से मुझे अन्य प्रकार के भी लाभ प्राप्त हुए। सन् १९२४ का ज़माना था, राष्ट्रीय आन्दोलन की दवी हुई अवस्था के कारण ऐसे कितने ही अवसर आये जिनमे मुझे प्रतिकूल अवस्था से होकर गुजरना और कष्ट उठाना पड़ा। वन मानुष के घर जाने और वहाँ रहने की घटना तो मैं लिख ही चुका हूँ। इस प्रकार मुझे कष्ट सहने का अभ्यास भी हुआ और साथ ही गाँव के लोगों को यथार्थ रूप से समझने का अवसर मिला। अगर किसी विशेष हैसियत से गाँव मे जाता तो गाँव के लोग कृत्रिम और अस्वाभाविक रूप मे मेरे सामने आते और मैं उनके वास्तविक स्वरूप को देखने से वंचित रह जाता।

किन्तु उस समय जिसके हृदय मे प्रेम था, उसने प्रेम से बात की और जिनके हृदयों मे उपेक्षा के भाव थे उन्होंने उपेक्षा की। इस प्रकार उनके सच्चे मनोभावो को अनुभव करने का अवसर मिला। मै गाँव में जाता था, हर प्रकार के लोगों के बीच बैठकर बाते करता था, उनके घरों पर रात को टिकता था, उनके रसोईघरो मे जाकर भोजन करता था। उनकी स्त्रियो और बच्चो से मिलकर बात-चीत भी करता था; जिससे मुझे उनके दैनिक जीवन का ठीक-ठीक दृश्य देखने का 'अवसर मिल जाता था।

वह समय व्यतीत हुए आज १६ वर्ष हो चुके हैं। लगभग सभी बाते विस्मृति के गर्भ मे विलीन हो चुकी हैं। जो कुछ थोड़ी बहुत याद थीं उन्हे मैने तुम्हारे समक्ष रखने का प्रयत्न किया है। किन्तु अब तक मैने लोगों के ही विषय मे लिखा है। गाँव के साधारण-सामाजिक जीवन पर शायद कुछ भी नही लिखा। इस समय भी इसका पूरा ब्यौरा देना सम्भव नही हो सकता किन्तु एक अवसर का थोड़ा-बहुत विवरण, जो मुझे कुछ कुछ स्मरण रहा है, तुमको लिख देना अच्छा समझता हूँ।

देहात मे घूमते हुए मै एक दिन दोपाहर के समय गाँव की ओर जा रहा था। रास्ते मे एक गाँव मे कुछ लोगों को इकट्ठा होते देखा। मुझे जिज्ञासा हुई और उस स्थान पर पहुँच गया। वहाँ पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि गाँव की पचायत मे किसी मामले का फैसला होने वाला है। पंचायत की कार्रवाई देखने के लिए मै वहीं खड़ा हो गया। कुछ देर के बाद एक आदमी ने मुझे बैठने के लिए एक चारपाई ला कर डाल दी और मै उस पर बैठ गया। पचायत मे कुछ पंच थे जिनके मध्य सरपंच महोदय साफा लगाये हुए बैठे थे। प्रतिपक्षी सामने की ओर थे। गाँव के कुछ लोग दर्शक के रूप मे भी मौजूद थे। एक किसान का खेत कट गया था; यही पंचायत का विचारणीय विषय था। खेत काटने वाले एक ठाकुर

साहब थे; जैसा मैने सुना कि यह मुकदमा लगभग एक मास से चल रहा था। पंचायत देखने मे एक छोटी-मोटी अदालत के ही रूप मे दिखाई देती थी। दोनों पक्षों के गवाहों का बयान नियमानुसार लिखा जा रहा था। सरपञ्च महाशय बीच-बीच मे सिर हिला दिया करते थे। कभी-कभी एक-आध सवाल भी कर दिया करते थे। उन्होंने अपनी मुखाकृति इतनी गम्भीर बना ली थी कि मानो हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस हो। गवाहो से कौन-कौन से प्रश्न पूछे जा रहे थे और वे उनका क्या-क्या उत्तर दे रहे थे, यह मुझे स्मरण नही है। किन्तु यदि मै उस समय उन प्रश्नों को लिख लिये होता तो वे विशेष मनोरंजन की सामग्री होते। उन प्रश्नों और गवाहो के उत्तरो से इतना तो स्पष्ट ही व्यक्त हो रहा था कि उनका अधिकाश बयान बनाया हुआ था। पंच लोग भी इस तथ्य को समझ रहे थे। मुझे अनुभव हुआ कि वे लोग यह भी समझ रहे थे कि मुकदमे की वास्तविकता क्या है? क्योकि वे इस प्रकार के प्रश्न पूछ रहे थे जो एक अपरिचित मनुष्य पूछ ही नही सकता था। गवाहो के मध्य मे कभी-कभी गवाहों और गाँव के एकाध व्यक्तियो मे वादविवाद और झगड़ा भी हो जाता था, जिसे पंच लोग कोशिश करके रोकते जाते थे। इस प्रकार किसी तरह शाम तक मुक़दमा समाप्त हुआ। पंच लोगो ने फैसला लिखा और सुना दिया। जिस किसान का खेत कट गया था वह अपना मामला सावित नही कर सका इसलिए मुक़दमा खारिज कर दिया। साथ ही उसे चेतावनी दी गई कि भविष्य मे ऐसा झूठा मुक़दमा न दायर करे।

एक आँखों देखी पंचायत

जिस स्थान पर पचायत हो रही थी, वह सरपंच महाशय का था। उस गाँव के लोगो से मेरा परिचय नही था इसलिए मैने पंचायत समाप्त होते ही वहाँ से चला जाना चाहा। पंचायत की प्रणाली देख कर उसके प्रति कोई विशेष दिलचस्पी न उत्पन्न हो सकी क्योंकि

कचहरियों का भद्दा अनुकरण

उसका सम्पूर्ण ढ ग आज-कल की कचहरियों के भद्दे अनुकरण का एक प्रतिरूप मात्र था । ग्रामीण पंचायतो का जो रूप पुस्तको मे पढते हैं, उसका इससे किसी प्रकार का सादृश्य नही था। मुझको उठते देखकर सरपच ने कहा कि "भला कुछ पानी तो पी लो, फिर जाओ।" देर होने के वहाने मैने चला जाना चाहा किन्तु मेरी न चली। विवश हो मुझे बैठ जाना पड़ा। सरपच मुझे बैठा कर कही चला गया। उसके चले जाने पर मै दूसरे पचो से पचायत के विपय मे वातचीत करने लगा। उनके द्वारा ज्ञात हुआ कि वह एक सरकारी पंचायत है जिसका निर्माण तहसीलदार के द्वारा होता है। गाँव के छोटे-मोटे झगड़े, जैसे खेत काटना, मेड़ वाधना या खूटा गाड़ना आदि इसमे विचारार्थ उपस्थित होते हैं और निपटारा पाते हैं। थोडी देर मे सरपंच आया और कुछ चबेना और रस मँगवाया। मैने जलपान किया और उस गॉव से चल दिया।

उस पचायत को देखने के पश्चात् मै सोचने लगा कि जब गॉवो मे एक पचायत मौजूद ही है तो हम लोग क्यों दूसरी पंचायत स्थापित करने का प्रयत्न करे। इस के पहले जव मै गॉवों मे जाया करता था तो किसानो से पचायत कायम करने के लिए कहा करता था। किन्तु अव तक कही भी किसी ने मुझे यह नही वताया था कि गॉवो मे पचायत पहले से ही मौजूद है। सरकारी पंचायत ऐक्ट के सम्बन्ध मे मुझे कोई अभिज्ञता नही थी। किन्तु यह वात मेरी समझ मे नहीं आई कि देहात मे इन पंचायतों के वर्तमान रहते हुए भी देहात के किसान कभी इस वात की चर्चा मुझसे नही करते थे। मै जब उनसे पचायत कायम करने को कहता था तो वे लोग सर्वदा स्वीकृति दिया करते थे। दो-तीन गाँवों में मेरे कहने के अनुसार लोगों ने पंचायत वना भी ली थी। मै उन पंचायतों के द्वारा गाव मे चर्खा चलवाने की कोशिश करता था। कालान्तर मे ज्ञात हुआ कि जिन गाँवो में मेरी योजनानुसार पंचायते वनी थी, वे भी किसी न किसी

प्रकार की सरकारी पचायत के अन्तर्गत थे।

उस दिन मै टाडा लौट आया और श्री जानकी प्रसाद जी से, जो वहा के एक काग्रेस कार्यकर्ता थे, सरकारी पंचायतो के सम्बन्ध में पूछा। उन्होंने बताया कि यह पचायत ऐक्ट तो पहले ही बन चुका था: किन्तु पहले सरकार ने गाँवों मे इसे विशेष रूप से चलाया नही था। किन्तु जब १६२१ के आन्दोलन-काल मे काग्रेस की ओर से गाव गाव मे पचायतो का निर्माण होने लगा तो सरकार ने उक्त पचायत ऐक्ट के अनुसार शीघ्रता के साथ गाव गाव में पचायते स्थापित कर दीं और उन्हे कुछ कानूनी अधिकारी दिया। आन्दोलन के दबने के साथ-साथ काग्रेस की पचायते समाप्त हो गईं और यही सरकारी पचा-यतें शेष रह गई। फिर तो मै जहा कही भी जाता था इन पचायतों के सम्बन्ध में पूछ-ताछ करता था। गाव के किसानों और चमारों से बात चीतकर यह जानना चाहता था कि इन पचायतो के सम्बन्ध मे इन लोगों के विचार क्या हैं? निकट के गाँवों मे जहाँ कहीं भी पचायत की बात सुनता वहा अवश्य पहुँचने का प्रयत्न करता था। वहा जा कर उनकी कार्रवाई देखा करता था। थोड़े ही दिनों में मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि हम पचायत के जिस रूप की कल्पना करते हैं; वह रूप इन पचायतो को कभी मिल नहीं सकता। हर गाव मे कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो पुलिस थानेदार वगैरह से मिले रहते हैं और उन्हीं की सहायता से गाव में अपनी धाक जमाये रखते हैं। भोले-भाले किसानों को बहका कर लूटना इनका काम होता है। इनके पास निजी जमींदारी होती है अथवा ये अन्य जमींदारों से मिले रहते हैं। इस प्रकार ये गाँव सर्वशक्तिमान समझे जाते हैं। गाव के लोग इनसे सर्वदा डरते रहते हैं। यदि कोई इनके विरुद्ध जाने का प्रयत्न करे तो किसी न किसी बहाने से उसकी दुर्गति करके ही विश्राम लेते हैं। हमारी सरकार को भी जब कभी किसी गाव मे कोई भद्दा काम करवाना होता है तो उस अवसर पर ये ही लोग उसके काम आते हैं! पंचायत

ऐक्ट के अनुसार जब गाँवों मे पंचायत स्थापित करने की बात चली तो तहसीलदारों ने इसी श्रेणी के लोगो को पंच मुकर्रर किया। फल यह हुआ कि इन पंचायतों से गाँववालो को लाभ होने के स्थान पर नुकसान ही हुआ। जिन लोगों को पच और सरपंच का पद दिया गया वे पहले से ही गाव के गरीब निवासियो को सताने के लिए पर्याप्त शक्तिशाली थे; वे अब कानूनी अधिकार पाकर और भी भयंकर बन गये। किसी से किसी के विरोध मे मुकदमा खड़ा करा कर गरीब जनता को लूटना और सताना बिल्कुल आसान हो गया। हमारी सरकार ने संसार को दिखाने के लिए तो पचायत ऐक्ट पास किया, किन्तु जब इसका व्यावहारिक रूप गाँवो मे आया तो इसके द्वारा देहात मे फैले हुए लूट के दलालो को पुरस्कार के रूप मे कानूनी अधिकार प्रदान किया गया जिससे इन एजेण्टों के द्वारा हिन्दुस्तान की जनता को सफलतापूर्वक दबा कर रखा जा सके। १६२१ ई० के किसान आन्दोलन के बाद सरकार को दमन-नीति मे सहायता पहुँचाने के लिए ऐसे एजेण्टों की आवश्यकता भी थी, जिसमे वह पूर्णतः सफल रही।

सरकारी पचायत

पचायत के तरीको को देख कर मुझे अनुभव हुआ कि इनके द्वारा जनता मे मुकदमेबाजी की आदत बढ़ गई है। छोटे-छोटे मामलों को लेकर लोग कचहरी नहीं जाते थे और आपस मे लड़ झगड़ कर निश्चिन्त हो जाते थे किन्तु पंचायत के हो जाने से लोग उन्हीं छोटे-छोटे झगड़ों पर मुकदमा दायर करने लगे। फिर, जब एक बार मुकदमे का प्रारम्भ हो गया तो हारे हुए पक्ष को एक प्रकार की जिद सवार हो जाती है और वह क्रमशः ऊँची कचहरियो की ओर बढ़ने लगता है। इस प्रकार इन पचायतों का नतीजा यह हुआ कि लोग अधिक सख्या मे कचहरी जाने लगे और इससे सरकारी पक्ष मे एक साथ दो प्रकार का लाभ होने लगा। प्रथम तो यह कि उसकी इच्छा के अनुसार घर-घर में फूट पैदा हो गई दूसरे कचहरी की आमदनी मे वृद्धि हुई।

कालान्तर मे मैने गॉव के किसानों से पूछा कि जब तुम्हारे यहा पंचायत पहले से मौजूद है तब इसकी चर्चा मुझसे क्यो नही करते थे ? मै इतने अधिक समय से पचायत-निर्माण का काम कर रहा हूँ अगर तुम लोग पहले सूचित कर देते तो इतना परिश्रम न करके उन्ही पचा-यतो से काम लेने का प्रयत्न करता। इस पर उन्होंने जो उत्तर दिये उन्हें मै यथातथ्य नीचे लिखने का उद्योग कर रहा हूँ। उन्होंने कहा "भला वह भी कोई पचायत है। जैसे जमींदार थानेदार चौकीदार और सिपाही वैसे ही सरपच और पंच! से लोग हमे क्या लाभ पहुँचा सकते हैं? उलटे हम लोगो पर घोर अत्याचार करते हैं। आप तो गाधी बाबा वाली पचायत चलाना चाहते हैं और चाहते हैं कि पचा-यत गाव गाव चर्खा चलवाये। लेकिन यदि कहीं इस सरकारी पचायत के पच लोगो की चल जाय तो जितने चर्खे चल रहे हैं उन्हें भी समाप्त करवा दें। उनकी हरी, बेगारी और बेदखली आदि से हम योंही मरे जा रहे हैं। अगर हम लोगों में से कोई कलकत्ता या रंगून से कुछ रुपये कमा कर लाता है और चाहता है कि नजराना देकर कुछ खेत-बारी बढा ले तो उसे भी हमारे इन पच परमेश्वरो की गृद्ध-दृष्टि से मुक्ति नहीं मिलती। किसी न किसी तरह उन्हे सब कुछ मालूम हो जाता है और कोई न कोई जाल बिछाकर वे अधिकाश कमाई हड़प जाते है।"

'ये भी क्या पंचायतें हैं ?'

हाय! भारत का वह पचायती और स्वावलम्बी समाज कहाँ गया, जब गाव का सारा प्रबन्ध ये पचायतें ही करती थीं? उनके स्थान पर प्रतिष्ठित आज की यह पचायत बृटिश साम्राज्यवाद की ओर से शोषण का एक साधन-मात्र है जिसके कर्ता-धर्ता हमारे ही गाव के बन्धु-बान्धव लोग हैं। हमे यह भी मालूम हुआ है कि इन पचों के दलाल भी होते हैं जो गरीब मज़दूर और किसानो की ही श्रेणी मे रह कर अपने साथियो के हितू बन कर उन्हें फास-फ़ूस कर इन साम्राज्य-

वादी एजेण्टों के चंगुल में ले जाते हैं। जो लोग बड़े-बड़े आन्दोलनों की बात सोचते हैं, उनको यह सोचना चाहिए कि राष्ट्रीय चरित्र की बुनियाद सड़ गई है और जब तक हम इसे ठीक न कर लें तब तक हम ऐसी सड़ी सामग्री के सहारे कौन सा आन्दोलन और कौन सी क्रान्ति कर सकते हैं। ऐसी भयावह स्थिति मे गाँव के अन्दर बैठकर केवल रचनात्मक कार्य किया जा सकता है और इस प्रकार राष्ट्रीय जीवन की बुनियाद को सुदृढ बनाया जा सकता है तथा देहाती जनता के चरित्र का सघटन किया जा सकता है। हमारे देश के बड़े-बड़े राजनैतिक नेता गाधीजी की इस सीधी सी बात को कब समझेंगे?

तुम तो बहुत से प्रान्तों के देहात में जाती हो, इसलिए देख ही लिया होगा कि देहात मे काम करने वाले कितने कम हैं?

पानी बन्द हो गया। अब बैरेक से बाहर निकलना है, अतः पत्र यहीं पर समाप्त करता हूँ। नमस्कार।

---

[१४]

समस्या की जड़

५—८—४१

पहले ही लिख चुका हूँ कि जिन दिनों मै देहात मे घूम रहा था, मार्च का महीना था। धीरे-धीरे अप्रैल भी आ गया। उस प्रान्त मे लू भी खूब चलती है। अतः दोपहर के समय घूमना कठिन हो गया। मुझे दोपहर के समय लोगो के घरो मे ठहरना पड़ता था। लू के बचाव के लिए किसान मुझे अपने घरों के भीतर ठहराते थे। इस प्रकार उनके घरों मे टिकने से भलीभाति विदित हो गया कि किसानों के मकान उनके रहने के लिए नितान्त अपर्याप्त हैं। जिस घर मे दो तीन भाइयो का परिवार एक साथ रहता है, उस घर के लोगों को यह कठिन हो जाता है कि वे अत्यल्प समय के लिए भी निजी (प्राइवेट) जीवन की रक्षा कर सके।

इतने पर भी जिन लोगो मे पर्दे का रिवाज है, उनके लिए तो जीवन ही भार-तुल्य हो जाता है। मैने देखा कि उन लोगो के कपड़े और विछौने आदि इतने गन्दे होते हैं कि उनमे दूर से ही वदवू आती है। उन लोगो से यदि कभी सफाई की वात करता था तो वे अपने पास अधिक कपड़े न होने के कारण विवशता प्रकट करते थे। सदियो से साधन-विहीन रहने के कारण ये लोग गन्दगी के अभ्यस्त हो गये हैं। बेकारी के कारण इनकी प्रकृति मे सुस्ती और काहिली ने अपना घर वना लिया है। इसीलिए इनकी स्वच्छता-पूर्वक रहने की प्रवृत्ति भी नष्ट हो गई है। उनके वारे मे शहर के कितने ही सज्जन, जिनमे वहुत से राष्ट्रीय कार्यकर्ता भी सम्मिलित हैं, मुझसे नाक-भौ सिकोड़ कर कहा करते हैं कि देहातियो से किसी प्रकार की आशा करना बेकार है और इनके मध्य मे जाकर बैठना तो सरासर वेवकूफी है। मै जव उसका कारण गरीबी और विवशता बताता हूँ तो कुछ नाराज होकर कहते हैं—"हम यह स्वीकार नहीं कर सकते कि वे सभी के सभी साधन-विहीन हैं, उनमे से वहुतो के पास साधन हो सकता है। वे इतने गरीव नहीं हैं कि कपड़े न धुला सके और रजाई न वदल सके।" ऐसा कहने वाले सज्जन यह भूल जाते हैं कि देहात मे ऐसे लोग वहुत थोड़े होते है जिनके पास साधन मौजूद होता है। अधिकाश लोग नितान्त साधन-हीन और दरिद्र ही हैं। वचपन से उनका जीवन दरिद्रता के वायुमण्डल मे व्यतीत होता है, इसलिए उसी वायुमण्डल के अनुसार उनका स्वभाव भी वन जाता है। इसमे उनका कोई विशेष अपराध नही है। अतः यदि देहात के लोगों को सफाई का पाठ पढाना है तो सवसे पहले उनके लिए आर्थिक सहूलियतों का प्रवन्ध करना होगा। जव तक उनमे अपने जीवन से दिलचस्पी न लाई जाय, तव तक वे हमारी वातों पर ध्यान नही दे सकते। सवसे पहले उनको यह

सब बुराइयों की जड उनकी गरीबी है

समझाना होगा कि काहिली दूर होने से उन्हें क्यों फ़ायदा होगा तथा इससे उनके कौन-कौन से अभाव दूर होंगे। इस प्रकार जब उनके जीवन मे कुछ आशा का सचार होने लगेगा, तभी उनकी जड़ता शिथिल हो सकेगी। जो लोग ग्राम-सेवा का प्रारम्भ सफाई या शिक्षा से करना चाहते हैं, उन्हे देहात की इस स्थिति पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए। किसी न किसी आर्थिक प्रोग्राम की सफलता के बाद ही सफाई आदि का प्रोग्राम हाथ मे लिया जा सकता है। यही समझ कर मैंने कुछ ही दिनो के बाद गाँव वालो से सफाई के सम्बन्ध मे ताकीद करना छोड़ दिया और केवल चर्खा और पंचायत का ही कार्य लेकर चलने लगा। पचायत का काम भी केवल चर्खा चलवाने तक ही सीमित रहा। पंचायत का कोई वास्तविक स्वरूप तो अधिकतर गांवो मे बन नहीं पाया किन्तु इस प्रचार से चर्खा का प्रचार पर्याप्त बढने लगा।

गर्मी दिन दिन भीषण होने लगी और लू अधिक चलने के कारण चर्खे का काम भी कुछ कम होने लगा। गर्मी की वजह से मेरा घूमना भी कम हो गया। कभी कभी मै चार-चार पाँच-पाँच दिन तक देहात मे जाता ही नही था। इधर राष्ट्रीय सप्ताह भी आगया था, यह भी मेरे देहात मे न जाने का एक कारण हुआ। इसमे मैंने केवल टाँडा के कस्बे मे खादी बेचने का प्रोग्राम रक्खा। राष्ट्रीय सप्ताह के प्रोग्राम के लिए अकबरपुर से श्री देवनन्दन भाई भी मेरी सहायता के लिए आये हुए थे। बाद मे वह भी मेरी सहायता के लिए टाँडा ही रहने लगे। हम दोनों ने बड़ी धूम से खादी बेचने का काम किया। सप्ताह समाप्त होने पर वे हिसाब देने के लिए अकबरपुर चले गये। उनके चले जाने पर मैंने सोचा कि लगभग पन्द्रह दिन होगये, मै देहात नहीं गया। अब देहात का प्रोग्राम बनाना चाहिए। तदनुसार मैंने देहात मे जाकर देखा कि चारो ओर हैज़ा फैला हुआ है। गाँवों मे अनेक व्यक्ति मर रहे हैं। हर तरफ आतंक छाया हुआ है। कोई एक

गाँव से दूसरे गाँव जाने का साहस नही करता था। मुझको गाँव मे आते देख कर सब लोग आश्चर्य करने लगे। और गाँव की औरतें दबी ज़बान से मुझे टाँडा वापिस जाने के लिए कहने लगी। वे मेरे निकट आकर इस प्रकार धीरे से कहती थी कि कहीं कोई सुन न ले। मै टाँडा वापिस तो अवश्य आया किन्तु स्पिरिट कैम्फर की बोतल हास्पिटल से लेकर फिर गाँवों को वापिस चला गया। देहात में जब मै कालरा के रोगी के पास जाकर उसे दवा देने की कोशिश करता था तो लोग बहुत एतराज़ करते थे। कहते थे—"भवानी माई नाराज़ हो जाँयगी और जितने लोग बचे हैं, उन्हे भी हैज़ा हो जायगा।" मै कहीं-कही ज़बरदस्ती दवा पिला देता था लेकिन साधारणतया इस काम मे सफल न हो सका। भद्र कही जाने वाली अन्य जाति के एकाध व्यक्तियों को तो मै दवा पिला भी सका किन्तु चमारो के परिवार मे किसी एक को भी दवा पिलाने मे असमर्थ रहा यद्यपि हैजे का प्रकोप सब से अधिक इन्हीं लोगो मे था। कुछ ब्राह्मण क्षत्रिय घरो के लोग हमे बुला कर भी ले गये क्योंकि ये लोग पहले से ही मुझे डाक्टर साहब समझते थे। इस प्रकार चार-पाच दिन प्रयत्न करके देखा कि इन लोगो मे दवा का प्रबन्ध करना बेकार है! कड़ाके की धूप मे अनेक गाँवो का चक्कर लगाने पर शायद ही एकाध आदमियो को दवा पीने के लिए तैयार कर पाया था। गाँव के लोग ऐसे सक्रामक रोग को

यह बेहोशी!

रोग नही समझते हैं; इसे 'भवानी माई' का प्रकोप समझते है। मैने देखा कि घर में इतने भीषण रोग के होते हुए भी लोग निश्चिन्तता के साथ बैठे रहते थे। बगल मे रोगी पड़े हैं, किन्तु न तो ये रोते है, न कुछ कहते हैं और न किसी प्रकार का उद्योग ही करते हैं। मैने बहुत प्रयत्न किया कि यदि ये लोग दवा खिलाना स्वीकार नही करते तो मै कम से कम प्याज़ का रस ही पिला दूँ। किन्तु उनकी गरीबी इतनी है कि बेचारो के घरों मे प्याज भी नहीं होता था।

गॉव के लोगो को दवा पीने से इनकार करते हुए तथा इस प्रकार निश्चिन्त भाव से बैठे हुए देख कर प्रारम्भ मे मुझे कुछ कुछ बुरा-सा प्रतीत हुआ किन्तु फिर विचार करने लगा कि ये लोग इतने गरीब और इतने साधनहीन हैं कि 'भवानी माई का प्रकोप' और 'तक़दीर' इत्यादि कह कर सन्तोष कर लेते हैं। इनके लिए यह भी एक प्रकार से अच्छा ही है। क्योंकि यदि इन्हे विश्वास होता कि दवा से ही रोगी अच्छा हो सकता है, तो वे इधर-उधर भटकते, दवा की कोशिश करते किन्तु कहीं प्रवन्ध न होने के कारण निराश हो जाते और कुछ कर न सकने के कारण स्वयं को धिक्कारते। ऐसी अवस्था में उन्हे प्रायः उन्माद सा हो जाता।

मै पहले ही लिख चुका हूँ कि अवध के ग्रामीणों की गरीबी गरीबों की अवस्था से गुजर कर बेहोशी की स्थिति मे पहुँच गई है। इसलिए लोग अपने को विवश जानते हुए भी उससे मुक्ति पाने के लिए किसी प्रकार की क्रान्ति या विद्रोह नहीं करते हैं। ऐसी परिस्थिति मे जब कभी अकस्मात् महामारी का प्रकोप होता है, तो इनके लिए 'भवानी का प्रकोप' रूपी मनोवृत्ति ही एक मात्र सान्त्वना

आर्थिक सुधार की आवश्यकता

है। जो लोग इस प्रकार की मनोवृत्ति को कुसंस्कार कह कर इन पर व्यंग करते है, उनको चाहिए कि इनके कुसस्कारो के प्रति इन्हे उपदेश देने की अपेक्षा इनकी आर्थिक स्थिति सुधारने का प्रयत्न करे। वे देखेगे कि आर्थिक सुधार के साथ-साथ उनकी कूप-मडूक मनोवृत्ति क्रमशः दूर होती जायगी। मेरा अनुभव है कि देहात मे जिनकी आर्थिक स्थिति जितनी ही खराब है, उतने ही अधिक वे कुसस्कारो के शिकार हैं।

तीन चार दिन इधर-उधर घूमने के पश्चात् मुझे महसूस होने लगा कि इस अथाह महासागर मे मै एक बूँद कैम्फर लेकर कर ही क्या सकता हूँ? दवा भी लगभग समाप्त हो चुकी थी। गाव के लोग भी मुझसे बार बार टाँडा वापस चले जाने का आग्रह कर

रहे थे। अतः एक कुर्मी के घर मे खाना खाकर, कुछ देर आराम करने के पश्चात् टाँडा वापस चला आया। धूप के कारण टाँडा पहुँचते पहुँचते बिलकुल थक गया और मकान पर पहुँच कर सो गया। शाम को तीन चार मित्र मुझसे मिलने आये। मै उनसे बात करने लगा और साथ ही शर्बत बनाकर उन लोगो को पिलाया और स्वयं भी पिया। अँधेरा हो जाने पर वे लोग अपने-अपने घर चले गये। मैं लालटेन जलाकर आँगन मे आ बैठा। काफी थक गया था, खाना बनाने की बात सोच रहा था, किन्तु कुछ आलस्य आ रहा था। आलस्य तोड़ कर उठना ही चाहता था कि अकस्मात् पाख़ाने की हाजत महसूस हुई। मै टट्टी गया किन्तु वहाँ से लौटने के पाँच ही मिनट बाद फिर टट्टी लगी, इस तरह दो-तीन बार टट्टी जाने के बाद मेरे सिर मे चक्कर आने लगे और हाथ-पैर कमजोर होने लगे। अब मुझमें इतनी भी शक्ति नही रह गई कि उठ कर कही बाहर जा सकूँ। पास-पड़ोस मे कोई था भी नही जिसको सहायता के लिए बुलाऊँ। फिर मै चारपाई पर के बिछौने हटा कर उसे नाली के पास ले जाकर उसी पर लेट गया। कैम्फर की बोतल की ओर देखा तो वह भी खाली थी।

स्वय हैज़े के चगुल मे

अन्ततः परमात्मा के ही भरोसे लेट गया और उसी चारपाई पर से ही टट्टी करता रहा। टट्टी के साथ-साथ कै भी शुरू हो गई थी। मै कुछ घबरा गया किन्तु करता ही क्या? सोचा, चलो भवानी के भरोसे पड़े रहो।

संयोग से रात की गाड़ी से ९—१० बजे के लगभग देवनन्दन भाई आ गये। मुझे ऐसी स्थिति मे देखकर बहुत घबराये और कुछ रुँआसे से हो गये। कहने लगे कि भाई धीरेन, अब क्या होगा? मैने उन्हे सान्त्वना देते हुए जवाब दिया, इस समय यह सोचने का अवसर नही है, तुम जल्दी से जाकर जानकी प्रसाद के यहाँ से कैम्फर की बोतल ले आओ। जानकी प्रसाद जी का घर आश्रम से ५ मिनट

का रास्ता था, देवनन्दन सिंह चले गये और शीघ्र ही दवा लेकर लौट आये। कैम्फर तो नहीं मिला किन्तु कोई दूसरी दवा लाकर पिलाई। जानकी प्रसाद जी मेरी वैसी अवस्था सुन कर मेरे पास न आकर सीधे डाक्टर के पास चले गये। इसी बीच में मेरा हाथ-पाँव ऐंठने लगा और क्रमशः मै बेहोश हो गया। डाक्टर आये, मेरी दवा-दारू हुई किन्तु मुझे कुछ भी पता नही चला। जब मै होश में आया तो मेरा कै-दस्त बन्द हो चुका था और मै बरामदे मे एक दूसरी चारपाई पर लिटाया जा चुका था। इस आकस्मिक बीमारी ने मुझे बिल्कुल कमज़ोर बना दिया। पंद्रह-बीस दिन के बाद कहीं अकबरपुर जाने के लायक हुआ। अकबरपुर के लोग मुझे टाँडा से बुला ले गये। पन्द्रह-बीस दिन वहा रहने के पश्चात् जब मुझमें कुछ शक्ति आई तो मै रेल-द्वारा घर चला गया। लगभग दो माह घर रहना पड़ा जिससे गाँव और वहाँ के लोगो से कोई सम्बन्ध नही रख सका।

पत्र समाप्त ही कर रहा था कि तुम्हारा पत्र आ पहुँचा। पत्र बहुत देर से मिला है। जेल मे पत्रो के आदान-प्रदान की व्यवस्था बहुत दोषपूर्ण है। हमारे एक साथी का तार ७ दिन मे मिला था। तुमने शिक्षा-सम्बन्धी जो किताब भेजने को लिखा है उसे शीघ्र भेज देना। यहाँ मौक़ा है, पढ़ डालूँगा। बाद को समय मिलना कठिन होगा। मै अच्छी तरह हूँ। सात पौण्ड वज़न बढ़ा है। प्रभाकर भाई, कृष्णदास भाई और सबको नमस्कार पहुँचाना। नमस्कार।

[१५]

दूसरी समस्याएँ

८—८—४१

बीमारी के पश्चात् मै अपने भाई के पास शिमला चला गया।

उस वर्ष सुलेखा और सुचेता* एण्ट्रेंस का इम्तहान देकर भाई साहब के ही पास शिमला गई हुई थी। अतः वे भी मुझ को साथी मिल गई। हम तीनो भाई बहिन जगलो में खूब घूमा करते थे। मै उन्हें देश और गाव के विषय मे कुछ बाते बताया करता था। इस प्रकार लगभग डेढ़ माह आनन्द-पूर्वक समय विताने से मेरा स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक हो गया और मै अकबरपुर लौट आया। टाडा का चार्ज दूसरे भाइयों ने ले लिया था और अब मेरे लिए कोई ख़ास ज़िम्मेदारी का काम नही रह गया था। किन्तु फिर भी मुझे एक ऐसा काम दे दिया गया जिससे मुझे देहात मे जाने का पूरा अवसर मिलने लगा।

मै जिस समय गाव के देहात मे चर्खे का प्रचार करता था, उस समय उसके आर्थिक पहलुओ पर भी काफी विचार करता था। फ़ैज़ाबाद जिले मे रुई नही पैदा होती। मै सवाई और ड्योढ़े के हिसाव पर सूत वदलता था, हिसाव लगाने पर मुझे ज्ञात हुआ कि इस तरह कात कर देहात के लोग अपना कपड़ा नही वना सकेंगे। क्योंकि कचड़ा वगैरह निकाल कर उनको इतनी कम वचत होती थी कि मेरे लाख हिसाब लगाने पर भी उस वचत से उनके सम्पूर्ण परिवार को कपड़ा मिलना किसी तरह सम्भव नही होता था। इस विषय पर मै राजाराम भाई से भी आलोचना प्रत्यालोचना किया करता था।

राजाराम भाई भी जव चर्खे पर आर्थिक दृष्टि से विचार करते तो वह भी उसी परिणाम पर पहुँचते थे। किन्तु विवाद करते समय वह इस वात पर विशेष जोर देते थे कि हमारी देहात मे इससे अवश्य लाभ होता है। उनका घर सहारनपुर ज़िले मे है और उधर के किसान अपने खेत की ही रुई से सूत कात कर बेचते हैं जिस से उन्हे लाभ होता है। वे प्राचीन काल से चर्ख़ा कातते चले आ रहे हैं। यदि वे अपनी रुई व्यापारियों के हाथ बेचते हैं तो वड़ी मंडियों की अपेक्षा

*यही सुचेता देवी अब देश के प्रसिद्ध जननायक और वर्तमान (१९४७) राष्ट्रपति आचार्य कृपलानी की पत्नी हैं। संपादक।

रुई की खेती बिना चर्खा पंगु है

उन्हें सस्ते दामो मे बेचनी पड़ती है। इसलिए सूत कात कर बेचने में उन्हे यथेष्ट लाभ रहता है। किन्तु अकबरपुर की अवस्था इसके प्रतिकूल थी। यहां बड़ी मडियो से मॅहगी रुई ख़रीद कर किसानों को दी जाती थी। जिससे वह उन्हें और भी मॅहगी पड़ती थी। इस प्रकार सहारनपुर के किसानो के समान अकबरपुर के किसानो को बचत होनी असम्भव थी। इसके अतिरिक्त किसान जो वस्तुऍ घर पर पैदा कर लेते हैं, उसका कोई मूल्य नही समझते। घर की रुई कात कर कपड़ा बनवा लेने मे उन्हे सम्पूर्ण मुनाफा ही मालूम होता है। घर की रुई से जितना भी सूत काता जाय सबका कपड़ा बनवा कर प्रयोग किया जा सकता है, किन्तु जो किसान रुई ख़रीद कर कातते हैं, उन्हे तो अपनी कताई से रुई का दाम भी चुकाना पड़ता है।

अतः फैज़ाबाद के किसानों को बचत की रुई से सूत कात कर कपड़ा पूरा करना असम्भव ही था। इस प्रकार के वाद-विवाद और चिन्तन करने से मुझे अनुभव हुआ कि फैजाबादी किसान जब तक रुई की खेती स्वय नही करेंगे, तब तक चर्खे की समस्या हल होना कठिन ही है। इसलिए टाँडा मे रहते समय गाँव वालो से रूई बोने के लिए कहता था। उन्हे यह समझाने मे विशेष कठिनाई नही पड़ती थी कि घर की रूई होने पर उनकी कपड़े की समस्या हल हो जायगी। अभी इसका प्रचार प्रारम्भ ही किया था कि मै बीमार पड़ गया और टाँडा मे पड़ा रहा। इस समय देवनन्दन भाई मेरी देख-भाल करने तथा मेरा कार्य सॅभालने के लिए रुके रहे। मैंने उन्हे कपास बोने की आवश्यकता समझाई और कहा कि आप यह प्रचार जारी रक्खे। वे टाँडा के इलाक़े मे पहले ही से काफी मशहूर हो चुके थे। सन् १६२१ के आन्दोलन से ही सम्पूर्ण तहसील के लोग उन्हे 'बाबा देवनन्दन' कह कर सम्बोधित करते थे। उनका व्याख्यान सुनने के लिए सभी किसान इकट्ठे हो जाया करते थे। उन्ही दिनों वे आन्दोलन में काम

करते हुए जेल भी हो आये थे। वहाँ के लोग उनके विषय मे मुझसे पूछा करते थे। इसलिए उनके प्रचार का बहुत प्रभाव पड़ा और बहुत से लोग रूई बोने के लिए तैयार हो गये।

मै घर जाते समय देवनन्दन भाई से कह गया कि वे इसका अनुमान कर लें कि कितने लोग कपास बोने को तैयार हैं और उसी के अनुसार कपास के बीज खरीद ले। मेरे कहे मुताबिक उन्होंने मेरे अवकाश-काल मे ही, जब मै शिमला मे रह रहा था, सारा हिसाब लगा लिया था और लगभग ११ बोरे कपास के बीज ख़रीद लिये थे। किन्तु उनके इस हिसाब मे गलती थी। ११ बोरे बीज बहुत अधिक थे। इस सम्पूर्ण बीज की खपत उस क्षेत्र मे नहीं हो सकती थी। जिस समय मै शिमला से लौटा, बहुत थोड़े बीज किसानों में बाँटे जा सके थे। आश्रम के लोग मुझसे कहने लगे कि यह तूफान आपही का उठाया हुआ है, इसलिए सम्पूर्ण बीज के बुआने का उत्तरदायित्व आप ही पर है। बीज वास्तव मे बहुत अधिक थे और बग़ैर तूफानी कोशिश के उनकी खपत का कोई चारा नही था। इस बीज के बाटने के सिलसिले मे मुझे काफी दूर तक जाना पड़ा। मैने स्थान-स्थान पर बीज का स्टाक रखवा दिया और एक बार निकलने पर दस-बीस दिन तक वापस नही आता था। बिनौला बोआने के सिलसिले मे एक खास बात दिखाई पड़ी। वह यह कि हमारे यहा के किसान खेती के कार्य मे किसी प्रकार की कोई नई बात करने के लिए नही तैयार होते हैं। देहात मे मेरे अधिक परिचय के कारण लोगो ने एक कट्ठा या दो कट्ठा के लिए बीज तो अवश्य खरीद लिया किन्तु उनमे से अधिकतर लोगों ने उसे नही ही बोया! जिन लोगों ने बोया भी उन्होंने उसे दूसरे अनाजों के साथ मिला कर बोया। इन बातों का अनुभव तुम लोगो को सेवाग्राम की तरफ भी होता होगा।

बिनौला बाँटने के सम्बन्ध मे मै टाँडा के पूरब काफी दूर तक चला गया और इस प्रकार मुझे बिड़हर परगना मे घूमने का काफी

खेती के लिए बिनौले का प्रचार

मौका मिला। इस से पहले मै बिड़हर मे कभी नहीं आया था। उस क्षेत्र में अधिकतर क्षत्रियों के ही गाव देखने को मिलते थे। ये लोग साधारणतया अच्छी स्थिति मे मालूम होते थे और हमारे काम से बिल्कुल घृणा करते थे। परगने के पूर्वी भागों में घूमने से मुझे एक नया अनुभव हुआ। मै पहले लिख चुका हूँ कि हॅसवर और टाडा के देहात मे भी ब्राह्मण और क्षत्रिय मेरे काम से इतनी नफरत करते थे कि मुझसे बात करना भी अच्छा नही समझते थे, लेकिन इधर के लोगो मे कुछ शहरी सभ्यता अवश्य दिखाई देती थी। शहरी सभ्यता का अर्थ यह कि दिल मे तो ये लोग काफी घृणा रखते थे और ऊपर से खूब चिकनी-चुपड़ी बातें करते थे। मुझसे इनकार नही करते थे, दरवाज़े पर जाने से बात भी करते थे और बीज भी ख़रीद लेते थे, किन्तु मुझे रात को टिकाने मे सभी घबराते थे। यद्यपि लोगो की ऊपरी बात-चीत काफी अच्छी होती थी किन्तु चार-पाँच दिनों मे मुझे मालूम हो गया कि ये लोग चर्खा और हमारे आन्दोलन से काफी नफरत करते हैं। कितने ही व्यक्ति तो मुझसे साफ-साफ कहते थे कि कांग्रेस और गाधी बाबा तो छोटे लोगो को सिर पर चढ़ा रहे हैं और सारी समाज-शृंखला को चौपट कर रहे हैं। यहा के लोगो मे छोटे लोगो के प्रति उतनी ही घृणा का भाव देखने मे आया, जितना शहर के पढ़े-लिखे मध्यम श्रेणी के लोगों मे। यहा के ठाकुर छोटी जाति के लोगों के साथ सीधे बात भी नही करते थे।। इस प्रकार की भावना मुझे अन्य स्थानों मे भी देखने को मिली थी किन्तु इतनी अधिक मात्रा मे नही। इस प्रकार की मनोवृत्तियो को देख कर मुझे यह अनुभव हुआ कि चाहे गाव की मध्यम श्रेणी के लोग हों चाहे शहर के, जिनमें भी पाश्चात्य ढंग की ऊपरी चिकनाहटपूर्ण सभ्यता की भावना जितनी अधिक मात्रा में आई है उनके हृदय से मनुष्यता की भावना उतनी ही अधिक मात्रा

मे कम हो गई है। उनके विचार से जो लोग उनकी अपनी श्रेणी के हैं, उनके साथ तो वे अत्यधिक और अप्राकृतिक रूप से मृदु व्यवहार करेंगे, किन्तु जिन्हे वे छोटा समझते हैं उनके साथ ऐसा व्यवहार करेंगे कि मानों उन्हें मनुष्य ही नहीं समझते। यहाँ के ठाकुर मेरे साथ जिस प्रकार अच्छा व्यवहार करते थे उसी अनुपात से छोटों के प्रति नफरत और अत्याचार का व्यवहार करते थे! शायद तुम सोचती होगी कि १७ साल बाद अब अवस्था कुछ सुधरी होगी किन्तु अब भी वैसा नहीं हुआ है। इधर १९३८-३९ मे जब मैं बिड़हर गया तो देखा कि छोटी जातियों के प्रति लोग ठीक उसी तरह से घृणा और अत्याचार का व्यवहार करते हैं। वहाँ के जो लोग कांग्रेस में शामिल हैं वे भी इससे बरी नही हैं। उस समय मै यह सब देखता था और सोचता था कि भारत के वे पुराने दिन कब लौट आयेंगे जब हिन्दुस्तान में ग़रीब से ग़रीब लड़के राजाओं के लड़कों के साथ गुरु-गृह मे अपने हाथ से गौवों की सेवा करते थे और घास छीला करते थे, जब गाँव के हर छोटे-बड़े एक दूसरे से आदर और सम्मान का व्यवहार करते थे। पश्चिमी भेद-भाव की भावना ने ही तो आज श्रेणी-संघर्ष का रूप ले लिया है!

मै बीज बुआने के सम्बन्ध मे बात करते-करते कहा चला गया। तुम सोचोगे इन सब बातों का सम्बन्ध बीज बुआने से क्या है? किन्तु उस बुआई के प्रयत्न मे मेरे हृदय मे जो जो भावनाएँ उठती थीं अगर उन्हे नहीं लिखता तो सम्भवतः वह भी ठीक न होता। इस प्रकार के सतत प्रयत्न से करीब-करीब सभी बिनौले समाप्त कर डाले थे। इस काल मे मुझे जो दो-एक बाते देखने को मिली थी, उन्हे भी कह देना बुरा न होगा। इससे देहात के उस समय के समाज के सम्बन्ध मे थोड़ी सी जानकारी मिल जायगी। मै आम तौर से जहाँगीरगंज तक के ही देहात मे बिनौले का प्रचार कर रहा था, क्योंकि वहीं तक आश्रम के सूत का केन्द्र था, उसके पूर्व की ओर कोई केन्द्र

न होने के कारण उधर जाना बेकार समझा। एक दिन बिनौला लेकर मोटर से जहागीरगंज जा रहा था, उसी मोटर मे एक जमीदार के लड़के, जो युनवर्सिटी मे शिक्षा पा रहे थे, मिले। मोटर मे ही मेरा उनसे परिचय हो गया। उन्होंने मुझे अपने गाव कम्हरिया बिनौला ले चलने को कहा। कम्हरिया जहागीरगंज से ८ मील की दूरी पर है। उन्होंने आश्वासन दिया कि वे अपने आस-पास में काफी बिनौला बेचवा देने का प्रयत्न करेंगे। पूरब जाने में मुझे जो पहला गाँव मिला वह काफी अच्छा मालूम होता था। उस गाँव में एक अच्छा-सा मकान दिखाई दिया। मैने समझा कि यह मुखिया का मकान होगा, (जब से मै बिड़हर में घूमने लगा था, ज्यादातर मुखिया के ही घर जाता था और वहाँ से दूसरे स्थान को चला जाता था।) यह सोच कर उसके बरामदे में जो तख्त बिछा हुआ था उस पर जाकर बैठ गया। लगभग आध घण्टा बैठने के पश्चात् भीतर से एक स्त्री निकली। उस की वेश-भूषा और कपड़ा आदि के देखने से मालूम हुआ कि मै किसी भले घर में आया हूँ। मैने उससे पूछा कि यह मुखिया का घर है क्या? एक अनजान आदमी को इस तरह से बैठे हुए देख कर उसे कुछ आश्चर्य-सा हुआ किन्तु मेरे प्रश्न करने पर वह दरवाजे के पास नीचे बैठ गई और पूछने लगी कि आप मुखिया का घर क्यो तलाश कर रहे हैं? मैने अपना उद्देश्य उससे कह सुनाया। इस पर उसने उत्तर दिया कि आप को परीशान होने की जरूरत नही है। मै सम्पूर्ण प्रबन्ध कर दूँगी। इतना कहने के बाद वह कही बाहर चली गई और थोड़ी देर मे लौट आई। एक आदमी मेरे लिए हाथ-पैर धोने का पानी लाया। मै थका हुआ तो था ही, हाथ-पैर धोकर निश्चिन्त होकर बैठा और उस स्त्री के दिये हुए चबैने और रस का सदुपयोग करने लगा। मेरे रस पी चुकने के बाद वह स्त्री वहाँ बैठ गई और गाँधी बाबा तथा अन्य दुनिया भर की तमाम बातें करने लगी। लगभग घंटा-डेढ घंटा पश्चात् गाँव के बहुत से लोग वहाँ इकट्ठा हो गये और उस स्त्री ने

उनसे मेरे आने का उद्देश्य बताया और कहा कि सबको चाहिए कि थोड़ा-थोड़ा बिनौला लेकर अपने खेत मे बोये। मैने भी उन्हे, चर्खा चलाने के फायदे, गाँधी जी के उपदेश तथा रूई बोने के काम आदि बाते समझाई। सब लोग थोड़ा-थोड़ा बिनौला लेकर चले गये किन्तु दो-एक आदमी वहाँ रह गये। शाम भी हो रही थी, मै सोच रहा था कि अब क्या करूँ? उस घर मे टिकना तो मुश्किल था क्योकि वहाँ एक स्त्री और सिर्फ एक छोटी-सी लड़की ही रहती थी। उस समय किसी अन्य गाँव को चलना भी असम्भव ही सा लग रहा था। मै इस प्रकार द्विविधा की परिस्थिति मे पड़ा हुआ था कि इतने मे ही एक मुसलमान, जो काफी अच्छे कपडे पहने हुए थे और शहरी ढंग के मालूम होते थे, वहाँ आ पहुँचे। उन्हे देखते ही वह स्त्री कह उठी "आओ, जिलेदार साहब आओ" और अत्यन्त घनिष्ठता के साथ मुस्कराते हुए बोली कि "लेओ आज हमरे घर मे

चरित्रहीना के पाहुन आएवा, आज तुहरे सब के नाहीं चली।"

घर मे

उस स्त्री की बात-चीत करने के ढंग से मुझे एकदम सन्देह हो गया कि कहीं मै किसी बुरे स्वभाव वाली स्त्री के घर मे तो नही आ गया? मै बड़ी घबराहट मे पड़ गया और फौरन ही वहाँ से चल देने की सोची किन्तु थोड़ी ही देर मे अपने को सम्हाल लिया और सोचा कि मुझे गाँव के विषय मे अध्ययन तो करना ही है फिर यह नया अनुभव क्यो छोड़ दे? अत: निश्चिन्त होकर बैठ रहा। उस स्त्री ने जिलेदार से मेरा परिचय कराया और मुझसे तथा जिलेदार से बाते होने लगीं। वह स्त्री अन्दर चली गई। जिलेदार भी उसी तख्त पर बैठा हुआ था जिस पर मै। वह बिनौले निकाल निकाल कर देखने लगा और मुझसे उनके बोने के नियम पूछने लगा। थोड़ी देर में एक आदमी दो-तीन चारपाइयाँ लाकर रख गया और पाँच-सात आदमी आकर इन चारपाइयों पर बैठ गये और जिलेदार से बात-चीत करने लगे। कभी-कभी वे लोग मुझसे भी

एकाध बात कर लिया करते थे। इस प्रकार हम सभी लोग उस संध्या-काल मे बात-चीत मे समय काटने लगे। थोड़ी देर बाद वह स्त्री भी आकर इस वार्तालाप मे शामिल हो गई। अव सब की बात-चीत के ढ ग से मुझको उस स्त्री के चरित्रहीन होने मे रंच-मात्र भी सन्देह नहीं रह गया। थोड़ी देर बाद सब लोग उठ पड़े और चलने के लिए तैयार हो गये। जिलेदार भी उठ पड़ा और सबेरे आने का वादा करके चला गया। जिलेदार के चले जाने पर मै यह सोचने लगा कि रात कहाँ विताऊँ? अँधेरा काफी हो चुका था, दूसरी जगह जाना मुश्किल था इसलिए मैने उसी तख्त पर पड़े रह कर रात काटने का निश्चय कर लिया। उस स्त्री ने मुझसे पूछा कि आप क्या खाना वनावेंगे? आप जैसा कहे मै वैसा प्रवन्ध कर दूँ। उस समय उस स्त्री की बात-चीत से मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह यह समझ गई है कि मैने उसकी वाते जान ली हैं। क्योंकि अब वह मुझसे बाते करने मे कुछ झिझकती थी और घवरा सी जाती थी। मैने उसे उत्तर दिया कि आखिर तुम्हे भी तो कुछ वनाना-खाना है, उसी मे मे थोड़ा हमे भी दे देना। मै अलग वनाने की झंझट क्यों करूँ? मेरी इस वात से उसका चेहरा शर्म से लाल हो गया और थोड़ी देर के लिए उसकी ज़वान वन्द हो गई। फिर वह वहुत हिचक के साथ वोली—"भइया हमार छूआ खाये माँ कोई हरज तो न होईना? अगर कौनो हरज होय त इंतजाम होय सकत है।" मैने उससे कहा—"माई, मनई मनई के वनावा खाई तो वहमाँ हरज का होई?" फिर वह अन्दर चली गई और मै उसी तख्त पर लेट गया। दो घंटे के वाद उस स्त्री ने मुझे वहुत प्रेम से खाना खिलाया। अव तक उसकी झिझक भी मिट गई थी और वह खाना परोसते समय गाँधी वावा की वात वहुत श्रद्धा के साथ पूछ रही थी। उसके खाना खिलाने के ढ ग मे मुझे वही भावना दिखाई दी जो हर जगह दिखाई देती है। यह है भारतवर्ष का नारी-हृदय,

नारी का वही सनातन मातृत्व

जो मातृत्व की भावना से भरपूर रहता है। भारत की स्त्री के हृदय मे प्रेम और श्रद्धा की जो भावना होती है, फिर चाहे वह किसी धर्म, किसी जाति और किसी श्रेणी की हो, वह शायद संसार के किसी अन्य देश की स्त्री मे नही होगी। एक स्त्री जो खुले आम अपनी चरित्र-हीनता का परिचय देती है, उसके हृदय में भी इतना प्रेम और श्रद्धा मौजूद है कि उसका अनुभव कर अवाक् हो जाना पड़ता है। किन्तु हमने स्त्री जाति को पिछड़े रहने के लिए कितना विवश कर रक्खा है। अगर समाज मे इनको अपना उचित स्थान प्राप्त हो जाय तो हमे जीवन की लड़ाई मे इतनी परीशानी न उठानी पड़े।

प्रातःकाल मै उठ कर शीघ्रता से चला जाना चाहता था किन्तु उस स्त्री ने मुझको रोका और कहा कि 'बिना जलपान किये मै नहीं जाने दूँगी।' इसलिए मुझे वही पर बैठ जाना पड़ा। थोड़ी देर मे जिलेदार भी वहाँ आ पहुँचा। उसने मेरा बचा हुआ सम्पूर्ण विनौला खरीद लिया और कहा—"लाओ, मै भी अपने यहाँ बुवा दूँगा।"

पानी पीकर मै उस गाँव से चल दिया और जहाँगीरगंज की ओर वापस आने लगा। उस स्थान से जहाँगीरगंज प्रायः १० मील दूर था इसलिए मुझे रास्ते मे काफी समय लग। मार्ग चलते-चलते मैं उस स्त्री के विषय मे सोचने लगा। ऐसी स्त्रियाँ मैने पहले कभी नहीं देखी थी। उसका घर और उसके रहने की शैली बाजारू स्त्रियों की तरह नही प्रतीत होती थी किन्तु फिर भी जिस ढग से श्रीमान् लोग उसके यहाँ एकत्र होते और उसके साथ जिस प्रकार का व्यवहार करते उससे स्पष्ट दीख पडता था कि उस स्त्री की चरित्रहीनता बिल्कुल खुली चीज़ है। इस घटना के पश्चात् मै जहाँ कही भी गया, इस घटना के सम्बन्ध मे पूछ-ताछ करता रहा। लोगों ने बताया कि इधर के गाँवों मे इस प्रकार की स्त्रियाँ अधिक है जो प्रायः विधवाएँ होती हैं। अधिकाश उच्च घराने की होती हैं; इनके पास जीवन-यापन के लिए कुछ भूमि होती है; ये अपने घरों में स्वतंत्र रूप से रहती हैं;

इनका स्वतंत्र रहना ही इनके बिगड़ने का कारण होता है; गाँव के लोग इनके अकेलेपन का लाभ उठा कर इनसे दोस्ती का सिलसला क़ायम करते हैं और इनका जीवन बरबाद करते हैं। मुझे यह भी विदित हुआ कि गाँव के अच्छे कहे जाने वाले व्यक्ति ही इनसे विशेष सम्बन्ध रखते हैं।

इस कथा से इतना तो स्पष्ट ही हो गया कि उस समय का समाज इस किस्म की सामाजिक दुर्नीति से परिपूर्ण था। आजकल इस दिशा में कुछ सुधार अवश्य हुआ है क्योंकि उस समय ऐसी स्त्रियों के घर पर आना-जाना और उठना-बैठना समाज के लोग बुरी निगाह से नहीं देखते थे, किन्तु आज कल इस प्रकार के लोगो के प्रति काफी विरोध प्रकट किया जाता है। यद्यपि आज भी समाज मे इन बुराइयो से सर्वथा मुक्त हुए लोगों की संख्या बहुत कम है। मैने इस प्रकार के लोगो को भी देखा है जो स्वय इन बुराइयो मे अनुरक्त रहते हैं किन्तु इसी कोटि के दूसरे व्यक्ति को काफी भला-बुरा कहते हैं। फिर भी इतना तो स्पष्ट ही है कि समाज को यह अनुभव होने लगा है कि यह कार्य बिल्कुल नीति-विरुद्ध है। आज-कल के ग्राम-सुधारक के सामने इस बुराई को दूर करने का भी एक अत्यन्त आवश्यक कार्य है।

उस दिन मै जहाँगीरगंज से अकबरपुर लौट आया। इधर बिनौला भी लगभग समाप्त हो चुका था, जो बच भी गया था उसे बोने का अवसर नही रह गया था। इसलिए मै अकबरपुर मे ही रहने लगा। आज का पत्र बहुत लम्बा हो गया। इसके पश्चात् मेरा गाँवों मे आना जाना भी बन्द हो गया, अब उनके सम्बन्ध मे मुझे कुछ लिखना भी नहीं रह गया। अतएव अब अपनी देहाती राम कहानी समाप्त करता हूँ।

तुम लोगों की क्या खबर है? मीतुमा क्या कर रही है? मै जब 'वहां जाता था तो वह मुझे कहानी सुनाने के लिए तग किया करती

थी। उसे यह सच्ची कहानी सुना देना और उससे कहना कि वह मुझे लिखे कि यह कहानी उसे कैसी लगी? लिखना तो वह अवश्य सीख चुकी होगी। नही लिख सके तो मन मन मे बता दे। मैं आकाश से पूछ कर जान लूँगा। ठीक होगा न? उसे प्यार कहना। सबको नमस्कार!

---

[१६]

देश-भ्रमण की कहानी

१६—८—४१

अकबरपुर लौट आने के पश्चात् मेरे ज़िम्मे कोई खास काम नही रह गया। एक प्रकार से बेकार ही रहता था और यदि कोई रोगी आ जाता तो उसे दवा दे दिया करता था। असहयोग आन्दोलन पूर्ण रूप से दब चुका था। देश के भीतर निराशा-सी छाई हुई थी, स्वभावतः उन सभी कार्यकर्ताओं के समक्ष कुछ परीशानी-सी थी जो अपने व्यक्तिगत जीवन मे वापस नही चले गये थे। आश्रम मे भी इस प्रकार की चर्चा हुआ करती थी। अकबरपुर मे जितने व्यक्तियों के लिए काम था, हम लोगों की संख्या उससे बहुत अधिक थी। इसलिए हर कार्यकर्ता के लिए कुछ न कुछ बेकारी रहती ही थी। मुझे भी उस समय कोई जिम्मेदारी का काम नही था, हाँ, जिन-जिन व्यक्तियों के पास बिनौले का स्टाक था, उनका हिसाब लेने के लिए कभी कभी बाहर चला जाया करता था। जब लौट कर आश्रम मे आता था तो आश्रमी भाइयों को देश-विदेश भ्रमण करने की योजना बनाते हुए देखता था। इन योजनाओ पर आपस में विवाद भी चला करता था। मै भी थोड़ा-बहुत इस आलोचना-प्रत्यालोचना मे अवश्य सम्मिलित होता था, किन्तु कोई विशेष दिलचस्पी नहीं रखता था।

एक दिन दोपहर के समय बाहर से लौट कर आया तो देखा कि आश्रम के भाई लोग भ्रमण की बात-चीत कर रहे हैं। बहस इस बात पर थी कि भ्रमण का रूप किस प्रकार का हो? सब लोग पैदल ही चलने की बात कर रहे थे किन्तु विवाद मुख्यतया इस विषय पर था कि वेश-भूषा कैसी हो, कहाँ ठहरा जाय, कितनी दूर चला जाय? मेरे आते ही लोग पूछने लगे कि धीरेन्द्र तुम्हारी क्या राय है? हमें किस तरह जाना चाहिए। मैंने उनकी सारी बातें सुनकर उत्तर दिया कि जाना-वाना तो किसी को है नही, व्यर्थ मे बहस करने से क्या लाभ? पर लोगों ने विवाद करना नही बन्द किया। सहसा मैंने कहा कि मै कल निकलूंगा और उसी समय बताऊँगा कि निकलने का ढंग क्या होना चाहिए। जिसे मेरे साथ चलना हो वह अभी से निश्चय करले। रात के समय भी इसकी चर्चा ज़ोरों के साथ चलती रही। मैं यह सोच कर कि अब तो मैंने चलने का निश्चय कर ही लिया है फिर चर्चा से क्या लाभ, उस चर्चा मे सम्मिलित नही हुआ। किन्तु हृदय मे यह द्वन्द्व मचा हुआ था कि यदि मैं आश्रम छोड़कर चला जाता हूँ तो आश्रम के प्रति कर्तव्य का हनन होता है। फिर जी कहता था कि यदि मै पैदल घूम कर, काफी मुल्क देख सका तो देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशो का, विभिन्न प्रकार की श्रेणियों का अध्ययन हो जायगा। देश की जनता के विषय मे अध्ययन करने की रुचि मुझे पहले से ही थी। इस समय काम भी बहुत अधिक नही था इसलिए मेरी प्रवृत्ति चलने की ही ओर अधिक झुकी हुई थी। मै इस प्रकार द्विविधा में पड़ा हुआ था कि एकाएक हमारे पुराने साथी राजाराम भाई घर से आ गये। वे छः-सात महीने पहले अपने भाई की बीमारी के कारण घर चले गये थे। जाने के समय से अब तक हम लोगों को उनके सम्बन्ध का कोई समाचार नही मिला था। उस समय देश के राजनीतिक आन्दोलन मे बहुत से नौजवान, जिन्होंने १९२१ के अन्दोलन मे भाग लिया था, हताश होकर अपने-अपने घर वापस जा

रहे थे। हम लोगों ने राजाराम भाई के सम्बन्ध में भी यही सोच लिया था कि अब वे आश्रम में नही आवेगे। किन्तु उनके इस आकस्मिक पुनरागमन से मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यह ईश्वर की बहुत बड़ी कृपा है कि उसने राजाराम भाई को यहाँ ला पहुँचाया। अब मेरे जाने से आश्रम की लेश-मात्र भी हानि नही होगी। मै निश्चिन्त होकर आश्रम से विदाई ले सकता हूँ। मुझे अब किसी प्रकार की द्विविधा नही रह गई। रात को निश्चिन्तता से सोया। सबेरा होने पर २गज़ लम्बे १गज़ चौड़े दो गमछे, दो लँगोटे, एक झोला और एक लाठी लेकर जिस स्थान पर बैठ कर अन्य आश्रमी भाई बात-चीत कर रहे थे, वहाँ जा पहुँचा और कहा—"देखो, मेरे विचार से इस प्रकार की पोशाक पहनकर चलना चाहिए और जिधर ये दोनों आखें ले चलें उधर ही चलना चाहिए। अब बताओ कौन कौन मेरे साथ चलने के लिए तैयार है" गत रात तक लोगों ने हमारी बातो की गम्भीरता की ओर ध्यान नही दिया था। समझ रहे थे कि नित्य की भाँति यह भी एक कपोल-कल्पना है, परन्तु अब मुझे इस प्रकार तैयार देखकर कुछ आश्चर्य मे आ गये और कहने लगे कि तुम जाओ, हम लोग नही जाते किन्तु मेरे एक साथी श्री श्रीनिवास सिंघल मेरी ही तरह पोशाक तैयार कर मेरे साथ चलने को उद्यत हो गये। फिर हम दोनो व्यक्ति दोस्तपुर जाने वाली सड़क से होकर दक्षिण दिशा की ओर चल दिये।

यात्रा की आकस्मिक घोषणा

मेरे इस उपर्युक्त लेख को पढ़ कर संभव है तुम सोचो कि ग्राम-सेवा के अनुभव से इन बातों का क्या सम्बन्ध है? तुम्हारा यह सोचना ठीक भी है, ग्राम-सेवा से इन बातो का कोई सीधा सम्बन्ध है भी नहीं। किन्तु इस प्रकार के पर्यटनों ने मेरे मस्तिष्क को पर्याप्त प्रभावान्वित किया है, और वे प्रभाव ग्राम-सेवा के काम मे काफी सहायक हुए हैं। इसके अतिरिक्त भ्रमण-सम्बन्धी यह मेरा संक्षिप्त लेख तुम लोगो के लिए एक दिलचस्प कहानी का काम देगा। यों तो यदि मै इस

वृत्तान्त को विस्तार-पूर्वक लिखना चाहूँ तो एक बड़ी दास्तान हो जायगी अतएव एकाध प्रमुख घटनाओं का अनुभव बता कर ही इसे समाप्त कर दूँगा।

अकबरपुर से प्रस्थान कर दोस्तपुर के मार्ग से होते हुए हम लोगों ने सुलतानपुर का ज़िला पार कर लिया और इलाहाबाद की सीमा में दाख़िल हो गये। अकबरपुर से इलाहाबाद लगभग १०० मील दूर है और यह दूरी हम लोगों ने ५ दिन में समाप्त की। इलाहाबाद स्टेशन पर ही, अकबरपुर के रेलवे के एक पुराने कर्मचारी श्रीनान्दी बाबू से मुलाकात हो गई। वे हम लोगों को देखते ही पास आ गये और आश्चर्य के साथ कह उठे—"आप लोग यहाँ कहाँ? आप लोगों की खोज में तो अकबरपुर के लोग बड़े ज़ोर से व्यस्त हैं।" उनसे सब समाचार पूछने पर प्रकट हुआ कि आश्रम के लोग प्रथम दो दिन तक हमारे इस तरह प्रस्थान करने को मज़ाक की बात समझते थे और सोचते थे कि यहीं कहीं गाव में टिके होंगे और दो-चार दिन में वापस आ जायँगे। किन्तु तीसरे दिन भी हम लोगों के न आने पर हमारी खोज के लिए इधर-उधर कार्यकर्ता दौड़ाये गये। हम लोगों ने नन्दी बाबू से कह दिया कि आप जाकर उन लोगों को सूचित कर दीजिएगा कि वे लोग अब हमारी आशा न करें। हम लोगों ने यहाँ से जबलपुर जाने का निश्चय किया है, वहाँ से विन्ध्याचल का दृश्य देखते हुए द्वारका जाने का विचार रखते हैं, फिर द्वारका से रामेश्वर और रामेश्वर से कलकत्ता जाने का प्रोग्राम है, तदुपरान्त यदि जीवित बचे तो लौट कर आश्रम का दर्शन करेंगे। इस सम्पूर्ण यात्रा में दो वर्ष से कम न लगेंगे और दो वर्ष में संसार किधर से किधर चला जायगा; कौन जाने? इस प्रकार नन्दी बाबू को अपना सन्देश देकर हम लोगों ने उनसे विदाई ली।

प्रयाग में

अब हम लोगों ने इलाहाबाद से दक्षिण की ओर पैर बढाया

दक्षिण की ओर

और अपने पूर्व-निश्चित मार्ग से आगे बढने लगे। अधिकतर देहात के ही मार्ग से होकर यात्रा करते थे। लोगों से खाना माँग कर खाते थे और जहाँ समय आता पड़ कर सो जाते थे। प्रायः दोपहर और संध्या दोनों समय किसी न किसी गाँव में टिकते थे और स्थानीय लोगों से बात-चीत कर के वहाँ की अवस्था जानने का प्रयत्न करते थे—'लोग किस प्रकार जीवन व्यतीत करते हैं; उनकी आर्थिक स्थिति कैसी है; सामाजिक आचार-विचार किस प्रकार के हैं, इन सभी बातों की जानकारी प्राप्त करने का ध्यान रखते थे। उनके दलगत विचार और श्रेणीजन्य मनोवृत्ति का अध्ययन हम दोपहर और संध्या काल के भोजन-माँगन और रात के लिए विश्रामस्थल प्राप्त करने की वार्ता के ही सम्बन्ध में कर लेते थे। क्योंकि इन बातों को पूछ कर नही जाना जा सकता।

इस प्रकार हम लोग यू० पी०, सी० पी० और गुजरात के विभिन्न गाँवों और शहरों का चक्कर लगाते हुए लगभग ६०० मील की यात्रा करके अहमदाबाद पहुँचे। इस यात्रा मे हम अमीर कहे जाने वाले सम्भ्रान्त श्रेणी के लोगों के घरों मे गये, पढे-लिखे मध्यमवर्गीय बाबुओं के घर देखे, देहात के उच्च और भद्र कहे जाने वालों का अध्ययन किया और गाँवो के ग़रीब किसान और मज़दूरो के घरों मे भी पहुँचे। यदा-कदा के भील आदि जंगली जातियों मे भी रहना पड़ा। इस प्रकार इस यात्रा से हमे अनुभव हुआ कि मनुष्य जैसे-जैसे उच्च श्रेणी के होते जाते हैं और ज्यो-ज्यो समाज उन्हे शिक्षित और सभ्य कह कर पुकारने लगता है, त्यो-त्यों उनमे ग़रीब और साधारण रहन-सहन के लोगों के प्रति घृणा की मात्रा अधिक होती जाती है। प्रायः ऐसा भी होता था कि पेटभर भोजन प्राप्त करने के लिए हमे २०-२५ घरों की फेरी लगानी पड़ती थी और विभिन्न श्रेणियो के घरों से थोड़ा-थोड़ा भोजन माँग कर इकट्ठा करने मे,

उनके देने के ढंग को देख कर सहज ही उनकी मनोवृत्ति की थाह लग जाती थी। इस भीख माँगने के काम ने हमे यह भी अनुभव कराया कि यदि स्त्रियाँ न होती तो हम लोगों को जो यत्किञ्चित प्रेम और आदर मिला वह भी नही मिलता। अतिथि—अभ्यागत के प्रति सम्मान और आदर का व्यवहार करने की जो भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता थी, उसका अवशेष स्त्री जाति मे ही देखने को मिलता है। इसका अपवाद हमे अगर कही देखने को मिला तो गुजरात मे। वहाँ की स्त्रियाँ वाहरी लोगो के लिए कुछ करना पसन्द नही करती हैं, यह अनुभव मुझे उस प्रदेश के भ्रमण से ही हुआ। यह बात मुझे ऐसी खली कि सावरमती पहुँच कर जव हमको बापूजी से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और जव उन्होने पूछा कि 'मार्ग में लोगो का व्यवहार कैसा रहा' तो मैने तुरन्त उत्तर दिया—"और सब तो ठीक है, केवल आप का गुजरात वहुत ख़राव मुल्क है।"

गुजरात का अनुभव

हाँ, मै कह रहा था कि उच्च श्रेणी के शिक्षित तथा सभ्य कहे जाने वाले लोग साधारण मनुष्यों को घृणा की, और संकुचित दृष्टि से देखते हैं। मैने तुम्हें किसी पिछले पत्र मे लिखा था कि ये लोग जव अपनी श्रेणी के लोगों से मिलते हैं तो इनका व्यवहार अप्राकृतिक रूप से मीठा और शिष्ट हो जाता है। इस यात्रा की दो-एक घटनाओं के सुनने से इन वातों का तुम्हे और स्पष्ट अनुभव हो जायगा और कहानी के रूप मे कुछ मनोरंजन भी होगा। वर्धा में 'मीतुमा' को इनमे से कुछ कहानियाँ तो मै सुना चुका हूँ, उससे पूछना याद हैं या नहीं?

एक दिन हम लोग ग्वालियर राज्य की सीमा सरदारपुर से सीधे पश्चिम की ओर चले। सरदारपुर तक तो हम लोग सुन्दर जन-समुदाय-सम्पन्न भू भाग से हो कर आये। किन्तु सरदारपुर से केवल जंगल ही जंगल था। हमें लगभग १०० मील जगल पार करना था। जंगलों के

मध्य कहीं-कही मनुष्यो की छोटी-छोटी वस्तियाँ भी देखने को मिल जाती थी। ये वस्तियाँ भील लोगों की थी। भीलों के यहाँ आश्रय ग्रहण करने मे हम लोगों को बहुत आनन्द आता था। वे अपनी अवस्था के अनुसार मक्के की रोटी, खीरा, साग आदि सब्ज़ी खाने को देते थे। बेचारे भील दुनिया के शायद ग़रीव से ग़रीब प्राणी हैं किन्तु जव हम उनके यहाँ अतिथि के रूप मे पहुँच जाते थे तो सम्पूर्ण परिवार हमारे निकट बैठ कर पहले हमको खाना खिला लेता था' और जव हमारे विश्राम का प्रवन्ध हो जाता था, तव वे लोग स्वय भोजन करने जाते थे। भोजन के पश्चात् भी आकर वात-चीत करते थे, उनकी उन वातो मे आदर, प्रेम और सदाचार की झलक स्पष्ट दिखाई देती थी, किन्तु इतने पर भी ससार उन्हे असभ्य ही कहता है। ये लोग कितने ग़रीव हैं, इसके अनुमान के लिए तुम्हे एक दिन की घटना का वर्णन सुनाता हूँ। अगस्त का महीना था, हम लोगों को मार्ग मे घनघोर वर्षा का सामना करना पड़ा था, मार्ग मे कोई गाँव नहीं मिला इसलिए हम लोग तेजी के साथ आगे ही वढते चले गये। दो-तीन मील और चलने के पश्चात् एक वस्ती दृष्टिगोचर हुई। हम लोग उसी ओर वढे और एक भील के घर पर पहुँचे। उस भील के घर मे कोई स्थान ऐसा नही था, जहा पर पानी न चूता हो किन्तु मैदान की अपेक्षा कुछ वचाव तो था ही इसलिए हम लोग घर के भीतर एक स्थान पर खड़े हो गये। घर का मालिक हम लोगों को उस अवस्था मे देख कर कहने लगा कि आप लोगों को यहा वहुत कष्ट होगा, यदि आप पटेल के घर चले जायँ तो कुछ आराम मिलेगा। उस सम्पूर्ण वस्ती मे पटेल का ही घर सवसे अच्छा था। उसने एक छोटी लड़की को साथ भेज कर हमे पटेल के घर पहुँचा दिया। पटेल का घर, जैसा कि मै पहले कह चुका हूँ, उस गाव का ही नहीं, प्रत्युत उस सम्पूर्ण इलाके का अच्छा घर समझा जाता था किन्तु जव उसे हम लोगों ने देखा तो

भीलों का आतिथ्य

हैरान रह गये। एक छोटा सा घर था, उससे मिला हुआ एक लम्बा ओसारा था। ओसारा (बरामदा) दो भागों मे विभक्त था, जिस के मध्य मे जंगली लकड़ियों का एक परदा लगा था। रात के समय एक ओर पुरुष और एक ओर स्त्रिया रहा करती थीं। उसके सामने एक छोटी सी मड़ई भोजन बनाने के लिए थी। पटेल के परिवार मे वह स्वयं, एक बड़ा लड़का, एक लड़की और उसकी पुत्र-वधू थो। जिस भाग मे पटेल और उसका बड़ा लड़का दोनों सोते थे, उसी भाग मे उसने हम लोगों को भी आश्रय दिया। हम लोगों के निकट ही उसी भाग मे एक घोड़ा, दो बैल, एक बकरी और उसके बच्चे, तथा पाँच-सात मुर्गियाँ भी थी। एक कोने मे टूटी चारपाई, हल और घोड़े के ज़ीन आदि सामान रक्खे हुए थे। छप्पर से एक बाँस लटका हुआ था, जिस पर एक जीर्ण-शीर्ण कंधा, दो कमली और मैले गन्दे कपड़े रक्खे हुए थे।

यों तो ये लोग कपड़े पहिनते ही बहुत कम हैं, पुरुष कौपीन के आकार का एक चौड़े कपड़े का टुकड़ा बाँधते हैं और स्त्रियाँ कमर पर एक छोटा सा टुकड़ा लपेट लेती और वक्षस्थल पर भी एक टुकड़ा बाँध लेती है। बच्चे नगे ही रहते हैं। उसकी बड़ी लड़की, जो अनुमानतः बारह तेरह वर्ष की रही होगी, केवल एक छोटी सी गमछी लपेटे हुए थी। हम लोग जब उस लड़की के साथ चले थे तो रास्ते मे ही वह (पटेल) मिल गया था। उसने हम लोगों को अपनी बैठक में लाकर बिठाया, उस बैठक का दृश्य एक कबाड़खाना, गोशाला और घुड़शाले आदि के समन्वित रूप सा ही प्रतीत हुआ। पहुँचते ही वह सारा परिवार वहाँ आ गया और दस-पन्द्रह मिनट हम लोगों के स्वागतार्थ वहाँ उपस्थित रह कर अपने अपने काम पर चला गया। हम लोगों ने अपने गीले कपड़े उतार कर रख दिये और वहा पड़ी हुई दो खटोला-सदृश छोटी-छोटी चारपाइयों पर लेट कर गाव के मुखिया की सम्पत्ति का ग़ौर से निरीक्षण करने लगे। रात के समय

उन्ही दो चारपाइयो मे से एक पर पटेल और उसका लड़का और दूसरी पर हम दोनों व्यक्ति सो रहे। चारपाई लगभग ढाई फुट चौड़ी और चार फुट लम्बी थी, कोई भी साधन न रहने के कारण हम लोगों को उसी पर संतोष करना पड़ा किन्तु यात्रा की थकान से नींद में किसी प्रकार की वाधा नही पड़ी। प्रातःकाल हम लोगों ने देखा कि हमारे शरीर मुर्गों के पाख़ाने और पेशाब से भर गये हैं। इधर-उधर देखने पर ज्ञात हुआ कि जिस समय हम लोग चारपाई पर सो रहे थे उस समय मुर्गो की गोष्ठी ठीक हमारे ऊपर टॅगे हुए बाँस पर आराम कर रही थी। भोजन मे मक्के की रोटी और मक्के की दाल मिली थी। यह अवस्था उस इलाक़े के पटेल की है। अब तुम सरलता पूर्वक समझ सकती हो कि और लोगों की क्या दशा होगी? किन्तु इतना ग़रीब होते हुए भी उनके अतिथि-सत्कार की भावना में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं थी।

यात्रा की सम्पूर्ण घटनाओं का विवरण देना सम्भव नहीं है, परन्तु एक घटना का वर्णन और कर देने से तुम्हें यह पत्र विशेष अरुचिकर और लम्बा नहीं प्रतीत होगा।

भील प्रदेशीय जंगलो के भ्रमण करने मे वहाँ के भील काफी सहायता देते थे। उन जगलों मे ढके हुए पर्वतीय मार्गो मे हो कर निकलना हम लोगों के लिए असम्भवप्राय ही था। यद्यपि हम लोग सीधे पश्चिम की ओर बढ रहे थे, फिर भी उन जंगली और पर्वतीय प्रदेशो मे रास्ता भूल जाने की आशङ्का सदैव बनी रहती थी। वहाँ के भील साथ चल कर हमे एक बस्ती से दूसरी बस्ती तक पहुँचा दिया करते थे। इसी प्रकार उस जगली भूभाग मे हम लोग तीन दिन तक आगे बढते रहे। चौथे दिन दोपहर के समय एक भील हमें एक गाँव से दूसरे गाँव को पहुँचाने साथ चला किन्तु मार्ग में ही उसे एक दूसरा व्यक्ति मिल गया जो किसी अत्यावश्यक कार्य के लिए उसे उसी गाँव को वापस ले गया जहाँ से हम लोग चले थे। अतः विवशतः

हम लोग विना किसी पथ-प्रदर्शक के आगे वढ़े। अन्ततः जैसी हम लोगों को पहले से ही आशका थी, शाम हो गई किन्तु कोई बस्ती नही मिल सकी। हमे विश्वास हो गया कि हम लोग रास्ता भूल गये हैं। उस जंगल में पगदण्डियाँ तो हर तरफ थी किन्तु हम लोग निश्चय नही कर सके कि किधर जायें। अन्त मे श्री निवास जी एक पेड़ पर चढ गये। उस पर से उन्हे कोई शहर की तरह अच्छी बस्ती नज़र आई। ऊपर ही से उन्होंने उसी दिशा की ओर निर्देश किया और मैने उसके ही अनुसार अपने मन मे दिशा का निश्चय कर लिया। कुछ देर चलने के उपरान्त एक पहाड़ी नदी पार करके हम लोग झाबुआ राज्य के सदर मे पहुँचे। दिन भर की यात्रा और मार्ग भूलने की परीशानी ने हमे काफी थका दिया था इसलिए एक मन्दिर के वरामदे में जा कर लेट रहे। थोड़ी देर के पश्चात् खाना मागने के उद्देश्य से वहा से वाहर निकले किन्तु वस्ती मे जाने पर ज्ञात हुआ कि वहा अधिकतर जैनी रहते हैं। मार्ग मे हम लोगो को भली-भाति अनुभव हो गया था कि जैनियों के यहा किसी के खाने-पीने की

झाबुवा के अनुभव

कुछ सुनवाई नही होती है, इस जगह भी २०-२५ घरो का चक्कर लगाने पर अनाज का एक दाना भी नही मिला। अन्त मे निराश होकर फिर उसी स्थान पर आ कर बैठ गये। किन्तु ५-७ मिनट के ही पश्चात् तीन आदमी वहा आये और हम लोगों को वहा से हट जाने का आदेश दिया। हम लोग भूख और थकान से चूर-चूर हो रहे थे अतः वहा से जाने को जी नहीं चाहता था इसलिए बैठे ही बैठे उनसे वाद-विवाद करने लगे; तव तक तीन-चार आदमी और आ गये और अन्त मे हम लोग वहाँ से हटने को वाध्य हुए, जिस समय हम लोग वाद-विवाद मे लगे थे एक महाराष्ट्रीय स्त्री सड़क पर खड़ी-खड़ी सारा दृश्य देख रही थी। हम लोग जव उतर कर नीचे आये तो कहने लगी कि महाराजा की ड्योढ़ी पर आज खाना वितरित होने

वाला है, वहां से खाना लेकर वही शिव मन्दिर में आराम करना। हम लोगों ने उसे धन्यवाद दिया और महाराज की कोठी पर जा पहुँचे। वहा वहुत से कंगाल और फ़क़ीर दो लाइनो मे बैठे हुए थे, हम लोग भी उसी लाइन के अन्त मे जाकर बैठ गये। कुछ देर पश्चात् एक सण्ड मुसण्ड राजपूत चपरासी वहुत से आदमियों के सर पर खाना लदवाये आया। खाना क्या था? बड़े बड़े दो लड्डू हर एक को देता जाता था और राजा की जय बुलवाता जाता था। एक लड्डू का वज़न पाव भर से कम तो नहीं ही रहा होगा। उसने हम लोगों को भी लड्डू प्रदान किये और राजा की जय बोलने को कहा। हम लोगो ने जय वोलने से इनकार किया। इस पर वह मारने को दौड़ा। हम लोग भाग चले और एक तालाब के पास पहुँच कर लड्डू खानेका उपक्रम करने लगे।

लड्डू इतने सख्त थे कि लाख प्रयत्न करने पर भी दाँतों से नही टूट सके इसलिए उन्हे पत्थर पर रख कर पत्थर से ही चूर किया गया और खाना प्रारम्भ हुआ किन्तु घवराहट और थकावट के कारण गला इतना सूख रहा था कि पानी पी पी कर भी लड्डू को गले के नीचे उतारना कठिन हो गया। अन्ततोगत्वा गमछे मे बाधकर शिव मन्दिर मे पहुँचे। थोड़ी देर बैठने के पश्चात् श्रीनिवास ने कहा कि भाई भूख वड़े जोर से लगी है, चलो एक वार और प्रयत्न करे। सम्भव ह, कहीं रोटी प्राप्त हो जाय। मैने कहा जैनियों की वस्ती है, जव खाने का समय था तो कुछ मिला ही नहीं, अव इतनी रात को किसके घर मे खाने को रक्खा होगा? चुपचाप पड़े रहो, सवेरे देखा जायगा। किन्तु वह नही राज़ी हुआ, अतः हम दोनों फिर रोटी की खोज मे निकल पड़े। कई वार इधर-उधर घूमते देख कर एक सज्जन ने अपने वँगले के वरामदे से हमे बुलाया और पूछा—तुम लोग किधर जाओगे? कहा घूम रहे हो? मैने उन्हे उत्तर दिया—घूम कहीं नही रहे हैं, हम भूख प्यास से व्याकुल हैं, खाना चाहिए। यह सुन कर वह हम लोगो

को बग़ल के गोपाल मन्दिर मे ले गया और हमें ठाकुर जी का भोग दिलवाया। भोग, एक गीला पदार्थ था अतएव हमने उसे सरलता-पूर्वक खा लिया। खाने के पश्चात् हम लोग फिर उसके बॅगले पर गये। वह अब तक बरामदे मे ही बैठा हुआ था। अब उसने फिर हमसे बात-चीत करना प्रारम्भ किया और पूछा कि तुम लोग कहा जाओगे ? इसी समय उसका लड़का भी वहा आ गया, वह कहीं आफिस मे नौकर था, उससे हम लोगों ने दाहोद का रास्ता पूछा। नकशे से हमने देख भी लिया था कि दाहोद झाबुआ से २०-२५ मील की दूरी पर है। रास्ता पूछने पर लड़के ने कहा कि यदि कुछ लिखना पढना जानते हो तो लिख लो। मैंने उत्तर दिया कि थोड़ा थोड़ा जानता तो अवश्य हूँ, किन्तु श्री निवास को न जाने क्या सूझा, उसने कहा हा, बी० ए० तक पढे हैं। उस बुड्ढे ने जब यह सुना कि हम लोग बी० ए० तक पढ़े हैं तो वह एकाएक कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। अब तक वह हमको नीची निगाह से देखता था किन्तु सहसा उन सब की आकृति वदल गई, भाषा वदल गई और ढंग मे परिवर्तन हो गया। अब तक हमे कोई बैठाने वाला नही था किन्तु अब बैठने के लिए कुर्सी मिल गई और वे दोनों ही व्यक्ति वड़े शिष्टाचार के साथ वात-चीत करने लगे और इस वात की कोशिश होने लगी कि हम लोग रेलगाड़ी से ही जावे। देखा न, ज्योंही उन्हें ज्ञात हो गया कि हम भी उन्ही की श्रेणी के आदमी हैं, तो किस प्रकार दुनिया वदल गई ? हमने उन्हे उनके इस सौजन्य के लिए धन्यवाद दिया और कहा कि हम लोग पैदल यात्रा करने का निश्चय करके निकले हैं, गाड़ी पर नहीं चढ़ेंगे। उन्होंने कहा कि आप लोग यहीं ठहर जाइये, प्रातःकाल रास्ता वता दिया जायगा किन्तु हम लोगों ने शिव मन्दिर में रहने का निश्चय प्रकट किया और अनेकानेक धन्यवाद देकर वहाँ से चल दिये। शिव मन्दिर मे उस दिन कोई उत्सव था, आरती हो

व्यवहार मे सहसा परिवर्तन

रही थी, कुछ लोगों की भीड़ थी। हम लोग मन्दिर के एक कोने में कम्वल विछा कर बैठ गये और मै स्वामी रामतीर्थ का उपदेश पढ कर सुनाने लगा। हाँ, मै तुमको यह लिखना भूल गया था कि चलते समय स्वामी रामतीर्थ का 'इन उड्स ऑव गाड रियलाइजेशन,' एक छोटी सी रामायण और न्यू टेस्टामेंट लेकर निकले थे। मार्ग मे जहाँ आराम करने का अवसर मिलता था, पढ़ते थे। मुझको रामतीर्थ का उपदेश पढते देख कर कुछ नौजवान वहीं आकर वैठ गये और हमारा पढ़ना सुनने लगे और हमसे वातचीत करने की इच्छा प्रकट करने लगे। जव मैंने एक अध्याय समाप्त कर लिया तो पूछने लगे—"अच्छा, आप लोग अँग्रेजी भी जानते हैं?" तव तक एक महाशय पीछे से वोल उठे—"अरे यह वी० ए०, यल० यल० वी० हैं!" हमे वड़े जोर की हँसी आई, किन्तु गम्भीर होकर वैठे रहे और उन लोगों से वात-चीत करते रहे। थोड़ी देर के वाद जव सव लोग मन्दिर से चले गये तो वह वी० ए०, यल० यल० वी० कहने वाले महाशय रुक गये और हमे एक आदमी दे गये और कह गये कि यह आदमी आप लोगों को आठ मील जंगल पार करा कर दोहद जाने वाली सड़क पर पहुँचा देगा। यह महाशय वही थे, जिनके घर हम लोग रात को गये थे।

इस प्रकार की कितनी ही घटनाएँ अव तक स्मरण हैं; किन्तु उनसे हमारे ग्राम सेवा के विषय पर कोई प्रकाश नहीं पड़ना। इसलिए उन्हे लिखकर व्यर्थ पत्र का कलेवर वढाना ठीक नहीं होगा। दो-एक घटनाएँ इसलिए लिख दी कि तुमको यह ज्ञात हो जाय कि विभिन्न लोगों के साथ लोगों के व्यवहार-भेद के विषय मे अपनी राय स्थिर करने मे किस-किस प्रकार की घटनाओं ने मेरे मस्तिष्क पर प्रभाव डाला है, और साथ ही ऊँची श्रेणी के लोगों के प्रति मेरी स्वाभाविक अश्रद्धा का कारण क्या है, यह भी तुम पर स्पष्ट हो जाय।

कुछ दिवस बाद हम लोग साबरमती पहुँच गये और कीकी बहन के यहाँ ठहर गये। वहाँ पहुँच कर दादा का पत्र मिला कि जब तक हम न आवें तब तक आगे न बढें। अहमदाबाद में दादा जी के कुछ मित्र महानुभाव सपरिवार रहते थे और दादा के नाते हमारा भी उनसे परिचय हो गया था किन्तु हम लोगो के ग्रामीण रंग-ढंग देख कर उन लोगों की नाक-भौ सर्वदा सिकुड़ी रहती थी और उनके व्यवहार मे काफी घृणा और अनादर की भावना परिलक्षित होती थी।

मै तुम्हे प्रथम ही लिख चुका हूँ कि लोगो मे जैसे-जैसे तथाकथित शिक्षा और सभ्यता का विकास होता जाता है वैसे ही वैसे अपनी श्रेणी से नीचे वर्ग के लोगों के प्रति अनादर और असम्मान की भावना बढ़ती जाती है। साबरमती मे रह कर इसकी सत्यता का जितना अनुभव मुझे हुआ, उतना इससे पहले कभी नही हुआ था। हृदय मे सोचा करता था कि अगर इसी का नाम तमीज़ और तहज़ीब (विवेक और सभ्यता) है, तो परमात्मा भारतवर्ष से जितने ही शीघ्र इस तहज़ीब और तमीज़ का नाश करे उतना ही इस देश का कल्याण हो। मुझे यह भी महसूस होने लगा कि जिन लोगों को ये गँवार, बेवकूफ और जंगली समझते हैं, वे इन लोगों से कही अधिक सभ्य और शिष्ट हैं। यद्यपि अपनी श्रेणी के लोगो के साथ बात करते समय ये लोग जिस चिकनी और पालिशदार भाषा का प्रयोग करते हैं, वह भाषा उन ग्रामीणों को नही आती किन्तु उनके व्यवहार मे जिस प्राकृतिक आदर और सद्भावना की झलक रहती है, वह इन तथा-कथित सभ्य जनों मे नहीं पाई जाती। यह भावना उस समय से मुझमे इतनी दृढ़ हो गई है कि यथासम्भव मै आज तक अपने को ऐसे समाज से सर्वदा दूर रखने की कोशिश करता हूँ। और यह भी एक बड़ा कारण है कि मै देहात मे ही रहना पसन्द करता हूँ।

कौन सभ्य है ?

दादा के साबरमती आने पर उनके कहने के अनुसार हम लोगों

ने आगे बढ़ने का प्रोग्राम छोड़ दिया और आश्रम की ओर लौट पड़े एवं कुछ ही दिनों मे आश्रम पहुँच गये। उस समय आश्रम मे मेरे लिए कोई खास काम नही था इसलिए लोगो ने मुझे आश्रम के शुभाकांक्षी श्री सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय की सेवा मे लगा दिया जो उस समय महात्मा जी के अनशन के सम्बन्ध से दिल्ली मे मौजूद थे। मै उनके साथ कलकत्ता चला गया। पत्र बहुत लम्बा हो गया। अब यही खतम करना ठीक होगा। अब आगरा की गर्मी समाप्त हो चुकी है। जेल मे आज-कल काफी आनन्द है। मैं स्वस्थ हूँ। आबोहवा तो ठीक है, लेकिन इधर कुछ दिनो से यहाँ सब लोग कुछ उदास से हो रहे हैं। गुरुदेव के मृत्यु-सवाद ने एकाएक सबको स्तम्भित कर दिया था; आज कल केवल उसी की चर्चा होती है। कल श्राद्ध दिवस है, यहाँ भी उनके प्रति श्रद्धार्पण के लिए सभा का आयोजन किया गया है। राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण जी यहाँ ही नज़रबन्द हैं, उनको बहुत शोक हुआ है। वह कह रहे थे कि वाल्मीकि के पश्चात् इस कोटि के कवि बीच मे नही पैदा हुए थे। नमस्कार।

---

[१७]

निश्चित प्रयोग की चेष्टा

ता० २६—८—४१

श्री सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय दो माह बाद कलकत्ते से बनारस चले आये; मै भी साथ-साथ बनारस आया और उनकी सेवा मे लगा रहा। इसी बीच आश्रम के मन्त्री श्री विचित्रभाई बहुत अधिक बीमार पडे और उनके लिए दो-तीन साल का आराम लेना ज़रूरी हो गया। ऐसी अवस्था में आश्रम का चार्ज कौन लेगा, यह एक भारी समस्या हो गई थी। एक दिन दादा ने मुझसे इस कार्य का भार ग्रहण करने को कहा किन्तु इस समय मै इस उत्तरदायित्व को उठाने के लिए

तैयार नहीं था क्योंकि एक तो मै अपने को इस काम के योग्य नहीं समझता था और दूसरा कारण यह था कि यदि मै प्रधान कार्यालय की ज़िम्मेदारी लेता तो देहात से मेरा सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता। इतने दिनों तक देहात में रहते-रहते मुझे देहात से बहुत प्रेम हो गया था और मेरी प्रकृति भी कुछ इस प्रकार की हो गई थी कि शहरी जलवायु और शहरी लोगो से एक प्रकार की अरुचि-सी उत्पन्न हो गई थी। किन्तु दादा ने बाध्य किया कि जो कर सको वही करो, जो न समझ मे आये विचित्र भाई से पूछ लिया करना। इस प्रकार दादा के आदेशानुसार मैंने प्रधान कार्यालय का भार ग्रहण किया और तब से गाँव से मेरा सम्बन्ध छूट-सा गया। नये कार्य का उत्तरदायित्व अपने ऊपर आ पड़ने से मेरा सम्पूर्ण ध्यान उसी के सीखने मे केन्द्रीभूत हो गया और गाँव की बातें प्रायः भूल सी गईं। इसके पश्चात् जब सन् १६२८ मे समाचारपत्रों मे बारडोली सत्याग्रह का विवरण देखने को मिलने लगा और जब मैंने वहाँ के संगठन का विवरण पढा तो मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि इस तरह के सगठन के लिए अवध भी बहुत सुन्दर क्षेत्र है। प्रधान कार्यालय का कार्य करते हुए भी देहात के कार्य की योजना फिर मेरे मस्तिष्क मे स्फुरित होने लगी। उसी वर्ष कलकत्ता मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ था; कुछ कारण-वश उस साल हम लोग वहाँ की प्रदर्शनी मे खादी की दुकान नही ले जा सके, किन्तु आश्रम से खादी भेजी जा चुकी थी। इसलिए प्रदर्शनी के बाहर इस खादी को विक्रय करने का भार मेरे ही ऊपर आ पड़ा। मैंने जिस कोठी मे महात्मा गाँधी ठहरे हुए थे उसी के एक कमरे में दुकान खोल कर खादी बेचना प्रारम्भ किया। गाँधी जी की कोठी मे जो लोग ठहरे हुए थे उनमे से कितने ही लोगों ने बारडोली के संगठन मे काम किया था। मै उन लोगों से वहाँ का विस्तृत विवरण पूछता रहा और इस प्रकार पुनः मुझमें ग्राम-संगठन की उत्कण्ठा जाग्रत हो उठी। कलकत्ता से वापस आते ही आश्रमी

भाइयों के समक्ष यह प्रस्ताव रक्खा कि मुझे पुनः उत्पत्ति केन्द्रों मे काम करने का अवसर दिया जाय किन्तु उन लोगो ने इसे नहीं स्वीकार किया, फिर भी मेरे मस्तिष्क मे गाँव की बाते चक्कर काटने लगी। इसी समय मेरा स्वास्थ्य वहुत खराब हो गया, और विश्राम करने की भावना से मैने लम्बी अवधि की छुट्टी ले-ली जिससे प्रधान कार्यालय की जिम्मेदारी श्री अविनाश भाई के ऊपर आ पड़ी। मैंने सोचा कि अच्छा हुआ। अब छुट्टी के पश्चात् मै प्रधान कार्यालय के भार से मुक्त हो सकूँगा। छुट्टी लेकर स्वास्थ्य-सुधार की कामना से मै कश्मीर चला गया और लगभग तीन माह तक वहाँ रुक गया। श्री कृष्णदास गाँधी भी वहाँ स्वास्थ्य-सुधार के लिए आये हुए थे, और संयोग से हम लोग एक ही कमरे मे रहते थे और गाँव के कार्य की वावत आपस मे विचार-विनिमय किया करते थे। श्री कृष्णदास भाई गुजरात के देहात मे काम कर चुके थे; गाँवों के सम्बन्ध मे मैं उन्हें अपनी कल्पना वताया करता था और उनकी समालोचना भी सुना करता था। इस प्रकार मैंने कश्मीर के प्रवास-काल मे ही देहात के सम्बन्ध मे कुछ योजनाएँ वना डाली।

ग्राम कार्य की योजना

उस समय तक गाँधी जी ने ग्रामोद्योग के विषय पर कभी चर्चा भी नही की थी। ग्रामोद्योग की वात मेरे भी मस्तिष्क मे नहीं आई थी, किन्तु कृष्णदास भाई से वस्त्र-स्वावलम्बन-योजना की वात सुनकर ही मेरे मस्तिष्क मे उसी योजना को केन्द्र वना कर ग्राम-सेवा का कार्य करने की कल्पना प्रस्फुरित हुई। उस समय मैंने जिस योजना की कल्पना की थी, वह इस प्रकार थी :—

१—कई गाँवों के मध्य में आश्रम वना कर देहात के नौजवानों को कताई और धुनाई की शिक्षा दी जाय। और उनके द्वारा देहात का कार्य किया जाय।

२—प्रधान कार्य-क्रम वस्त्र-स्वावलम्बन का ही होगा किन्तु साथ

ही गाँव की सफाई, प्रौढ़ शिक्षा, ग्राम सेवक दल का संगठन, पंचायतों का स्थापन तथा स्त्री-शिक्षा आदि देहात के सर्वांगीण सुधार का कार्य-क्रम रहे।

३—देहात के लोगों को हर प्रकार की शिक्षा और मार्ग-प्रदर्शन मिलता रहे।

कश्मीर मे ही मैंने इस कल्पना को एक योजना के रूप मे लिख डाला और अपने पास रख लिया। छुट्टी के पश्चात् अगस्त मे मै मेरठ लौट आया और सहयोगी भाइयो से इस देहात के कार्य के सम्बन्ध मे वार्तालाप किया किन्तु उस समय हम आश्रम की ओर से इस प्रकार के विशेष प्रोग्राम बना कर कार्य करने के लिए तैयार नही थे। और न आश्रम के पास इतने साधन ही थे कि वह इसके लिए कुछ पूँजी लगा सके। इसलिए इसकी चर्चा विशेष गम्भीर रूप से न हो सकी। मै भी पुनः प्रधान कार्यालय का चार्ज लेकर कार्य करने लगा। इसके कुछ ही दिन बाद श्री शंकरलाल बैंकर मेरठ आये और मैने अपनी योजना उनके समक्ष रक्खी। शंकरलाल भाई भी इन दिनों स्थान-स्थान पर वस्त्र-स्वावलम्बन के केन्द्र खोलने का प्रयत्न कर रहे थे, उनको मेरा प्रोग्राम पसन्द आ गया और उन्होंने कहा कि अगर आप केवल वस्त्र-स्वावलम्बन का कार्य करते हैं, तो मै चर्खासघ की ओर से इसका व्यय सहन करने के लिए उद्यत हूँ। मैने उनसे कहा कि गाँव के कार्य के सम्बन्ध मे मेरा जो-कुछ भी अनुभव है उसके आधार पर मै कह सकता हूँ कि गाँधी जी ग्राम-सगठन के सम्बन्ध में जितने प्रकार के कार्यक्रम आवश्यक समझते हैं, उन सभी को समग्र-रूप से गाँवों के मध्य एक साथ ही सचालित करने से ही सफलता प्राप्त हो सकती है। क्योंकि एक प्रोग्राम दूसरे प्रोग्राम पर प्रभाव डालता है। और यदि हम ग्राम-जीवन के प्रत्येक अंग पर सुधार की योजना नहीं बनाते तो केवल एक ही प्रोग्राम लेकर सफल नहीं हो सकते। किसी

समग्र दृष्टि की आवश्यकता

भी नवीन कार्यक्रम को चलाने के लिए सब से पहली आवश्यकता यह होती है कि जिनके भीतर यह नवीन कार्यक्रम लेकर चलना है, उनमे नवीनता को ग्रहण करने की मनोवृत्ति उत्पन्न हो गई हो। और यह मनोवृत्ति तभी उत्पन्न होती है जब उनके जीवन की गति मे नये दृष्टिकोण का विकास हो जाता है। अगर हम कोई एक ही एकाङ्गी प्रोग्राम लेकर कोई आर्थिक सुविधा प्राप्त कर कुछ दिन उमे चला भी दें तो उसमे जड़ता ही रहेगी, जीवन नही आ सकेगा। जीवन उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक होगा कि हम सर्वप्रथम देहात मे एक ग्राम सेवा शिक्षा-केन्द्र खोलकर उसमे सर्वतोमुखी विकास की योजना चलावें। इतना अवश्य है कि वस्त्र-स्वावलम्बन का कार्य मुख्य रहेगा और इसी को केन्द्र मान कर दूसरे कार्य-क्रम भी परिधि-क्षेत्र के भीतर चलते रहेंगे।

मुझमे और श्री शकरलाल भाई मे इसी योजना पर देर तक वाद-विवाद हुआ। अन्ततः उन्हें इस योजना के सिद्धान्त स्वीकार करने पड़े और कुछ बातों के अतिरिक्त उन्होने सभी बातें विवरण-सहित स्वीकार कर लीं। उन्होंने कहा कि जिस क्षेत्र में आप काम करना चाहते है, उसे मैं स्वयं देखना चाहता हूँ और जानना चाहता हूँ कि वह क्षेत्र वस्त्र स्वावलम्बन के लिए अनुकूल है अथवा नहीं। मैने योजना तो बना ली थी किन्तु गाँव का चुनाव नही किया था और न मेरठ के देहात के सम्बन्ध मे कोई जानकारी ही रखता था। अतएव मैंने श्री शंकरलाल भाई से कह दिया कि आज शाम तक गाँव का निर्वाचन कर लूंगा। कल प्रातःकाल देखने चला जायगा। स्थानीय सहयोगी भाइयों की सम्मति से सरधना तहसील के रासना ग्राम मे कार्य प्रारम्भ करने निश्चय हुआ और दूसरे दिन प्रातःकाल हम लोग श्री शंकर भाई को साथ लेकर रासना के लिए चल पड़े। वहाँ पहुँचने पर श्री शंकरलाल भाई ने गाँव मे घूम कर वहाँ के निवासियो से बात-चीत की और हमे कार्य प्रारम्भ करने की

स्वीकृति दे दी। इसलिए हम लोगो मे से एक श्री श्याम जी भाई, कार्य प्रारम्भ करने के लिए वहाँ भेजे गये। प्रारम्भ में कई दिनों तक मै भी उनके साथ वहा टिका रहा और गाव के व्यक्तियो से परिचय प्राप्त करता रहा। अवध के गावों के विषय मे मेरी जो धारणा थी, वह यहाँ न रह सकी। यहाँ के लोग न उतने अधिक गरीब थे न उतने अधिक अशिक्षित ही। प्रायः सभी मकान बड़ी अच्छी कोटि के थे; अधिकाश का अग्रभाग बिल्कुल पक्का था। यहाँ अधिकतर तगा जाति के लोग निवास करते थे। तगा जाति शायद क्षत्रियों की ही वंशज है। पूर्वी ज़िलों में इनकी बिरादरी को भूमिहार* कहते हैं। इनके अतिरिक्त उस क्षेत्र मे कुछ निम्नश्रेणी की जातियाँ भी रहती थी। कोई ख़ास बड़ी ज़मीदारी और ताल्लुक़ेदारी की प्रथा न थी। इसलिए लोगों की आर्थिक अवस्था अच्छी थी। ये लोग अवध के किसानों की तरह दबी हुई प्रवृत्ति के नही थे। शिक्षा का भी इनमे अच्छा प्रचार था। इसके अतिरिक्त यहा आर्य-समाज का भी अच्छा संगठन था। इसलिए अवध के किसानो की अपेक्षा उनमे दकियानूसीपन बहुत कम था। त्यागी (तगा) लोग उच्च श्रेणी की जाति मे से थे किन्तु उनकी स्त्रियो मे पर्दे का रिवाज उतना अधिक नही था, जितना पूर्वी जिलों मे पाया जाता है।

रासना गाव मे एक बहुत सुन्दर पक्का मन्दिर है और गाव की ओर से एक पक्की चौपाल बनी हुई है जिसमे कोई भी व्यक्ति आकर ठहर सकता है। इसके अतिरिक्त यदि गाव की कोई पंचायत होती है तो उसकी बैठक इसी चौपाल मे होती है। चौपाल के देख-भाल की ज़िम्मेदारी भी समस्त गाव के लोग वहन करते हैं। हम लोगों ने भी इसी चौपाल में आश्रय लिया। पहिले दिन से ही मुझे यहा का

---

*भूमिहार और तगा दोनों अब बहुत दिनों से अपने को ब्राह्मण मानते हैं।— सम्पादक।

वातावरण अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हुआ । लोगों की शिक्षा व शिष्टाचार और नई चीजों के समझने की प्रवृत्ति देखकर मुझे कुछ ऐसा लगा कि जितना काम मै यहा साल भर मे कर सकूँगा; उतना अकबरपुर की ओर पाच साल मे भी न हो सकेगा। दो बातों ने मुझे अत्यधिक प्रभावित किया:—

रासना की विशेषताएँ

१—चौपाल का होना—जिसका मुख्य अभिप्राय यह था कि पंचायती और सम्मिलित समाज का संस्कार इस इलाके मे अब तक वर्त्तमान है ।

२—घर-घर मे चर्खे की उपस्थिति ।

जिस चर्खे और पंचायत के लिए मै टाडा के देहात मे मारा-मारा फिरता था, वे दोनो वस्तुएँ यहा पहले से ही मौजूद थीं ।

मै चार-पाच दिन तक रासना मे ही रह गया । रासना तथा उनके आस-पास के गावों में खूब घूमा । सन्ध्या समय रासना के लोग स्वयं चौपाल मे आ जाते थे, हम लोग उनसे अपनी योजना पर आलोचना प्रत्यालोचना किया करते थे । पाच छः दिन के पश्चात् मुझे यह अनुभव हुआ कि ये लोग हमारी योजना को भलीभाति समझ गये हैं और उसे चलाने के लिए काफी उत्साह प्रकट करते हैं । अतएव मैं चार-पाच दिन और रहकर उनमे काफी प्रचार करके श्री श्याम जी भाई को वहा के कार्य-क्रम का संचालक बनाकर मेरठ चला आया । श्याम जी भाई ने उनमें धुनाई और कताई सिखाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया । मैं प्रति सप्ताह एक बार रासना चला जाया करता था और उस गाव के लोगों को हर प्रकार के सुधार की प्रेरणा देता रहता था । कुछ काल पश्चात् किसानों और उनके बच्चों को पढ़ाने के लिए एक रात्रि पाठ-शाला खोल दी गई । मैंने देखा कि किसानों के बच्चे दिन में खाली नहीं रह सकते । जिस दिन से वह कुछ सज्ञान होते हैं;

धुनाई-कताई और

रात्रि पाठशाला

उसी दिन से उन्हे जानवरों को चराना, उनके लिए घास छीलना, गृहस्थी के काम मे सहायता पहुँचाना, गोबर बटोरना तथा जंगल की लकड़ी चुनकर लाना इत्यादि काम करने पड़ते हैं और वे दिन भर इन्ही कामों में फँसे रहते हैं। अतएव हम देहात में निःशुल्क शिक्षा का कितना भी उत्तम प्रबन्ध क्यों न करे किन्तु जब तक देहात की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में आमूल परिवर्तन नहीं होता तब तक वहाँ के बच्चे पाठशालाओं मे उपस्थित होने में असमर्थ हैं। इसीलिए मैने रात्रि पाठशाला की योजना बनाई। इससे हमे एक और लाभ हुआ। उसी गाँव के निकट के प्रारम्भिक स्कूल के मास्टर श्री रामदास भाई उस रात्रि पाठशाला मे अवैतनिक रूप से पढ़ाने को तैयार हो गये। इस प्रकार वस्त्र-स्वावलम्बन के साथ-साथ शिक्षा और गाँव की सफाई का कार्य होने लगा।

अखिल भारतीय चर्खा-संघ के मंत्री श्री शंकरलाल भाई जब मेरठ आये थे तो उन्होंने मुझे यह बताया था कि जिस क्षेत्र मे वस्त्र-स्वावलम्बन का कार्य होगा, उस क्षेत्र मे चर्खा संघ या आश्रम की ओर से सूत की ख़रीद नहीं होनी चाहिए। मैने वस्त्र-स्वावलम्बन के पण्डित श्री जेठालाल भाई से भी सम्मति ली तो उनकी बातों से श्री शंकरलाल भाई की ही बात प्रमाणित हुई। अतएव मैने उस क्षेत्र की सूत-ख़रीद बंद करा दी। सूत-ख़रीद बंद हो जाने के पश्चात् रासना का कार्य शिथिल होने लगा और कुछ ही सूत न खरीदने की दिनों मे उन दो-चार परिवार के लोगों को छोड़ नीति की निष्फलता कर, जिनके साथ हम लोग विशेष घनिष्टता रखते थे, शेष सभी लोगो की सहानुभूति उस कार्य से समाप्त-सी हो गई। मै रासना जाकर इसका कारण अध्ययन करने की कोशिश करता रहा। इस सम्बन्ध मे उस गाँव तथा आस-पास के गाँवों के बहुत से लोगों से वार्तालाप किया। इससे मुझे जो कुछ अनुभव हुआ उससे इस क्षेत्र की जनता के प्रति मेरी धारणा बदल

गई। मैने वहाँ के लोगों को अब तक जैसा समझ रक्खा था वैसा वे नही निकले। उनमे दिखाऊपन और स्वार्थपरता ही अधिक थी। आदर्श की वात उनकी समझ मे नहीं आई। इसलिए अव मैने सोचा कि जव तक हम इनके सूत का कुछ भाग ख़रीद नहीं लेते, तव तक इन मे वस्त्र-स्वावलम्वन का कार्यक्रम चलाना कठिन है। सदियों की शहरा और वाज़ारू सभ्यता हमारे ग्राम-समाज को ऐसी शैली मे ढाल चुकी है कि आज कोई भी काम वगैर वाज़ारू मनोवृत्ति के करना कठिन हो गया है। हमारे किसान खेत मे अनाज वोते हैं तो उनका ध्येय यही होता है कि इसे वाजार मे वेचेंगे। इसलिए प्रायः वे उसी प्रकार की खेती करते हैं जिसकी वे वाजार के लिए आवश्यकता समझते हैं। इसका कारण यह है कि आज वे इस अवस्था को पहुँच गये हैं कि जितना अनाज वे स्वयं खाने के काम मे लाते हैं, उसका कई गुना उन्हे दूसरो को देना पड़ता है और दूसरे लोग अपना पावना पैसे के रूप मे ही लेते हैं। इसलिए किसान उस चीज़ की खेती के लिए तैयार नही होते जो वाज़ार मे विक न सके। हाँ, वाज़ार के लिए तैयार किये हुए माल का कुछ भाग अगर वे अपने इस्तेमाल के लिए वचा सके तो प्रसन्नता से वचा लेते हैं। अतएव इस इलाके मे घूमने पर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यदि हमे वस्त्र-स्वावलम्वन के कार्य मे सफल होना है तो आवश्यक है कि उनके सूत के लिए विक्री का वाज़ार खोल दे तथा प्रचार और शिक्षा-द्वारा उनको इस वात के लिए तैयार करें कि अपना कता हुआ सूत अधिक से अधिक अपने ही प्रयोग मे लावें। इसके साथ ही एक वात और भी समझ मे आई कि वस्त्र-स्वावलम्वन के लिए अन्य प्रकार की आय मे से कपड़े के लिए खर्च करना ठीक नहीं। क्योंकि इस कार्य के लाभ को वे तभी समझ सकते हैं जव उन्हे इसके लिए कुछ खर्च न करना पड़े। इस स्थिति मे हम उनको समझा सकेंगे कि वे कपड़े के लिए घर का कितना अनाज वाहर भेज देते हैं। यह तभी हो सकता है जव उनकी खादी के तैयार

होने का अन्य व्यय उनके बढ़ती सूत की बिक्री से ही प्राप्त हो जाय। इन सब बातों पर दृष्टि डालने के पश्चात् मुझे, स्वावलम्बन-क्षेत्र में सूत न ख़रीद करने की पद्धति भ्रमपूर्ण प्रतीत हुई। इसलिए मैंने पुनः वहाँ का सूत ख़रीद लेने की क्रिया का प्रचलन कर दिया। दूसरी बाधा बुनाई की थी। उस देहात में कुछ ऐसे बुनकर थे जो २७ इंच अरज़ का कपड़ा बुना करते थे। वहाँ के लोग उनसे पहले भी दोहर आदि के लिए मोटे कपड़े स्वयं बनवा लिया करते थे। कुछ दिन प्रचार करने के पश्चात् और बुनाई कताई की शिक्षा देने के बाद लोग बारीक सूत भी कातने लगे और धोती आदि बनवाने का आग्रह करने लगे।

श्याम जी भाई साबरमती आश्रम में कई वर्ष तक बुनाई का काम सीख चुके थे। उस गाँव के निकट का ही एक बुनकर आश्रम की खादी बुना करता था। उसी को श्री श्याम भाई की संरक्षकता में लम्बी अरज़ का कपड़ा बुनने को देकर गाँव वालों की माँग पूरी करने की व्यवस्था की गई। श्री श्याम जी भाई के द्वारा उस बुनकर की कठिनाइयां भी सुलझ जाती थीं। इस प्रकार धीरे-धीरे वहाँ के लोग स्वावलम्बी होने लगे।

कुछ दिन पश्चात् श्री श्याम जी भाई अपनी स्त्री गुलबदन बहिन और अपनी छोटी बच्ची को भी वहाँ पर ले आये और उस गाँव के निवासी एक मित्र के घर के एक भाग में रहने लगे।

टाँडा के देहात के वर्णन-क्रम में मैं तुमको लिख चुका हूँ कि गाँव का पुनर्गठन तब तक असम्भव है जब तक वहाँ की स्त्रियां शिक्षित न कर दी जायँ और उनका सुधार न हो जाय। गुलबदन बहन के वहाँ पर पहुँच जाने से मुझे इस दिशा में भी कुछ करने का अवसर मिल गया। एक दिन मैंने रासना गाँव के अपने प्रिय लोगों को बुलाया और उन्हें यह समझाया कि प्राचीन काल में हमारे देश की स्त्रियाँ कैसी रहीं और आज कैसी हो गई हैं। मैंने बताया कि संसार और समाज का

मूल संगठन इन्हीं लोगों के हाथ मे है। जब तक ये नही चाहतीं तब तक हम और आप चाहे कितनी भी कोशिश करे समाज को एक पग या इञ्च भी आगे नहीं बढा सकते।

स्त्रियों का शिक्षण और सुधार

किसी गृहस्थी मे पुरुष चाहे जितनी भी आय करे, और चाहे कितना भी उत्तम प्रबन्ध करे किन्तु अगर स्त्री अयोग्य और संयमहीना हुई तो सारा घर नाश हो जाता है। दूसरी ओर अगर कोई कितना भी ग़रीब क्यों न हो किन्तु यदि स्त्री सुप्रबन्धकारिणी हुई तो घर की रक्षा हो जाती है। इन्ही घरों और गाँवों की समष्टि का ही नाम समाज या संसार है। उन लोगो ने मेरी बाते समझ ली और इस दिशा मे उत्साह दिखाने लगे। हम लोगों ने आपस मे सलाह करके, जिस घर मे श्याम भाई रहते थे, उसी घर के एक दालान मे स्त्रियो को चर्ख़ा, पढना और अन्य प्रकार की शिक्षा देने के लिए एक महिला-विद्यालय खोल दिया। किन्तु उसमे केवल लड़कियों ने ही आना प्रारम्भ किया। घर की औरते और बहुएँ नही आती थी। हमने यह सोच कर कि स्त्री शिक्षा की दिशा में कुछ न कुछ तो हो ही रहा है, इतने पर ही संतोष किया और उन्हीं को लेकर विद्यालय चलाने लगा। किन्तु मै जब जब रासना जाता था और वहाँ के लोग मुझ से मिलते थे तब तब उनसे कहता था कि आप लोग लड़कियो को सिखा कर तो दूसरों के घर भेज देंगे, किन्तु आप लोगों के इतने परिश्रम का लाभ कुछ आप लोगो को भी तो मिलना चाहिए और जब तक आप अपनी बहुओ की शिक्षा का प्रबन्ध नहीं करेंगे, तब तक आप के गाँव मे किसी प्रकार का सुधार होना सम्भव नहीं। वे लोग मेरी बातों का समर्थन तो करते थे, किन्तु उनके घरों से कोई भी स्त्री अन्त समय तक विद्यालय मे नही आई। अगर कभी कोई आती भी थी तो केवल विद्यालय देखने की भावना से और गुलबदन बहिन के साथ ग़प्प लड़ाने के अभिप्राय से। मैने गुलबदन बहिन से कहा कि आप उन्हे अपने घर की सफाई दिखाइए

और उनके घरो में जाकर देश के सम्बन्ध मे, स्वच्छता और उनके कर्तव्यो के सम्बन्ध मे वात-चीत किया करे। इस प्रकार इस ढंग से कुछ-कुछ स्त्री शिक्षा का काम भी होने लगा।

धीरे-धीरे महीने पर महीने वीतने लगे और उत्तरोत्तर आश्रम के प्रति गाँव वालों की सहानुभूति मे वृद्धि होने लगी और योजना के एकाध एकदेशीय कार्य-क्रम उन्नति करते रहे। किन्तु जो योजना हम लोगों ने कश्मीर मे वनाई थी, उसको सक्रिय रूप देने का अभी तक कोई मौका नही मिला और देहात के मध्य मे केन्द्रीय आश्रम वना कर ग्रामीण-समाज के सर्वाङ्गीण पुनर्सङ्गठन की कल्पना अव तक कल्पना ही वनी रही। मै इस योजना को कार्य रूप मे परिणत करने का अवसर ढूंढा करता था किन्तु इसके लिए यह आवश्यक था कि मै पर्याप्त समय तक रासना रह सकूॅ। अतः मैने विचार किया कि यदि श्री अविनाश भाई प्रधान कार्यलय का कार्य चला ले तो मुझे काफी समय तक गॉवों मे रहने की सुविधा मिल जायगी। इसी ध्येय से मैं अविनाश भाई को रासना ले गया और उनसे अपनी योजना के सम्वन्ध मे वात-चीत की। उन्होने मुझे निश्चित आश्वासन दिया कि आप अपनी इच्छानुसार निश्चित समय तक रासना गाँव मे रह सकते हैं। फिर क्या था? मै रासना मे ठहर गया और इस क्षेत्र के विशेष विशेष व्यक्तियों से अपने कार्य क्रम के विपय मे चर्चा की। उन लोगों ने मुझे काफी उत्साहित किया और रासना के दो-तीन मित्रो ने गाँव से कुछ दूर मुझे लगभग दस वीघे जमीन दान कर दी। इस स्थान पर लगभग १०० वीघे परती जमीन थी जो उसी गॉव के लोगो की थी। गाँव वालों ने आश्वासन दिया कि आप आवश्यकता पड़ने पर और अधिक जमीन ले सकते हैं। जिन मास्टर साहव ने रात्रि-पाठशाला में रात को पढाने का भार उठाया था, उन्होंने तो आश्रम के ही हाते मे घर वना कर सपरिवार रहने का वादा किया। इस के लिए श्री शंकर-लाल भाई ने १८००) की स्वीकृति चर्खा सघ से आश्रम को प्रदान की

और हम लोगो ने वहाँ आश्रम बनवाने का निश्चय कर लिया।

इसी समय चर्खा संघ का कार्य आश्रम की सुपुर्दगी मे आ गया और श्री विचित्र भाई, जो इन दिनो चर्खा संघ के मंत्री का कार्य कर रहे थे, मेरठ आ गये और आश्रम के प्रधान कार्यालय का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया। इस प्रकार मुझे आशा हो गई कि मै अब अवकाश पाकर ग्राम सेवा का कार्य-भार लेकर पुनः रासना में बैठ सकूँगा। किन्तु ऐसा हो नही सका।

इसी समय सन् १९३० के सत्याग्रह की लड़ाई छिड़ गई। चारों ओर से खादी की माँग बन्द हो गई। इधर चर्खा संघ की जिम्मेदारी आश्रम के सिर पर आ पड़ने से आश्रम पर बहुत बोझ पड़ गया और आश्रम के खादी उत्पत्ति के कार्य से मुझे छुट्टी न मिल सकी। मुझे मेरठ क्षेत्र के बाहर के केन्द्रो की देख-भाल करने का काम मिला था। तीन चार माह की अवधि मे जब कार्य कुछ सगठित हो चला और मुझे पुनः छुट्टी मिलने की आशा हुई तो अचानक श्री शकरलाल भाई मेरठ आये। और बंगाल के अभय आश्रम के सभी कार्यकर्ताओं के जेल चले जाने के कारण आश्रम से मेरी सेवा अभय आश्रम के लिए मागी। फलतःउसी समय बङ्गाल चला जाना पड़ा और जो रूप मैंने रासना का सोच रक्खा था, वह नहीं हो सका। इधर कुछ दिनों बाद श्री श्याम जी भाई भी गिरफ़ार कर लिये गये। इसलिए वहाँ के काम को और भी धक्का लगा और आन्दोलन के दिनो मे लगभग नहीं के बराबर रह गया। कालान्तर मे कुछ नौसिखुये कार्य-कर्त्ता आश्रम की ओर से वहा भेजे गये, किन्तु अनुभवी कार्य-कर्त्ता के अभाव मे वहाँ के कार्य मे उन्नति नहीं हो सकी। सन् १९३१ मे मुझे अभय आश्रम से छुट्टी मिल गई और मै पुन. आश्रम की सेवा मे लौट आया। एक बार फिर रासना को पुनर्गठित करने की कोशिश की किन्तु आश्रम मुझे सर्वदा के लिए वहाँ बैठने का समय न दे सका प्रत्युत दो-एक कार्य-कर्त्ता बढाकर वहाँ के कार्य-विकास का प्रयत्न किया गया। दादा

और विचित्र भाई भी इस काम में दिलचस्पी लेने लगे और वहा भेजे गये कार्य-कर्त्ताओं को बराबर चेतावनी देते रहे। मै बाहर के केन्द्रो का दौरा करता रहा इसलिए मेरा सम्पर्क रासना से टूट गया। फिर मै उस देहात मे नही जा सका। इसी समय सन् १६३२ की लड़ाई छिड़ गई। विचित्र भाई आदि बहुत से कार्यकर्ता जेल चले गये और रासना का काम ज्यो का त्यो पड़ा रह गया। जो लड़के उस केन्द्र मे काम करते थे; वे सब भी गिरफ्तार कर लिये गये।

यह पत्र योही कुछ बड़ा हो गया है। इस समय रात भी अधिक जा चुकी है इसलिए इसे और बढ़ाने का जी नही चाहता। अतः आज यहीं समाप्त करके सो जाता हूँ। दूसरे दिन रासना की शेष कहानी लिखूँगा। इति।

---

[१८]

रासना की शेष कथा

२६—८—४१

उस दिन मै रासना की कहानी लिखते-लिखते सो गया था अतएव आज फिर उसकी कुछ शेष बाते लिखूँगा। सन् १६३२ ई० के आन्दोलन-काल मे गाधी जी के निर्देशानुसार आश्रम आन्दोलन से अलग रक्खा गया था. फिर भी यह सरकार के दमन-चक्र से बच न सका था।। आश्रम के कितने ही केन्द्र सरकार-द्वारा ज़ब्त कर लिये गये थे। इन्ही में रासना भी सम्मिलित था। इसके बन्द हो जाने से आश्रम की ओर से उस देहात का कार्य बन्द सा हो गया था। किन्तु अब फिर अन्दोलन कुछ-कुछ दब चुका था, विचित्र भाई जेल से छूट कर आ गये थे और हम लोग पुनः देहात के कार्य के पुनर्सङ्गठन के विषय मे चर्चा करने लग गये थे। लड़के भी जेल से छूटकर आ गये थे। इसी अवधि मे हजारीबाग जेल से दादा का लिखा हुआ विचित्र

भाई के नाम एक पत्र आया जिसमें उन्होंने देहात के काम पर जोर देने को लिखा था और कार्य का एक निश्चित ढंग भी लिख भेजा था। उनकी कल्पना थी कि गावों के मध्य एक हाई स्कूल खोलकर और उसी को केन्द्र बनाकर हर प्रकार की सुधार-योजना का कार्य-क्रम चलाना होगा। दादा का यह पत्र पढ कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई क्योंकि उन्होंने खास विचित्र भाई पर ही इस प्रोग्राम का भार दिया था। इसलिए विचित्र भाई ने प्रधान कार्यालय का उत्तरदायित्व नही लिया। मुझे इस बात से भी प्रसन्नता हुई कि जब आश्रम के सब से बड़े उत्तरदायी भाई गाव मे जाकर बैठेंगे तो आश्रम के कार्य-क्रम मे ग्राम-संगठन का ही कार्य्य प्रधान हो उठेगा और हम लोगों को भी धीरे-धीरे देहात मे जाने का अवसर मिलेगा। तुम्हें मै पहले ही लिख चुका हूँ कि प्रारम्भ से ही मेरी यह धारणा हो गई कि मै देहात मे रहकर काम करूँ। लगभग दो वर्ष तक टाडा और अकबरपुर मे रहने के कारण वह धारणा और भी दृढ हो गई थी। इधर तीन-चार वर्ष तक दफ्तर के कार्य मे व्यस्त रहने के कारण इस अवधि मे यह भावना कुछ दब-सी गई थी। किन्तु जब से रासना का काय प्रारंभ हुआ तब से देहात मे कार्य करने की इच्छा फिर बलवती होती गई। अब तक मुझे स्थायी रूप से गाँवों मे रहने का अवसर नहीं मिला था। आश्रम के विविध प्रकार के कार्यों मे फँसा रहना पड़ता था अतएव जब दादा ने विचित्र भाई को उपर्युक्त पत्र लिखा तो मेरा प्रसन्न होना स्वाभाविक ही था। सरकार ने जब रासना केन्द्र वापिस दिया

रासना केन्द्र का अन्त

तब मैने विचित्र भाई पर वहाँ बैठने के लिए जोर दिया। विचित्र भाई भी तैयार हो गये और रासना चले भी गये, किन्तु कुछ समय बाद कई कारणों से बाध्य हो कर उन्हें मेरठ वापस चला आना पड़ा। फिर वे मेरठ से ही आश्रम के कुछ लड़कों को भेज कर वहाँ का काम चलाने लगे; किन्तु इस ढंग से वहा का कार्य आगे

न बढ सका और परिस्थिति इस अवस्था तक पहुँच गई कि कुछ समय पश्चात् उस केन्द्र को बन्द कर देने का प्रस्ताव रक्खा गया। शुरू-शुरू मे मैने इसका विरोध किया किन्तु मुझ पर आश्रम की ओर से खादी भण्डारों की ज़िम्मेदारी आ पड़ी और निकट भविष्य मे गाव की ओर जाने की कोई आशा नही दिखाई दी अतएव जब रासना के विषय मे दूसरी वार उसके तोड़ने का प्रस्ताव आया तो मैने पक्ष मे ही राय दी। फल यह हुआ कि रासना का काम बन्द कर दिया गया। अब मैने देहात की वातों को अपने दिमाग़ से दूर कर सारा ध्यान बिक्री भण्डारों की व्यवस्था मे ही केन्द्रित कर दिया। इस प्रकार पुनः मुझे गाव की वाते भूल जानी पड़ी।

इस समय मेरा स्वास्थ्य सुधर रहा है, किन्तु दैनिक कार्यों मे कुछ शिथिलता आ गई है। कुछ लोग देवली को रवाना हो रहे हैं और कुछ इधर-उधर तब्दील हो रहे है। अभी तीन-चार दिन हुए वाहर से एक भाई आये हुए थे; उन्होने बताया कि १०० नज़रवन्द अन्य जगहों को भेजे जायेंगे। इसलिए जेल में दिन-रात "कौन जायगा, कौन नहीं" की ही चर्चा रहा करती है। तीन चार महीने तक सब के एक साथ रहने के कारण आपस मे प्रेम का गहरा सम्बन्ध उत्पन्न हो गया। अब लोगों का तितर-वितर हो जाना बुरा लग रहा है। लेकिन जेल की यह सब माया तो लगी ही रहती है। इसलिए मै अपने कार्य-क्रम मे पुनः जुटने की कोशिश कर रहा हूँ। चर्खा का क्लास नियमित रूप से चल रहा है। सबको नमस्कार। इति।

---

[१६]

सेवा का निश्चित कदम

३१—८—४१

सन् १६३० और १६३२ के आन्दोलन ने आश्रम के वहुत से भाइयों को जेल मे भर दिया। इसलिए हम वाहर के लोगों पर अधिक

जिम्मेदारी पड़ गई थी। आन्दोलन के पश्चात् सन् १९३३-३४ मे राजनीतिक वायुमण्डल शिथिल पड़ने के कारण कार्य की प्रगति में शिथिलता आ गई थी। ठीक इसी समय मुझे बिक्री भण्डार और प्रचार-कार्य की जिम्मेदारी मिली। अतः परिस्थिति का सामना करने मे २ वर्ष तक काफी परिश्रम करना पड़ा। मेरा स्वास्थ्य आन्दोलन-काल मे ही बिगड़ चुका था; उक्त परिश्रम वह सहन न कर सका और मै नितान्त अशक्त हो गया। आश्रम के लोगों ने मुझे साल भर तक विश्राम करने की सलाह दी और आदेश दिया कि आप ही कार्य-क्षेत्र से कही अलग चले जावे। उन दिनो मै अकबरपुर मे था। दादा ने मुझे कराची जाकर कीकी बहिन के साथ रहने की सलाह दी। पहले तो मुझे कराची जाना ठीक प्रतीत हुआ किन्तु बाद मे मेरी राय बदल गई। कराची का समाज मेरे लिए अनुकूल नहीं था; उस प्रकार के समाज से मैं सर्वथा विमुख हो चुका था। घर का समाज भी मुझे पसन्द नहीं था अतः वहा जाकर भी अधिक दिन तक रहना मैने उचित नहीं समझा। इस विश्राम-काल को कहा जाकर व्यतीत करूँ यही सोचा करता था। एक बार विचार हुआ कि अभय आश्रम मे क्यों न चला चलू ? किन्तु वह भी जब्त हो चुका था। इसी चिन्ता मे एक महीना समाप्त हो गया। इसी समय बनारस मे खादी और स्वदेशी प्रदर्शनी का सगठन हो रहा था। बनारस के आश्रमीय भाइयो ने आग्रह किया कि मै वहा अवश्य जाऊँ। फलतः मुझे बनारस जाना पड़ा। बनारस मे परिश्रम अधिक करना पडा जिससे मेरा स्वास्थ्य और भी चिन्त्य हो गया।

स्वास्थ्य का दिवाला

अपनी निर्बलता देख कर और विश्राम के लिए अब तक किसी समुचित स्थान का निश्चय न कर सकने के कारण मुझे कुछ निराशा-सी प्रतीत होने लगी। रात को नींद तो आती ही न थी इसलिए दिमाग चक्कर खा-खाकर इसी समस्या का समाधान किया करता था। सोचते-

सोचते एक दिन एकाएक यह विचार उठा कि क्यों न किसी देहात में चल कर आसन जमाऊँ। वहा का वातावरण मेरे विशेष अनुकूल होगा और विश्राम के दिनो में भी गाव वालों की कुछ न कुछ सेवा तो कर ही सकूगा। इस प्रकार यह विश्राम का समय बिल्कुल व्यर्थ नही जायगा। दादा भी बनारस आये हुए थे; मैंने अपना यह विचार उनके सामने रक्खा और उन्होंने इसका निर्णय हमारी स्वेच्छा पर छोड़ दिया। मैंने उसी दिन अकबरपुर वालो को गाँव तलाश करने को लिख दिया और यह भी लिख दिया कि गाव तलाश करते वक्त निम्नलिखित बातो को ध्यान में रखना होगा :—

गॉव मे विश्राम का निश्चय

१—गाव छोटा हो, साफ हो, तथा अच्छे जलवायु वाला हो।

२—उस क्षेत्र मे काग्रेस आदि का काम न हो। जिससे मुझे किसी अन्य प्रकार के कार्य-क्रम मे न फॅसना पड़े।

३—गाव का मुखिया सभ्य और सहानुभूतिपूर्ण हो।

४—जहा तक सम्भव हो गाव नदी के किनारे आवाद हो। इसी प्रकार की कुछ और भी शर्तें थीं जो इस समय स्मरण नही आ रही हैं।

तदनुसार अकबरपुर के भाइयों ने रणीवाँ गाव का चुनाव किया। एक सप्ताह पश्चात् जब मै अकबरपुर गया तो उन लोगों ने मुझसे कहा कि जिस गाव का चुनाव किया गया है, उसमें नदी के अतिरिक्त सभी शर्तें पूरी हो जाती हैं। मै तो गाव में जाने के लिए उत्सुक था ही इसलिए तुरन्त अकबरपुर से रणीवा के लिए रवाना हो गया। मेरे साथ रणीवा गाव का निर्वाचन करने वाला लाल सिंह नाम का कार्यकर्ता भी था। यह पहले ही निश्चय हो चुका था कि मेरे साथ लाल सिह और कर्ण जायगे और मेरे वहा पूर्ण रूप से स्थिर हो जाने के पश्चात कर्ण वहा से लौट आयेगा।

रणीवॉ का चुनाव

गुसाईं गंज पहुँच कर मैं एक मन्दिर में रुक गया और लालसिंह रणीवा मकान का प्रबन्ध करने चला गया। रणीवा के एक ब्राह्मण ने अपने दो कमरे, जिनसे वह भूसा रखने और घोड़ा बांधने का काम लेते थे, हमें प्रदान किये और लालसिंह उन कमरों को कुछ साफ-सुथरा करके वापस लौट आया। तत्पश्चात् हम लोग जाकर रणीवा में बैठ गये और तीनों व्यक्ति मिल कर अपने रहने के स्थान की दुरुस्ती में लग गये।

रणीवा गुसाईं गज से ५ मील दक्षिण की ओर है। आने-जाने की सड़क भी ठीक नहीं है। लोग उस क्षेत्र को वज्र देहात कहा करते हैं। सन् १९२३-२४ में मुझे इसी फैजाबाद ज़िले की टाडा तहसील के देहात में भ्रमण करने का अवसर मिला था। अगस्त सन् १९२४ में मैंने पैदल वह भ्रमण प्रारम्भ किया था। दस वर्ष के पश्चात् ३१ दिसम्बर सन् १९३४ को उसी ज़िले के इस गाव में आकर स्थायी रूप से बस गया। इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। उससे पाच वर्ष पूर्व मैंने रासना के क्षेत्र में बैठने का प्रयत्न किया था, किन्तु उस समय अवसर न प्राप्त हो सका था। किन्तु आज अपनी आकस्मिक बीमारी के कारण बरसों की दबी हुई इच्छा पूरी हो गई। मनुष्य-जीवन में कभी-कभी शाप भी वरदान का रूप प्राप्त कर लेता है। दूसरे दिन हम लोग दिन भर गाव के चारों ओर घूमते रहे। चना, मटर और गेहूँ के खेतों की मेड़ों पर घूमने से मुझे एक-एक करके पुरानी बातें याद आने लगीं। अवध प्रान्त की वही टूटी-फूटी झोपड़िया, वही हवा और पानी, वही बोली तथा उसी प्रकार की रहन-सहन देखकर हृदय प्रसन्नता से ओत-प्रोत हो गया। दो ही-चार दिन के पश्चात् मैं चंगा होने लगा। आज तबीयत कुछ ठीक नहीं प्रतीत हो रही है। इसलिए पत्र यहीं समाप्त कर रहा हूँ। आशा है तुम लोग कुशल-पूर्वक होगे। मैं कुशल से हूँ। तालीमी संघ का केन्द्र उड़ीसा में खोलने के सम्बन्ध में लिखा था, उसका क्या हुआ? रणीवा का प्रोग्राम तो रुक ही गया। देखो, कब होता है? नमस्कार। इति।

[२०]

ग्राम-प्रवेश का तरीका

३—६—४१

रणीवा मे अपने स्थान को ठीक रूप से रहने योग्य बना लेने मे दो तीन दिन लग गये। रहने के स्थान की दुरुस्ती से निश्चिन्त होने पर श्री करण भाई और लालसिंह भाई ने पूछा कि अब क्या प्रोग्राम होगा। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि आप तो अभी कमजोर ही हैं इसलिए आप बैठे-बैठे बताते रहे और हम लोग ग्राम-संगठन का कार्य प्रारम्भ कर दें। पिछले दिनों गाव मे काम करने से मुझे यह अनुभव हो गया था कि गाव मे जाकर तुरन्त ही गाव वालों से कुछ करने के लिए नही कहना चाहिए। क्योंकि मै तुम्हे पहले ही लिख चुका हूँ कि गाव के लोगों को हम लोग जितना बेवकूफ़ समझते हैं उससे अधिक वे हमे समझते हैं। जिस समय शहर के पढ़े-लिखे कार्यकर्ता गाव की किसी सार्वजनिक सभा में भाषण कर उनके अज्ञान एवं उनसे पैदा होने वाली खराबियो का वर्णन कर और उन्हें दूर करने के उपाय बता कर चले जाते हैं उस समय अपने घरों को लौटती हुई जनता के साथ होकर उनकी आपसी बात-चीत सुनने में बड़ा आनन्द आता है। उनकी बाते निम्न प्रकार की होती हैं।

व्याख्यानबाजों के सम्बन्ध में गॉव वालों के विचार

एक देहाती—भैया, ख़ूब लिक्चर दिहिन।

दूसरा—ठीक कहत हैं हमरे सब बड़े फूहर मनई होईं।

तीसरा—जभी त हिन्दुस्तान दुख उठावत है।

इसी बीच मे एक कह उठता है, दुख तो पावत है, मुला यह जौन चश्मा पहिनिके आये रहिन, वे कौन सा क़ाबिल मनई हवै। दुइ अच्छर अँगरेजी पढ़ि लिहिन, दुनिया भर का उपदेश करे फिरत

: । हमरे सब का ज्ञान बतावत है।

दूसरा—"हा, भइया, जौन बाप दादा कै रिवाज रस्म रहे, तौन बेकार। इनके सब कै जौन परदेसी विचार तौन भलो। आये हैं स्वदेशी कै प्रचार करे खातिर मुला दिलवा मे सम्मे विलाइतिया भरे बैठे हैं।"

तीसरा—"हमका पढ़े कहत हैं, सफाई राखे कहत हैं। तुहरे अस झोली भर रुपया रहत तो हमहूँ सब पढ कै और धोबी से कपड़ा धुलवा कै तुहूँ ले बढ़ के बड़बड़ाइत। यहा खाये बिना मरित हैं, ए आय के नक्शा काढ़त हैं!"

उनमे से एक और कहता है कि "वे कहत रहे कि ब्याह-शादी मे ढेर खरचा जिनि करो। आजा बाजा जौन जात है तौन कुल बेकार है, ई कुल टीम-टाम नाही करे के चाही। भला उनसे पूछौ तो कि तुहरे शादी मे तुहरे माई-बाप हँड़िया अस मुँह करके बइठे रहे और तुहरे यहा लड़का-लड़की के ब्याह-शादी मा दूल्हा-दुलहिन का लढिया में बैठा के हाक देत हैं क्या?"

हम लोग जब देहात मे जाकर देहात के लोगों को सुधरने का उपदेश देते हैं तो वे लोग हमारी बातों की इसी प्रकार दिल्लगी उड़ाते हैं क्योंकि वे अपने सदियों से जमे हुए रस्मो-रिवाज के सामने दूसरी बाते ऊँची नही मान सकते। इससे उनके प्रच्छन्न आत्माभिमान पर चोट पहुँचती है और उनकी आत्मा विद्रोही बन जाती है। मैंने टाँडा के देहात मे काम करते समय यह भी देखा था कि जिनको वे अपना समझते हैं उन्हीं की बात सुनने के लिए तैयार होते हैं। और जब दूसरे उनकी गलती बताने आते हैं तो वे उनको बरदाश्त नही करते। यह उनका स्वाभिमान ही है कि जितना वे अपने भाई की डाँट बरदाश्त करेंगे उतना पड़ोसी की नही करेंगे। और जितना पड़ोसी का सहन करेंगे उतना किसी दूसरे बाहरी आदमी का नहीं। इसलिए मैंने अपने साथियों से कहा कि इस समय हमारे सामने

कोई प्रोग्राम नही है। गाँव मे रहना और यहाँ बस जाना ही हमारा प्रोग्राम है। इस प्रकार हम लोग दिन भर गाँव मे रहने का ही प्रोग्राम चलाने लगे। सबेरे उठना, चक्की चलाना, पानी भरना, भोजन बनाना, कपड़ा धोना, अपने स्थान तथा आस-पास की जगह को साफ रखना एवं चर्ख़ा चलाना इत्यादि कामों में तन्मय हो गये। गाँव के लोग हमारे पास आते थे, बैठते थे, बातें करते थे। हम लोग भी उनके घरो मे जाते थे और बैठते थे। धीरे धीरे लोगों ने हमारे विषय में बहुत कुछ जान लिया और आस-पास के दो-एक गावो से भी लोग हमे देखने आने लगे। किन्तु ऐसे लोग बहुत कम आते थे।

देहात के लोगो मे यह ख़ास बात है कि किसी एक गाँव की घटनाओं से दूसरे गाँव वालों को कोई विशेष दिलचस्पी नहीं होती। गाँव मे भ्रमण के समय कभी-कभी ऐसा अवसर आ उपस्थित होता था कि हमारे साथी लालसिह गाँव के दक़ियानूसी ख्याल के लोगो से बहस करने लग जाते थे। मै उनको रोकता था। कहता कि इस प्रकार के विवाद से लोग तुमसे विमुख हो जायँगे और तुम कुछ काम नही कर सकोगे। वह मेरी बातों से घबरा से उठते थे और कभी-कभी निराश हो कर कहने लगते थे कि यदि गाँव के लोग ऐसे ही अन्धकार मे पड़े रहे तो हमारे यहाँ आने से ही क्या लाभ हुआ? क्या खाना बनाना, बर्तन माजना और चक्की चलाना ही काम है? मै उन्हें समझाता था, घबड़ाने की आवश्यकता नही, सब कुछ स्वतः हो जायगा। पहिले गाव के कुटुम्ब मे तुम भी एक कुटुम्ब बनने का प्रयत्न करो। फिर धीरे-धीरे लोग जब हमारे सम्पर्क मे आयँगे तो अपने-आप ख्यालात बदलने लगेंगे।

हमारे रहन-सहन की देखरेख

हम लोग जिस क्षेत्र मे जाकर बैठे थे वह अयोध्या के समीप ही था; इसलिए वहा प्राचीन रूढ़ियों का अधिक प्रचलन था। लोग बहुत ग़ौर से देखा करते थे कि हम लोग क्या खाते हैं और किस तरह रहते हैं। मै बंगाली था;

इसलिए लोगों मे और भी उत्सुकता थी। हम लोगों के कुर्ता पहन कर भोजन करने के ढंग पर पर्याप्त टीका-टिप्पणी होती थी। हम लोग मिल कर एक साथ भोजन बनाते थे, यह भी उनके लिए एक विषम समस्या की बात रही। खाना खाने के पश्चात् चप्पल पहन कर हाथ धोने जाते थे, इस पर भी लोगो को काफी एतराज़ होता था। इस विषय पर हमसे गाव के लोग अत्यधिक वाद-विवाद किया करते थे। हम भी उनका उत्तर देने के लिए विचित्र-विचित्र सिद्धान्तो को जन्म देते थे। ऐसा करने मे हमारा उद्देश्य यह रहता था कि उनके रस्मो-रिवाज पर आक्षेप किये बिना ही अपने विरुद्ध की जाने वाली टिप्पणी से अपनी रक्षा करते हुए अपने व्यवहारों के प्रति उत्पन्न हुई उनकी घृणा की प्रवृत्ति को क्रमशः कम करते चले। क्योंकि यदि वे अपने परम्परागत आचारों मे कोई परिवर्तन नहीं भी करते किन्तु हमारे व्यवहारो और आचार-विचार को समझते हुए हमे अपने समाज में ग्रहण कर लेते हैं तो भी हम उनके दकियानूसी विचारों को दूर करने मे एक कदम आगे ही बढ़ते हैं। हमारे आविष्कृत सिद्धान्तो को जब तुम सुनोगी तो तुम को बड़ी हॅसी आयेगी। कपड़ा पहिन कर खाने के विषय मे हम उनसे कहा करते थे कि हमारे देश के प्राचीन ऋषि महर्षि कोई बेवकूफ तो थे नहीं, उन्होंने जो रिवाज आप के लिए बनाया है वह ठीक है। आप लोगों को कपड़ा पहन कर नहीं खाना चाहिए क्योंकि ऐसा करने मे सफ़ाई नहीं रह सकती। क्योंकि आप लोग रोज़ नहाते समय धोती तो धोही लेते हैं किन्तु अन्य कपड़े नहीं धोते इसीलिए कुरता आदि पहन कर खाना मना कर दिया गया है। किन्तु हम लोगों के लिए यह बात लागू

हमारा तर्क

नही होती क्योंकि हम लोग नित्य स्नान करते समय अपने सभी इस्तेमाली कपड़े साबुन से साफ़ कर लिया करते हैं। इस ढंग से बात करने मे दो लाभ होते थे। एक तो उनकी प्राचीन प्रणाली का सम्मान बना रहता था और दूसरे

यह कि समाज के प्रचलित आचार-व्यवहार केवल आचार के ही लिए नही हैं वल्कि उनके पीछे विचार भी मौजूद हैं और हर एक आचार के साथ विचार का होना अनिवार्य है, इन बातो की धारणा भी उनके मस्तिष्क मे धीरे-धीरे उत्पन्न हो जाती थी। और साथ ही उन्हें सफाई की महत्ता समझाना आसान हो जाता था।

एक साथ मिल कर खाने के विषय मे उनसे कहता था कि हम लोग आप से तो नहीं कहने आते हैं कि आप भी हमारे साथ खाइये। आप अपना धर्म निवाहिए, हम अपना निभाये। हम लोग तो गाँधी वावा की फौज के सिपाही है। भला कही फौज में भी पचास चूल्हे जलते हैं? इस प्रकार गाँव वालों ने धीरे-धीरे अपनी स्थानीय सामाजिक प्रथा के सर्वथा विरुद्ध हमारी रहन-सहन को स्वीकार कर लिया। और हम उत्तरोत्तर उनमे से एक बनने के निकटतर होते गये और गाँव के अन्य सभी परिवारों मे हमारा भी स्थान होने लगा। स्त्रिया भी हमें कुटुम्बी ही जैसा देखने लगीं।

चर्खा चला

अब हम लोगों ने धीरे-धीरे गाँव मे चर्ख़ा चलवाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया। तीन-चार चर्खे वहाँ पहले से ही चल रहे थे, हम लोगो की कोशिश से चर्खे बढ़ने लगे। चर्ख़ा तो लोग कात लेते थे किन्तु रुई धुनने के लिए नही तैयार हुए। रणीवाँ गाँव ब्राह्मणों का था अतएव वे लोग ताँत छूने से धर्म चले जाने का ख्याल करते थे। हम लोग उन्हे वहुत समझाते भी थे, किन्तु वे किसी तरह स्वीकार नही करते थे। अन्त मे हमने उनके घरों मे आटा चलाने वाली चर्मनिर्मित चलनी देखी। अनाज साफ करने का सूप भी ताँत से बँधा हुआ था। अब हमने उनको यह वताया कि आप लोग खाने-पीने की सम्पूर्ण सामग्री तो चमड़े और ताँत से मिला देते हैं किन्तु केवल ताँत को हाथ से छूने तक मे एतराज़ करते हैं। मेरी इस दलील का जवाव गाँव की किसी स्त्री या पुरुप के पास नहीं था और इस प्रकार धीरे-धीरे उनमें

धुनाई का भी प्रचार हो चला।

पं० लालताप्रसाद मिश्र उस रणीवाँ गाँव के मुखिया थे और उन्हीं के आग्रह से हम लोग रणीवाँ आये थे। जब लालता प्रसाद जी हम लोगों के साथ बैठ कर नियमित रूप से चर्खा चलाने लगे तब हमारा काम बहुत सरल हो गया। उनकी देखा-देखी गाव के अन्य लोग भी चर्खा कातने लगे। प्रारम्भ मे गाव वालों की यह धारणा थी कि चर्खे के सूत से धोती और साड़ी नहीं बन सकती है। उनका यह सोचना स्वाभाविक भी था। क्योंकि उस गाव मे जो दो-तीन चर्खे चलते थे, उनमे चार-पाच नम्बर का ही सूत कतता था और साधारणतया लोग उसे बेच दिया करते थे। हम लोगो ने यहा पर वस्त्र-स्वावलम्बन के ही उद्देश्य को दृष्टिकोण मे रख कर कार्य प्रारम्भ किया था। जब पहले-पहल गाव के सूत से जनानी साड़ी बन कर रणीवा आई तो वहा के इतिहास मे यह एक नवीन बात थी।

गांव मे वही कते सूत की पहली साडी

जब लोगों ने सुना कि अमुक के घर मे अमुक के सूत की एक धोती बुन कर आ गई है तो लोग तमाशा देखने के लिए इकट्ठा होने लगे थे। पर्दे के कारण जो स्त्रिया वहा नही आ सकती थीं, वे उसे अपने घर मँगा कर देखती थी। इस तरह अपने सूत का कपड़ा पहिनते देख कर लोगों की अभिरुचि बढ़ने लगी और हमारे लिए भी चर्खा-प्रचार का एक साधन प्राप्त हो गया। और इस प्रचार से चर्खा सिखाने के क्रम में वहा की स्त्रियो और बच्चों से हमारी घनिष्ठता बढ़ने लगी।

मै तुम्हें पहले ही लिख चुका हूँ कि देहात के काम करने के लिए योजनाओं की कमी नही है। कमी कार्यकर्ताओ की है। अगर गाव मे जाकर बिना किसी प्रोग्राम और काम के भी बैठा जाय तो कुछ ही दिनों में हमे इतने काम आकर घेर लेगे कि हमे यह निर्णय करना कठिन हो जायगा कि किस काम को पहले करें और किसे बाद मे करें। रणीवा मे भी देखते ही देखते चर्खा सिखाने की इतनी

माँग आने लगी कि हम लोगों को एक मिनट के लिए भी छुट्टी नही मिलती थी।

वस, आज यहीं समाप्त करता हूँ। रणीवा ग्राम का कुछ परिचय अगले पत्र में लिखने का विचार है। इति।

---

[२१]

समग्र-सेवा की ओर

४—६—४१

कल मैंने रणीवा का कुछ परिचय देने का वादा किया था। यों तो तुम स्वयं ही उस गाव मे घूम आई हो, फिर भी विस्तार के साथ कुछ बाते वताना बुरा न होगा।

रणीवा गाव फैज़ावाद जिले के ठीक मध्य मे पड़ता है। गुसाईं-गंज स्टेशन से ५ मील दक्षिण वसी हुई ब्राह्मणों की यह छोटी सी वस्ती, देखने में गाव नहीं प्रतीत होती। इसको पुरवा या टोला ही कहा जा सकता है। किन्तु तुम देख चुकी हो कि इधर के गाव यों ही वसे हुए हैं। जिस व्यक्ति का जिस स्थान पर अधिक खेत होता है, वह वहीं जा-कर वस जाता है और उसके नाम से उस पुरवा का नामकरण हो जाता है। परिवार वढ़ जाने पर जव दो-चार घर वढ़ जाते हैं तो वही पुरवा गांव कहलाने लगता है। रणीवा भी इसी तरह का एक गांव है। इसमे ६-१० घर ब्राह्मणों के तथा तीस-वत्तीस घर मज़दूर, अहीर, वनिया और वढ़ई, कुम्हार वगैरह के कुल मिला कर पचास घर होंगे। इतर जातियो के लोग ब्राह्मणो के असामी हैं और उन्हीं की सेवा-टहल किया करते हैं। ब्राह्मण लोग भीटी के ताल्लुके-दारों की अधीनता मे पोख्तेदार हैं। ये लोग जमीन के मालिक होते हैं किन्तु लगान ताल्लुकेदारों को देते हैं। इस गाव के लोगों के पास

रणीवाँ की वस्ती

ज़मीन बहुत थोड़ी है जिससे वे किसी तरह अपना निर्वाह कर लेते हैं। कुछ दिन पहले यहा के कई व्यक्ति कलकत्ता और रंगून मे नौकरी करते थे और बाहर की कमाई के पैसे से खेती की कमी को पूरा करते थे किन्तु आज कल तो केवल एक व्यक्ति के अतिरिक्त और कोई बाहर नही है। अवध की गरीबी को देखते हुए उस गाव को मध्यम श्रेणी का गाव कहा जा सकता है किन्तु साधारणतया उसे ग़रीब गाँव मे ही परिगणित करना चाहिए।

यह गाव ऐसे स्थान पर बसा है कि इससे उत्तर और दक्खिन दोनों ओर नदी पड़ती हैं इसलिए यह बरसात के दिनों मे शेष संसार से अलग हो जाता है। और सड़कों की सुविधा न रहने से बाहर से बहुत कम सम्बन्ध रह जाता है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और सरकारी विभाग के लोग इधर बहुत कम आ पाते हैं। इसलिए इस क्षेत्र को पिछड़ा हुआ इलाका कहा जाता है। आस पास के कई गाव ढूँढ़ डालने पर कहीं जा कर दो एक लड़के मिलते थे। संसार से अलग रहने के कारण इस क्षेत्र मे प्राचीन रूढ़िवाद का वातावरण अधिक देखने मे आता था। गाव में केवल खान-पान के भेद-भाव के अतिरिक्त और कोई आन्दोलन देखने मे नही आता था। कौन किसका निमत्रण काटता है, इसी एक बात की चर्चा गाव वालों की दिलचस्पी का प्रधान विषय था। कांग्रेस की बातो से इन्हें स्वप्न मे भी कोई सम्बन्ध नहीं था। हम लोगो के विषय मे भी इन लोगो मे तरह-तरह की कहानियों का विकास होता था। लोग आपस मे कहा करते थे कि एक बंगाली बाबू आये हैं, कही बम् आदि बनाने का विचार तो नहीं है। कभी लोग कहते थे कि ये लोग जादू जानते हैं। एक बार बच्चों को तमाशा दिखाने के लिए मै आतशी शीशे से कागज़ जला रहा था, इस पर गाव भर की औरते यह कहती हुई इकट्ठा होने लगीं कि बंगाली बाबू जादू से आग लगा देते हैं। इस तरह की

बहुत पिछड़ा गाँव

विभिन्न कहानिया गांव मे फैली हुई थीं। ऐसे पिछड़े हुए क्षेत्र के लिए यह सब स्वाभाविक ही था!

यद्यपि इस इलाके को कोई नई बात समझाना बड़ा कठिन कार्य था फिर भी मुझे यही जगह पसन्द आई। मैने अपने साथियो से पहले ही कह दिया था कि ऐसे गाव की खोज की जाय जहा किसी प्रकार का सार्वजनिक कार्य न होता हो जिस से मुझे शान्ति प्राप्त हो सके। प्रारम्भ में मैने केवल अपने स्वास्थ्य को ही दृष्टिविन्दु मे रख कर ऐसा कहा था। किन्तु दो-तीन माह इस क्षेत्र मे रहने के बाद मुझे ज्ञात हुआ कि इस क्षेत्र के लोगों मे अन्य जगहों की अपेक्षा भारतीय सस्कृति अधिक दिखाई देती है। अशिक्षित, मूर्ख और दकियानूसी ख्याल के होते हुए भी ये लोग श्रद्धा और प्रेम मे अतुलनीय थे! इसलिए उत्तरोत्तर मुझमे उत्सुकता उत्पन्न होने लगी कि मै इसी क्षेत्र मे काम करूॅ। मैने उस क्षेत्र में स्वावलम्बन-कार्य के प्रसार के लिए एक योजना बना कर शकर लाल भाई के पास भेज दी। श्री शंकर लाल भाई ने मेरी योजना स्वीकृत करते हुए मुझे पत्र लिखा। तदनुसार मैने मेरठ को पत्र लिखा और वहा से स्वीकृति आ गई। रणीवा आने के समय यह निश्चय हुआ था कि कर्ण भाई मुझको रणीवां मे बैठाकर अकबरपुर वापस चले जायॅगे। इसलिए वे कभी अकबरपुर रहते थे और कभी रणीवा। किन्तु जब रणीवा मे आश्रम की ओर से ग्रामसेवा-कार्य का केन्द्र खोलने का निश्चय हुआ तो ये भी स्थायी रूप से मेरे साथ रहने लगे।

दकियानूसी दिमाग़ पर प्रेम और श्रद्धा से भरा हृदय

इस प्रकार अब रणीवा, आश्रम की ओर से ग्राम-सुधार का स्थायी केन्द्र बन गया तो मै उसके लिए स्थायी कार्य-क्रम सोचने लगा। मैने तुम्हें लिखा था कि सदियों की गरीबी ने ग्रामीण लोगों को सर्वथा बेहोशी की अवस्था मे पहुॅचा दिया है, इसलिए जब तक हम उनके जीवन में चेतना का संचार नहीं करते तब तक उनमे कोई भी

कार्य-क्रम सफल नहीं हो सकता । जीवन संचार के लिए यह अनिवार्य है कि हम उनके जीवन के प्रत्येक अंग की एक साथ सेवा करें। सन् १६२६ ई० मे भी मैने ग्राम-सेवा की जो योजना बनाई थी, उसकी कल्पना का आधार यही था कि हमे देहात के प्रत्येक पहलू को लेकर चलना होगा।। गावों मे कार्य करने से हमे इसका पर्याप्त अनुभव हो गया था कि हम किसी एक योजना को लेकर नहीं सफल हो सकते। यदि केवल गांव की स्वच्छता का ही प्रोग्राम लिया जाय तो हम जीवन भर गलियाँ ही साफ करते रह जायँगे और उनके जीवन मे कोई परिवर्तन नही ला सकेगे। इसी प्रकार अगर हम कोई दूसरा ही प्रोग्राम लेकर चले तो वह चाहे यन्त्र-वत् चलने मे सफल भी हो जाय किन्तु उससे नव-जीवन-संचार का कार्य नही हो सकेगा। यदि हम केवल चर्खा ही चलवाते रहे तो ग्रामीण जनता को कुछ थोड़े से पैसे तो अवश्य दिला सकेगे किन्तु बापूजी चर्खे के द्वारा ग्रामीण-समाज मे जो परिवर्तन लाना चाहते है, वह नहीं हो सकेगा। गाँव के लोग सूत कात कर हमारे पास लायेगे और हम उन्हे पैसा दिया करेगे। इस प्रकार उनकी अवस्था ठीक वही हो जायगी जो हमने सी० पी० के बिलासपुर और गोंदिया मे देखी थी कि वहा के हज़ारो व्यक्ति बीड़ी बनाकर रोजी कमाते हैं, किन्तु उनमे कोई चेतना नही उत्पन्न होती।

ग्रामसेवा का आधार-बिन्दु

सन् १६२६ ई० मे बापू जी इस प्रान्त का दौरा करने के क्रम मे मेरठ आये हुए थे। हम आश्रमी लोग उनसे एक दिन का समय अलग लेकर अपनी अपनी शंकाएँ उनके समक्ष उपस्थित कर रहे थे। इस सम्बन्ध मे बापू जी ने कहा था कि "यदि तुम लोगों ने कत्तिनों से सूत लेकर खादी बेच दी तो तुमने कुछ नहीं किया। तुम्हे प्रत्येक कत्तिन को स्वराज्यवादिनी बना देना है।" बापू जी की ध्वनि हमारे कानों मे अब तक गूँजती रही और इस बात का क्षोभ

बना रहा कि हम लोग अब तक उनकी इच्छानुसार काम नही कर सके। यद्यपि मैने योजना तो वस्त्र-स्वावलम्बन की ही बनाई थी किन्तु विचार था कि ग्राम-संगठन के सर्वाङ्गीण कार्य-क्रम को कार्य रूप मे ग्रहण करूँगा। इसका अर्थ तुम यह न समझ लेना कि हम लोग एक ही दिन मे सभी कार्य करने लग गये थे, या एक काम करते-करते दूसरे में कूद पड़ते थे। हमने अधिकतर देखा है कि लोग देहात में जाकर ग्रामीणों की अनेकविध परेशानिया देख कर घबड़ा से उठते है और उस घबराहट मे कभी कुछ और कभी कुछ करने लग जाते हैं। इस प्रकार भी ग्रामीणों की सेवा नहीं हो सकती। इससे तो हमारी शक्ति और हमारे साधन धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं और ग्रामीण जनों को कोई स्थायी लाभ नही पहुँच पाता और अन्त मे काम बन्द कर देना पड़ता है। अन्ततोगत्वा उन्हे कहना पड़ता है कि जब तक हम शासन का पूरा-पूरा अधिकार अपने हाथ मे नही कर लेते, तब तक ग्राम-सगठन आदि की बात करना पागलपन मात्र है। उनका ऐसा कहना स्वाभाविक ही है क्योंकि जब हम अपनी भीतरी शक्ति का विश्वास खो बैठते हैं तो हमारे लिए बाह्य-शक्ति पर भरोसा करना अनिवार्य सा हो जाता है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि यद्यपि हम प्रारम्भ मे प्रधानतः एक ही मुख्य प्रोग्राम लेकर गाँव मे जाते हैं तथापि जब तक हम गाव की सर्वाङ्गीण समस्याओं का अध्ययन कर उनके सुधार कार्य-क्रम को उस मुख्य कायक्रम से समन्वित नहीं कर देते तब तक वह मुख्य प्रोग्राम भी निर्जीव सा ही रहता है। इसी-लिए यद्यपि हमने वस्त्र-स्वावलम्बन के ही प्रोग्राम को लेकर रणीवा में कार्य करना प्रारम्भ किया था तथापि उस क्षेत्र की प्रत्येक समस्या को समझने की कोशिश करता रहा। हम इस अनुसन्धान में लगे रहे कि इन समस्याओं के क्या क्या समाधान हो सकते हैं तथा उन्हे किस प्रकार मुख्य प्रोग्राम से समन्वित किया जा सकता है। किन्तु किसी

निराशा हमारे गलत दृष्टिकोण का परिणाम

भी प्रोग्राम को एकाएक हाथ मे लेने की जल्दबाज़ी नहीं की। प्रारंभ मे जब रणीवा आया और साथियों ने प्रोग्राम के लिए उत्सुकता प्रकट की तो मैने उनसे कहा था कि गाव मे गाव वालों की तरह रहना ही प्रोग्राम है। क्योंकि हमे यह विश्वास हो गया था कि अगर हम गाव मे ग्रामीण बन कर रहने लग जायॅगे और अपने दृष्टिकोण को वहा की समस्याओं के प्रति सजग रक्खेंगे तो कार्यक्रम सहज रूप से हमारे सामने आते जायॅगे। और जो काम स्वभावतः जिस क्रम से हमारे सम्मुख आयगा उसी क्रम से काम करना उस क्षेत्र के लिए सर्वोचित ढंग होगा। इसलिए प्रारम्भ मे हम उन्हे चर्खा चलाने तथा अपने सूत के बने हुए कपड़े पहिनने की शिक्षा देते रहे। उनके साथ उठते-बैठते तथा उनसे विभिन्न प्रकार के वार्तालाप करते समय देश की परिस्थिति तथा उसके प्रति गाव वालो के कर्त्तव्य के सम्बन्ध मे भी बात-चीत किया करते थे।

इस प्रकार रणीवा मे रहते रहते दो-तीन महीने कट गये। रणीवां के सम्बन्ध मे इतना काफी है। अब कुछ जेल का वृत्तान्त सुनो। इस साल यहा वर्षा कुछ नही हुई। इसलिए बाहर चाहे जो कुछ हो यहा तो मौज ही मौज है। आजकल लोगों के दिमाग मे छूटने की धुन खूब समाई हुई है। कही कोई वक्तव्य देता है तो लोग झट समझते हैं कि अब छूटे, छूटे। इतना उतावलापन देखकर मै परीशान हो जाता हूॅ। हममे कितनी कमजोरी है, इसका पता तो जेल मे ही लगता है। हम स्वय कष्ट उठाना नहीं चाहते। चाहते हैं, देहात की जनता कष्ट उठावे और हम नेता बने रहे। खैर, यह सब तो चलता ही रहता है। देखो, हमारे देश की क्या गति होती है। सब को मेरा नमस्कार कह देना। इति।

हम कितने दुर्बल हैं

---

[२२]

सफाई की योजना

६—६—४१

मै पिछले पत्रों में तुम्हे लिख चुका हूँ कि प्रारंभ मे हमारा ध्येय केवल यही था कि हम ठीक ढंग से रणीवा मे बस जायँ तथा धीरे-धीरे ग्राम-सेवा के काम मे भी आगे बढ़ते रहे। हम लोगो का केवल ग्राम-वास ही गांव वालों को बहुत सी बाते सिखाता था। हमारा चक्की चलाना, खाना बनाना, मकान की मरम्मत करना, वर्तन माजना और अपने रहने के स्थान के निकट सफाई करने आदि कामो को लोग बहुत ध्यान से देखा करते थे। लोग यह सोच नही सकते थे कि भले घर के व्यक्तियों का और वह भी पुरुषों का यह सब काम करना सम्भव है। जब हम लोग सफाई आदि का काम करते थे तो कभी-कभी गाव के कुछ लड़के भी शौकिया हमारे साथ हो लेते थे। इस प्रकार उनके मस्तिष्क से इन कामों के प्रति घृणा की भावना-धीरे-धीरे अप्रत्यक्ष रूप से हटती जा रही थी। गाव के मुखिया श्री लालता बातों ही बातो मे एक दिन मुझ से कहने लगे कि "धीरेंद्र भाई, आप लोगों के आने से हम लोगों की कपड़े की समस्या तो धीरे-धीरे हल हो रही है। और इससे चाहे जितना लाभ हुआ हो, किन्तु एक बात का विशेष लाभ यह दिखाई दे रहा है कि अब हमारे यहां के लड़के अपने हाथ से कोई काम करने मे बेइज्जती नहीं महसूस करते। सवेरे उठकर दातुन करने के पश्चात् जब तक मै अपना दरवाज़ा और आंगन स्वयं अपने हाथ से साफ नही कर लेता हूँ तब तक मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता है।" टाडा के देहात मे रहकर मध्यम श्रेणी के लोगों की काहिली और बेकारी को लेकर उनके विरुद्ध मेरी जो धारणा हो गई थी, उसके विषय मे मैने तुम्हें लिखा है। अब तो हमे उन्ही के सम्पर्क मे आकर बसना पड़ा है। रणीवा के आस-पास अधिकतर

ब्राह्मणो और क्षत्रियों की बस्ती है और उनकी अवस्था भी ठीक उसी किस्म के 'भलमनई' की तरह है, जिसका ज़िक्र मै पहले कर चुका हूँ। वही नही, इस दस वर्ष की अवधि में इन लोगो की अवस्था और भी विगड़ गई है। उनमे निम्न श्रेणी के लोगों के प्रति उसी प्रकार की घृणा, अपनी हैसियत के विषय मे उसी प्रकार का अभिमान और परिश्रम करने से अपनी प्रतिष्ठा के विगड़ जाने का उसी प्रकार का ख्याल मौजूद है। इधर सन् १६२६ के पश्चात् आने वाले विश्व-व्यापी अर्थ-संकट के शिकार होकर आज वे और अधिक गरीब हो गये हैं। गरीब हो जाने के कारण इनके वड़प्पन प्रकट करने की चेष्टा और अधिक हास्यास्पद प्रतीत होती थी। अपने उसी वड़प्पन को स्थायी बनाने के प्रयत्न मे अपनी प्रजा के प्रति ये लोग अत्यधिक अत्याचारी वन गये। अतएव परिश्रम करने के मर्य्यादा-त्याग की वात उनके लिए सवसे अधिक लाभ की वात थी। इस प्रकार हम लोग केवल गाव मे वस कर ही अप्रत्यक्ष और स्वाभाविक रूप से गाव के एक मुख्य कार्यक्रम पर आ गये। परिश्रम की मर्य्यादा समझ लेने के पश्चात् स्वच्छता का कार्यक्रम आप से आप सामने आ जाता है। हमारे घर और दरवाजे की सफाई देख कर और लोग भी अपने दरवाजे की सफाई करने मे लग गये।

अव तक हम लोगों ने परिश्रम या गाव की स्वच्छता का प्रोग्राम नियम-पूर्वक कभी गाव वालों के समक्ष नही रखा था। क्योंकि इन प्रोग्रामों को नियमतः गाव वालों के सामने रखने पर हमे विश्वास ही नहीं था। वस्त्र-स्वावलम्बन के मूल कार्य के साथ-साथ प्रत्येक प्रोग्राम समय पाकर अनायास ही हमारे समक्ष आते जायंगे, हमारा काम केवल उन्हे क्रम देकर उनमे सामञ्जस्य स्थापित करना ही होगा। मुझे इस प्रकार का विश्वास पहले से ही हो गया था इसीलिए हम लोग झाड़ू, फावड़ा और टोकरी लेकर गाव की सफाई करने कभी नहीं निकले। एकाध दिन हमारे साथी श्री लालसिंह भाई ने इसकी चर्चा

भी की और कहा कि महात्मा जी तो गांव की सफाई का ही प्रोग्राम सबसे महत्व का बतलाते हैं। किन्तु मै उन्हें सर्वदा ही मना करता रहा। इसका यह अर्थ तुम मत समझना कि मै गाव की गन्दगी को महसूस नही करता हूँ या गाव की गन्दगी मेरी निगाह में आती ही नही है। अगर मुझे गाव मे रहने पर किसी बात से घबराहट होती है तो वह गन्दगी से ही। शुरू शुरू मे जब बनारस के धौरहरा गांव में गया था तो वहा की गन्दगी देख कर मै व्याकुल हो गया था किन्तु रणीवा मे मै देख रहा था कि अभी गाव की सफाई का प्रोग्राम हाथ में लेने का समय नही आया है। जब तक हम गाव वालों के साथ रह कर गन्दगी के प्रति उनके दिमाग़ मे घृणा नहीं उत्पन्न करेंगे, तब तक केवल गाव की गली साफ़ करने का कोई परिणाम नहीं होगा। चेतना-विहीन ग्राम-वासी उसके प्रति कोई ध्यान नहीं देंगे।

अब हम गाव में ग्राम-वासी के रूप मे अपने बसने का क़िस्सा प्रायः समाप्त कर चुके। उपर्युक्त परिस्थिति के उत्पन्न होने तक हमारे वहा तीन माह समाप्त हो चुके थे। गाव के हर आदमी से हम परिचित हो चुके थे, हर परिवार में हमारा स्थान बन चुका था। गाव वाले हमे जानने लगे थे और हम लोग गाव वालो को जानने लग गये थे। हमने उनके एक निकटस्थ पड़ोसी का पद प्राप्त कर लिया था। जिस प्रकार गाव के लोग अपने सुख-दुःख की बाते अपने पड़ोसियों से किया करते हैं और अपने मामलों मे उनसे परामर्श लिया करते हैं, उसी प्रकार का व्यवहार अब उनके और हमारे मध्य में होने लगा था। इसी अवधि मे होली का त्यौहार आ गया और गाँव-गाँव मे लोग होली के रंग से रंगे जाने लगे। होली और फाग से देश का कोना-कोना गुञ्जायमान होने लगा। होली के त्योहार मे घरों के भीतर-बाहर अच्छी तरह सफ़ाई करना एक धार्मिक अनुष्ठान है। अमीर और ग़रीब सभी लोग अपने-अपने घर-द्वार साफ़ करते हैं किन्तु अपने वास स्थान का निकटस्थ क्षेत्र एवं गली, झाड़ी कभी साफ नहीं

करते। हम लोगों ने निश्चय किया कि गाँव की सफाई का प्रोग्राम प्रारम्भ करने का यही उपयुक्त अवसर है। अतः हम लोग उन्हे साथ लेकर सफ़ाई के कार्य मे जुट गये। हम लोग उन जगहों की भी सफ़ाई करने लगे जिन्हे वे कभी साफ़ नहीं करते थे और गाँव के कूड़े के ढेर (घूर), गली, कूचे और रास्ते की टट्टी जो कुछ भी गन्दगी दिखाई देती थीं, सबकी सफाई प्रारम्भ कर दी। लज्जा और सकोच-वश कुछ गाव के लोग भी हमारे साथ हो लिये। एक बूढी स्त्री, जिन्हें गाव के सब लोग 'अइया' कह कर सम्बोधित करते थे, हम लोगों को गन्दगी साफ करते देख कर रोने लगीं और गाव के लोगों पर नाराज़ होने लगीं कि क्यों लोग गाव में गन्दगी फैलाते हैं। होली के कारण सफाई के प्रति लोगों के हृदय मे उत्साह तो था ही इसलिए हमारे उस दिन के काम और उपर्युक्त घटना का लोगों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। इस समय के पश्चात् लोग गन्दगी के प्रति पहले से ही सावधान रहने लगे। यद्यपि सदियों का परम्परागत सस्कार एक दिन मे नहीं मिट सकता किन्तु अब इस सम्बन्ध में कभी-कभी कुछ कह देने मात्र से ही लोग स्वच्छता के प्रति पहले से अधिक ध्यान देने लगे। इस प्रकार हम लोगों ने अप्रत्यक्ष रूप से देहात मे परिश्रम और सफाई का प्रोग्राम लेकर प्रवेश पा लिया। तदनन्तर उन लोगों के साथ उठते-बैठते प्रायः हर समय परिश्रम की मर्यादा और सफाई के विषय पर उन्हे कुछ समझाने ही रहते थे। अब हमारे लिए वहा तीन प्रोग्राम हो गये। १. चर्खा, २. परिश्रम, और ३. स्वच्छता।

गाव के त्योहार और अनुष्ठान आदि के उपलक्ष में अगर हम सफाई के प्रोग्राम को हाथ मे लेते हैं, तो उस परिस्थिति मे गाव के सम्पूर्ण निवासी हमारा साथ देने को तैयार हो जाते हैं। और उसका प्रभाव भी अच्छा पड़ता है। आज हम लोगों को रणीवां मे कार्य करते हुए छः वर्ष वीत चुके हैं और इस अवधि में मैंने जिला ग्राम-सुधार की ओर से भी सफाई के कार्य किये हैं पर इनमे भी हमने उन्हीं

उपयुक्त अवसरो का प्रयोग किया है। इस प्रकार दिन-ब-दिन मेरा विश्वास दृढ़ होता गया कि स्वच्छता का कार्य इसी ढंग से करना उचित है। प्राचीन काल से त्योहार, शादी, विवाह आदि शुभ कार्यों मे सफाई के अनुष्ठान को बहुत महत्व दिया है, और ऐसे अनुष्ठान साल मे इतने अधिक बार आते हैं कि अगर उन्हीं अवसरो पर गाव के लोग सुचारु ढ ग से गाव की सफाई कर लिया करें तो हमारे गांव पर्याप्त स्वच्छ रहा करेगे। लोग घर-गृहस्थी और खेती-वारी के काम मे इतना अधिक ब्यस्त रहते है कि वे प्रति दिन नियम-पूर्वक सफाई का कार्य-क्रम पूरा करने मे सफल नही हो सकते। अतएव यह कार्य करने के लिए कोई न कोई दूसरी शैली खोजनी ही पड़ेगी। यदि वे अपना घर और द्वार ही नित्य नियमपूर्वक साफ कर लिया करे तो हम उसी को पर्याप्त समझेगे। सम्भव है कि सुदूर भविष्य में हमारे ग्रामीण समाज की आर्थिक, बौद्धिक और नैतिक परिस्थिति इतनी विकसित हो जाय कि देहात के लोगों की स्वच्छता का मापदण्ड और ऊँचाई पर पहुँच जाय। किन्तु आज यदि हमारे ग्रामीण कार्यकर्ता ऊपर बताई हुई विधि से ग्रामीणो मे गाव की स्वच्छता के संस्कार उत्पन्न करने मे सहायक बन सके तो हमारी दृष्टि से इनका उतना ही करना पर्याप्त होगा।

तुम लोग सेवा-ग्राम में रहती हो। तुम्हारी दृष्टि मे मेरी यह राय सम्भवतः विचित्र-सी मालूम होगी। किन्तु मै अपने अनुभव से जिसे नतीजे पर पहुँचा हूँ वही तो कहूँगा। कभी मिलने पर इस विषय पर विस्तृत बातें करूँगा। आज विदा। नमस्कार। इति।

———

[२३]

घनिष्ट सम्पर्क का लाभ

७—६—४१

पिछले पत्र मे मैने तुमको लिखा था कि प्रारम्भिक तीन महीने मे हम लोगों ने रणीवा मे व्यक्तिगत ग्राम-वासी के रूप को पारकर देहात के लोगों से पड़ोसी का सम्बन्ध स्थापित कर लिया। बीमारी मे, कष्ट में लोगों की खबर लेने लगे। उनकी सेवा-सुश्रूषा करने लगे और उनकी दवा-दारू मे उनको सम्मति देने लगे। उनकी शादी और गमी के अवसरों पर एक पड़ोसी की तरह भाग लेने लगे। उनके यहा जब विवाह या श्राद्ध के अवसर आते थे और जब बिरादरी के लोगों को भोज दिया जाता था तो वे लोग हम लोगों को भी आमंत्रित करते थे और हम लोग बिना किसी एतराज के स्वीकार कर लेते थे। और समय पर उनके यहाँ चले जाते थे। पहले पहल हम लोगों के जाने से निमत्रित व्यक्तियों मे कुछ खलबली उत्पन्न हुई। हमारा सभी जाति के लोगों के साथ बैठकर खाना, भोजन के समय कुर्ता आदि न उतारना, भोजनोपरान्त जूता और चप्पल आदि पहन कर हाथ-मुँह धोने के लिए जाना आदि सभी बातों पर समालोचना होने लगी किन्तु हम लोगों ने अपना ही ढंग कायम रक्खा। निमंत्रण देने वालों से हम लोग स्पष्ट कह दिया करते थे कि हमारे खाने-पीने की शैली वही रहेगी जो आश्रम मे रहती है। तुम सोच लो, अगर हम लोगो के जाने से तुम पर कोई आपत्ति आ पड़े तो हम लोगों को न बुलाओ। यह सब होते हुए भी गाव के लोग हमें अवश्य बुलाते थे।

आलोचनाओं का अन्त

क्योंकि अब उन लोगों ने हमे अपने एक पड़ोसी के रूप मे ग्रहण कर लिया था। धीरे-धीरे समालोचनाएँ समाप्त होने लगी और इस प्रकार के निमत्रणों में हमारे बैठने का आसन भी धीरे-धीरे प्रधान पंक्ति के निकट पहुँचता गया और उसे भी लोग बरदाश्त करने

लगे। इस प्रकार भोजन के सम्बन्ध मे लोगो की कट्टरता धीरे-धीरे कम होती गई और हम लोगों की देखादेखी जो लोग अपने प्रयोग में आने वाले कपड़े नित्य धो लिया करते थे वे भी कभी-कभी कपड़े पहिन कर भोजन करने लगे। अवस्था यहाँ तक पहुँच गई कि उस गाव का एक लड़का निमंत्रणादि में हमी लोगों के साथ बैठ कर खाने लगा और गाँव के लोगो ने भी उसे सहन कर लिया। अब हम लोग छुआछूत के सम्बन्ध मे लोगों से खुलकर वाद-विवाद करने लगे। शनैः शनैः वही जनता जो पहले कुर्ता पहन कर खाने पर हम लोगों से घृणा करती थी, अब वाद-विवाद करते हुए यह कहने लगी कि "भाई, हम लोग भी जानते हैं कि यह सब ढकोसला है किन्तु प्रथम तो हमारा इस प्रकार का संस्कार बन गया है जिसके विरुद्ध आचरण करने को जी नहीं चाहता और दूसरी बात यह है कि कौन आगे चल कर पहले अपनी नाक कटाये।" इस प्रकार प्रतिवेसी के रूप मे एक और बड़ा कार्यक्रम हमे मिल गया और हम दिन प्रति दिन इस दिशा मे भी आगे ही बढ़ते गये।

मै अभी-अभी लिख चुका हूँ कि हम लोग गाव वालो के पड़ोसी होने के सम्बन्ध से उनके शोक-ताप और बीमारी आदि के समय उनके यहाँ जाया करते थे और जहा तक सम्भव होता था, उनकी सेवा करते थे और उन्हे सान्त्वना देते थे। इसी समय मेरे सामने एक जटिल प्रश्न आ खड़ा हुआ। अकबरपुर आने से पहले ही सन् १९२३ ई० मे, जब कि मै बनारस मे रहा करता था और गावों मे कार्य प्रारम्भ करने के विषय मे विचार किया करता था तो श्री राम-कृष्ण मिशन के श्री कालिका महाराज की प्रेरणा से होमियोपैथी का अध्ययन करना प्रारम्भ किया था। इसका उद्देश्य केवल यही था कि यह ग्राम-सेवा के लिए उपयोगी होगा। अकबरपुर रहते समय इसका पर्याप्त अभ्यास भी हो गया था। यद्यपि इधर कई वर्ष से अभ्यास छूट जाने के कारण यह विद्या मुझे प्रायः भूल चुकी थी किन्तु

चिकित्सा के सम्बन्ध में विचार

जब गाव के बच्चों को बीमार होते देखता था तो होमियोपैथिक दवा और पुस्तकें मँगाने की इच्छा प्रबल होने लगती थी। किन्तु बापू जी के विचार गावों मे दवा देने के प्रतिकूल हैं, इसे मैं उनके कई लेखों में देख चुका था। उनकी योजनानुसार गाव के रोग, गाव की सफाई करके ही दूर किये जाने चाहिएँ। दवा का उनके प्रोग्राम मे कोई विधान नहीं है। इसलिए मैंने होमियोपैथी पुस्तकें मँगाने की कल्पना छोड़ दी और हम लोग स्वयं अपने प्रयोग के लिए जो टिंचर आयोडिन, अमृतधारा, और त्रिफला आदि दवाइयाँ मँगा कर रखते थे उन्हीं मे से आवश्यकता आ पड़ने पर कुछ उन्हें भी दे दिया करते थे। कभी-कभी तुलसी की पत्ती, बेल का पत्ता, शहद, और दूब की जड़ आदि देहाती दवाएँ भी उन्हे बता दिया करते थे। किन्तु हमने अनुभव किया कि जब गाव वालों को साधारण रोग की अपेक्षा कठिन रोग हो जाता था तो हम लोग असहाय से हो जाते थे और उनकी कोई मदद नहीं कर सकते थे। गाव मे कुछ लोग, जिनमें विशेषतः स्त्रिया थीं, बहुत दिनों के रोगों से ग्रस्त थे। उन्हे देख कर मै सोचता था कि यदि हम होमियोपैथिक दवाएँ मँगा ले तो ऐसे अवसरों पर ग्रामीण जनता की सेवा कर सकेंगे। ज्यों-ज्यों मै रणीवा और उसके आस-पास के लोगों को बीमार पडते देखता था, त्यों-त्यों मेरी इस विषय की चिन्ता बढती जाती थी। मैंने देखा कि यदि हम गाँव की सफाई करके रोग-निवारण पर भरोसा करते हैं तो इस प्रकार रोगों के दूरीकरण मे एक-दो पुश्त का समय लग जायगा। हम गाँव में कितनी भी सफाई क्यों न कर ले किन्तु सदियों का बना हुआ संस्कार एक दिन मे नहीं दूर हो सकता। यदि दो-चार व्यक्तियों में कुछ सुधार हो भी गया तो भी सम्पूर्ण गाँव का परिवर्तन तत्काल नहीं हो सकता और यदि गाँव के किसी भी भाग मे गन्दगी रह गई तो उसका प्रभाव, गाँव के सम्पूर्ण व्यक्तियों पर पड़ेगा। गाँव के किसी भी

कोने की गन्दगी पर की मक्खी उनके भोजन पर भी बैठ सकती है जो लोग स्वच्छता का पूरा ध्यान रखते हैं। अतएव जब तक हम सम्पूर्ण गाँव के रहन-सहन मे परिवर्तन नही करते तब तक हमारी रोग-निवारण की आशा दुराशा मात्र है और गाँवो का इस प्रकार का आमूल परिवर्तन कितने दिनो मे हो सकता है, इसका हिसाब तुम स्वयं लगा सकती हो। हमारे आश्रम के कार्य-विभाग में साधारणतः अच्छे घरो के ही नौजवान आते है ; अनेक प्रकार के विधि-निषेध का पालन करते हुए शिक्षा पाते हैं; अच्छे से अच्छे वायुमण्डल मे ऊँची कक्षा के व्यक्तियो से सम्पर्क और संगति का अवसर मिलता है; किन्तु इनमे हम कितने प्रतिशत लोगों की गन्दगी और अव्यवस्था की प्रकृति का परिवर्तन कर पाते है और जो कर पाते हैं वह भी कितने वर्षों में ? इन वातों पर दृष्टि-निक्षेप करते हुए तुम समझ सकती हो कि गाँव वालो की प्रवृत्ति मे परिवर्तन लाने के लिए कितने वर्षों की अपेक्षा होगी ? यदि यह भी कल्पना कर ली जाय कि कोई अपनी अलौकिक शक्ति-द्वारा गाँवों को सम्पूर्ण रूप से स्वच्छ कर देगा और उनके संस्कार का भी परिवर्तन कर देगा, तो भी इतने दिनो से गन्दगी मे रहने के कारण और ठीक प्रकार से भोजन न मिलने के कारण उनके शरीर की नस-नस मे, उनके रक्त के अणु-अणु मे रोग के जो वीज प्रवेश कर गये हैं, उन रोगो के शिकार तो अवश्य ही वनेगे। इसलिए औषधि का का ज्ञान रखते हुए भी, उसका प्रयोग न करने से हमारे पड़ोसी धर्म का यथातथ्य पालन हो सकेगा ? इस प्रकार की द्विविधा मे पड़कर मै तत्काल कोई निश्चय न कर सका। किन्तु अन्ततः मैने लोगों के कष्ट देख कर होमियोपैथिक दवाइयाँ और किताबें मँगा ली और अब यदि कोई वीमार होता था, तो उसकी दवा करना भी प्रारम्भ कर दिया।

कुछ काल पश्चात् जब लागों ने जान लिया कि मै रोगों की दवा भी करता हूँ तो धीरे-धीरे आस-पास के सात-आठ गाँवों के लोग वीमार पड़ने पर मुझसे सहायता लेने लगे। इस प्रकार दवा-वितरण

के आधार पर पाच-छः गावों के लोगो से हमारा और परिचय हो गया और हम उन मे भी चर्खे का प्रचार करने लगे। धीरे-धीरे सभी गावों मे कुछ चर्खे चलने लगे और हमारा कार्य-क्षेत्र भी बढने लगा। हमने देखा कि रोगियों का इलाज करने से चर्खे के प्रचार-कार्य मे भी सहायता मिलने लगी। लोग साधारणतः हमे बच्चो की बीमारी मे बुलाया करते थे और इस प्रकार हम गाव की स्त्रियो से भी कुछ-कुछ परिचित होने लगे और वे हमारी बातों की प्रतिष्ठा करने लगी। मै तुम्हें पहले लिख चुका हूँ कि जब अकबरपुर टाडा के क्षेत्र मे चर्खे का प्रचार करता था तो मै पर्दे के कारण ब्राह्मण और क्षत्रिय जाति की स्त्रियों से नही मिल सकता था इसलिए उनमे चर्खे का प्रचार नहीं हो सका। दो-तीन वर्ष तक देहात मे काम करके मैने देख लिया था कि हमारे सिद्धान्त को जितने शीघ्र गाँव की स्त्रियाँ समझ लेती हैं उतने शीघ्र पुरुष नही समझ पाते। यदि कभी कोई पुरुष हमारी बातो को समझ भी लेता था तो वह अपने घर की स्त्रियो को समझा नही पाता था। वे समझती थी कि यह उनके सिर पर एक और नये काम का बोझा रखने का ढंग है। वास्तव मे शताब्दियो से भारतवर्ष की समाज-व्यवस्था ऐसी बिगड़ गई है कि पुरुष वर्ग ने स्त्रियों को केवल भोग की सामग्री और सेविका बना कर रक्खा है। समाज मे उनके लिए कोई प्रतिष्ठा का स्थान नही रह गया है। मुझे कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि जब से भारतवर्ष ने स्त्री-जाति का असम्मान करना प्रारम्भ किया तभी से इसका पतन हो गया है। आज गाव की स्त्रियाँ कार्य-कलाप के विषय मे पुरुषों को सर्वदा सन्देह की दृष्टि से देखा करती हैं। इसीलिए वे उनके कहने पर भी चर्खा चलाने की ओर ध्यान नहीं देती। उस समय कुर्मियो की स्त्रियो से हमारा कोई पर्दा नही था इसलिए हम उन्हे चर्खे के लाभ भलीभाँति समझा सके थे। किन्तु रणीवा मे प्रतिवेशी के सम्बन्ध से और दवा करने के सम्बन्ध से हम मध्यम

क्षेत्र-विस्तार

श्रेणी की स्त्रियों के भी सीधे सम्पर्क मे आने लगे थे और इस प्रकार उनमें भी चर्खा चलने लगा था। इस प्रकार दवा मँगा कर रख लेने से हमें विशेष लाभ हुआ और हम लोगों ने अब तक भी दवा का प्रोग्राम नही छोड़ा है। सम्भवतः इस बात में तुम मुझसे सहमत ही होओगी। तुम्हारा क्या विचार है? लिखना।

मेरी तबीयत कुछ सुस्त मालूम होती है। कई दिन से दाँत उखाड़ रहा हूँ। अब तुम्हारी तरह मेरे भी सब दाँत बने हुए हो जायँगे। वहाँ के विषय मे लिखना। तुम लोग किस प्रकार हो? नमस्कार।

---

[२४]

वस्त्र-स्वावलम्बन की ओर

८—६—४१

अब तक हम अपने ही विषय मे लिखते रहे। आज हम तुम्हे यह बताने की कोशिश करेगे कि वस्त्र-स्वावलम्बन के प्रोग्राम से हमे क्या-क्या लाभ हुए। इससे तो तुमको ख़ास दिलचस्पी है न?

रणीवाँ के आस-पास कही कोई बुनाई का काम करने वाले कारीगर नही हैं। इसलिए स्वावलम्बन के लिए जो सूत कातता था, उसे हम अकबरपुर से बुनवा लेते थे। किन्तु धीरे-धीरे जब कई गाँवों मे चर्खे चल गये तो हमारे सामने बुनाई की कठिन समस्या आ खड़ी हुई। एक तो अकबरपुर से बुनवाकर मँगाने मे पर्याप्त समय लग जाता था, दूसरे बुनाई का काम बहुत दूर होने के कारण लोगों को बुनाई के प्रति कोई विशेष दिलचस्पी नहीं थी और जो कपड़ा बन कर आता था, वह अपने यहा के बने हुए कपड़े के रूप मे नहीं मालूम होता था। इससे स्वावलम्बन की भावना में कमी पड़ जाती थी। एक दिन पण्डित लालताप्रसाद और गाव के कई अन्य लोग हमसे

कहने लगे कि यदि गाव मे ही बुनाई का प्रबन्ध हो जाय तो अपना सूत बुना जाता हुआ देख कर हमको जो आनन्द होगा वह आनन्द अकबरपुर से बुनवा कर मॅगाने मे नहीं होगा और स्त्रिया जब अपना सूत अपने सामने बुने जाते हुए देखेगी तो उनका हौसला बढ़ता ही जायगा। तीसरा लाभ यह होगा कि यदि हमारे गाव के कुछ लड़के बुनाई सीख लेगे तो उनकी बेकारी की समस्या भी हल हो जायगी। और हम लोग स्वयं पैसा के स्थान पर अनाज देकर सूत बुनवा सकेगे। हमने आपस मे परामर्श किया और गाव वालों की दलील माकूल मालूम हुई। हम लोगो ने विचार किया कि यदि गाव के लोग कताई और बुनाई दोनों अपने-आप स्वयं करले तो वे स्वावलम्बी हो जायॅगे; उन्हें हम पर भरोसा नहीं करना पड़ेगा।

यह सोच कर हम लोगो ने बुनाई का काम प्रारम्भ कर दिया। इसके लिए भी तुमने देख ही लिया कि इस प्रोग्राम का प्रस्ताव भी पहले गाव की ही ओर से आया। और हम लोगों को सहज ही एक प्रोग्राम मिल गया।

बुनाई का कार्यक्रम चालू कर देने से कई दृष्टिकोण से और भी लाभ हुआ। यह क्षेत्र इतना पिछड़ा हुआ था कि यहा के लोगों को किसी प्रकार की नई बात देखने को नहीं मिलती थी। पुरुष तो इधर-उधर जाकर कुछ बाते देख भी लेते थे किन्तु स्त्रिया और बच्चे अधकार मे ही रह जाते थे। बुनाई का कार्य प्रारम्भ हो जाने से उन्हें यह एक नई बात तो देखने को मिल ही गई। इस कार्य की विभिन्न प्रकार को प्रक्रियाओं मे लोगों की अभिरुचि होना स्वाभाविक था। ताना तन कर माड़ी-द्वारा उस सूत को माजने से सूत मजबूत हो जाता है, 'वै' और 'राछ' मे सूत भरना, शटल की खट-खट आवाज़ इत्यादि बातों को बच्चे और स्त्रिया तमाशा के रूप मे देखती थीं और इस प्रकार उनके दृष्टिकोण एव उनकी बुद्धि का परोक्ष रूप से विकास होता था। अब

बुनाई का आरभ

बुनाई के रूप मे गाव के भीतर कुछ उद्योग का वातावरण भी आ गया। इस क्षेत्र के गावों के लोगो मे यह कल्पना भी नही उत्पन्न हुई थी कि वे ग्रामोद्योग के द्वारा अपनी आवश्यकता के सामान स्वयं तैयार कर सकते हैं। अब बुनाई खुल जाने से इस दिशा मे भी लोगों का मानसिक विकास होने लगा।

शुरू मे इस काम के लिए अकबरपुर से बुनकर भी बुला लिया था। बुनकर और बुनाई के अन्य सामान आ जाने पर हमारे सामने स्थान की समस्या आ उपस्थित हुई। हम लोग जिस घर मे रहते थे वह इतना संकीर्ण था कि उसमे हमी लोगो के रहने के लिए पर्याप्त स्थान नहीं था, फिर उसमे करघे के लिए स्थान कहा से आता। हमने यह प्रश्न गाव वालो के सामने रक्खा कि यदि आप लोग हमे कही करघे के लिए थोड़ा स्थान दे तो यह काम प्रारम्भ हो जाय। गाव के लोगों ने आपस मे सलाह करके हमारे निवास-स्थान के निकट एक घर की कोठरी मे कर्घा गाड़ने का स्थान दे दिया। वह घर गाँव के पंडित का था। इसलिए उसमे बुनाई का कार्य प्रारम्भ करने से हमे एक प्रकार का और भी लाभ था। आमतौर से लोग बुनाई के काम को एक बहुत छोटा काम समझते हैं। यह काम केवल जुलाहों और हरिजनो का था, भले घर के लोग इसको घृणा की दृष्टि से देखते हैं। ऐसी अवस्था मे गाँव के पडित जी के घर मे कर्घा गड़ जाना और उसमे एक जुलाहे का बस जाना, इस क्षेत्र के लिए एक विशेष महत्व की बात थी। इसलिए जब हमारे साथी श्रीकर्ण भाई ने आकर कहा कि हमारे बुनाई विभाग के लिए तिवारी बाबा के घर मे एक कोठरी मिल गई, तो हमने कहा अच्छा ही हुआ—"एक पंथ दो काज सध गये।" कर्ण भाई ने भी हँसते हुए कहा कि अब इसके विरोध में कोई भी कुछ कह नहीं सकेगा। हम लोग प्रारम्भ से ही रुढ़िवाद और दकियानूसी विचारों को शिथिल करने का सहज समाधान ढूंढा करते थे। इस घटना से हमको इस दिशा में पर्याप्त सहायता मिली। गाँव के

शुभ परिणाम

अग्रगण्य तिवारी बाबा के घर में एक मुसलमान बस गया। गाँव की स्त्रियाँ और बच्चे बुनाई की क्रिया देखने के लिए आने जाने लगे। ऐसी स्थिति में यह परम स्वाभाविक हो गया कि लोगो की मुसलमानों और बुनाई के प्रति प्रकृतिगत घृणा की मात्रा क्रमशः कम होती जाय।

बुनाई का कार्य प्रारम्भ हो जाने से लोगों मे अपने सूत का कपड़ा बुनवाने का उत्साह तो बढता ही गया किन्तु हमारा उद्देश्य यही नहीं था कि बाहर से जुलाहा बुलवाकर बुनाई का काम कराया जाय। हमारा उद्देश्य तो यह था कि इस क्षेत्र के बेकार नौजवान इसे सीख लें और स्वयं करने लग जायें। किन्तु प्रारम्भ में हमे इस दिशा मे काफी कठिनाइयो का सामना करना पड़ा। यह एक ब्राह्मण का गाँव था। अपने घर मे एक जुलाहे को स्थान देकर बुनाई का काम कराने लगे, इतना ही उस क्षेत्र के लिए एक बहुत बड़ी क्रान्ति की बात थी; ऐसी स्थिति में वे स्वयं बुनाई का कार्य करें यह उनकी मानसिक स्थिति के किसी भी तरह अनुकूल नही था। जिससे गाँव मे कई नौजवानों के बेकार रहते हुए भी हम उन्हें इस काम के लिए तैयार नही कर सके। पं० लालता प्रसाद जी ने कहा कि मैने तो यह अनुमान किया था कि आप हमारे दो-एक चमारो को सिखा देंगे और सीख कर वे गाँव वालों का सूत बुन दिया करेंगे। हमने उनकी यह बात स्वीकार कर ली और वे सीखने के लिए आने लगे। उनके द्वारा मालूम हुआ कि वे लोग सर्वदा नहीं ख़ाली रह सकते, क्योंकि वे खेती के कामों मे मज़दूरी करते हैं और जब उच्चवर्गीय लोगों को खेती के काम के लिए ज़रूरत पड़ेगी तो वे उन्हे बुला लेंगे। प्रायः होता भी ऐसा ही था। इसलिए उनका बुनाई सीखना सम्भव नही था। यह सब सोच कर हम लोगों ने उन्हे सिखाने की चेष्टा छोड़ दी और उन लोगों ने सीखना बन्द कर दिया।

जिस ब्राह्मण के घर हम लोग रहा करते थे, उनकी आर्थिक स्थिति

बहुत शोचनीय थी। कुछ ही काल पहले ये लोग अच्छे गृहस्थ थे किन्तु कर्ज के कारण इनकी जायदाद धीरे-धीरे दूसरों के हाथ मे चली गई थी। उन्हें दोनों समय भोजन भी नही मिल पाता था, मालगुजारी चुकाना तो दूर की बात है। उस परिवार का सम्पूर्ण भार एक विधवा के सिर पर था जिसके लड़के बिल्कुल बेकार बैठे हुए थे। बेचारे करते ही क्या? ज़मीन भी तो काफ़ी नहीं थी कि उसी की देख-भाल करते। दूसरा कोई उद्योग तो था नही। अपने हाथ से हल चलाना या इसी प्रकार के अन्य काम करने मे बेइज्जती का डर था। इतना साधन भी नहीं था कि स्कूल मे जाकर शिक्षा ही प्राप्त करते। घर-गृहस्थी की देख-रेख तो इनकी माता ही कर लेती थी। इसलिए ये लोग दिन भर बैठे बैठे मक्खिया मारा करते थे। और भूख से छटपटाते रहते थे। हमारे इतने दिन तक इस परिवार में रहने और हम लोगो के अपने हाथ से सम्पूर्ण काम करने की वजह से इनके हृदय की संकीर्णता बहुत-कुछ कम हो गई थी। हमने इनको समझाया कि बुनाई का काम सीख लो, आख़िर हम लोग भी तो इसे करते हैं। इससे हमारी कौन सी इज़्ज़त चली जाती है। तुम लोगो की इज़्ज़त ही क्या है? गरीब होने के कारण प्रथम तो कोई पूछता ही नहीं, दूसरे बेकार बैठ कर दूसरो की कृपा का अन्न खाने से परिश्रम करके खाना अधिक प्रतिष्ठा की बात है। जिस दिन तुम परिश्रम करके खाने लगोगे और अपनी बिगड़ी हुई अवस्था बना लोगे, उस दिन लोग तुम्हे अधिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखने लगेंगे। रात-दिन के सहवास और बार-बार समझाने से उस घर के रामकरण नाम के एक लड़के ने बुनाई का काम प्रारम्भ कर दिया। उसके बुनाई सीखने से चारों

एक विधवा ब्राह्मणी का साहस

और उसके विरुद्ध खूब आलोचनाएँ और प्रत्यालोचनाएँ तथा हो-हल्ला होने लगा। गाँव की चौबीसों घण्टे की आलोचना से उसका बड़ा भाई कुछ घबड़ा सा गया। किन्तु रामकरण अपने निश्चय

पर डटा रहा। उसकी माँ ने भी उसका साथ दिया। एक दिन बड़े भाई ने जब अपनी माँ से कहा कि सब लोग कहते हैं कि "तुम लोग जुलाहा हो गये" तो उसकी माँ ने हम लोगों की ओर संकेत करते हुए स्पष्ट उत्तर दिया कि 'ये लोग इतने भले घर के लड़के अगर जुलाहे हैं, तो भले ही हमारे घर के लड़के जुलाहे हो जायँ, कोई चिन्ता नही। जब हम लोग खाने बिना भूखों मरते हैं, तो खिलाफ कहने वाले क्या हमारे घर मे अनाज भेज देते हैं?' मैने देहात मे काम करते हुए यह अनुभव किया है कि देहात की स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक रुढिवादी होती हैं। किन्तु अनुकूल वातावरण मे सुचारु-रूपेण समझा देने पर किसी आदर्श की बात को जितनी शीघ्रता से वे ग्रहण कर लेती हैं, उतने शीघ्र पुरुष नहीं ग्रहण कर पाते। परिवर्तन भी पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियों मे शीघ्र हो जाता है। इतने पिछड़े हुए दक़ियानूसी ब्राह्मण-गाव की एक ग़रीब विधवा ब्राह्मणी का इतना कहना बहुत साहस का काम था। मैने देखा है कि काग्रेस के अनेक प्रमुख कार्यकर्त्ता, जो संसार के नाना प्रकार के ज्ञान-विज्ञान से भली-भाति परिचित हैं और उठते-बैठते 'इन्क़लाब ज़िन्दाबाद' का नारा लगाते हैं, भी अपने घर और गाव के प्रचलित रूढिवाद के विरुद्ध आचरण करने का साहस नही करते हैं। अतएव उस दिन से मैं रामकरण की माता के प्रति अधिक श्रद्धा रखने लगा। उनके द्वारा मुझे इस बात की एक झलक सी मिल गई कि ग्रामीण स्त्रिया कहा तक आगे बढ़ सकती हैं।

अब रामकरण धीरे-धीरे बुनाई सीखते हुए दो रुपया प्रति मास उपार्जित करने लगा। इसको देख कर दो और ब्राह्मण के लड़को ने बुनाई सीखना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार हम लोग गाव के रूढि-वाद का सुधार करने की दिशा मे एक कदम और आगे बढ गये। कुछ दिन के पश्चात् घाघरा पार के एक किसान के घर का मिडिलपास लड़का, जो बुनाई भी जानता था और जिसका नाम रामफेर था,

हमारे पास आया और आश्रम-परिवार मे सम्मिलित हो गया। इस प्रकार रामफेर के आश्रम मे आ जाने से हम लोगों ने अकबरपुर के जुलाहे को वापस कर दिया और अब रामफेर भाई ही बुनाई का कार्य करने लगे और वही दूसरो को भी सिखाने लगे। इस प्रकार अब हमारे यहा दो विभाग स्थापित हो गये। एक कताई, दूसरा बुनाई।

बुनाई-विभाग के संघटन के क्रम से हम गाव की सामाजिक क्रान्ति की दिशा मे कहा तक आगे बढ सकते हैं, यह तुम अनुमान कर सकती हो। फिर भी हमारे विद्वान नेता लोग रचनात्मक कार्य और उसके करने वालों को उतना ही नाक सिकोड़ कर देखते हैं, जितना एक पढ़े-लिखे बाबू एक देहाती को देखते हैं। बापूजी कहते ही रहते हैं; किन्तु कौन सुनता है ?

आज यहीं समाप्त करता हूँ। फिर दूसरे पत्र मे आगे की बातें लिखूँगा। नमस्कार।

---

[२५]

शरीर-श्रम की प्रतिष्ठा

१०—६—४१

देखते ही देखते देहात मे चर्खे का काफी प्रचार होने लगा और दिन बदिन चर्खे की माँग अधिक आने लगी। हम लोगों ने चर्खे बनवाने के लिए आस-पास के गाँवों मे बढ़इयो की तलाश की। किन्तु उस सम्पूर्ण देहात मे कोई भी बढ़ई इस योग्यता का नहीं मिला। सम्पूर्ण क्षेत्र मे केवल दो-तीन घर बढई आबाद थे जो किसानी का काम करने के साथ-साथ थोड़ा-बहुत बसूला भी चला लेते थे और गांव के लोग उन्ही से अपने हल-पाटा आदि साधारण चीजे बनवा लिया करते थे। इनमें इतनी योग्यता नहीं थी कि चर्खे बनाने का काम कर

चर्खे की बढ़ती हुई मांग

सके। एतदर्थ हम लोगो ने चर्खा संघ विहार से कुछ चर्खें मँगवा लिये और इस चिन्तन मे लगे रहे कि चर्खें की वढती हुई स्थानीय माग को किस तरह पूरा किया जाय और स्थानीय व्यक्तियों को चर्खा वनाने की शिक्षा किस प्रकार दी जाय। हमारा विचार हुआ कि उन्ही दो-चार वढइयों को इसकी शिक्षा दे किन्तु उनकी संख्या इतनी कम थी कि उनके लिए किसानों के हल-फाल और मकान आदि वनाने का ही काम वहुत अधिक था। ऐसी परिस्थिति मे उनका किसी अतिरिक्त कार्य मे समय देना नितान्त असम्भव था। अतएव उस समय हम लोग इस दिशा में कुछ भी कर सकने मे असमर्थ रहे।

इसी समय हम लोग जिस व्यक्ति के मकान मे रहते थे उसे भूसा रखने के लिए अपने मकान की आवश्यकता हुई; हमे अपने रहने की कोठरी खाली करने का प्रवन्ध करना पड़ा। हम लोगों ने एक दूसरा घर तलाश किया, उसमे भी पहले बैल बाँधे जाते थे। न तो उसमे कोई खिड़की थी और न दरवाज़ा ही। हमने अपना सम्पूर्ण कार्य वन्द करके उस मकान के पुनर्निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया। उस घर मे आगे की ओर एक छोटा सा वरामदा था। जव घर बन कर ठीक हो गया तो हम लोगों ने उस वरामदे को बढ़ा कर और लम्बा कर लिया। अव उसमे खिड़की खोलना और दरवाज़ा लगाना शेष रह गया। मै तुम्हे पहले लिख चुका हूँ कि हम लोग गाव मे आकर अपने सम्पूर्ण कार्य अपने ही हाथों से कर लेते थे। इसलिए हमने सोचा कि हमे इसे भी अपने ही हाथ से तैयार कर लेना चाहिए। साथियों से कहा "तुम लोग सामान इकट्ठा करो और औज़ार माग लाओ, मै सव स्वयं वना लूगा।" लकड़ी मागने के लिए कहीं जाना नहीं पड़ा। जिसका घर था उसी के पास लकड़ी मौजूद थी। औज़ार गाव के वढ़इयों से प्राप्त हो गया। मुझे वढ़ई का काम पहले से ही आता था, साथियों को भी आरा से लकड़ी चीरना सिखा

दिया। इस तरह हम सब लोग मिल कर दरवाज़ा और जँगला बनाने लगे। गाँव के लोगो के लिए यह भी एक नई बात थी और वे लोग हमारा काम देखने आया करते थे।

एक दिन मै चौखट बना रहा था कि भाई लालसिह बरहँची नाम के एक नौजवान को लेकर मेरे पास आये। लालसिह गुसाईं-गंज के बाज़ार गये थे और वही पर उनसे बरहँची से परिचय और बातचीत हुई थी। बरहँची बढई जाति का एक मिडिल पास नौजवान था। उसके हृदय में पहले से ही राष्ट्रीय भावना जाग्रत हो चुकी थी। अपने गाँव के आस-पास के क्षेत्रों मे उसने कुछ राष्ट्रीय सेवा भी की थी। उसने आश्रम मे रहने की इच्छा भी प्रकट की थी। फलतः वह दूसरे दिन से आश्रम मे रहने लगा। इस प्रकार अब हम लोगो की संख्या तीन से पाँच हो गई। बरहँची बढ़ईगिरी के काम मे भी होशियार था; इसलिए हम लोगो ने दरवाज़ा वगैरह बड़ी शीघ्रता से बना लिया। बुनाई का कार्य तो रामफेर भाई ने आकर सँभाल ही लिया था, अब बरहँची के आ जाने से हम लोगों ने चर्खा बनाने का काम भी प्रारम्भ कर दिया। हम लोग गाव से पेड़ ख़रीद कर उसकी लकड़ी चीर-चीर कर बरहँची भाई को दिया करते थे और वह चर्खे बनाता रहता था। अब इस कार्य के लिए भी स्थान की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। हम लोगो ने बहुत तलाश किया किन्तु गाव मे किसी के पास इतना फालतू स्थान नहीं था कि वह हम लोगों को इस काम के लिए दे दे। आख़िरकार एक दूसरे गाँव मकनपुर के एक ब्राह्मण ने अपने यहाँ दो कोठरी और आँगन हमें इस काम के लिए दे दिया। मकनपुर रणीवाँ से दो-तीन फर्लाङ्ग की दूरी पर था। इसलिए हम लोगों का वहां पर रह कर काम करना कोई अधिक कठिन नहीं था। हम लोगों ने अपना बढ़ई विभाग वहीं पर स्थापित कर दिया। बरहँची भी सामान की हिफ़ाजत के लिए उसी मकान की एक कोठरी

बढ़ई विभाग की स्थापना

मे रहने लगा। वरहॅची के वहा रहने मे एक लाभ और था। वह नित्य संध्या समय गाव के लोगों को रामायण और अख़बार पढ़ कर सुनाया करता था। इस सम्बन्ध मे वह उन्हे अन्य प्रकार की बाते भी सुनाया करता था। हम लोग भी नित्य प्रातःकाल लकड़ी चीरने के अभिप्राय से वहा पहुँच जाया करते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे उस गाव के लोगों से परिचय बढने लगा। हम लोगों को आरा चलाते देख कर उस गाव के नवजवानों पर अधिक प्रभाव पड़ा और वे हमारे परिश्रम की प्रतिष्ठा करने लगे। यहा के निवासी रणीवा के लोगों से भी अधिक ग़रीब थे इसलिए वे हमारी बातों को उनसे अधिक शीघ्र समझ जाया करते थे। वे शीघ्र ही चर्खा चलाने के लिए तैयार हो गये।

पुराने गृहस्थों के घर में अच्छे काम के पलंग, मचिया और पिढई अब भी मिल जाती है। मैने पूछ कर जान लिया है कि ये सुन्दर वस्तुएँ प्राचीन बढइयो के ही हाथ की बनी हुई हैं । फिर उनकी

बढइयों का लोप कैसे हुआ ?

कारीगरी कहाँ चली गई ? अन्वेषण करने पर मुझे दो कारण ज्ञात हुए । प्रथम तो यह कि भीषण गरीबी के कारण अब लोगों मे यह शक्ति ही नही रह गई कि वे इस प्रकार की चीजों की कदर कर सकें; दूसरे अवध की बेगार प्रथा सालों तक ऐसा भयंकर रूप धारण किये रही कि किसी प्रकार के कारीगर इस क्षेत्र मे पनप नहीं सके। अच्छी कारीगरी जानना भी बेगारी मे पकड़े जाने का एक सर्टिफिकेट था ! बेगार से बचने के लिए भी लोग अपने गुण प्रकट नही करते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे अच्छा काम होना ही एक प्रकार से वन्द हो गया और काम बन्द हो जाने से परिवार की भावी सन्तानों को उस प्रकार के कार्य सीखने का अवसर ही नही मिला । इस प्रकार कई पीढियो के पश्चात् बढ़ई जाति के लोग भी धीरे-धीरे अपनी कारीगरी छोड़ कर किसान बन गये । बंगाल के इतिहास मे भी इसी प्रकार ढाका के जुलाहो ने विवश होकर अपने अँगूठे काट डाले थे। अन्तर केवल यह था कि वहाँ पर यह स्थिति विदेशियों की उत्पन्न की हुई थी किन्तु यहाँ तो अपने ही देश-वासी ताल्लुकेदारों के डर ने इन्हे ऐसा करने को बाध्य किया था।

हम लोगों पर चर्खा सिखाना, गाँव में उसका प्रचार करना, रुई की लेन-देन और चूल्हा-चक्की आदि खानगी कार्यों का भार इतना काफी हो गया था कि चर्खा बनाने के काम मे और अधिक मदद नहीं कर सकते थे इसलिए यह अत्यावश्यक हो गया कि वरहँची को लकड़ी चीरने और चर्खा बनाने मे मदद करने के लिए कुछ और लोगों की भी सहायता प्राप्त हो जाय। अन्य बढइयों के न मिलने पर विचार किया कि ब्राह्मणो के बेकार नौजवानों को इस कार्य मे लगाया

जाय। पर ब्राह्मण के लड़के बढई का काम करने के लिए किस प्रकार तैयार हो सकते थे? आखिरकार मैंने इस कार्य्य के लिए भी उसी परिवार की शरण ली जिसका एक लड़का बुनाई का काम करना प्रारंभ कर चुका था और रामकरण के बड़े भाई श्यामधर को आरा चलाकर लकड़ी चीरना सिखाना प्रारम्भ कर दिया। जब रामकरण ने बुनाई सीखना प्रारम्भ किया था उस समय जितना विरोध उत्पन्न हुआ था, उतना इस बार नही हुआ। फिर भी देहात के लिए इस प्रकार का कार्य एक क्रांतिकारी कार्य था। गाँव के लोगो ने इन कामों के लिए जो सम्मान और प्रोत्साहन प्रकट किया, उसने हमारे कार्य-क्रम को आगे ही बढाया। अब वे प्राचीन रुढि-वादी विचार-धारा छोड़कर हर प्रकार के परिश्रम की मर्यादा समझने लगे। जब वे इस बात को देखने लगे कि उनकी निजी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इतने उद्योग निकल सकते हैं तो गाँव की गरीबी और बेकारी के लिए निराशा का कोई स्थान नही रहता। मै प्रायः कहा करता था कि आज हम ग्रामीण बाहरी लूट की मार खाते-खाते गरीबी की हालत को पार करके बेहोशी की अवस्था मे पहुँच गये हैं। और इसी बेहोशी के कारण अपनी दशा का भी ठीक-ठीक अनुभव नही कर पा रहे हैं, फिर इस गरीबी को दूर करने का उपाय सोचना तो दूर की बात है इसलिए जब किसी प्रकार की आर्थिक योजना उनके सामने आ जाती है और वे उनके द्वारा अपने सुधार की थोड़ी सी भी सम्भावना देख लेते हैं तो उनके जीवन मे चेतना का समावेश हो जाता है और उनमे एक प्रकार का उत्साह और जोश उत्पन्न हो जाता है तथा यही उत्साह और जोश उनके जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला देता है। फिर वे हर प्रकार से अपने को सुधारने के लिए तैयार हो जाते हैं। रणीवाँ मे भी यही हुआ। जब गाँव के कुछ बेकार नौजवान कार्य मे लग गये और कुछ घरों मे कपड़े के व्यय की बचत होने लगी तो लोगों मे इतना उत्साह पैदा हुआ कि लोग गाँव की सफाई और शिक्षा आदि कार्यों

मे भी काफी दिलचस्पी लेने लगे। गाँव की स्वच्छता और शिक्षा के सम्बन्ध में हमने और कौन-कौन से प्रयोग किये, यह मै तुम्हें अगले पत्र मे लिखूँगा। यह पत्र तो मैं यही पर समाप्त कर रहा हूँ क्योकि अब समय नहीं रहा कि आज और लिख सकू। इसके अतिरिक्त हमारे कुछ साथी इस जेल से प्रतापगढ जा रहे हैं; उनको विदा करना भी है। आज मेरा जन्म-दिवस है। इकतालीस वर्ष पूरे हो गये। इसलिए वहाँ पर मेरे जितने स्वजन हैं और जो लोग सालभर मेरे लिए शुभ कामना करते रहे, उन सब को मेरा हार्दिक धन्यवाद पहुँचा देना। भगवान हर वर्ष मुझे जन-सेवा की शक्ति और बुद्धि दे। आज के दिन यही एक मात्र प्रार्थना है। सबको मेरा प्रणाम और नमस्कार कहना। मुनिया को प्यार।

---

[२६]

गन्दगी की समस्या

१४—६—४१

पिछले पत्र मे मैने गाँव की सफाई के विषय में अपने विचार तथा प्रयोग लिखने का वादा किया था। वास्तव में सफाई का प्रश्न एक ग्राम-सेवक के लिए सबसे जटिल और विकट प्रश्न है। गाँव वाले प्राय: ऐसी परिस्थिति मे रहते ही हैं कि वे सफाई रखने में असमर्थता अनुभव करते हैं। कुछ बाते ऐसी भी होती हैं जिनमे वे अपनी इच्छा-नुसार सफाई रख सकते हैं; इसके लिए उन्हे किसी प्रकार की विवशता नही है किन्तु मेरा विचार है कि वे उन बातों मे भी सफाई रखने से विवश ही हैं। मैने तुम्हे अपने एक पत्र मे लिखा था कि ग्राम-सुधार किसी एक प्रोग्राम को लेकर नहीं चल सकता क्योंकि देहात में जितनी बुराइयाँ मौजूद हैं, एक दूसरे से कार्य कारण का सम्बन्ध

सब बुराइयों का एक ही स्रोत

रखनी है। देहात के लोग काहिली के कारण गन्दे रहते हैं और इस काहिली का कारण उनकी बेकारी है। इसलिए सफाई की समस्याओं को हल करने के मार्ग मे पग-पग पर अडचनें आ मौजूद होती हैं। इसके अतिरिक्त गन्दगी उनके जीवन में इस सीमा तक व्याप्त हो गई है कि केवल यह सोचने से ही दिमाग़ पागल हो जाता है कि हमे स्वच्छता के लिए किस बिन्दु से कार्य प्रारम्भ करना है। गाँव के लोग गलियो मे ही पेशाब करते हैं, उन्हीं मे कूड़ा-कचड़ा फेंकते हैं। उनके घर और आँगन का पानी घर के ही पास सड़ा करता है। घरो मे इतना अँधेरा होता हैं कि उनकी नमी उन्हीं के भीतर सड़ा करती है। चारपाई, कपड़े, कथरी, दोहर, चादर तोसक, रज़ाई और तकिया और सभी प्रयाग मे आने वाली चीजे पसीना, धूल और तेल से सनी रहती हैं। बच्चे से लेकर बूढे तक की ज़बान पर चौबीस घंटे अश्लीलतापूर्ण गन्दी बाते बनी रहती हैं। इस प्रकार इन तमाम गन्दगियों पर विचार करने से हमारे सामने यह प्रश्न आ उपस्थित होता है कि हम सबसे पहले किस गन्दगी को दूर करे।

टाँडा मे रहते समय मै अधिकतर किसानों और मजदूरों के ही घरों मे जाया करता था। उस समय की कहानी लिखते समय मैंने तुमको बताया था कि गाँव की गलियों और मकानों के आगे-पीछे की गन्दगी से उनके घर के भीतर की गन्दगी मुझे अधिक भयंकर प्रतीत होती थी। अब रणीवाँ आकर मुझे ब्राह्मण और क्षत्रिय लोगों के घरों को भी भलीभाँति देखने का अवसर मिला। इनके घरों की गन्दगी देख कर मुझे अनुभव हुआ कि उन मज़दूरो के घरों की गन्दगी इनकी तुलना में कुछ नहीं थी। उसके पश्चात् मै ज्यों-ज्यों देहात मे काम करता गया त्यों-त्यों मेरी उक्त धारणा और भी दृढ़ होती गई कि गाँव की सफाई के कार्य-क्रम में कपड़ो की सफाई पर सबसे पहले और सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए। उच्च श्रेणी के घरों मे मुझे कपड़ों की गन्दगी के प्रति और भी भयकर उदासीनता

कपड़ों की सफ़ाई

देखने को मिली । किसानों और मज़दूरो के घरों मे भी कपड़े प्रयोग मे लाये जाते हैं यद्यपि उनकी सख्या कम होती है । बिछाने के लिए पतली चादर और कथरी के अतिरिक्त और होता ही क्या है ? किन्तु उनके कपड़ो में जल्दी से फट जाने के कारण अधिक गन्दगी नहीं आ पाती किसान और मज़दूर कुरते भी कम पहनते हैं । जो पहनते हैं वे भी ऐसे मामूली कपड़े के बने होते हैं कि आसानी से धुल सकें । इसके अतिरिक्त ये कुर्ते केवल घराऊ रूप में ही काम मे लाये जाते हैं, इसलिए उन्हें सर्वदा धोकर ही रखा जाता है । किन्तु उच्च श्रेणी के लोग दरी, तोशक और रज़ाई प्रयोग मे लाते हैं जो अधिक टिकाऊ और अधिक भारी होती हैं । इसलिए इनमे असीम गन्दगी इकट्ठी हो जाती है । कुर्ते, कोट और बडी भी ये लोग प्रयोग में लाते हैं जिससे ये चीज़े भी पसीना आदि से सन जाती हैं । मैने अनुभव किया कि जब तक ये अपने ओढने, बिछाने और पहनने के कपड़े इतने गन्दे रखते हैं तब तक इन्हें गली-कूचों और बाहरी गन्दगी का अनुभव कराना नितान्त असम्भव है । क्योंकि सफ़ाई तो वे ही लोग रख सकते हैं जिन्हे गन्दगी से घृणा हो । इसीलिए मै जहाँ भी जाता था, लोगों के कपड़ों पर विशेष ध्यान रखता था और कपड़ों की ही गन्दगी के विषय मे उन्हे चेतावनी भी देता था । लोग मेरी इन बातो को महसूस तो करते थे किन्तु कुछ तो अपने स्वभाव और कुछ साधन के अभाव के कारण इस पर अधिकतर अमल नहीं कर पाते थे । किन्तु फिर भी कुछ तो हमारे लगातार प्रचार और कुछ हमारे अपने हाथ से साबुन-द्वारा कपड़ा धोने के व्यवहार को देखकर गाँव के कुछ लोगों को भी साफ़ रहने का शौक़ पैदा होने लगा ।

इस दिशा में कुछ दिन काम करने के पश्चात् हम यह महसूस करने लगे कि यदि हम किसी तरह साबुन बनाने का कार्य देहात मे जारी कर सकें तो एक पंथ दो काज होगा । लोगों में सफाई की रुचि

बढ़ेगी और हम लोग ग्रामोद्योग की दिशा मे एक कदम और आगे बढ सकेंगे। मैने यह अनुभव किया था कि यदि कोई वस्तु गाँव मे ही बनने लग जाय तो गाँव वाले सरलता से उसका व्यवहार कर लेते हैं, किन्तु बाजार की वस्तु मजबूरी की अवस्था मे ही खरीद कर लाते हैं। इसलिए हम लोगों ने साबुन बनाने का निश्चय किया और फैजाबाद से थोड़ा-सा कास्टिक सोडा और तेल लाकर कुछ साबुन बना कर तैयार कर दिया। यह साबुन बनाने का कार्य भी गाँव वालों के लिए बिल्कुल नया ही था। नितान्त सरलता-पूर्वक साबुन तैयार होते देख कर लोग आश्चर्य-चकित रह जाते थे। उनकी इस कुतूहल-वृत्ति का लाभ उठा कर हम लोग उन्हे यह समझाने की कोशिश करते थे कि साबुन ही क्यों, यदि वे चाहे तो अपनी जरूरत की सम्पूर्ण वस्तुएँ गाँव मे ही तैयार कर अपना पैसा बचा सकते हैं। इस प्रकार उनकी धारणा, उनके दृष्टिकोण और उनके आत्म-विश्वास की भावना मे उन्नति होती रही। हम लोगों को साबुन बनाते हुए देख कर पण्डित लालताप्रसाद ने भी साबुन बनाना प्रारम्भ कर दिया। इस तरह उत्तरोत्तर लोगो मे साबुन के प्रयोग करने और स्वच्छ रहने की ओर दिलचस्पी बढती रही। मैने यह अनुभव किया कि गाव की स्वच्छता की समस्याओं को हल करने की दिशा मे यह प्रयोग अनुकूल ही सिद्ध हुआ। क्योंकि कुछ ही दिनों के पश्चात् गाव के लोगो को गन्दे कपड़े का व्यवहार करना बुरा प्रतीत होने लगा जिसके परिणाम-स्वरूप लोग बाहरी स्वच्छता मे दिलचस्पी लेने लगे।

गांवों मे साबुन बनाने की आवश्यकता

कुछ दिनों तक साबुन बनाने का कार्य निर्बाध गति से होता रहा किन्तु कालान्तर मे इसमे एक कठिनाई महसूस होने लगी। फैजाबाद और गुसाईंगंज कोई ऐसे औद्योगिक केन्द्र नही थे कि वहा से कास्टिक सोडा सर्वदा सरलता-पूर्वक प्राप्त होता रहे।

पं० लालताप्रसाद जी भी प्रायः यही कहा करते थे कि साबुन बनाने का कोई ऐसा ढंग निकालिए जिसमे हमे बाजार से कोई सामान मँगाने की आवश्यकता न पड़े। अतएव हम लोगों ने गाव मे प्राप्त होने वाली रेह से ही साबुन बनाने का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। इस विषय मे हम लोगों को रंच मात्र भी अनुभव नही था इसलिए हम अपने प्रयोग मे सफल न हो सके। आख़िरकार रेह का साबुन न बना पाने पर हम लोगों ने साबुन बनाना ही बद कर दिया। और सोचा गया कि यदि बाज़ार से ही सामान ख़रीद कर साबुन बनाना है तो बाज़ार के बने हुए साबुन ही क्यों न ख़रीद लिये जायं। इस तरह हम लोग मेरठ का बना हुआ साबुन ही प्रयोग करने लगे और गाव वाले भी उसी को ख़रीद कर अपना काम चलाने लगे। यद्यपि हमने साबुन बनाना बन्द कर दिया किन्तु मेरे मस्तिष्क से यह बात कभी दूर न हो सकी कि इस उद्योग का प्रचलन गावों के लिए विशेष महत्व रखता है। कालान्तर मे जब इस प्रान्त मे कांग्रेसी मंत्रि-मण्डल स्थापित हुआ तो इस दिशा में एक बार पुनः प्रयत्न किया किन्तु फिर भी एक अनुभव-प्राप्त व्यक्ति के अभाव से सफलता न प्राप्त हो सकी। कुछ दिनों के पश्चात् इस प्रकार का एक अनुभवी कार्यकर्ता भी मिल गया पर आर्थिक विषमता ने फिर भी इस कार्य मे सफल न होने दिया। यों इस काम को छोड़ ही देना पड़ा किन्तु मेरी यह धारणा क्रमशः दृढ़ होती गई कि एक ग्राम-सेवक के लिए गाव के साधनों से साबुन बनाने का काम हाथ मे लेना बहुत उपयोगी सिद्ध होगा और इसके द्वारा गाव की स्वच्छता के कार्यक्रम मे पर्याप्त सहायता मिलेगी। स्वच्छता के अन्य कई कार्यक्रमों के विषय मे मै पहले ही लिख चुका हूँ। कालान्तर में अन्य कार्यक्रमों के साथ सफ़ाई का कार्यक्रम किस किस प्रकार सम्बन्धित होता गया, इसकी चर्चा उचित स्थान पर करने की कोशिश करूँगा। अब आज यही विदा लेता हूँ। सब भाई-बहिनो को नमस्कार। बच्चों को प्यार।

[२७]

शिक्षा का प्रयोग

१७—६—४१

अब तक हम लोगो को रणीवा आये कई महीने हो चुके थे। लोगो से काफी घनिष्ठता हो गई थी। चर्खे का काम दिन प्रति दिन बढता ही जा रहा था। हम लोगों के सम्पर्क से गाव के लोग अपने बहुत से पुराने सस्कारों और आचार-व्यवहार के सम्बन्ध में विचार से काम लेने लगे थे। इस तरह यद्यपि धीरे-धीरे लोगों का मानसिक विकास होता जा रहा था किन्तु अब तक शिक्षा का कोई विधिवत् कार्यक्रम निश्चित नहीं हो सका था। मै स्वय इसका निश्चय नहीं कर पाया था कि गाव वालों के लिए शिक्षा की किस प्रकार की योजना उपयुक्त होगी। गाव के किसान और मज़दूर दिन भर इस तरह काम मे फँसे रहते हैं कि दिन के समय वे किसी स्कूल मे अपना समय नही दे सकते, और यदि रात की व्यवस्था की जाय तो भी सदियों से पठन-पाठन की ओर दिलचस्पी न होने के कारण स्कूल में आने के लिए उन्हें कोई विशेष उत्सुकता नहीं होगी। इसके अतिरिक्त मुझे स्वयं भी इस बात का सन्देह था कि केवल अक्षर-ज्ञान करा देने से इन्हें कोई लाभ हो सकेगा। स्कूलों मे लगातार ६ वर्ष पढ कर लोग मिडिल पास होते हैं और तब कहीं उन्हें अन्य विविध पुस्तकों के पढ़ने की योग्यता होती है। ऐसी स्थिति में यदि हमने दिन या रात को उनका थोड़ा सा समय लेकर उन्हें अक्षर-ज्ञान करा भी दिया तो इससे उनके मानसिक विकास मे कहा तक सहायता मिल सकती है? इसी प्रकार के विचारों की उधेड़बुन में पड़कर तथा अन्य कार्यों मे अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण हम लोग ग्राम-शिक्षा की कोई स्पष्ट योजना नहीं बना सके। पर धीरे-धीरे हमें यह महसूस होने लगा कि इस दिशा मे कुछ न कुछ करना अत्यावश्यक है। प्रारम्भ

में हम लोगो ने यह निश्चय किया कि रामायण का पाठ शुरू किया जाय और उसी के द्वारा इन्हे सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक शिक्षा दी जाय। इस कार्य्य के लिए मकनपुर के नौजवानों ने बहुत उत्साह प्रकट किया अतएव हम लोगों ने नित्य संध्या समय मकनपुर

रामायण पाठ-द्वारा शिक्षा

मे रामायण का पाठ प्रारम्भ कर दिया। कर्ण भाई और बरहैंची मिस्त्री साथ-साथ रामायण का गाना गाते थे और कर्ण भाई उसकी व्याख्या करते थे तथा उसी व्याख्या के ही सिलसिले मे प्रत्येक विषय पर कुछ न कुछ बताया करते थे। कुछ दिनों के पश्चात् यह प्रतीत होने लगा कि इस प्रकार की शिक्षा गांव के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो रही है। धीरे-धीरे लोगों की रुचि इधर बढ़ने लगी और पाठ के समय गाव के सभी लोग उपस्थित होने लगे। इस प्रकार रामायण क्लास मे आते-आते लोगो को इस प्रकार के अन्य कामो के लिए भी उपस्थित होने की टेव पड़ने लगी। इसके पहले लोग इसी संध्याकाल मे अपने अपने घरों मे बैठे-बैठे तम्बाकू खाया करते थे और गांव के दूसरे लोगों पर टीका-टिप्पणी किया करते थे। एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं रखते थे। किन्तु रामायण का पाठ प्रारम्भ होने पर लोगों की इस प्रकार की एक दूसरे के विरोध मे कही जाने वाली बाते कम हो गई तथा रोज़ एक साथ उठते-बैठते उनमे आपस में प्रेम और सद्भावना का विकास होने लगा। वास्तव में हमारे गावों के लोग इतने काहिल और इतने स्वार्थ-रत हो गये हैं कि एक दूसरे से किसी प्रकार का सम्बन्ध रखना भी गुनाह समझते हैं। जब ग्राम-सेवक गाव वालों मे एक दूसरे से सम्पर्क पैदा कर सकेगे तभी वे किसी प्रकार के ग्राम-संठगन का कार्य प्रारम्भ कर सकेंगे। अब भी मेरी यह धारणा बनी हुई है कि ग्रामीण-शिक्षा के कार्य-क्रम में गाव वालों मे एक दूसरे के प्रति घनिष्ठता उत्पन्न करना सबसे महत्वपूर्ण बात है। इस कार्य के लिए किसी ऐसे ही साधन को अपनाने की आवश्यकता होगी जिसमें

गाव वाले स्वाभवतः दिलचस्पी रखते हो और उसके लिए प्रति दिन एक ही समय किसी निश्चित स्थान पर इकट्ठा हो सकते हों। प्रतिदिन एक साथ एक स्थान पर बैठने से लोग स्वभावतः एक दूसरे के प्रति प्रेम करने लगेगे।

---

[२८]

रोगी-परिचर्या की दिशा में

रामायण-पठन के कार्य से एक लाभ और भी हुआ। लोग दूसरे कार्यों के लिए भी बुलाये जाने पर उसी आश्रम के कारखाने के लिए मिले हुए आगन मे एकत्र होने लगे और वह स्थान एक प्रकार से गाँव के लोगों का क्लब बन गया। फिर हमारे निर्णयानुसार बरहॅची मिस्त्री उन्हे दिन के समय भी अखबार पढ कर सुनाने लगा। कालान्तर मे धीरे-धीरे हम लोगों ने रामायण का पाठ प्रति दिन करने के स्थान पर साप्ताहिक करना शुरू कर दिया और शेष दिन उसी स्थान पर नियमपूर्वक रात्रि-पाठशाला का कार्य होने लगा। मिस्त्री उन्हे पढाने का काम करता था। कभी-कभी हम लोग स्वयं भी चले जाया करते थे। हा, एक बात और भी उल्लेखनीय है कि यह रात्रि-पाठशाला मैंने स्थानीय लोगों के अनुरोध करने पर ही प्रारम्भ की थी। इस प्रकार रामायण के द्वारा ग्रामीण शिक्षा के कार्यक्रम के प्रारम्भ करने का प्रयोग बहुत अंशों मे सफल ही रहा और उसी का परिणाम है कि आज मैं इस प्रकार कार्य-प्रारम्भ करने का कायल हूँ। जब तक हम गाँव वालों में अभिरुचि और उत्सुकता नहीं उत्पन्न करेगे तब तक केवल पाठशाला स्थापित कर देने से वे इधर नही आकर्षित हो सकेगे। इसके अतिरिक्त केवल अक्षर-ज्ञान से ग्राम-शिक्षा का अभिप्राय पूरा नही होता। प्रारम्भ मे उनके हृदय मे संसार की बाते जानने की आकाक्षा

सामाजिक भावना का जागरण

उत्पन्न करनी होगी; फिर तो वे स्वयं ही पढ़ना-सीखने के लिए उत्सुक हो उठेंगे। उस परिस्थिति मे वे पाठशाला में काफी उत्साह से भाग लेने लगेंगे। जिस समय मै गिरफ्तार होकर जेल चला आया उस समय रणीवाँ के आस-पास के लगभग पचीस गाँवो में प्रौढ-रात्रि पाठशाला का कार्य चल रहा था जिसका विशेष वर्णन मै अगले पत्रों में करूँगा। फिलहाल इतना ही कह देना पर्याप्त समझता हूँ कि चूँकि हम लोगो ने अन्य-अन्य कार्यों के द्वारा गाव वालों की उत्सुकता जगा कर पाठशाला का कार्यक्रम अपने हाथ मे लिया था इसलिए गाव वाले इसमे इतनी दिलचस्पी लेने लगे थे कि हमे इसकी उपयोगिता समझाने के लिए अलग प्रयत्न नही करना पड़ा। पाठशाला का स्थान; बैठने का सामान और रोशनी आदि सभी वस्तुओं का प्रबन्ध गाव वाले स्वयं करते थे। पढ़ाने वाले भी गावों से ही उपलब्ध हुए थे।

इस प्रकार गाववालों के मध्य रह कर उनसे बात-चीत कर रामायण-पाठ का प्रबन्ध कर और रात्रि-पाठशाला के द्वारा दिन को अखबार सुनाने का नियम बना कर हम लोग गाँव की सर्वांगीण शिक्षा के कार्यक्रम में अग्रसर होने लगे।

तुम तो शिक्षा-शास्त्री ही हो। मेरी इस धारणा मे यदि किसी प्रकार के सुधार की आवश्यकता हो तो सूचित करना। इससे हमारी भी शिक्षा हो जायगी। अपनी सूचना के साथ पत्रोत्तर अवश्य देना। नमस्कार।

१८—६—४१

अब तक हम लोग रणीवाँ मे भली-भाँति जम गये थे और दो-तीन फर्लांग के भीतर के गाँवों मे हर प्रकार का कार्यक्रम चलाने लगे थे। यद्यपि कहने के लिए तो हमारा कार्यक्रम चार गाँवों मे फैला हुआ था किन्तु वे चारों गाँव मिल कर एक ही गाँव की बराबरी कर सकते हैं। क्योंकि उन सब की जन सख्या पाँच छः सौ से अधिक नहीं है। इस ज़िले की आबादी साधारणतया छोटे-छोटे गाँवों मे ही फैली हुई है।

पाँच छः सौ की आबादी वाले गाँव काफी बड़े गाँव शुमार किये जाते हैं। इस स्थिति से कुछ दृष्टियों से लाभ भी है और कुछ से हानि भी। तितर-बितर बिखरी हुई अवस्था में रहने के कारण उनका संगठन करना कठिन होता है किन्तु स्वच्छता की दृष्टि से उनका दूर-दूर रहना बहुत लाभदायक भी होता है। मेरठ, मुज़फ्फरनगर सहारनपुर और बिजनौर ज़िले के बड़े-बड़े गाँवों में जिस प्रकार की गन्दगी देखने को मिलती है, वैसी यहाँ नहीं है।

ये चारों गाँव इतने निकट-निकट थे कि हम लोग लगभग नित्य ही इन में घूम लेते थे और प्रति दिन सफाई, चर्खा, रोगियों का इलाज तथा राजनीतिक आलोचना आदि कार्य कुछ न कुछ अंशों में कर ही लेते थे। इनमें रोगियों की सेवा और इलाज के कार्यक्रम ने काफी लोकप्रियता और महत्व का स्थान प्राप्त कर लिया। इस कार्यक्रम में बड़ी सरलता से उन्नति होने लगी। धीरे-धीरे हम लोग कठिन और पुरातन रोगों का भी इलाज करने लगे। स्त्री-रोग और बाल रोगों में आशातीत लाभ प्रकट होने लगा। इस के कारण

रोगों की चिकित्सा

उन चार के अतिरिक्त अन्य गाँवों के लोग भी हमें जानने तथा हमारे कार्यों से दिलचस्पी और सहानुभूति प्रकट करने लगे। हम लोगों ने यह निश्चय कर लिया था कि इस क्षेत्र को छोड़कर किसी अन्य देहात में नहीं जाया जायगा। इसलिए लोग रोगियों को लेकर स्वयं हमारे पास आ जाया करते थे। जो भी लोग हमसे मिलने आया करते थे। जिन्हें आवश्यकता होती थी हम दवा देते थे और उनसे अपने कार्यक्रमों के सम्बन्ध में वार्तालाप किया करते थे। वे हमारे धुनने और कातने की क्रिया देखते थे। हमारी रहन सहन पर विचार करते थे और गाँव वालों से पूछ-ताछ तथा आलोचना-प्रत्यालोचना करते थे। इस प्रकार डेढ़-दो मील तक की दूरी के लोग हमारे कार्यक्रमों से परिचित हो गये और बीमारी एवं दुःख के अवसर पर हमारे पास आने लगे। दवा देने के लिए अब

तक हमने कोई निश्चित क्रम नहीं किया था। हमारे पास दवा रहती थी और कभी किसी के बीमार पड़ने पर उसे किसी भी समय दे दिया करते थे। किन्तु जब दूर-दूर के लोग आने लगे तो कभी कभी उन्हें बड़ी परीशानी होने लगी।

क्योंकि जब हम देहात मे रहते थे, घर पर नहीं मिलते थे तो उन्हे रोगी के साथ वापिस चला जाना पड़ता था। इसलिए हमने निश्चय किया कि किसी निश्चित स्थान पर निश्चित समय तक दवा देने का प्रोग्राम रक्खा जाय। किन्तु इसके लिए भी फिर हमारे सम्मुख स्थान की समस्या आ खड़ी हुई। जिस घर मे हम लोग रहते थे वह इतना छोटा था कि उसमे हमारे रहने के लिए भी पर्याप्त स्थान नही था फिर उसमे दस-बारह व्यक्तियों को एक साथ बैठने के लिए जगह कहा मिलती? हमने इस समस्या को फिर गाव वालो के सामने उपस्थित किया और उन लोगो ने निकट के ईश्वरपट्टी नाम के गाव मे इस काम के लिए कोठरी की व्यवस्था कर दी। उसमे भी हम लोगों ने अपने ही हाथ से खिड़की और दरवाजा लगा कर उसे काम के योग्य बनाया। इस गाव मे एक विशेषता यह दिखाई दी कि जब हम लोग उस कोठरी को ठीक-ठाक कर रहे थे तो गाव के लगभग सभी नौजवानों ने हमारे काम मे सहायता प्रदान की। चार-पाच दिन तक मैंने अपनी कोठरी एव उसके आसपास का स्थान स्वयं साफ किया किन्तु इस के पश्चात् जब मैं वहा पहुँचता था तो कोठरी और आस-पास के स्थानो की सफाई पहिले ही हो चुकी रहती थी। फिर धीरे-धीरे ध्यान दिलाने पर लोग अपने-अपने घर तथा उसके आस-पास के स्थान साफ रखने लगे।

स्वच्छता की रुचि

रणीवा के लगभग एक मील दूर ठाकुर लोगों का चाचीपुर नाम का एक बड़ा-सा गाव है। पहले ज़माने मे यह गाव बहुत समृद्धिशाली था। किन्तु दुराचार और दुर्नीति के प्राबल्य के कारण अब

नितान्त दरिद्र वन गया था । अव इसे लोग डाके डालने वाला और दूसरो को लूटने वाला ही कह कर मशहूर करते थे । गाँव के कितने ही नौजवान डाके के अभियोग मे लम्बी-लम्बी सजाएँ भुगत चुके थे और शायद अव भी काट रहे हों । सुदूर देहात के लोग भी इसके प्रति घृणा और त्रास की भावना रखते थे । कितने ही लोग तो चाचीपुर का नाम ही न लेते थे । यदि कभी उस गाँव का नाम लेना अनिवार्य हो जाता तो वड़का गाँव या पथरा का गाँव कहते थे । क्योंकि जन-साधारण मे यह किम्वन्दती प्रचलित थी कि यदि सवेरे चाचीपुर का नाम ले लिया जाय तो उस दिन दिन-भर खाना नहीं मिलेगा । इसी गाव के ठाकुर माधव सिंह की पुत्रवधू लम्वी अवधि से सन्निपात से ग्रस्त थी तथा उसके जीने की कोई आशा नहीं रह गई थी । माधव सिह गाव भर के लोगों के प्रेमभाजन थे । इसलिए सभी व्यक्ति इस वीमारी से चिन्तित' थे । इसी समय किसी ने उन्हे सूचना दी कि रणीवाँ मे आश्रम खुला है और वहाँ पर दवा मिलती है । उस गाव के कई व्यक्ति आश्रम पर आये । और चाचीपुर चलकर रोगी की औषधि करने का अनुरोध करने लगे । मै उस समय आश्रम पर मौजूद नही था । यद्यपि हम लोगों ने किसी दूसरे गाँव मे जाकर दवा न देने का नियम वना रक्खा था किन्तु रोग की भयंकरता और गाँव वालों की आतुरता देखकर कर्ण भाई और निकुंज भाई (जो उस समय कुछ दिन के लिए आश्रम मे आये थे) किताव और दवा लेकर उस गाँव में गये और रोग का अध्ययन कर दवा देने लगे । कुछ दिनों वाद वह रोगिणी रोग-विमुक्त हो गई । इस घटना से चाचीपुर के लोग आश्रम के प्रति विशेष आकर्पित हुए और हमारे प्रत्येक कार्य में दिलचस्पी लेने लगे । हमने भी इस गाँव को अपने कार्य क्षेत्र मे सम्मिलित कर लिया । धीरे-धीरे यह गाँव इतना अधिक सुधर गया और आश्रम का इतना प्रेमी वन गया कि आज तक हमने रणीवाँ के

चाचीपुर का पुनर्जीवन

आस-पास जो-जो कार्यक्रम प्रारम्भ करने चाहे, उनमे चाचीपुर ही सब का नेता बना। चाचीपुर अपनी कुरीतियो के लिए ज़िले भर मे बदनाम हो चुका था; आज लोग इसकी सुधरी हुई अवस्था देख कर आश्चर्य करते हैं। जेल से जब मैने तुम्हें चिट्ठी लिखना प्रारंभ किया था, उस समय तुमको लिखा था कि ग्रामसेवकों को गाँव मे जा कर गाँव वालों की परिस्थिति और उनकी आवश्यकताओं का अध्ययन करना होगा। उसी बात को लेकर सेवा-कार्य प्रारम्भ करना होगा जिससे गाँव के लोग सब से अधिक पीड़ित होगे। अगर उचित अवसर पर कार्यारम्भ हो सका तो आधे से अधिक कार्य तो तत्काल ही पूरा हो जाता है। चाचीपुर का दृष्टान्त इस बात का पक्का सबूत है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के अवसर देहात में काम करते समय हमे और भी मिले हैं। इसलिए इस सिद्धान्त पर दिन प्रतिदिन मुझे अधिक विश्वास होता गया। चाचीपुर और इसी प्रकार की अन्य घटनाओं से मैने अनुभव किया है कि डाकू, लुटेरा और बदमाश कहे जाने वाले लोगों के दिल पर अगर किसी प्रकार से प्रभाव पड़ जाय तो वे सुधर कर आदर्शों के प्रति जितने वफादार हो सकते हैं, उतने समाज के भले और अच्छे कहे जाने वाले लोग नही हो सकते। ग्राम-सेवकों को इस प्रकार के लोगों से घबड़ाना नहीं चाहिए प्रत्युत धैर्य के साथ प्रतीक्षा करते हुए इस बात की खोज करनी चाहिए कि उनकी हृदय-तन्त्री के किस तार पर उँगली रक्खे जिससे उनके जीवन में परिवर्तन की झन-कार झंकृत हो उठे।

मै चिकित्सा के कार्यक्रम के विषय में लिख रहा था। प्रसंग-वश अपने विषय से हट कर दूसरी बाते लिख गया किन्तु एक प्रकार से यह लिखना भी आवश्यक ही था। क्योंकि यदि ऐसा न करता तो ग्राम-सेवा का एक विशेष अनुभव लिखे बिना ही रह जाता।

गर्मी का मौसम चल रहा था। इसी समय हमे ज्ञात हुआ कि निकट के कुछ गाँवों मे हैज़ा फैला हुआ है। कर्ण भाई ने मुझे बताया

कि स्थिति बहुत भयंकर है; चारों ओर से मृत्यु के समाचार प्राप्त हो रहे हैं। हम लोगों ने निश्चय किया कि इस समय सब कुछ छोड़ कर हैजे की दवा और रोगियों की सेवा करना ही हमारा धर्म है। अतएव हम लोगों ने सर्व-प्रथम यह पता लगाया कि किन-किन गाँवों में हैज़े का प्रकोप फैल रहा है। अभी तक केवल दो ही एक गाँव में बीमारी फैली थी। इससे हम लोगों ने सोचा कि यदि हम इन गाँवों पर अधिकार प्राप्त कर लें तो बीमारी के अधिक फैलने की

हैज़े का प्रकोप और भवानी का भय

आशंका नहीं रहेगी। इसलिए दवा आदि लेकर हैज़ा-ग्रस्त क्षेत्र में जाने के लिए तैयार हो गये। रणीवाँ के लोगों को जब यह बात मालूम हुई कि हम लोग हैज़े का इलाज करने जा रहे हैं तो वे हमें रोकने के लिए हमारे पास आकर कहने लगे कि यदि हैज़ा के रोगी को दवा दी गई तो भवानी माई नाराज़ हो जायँगी, गाँव भर में किसी को नहीं छोड़ेंगी, सम्पूर्ण देश को खा जायँगी आदि। किन्तु हम लोग उनकी बातों की उपेक्षा कर अपने निश्चित प्रोग्राम के अनुसार चल पड़े। जब हम गाँव में गये तो देखा कि चमारों के मुहल्ले में प्रायः प्रत्येक घर में रोगी पड़े हुए हैं और परिवार के लोग करुण और असहाय अवस्था में उनके पास बैठे हुए उनकी मौत की प्रतीक्षा कर रहे हैं। किसी-किसी घर के तो समस्त प्राणी रोगाक्रान्त हो गये थे। उनके दरवाजे पर कोई यमदूतों का स्वागत करने वाला भी नहीं बचा था। चारों ओर मृत्युलोक की भयंकर शान्ति छाई हुई थी। कोई मरता था तो उसके लिए लोग रोते भी नहीं थे। क्योंकि उन्हें यह विश्वास था कि रोने से भवानी माई नाराज़ होकर सब को समाप्त कर देंगी। हम लोग जब किसी बीमार के विषय में पूछते थे तो वे बहुत धीरे से फुसफुसा कर उत्तर देते थे और हमसे बात करते समय इस प्रकार डरते थे कि कहीं भवानी माई उनकी बातें सुन न लें।

सन् १९२३-२४ में जब मैं टौंग में रहता था तो एक बार मुझे

पर हैजे का आक्रमण हुआ था; जिसकी कहानी मैं तुम्हें लिख चुका हूॅ। उस समय मुझे अनुभव हुआ था कि यदि हम उन्हें दवा दे जायँगे तो वे उसका सेवन नहीं करेंगे। इसलिए हम लोग दिन भर घूम-घूम कर स्वयं दवा देते थे। इस तरह इलाज और सेवा करने से चार-पाँच दिन में ही परिस्थिति कब्ज़े मे आ गई और हैज़ा अधिक फैलने नहीं पाया। जब यह काम समाप्त हो गया और कई दिन बीत गये तो रणीवॉ के लोगों ने यह देख लिया कि भवानी माई नाराज़ हो कर न तो हमी लोगों को खा गई और न तो गाँव के ही किसी व्यक्ति को नुकसान पहुॅचाया। इससे उन लोगों के भवानी माई के विश्वास में कुछ शिथिलता अवश्य आई। हम लोगों ने उनकी इस अवस्था का लाभ उठा कर उन्हें यह बताना प्रारम्भ कर दिया कि यह संक्रामक बीमारी है। प्लेग और चेचक आदि बीमारियाँ भी इसी प्रकार की हैं। इनके फैलने का कारण भवानी माई का प्रकोप नहीं है। गाँव वालो के रहन-सहन की ठीक प्रणाली से अनभिज्ञ और स्वच्छता के प्रति लापरवाह रहने के कारण ही इनका आगमन होता है। इसी सिलसिले से हम लोग उनमे गाँव की स्वच्छता, रोग के कारण और उनके निवारण के तरीके आदि का प्रचार करने लगे।

धीरे-धीरे हमारा कार्यक्षेत्र कई गाँवों मे फैल गया और दुस्साध्य रोगियो को देखने के लिए हमे बाहर भी जाना पड़ने लगा। थोड़े ही दिनों तक इस प्रकार का कार्य करने पर मुझे अनुभव होने लगा कि यदि हम इसी प्रकार होमियोपैथिक दवाये देते रहे तो गाँव वाले सर्वदा हमारा ही भरोसा करेंगे। कभी स्वावलम्बी नहीं हो सकेंगे। यों तो प्राचीन और असाध्य रोगों का इलाज करना हमारा धर्म ही है किन्तु सामान्य ज्वर, खाँसी, सिर दर्द, फोड़ा-फुसी आदि का इलाज ऐसा सरल होना चाहिए कि गॉव वाले उसे स्वयं कर लें। इसलिए यह आवश्यक है कि गाँव वालों को गाँवों मे मिलने वाली वनस्पतियों और बूटियों से रोग-निवारण का तरीका बताया जाय। इस विषय में

मै और मेरे साथी कुछ भी जानकारी नहीं रखते थे। अतः हम इस प्रकार का कोई कार्यक्रम अमल मे नहीं ला सके। किन्तु कुछ पुस्तके मँगा कर इस प्रकार का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया और उसी के आधार पर कुछ प्रयोग करने को भी कोशिश की।

कुछ दिनो के पश्चात् मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि इस प्रयोग मे किताबों से कोई विशेष सहायता नही मिल रही है। हमने इस विषय की कई पुस्तके देखी किन्तु वे सभी हमारी आवश्यकता की पूर्ति करने में असमर्थ सिद्ध हुई। सभी पुस्तको मे प्रायः आयुर्वेद के सरल सरल नुस्खे ही लिखे रहते हैं। किन्तु हमें तो दूब, तुलसी की पत्ती और बेल की पत्ती आदि गाँव मे मिलने वाली वनस्पतियो से इलाज की खोज करनी थी और इस दिशा मे मदद देने वाली मुझे कोई पुस्तक नही मिली। पर मैने देखा कि गाँव के कुछ लोग और विशेष कर कुछ पुरानी स्त्रियाँ इस प्रकार के टोटकों की जानकारी रखती हैं। हाँ, यह बात सत्य है कि एक ही व्यक्ति अनेक रोगों की ऐसी दवाएँ नही जानता, किन्तु यदि कोई ग्राम-सेवक इस प्रकार की दवाओ की खोज करना प्रारम्भ करे और स्थान-स्थान से प्राप्त नुस्खों को सावधानी से नोट करके रोगियों पर उनका प्रयोग करके शोध करे तो कुछ ही दिनों मे उसके पास इतनी सामग्री इकट्ठी हो जायगी कि वह अनेक रोगों की चिकित्सा देहाती साधनों से कर सकेगा। इसलिए मैने गाँव वालों को ही अपना गुरु बनाने का निश्चय किया और जहाँ से भी सम्भव होता था इस प्रकार की औषधियों को जानने की कोशिश करता था। कितने ही अन्य कार्य्यों मे फँसे रहने के कारण मै इस काम मे अधिक आगे नहीं बढ सका और अधिकतर होमियोपैथिक दवाइयों का ही सहारा लेता था किन्तु इस दिशा मे थोड़े ही प्रयत्न ने मुझे यह विश्वास करा दिया कि आज भी देहात में टोटकों का ज्ञान इतना अधिक फैला हुआ है कि उचित ढंग से खोज करने

गाँवों मे नवीन चिकित्सा क्रम की आवश्यकता

पर साधारण रोगो की चिकित्सा की सम्पूर्ण पद्धति का आविष्कार हो सकता है। और गाँव के लिए वही पद्वति सव से उपयुक्त होगी। क्योंकि इस पद्वति से उन्हे दवा भी सरलता-पूर्वक प्राप्त हो सकेगी और धीरे-धीरे उनकी जानकारी भी बढ़ती जायगी। मुझे इस बात का विशेष दुःख है कि मै आज तक इस काम को नही कर सका। जब काग्रेस के लोगो ने मंत्रिपद ग्रहण किया था तो मैने एक बार इसके लिए कोशिश की थी। मै चाहता था कि मुझे कोई उत्साही और नव-युवक वैद्य-शास्त्री मिल जाय और मै उसकी सहायता से इस प्रकार की खाज कर सकूं। किन्तु मै अधिकारियों को इसकी महत्ता नही समझा सका। तुम यह प्रश्न कर सकती हो कि जिस बात को हम स्वयं गाँव वालो से सीखेगे; फिर उन्ही बातो को गाँव वालों को सिखाने से क्या लाभ? किन्तु मैने पहले ही कह दिया है कि एक आदमी बहुत रोगों की दवा नहीं जानता है। कहीं कोई कुछ जानता है तो कही कोई दूसरी वात जानता है। इसलिए उन्हे संग्रह कर और फिर रोगियों पर प्रयोग कर के तथा शास्त्रीय ढंग से उनकी परीक्षा करके उनका परि-शोध करना है। इस तरह एक सम्पूर्ण चिकित्सा-प्रणाली वन जायगी तो गाँव वालो को सिखाना सरल होगा। और उनके लिए वही चीज़ नई हो जायगी। किन्तु जव तक इस प्रकार की सर्वाङ्गीण खोज करने की सुविधा नही मिलती है, तब तक ग्राम-सेवकों को चाहिए कि वे इस दिशा मे जहाँ तक प्रयत्न कर सकें करते रहें। रोगियों की सेवा करने मे मुझे जो कुछ अनुभव हुआ वह प्रायः सम्पूर्ण मैने इस पत्र में लिख दिया। यह पत्र वहुत लम्बा हो गया। इसलिए इसे यहीं समाप्त करता हूँ। नमस्कार।

---

[२६]

मज़दूरी का सवाल

२३—६—४१

रणीवाँ में दवा आदि कार्य के साथ चर्खे का कार्य दिन प्रतिदिन वृद्धि हो पाता रहा। किन्तु कुछ दिनों के अनुभव से हमें ज्ञात हुआ कि यह जो चर्खे की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ रही है उसमे लोगों की स्वाभाविक रुचि नही है। अधिकतर लोग हमारे व्यक्तिगत सम्पर्क के कारण संकोच से ही चर्खा चलाते हैं। उनके रग-ढ ग से ऐसा प्रतीत होता था कि वे चर्खा चलाने से कुछ अधिक लाभ नहीं समझते। कुछ स्त्रियाँ तो हमसे साफ-साफ कहती थीं कि 'भैया, इतनी मिहनत करके सूत काते और बदल बदल कर रूई लाये। इस प्रकार इतने काल तक मिहनत करके कहीं एक धोती बन पाती है। इससे तो अच्छा यही है कि हम बाज़ार से धोती ख़रीद लें। लाभ के अनुपात से हमे परिश्रम बहुत अधिक करना पड़ता है।' हम उन्हे यह कह कर समझाने का प्रयत्न करते थे कि जो कुछ लाभ होता है वह बैठे रहने से तो बहुत अधिक है। किन्तु इससे उन्हे अधिक सन्तुष्टि नही होती थी। वे कहती थीं कि तुम कहते हो इसलिए कातती हैं, नहीं तो यह बिल्कुल व्यर्थ काम है। कुछ लोग तो अपने घरों मे कताई का कार्य इसलिए जारी रखते थे कि एक तो इससे कुछ थोड़ा-बहुत कपड़ा मिल जाता था, दूसरे चर्खे मे व्यस्त रहने के कारण उनके घरों की स्त्रियों को आपस मे झगड़ा करने का अवसर कम मिलता था। हम अपने व्यक्तिगत सम्बन्ध के प्रभाव से तथा कुछ आर्थिक और नैतिक लाभ बता कर उनसे चर्खा अवश्य चलवा लेते थे किन्तु गाँव की स्त्रियों के सन्देह ने हमे भी कुछ सन्देह मे डाल दिया। अतः मैं चर्खे की वास्तविक आय का पता लगाने मे लग गया। शुरू-शुरू मे जब मैं अकबर-

चर्खे का आर्थिक पक्ष

पुर आया था तब भी मुझे एक बार सन्देह हुआ था और मैंने श्री राजाराम भाई से इसकी चर्चा भी की थी। उन दिनों हम लोगों ने हिसाब कर के देखा था कि यदि कोई स्त्री दिन भर बैठी कातती रहे तो वह चार पैसे पारिश्रमिक प्राप्त कर सकती थी। हिन्दुस्तान के किसानों के लिए इतनी आय भी कम न थी जब कि उनके साल के चार-पाच माह बिल्कुल बेकारी मे बैठे-बैठे कट जाते हैं। उस समय हम लोग मध्यम श्रेणी के ब्राह्मण और क्षत्रियों के घर चर्ख़ा नही चलवा सके थे क्योंकि उनकी आर्थिक स्थिति आज से अच्छी थी और इतनी थोड़ी मज़दूरी के लिए वे परिश्रम करने को तैयार नही थे। कुर्मियों की बात दूसरी थी। उनका तो मिहनत करने का स्वभाव ही होता है। इसलिए उनके लिए बेकार रहने की अपेक्षा चार ही पैसे की आमदनी विशेष महत्व रखती है। रणीवा के आस-पास के मध्यम श्रेणी के लोगों ने चर्खा चलाना स्वीकार किया, इसके दो कारण थे। एक तो हमारा व्यक्तिगत सम्बन्ध का संकोच और दूसरे यह कि आज उनकी स्थिति सन् २३-२४ की अपेक्षा अधिक दीनता-पूर्ण हो गई थी।

मैंने चर्खे की आय की परीक्षा की तो मुझे ज्ञात हुआ कि सन् २३ मे हम लोगो ने मज़दूरी का जो हिसाब लगाया था उसकी तुलना मे आज की आमदनी आधे से भी कम हो गई है। इस स्थिति को देख कर मै काफी परीशान हुआ। कारण का विचार करने पर मुझे अनुभव हुआ कि खादी-संसार मे सन् १९३० से ही एक नई मनोवृत्ति उत्पन्न हो गई थी। लोगों ने खादी सस्ती करने का घोर आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन मे चर्ख़ा-संघ के अधिकारी भी सम्मिलित थे। इसलिए खादी कार्यकर्ताओं को खादी सस्ती करने के लिए अथक परिश्रम करना पड़ा। सभी वस्तुओं का भाव गिरने के साथ-साथ रुई का भाव तो गिर ही गया था किन्तु लोग इतनी ही कमी से संतुष्ट नहीं थे। वे तो मिल के साथ मुक़ाबला करने की असम्भव परिस्थिति का स्वप्न देख रहे थे। इन कोशिशो के कारण कताई की

मज़दूरी तो कम हो गई किन्तु कताई की गति मे कोई वृद्धि नहीं हुई। रणीवाँ के आस पास लोगों ने पहले पहल चर्खा चलाना प्रारम्भ किया था इसलिए उनकी गति साधारण गति से भी कम थी। धुनाई की कला सिखा कर हम लोगों ने उनकी गति बढ़ाने का प्रयास किया था किन्तु आय का व्योरेवार हिसाब करने पर ज्ञात हुआ कि धुनाई और कताई का छीजन घटा देने से एक कत्तिन की आठ घटे की आमदनी तीन पैसे भी नहीं होती थी; अभी हम लोग इस अवस्था पर विचार ही कर रहे थे कि समाचारपत्र मे गाधी जी की 'जीवन-मज़दूरी' के सिद्धान्त का एलान पढने को मिला। प्रारंभ में तो हमे बड़ी प्रसन्नता हुई किन्तु साथ ही यह भी विचार आया कि यदि गाधी जी के इस आठ आने के हिसाव से खादी का दाम लगाया जाय, तो खादी विकेगी ही नहीं। फिर हम उन्हे अधिक मज़दूरी देने की अपेक्षा जो दे रहे हैं वह भी नही दे सकेंगे। हम लोग रणीवाँ मे इस विषय पर विचार-विनिमय करते रहे। साथ ही मैने गाव के लोगों से भी इस सम्वन्ध मे विचार-विमर्श किया। इस प्रकार अन्ततः हम लोग इस परिणाम पर पहुँचे कि आज की मज़दूरी की परिस्थिति मे परिवर्तन लाना तो आवश्यक ही है किन्तु यह आठ आने की योजना भी सम्प्रति अव्यावहारिक है। मै सोचता था कि यदि कत्तिनो को वर्तमान मज़दूरी से दूनी मज़दूरी मिलने लग जाय तो कुछ स्वाभाविक और सुविधा-जनक परिस्थिति उत्पन्न होजायगी। इसलिए मुझसे जब इस विषय मे सम्मति मागी गई तो मैने लगभग इसी प्रकार की सम्मति भेज दी थी।

जीवन-वेतन का सिद्धान्त

इस प्रकार मैंने अपनी राय तो भेज दी थी किन्तु मेरे मस्तिष्क में गाँधी जी के एलान के सम्बन्ध मे तरह-तरह की भावनाएँ उत्पन्न हो रही थीं। यद्यपि यह निश्चित था कि चर्ख़े की मज़दूरी दो आने कर देने से लोगों की चर्खा चलाने की अरुचि दूर हो

जाती, और गाँव की स्त्रियाँ चर्खा चलाने के लिए तैयार हो जातीं परन्तु गाँधी जी तो आठ आने मज़दूरी कर के गाँव की सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति में क्रान्ति करना चाहते थे। इस तथ्य को मै भी समझता था कि यदि यह मज़दूरी सम्भव हो जाय तो हम केवल कत्तिनो के ही द्वारा ग्रामीण समाज में क्रान्ति उत्पन्न कर सकते हैं। इसलिए मै गाधी जी के एलान पर और भी गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगा। किन्तु इतनी मज़दूरी सम्भव हो सकेगी, इसकी कल्पना करना कठिन प्रतीत हो रहा था। इसलिए मैने अपनी सम्मति दो ही आने के पक्ष मे भेजी। कुछ दिनों के पश्चात् जब सम्पूर्ण खादी कार्यकर्ता गाधी जी के एलान के विरोध मे सम्मति देने लगे तो गाधी जी ने प्रत्येक प्रान्त के लोगों को अलग अलग बुला कर इस विषय पर विचार-विमर्श करना प्रारम्भ किया। इसी सम्बन्ध में विचित्र भाई और अनिल भाई वर्धा जा रहे थे। उन्होने मुझे भी वर्धा पहुँचने को लिखा। हम लोग वर्धा पहुँच कर गांधी जी से मिले। हमारे साथ दूसरे प्रान्तो के भी कार्यकर्ता थे। गाधी जी से बहुत देर तक आलोचना-प्रत्यालोचना होती रही। वह हर एक की शका का समाधान बड़े विस्तार के साथ करते थे। वहा की वार्ता सुन कर मुझ मे यह भाव अंकुरित हो उठा कि यह मज़दूरी बढ़ाने का कार्य हमे अवश्य करना चाहिए। क्योंकि अगर हम मज़दूरी बढ़ा देते हैं तो हमे ससार के समक्ष महँगी खादी पेश करने के लिए एक बहुत बड़ा नैतिक आधार मिल जायगा। अब तक भी हम जो खादी बेचते रहे वह भी विदेशी कपड़े या मिल के कपड़े से मँहगी ही रही। इस मँहगी खादी को दुनिया के सामने उपस्थित करने का हम लोगों के पास केवल एक यही आधार था कि खादी के द्वारा हम देहात के कुछ ग़रीब लोगों को बेकार समय मे काम देकर कुछ पैसे दिला सकते हैं। वह पैसा कितना है, उसे कहने में भी शर्म मालूम होती थी। किन्तु 'जीवन-मज़दूरी' के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने से हम न केवल नैतिक

दृष्टि से कत्तिनों के प्रति न्याय करते हैं प्रत्युत देहाती समाज को पुनर्गठित करने के लिए इसे हम अपना बहुत बड़ा साधन बना सकते हैं। इसका प्रभाव राजनीतिक-क्षेत्र के स्वराज्य आन्दोलन पर भी पड़ सकता है। ऐसी स्थिति मे खादी मॅहगी होने पर भी बिक्री कम हो जाने का बहुत अधिक भय नही रहेगा। क्योकि खादी की बिक्री तो राष्ट्रीय भावना पर ही निर्भर है और राष्ट्रीय भावना हमारे कार्य-क्रम की शैली पर ही अवलम्बित है।

स्त्रियों मे कार्य की आवश्यकता

एक ग्रामसेवक की दृष्टि से मुझे इसमे एक दूसरा लाभ भी दृष्टिगोचर होता था। मै तुम्हे पहले ही लिख चुका हूँ कि भारत के ग्रामीण समाज का सुधार तभी हो सकता है, जब गाव की स्त्रियो का सुधार हो जाय और स्त्रिया समाज-सेवा का भार अपने हाथ मे ले ले। साथ ही मेरा यह भी विश्वास है कि हम इस विषय मे पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक शीघ्र तैयार कर सकते हैं और वे हमारी बाते अधिक आसानी से समझ सकती हैं। यदि हम कत्तिनों को इतनी पर्याप्त मजदूरी देने की व्यवस्था कर ले तो हम उनका सम्पूर्ण ध्यान अपनी ओर खींच सकेंगे। और थोड़े ही प्रयत्न से उनके भीतर राष्ट्रीय और समाज-सेवा की भावना उत्पन्न कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त उनमे से अधिकाश हमारे निर्देशानुसार ग्राम-सेविका का कार्य भी कर सकती हैं। क्योंकि इस प्रकार वे हमारे संघ का अंग ही बन जाती हैं। सन् १९२९ ई० मे जब बापू मेरठ आये थे तो उन्होंने कहा था—"तुम्हारा कार्य प्रत्येक कत्तिन को स्वराज्य-वादिनी बना देना है।" इस बार वर्धा मे जब गाँधी जी से जीवन-मजदूरी के विषय मे चर्चा हो रही थी तो मुझे अनुभव हुआ कि इस परिस्थिति मे कत्तिनों को स्वराज्य-वादिनी बना देने की कल्पना का सफल होना सम्भव हो सकेगा। यह सोच कर मैने विचित्र भाई से कहा कि अब तक मेरे हृदय मे सन्देह था किन्तु अब मै समझता हूँ कि जीवन-

मजदूरी के सिद्धान्त के अनुसार चलने पर हमारे आन्दोलन का कल्याण होगा। विचित्र भाई ने एक मधुर परिहास करते हुए मेरी राय से असहमति प्रकट की। किन्तु मैने स्वय इस विषय पर जितना ही सोचा उतनाही मेरा विश्वास दृढ होता गया और कालान्तर मे जब-जब मुझे अवसर मिला इस दिशा में कुछ न कुछ करने को कोशिश की। इन प्रयोगों के अनुभव से आज यह मेरा दृढ विश्वास हो गया है कि यदि चर्खा सघ कत्तिनों की उचित शिक्षा और मार्ग-प्रदर्शन की व्यवस्था करते हुए कुछ दिनों मे आठ आने मजदूरी देने के सिद्धान्त पर पहुँच जाय तो गाँधी जी की चर्खे के द्वारा स्वराज्य-स्थापना की वात चरितार्थ हो कर उसकी निश्चित रूपरेखा हमारे सामने स्पष्ट हो जाय।

वर्धा में इस प्रकार शंका-समाधान कर के हम लोग वापस लौट आये। चर्खा संघ ने आठ आने मजदूरी का सिद्धान्त नही स्वीकार किया किन्तु आज तीन आना तक तो कर ही दिया है। इस तीन आना के ही आधार पर हम लोग कत्तिनो में क्या क्या कार्य कर चुके हैं, इसके विषय मे फिर कभी लिखूँगा। आज पत्र यहीं समाप्त कर रहा हूँ।

---

[३०]

सेवा-क्षेत्र का विस्तार

६—१०—४१

हमारे रणीवाँ जीवन का लगभग एक वर्ष वीत चुका था। इस अवधि मे हमारा कार्यक्रम प्रायः ६-७ गाँवों तक फैल गया था और दूर के ग्राम वासियों से भी परिचय हो गया था। हमने अपने कार्य का विवरण श्री शंकरलाल भाई को लिख भेजा। जब वापू जी को यह ज्ञात हुआ कि हम लोग कई गाँवो में कार्य कर रहे हैं तो उन्होंने श्री

शंकरलाल भाई से कहा कि तुम धीरेन्द्र को लिख दो कि वह इस सम्बन्ध में मुझसे वार्तालाप कर ले। अतएव श्री शंकरलाल भाई के आदेशानुसार सेवाग्राम जाकर बापूजी से मिला तथा तीन-चार दिन तक उनसे बातें करता रहा। बापू जी का अभिप्राय यह था कि मैं अपने ग्रामसेवा का काम एक ही गाँव तक सीमित रक्खूँ। किन्तु मेरी विचारधारा इस के प्रतिकूल कई गाँव का एक क्षेत्र बना कर कार्य करने की थी। बापू जी कहते थे कि यदि तुम लोग ऐसा करोगे तो तुम्हारी कार्य-कारिणी शक्ति कई गाँवों मे विभाजित हो जायगी जिस का परिणाम यह होगा कि तुम कहीं भी सफल न हो सकोगे। किन्तु इसके विपरीत मेरा निजी अनुभव यह था कि ग्रामीण लोग किसी प्रकार के नवीन परिवर्तन की एक निश्चित गति रखते हैं। हम अत्यधिक प्रयत्न करने पर भी उस निश्चित गति में किसी प्रकार की तीव्रता नहीं ला सकते। उन्हें हमारे रहन-सहन, हमारे कार्य करने के ढग एव हमारी शिक्षा का प्रभाव ग्रहण करने के लिए एक निश्चित समय की अपेक्षा होगी। चाहे हम वह समय एक ही गाँव के सम्पर्क में बैठे रह कर व्यतीत करें या कई गाँवों के सम्पर्क मे लगावें और कई गाँवों के लोगों के दृष्टिकोण मे अन्तर लाने की कोशिश करें, समय एक ही लगेगा।

बापू से भिन्न अनुभव

इस के अतिरिक्त प्रत्येक गाँव मे हमारे प्रोग्राम के साथ कुछ ही व्यक्ति सहानुभूति रखते हैं, शेष लोगों को अपने साथ लाने मे समय लगता है। फिर भी कुछ व्यक्ति तो कभी साथ नहीं आते। इसी प्रकार प्रत्येक गाँव के कुछ व्यक्ति तो स्वभावतः हम से सहानुभूति रखते हैं और शेष कुछ लोगों को साथ लाने मे हमें उसी समय की आवश्यकता होती है जिसे हम एक गाँव के लोगों को साथ लाने मे व्यय करते हैं। इसके अलावा सभी व्यक्ति सभी प्रोग्रामों में सम्मिलित नहीं होते। रुचि-वैभिन्य के कारण कोई एक प्रोग्राम मे भाग लेता है, कोई दूसरे में। इस प्रकार अगर हम कई

गाँवों का क्षेत्र लेते है तो सम्पूर्ण क्षेत्र मिलाकर हमारे प्रोग्राम के हर एक पहलू पर काफी संख्या में लोग अमल करने लग जाते हैं और हम उनके सहारे अपने प्रोग्राम को आगे वढ़ा सकते हैं। कुछ कार्यक्रम तो इस प्रकार के होते हैं कि उन्हे संचालित करने के लिए गाँव में वायु-मण्डल तैयार करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, हम चाहे कितना ही झाड़ू देते रहे, कितना ही टट्टी साफ करते रहे और हल चलाना आदि कार्य अपने हाथ से करते रहे, परिश्रम की मर्यादा स्थापित करने के लिए हम साक्षात् आदर्श ही क्यों न बन जायं, किन्तु एक ठाकुर घर का राजकुमार एव उस घर के अन्य लोग इस प्रकार के कार्य करने का साहस नही करेंगे। इच्छा रखते हुए भी वे ऐसा नही कर सकते क्योंकि इस से उनके समीपवर्ती विरादरी के लोग उन्हे तुच्छ समझने लगेगे। इसी प्रकार ब्राह्मणों के लिए ताँत छूना, पंक्ति-पावन लोगों का चक्की चलाना और छुआछूत दूर करने आदि के विकट प्रश्न सामने आते हैं। लोगों का चाहे कितना ही वौद्धिक विकास हो जाय किन्तु प्राचीन परम्परागत रूढ़ि को त्याग कर किसी नवीन वात को ग्रहण करने का साहस उनमें नही आ पाता। गाव मे एक आध ही ऐसे दुस्साहसी व्यक्ति मिलतें हैं जो इन पुरानी बातों को छोड़ने के लिए तैयार होते हैं। किन्तु अकेले होने के कारण उनका साहस ढीला पड़ जाता है। यदि एक पूरे क्षेत्र के कई गाव के कई व्यक्ति इस विचार के प्राप्त हो जायँ तो उन्हे एक दूसरे से बल मिलता है और उनके आगे बढ़ने से सम्पूर्ण क्षेत्र के वायुमण्डल मे एक साहस की लहर पैदा हो जाती है और धीरे-धीरे दूसरे लोग भी उनका साथ देने लगते हैं। कई गावों का एक क्षेत्र चुनने से एक विशेष लाभ और होता है। प्रत्येक गाव के कुछ अलग-अलग ढंग होते हैं इसलिए कोई कार्य-क्रम किसी एक गाव मे चल जाता है तो कोई किसी दूसरे मे चल जाता है। हम लोगों के उस क्षेत्र मे भी यही हुआ। हम लोगो ने सवसे अधिक समय रणीवा मे रह कर व्यतीत

किया किन्तु चाचीपुर में पहले ही अधिक चर्खा चल गया। चतुरी पट्टी नामक गांव के सम्पर्क मे हम लोग बहुत पीछे आये किन्तु उस गाव में सबसे अधिक चर्खा चलने लगा था किन्तु आश्रम से सटे हुए गाव केवाडी मे आठ साल प्रयत्न कर के हम एक भी चर्खा नही चलवा सके। छुआ छूत के सम्बन्ध मे भी यही हुआ। आश्रम से डेढ मील दूर के एक गाव के कई नौजवान आश्रम मे सबके साथ खाने पीने लगे, फिर अन्य गाव के लोग भी खाने-पीने का साहस करने लगे और अब वहा वायु-मण्डल अनुकूल हो जाने से इस सम्बन्ध मे कहीं किसी प्रकार का विरोध भी नही प्रकट किया जाता।

रणीवा के निवासियो ने हमारे कहने से एक वार तम्बाकू पीना छोड़ दिया था। किन्तु अन्य स्थानो से उस गाव मे अतिथि आने पर जब उन्हे तम्बाकू नही दी गई तो सम्पूर्ण बिरादरी मे एक हलचल खड़ी हो गई। क्योंकि बिरादरी की संगति मे बैठ कर तम्बाकू न पीना एक प्रकार की बेइज़्ज़ती करना समझा जाता है। इस प्रकार बहुत से प्रोग्राम ऐसे हैं कि जब तक अनुकूल वातावरण नही पैदा होता है तब तक व्यक्तिगत रूप से वे चल नहीं पाते हैं।

मै गाँधी जी से तीन-चार दिन तक बाते करता रहा किन्तु हम लोग सहमत नहीं हो सके। अन्त मे बापू जी ने कहा—"जाओ, अपने ढंग से काम करो, अन्त मे अनुभव तुम्हें मेरी बात का कायल बना देगा।" उन्होंने जेठालाल भाई का भी उदाहरण दिया और कहा :—"जेठालाल भी आरम्भ मे इसी प्रकार की बाते करता था, मगर अब उस की राय बदल गई है।" बापू जी की इन बातो से भी मेरी धारणा परिवर्तित न हो सकी। और मै उनको प्रणाम कर और उनका आशीर्वाद ले कर रणीवाँ लौट आया। तब से छः वर्ष बीत गये। मै इस प्रश्न पर सर्वदा विचार करता रहा, किन्तु इतने काल तक देहात मे काम करने पर भी मेरे विचार मे कोई परिवर्तन नही आया। प्रत्युत अपनी ही धारणा दिन प्रति दिन और भी दृढ होती

गई। तुम जब रणीवाँ आई थीं तो इस प्रश्न पर तुमसे आलोचना-प्रत्यालोचना हुई थी। उस समय तुम भी मुझ से सहमत प्रतीत होती थी। मालूम नही, आज इस विषय पर तुम्हारी क्या सम्मति है?

---

[३१]

रणीवाँ आश्रम की स्थापना

१०—१०—४१

कल ही तुम्हे एक पत्र लिखा था; परन्तु आज भी कुछ अवकाश पाकर फिर लिखने बैठ गया। यह तो तुम्हे विदित ही है कि जेल का जीवन विचित्र हुआ करता है। कभी मन में आता है कि खूब सोये तो कभी जी चाहता है कि दिन भर पढ़ते ही रहे और कभी चर्खा चलाने बैठते हैं तो मन दिन भर चर्खा चलाने को ही कहता है और यदि कभी हुल्लड़ करने को मिल जाय तो फिर कहना ही क्या? उस दिन की तो हम लोग जेल-जीवन मे गिनती ही नही करते। जिस दिन लोगों की तबीयत जिधर मचल जाय, उस दिन लोग उसी में मस्त हो जाते हैं। अभी सप्ताहारम्भ की तो बात है। कुछ लोगों ने निश्चय किया कि गाधी-जयन्ती के अवसर पर कताई होनी चाहिये और २५ से २-१०-४१ तक जितना सूत कते, सब गाधी जी को भेंट किया जाय। पहले निश्चय किया गया कि सप्ताह भर मे एक लाख छियालीस हज़ार गज़ सूत काता जायगा। किन्तु जब कातना शुरू किया गया तो लोगों के दिमाग़ मे कातने की ही बात घुस पड़ी और निश्चय हुआ कि तीन लाख गज़ सूत कातना चाहिये, किन्तु अन्ततः लोग उसमे इतना तन्मय हो गये कि सप्ताहान्त तक लगभग साढे छः लाख गज सूत कत कर तैयार हो गया। इस तरह जेल की ज़िन्दगी एक धुन की जिन्दगी होती है। इसी तरह जब चिट्ठी लिखने की धुन

जेल का जीवन

आ जाती है तो यही जी चाहता है कि सर्वदा लिखा ही करें। इसलिए मै आज फिर चिट्ठी लिखने बैठ गया।'

अब तक के पत्रो मे मैने अपने गाँव के काम के अनुभव का ही उल्लेख किया है; आज रणीवाँ आश्रम के सम्बन्ध मे कुछ बाते बताऊँगा। यह मै पहले ही लिख चुका हूँ कि शुरू-शुरू में हम लोग केवल तीन आदमी ही रणीवाँ आये थे। फिर रामफेर भाई और बहरॅची मिस्त्री आगये। कुछ समय पश्चात् मेरठ से प्रेमनारायण भाई ग्राम-सेवा करने के विचार से चले आये। इस तरह हम लोगों की संख्या तीन से छः हो गई। एक छोटी सी कोठरी मे छः आदमियों का रहना कठिन हो रहा था। इधर कई माह से हम लोग यह महसूस करने लगे थे कि जब रणीवाँ मे सर्वदा के लिए निवास करना निश्चित-सा हो गया और अब इस स्थान ने एक आश्रम का रूप धारण कर लिया है तब हमे गाँव से बाहर कोई उपयुक्त ज़मीन मिल जाय तो वहीं छोटी-मोटी झोपड़ियाँ डाल लेनी चाहिएँ। यो तो गाँव वालों ने हमे जो भी स्थान दिये थे, प्रेम और आदर से ही दिये थे किन्तु हम लोग यह अनुभव करते थे कि वे लोग संकोच-वश हमे

आश्रम के लिए ज़मीन का चुनाव

आश्रम के लिए स्थान देकर स्वय तंगी का अनुभव करते थे। इसके अतिरिक्त अब आश्रम मे ग्राम-सेवा की शिक्षा पाने के लिए तरह-तरह के नवयुवको का आगमन सम्भव है, उस परस्थिति मे गॉव के भीतर चौबोसो घंटे हिल-मिलकर रहना उचित न होगा। इन सम्पूर्ण बातों का विचार कर हमने गाँव वालो के समक्ष अपना प्रस्ताव रक्खा और उनसे जमीन माँगी। कई स्थान देखे गये और आश्रम निर्माण की भिन्न-भिन्न योजना बनने लगी। दीवार कच्ची ईंट की रक्खी जाय या बिलकुल कच्ची हो और फूस से बनाई जाय या खपरैल से इत्यादि विषयों मे विवाद चलने लगा।

इसी प्रकार ज़मीन के सम्बन्ध मे भी नित्य विचार निश्चित होता था और दूसरे दिन पलट जाता था। अन्ततः श्री लालताप्रसाद जी

मिश्र ने गाँव से दक्खिन खेतो के मध्य लगभग एक बीघा भूमि प्रदान की और ज़ोर दिया कि आप लोग वही पर अपनी झोपड़ियाँ बनालें। उस स्थान पर एक कुआँ भी था इसलिए हम लोगों ने उसी स्थान पर आश्रम बनाने का निश्चय किया।

आश्रम बनाने का निश्चय करके मै किसी काम से मेरठ चला गया। मेरठ से लौट कर आश्रम-निर्माण के लिए साधन इकट्ठा करने की युक्तियाँ सोचने लगा।

एक दिन संध्या समय मै और पं० लालताप्रसाद गाँव के दक्षिण की ओर घूमने निकले। कुछ दूर जाने के बाद हम लोग एक जंगल के समीप आ पहुँचे। वह जंगल एक बहुत बड़े तलाब के चारों ओर फैला हुआ था। तालाब बहुत प्राचीन होने के कारण भठ चुका था। सुन्दर चाँदनी रात थी इसलिए वह स्थान बहुत आकर्षक प्रतीत होता था। मै जगल के मध्य तालाब के खुले मैदान पर बैठ गया और पं० जी कुल्ला करने चले गये। मै बैठे-बैठे सोच रहा था कि यदि इस जंगल का कोई कोना प्राप्त हो जाता तो आश्रम बनने के लिए बहुत सुन्दर और एक आदर्श स्थान होता। गाँव से कुछ दूर भी था और बन जाने पर देखने में भी एक प्राचीन काल के आश्रम के ही समान ही प्रतीत होता। साथ ही मुझमे वह कल्पना भी जाग्रत हो उठी जिसे मैने अपने कश्मीर-निवास के समय गाँव के सेवा-कार्य के लिए एक केन्द्रीय संथा बना कर आस-पास वह टीलों के नौजवानों को शिक्षित कर देहात को संगठित का आकर्षण करने के रूप मे किया था। अपनी उसी कल्पना के अनुसरर मैने मेरठ के निकट रास्ना में कार्य करना प्रारम्भ किया था। किन्तु अनुभवहीन विद्यार्थियों के द्वारा संचालित किये जाने के कारण वह सफल न हो सकी थी। अब तो मैं रणीवाँ मे सर्वदा के लिए बैठ रहा था तो क्या फिर एक बार और कोशिश करना उपयुक्त नही होता। जिस समय मैने रास्ना की योजना

बनाई थी, उस समय मेरे विचार मे ग्रामोद्योग की बात नहीं आई थी। उस समय तो मै केवल कताई और बुनाई के ही द्वारा ग्राम-सघटन की कल्पना कर रहा था।

ग्रामोद्योग—सघ की स्थापना कर गाँधी जी ने हम लोगों के लिए ग्राम-संघटन का बहुत बड़ा क्षेत्र खोल दिया था। इसलिए मैने रास्ता मे जितनी बड़ी केन्द्रीय संस्था की कल्पना थी, उससे भी बड़ी कल्पना उस तालाब के मैदान पर बैठे-बैठे कर डाली। यह सोच कर वह स्थान मुझे और भी सुन्दर प्रतीत होने लगा कि वहाँ रह कर भविष्य में अनुकूल परिस्थिति मिलने पर हम आगे भी बढ़ सकेंगे।

थोड़ी देर मे पं० लालता प्रसाद जी कुल्ला कर के लौट आये। मैने उनसे पूछा कि यह ज़मीन किसकी है? उन्होंने मेरे प्रश्न का अभिप्राय पूछा तो मैने अपना उद्देश्य कह सुनाया। पंडित जी हँसकर कहने लगे कि इन जगली सियारों के बीच कहाँ आकर निवास करेंगे? यहाँ कही निकट मे पानी भी तो नहीं है। मैने आप को जो स्थान दिया है वह आप के लिए बहुत सुन्दर और साफ स्थान है। यहाँ तो घर बनाने के लिए भी कोई स्वच्छ स्थान नही है। सब टीला और जंगल है। आप घर बनायेंगे भी तो कहाँ बनायेंगे? फिर भी मैने उनसे ज़मीन के मालिक का नाम बता देने का आग्रह किया। मेरा आग्रह देख कर वे हँस पड़े और कहने लगे:—"कोई हर्ज नहीं, यदि जंगल मे ही निवास करना है तो यही घर बनाइये। किसी से पूछना नहीं है। जमीन अपनी ही है।" तब मै उसी स्थान पर आश्रम-निर्माण का निश्चय करके घर लौट आया और कर्ण भाई से सारी बाते कह सुनाई। दूसरे दिन प्रातःकाल श्री कर्ण भाई और पं० लालता प्रसाद पुनः उस स्थान को आश्रम भवन-निर्माण की दृष्टि से देखने के लिए गये। स्थान कर्ण भाई को भी बहुत पसन्द आया और वे लोग जगल का एक कोना पसन्द करके लौट आये।

शुभस्य शीघ्रम। हम लोगों ने उसी समय गाँव से फावड़े और

टोकरियाँ इकट्ठी कर ली और सबेरे से ही उस स्थान पर जुट गये। जगल की सफाई और टीले को काट छाँट कर बराबर करने का कार्य प्रारम्भ हो गया। हमारी इस चेष्टा को देखकर गाँव के लोग हँसने लगे। आपस में कहते थे कि भला इतना ऊँचा टीला ये लोग किस तरह काट सकेगे ? यह तो टिटिहिरियों के समुद्र सोखने का साहस करने-जैसा है। किन्तु हम लोग उनकी बातों को अनसुनी करके अपने फावड़े और टोकरियाँ लेकर काम पर जुट जाया करते थे। कुछ दिनों के पश्चात् गाँव के व्यक्ति हमारे काम के प्रति हँसी-मज़ाक करने के उपरान्त धीरे-धीरे उस टीले पर आने लगे और हमारे कार्य को कौतूहल की दृष्टि से देखने लगे। कुछ लोग थोड़ी देर के लिए हमारे साथ फावड़ा लेकर खोदने भी लगते थे। इस प्रकार जो लोग हमारे कार्य को असम्भव समझते थे, वे ही अब शनैः-शनै स्वयं सहायता देने लगे। अन्तिम दिनो मे तो वही लगभग तीस-चालीस फावड़े चलने लगे थे। इस प्रकार प्रायः दो-तीन माह की अवधि मे हम लोगों ने उस टीले और जंगल को काट कर समतल बना डाला और आश्रम के मकान के लिए नीव खोद डाली। गाँव के सभी लोगों में उस समय काफ़ी उत्साह था। उस उत्साह और जोश के ही परिणाम-स्वरूप हम जितना बड़ा घर बनाना चाहते थे उससे चौगुना और पाँचगुना बड़ा घर बना डाला। मैंने एतराज भी किया तो लोगों ने कहा कि आप घबड़ाइये मत, सब कुछ हो जायगा। बहुत से लोगों ने बाँस वगैरह सामान देने का भी वादा किया। इस प्रकार रणीवा मे लगभग एक वर्ष रहने की अवधि मे ही हम लोगों ने स्थायी रूप से आश्रम बनाने की नींव डाल दी।

आश्रम-भवन बनाते समय हमें एक बहुत बड़ा अनुभव भी प्राप्त हुआ। ग्रामीण जनता मे अपने को भलमनई समझने वाले लोग भी हमे रोज़ फावड़ा चलाते हुए देख कर अपने दिल मे परिश्रम के प्रति श्रद्धा करने लगे। हम लोगों की यह बात इतनी फैल गई कि दूर-दूर

के लोग भी हमारा काम देखने के लिये आते थे।

इस प्रकार तीन माह तक लगातार टीला काटने का काम करते रहने से आश्रम का काफी प्रचार हो गया और गाँव वालों ने थोड़ा-थोड़ा सामान देकर आश्रम के लिए पूरी सामग्री इकट्ठी कर दी। हम लोगों को केवल बढई और लुहारों के ही लिए खर्च करना पड़ा।

आज जब हम आश्रम की उस विशाल इमारत को देखते हैं तो ग्रामीण जनता के इस असीम प्रेम की बात सोचकर आश्चर्य करते हैं। हमारे बहुत से नौजवान कहा करते हैं कि गाँव का काम किस प्रकार होगा? गाँव वाले इतने गरीब, मूर्ख और आलसी हैं कि उनसे तो कुछ हो ही नही सकता है और हमारे पास कोई साधन नहीं। अतः गाँव मे जाकर बैठना बेकार-सा ही है। किन्तु वे भूल जाते हैं कि शहरी लोगों के शहरी जीवन व्यतीत करने के लिए, ताल्लुक़ेदारो और महाराजाओं की अट्टालिकाओं को बनाने के लिए तथा शहर के लोगों को मोटर, सिनेमा आदि सामग्री जुटाने के लिए जिन साधनों की आवश्यकता होती है वे सब कुछ उसी ग्रामीण जनता के यहाँ से आता है। इसलिए देहात के जन-समूह अपने जिन साधनों से ऐसे बड़े-बड़े कार्य कर डालते हैं यदि वे चाहें तो उन्हीं साधनों से अपनी टूटी-फूटी झोपड़ी की मरम्मत भी कर सकते हैं। केवल मार्ग बतलाने की आवश्यकता है। यदि हम गावों में जाकर श्रद्धा-पूर्वक उनके सेवा-कार्य मे लग जायँ तो धीरे-धीरे उनको रास्ता बताने में समर्थ हो जायँगे।

श्रद्धा की आवश्यकता

आश्रम के सम्बन्ध मे तुम्हें थोड़ा-सा परिचय देना था किन्तु यह लेख लिखते-लिखते लम्बा हो गया। अपने सम्बन्धित व्यक्तियों के विषय मे प्रचार करने में भला किसको रस नहीं मिलता? फिर मैं भी तो आदमी ही हूँ? ख़ैर, इस कहानी से तुम्हें ग्रामीण लोगो की मनोवृत्ति का कुछ परिचय तो मिल ही जायगा। इसलिए मेरा यह

लम्बा लेख तुम्हे विशेष अरुचिकर नही प्रतीत होगा। अभी तुम्हारा पत्र आया है। सब समाचार मालूम हुआ। तुमने लिखा है, म:तुमा अब सत्याग्रह का अर्थ समझ गई। फिर क्या पूछना ? अबतो वह बाकायदा एक नई नेत्री बन सकती है। सरोजनी नायडू तो अब बुढिया हो गईं। उनकी जगह पर उसी को क्यों न कर दिया जाय ? मै खूब मजे मे हूँ, सब को नमस्कार।

---

[३२]

सरकारी दमन का रूप

१२—१०—४१

परसों ही तुम्हें एक पत्र लिखा था। मिला होगा। आज फिर लिखने बैठा हूँ। देखो, आजकल मै पढने-लिखने में कितना ध्यान लगा रहा हूँ! अब कभी न कहना कि धीरेन्द्र भाई, तुम लिखने पढने के चोर हो।

अपने पिछले पत्र में मैंने यह लिखा था कि किस प्रकार गाँव वालों की सहायता से रणीवाँ स्थायी आश्रम बन गया। उस बार जब तुम रणीवाँ गईं थी तो पश्चिम की भीट पर जो बड़ा-सा मकान देखा था, वह वही भाग है जिसका जिक्र मैने पिछले पत्रों मे किया है। तुमको स्मरण होगा कि उसमे एक बहुत बड़ा-सा हाल भी है। उसी में बैठकर तुमने आस-पास के ग्रामीण मित्रों को बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा का महत्व समझाता था। वे लोग बिलकुल देहाती थे। तुमने देखा था कि वे कितने आग्रह के साथ इस योजना का स्वागत करते थे। तुमसे तरह तरह के प्रश्न भी करते थे। चूकी बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा ग्रामीण लोगों की मतलब की चीज है इसलिए वे इसे बहुत शीघ्र समझ जाते थे। हमारे बहुत से सुधारक नौजवान कहा करते हैं कि गाँव के लोग महामूर्ख और दकियानूसी हैं। वे कोई नई बात

ग्रहण ही नहीं करना चाहते हैं। किन्तु वे भले आदमी यह नही समझते कि ग्रामीण लोगों को यदि ठीक-ठीक उन्हीं के अर्थ की बात समझाई जाय तो वह चाहे कितनी ही नई क्यो न हो पर वे उसे सरलता से समझ लेते हैं। वास्तविक तथ्य यह है कि हमारे सुधारक भाई जब गाँवो मे जाते हैं और उन्हे कुछ समझाते हैं तो उसमे से अधिकांश उनके मतलब का नहीं होता। रही दकियानूसी विचार की बात। मेरा विचार तो यह है कि मनुष्य-मात्र ही अपनी शिक्षा, संस्कार और आस-पास के वातावरण के प्रभाव से कुछ धारणा बना लेते हैं; उसे सरलता से नही छोड़ पाते। पं० जवाहरलाल की तरह साफ दिमाग और वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने वाला आदमी संसार मे दूसरा कौन है? किन्तु उनको यह समझाना कठिन है कि बिना कुर्सी और मेज़ के भी लिखने-पढ़ने का कार्य स्फूर्ति और कुशलता के साथ किया जा सकता है। देहात के लोग अपना सम्पूर्ण कार्य उपर्युक्त साधनों के बिना ही बड़ी सुन्दरता से कर लेते है। इसीलिए मै सर्वदा कहा करता हूँ कि दकियानूसी मनोवृत्ति केवल गाँव वालो की ही बपौती नही है। मनुष्य मात्र की ही यह ख़ास सम्पत्ति है। जब देहात के लोग अपना आचरण और जीवन हम लोगो की तरह नही बना पाते तो हम उन्हें पत्थरदिमाग़ कहते हैं, किन्तु हम जब अपना जीवन देहाती जीवन के रूप मे नहीं परिवर्तित कर पाते तो उस समय हमारा दिमाग किस प्रकाश-रश्मि का बना हुआ कहा जा सकता है?

सुधारकों का गलत तरीका

आज मै तुम्हे कुछ और ही लिखने बैठा था, किन्तु प्रसग-वश दूसरी ओर बहक गया। पिछले पत्र मे मै तुम्हे लिख ही चुका हूँ कि धीरे-धीरे आस-पास के दूरस्थ देहात तक भी आश्रम की बात फैल रही थी और आश्रम का प्रभाव बढ़ रहा था। पहले की अपेक्षा ग्रामीण लोगो मे कुछ-कुछ जीवन-संचार भी हो रहा था। तालाब का

टीला और जगल खोदने की दृष्टि से हम लोग और भी प्रसिद्ध हो चुके थे। इससे सरकारी अधिकारियो की दृष्टि भी हम पर पड़ने लगी। चौकीदारों को हमारी गति-विधि नोट करने का आदेश मिल गया। देहात के जो व्यक्ति हम लोगों से अधिक घनिष्ठता रखते थे उन्हे पुलिस के सिपाही परोक्ष रूप से डराने भी लगे। किन्तु अब तक हम लोगों ने गाँव वालों के हृदय मे स्थान बना लिया था। इसलिए हमारा कार्य पूर्ववत् चलता रहा। अधिकारी वर्ग ने जब देखा कि देहात के लोग सामान्य रूप से उनकी धमकी मे नही आते तो उन्होंने दमन का विशेष तरीक़ा काम मे लाना प्रारम्भ किया।

आश्रम का बढ़ता प्रभाव

उस वर्ष लखनऊ मे काग्रेस हो रही थी और उसी वर्ष पहले-पहल काग्रेस मे खादी और ग्रामोद्योग सामान की हमे प्रदर्शनी करनी थी। इसलिए मुझे चार-पाच माह के लिए लखनऊ चला जाना पड़ा। जिले के अधिकारियों ने अच्छा अवसर देखा और एक वर्ष पूर्व स्वाधीनता दिवस के अवसर पर किये गये भाषण के उपलक्ष मे श्री कर्ण भाई पर राजद्रोह की दफा १२४-अ लगा कर गिरफ्तार कर लिया। तत्पश्चात् गावों मे दमन-नीति का प्रयोग प्रारम्भ हो गया। सिपाही और चौकीदार गाँव-गाँव मे जाकर गॉव वालों को धमकाते थे और कहते थे कि अब क्या देखते हो ? कर्ण भाई तो गिरफ़ार कर लिये गये और बंगाली बाबू डर के मारे जान बचा कर कहीं भाग गये। अब जो कोई आश्रम बनाने मे किसी तरह की सहायता करेगा वह बाँध लिया जायगा ; इत्यादि। गाव के लोग इन बातों से घबराते तो अवश्य थे किन्तु आश्रमीय भाइयों के साथ उनका सम्बन्ध पूर्ववत् ही बना रहा। अधिकारियों को इतने पर भी सन्तोष न हुआ। एक दिन थानेदार ने अपने दल-बल के साथ रणीवाँ के पास एक बाग़ में आकर खीमा गाड़ दिया। वहीं पर लोगों को बुला-बुलाकर ख़ूब धमकाया

सरकार-द्वारा दमन

और कहा कि जो लोग आश्रम बनाने मे मदद देंगे उन्हे देख लूंगा। थानेदार के सब से अधिक कोप-भाजन वे लोग बने जिन्होंने हमे रहने के लिए या हमारे काम के लिए अपने मकान के हिस्से दिये थे। कुछ लोग डर गये और उन्होंने सकोच का अनुभव करते हुए लालजी भाई से घर छोड़ देने का अनुरोध किया। लालसिंह भाई ने उन्हें आश्वासन दिया और उनके घर छोड़ कर बाहर मैदान मे अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। इन लड़कों के अन्दर इतना जोश आ गया था कि कष्ट भोगते हुए बाहर रह कर सभी विभागो का कार्य सुचारु रूप से चलाते हुए भी आश्रम-निर्माण के लिए सामान एकत्र करना जारी रक्खा। गाँव के छोटे-छोटे बच्चों मे भी काफी जोश और प्रेम उमड़ उठा था। जब आश्रम के भाई अपने खुले मैदान के निवास-स्थान से कार्य के लिए किसी दूसरी जगह जाते थे तो बच्चे बारी-बारी से सामान की रखवाली करते थे।

पुलिस और जिले के अन्य अधिकारी प० लालता प्रसाद पर बहुत अधिक दबाव डालने लगे कि आप अपनी ज़मीन मे आश्रम न बनने दे। तहसील के हाकिम और थानेदार ने उन्हें बुला कर धमकिया भी दी। प्रारम्भ मे पंडित जी बहुत घबराये। उनके हृदय मे प्रेम और भय का सघर्ष प्रारम्भ हो गया। दो तीन दिन तक वे अहर्निशि पड़े रहे। अन्त मे प्रेम की ही जीत हुई और उन्होंने निश्चय कर लिया कि जो कुछ हो आश्रम तो बनेगा ही। अधिकारियों के हाथ में जो कुछ शक्ति थी, उसके द्वारा उन्होंने पंडित जी को गिराने की पूर्ण कोशिश की। गाव के मुखिया का पद छीन लिया गया। पंडित जी कई गाँवों की सरकारी पचायत के सरपच भी थे। अधिकारियों ने उन्हे इस पद से भी वञ्चित कर दिया। परन्तु यह सुन कर तुम्हें प्रसन्नता होगी कि दो वर्ष तक लगातार परिश्रम कर के भी सरकार उस क्षेत्र मे दूसरा सरपञ्च न चुन सकी। निर्वाचक

दमन की आंधी में अचल रहने वाले

हमेशा पंडित जी का ही नाम लेते रह गये।

गाव का यही क्षेत्र था जहाँ साल भर पूर्व एक पुलिस के चौकीदार को देख कर लोग थर-थर कापते थे। सिपाही देखकर तो गाँव छोड़ भाग जाते थे। जब पहले-पहल हम लोग रणीवाँ आये तो एक बार उस गाव मे अकबरपुर से तहसीलदार आये हुए थे। उनके भय से कई अच्छे-अच्छे व्यक्तियों ने अपने चर्खे और धुनकिया छिपा दी थी। एक महाशय ने तो घबराहट मे अपनी धुनकी धान के पयाल में छिपा दी थी। उसी क्षेत्र मे केवल एक वर्ष तक रचनात्मक कार्य करने से लोगों मे इतना साहस आ गया कि अधिकारी कोशिश करने पर भी एक सरपंच नही चुन सके और अन्त मे उन्हें उस क्षेत्र की पंचायत ही तोड़ देनी पड़ी। हमारे देश के नौजवान गाधी जी के रचनात्मक कार्य पर व्यंग करते हैं। कहते हैं, इससे स्वराज्य किस तरह मिल जायगा ? भला वताओ तो जव तक भारतवर्ष की ग्रामीण जनता संघटित नही होगी और उसमे स्थायी हिम्मत नही पेदा होगी तव तक स्वराज्य का आन्दोलन ही किस प्रकार चल सकेगा, स्वराज्य-प्राप्ति तो बहुत दूर की वात है। गाँधी जी की इस सूझ को हमारे देश के नौजवान तो नही समझते किन्तु सरकार की नौकरशाही खूब समझती है। यही कारण है कि वे भर सक यह कोशिश करते रहे कि हम लोग रणीवा में न जम सके।

पं० लालता प्रसाद जी के ऊपर वीती हुई वातो को तुम्हें लिख ही दिया। अव जिस घर मे हम रहते थे उस घर के लोगों की कहानी सुनोगी तो तुम आश्चर्य करोगी। उस दिन थानेदार ने उन सभी लोगों को बुलाया था जिनके घरों में हम लोग रहते थे। कुछ लोगों ने तो अपने डर की वात भाई लालसिह से कह कर अपनी जगहें खाली करवा ली। किन्तु जिस घर में हम लोग रहते थे उस घर की विधवा के वड़े लड़के श्यामधर मिश्र ने हम लोगो के लिहाज से कुछ नहीं कहा और फिर जव उसने यह देखा कि प० लालताप्रसाद ने

अपनी भूमि पर आश्रम बनाने का काम नहीं रोका तो वह भी चुप रहा। किन्तु तीन-चार दिन के पश्चात् पुलिस वालों ने उसे फिर बुलाकर धमकाया जिससे वह डर गया। उस समय उस की विधवा माता अपने नैहर मे थी। श्यामधर वहीं चला गया और उसे बुला लाया तथा पुलिस के हस्तक्षेप का सारा क़िस्सा उससे कह सुनाया।

विधवा का तेज

साथ ही इस बात पर भी जोर दिया कि अब इन लोगों से अपना घर खाली करा लेना चाहिये। किन्तु उस गरीब और ग्रामीण विधवा स्त्री ने साहस के साथ जवाब दिया कि चाहे जो हो किन्तु मैं इन्हे नहीं निकालूँगी। अगर पुलिस को निकालना हो तो वह स्वयं आकर निकाल जाय। हमारे ऊपर जो मुसीबत पड़ेगी देख लूँगी। जिसे डर लगता हो वही घर से निकल जाय।

कितने आश्चर्य की बात है देहात की एक गरीब विधवा, जिसके घर मे हमेशा दोनों समय उचित रूप से भोजन भी नही मिलता, जिसके पास जीवित रहने के लिए भी पर्याप्त साधन नही है, जिसने अपने जीवन भर मे किसी प्रकार का राजनीतिक व्याख्यान भी नहीं सुना उसके भीतर इतना साहस कहाँ से आ गया।

ग्राम-सेवा के द्वारा ग्रामीण लोगों के साथ आत्मीयता का सम्पर्क कायम करने से क्या नहीं हो सकता? हम जन-सम्पर्क के लिए कमेटियाँ बनाते हैं और समझते हैं कि देहात की बड़ी-बड़ी सभाओं मे भाषण देकर जन-सम्पर्क कायम कर लेगे। किन्तु यह समझना बहुत बड़ी भूल है। केवल भाषण देकर जन सम्पर्क नहीं कायम किया जा सकता। मै आज भी तुम्हे यह पत्र लिखते समय जब उस विधवा की बात सोचता हूँ तो स्तम्भित रह जाता हूँ। किस शिक्षा, किस आदर्शवाद और किस ऊँची सभ्यता ने उसके हृदय में इतने ऊँचे भाव जाग्रत किये। शिक्षा, स्वच्छता और सभ्यता का दम भरने वाले और देहात के लोगों को गन्दे, बेवकूफ कहकर नाक सिकोड़ने वाले मित्रों से पूछो कि वे अधिक

स्वच्छ और साफ हैं अथवा वह मूर्खा, जीर्ण वस्त्र-धारिणी विधवा ? जो अपने रहे-सहे साधनों पर भी जोखिम उठाकर साहस, प्रेम और शिष्टाचार का आदर्श हमारे समक्ष उपस्थित करती है।

अधिकारियों और पुलिस की उपर्युक्त चेष्टा देख कर मुझे जवाहरलाल जी की कही हुई एक बात याद आती है। सन् १६३३ ई० मे मैने गणेशशंकर विद्यार्थी-द्वारा ग्राम सेवा कार्य के लिए संस्थापित कानपुर के देहात के नर्वल आश्रम के सम्वन्ध में जवाहरलाल जी को एक पत्र लिखा था। ग्राम-सेवा के कार्य मे मुझे प्रारम्भ से ही दिलचस्पी थी। इसलिए मै विशेष उत्सुक था कि वह आश्रम सुचारु रूप से चल जाय। जवाहरलाल जी ने मेरे पत्र का जो उत्तर दिया वह मुझे अब तक ज्यो का त्यों स्मरण है। वह इस प्रकार था :—

"प्रिय धीरेन्द्र, तुम्हारा पत्र मिला। विद्यार्थी जी के नाम के साथ जिस भी काम का सम्वन्ध है, उससे दिलचस्पी होना मेरे लिए परम स्वाभाविक वात है। मै कानपुर जा रहा हूँ और आश्रम के सेक्रेटरी से वातें करूँगा किन्तु तुमसे मै एक वात कहे देता हूँ कि देहात मे तुम चाहे कोई भी काम करो किन्तु उसका कुछ वास्तविक प्रभाव जनता पर पड़ने वाला हो तो अधिकारी तुम्हे वह काम नहीं करने देंगे।"

यही हुआ भी। रणीवा मे जवाहरलाल जी की वात चरितार्थ हो गई किन्तु साथ ही यह भी अनुभव हुआ कि अगर हम देहात मे रचनात्मक कार्य इस ढंग से करे कि उससे जनता पर दर असल प्रभाव पड़ सके तो अधिकारियों के लिए काम का न करने देना भी असम्भव हो जाता है।

आज मैने वहुत लम्वा पत्र लिख डाला। काफी शाम हो गई। अतः आज यही समाप्त करता हूँ। तुम्हारे यहाँ का क्या हाल है ? दादा अभी दूर (प्रवास) पर ही हैं या वर्धा लौट आये ? सव को नमस्कार कहना।

[३२]

खादी-सेवकों की शिक्षा

१५—१०—४१

इधर मैने प्रति दिन एक पत्र लिखने का निश्चय किया था किन्तु आज तीन दिन से एक भी नहीं लिख सका। दो-एक दिन से मेरे मन मे एक प्रकार की अव्यवस्था-सी उत्पन्न हो गई थी। रणीवाँ के ब्रह्मचारी जी को तो तुम जानती हो। इधर जब से हम लोग ग्रामोद्योग-विद्यालय को व्यवस्थित करने में लगे रहे, तब से गाव के कार्य का सारा भार उन्हीं ने उठा लिया था। उनके समान सादा जीवन, सेवा की भावना और चरित्र रखने वाला सेवक दुर्लभ है। काफी योग्य और पुराना कार्यकर्ता होते हुए भी हमेशा अपने को पीछे रख कर ही कार्य करते थे। अभी अभी मुझे समाचार मिला है कि ब्रह्मचारी तालाब मे तैरते हुए डूब गये हैं। इस खबर ने मुझे इन दिनों बेचैन सा कर दिया है। इस समय भी मै जबर्दस्ती ही लिखने बैठा हूँ। मेरे लिए तो वह सगे भाई से भी अधिक था। जेल मे बैठे-बैठे उसके भरोसे न जाने क्या-क्या करने की योजना सोच रहा था। साथी कार्यकर्ता तो बहुत आते हैं किन्तु ऐसा चरित्रवान कार्यकर्ता कहा प्राप्त हो सकेगा। हमारा क्या? संसार के अन्य शोकों की तरह यह शोक भी भूल ही जायँगे। किन्तु रणीवा के निकट के तीन-चार सौ गाव की गरीब और असहाय जनता को उस पर बहुत भरोसा था। पुलिस, जमींदार और रोग आदि के प्रकोप में ब्रह्मचारी उनका एक मात्र आधार था। आज वह जनता अनाथ हो गई। इसकी चिन्ता मुझे रह-रह कर सता रही है। किन्तु विवश हूँ। मनुष्य कर ही क्या सकता है? ईश्वर की लीला अपार है।

दुर्लभ सेवक का निधन

हाँ तो उस दिन मै अधिकारियों-द्वारा हम लोगो के हटाये जाने की चेष्टा की कहानी लिख रहा था। मेरी अनुपस्थिति मे कर्ण भाई को गिरफ्तार कर लेने के बाद पुलिस ने गाँव वालों पर अपना आतक फैलाने की कोई भी कोशिश उठा नही रक्खी। इससे एक लाभ भी हुआ। एक प्रकार से लोगों के साहस और प्रेम की परीक्षा भी होगई, हमारे सहकर्मियों की भी परीक्षा हो गई। वास्तविक दिक्कतों का सामना किये बिना मनुष्य नैतिक बल नहीं प्राप्त कर सकता अतएव सेवकों के लिए कभी-कभी ऐसी परिस्थितियों का आ जाना ईश्वर की विशेष कृपा ही समझना चाहिए।

कर्ण भाई का छुटकारा

कर्ण भाई का मुकदमा लड़ा गया और सात महीने अभियोग चलाकर भी पुलिस अपनी बात साबित न कर सकी। कर्ण भाई मुकदमे से बरी हो गये। मै भी लखनऊ से लौट आया। फिर हम लोगों ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति आश्रम-भवन-निर्माण मे ही केन्द्रित कर दी। कर्ण भाई के छूट जाने से देहात मे चारों ओर एक नया जोश छा गया और लोग पहले की अपेक्षा अधिक सामान और परिश्रम से आश्रम बनाने में सहायता करने लगे। इस प्रकार जून सन् १९३६ तक आश्रम-भवन पूर्णतया तैयार हो गया।

अब तक हम लोगों ने ग्राम-सेवा का कार्य केवल व्यक्तिगत रूप से ही किया था। किन्तु अब रणीवाँ केन्द्र ने एक सस्था का रूप ग्रहण कर लिया था। आश्रम के खादी-विभाग मे एक योग्य कार्यकर्ता की समस्या आ खड़ी हुई थी। उत्पत्ति विभाग के कार्य-सम्पादन के लिए आवश्यक था कि कुछ कार्यकर्ताओ को इस प्रकार की शिक्षा दी जाय कि वे कताई धुनाई के ज्ञान के साथ-साथ हमारे खादी आन्दोलन के उद्देश्य और स्वरूप का भी ज्ञान प्राप्त कर लें। मेरे रणीवा मे रहते तथा वहाँ पर एक आश्रम बन जाने के कारण आश्रम के प्रधान कार्यालय ने उत्पत्ति विभाग के नये कार्य-कर्ताओं को कताई धुनाई सीखने,

राष्ट्रीय आन्दोलन का साधारण ज्ञान प्राप्त करने एवं आश्रम-जीवन की भावना ग्रहण करने के लिए तीन महीने तक रणीवां में भेजने का निश्चय किया।

गांव में चर्खे का प्रचार और स्वच्छता आदि का कार्य तो चल ही रहा था किन्तु इस शिक्षण-केन्द्र के स्थापित हो जाने से मेरी पुरानी कल्पना को साकार रूप प्राप्त होने की कुछ सम्भावना प्रतीत होने लगी। व्यक्तिगत रूप से शिक्षा की अवधि कुछ अधिक रखना चाहता था किन्तु आश्रम ने केवल तीन माह की ही अवधि स्वीकार की। इस प्रकार के कार्यकर्ता-शिक्षण का अनुभव मुझे पहले से कुछ नहीं था। इसलिए मैंने सोचा कि इस तीन माह के कार्यक्रम से मुझे अनुभव हो जायगा। अतः यह कार्य-क्रम मेरे लिए भी उतना ही सीखने का विषय था जितना किसी नवागत शिक्षार्थी के लिए। वस्तुतः इससे मैंने सीखा भी बहुत अधिक। इससे मुझे अनुभव हुआ कि कार्यकर्ता-शिक्षण पर अब तक हम लोगों ने जितना ध्यान दिया है, वह बिल्कुल नहीं के बराबर है। चर्खा संघ ने इस दिशा में योजना बना कर कोई भी विशेष कार्य नहीं किया है। वास्तव में हमें यह मानना पड़ेगा कि चर्खा संघ के कार्यकर्ताओं को यह भी नहीं मालूम है कि हम क्यों चर्खा चलायें और क्यों खादी पहनें? क्योंकि अब तक उन्हें इस प्रकार की शिक्षा ही नहीं दी गई। गांधी जी कहते हैं कि 'हम चर्खा आन्दोलन से स्वराज्य ले लेंगे। चर्खा ग्राम-आन्दोलन का केन्द्र-बिन्दु है। एक हाथ से हमें चर्खा दे दो तो दूसरे हाथ पर हम तुम्हें स्वराज्य दे देंगे।' इत्यादि।

खादी-शिक्षण का केन्द्र

खादी-बिक्री के लिए जब हम लोग प्रचार करते हैं तो जनता में इसी प्रकार की भावना उत्पन्न करने की कोशिश करते हैं। हम लोगों से कहते हैं कि आप खादी पहनें। क्योंकि खादी के ही द्वारा हिन्दू-मुस्लिम एकता, हरिजन-उद्धार, मद्य-निषेध और गांवों के पुनर्निर्माण

का कार्य तथा स्वराज्य तक प्राप्त हो सकता है। शायद मै तुम्हे एक बार और लिख चुका हूँ कि गाधी जी जब मेरठ आये थे तो उन्होंने कहा था कि तुम्हारा कार्य प्रत्येक कत्तिन को स्वराज्य-वादिनी बना देना है। किन्तु हम लोग अब तक भी इस दृष्टिकोण से कार्य नहीं कर सके। चर्खा-संघ की पौने तीन लाख कत्तिनो को स्वराज्य-वादिनी बनाना तो दूर की बात है; हम कत्तिनों में कार्य करने वाले कार्य-कर्त्ताओं को ही स्वराज्यवादी नही बना पाये। हमारे कार्यकर्ता हिसाब रख लेते हैं

हमारी कमी

और खरीद बिक्री का काम ठीक-ठीक समझ लेते हैं तो हम मान लेते हैं कि उनमें एक सुयोग्य कार्यकर्ता की पर्याप्त योग्यता आ गई। मै स्वीकार करता हूँ कि पौने तीन लाख कत्तिनों को स्वराज्यवादिनी बना देना स्वराज्य पाने जैसा ही कठिन और विशाल कार्य है किन्तु उस दिशा मे अब तक हम कोई संयोजित कदम भी नही उठा पाये। इसलिए कार्यकर्ता-शिक्षण केन्द्र खोलने का अवसर मिलने पर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। और मै समझने लगा कि अब शायद हमें इस दिशा में कदम बढाने का दिन प्रति दिन सुन्दर अवसर मिलने लगे। जब हम कार्य-कर्ताओं की भावना और उनके दृष्टिकोण ठीक कर लेंगे तो उत्पत्ति-केन्द्रो का कार्यक्रम भी अभीष्ट दृष्टि-विन्दु से बना सकेंगे।

इस उद्देश्य से मै नवागत शिक्षार्थियों के शिक्षा-कार्य मे ही लग गया और कुछ दिनों के लिए इसी कार्य को अपना प्रधान कार्य बना लिया। और गाव मे कोई नई योजना प्रचलित करने की कोशिश नहीं की। जो कार्य पहले से चल रहे थे उन्हीं को अपने सहयोगियों की सहायता से क़ायम रक्खा। इसके पश्चात् आश्रम के विविध विभागों के लिए बहुत से कार्यकर्ताओं को कई टुकड़ियों में शिक्षा दी गई। कुछ कार्यकर्ता तो सन्तोषजनक नहीं निकले किन्तु साधारणतया इस थोड़े दिनों की ही ट्रेनिंग से उनकी भावना मे कुछ परिवर्तन अवश्य आ गया। कालान्तर में वे जहा-जहा गये, वहां वहा इस शिक्षा

का कुछ प्रभाव अवश्य देखने मे आया। किन्तु शिक्षा-केन्द्र खोलते समय मेरी कल्पना कुछ और ही थी। मै चाहता था कि चर्खा संघ के उत्पत्ति-केन्द्र इस दृष्टिकोण से चलाये जायँ कि गाधी जी के चर्खा और खादी का व्यापक अर्थ साकार रूप से दृष्टिगोचर हो सके। मेरी वह कल्पना कल्पना ही रह गई। एक तो तीन माह के संक्षिप्त समय मे कार्यकर्ताओं को पर्याप्त शिक्षा देना सम्भव नही था। दूसरे उत्पत्ति-केन्द्रों को नये दृष्टिकोण से चलाने का कार्यक्रम आश्रम स्वीकार न कर सका। सम्पूर्ण कार्य पुराने ही ढर्रे से चलता रहा। मै जितना ही विचार करता हूँ उतना ही यह धारणा

उत्पत्ति-केन्द्रों को नये ढग पर चलाने की आवश्यकता

दृढ होती जाती है कि जब तक चर्खा संघ उत्पत्ति-केन्द्रो के सचालन के ढ ग और दृष्टिकोण मे क्रान्तिकारी परिवर्तन नही करेगा, तब तक बापू जी का चर्खे-द्वारा भारतीय गावो के पुनर्निर्माण का स्वप्न उनके दिल ही मे रह जायगा। यदि चर्खा सघ के उत्पत्ति-केन्द्रो और ग्रामोद्योग के कार्य ठीक ढ ग से चल सके तो ग्राम-सुधार, ग्राम-सेवा और ग्राम-सगठन आदि कार्य के लिए अलग से किसी सगठन की आवश्यकता ही नही पडेगी। चर्खा सघ के ही कार्यो से देहातो का कायाकल्प हो जायगा। अतएव इसके लिए यह आवश्यक है कि चर्खा संघ साहस और दृढता के साथ उपर्युक्त नवीन दृष्टिकोण से अपने कार्यकर्ताओं की शिक्षा का प्रबन्ध करे। ज्यो-ज्यों कार्यकर्ता तैयार होते जायँ त्यों-त्यो उत्पत्ति-केन्द्रों का कार्य इस ढ ग से संचालित किया जाय कि हर एक कातने वाली कम से कम अपने काते हुए सूत का कपड़ा पहनने के लिए उत्सुक हो उठे। आज जो वे यत्किंचित खादी पहनती भी हैं वह एक प्रकार के दवाव से ही पहनती हैं। मेरा विचार है कि वस्त्र-स्वावलम्बन की योजना अलग से न वना कर कताई केन्द्रो को ही स्वावलम्बी कर दिया जाय। तभी हम वस्त्र-स्वावलम्बन की दिशा मे सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

मैने तुम्हें ग्राम-सेवा के कार्य का अनुभव बताने का वादा कर के यह पत्र लिखना प्रारम्भ किया था। किन्तु बीच मे चर्खा संघ को मैदान में घसीट लाया। मालूम नही, तुम्हें इससे कुछ दिलचस्पी है अथवा नही। किन्तु देखो, मैने तो पहले ही कह दिया था कि मै कोई लेखक नही हूँ। इसलिए कोई भी बात क्रमपूर्वक लिखना मेरे लिए संभव नही है। मै तो अपने काम करने के रास्ते मे जो कुछ भी कूड़ा-करकट पाऊँगा उसका ढेर तुम्हारे सामने लगा दूँगा। तुम अपनी इच्छानुसार अपने काम की वस्तु चुन लेना। इसके अतिरिक्त मै ग्राम-सुधार कार्य का भी कोई विशेषज्ञ तो हूँ नहीं। अभी तो मै केवल उस दिशा में चलने का अभ्यास कर रहा हूँ। इसलिए जब जब जो विचार आये है, उन सब का लिख देना अच्छा ही है। आज बहुत देर हो गई। शुरू से ही आज लिखने मे तो मन लगता नही था। इतना भी ज़बर्दस्ती ही लिखा है। आशा है तुम्हारे यहाँ का कार्य ठीक-ठीक चल रहा होगा।

हाँ, एक बात लिखना मै भूल गया था। 'खादी-जगत्'[1] से मालूम हुआ कि चर्खा सघ ने खादी-विद्यालय खोल दिया है। उसका क्या रूप है? लिखना। सम्भव है, यह विद्यालय उस योजना के सूत्रपात के रूप मे हो जिसकी कल्पना मै बहुत दिनो से करता रहा और जिसका उल्लेख अभी अभी इस पत्र मे किया है। सब को नमस्कार।

---

[३४]

किसानों का झगड़ा

१७—१०—४१

परसों के पत्र मे मैने इस बात का ज़िक्र किया था कि किस परिस्थिति मे रणींवाँ ने खादी कार्यकर्ता-शिक्षण केन्द्र का रूप धारण

---

[1] भारतीय चर्खा सङ्घ का पत्र।

किया था। मेरी यथार्थ कल्पना तो यह थी कि देहात में चर्खा और ग्रामोद्योग का वायुमण्डल पैदा कर के उनकी आर्थिक दशा सुधारी जाय और उन उद्योगों को मध्य विन्दु मान कर शिक्षा और संस्कृति का कार्यक्रम निर्मित किया था। किन्तु परिस्थिति हमे खादी-कार्यकर्ता-शिक्षण की ओर ले गई। मैने यह विचार कर कि यह रूप भी हमारी योजना का सहायक ही होगा, इसका स्वागत किया। इन विद्यार्थियों के आ जाने से आश्रम ने एक विद्यालय का रूप धारण कर लिया। जिससे गाव के लोगों को भी हमारे स्थायित्व का विश्वास होने लगा और कुछ स्थानीय नौजवान भी बुनाई और लकड़ी का काम सीखने के लिए हमारे यहाँ विद्यालय मे भरती हो गये। तब से अब तक कार्यकर्ता-शिक्षण के साथ-साथ ग्रामीण नौजवानों को उद्योग का काम सिखा कर उनके घरों पर ही ग्रामोद्योग का काम सचालित करने का क्रम चल रहा है। मै आशा करता हूँ कि इन शिक्षाप्राप्त नवयुवको के द्वारा प्रत्येक उद्योग-केन्द्र को ग्राम्य-जीवन का मध्य विन्दु वनाने मे सफल हो सकेंगे। यह योजना, जो वहुत दिनो तक मेरी कल्पना की वस्तु वनी रही, अव प्रयोग की स्थिति पर आ गई। इस दिशा मे मुझे जितना भी अनुभव हुआ है, उसके आधार पर मुझे विश्वास है कि इस ढंग से काम करके सफलता प्राप्त करने मे रंच मात्र भी सन्देह नही है।

इस प्रकार हम लोगों ने ग्राम-सेवा के साथ-साथ केन्द्रीय आश्रम का सघटन करने मे ध्यान लगाया। आश्रम मे पर्याप्त विद्यार्थियों के आ जाने से आश्रम के भीतर भी एक सामूहिक जीवन व्यतीत करने का अवसर मिला। गाव के लोग इससे भी वहुत प्रभावित हुए। धीरे-धीरे वे अपने घरों की स्वच्छता आदि कार्यों मे स्वयं दिलचस्पी रखने लगे।

इसी समय प्रान्तीय एसेम्वली के चुनाव की लहर देश भर मे फैल गई। इस कार्य मे आश्रम को अपनी पूरी शक्ति से सहयोग देना

पड़ा । गावों मे उस समय कोई दूसरा कार्य हो भी नहीं सकता था क्योंकि सारी जनता का ध्यान उस समय चुनाव पर ही केन्द्रित हो रहा था । इसके अतिरिक्त यह चुनाव कांग्रेस के लिए बहुत महत्व का विषय था । इसलिए तीन माह तक हमारी सम्पूर्ण शक्ति इसी में लगी रह गई । इस चुनाव के कार्य से भी हम लोगों का लाभ ही हुआ । रात-दिन गाव-गांव घूमना, जहाँ संध्या हुई वहीं रह जाना और जो मिला उसी को खा लेना, इत्यादि बातों से हमारे कार्यकर्ताओं ने पर्याप्त साहस का पाठ पढ़ लिया । प्रत्येक श्रेणी के लोगों के सम्पर्क मे आने के कारण हमने गावों की अवस्था का भी भलीभाँति अध्ययन कर लिया । यह अध्ययन कालान्तर मे ग्राम-सेवा कार्य के लिए हमारा बहुत सहायक हुआ ।

कौंसिलों का चुनाव

चुनाव के पश्चात् हमारे समक्ष एक दूसरी समस्या आ खड़ी हुई । अब तक हम गाव मे चर्खा चलवाने, सफाई, रोगी की सेवा और छुआछूत-निवारण का कार्य करते रहे । चुनाव मे कांग्रेस की जीत होने के कारण देहात की परिस्थिति एकाएक बदल गई । युक्तप्रान्त मे कांग्रेस के विरोध मे केवल ज़मींदार और ताल्लुकेदार पार्टी के ही लोग खड़े हुए थे । इन ताल्लुकेदारो और ज़मींदारों का इस प्रान्त के अवध के जिलों मे किस प्रकार एक-छत्र अधिकार है, यह तो तुम्हे विदित ही है । उनके विरुद्ध आवाज़ उठाना तो बहुत बड़ी बात थी, सीधे आख उठा कर देखना भी देहात के लोगों के लिए असम्भव था । धन, सम्पत्ति, सरकारी कानून और अधिकारी सभी इनके हाथ मे थे । इसलिए वे जिधर से निकलना चाहते थे, उधर का रास्ता बिल्कुल साफ़ और चिकना होता जाता था । यदि कोई बीच में आने का साहस करता तो कुचल दिया जाता था । ऐसी दशा में जब उन्हीं की भूमि मे रहने वाले अवध के किसानों ने

जमींदार-किसान-संघर्ष की वृद्धि

उन्ही के विरुद्ध वोट दिया तो वे क्रोध से पागल हो उठे। और किसानो की इस धृष्टता का बदला लेने की कोशिश मे लग गये। उनके सिपाहियों-द्वारा किसानों का निरपराध ही पीटा जाना, ज़बर्दस्ती खेत दख़ल कर लेना, खड़ी फसल कटवा लेना नित्य की साधारण बाते हो गई। ऐसी अवस्था मे आस-पास की असहाय और ग़रीब जनता उपर्युक्त प्रकार के कष्टों से पीड़ित होकर सहायता के लिए स्वभावतः हमारे पास आने लगी। दिन भर मे इस तरह के दो-तीन मामले तो आ ही जाते थे। इस प्रकार चुनाव के कई माह बाद तक भी किसानों के अत्याचार-निवारण मे उनका साथ देना ही हमारा मुख्य काम हो गया था।

जब हमारे पास कोई शिकायत आती थी तो पहले हम उसे अपने रजिस्टर मे नोट करते थे। इसके बाद घटना-स्थल पर पहुँचते थे। मार-पीट की बात होती तो स्थानीय पुलिस की भी सहायता लेते थे। किन्तु अधिकाश मामले ज़मींदार से मिलकर तय करने की कोशिश करते थे। कभी-कभी गाव के सम्पूर्ण किसानों को संघटित करके क्षणिक सत्याग्रह का भी विधान करना पड़ता था। देहाती झगड़ों के फैसला करने के क्रम मे हमे काफी अनुभव भी हुआ। गाव की जमी-दारी प्रथा किस प्रकार की है, किसान कितने प्रकार के होते हैं, उनके कौन कौन से कानूनी हक हैं, उनकी आर्थिक अवस्था किस प्रकार की है, खेती मे काम करने वाले मज़दूरों की क्या दशा है, गाव की मध्यम श्रेणी के छोटे-छोटे जमीदार किस तरह रहते हैं, और उनकी मनोवृत्ति कैसी है, आदि बहुत सी बातों का गहरा अध्ययन करने का अवसर मिला। इस विषय मे मै फिर कभी विस्तारपूर्वक लिखूंगा।

जब से हमने देहाती झगड़ो का फैसला करने का कार्य अपने हाथ मे लिया, तब से ज़मीदारों के अत्याचार-सम्बन्धी झगड़ों के अतिरिक्त किसानों के आपसी झगड़े भी हमारे पास आने लगे। इन झगड़ों को भी अनेक श्रेणियों मे विभाजित किया जा सकता है।

ग्राम-वासियों की विविध समस्याएँ

कोई किसी का रुपया नही वापस कर रहा है, किसी ने ज़मीन के बॅटवारे मे बेईमानी कर ली है, किसी ने अपने पट्टीदार का पेड़ काट लिया है, किसी विधवा के जेवर उसके देवर ने ले लिये हैं और देता नही है, कोई आकर कहता था कि हमारी स्त्री ही भाग गई, आती नही है इत्यादि-इत्यादि अनेक उलझनो से भरी हुई समस्याएँ सामने आती रहती थीं। इन असंख्य पुकारो के विषय मे मै तुम्हें कहा तक लिखता रहूँ ? इनका फैसला करने मे हम लोगों को बहुत परीशानी उठानी पड़ती थी। सैकड़ों अभियोग तो झूठे ही आया करते थे। सत्य का पता लगाने मे भी कम परेशानी नही होती थी। किन्तु हम लोग इसे सहर्ष सहन करते थे। क्योंकि इससे अपना भी लाभ था। इसी हीले से गाँव के लोगों मे संगठन और सुधार करने का अवसर मिलता था। सब से बड़ा लाभ तो उस अनुभव का था, जो देहात की आर्थिक, नैतिक और सामाजिक समस्याओं की पेचीदा गुत्थियों के सम्बन्ध में होता रहा।

इन मामलों के द्वारा समस्याओं की जितनी गहराई तक हम पहुँच सके उतनी गहराई तक किसी और कार्यक्रम के द्वारा नहीं पहुँच सकते थे।

तुम्हें उन सभी समस्याओं को जानने का कुतूहल होता होगा। किन्तु इस पत्र मे और अधिक कितना लिखूं ? धीरे-धीरे सभी पर लिखने की कोशिश करूँगा। आज छुट्टी ले रहा हूँ। हमारे दो साथी आज़मगढ को ट्रासफर हो रहे हैं, उनकी विदाई मे शामिल होना है उनमे से एक हमारे प्रान्तपति श्री पालीवाल जी हैं। उनके जाने से हम लोगों की मौज मे कुछ अन्तर आ जायगा। वे रात-दिन अपने चुटकुलों से लोगों को खूब हँसाया करते थे। किन्तु जेल-जीवन में तो यह आना-जाना लगा ही रहेगा। इसलिए सन्तोष करना ही ठीक है।

आशा है, तुम सभी लोग अच्छी तरह होगे। सबको मेरा नमस्कार

कहना। मीतुमा को प्यार। उससे कह देना कि उसका लम्बा-चौडा पत्र मुझे मिला है। किन्तु वह इतना बड़ा है कि उसका क्या जवाब दे, अब तक सोच नहीं सका। सोच कर लिखूंगा। नमस्कार।

---

[३५]

ताल्लुकेदारों का अत्याचार

१८—१०—४१

कल पत्र लिखते-लिखते अपने साथियों को विदा करने चला गया था। कल मै लिख रहा था कि चुनाव के पश्चात् हम लोगों का मुख्य काम ग्रामीण झगड़ों का फैसला करना था। इससे तुम्हें आश्चर्य होता होगा और तुम समझती होगी कि हम अपने प्रधान लक्ष्य से बहक गये। जिस समय मैने अपना कार्य-क्षेत्र चार-पाच गावों तक विस्तृत किया था उसी समय बापू ने हमे बुला कर समझाया था। तुम भी सेवाग्राम मे रहती हो; इससे सम्भव है कि इतने गावों मे फैल कर काम करने को अच्छा न समझो और साथ ही कहीं यह न समझ बैठो कि हमारी ग्राम-सेवा का कार्य समाप्त हो गया। पर ऐसा नहीं। हम लोग अपने उस छोटे से क्षेत्र मे पूर्ववत् कार्य करते रहे। कार्यकर्त्ता शिक्षण का कार्य भी पूर्ववत् चलता रहा। किन्तु हमने ग्राम-सेवा के शेप कार्यां का विस्तार नही किया। प्रोग्राम पूर्ववत् परिमित ही रहा। ग्रामीण झगड़ों के निबटारे के लिए एक अलग विभाग अवश्य चालू किया गया। इस विभाग में आश्रम के और नौजवान भी सहायक बन गये थे। पिछली बार जब आश्रम मे आई थी उस समय विभिन्न कार्यों की देखभाल करते हुए तुमने हरदेव ब्रह्मचारी को देखा था। ग्राम-सेवा के लिए गुरुकुल छोड़ कर वह इन्हीं दिनो आश्रम मे आये थे। हमने उन्ही की ज़िम्मेदारी पर बाहरी कार्य छोड़ दिया था। वे केवल दो-तीन साथियों की सहायता से इन कार्यों को

ठीक कर लेते थे। मै और कर्णा भाई आवश्यकता पड़ने पर उनकी सहायता के लिए गाँव में चले जाया करते थे।

थोड़े ही दिनों मे हरदेव ब्रह्मचारी अपने उच्च चरित्र, सेवा-भावना, सरल स्वभाव और अथक परिश्रम के कारण गावो मे सर्व-प्रिय बन गये। इसलिए उनके लिए झगड़ों का फैसला करना भी सरल हो गया था। आश्रम के विद्यार्थियों पर भी उनके त्याग और आचरण का काफ़ी प्रभाव पड़ता था। इसलिए रणीवा के क्षेत्र मे उनका एक विशेष व्यक्तित्व कायम हो गया था। जेल चले आने पर जब मै ग्राम-सेवा-सम्बन्धी भविष्य की योजनाओं पर विचार करता था तो मेरे मस्तिष्क मे ब्रह्मचारी का भरोसा सर्वदा बना रहता था। पर क्या बताऊँ? मनुष्य सोचता कुछ और है किन्तु परमात्मा करता कुछ और है। अभी पाच-सात दिन हुए मुझको समाचार मिला कि ब्रह्मचारी संसार छोड़ कर चल बसे। ब्रह्मचारी ने थोड़े ही दिनों से पानी मे तैरना सीखा था और अपने दूसरे साथियों के साथ तालाब मे तैरने की प्रतियोगिता कर रहे थे। इस प्रतियोगिता में ही वह थक कर डूब गये। लोगों ने उन्हे बाहर निकाला किन्तु बचा न सके और वह हम सब लोगों को छोड़ कर चल बसे। मुझे रह-रहकर उनकी बातें याद आ रही है। तुम्हें यह पत्र लिखते समय भी अकस्मात् ही उनका प्रसग आ गया है। सम्भव है, उस प्रकार का योग्य अथवा उससे भी योग्य कार्यकर्ता भविष्य मे हमे मिल जाय, किन्तु उस प्रकार का निर्मल चरित्र और वैसी निर्भीकता हमे कहाँ से प्राप्त हो सकेगी? उस तरह का सदा जीवन और उच्च विचार रखने वाला साथी हमें कठिनता से ही प्राप्त हो सकेगा। ईश्वर की माया अपार है।

हाँ, मै तुम्हें आश्रम के विस्तृत क्षेत्र मे काम करने के विषय में लिख रहा था। सम्भव है, तुम लोगों को हमारा इस प्रकार के कार्य हाथ मे लेना अनुचित प्रतीत होता होगा किन्तु यदि तुम्हें अवध की परिस्थिति का कुछ ज्ञान हो जायगा, तो हमारे काम के लिए हमें

दोषी नहो बनाओगी। यों तो मै अवध की ताल्लुकेदारी प्रथा की बुराइयों के विषय मे तुम्हारे कई पत्रो मे कुछ उल्लेख कर चुका हूँ; किन्तु इनके विषय मे कुछ और भी लिख देना सम्भवतः व्यर्थ नहीं जायगा।

जब मै भारत की ग्रामीण पचायती प्रथा के वर्णन पुस्तकों मे पढ़ता हूँ और उस समाज से आज की ज़मींदारी प्रथा के समाज की तुलना करता हूँ तो व्यग्र हो उठता हूँ। उन दिनों समाज मे साम्यवादी व्यवस्था कायम थी; ड्यूटी बॅटी थी; श्रेणी-भेद का निर्माण कर्मभेद की ही दृष्टि से हुआ था, शोषण की दृष्टि से नही। कालान्तर मे यह ज़मींदारी प्रथा कहाँ से और किस प्रकार आ गई इसे तुम्हारे सदृश इतिहास-विशारद ही बता सकते हैं। मैने इतिहास का इतना विस्तृत अध्ययन नही किया है, इसलिए मै इसका ठीक-ठीक अनुमान नहीं कर सकता। यह प्रथा चाहे जब प्रारम्भ हुई हो किन्तु इतना तो निश्चित ही है कि यह बहुत बाद की चीज़ है और सम्भवतः विदेशी शासन के बाद ही इस ज़मीदारी और जागीरदारी का जन्म हुआ है। प्रारम्भ मे जब यह स्थापित हुई तो शताब्दियों के परम्परागत साम्यवादी संस्कार के कारण ज़मीदार और किसानो के बीच आपस मे प्रेम और सहकारिता का ही सम्बन्ध रहा किन्तु युरोपीय संस्कृति और सभ्यता के साथ-साथ वहा के सामन्तवादी स्वार्थ और शोषण की प्रवृत्ति भी हमारे देश मे पहुँच गई। बृटिश साम्राज्यवादी स्वार्थ ने भी इसे प्रोत्साहन हो दिया। उनको तो किसी ऐसी श्रेणी की आवश्यकता थी ही जिस के द्वारा वह जनता का शोषण जारी रख सकते और मुल्क पर प्रभुत्व स्थिर रख सकने मे समर्थ हो सकते। इसलिए उन्होंने एक ओर तो जमींदारो को शोषण और प्रजा-पीड़न का पाठ पढाया और दूसरी ओर कानून बना कर इनका सरक्षण किया। जमींदारी प्रथा के सम्बन्ध मे अधिक लिख कर इस पत्र को बढ़ाना नही चाहता। इसका वृत्तान्त कौन नहीं जानता; किन्तु

ज़मींदारी प्रथा

अवध की ताल्लुकेदारी-प्रथा तो एक विचित्र वस्तु है। इन ताल्लुकेदारों के लिए हर प्रकार के शोषण और हर प्रकार के अत्याचार उनके वाजिब हकूक हैं। उनकी जबान से जो कुछ निकल जाय वही कानून है। उसके विरुद्ध कोई कुछ नहीं कह सकता। क्योंकि सरकारी कर्मचारी भी सर्वदा उन्हीं का साथ देते हैं। किसानों से लगान लेकर कम रक़म की रसीद देना और फिर बकाया लगान का दावा करना, किसी से नज़राना लेकर उसे खेत देना और फिर उसका पट्टा किसी दूसरे के नाम लिख देना, एक साधारण सी बात है। लगान के अतिरिक्त भूसा, पुआल, मोटरावन, हथियावन आदि और विवाह, श्राद्ध तथा बच्चा पैदा होने के अवसर पर एवं प्रत्येक त्यौहार के अवसर पर सलामी वसूल करना उनका साधारण हक़ होता है। इसके अतिरिक्त वे जब जी चाहें किसी भी किसान को पकड़ कर बेगार करा लेते हैं, किसान के खेत बिना जोते-बोये रह जाय किन्तु उनका हल-बैल लेकर अपना खेत जोत लेना उनका परम्परागत हक हो गया है। अगर किसी किसान ने ज़रा भी चूँ की तो उसका खेत खुदवा देना, उसकी फसल कटवा लेना और उसको पकड़ कर पिटवा देना भी बहुत मामूली बात है। इनके अत्याचार की सीमा यहां तक पहुँच गई है कि किसान के लिए अपनी बहू-बेटियों की इज्ज़त क़ायम रखना मुश्किल हो जाता है। ज़मीदार की अभिलाषा के विरुद्ध कोई कुछ कहने का साहस नही कर सकता। ऐसी परिस्थिति मे जब अवध के किसानों ने ताल्लुकेदारी के विरुद्ध कांग्रेस को वोट दिया तो तुम अनुमान कर सकती हो कि इन ताल्लुकेदारों के क्रोध का पारा कहा तक पहुँच गया होगा। उस समय वे क्रोध से उन्मत्त हो उठे थे और उनके पास किसानों पर अत्याचार करने के जितने भी साधन थे सबको बेलगाम खुला छोड़ दिया था। इन सब कारणों से कोई भी दिन ऐसा नहीं जाता था जिस दिन पांच-सात मुक़दमे हमारे पास न आते रहे हों।

और यह ताल्लुकेदारी!

मै तुम्हे लिख चुका हूँ कि किसानो ने वहुत साहस करके इन अत्याचारी ताल्लुकेदारों के विरुद्ध कांग्रेस को वोट दिया था। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि वे साहसी हो गये थे। वह तो उनकी एक क्षणिक उमग का काम था। मरता क्या नहीं करता? वलिदान का जीव भी गर्दन छुड़ाने के लिए एक वार जोर से छटपटाता है।

सदियों के अत्याचार से दबे हुए किसानो ने जब ताल्लुकेदारो की यह नवीन उग्र मूर्ति देखी तो वे घवड़ा से गये। जिससे उनकी अवस्था और भी बुरी हो गई क्योंकि जमीदार के नौकरों का घवराये हुए असामियों को सताना अत्यन्त सरल हो गया। घबराहट के कारण किसान कितने साहस-हीन हो गये थे, एकाध उदाहरणो से ही तुम इसका अनुमान कर सकोगी।

एक दिन की बात है, प्रातःकाल लगभग ६-१० बजे थे। मैं स्नान करके अख़बार पढ रहा था। इतने में ही दो किसान मेरे पास आकर फूट-फूट कर रोने लगे। रोते-रोते उन्होंने बताया कि ज़िलेदार हमारे गाव के लोगों को अकारण पीट रहा है। मैंने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा कि तुम लोग चलो, मै अभी आता हूँ।

किसानों की साहस-हीनता के कुछ उदाहरण

वह गाव आश्रम से करीव आठ मील की दूरी पर था। इसलिए मै खाना खाकर साइकिल से उस गाव के लिए चल पड़ा। रास्ते मे समरसिंहपुर नाम का एक गाव पड़ता था जिसमें हमारे द्वारा वनाई गई पचायत के एक सरपच रहते थे। मै उन्हें भी साथ लेकर घटना-स्थल पर पहुँचा। किन्तु वहा जाकर एक अजीव दृश्य देखने को मिला। गाव मे कोई व्यक्ति नही दिखाई देता था, केवल दो-तीन बूढी स्त्रिया अपने-अपने वरामदे में बैठी नजर आती थीं। उनसे पूछकर भी हम यह नहीं जान सके कि उस गाव के आदमी कहा चले गये। दीर्घकाल तक हम इस प्रतीक्षा और खोज मे लगे रहे कि किसी से भेट हो जाय, किन्तु पर्याप्त समय वीत जाने पर भी कोई दिखाई नहीं पड़ा। आख़िर-

कार निराश होकर हमे वापस लौट आना पड़ा। समरसिंहपुर के सरपञ्च श्री मथुरासिंह उस गाँव के लोगों पर बहुत क्रोधित होकर वापस आये। रास्ते में एक दूसरे गाँव के लोगों से मालूम हुआ कि हमे आते देखकर वे छिप गये थे। क्योंकि उनमें इतना साहस नहीं था कि गाँव में बैठ कर ज़िलेदार की निन्दा करसके। जो व्यक्ति शिकायत करता उसकी सूचना ज़िलेदार के पास अवश्य पहुँच जाती और ज़िलेदार उसका गाँव मे रहना असम्भव कर देता।

ये बातें सुन कर किसानों की अवस्था पर विचार करते हुए मैं आश्रम वापस आया। किसान ताल्लुकेदार से कहाँ तक घबराता है, इसका एक उदाहरण और दे देना अधिक नहीं समझा जायगा।

एक दिन दोपहर के समय आश्रम से एक मील दूर पिछौरा गाँव से एक दो औरतें और दो-तीन पुरुष दौड़ते हुए आये और कहने लगे कि ज़मींदार के आदमी हमारे खेत बलात् जोत रहे हैं। उस समय आश्रम पर कई भाई उपस्थित थे। उन्होंने आश्रम के दो भाइयों को उन किसानों के साथ दिया। किसान आगे-आगे और हमारे आश्रमीय भाई उनके पीछे-पीछे जा रहे थे। रास्ते मे एक खेत के पास से ताल्लुकेदारों के सिपाही उन किसानों पर टूट पड़े। जब हमारे आश्रमीय कार्यकर्ता भी नज़दीक पहुँचे तो एक लाठी इन पर भी पड़ी। किन्तु तत्काल ही वे आश्रम के लोगों को पहचान कर भाग गये। हमारे कार्यकर्ता गाँव मे गये। उन्होंने गाँव वालो को साहस दिलाया कि जमीदार के आदमी ज़बर्दस्ती खेत न जोतने पावें। फिर जो आदमी घायल हुए थे उन्हें साथ लेकर थाने मे रिपोर्ट करने चल दिये। उनके चले जाने पर ताल्लुकेदार के सिपाहियो ने गाँव मे घुस-घुस कर गाँव वालों को बहुत मारा। कुछ लोगों को तो मारते-मारते बेहोश कर दिया। और कहते गये कि देखेगे कि अब किस तरह आश्रम में जाते हो! दूसरे दिन प्रातःकाल मै और कर्ण भाई उस गाँव में तहक़ीकात करने पहुँचे। रात के मारे गये लोगों को भी थाने

मे रिपोर्ट देने के लिए भेज दिया। लोग बहुत डरे हुए थे, किन्तु साहस दिलाने पर सब लोग उन सिपाहियों के विरुद्ध गवाही देने को तैयार हो गये। मैंने इस मामले की एक लिखित रिपोर्ट ज़िले के डिप्टी कमिश्नर के पास भेज दी। और उनसे अनुरोध किया कि इस सम्बन्ध मे पूर्ण जाच की जाय। उनसे स्वयं भी जाकर मिला। डिप्टी कमिश्नर और पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट ने आकर स्वय जाच भी की। गाव वालो ने भी साहस के साथ सच्ची-सच्ची घटना कह सुनाई। ज़िलाधीश ने तहकीकात करके उन सिपाहियों पर अभियोग भी चालू कर दिया।

ताल्लुकेदार के आदमी क्यों और कैसे दख़ल कर रहे थे, वह भी एक सुनने योग्य कहानी है। मैं तुम्हें पिछले पत्र मे लिख चुका हूँ कि खेत किसी अन्य को देकर और उस पर नाम किसी अन्य का चढ़वा देना उनका एक साधारण काम था। इसी प्रकार उस गाव के सैकड़ों बीघे खेत, जिन्हें गाव के किसान पचास-पचास साठ-साठ साल से जोते हुए थे, पटवारी के रजिस्टर मे ज़मीदार के नाम से सीर दर्ज थे।

किसानों के खेत कैसे छीने जाते हैं?

ताल्लुकेदार से तो प्रायः सभी अधिकारी मिले ही रहते हैं, इसलिए सर्वदा उसके आदेशानुसार ही पटवारी के यहाँ इन्दराज होता रहा। बन्दोबस्त के समय बन्दोबस्त के अफ़सरों ने भी उस पर ध्यान नहीं दिया; क्योंकि आख़िर वे भी तो ज़मीदार के दोस्त बन कर उनसे इच्छानुसार पूजा प्राप्त करते हैं। ऐसी परिस्थिति में जब ज़मींदार किसी भी ऐसे खेत के लिए यह कह दे कि यह मेरा खेत है तो किसानों के लिए उसे अपना सिद्ध करना कठिन हो जाता है। हाँ, गवाहों द्वारा कब्जा अवश्य ही सिद्ध किया जा सकता है; किन्तु इस प्रकार के जालिम और सर्वशक्तिमान ताल्लुकेदारों के विरोध में साक्षी देने का साहस कौन कर सकता है? इस प्रकार झूठी सीर लिखी हुई जमीन छीन कर वह गांव पर अत्याचार करना चाहता था किन्तु जब यह अभियोग डिप्टी कमिश्नर की कचहरी मे चला गया तो

उसे कुछ परीशानी अवश्य हुई। पर तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि अन्त मे गाव वाले उस ताल्लुकेदार के दबाव से इतना घबड़ा गये कि सभी के सभी डिप्टी कमिश्नर के यहा जाकर उसके अनुकूल गवाही दे आये। कालान्तर मे मुझे मालूम हुआ कि उन पर दबाव डालने मे पुलिस ने भी जमींदार का साथ दिया था।

इस प्रकार मामला समाप्त होजाने पर भी ज़मीदार का क्रोध शान्त नही हुआ। थोड़े ही दिनों के भीतर उस गाव के एक आदमी का कत्ल करा दिया गया। यह आदमी वही था जिसने ताल्लुकेदार के विरुद्ध सर्वप्रथम आवाज़ उठाई थी। इस प्रकार की हत्या-सम्बन्धी घटनाएँ उस क्षेत्र के लिए वहुत साधारण बातें हैं। पुलिस और अधिकारी भी कुछ कर नही पाते; अथवा यों कहा जा सकता है कि कुछ नहीं करते।

बृटिश अधिकारी समय-समय पर भारतीय जनता को सुख-शान्ति प्रदान करने की डींग हाँकते हैं। लिखित पुस्तकों द्वारा यह प्रचार किया जाता है कि उनकी राज्य-व्यवस्था इतनी सुन्दर है कि भारतवर्ष मे चोर लुटेरे और डाकुओं का भय नहीं रह गया। किन्तु जब हम देखते हैं कि ये साम्राज्यशाही लूट के दलाल गाँव के ग़रीब किसानों का डाका, लूट और खून आदि से किस प्रकार संर-व्यवस्थित लूट की रक्षा कर रहे हैं तो स्पष्ट प्रकट होता है कि वर्तमान प्रणाली शासन ने प्राचीन-काल के साँझ-सवेरे होने वाले डाका और लूट के स्थान पर इनका व्यवस्थित रूप से इस्तमरारी बन्दोबस्त कर रक्खा है। अगर ये एक-आध ऐसी घटनाओं को कहीं रोकते भी हैं तो इसलिए नही कि वे हिन्दुस्तान की गरीब जनता को आराम पहुँचाना चाहते हैं बल्कि इसलिए कि वे नहीं चाहते कि उनके नियत किये गये एजेण्टों के अतिरिक्त दूसरा कोई उन्हें लूटे।

गाँव के केवल वे ही किसान नहीं सताये जाते जो ताल्लुकेदारों की

भूमि मे रहते हैं। छोटे-छोटे ज़मीदार, जिन्होंने निर्वाचन मे कांग्रेस का साथ नहीं दिया था, ताल्लुकेदारों से भी अधिक पागल हो गये थे। ताल्लुकेदार तो किसानो से दूर रहते हैं। किसानों की अवज्ञा उनके सामने से नहीं गुजरती, किन्तु छोटे जमींदार तो सर्वदा उनके सिर पर सवार रहते हैं और समय पर डंडा लेकर पहुँच जाते हैं। शायद इसी दृष्टि से किसानो मे एक कहावत प्रचलित है "घोड़चढ़ा ठाकुर अच्छा, मेड़चढा नही।" छोटे ज़मीदार न तो किसानों को पट्टा ही देते हैं और न कभी लगान की रसीद ही। इसलिए उनके किसान सोलहों आने उनकी अधीनता मे रहते हैं।

'घोड़चढ़ा ठाकुर अच्छा, मेड़चढा नही'

इस प्रकार चुनाव के पश्चात् ताल्लुकेदारों और छोटे जमींदारो का अत्याचार इतना बढ गया था कि हमारी सम्पूर्ण शक्ति प्रायः उसी के निराकरण मे लग जाती थी। अब तो तुम स्वयं महसूस कर लोगी कि हम लोग क्यों इतने विस्तृत क्षेत्र के झगडों मे पड़े। उन दिनों ग्रामीण जनता पर इतनी तूफ़ानी आफत आ गई थी कि शिक्षा और सफ़ाई आदि की बात करना भी कठिन था। वास्तव मे मुझे तो यह विश्वास हो गया है कि ग्राम-सेवक के एक मुख्य और विशेष कार्यक्रम लेकर चलते हुए भी गाँव की स्थानीय और आकस्मिक घटनाओं के प्रति उदासीन रहने से काम नहीं चलेगा। यदि वे पारिपार्श्विक परि-स्थितियों के प्रति जाग्रत नही रहेंगे तो अपने मुख्य और निश्चित प्रोग्राम के द्वारा भी सेवा करने मे असफल रहेगे। क्योंकि ग्राम-सेवक के लिए जनता की हर तकलीफ मे साथ रहना परम धर्म है। गाव के लोग उससे यही अपेक्षा भी रखते हैं।

किसानों की कष्ट-गाथा लिखते-लिखते पत्र बहुत लम्बा हो गया। मेरा विचार तो यह था कि सक्षेप मे ही तुम्हे उस समय की परिस्थिति का परिचय दे दूँ। किन्तु इसी थोडे थोडे मे पत्र लम्बा हो गया और मै ख्याल भी नहीं कर पाया।

आज कल जेल मे कुछ चहल-पहल है। इसलिए दो-एक दिन से समय अच्छी तरह कट रहा है। परसों दिवाली है। लोग उसकी तैयारी में लगे हुए हैं। जेल मे लोग इसी प्रकार के त्योहार मना-मना कर अपने जीवन की शुष्कता को दूर कर लिया करते हैं। अभी अभी रणीवा से समाचार मिला है कि सरकारी सहायता कुछ कम हो जाने के कारण वहाँ का काम कुछ घटा देना पड़ा है। इसी के साथ तुम्हारी बुनियादी शिक्षा का प्रयोग भी बन्द हो गया होगा। आशा है, तुम सभी लोग स्वस्थ होगे। सबको नमस्कार।

---

[३६]

किसानों और मज़दूरों की बेबसी

१६—१०—४१

मैने कल के पत्र में इस बात पर थोड़ा सा प्रकाश डाला था कि चुनाव मे हारने के पश्चात् ताल्लुकेदारों और जमींदारों ने किसानों को किस प्रकार तंग करना प्रारम्भ किया था। उनके अत्याचार का एक बहुत लम्बा चौड़ा कथानक है। अगर उसका पूरा-पूरा विवरण लिखा जाय तो एक बहुत बड़ा इतिहास बन जायगा और उस इतिहास की करुण कहानी संसार के किसी भी अत्याचार के इतिहास से अधिक रोमाञ्चकारी होगी। अवध के किसानो की हालत तो योंही बहुत दर्दनाक है। पहले पत्र मे मैने इस सम्बन्ध मे तुम्हे कुछ लिखने का वादा किया था। आज मै उसके सम्बन्ध मे कुछ लिखने की कोशिश कर रहा हूँ। इससे तुम यह अनुमान कर सकोगी कि अवध के किसान इतना अधिक दबे हुए क्यों हैं?

शायद ही कोई ऐसा पढ़ा-लिखा मनुष्य होगा जो आजकल के ज़मींदारों के किसानों पर अत्याचार करने का हाल कुछ न कुछ न जानता हो। किन्तु अवध के किसानों को मौरूसी हक़ नहीं मिलता,

जिससे वे उन अत्याचारों के विरुद्ध चूँ तक नहीं कर सकते। कानून का निर्माण कुछ इस ढंग मे हुआ है कि अगर जमींदार कानून के कुछ विरुद्ध भी ज्यादती करे तो किसान उसे सहने के लिए मजबूर हैं

कानूनी त्रुटियाँ

किसान ताल्लुकेदार को नजराना देकर जमीन का पट्टा लेता है किन्तु उस पट्टे की मीयाद केवल उसी के जीवन तक समाप्त हो जाती है और उसकी मृत्यु के पाँच वर्ष पश्चात् जमीदार उसके कुटुम्बियों को वेदखल कर देता है। तथा नये सिरे से नज़राना लेकर उसका नया पट्टा लिखता है। यदि उसके बाल-बच्चे दूसरे लोगों से अधिक नज़राना देने की व्यवस्था न कर सके, तो उनका खेत औरों के हाथ मे चला जाता है और वे सदा के लिए वेदखल हो जाते हैं। जीवित रहने के एक मात्र साधन अपने खेतों को बचाने के लिए लोग अधिक से अधिक व्याज दर पर भी महाजन से कर्ज़ लेते हैं और इस प्रकार पिता की मृत्यु के पश्चात् ही पुत्र के जीवन पर कर्ज़ के बोझ का दबाव आ पड़ता है। इन ग्रामीणों के कर्ज़ का हिसाब भी बहुत विस्तृत है। उसकी कहानी मैं किसी दूसरे दिन लिखूंगा। आज तो ताल्लुकेदारों के कारण किसानों के दुःख के ही विषय में लिख कर पत्र समाप्त करने का विचार है।

इस तरह लम्बा नज़राना देकर प्राप्त की गई जमीन के लिए भी यह कोई आवश्यक नहीं कि किसान अपने जीवन भर उसका उपयोग कर सकें क्योंकि जमीदार उन्हें कई अन्य तरीकों से जब चाहे तब वेदखल कर सकता है। अगर किसान किसी कारण-वश अपने खेत का कोई भाग नहीं जोत सका और उसे किसी अन्य को जोतने के लिए दे दिया तो जमींदार उसे सारी ज़मीन से

वेदख़ली के गोरखधन्धे

वेदखल कर देता है। लगान न देने के अपराध मे वेदख़ली हो जाती है। यदि चार-छः आने ही बाकी रह जायें तब भी किसान अपनी सारी जमीन से वेदखल हो जाता है। ताल्लुकेदार के कर्मचारी किसानों को हर प्रकार

से अपने पजे में रखने के लिए उनसे पूरा लगान लेकर भी उन्हे पूरी वसूली की रसीद नही देते। सर्वदा कुछ न कुछ बकाया तो लगाये ही रहते हैं। यदि किसी समय किसी पर भृकुटी टेढी हुई तो उसी बकाया रजिस्टर के आधार पर दावा कर देते हैं। प्रायः ऐसा भी होता है कि ज़मीदार के कर्मचारी किसानों को तंग करने की नीयत से फस्ल का मौसम न रहने पर भी लगान माग बैठते हैं और यदि दो-एक दिन के भीतर उन्हें लगान न मिला तो दावा कर बैठते हैं। इस प्रकार यदि किसान कही से क़र्ज़ लेकर अदालत मे हाजिर भी हुआ तो कम से कम अदालत तक आने-जाने का व्यय-भार तो उसे उठाना ही पड़ता है और उसे लगान से कई गुने के चक्कर मे पड़ ही जाना होता है। किसानों को क़र्ज़ देने वाले भी या तो ज़मींदार के एजेण्ट ही होते हैं या ऐसे व्यक्ति होते हैं जो ज़मींदार से मिले जुले रहते हैं। वे एक ओर से दबाते हैं और दूसरी ओर कर्जा लेने के लिए बाध्य करते हैं। इस तरह वे किसानों से दोहरा फायदा उठाते हैं।

बेदख़ली के उपर्युक्त अधिकार किसानों से जो चाहे सब कराने के लिए काफी हैं। बेदख़ली की पिस्तौल सर्वदा उनके सर पर तनी रहती है। यद्यपि नजराना लेने का कोई क़ानूनी हक नहीं है, फिर भी उन्हें देना ही पड़ता है। साधारणतया प्रति बीघे पचास-साठ रुपये नजराने देने पड़ते हैं जो लगभग ज़मीन के दाम के बराबर ही होता है। जिस समय कांग्रेस की हुकूमत चल रही थी उस समय उन लोगों मे इस विषय पर विवाद चल रहा था कि यदि ज़मींदारों से ज़मीन ले ली जाती है तो उन्हे मुआवज़ा देना चाहिए अथवा नहीं। मेरी समझ मे नहीं आता कि अब इस विषय पर विवाद करने की आवश्यकता ही क्या रह गई है? नज़राना के रूप में उन्होंने अब तब इतना अधिक रुपया प्राप्त कर लिया है जो ज़मीन के वास्तविक मूल्य से कई गुना हो सकता है। इसके अतिरिक्त आये दिन वे किसानों

जमींदारों को मुआवज़ा देना अनुचित है

से जो तरह-तरह की रकमे लेते रहते हैं उसका तो हिसाब ही अलग है।

प्रत्येक फस्ल के समय किसानो से भूसा और पयाल वसूल करना एक साधारण बात है। इसके अतिरिक्त यदि ज़मीदार के घर मे किसी उत्सव-अनुष्ठान का आयोजन हुआ तो उसका सम्पूर्ण भार किसानो के ही सिर पर पड़ता है, ताल्लुकेदार के घर यदि कोई सरकारी अफसर मेहमान के रूप मे आ गया तो उसकी मेहमानी और उसके ऐश-आराम के प्रबन्ध का सम्पूर्ण व्यय इन्ही के मत्थे मढा जाता है। सरकारी अधिकारी भी यह सब कुछ देखते और समझते हुए भी कुछ बोलते नहीं, प्रत्युत उलटे वे ज़मींदारों को इस कार्य के लिए और प्रोत्साहन देते हैं। ज़मींदार मोटर या हाथी खरीदता है तो उसका मूल्य किसानों से ही वसूल किया जाता है। उसकी सीर के खेत जोतने और बोने के लिए किसान अपने हल-बैल के साथ ही बेगार में पकड़ लिये जाते हैं। उनके निजी खेत बिना जोते-बोये भले ही रह जायँ किन्तु ज़मींदार की बेगार तो उन्हे करनी ही होगी। इन सारे पाशविक अत्याचारों को किसान इसी भय से चुपचाप सहन कर लेते हैं कि कहीं ऐसा न हो कि ज़मीदार नाराज होकर उनके जीवन यापन के एक मात्र साधन खेतो से बेदख़ल कर दे। अन्त मे उनकी यह बेबसी इस दर्जे तक पहुँच जाती है कि वे ज़मीदार और उसके कर्मचारियों की माग के विरुद्ध अपनी बहू-बेटियों की प्रतिष्ठा बचा सकने मे असमर्थ हो जाते हैं और उनकी मागो को दृढता-पूर्वक अस्वीकार करने का साहस उनमे नही रह जाता।

मैने पिछले पत्र में तुम्हे लिखा है कि अवध के किसानों ने ताल्लुकेदारो के विरुद्ध वोट दिया था। उनका यह कार्य उस छलाग के समान था जो उन लोगो ने अपनी गहरी परीशानी से घबरा कर छटपटाहट मे मोक्ष पाने के लिए मारी थी। इसमे किसी प्रकार का स्थायी साहस नहीं था। इन उदाहरणों से तुम्हें अनुमान करने मे सहायता

मिलेगी कि निर्वाचन के पश्चात् गाव का किसान-समाज ताल्लुकेदारों के भीषण अत्याचार से किस प्रकार त्रस्त हो उठा था और क्यों हम लोग अपनी सारी शक्ति से इस समस्या को सुलझाने मे लग गये।

यह बात सत्य है कि काग्रेस-मन्त्रिमण्डल स्थापित हो जाने पर तथा नये विधान के निर्माण के पश्चात् परिस्थिति मे कुछ सुधार अवश्य हुआ है। किन्तु सदियो से ज़मीदारो-द्वारा सताये जाने के कारण उनमे इतना साहस नही रह गया है कि वे अपने सत्व पर अड़ सकें। लगातार की लूट से उनकी आर्थिक विवशता इस सीमा तक पहुँच गई है कि वे ज़मीदार के विरुद्ध अदालत मे जाकर न्याय प्राप्त करने मे असमर्थ है। इसके अतिरिक्त सरकारी अधिकारियों एवं पुलिस के कर्मचारियो से तो ज़मीदारों का रिश्ता-सा ही चलता रहता है। अतएव काग्रेस-द्वारा बनाये गये कानून से किसानों को जो लाभ हुआ वह समुद्र मे एक बूंद के ही तुल्य है। इस प्रकार अवध प्रान्त के ग्राम-सेवक के लिए ज़मीदार और किसान की समस्या आज भी उसी तरह मौजूद है। नये कानून के बन जाने पर भी उनकी अवस्था ठीक उसी प्रकार की है जिस प्रकार ग़रीब ज़मीदार को अपनी ज़मीन की डिग्री अदालत से मिल गई हो, किन्तु अपनी गरीबी और बेबसी के कारण वह उस पर अधिकार न कर पाता हो।

कानून की असमर्थता

ऊपर मैने जो कुछ लिखा है वह किसानो की अवस्था का केवल वर्णन मात्र है। अब प्रधान प्रश्न यह है कि ग्राम-सेवक किसानों की सहायता के लिए किस प्रकार कार्य करे। क्योंकि यह समस्या इतनी नाजुक है (विशेषतया जब राष्ट्र की शक्ति हमारे हाथ में नहीं है) कि इसमे जरा भी असावधानी हुई अथवा जरा भी व्यतिक्रम हुआ तो हालत सुधरने के बजाय बिगड़ जा सकती है। इसलिए अतीत के तीन वर्ष तक हमे बहुत फूक-फूंक कर कदम रखना पड़ा। इस विषय में अपना प्रयोग और अपनी राय फिर कभी लिख भेजूंगा। आज उन

मजदूरो का कुछ हाल सुनो जो किसानो के साथ गावो मे रहते है।

गाव में मजदूरी करने वाले लोग प्रायः चमार, केवट और पासी आदि जाति के होते हैं। इनके अतिरिक्त कुर्मी, अहीर और कुम्हार आदि द्विजेतर जाति के लोग, जिनके पास अपना खेत बहुत कम है, दूसरों के खेत मे भी मजदूरी कर लेते हैं। साधारणतया गाव के जमीदार मजदूरो को कुछ खेत दे देते हैं जिसके बदले वे या तो लगान लेते है अथवा मजदूरी करा लेते हैं। जो लोग मजदूरी कराते हैं वे मजदूरी का कोई हिसाब भी नही रखते। प्रायः दस से बारह घटे तक मजदूरो को खेत मे काम करना पड़ता है जिसके बदले मे उन्हे सेर डेढ सेर मटर या चना की किस्म का घटिया अनाज दिया जाता है। कही कही सवेरे के समय पाव भर चबैन भी देते है। किन्तु यह रिवाज बहुत कम स्थानो मे पाया जाता है। इस

यह सस्ती मजूरी!

प्रकार हिसाब की दृष्टि से दस-बारह घटे की मजदूरी एक आने या छः पैसे तक पड़ती है। जो बड़े-बड़े अर्थशास्त्र-विशारद चर्खे की कम मजदूरी की आलोचना करते हैं उन्हें यह बात बता देना। यह थोड़ी सी मजदूरी भी मजदूरों को तभी मिलती है जब खेत मे काम करने का समय होता है। अर्थात् यदि साल मे सब मिला कर उन्हे आठ माह काम मिल सके तो उनकी एक वर्ष की औसत आय क्या होगी, यह तुम सरलतापूर्वक जान सकती हो। इसके अतिरिक्त गृहस्थी के छोटे-मोटे काम तो उनसे मुफ्त ही करा लिये जाते हैं। बात करने पर जमीदार जवाब देते हैं कि इन कामों के बदले हम उन्हें काफी सामान देते रहते हैं। आम की फस्ल मे उन्हें काफी आम दिया जाता है, अबेर-सबेर काम पड़ने पर हमारे ही पेड़ों पर से लकड़ी काट कर ले जाते हैं। घर में कोई यज्ञ-भोज होता है तब भी उन्हे कुछ दिया ही जाता है। इत्यादि। किन्तु अगर उसके आदान-प्रदान का ठीक-ठीक हिसाब लगाया जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि मजदूरों को जो कुछ सामान मिलता है, उससे कहीं अधिक मूल्य की

मजदूरी वे जमींदारो को प्रदान कर चुकते हैं। यह तो रही इधर की उचित मजदूरी की व्याख्या; किन्तु अधिकतर जमीदार जिस प्रकार किसानो को सताते और लूटते हैं उसी तरह मजदूरो के साथ भी व्यवहार करते हैं। अनाज, तेल, नमक और तम्बाकू के लेन-देन में अंधेर की सीमा हो जाती है। जब ये चीजे मजदूरो के पास नही रह जाती तो वे अपने ठाकुरो से उधार लेते हैं और जब मजदूरी का जमाना आता है तो मजदूरी मे से कटवा देते हैं। परन्तु काटते समय जमीदार लोग बहुत बढ़ा कर दाम लगाते है। इसी प्रकार जिन मजदूरो के पास कुछ खेती होती है अथवा जो छोटे किसान होते हैं उनसे ये जमीदार साल भर अनाज, घी और तेल आदि लेते रहते हैं। वर्षान्त मे इन चीजो का मूल्य लगान मे या अपने दिये हुए रुपये के सूद में काट देते हैं। किन्तु हिसाब करते समय बड़ी बेरहमी के साथ चीजों का सस्ता से सस्ता मनमाना भाव लगा लेते हैं। इन बातो के अतिरिक्त मजदूरों को मार-पीट कर उनसे अधिक काम करा लेना, उनकी झोपड़ी के आगे-पीछे या छप्पर पर लगी हुई सब्ज़ी, तरकारी और तम्बाकू आदि ज़बर्दस्ती तोड लेना उनके लिए साधारण बातें हैं।

मज़दूरों के पास कमाने का अन्य कोई साधन नहीं है। इसलिए चुपचाप इन अत्याचारों को सहन करने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं। टाँडा मे काम करते समय, चमारों के सम्बन्ध का अपना अनुभव तुम्हें लिख ही चुका हूँ। उसमे मैने यह भी उल्लेख किया है कि अपनी विवशता के कारण वे किस प्रकार अपनी बहू-बेटियों की इज्जत ठाकुरों से बचा नहीं पाते। सम्भवतः ये सम्पूर्ण बातें तुम्हे स्मरण ही होंगी।

हम लोगों ने चुनाव आन्दोलन मे भी भाग लिया था इसके अलावा चुनाव के पश्चात् ग्रामीण झगड़ों मे पड़ने के कारण हमें जमीदार-किसान एवं सभी श्रेणी के लोगों के सम्बन्ध मे गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने का अवसर मिला। यह अध्ययन ग्राम-सेवा की दिशा मे चलने के लिए सर्वदा एक संचित पूँजी की तरह हमारी सहायता करेगा।

आज इतना ही लिख कर विदा लेता हूँ। कल दीवाली है, इसलिए जेल में धूम-धाम काफी रहेगी। अब मै दिवाली के बाद ही कोई पत्र लिख सकूँगा।

मै स्वस्थ हूँ। आज कल यहा का मौसम बहुत सुन्दर हो गया है इसलिए आनन्द भी खूब आता है। आशा है, तुम सभी लोग भली-भाँति होगे। सबको नमस्कार।

---

[३७]

ज़मींदारी प्रथा की समस्या

२१—१०—४१

कल लोगों ने खूब दिवाली मनाई। इसीलिए मै नित्य एक पत्र लिखने का निश्चय करके भी कल कुछ लिख नही सका। दिवाली मे हम लोगों ने अपनी अपनी बैरकों को प्रकाश से खूब सजाया था। इतने प्रकाश का हो जाना इस जेल की दुनिया के लिए बिल्कुल नई बात थी। रात के समय 'कैम्पफायर' की तरह का तमाशा भी हुआ। लोग विचित्र-विचित्र पोशाके पहन कर अपना खेल दिखाते थे। कोई औरत बनकर आता था, कोई मर्द बनता था, कोई अफग़ानिस्तान के पठान का रूप ग्रहण करता था और कोई विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों मे से एक रत्न बन कर पहुँचता था। इस तरह रात भर खूब हो-हल्ला रहा जिससे महीनो की उदासीनता समाप्त हो गई। आज मालूम होता है कि पहले पहल जेल आया हूँ। मन और शरीर खूब ताज़ा हो गया है। इसलिए आज ताजे उत्साह के साथ चिट्ठी भी लिखने बैठा हूँ।

परसों के पत्र मे मैंने तुम्हें यह बताने का वादा किया था किसानों के कष्ट मे सहायता पहुँचाने के लिए हम क्या क्या करते रहे। तुम्हे यह ज्ञात है कि किसान और ज़मीदार के झगड़ों की समस्या सलझाने के

लिए आज कल बहुत से लोग देहात मे जाते हैं किन्तु उनमे प्रायः एकरुखी भावना होती है। मेरे पिछले पत्रो से तुम्हे यह ज्ञात हो गया होगा कि जमीदार किसानो को कितना परीशान करते है। इसलिए ग्राम-सेवक के विचार मे ज़मीदारों के प्रति कटु भावना का होना स्वाभाविक है। जब कोई किसान किसी ज़मींदार के विरुद्ध कोई शिकायत लेकर आता है तो हमारा दिमाग़ तुरन्त किसान के पक्ष और ज़मींदार के विपक्ष में हो जाता है। किन्तु मैने अपने तीन वर्ष के अनुभव मे यह महसूस किया है कि इन अभियोगो में से बहुत से असत्य भी होते हैं। ऐसी स्थिति मे यदि हम किसान की केवल मौखिक बातें सुनकर ज़मींदार के विरुद्ध अपनी भावना बना लेते हैं तो हम किसी पक्ष के प्रति उचित न्याय नही कर सकते। मैने अनुभव किया है कि ९० प्रति शत ग्राम-सेवक यह भूल कर बैठते हैं। इस बात के बहुत से उदाहरण दिये जा सकते है। अनेक उदाहरण तो मुझे स्मरण भी नही हैं। क्योंकि कालान्तर मे इस प्रकार के प्रायः सभी मामले कर्ण भाई और ब्रह्मचारी ही तय कर लिया करते थे। फिर भी मै अपने सामने घटित हुई ऐसी दो-एक घटनाओं का उल्लेख कर रहा हूँ जिनसे तुम्हें यह पता चल जायगा कि किसानों के इस प्रकार के असत्य मामले भी हमारे सामने आते थे। एक दिन मै खाना खाने के बाद चर्खा चला रहा था। भीटी के पास का एक किसान दौड़ा हुआ आया और एक पैर पर खड़ा होकर रोने लगा। सान्त्वना देने पर वह कुछ शान्त होकर कहने लगा—"भइया, भीटी के सिपाही के मारा हम रहे नाहीं पाइत। वे हमका मारत हैं और कहत है कि तुहे हम नाही रहे देव। जिनका वोट दिये हो, उन्हीं के खेत जाकर जोतो और उन ही की ज़मीन पर बसो।" उस समय आश्रम पर कर्ण भाई या ब्रह्मचारी कोई भी नहीं थे। मैने उसका और उसके गाँव का नाम लिख लिया और कह दिया कि जाओ मै किसी को भेजूँगा। वह मेरा पैर पकड़ कर रोने लगा

किसानों द्वारा असत्य आरोप

और कहने लगा—"अभी चलौ हमरे घर भर का निकाल दीहिस है और हमरे रहे के कौनों ठेकान नाहीं वाय और बिना तुहरे वह केहू दूसरे के मान कै नाहीं वाय।" उसकी करुण कहानी सुनकर मैंने उससे कहा कि तुम चलो हम अभी आते हैं। उसके जाने के लगभग आध घण्टे पश्चात् मै साइकिल से उसके घर पहुँचा। तब तक वह अपने घर नही पहुँचा था। रास्ते मे भी मैने उसे कहीं नहीं देखा था किन्तु उस के घर की अवस्था देख कर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। घर वालो मे बिल्कुल शान्ति विराज रही थी। यह नही मालूम होता था कि उन लोगो पर किसी प्रकार की आपत्ति आई हुई है। एक स्त्री शान्ति पूर्वक बैठ कर चर्खा कात रही थी। बच्चे इधर-उधर खेल रहे थे। मैंने उसी स्त्री से उस मनुष्य के सम्बन्ध मे पूछा। उसने उत्तर दिया कि वह तो आश्रम की ही ओर गये हुए हैं और अब तक घर वापस नही आये। मै वही पर बैठ गया और उस स्त्री से बात-चीत करने लगा। जब मैंने उससे पूछा कि आश्रम जाने की क्या आवश्यकता आ पडी तो उसने कहा कि 'सिपहिया हम सब का तंग करत है, वही का शिकायत करे गये हैं।' फिर मैंने धीरे-धीरे उसी स्त्री से सारी बाते पूछ लीं। मालूम हुआ कि यह झगड़ा बहुत पुराना है और दोनों मे बहुत दिनों से चलता रहता है। पूछ-ताछ करने पर यह भी मालूम हुआ कि उस किसान के परिवार के किसी भी व्यक्ति का नाम वोटर लिस्ट मे नही था। इन बातो की विशेष व्याख्या करना व्यर्थ सा ही है। निष्कर्ष यही है कि इस झगड़े मे वे दोनो ही अपराधी थे। हाँ, वह सिपाही ज़मींदार का कारिन्दा भी था इसलिए वह अधिक ज्यादती कर सकता था किन्तु मुझसे जिस घटना का उल्लेख किया गया था वह आदि से अन्त तक झूठी थी। इसी प्रकार के अन्य भी सैकड़ों मामले आया करते थे जो जाँच करने पर असत्य सिद्ध होते थे। एक स्थान पर तो किसान ने जमीं-दार के विरुद्ध प्रचार करने के लिए अपना झंडा स्वय अपने हाथों से

तोड़ डाला और हल्ला मचाना शुरू किया कि जमींदार ने मेरा झंडा तुड़वा दिया है। उसके इस प्रचार से देहात मे काफी हल्ला मचा। अन्त में जब कर्ण भाई ने घटनास्थल पर जाकर पता लगाया तो कुछ दूसरा ही विवरण प्राप्त हुआ।

जमींदारों की परस्पर प्रतिद्वंद्विता के कारण उठने वाले झगड़े

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक ही गांव के दो जमींदार आपसी शत्रुता के कारण एक दूसरे की रिआया को अकारण ही उभार दिया करते हैं। अन्त में जब स्थिति अति गम्भीर हो जाती है तो मामला हमारे पास पहुँचता है। ऐसे अभियोगों में एक जमींदार दूसरे की रिआया के प्रति स्वभावतः बहुत अधिक हमदर्दी प्रकट करने लगता है। ऐसे मामलो का सुलझाना अत्यन्त कठिन हो जाता है। क्योंकि अगर हमने किसी तरह से मामला सुलझा भी दिया तथा किसान और जमींदार में किसी तरह समझौता भी करा दिया, तो हमारे चले आने पर वह समझौता स्थिर नहीं रह पाता। क्योंकि गाव मे एक उभारने वाला तो सर्वदा मौजूद ही है। इस प्रकार के लोग कभी कभी पूरे कांग्रेसी बन जाते हैं और हमको उल्टा-सीधा समझाने का भी प्रयत्न करते हैं। कहीं-कहीं तो झगड़ा लगाने वाले जमींदार स्वयं कांग्रेस-जन होते हैं। ऐसे झगड़ों को सुलझाने के प्रयत्न में कभी-कभी हमे किसानों का मामला स्थगित कर इन पट्टीदारी वाले जमींदारों का ही झगड़ा सुलझाना पड़ जाता है।

उपर्युक्त दृष्टान्तों से तुम्हें यह भली-भाँति ज्ञात हो गया होगा कि ग्राम-सेवक को किसान और जमींदार के झगड़े सुलझाने मे बहुत शान्ति और धैर्य्य से काम लेना चाहिए। मौखिक शिकायतें सुनकर तदनुसार अपनी धारणा बना लेना बहुत ग़लत तरीका है। अधिकांश सेवक कार्यकर्ता इस प्रकार के झगड़ो के सम्बन्ध मे जमींदारों के प्रति विरुद्ध धारणा बना कर ही घटना-स्थल पर जाते हैं। उनका ऐसा

करना एक प्रकार से स्वाभाविक भी है; क्योंकि साधारणतया जमीदार किसानों पर इतना अमानुषिक अत्याचार करते हैं कि किसानों-द्वारा उस अत्याचार की करुण-कहानी सुन कर नौजवानों के लिए स्थिर और शान्त रहना असम्भव हो जाता है। किन्तु जिन्हे यह कार्य अपने हाथ मे लेना है, उन्हे तो अपने विचार शान्त और स्थिर बनाने ही होंगे। नहीं तो हम किसानों की दशा सुधारने की अपेक्षा बिगाड़ देंगे और उनके कष्ट का कारण बनेंगे।

हम लोगों को जब कभी इस प्रकार की रिपोर्ट मिलती थी तो पहले हम उसे नोट कर लेते थे। तदनन्तर हम मे से कोई घटना-स्थल पर पहुँच जाता था और जमीदार से भेंट कर तथा उसका भी बयान लेकर दोनों पक्षों मे समझौता कराने का प्रयत्न करता था। अपनी शक्ति भर हम लोग यही प्रयत्न करते थे कि अगर जमींदार थोड़ी भी सुविधा प्रदान करने की स्वीकृति दे तो दोनों पक्षो मे समझौता अवश्य हो जाय। हम लोगों ने कोई ऐसी मर्यादा नहीं निश्चित की थी कि जमीदार के किस सीमा तक झुकने पर समझौता किया जाय। परिस्थिति के अनुसार झगड़े की गम्भीरता और स्थानीय किसानों की संघटन-शक्ति के आधार पर मर्यादा बना ली जाती थी। कभी-कभी तो हमे यही उचित प्रतीत होता था कि हम जमींदारों के अत्याचार को चुप-चाप सहन कर जायँ। क्योंकि स्थानीय किसान आपस मे इतना कलह-पूर्ण व्यवहार रखते थे और इतने बुजदिल थे कि हम लोगों को अशंका होती थी कि यदि इनके द्वारा किसी भी प्रकार का झगड़ा उठाया गया तो ये लोग बेतरह पिस जायँगे और इनका करा-धरा कुछ नहीं हो सकेगा। कभी-कभी हमे कुछ किसानों के झगड़े लेकर कचहरी तक भी पहुँचना पड़ता था। और उनके लिए पैरवी की कुछ सुविधा की भी व्यवस्था करनी पड़ती थी। अवसर आने पर हाकिमों और पुलिस अफसरो से मिल कर भी हम उनके मामले को

हमारी जाँच का तरीका

तय कराने की कोशिश करते थे। कचहरी मे मुकदमे ले जाने पर प्रायः हमें बहुत कटु अनुभव हुआ।

मै तुम्हे पहले ही लिख चुका हूँ कि अवध के किसान नितान्त साधन-हीन अवस्था को प्राप्त हो चुके है। इसलिए वे कचहरी मे जाकर न तो अच्छे वकील कर सकते हैं और न तो गवाहो के ही लिए कुछ व्यय कर सकते हैं। इसके विरुद्ध ज़मींदारो के पास पर्याप्त धन होता है, प्रजा को दवाने की शक्ति होती है तथा पुलिस और अन्य अधिकारी सर्वदा उनका साथ देते हैं। इसलिए यद्यपि किसी अभियोग को प्रारम्भ करते समय गाव के किसानों मे काफी सघटन रहता है पर जैसे-जैसे मामला आगे वढता है और दिन बीतते जाते हैं वैसे-वैसे जमींदार के दलाल दवाव डाल कर, धन का लालच देकर, पुलिस-द्वारा दवाव डलवा कर किसानों के गवाहों को फोड़ लेते हैं और इस प्रकार किसान अपने सच्चे मुकदमे को भी कचहरी मे हार जाता है और कालान्तर मे उसे लेने के देने पड़ जाते है। इसलिए इस प्रकार के कई अनुभवों के पश्चात् हम लोग किसानो के मामले कचहरी मे जाते समय डरते रहते थे और जहा तक सम्भव होता था ऐसी परिस्थिति से वचने का प्रयत्न करते थे। जहा के किसान कुछ संघटित प्रतीत होते थे, वहा यदि ज़मीदार से समझौता नहीं हो पाता

परिस्थिति के अनुसार कार्य

था तो उनके द्वारा छोटा-मोटा क्षणिक सत्याग्रह करा देना ही अधिक लाभ-प्रद होता था। किन्तु जिस स्थान पर किसानों मे अच्छा संघटन नहीं देखते थे, वहा ज़मींदार समझाने बुझाने से जितनी सुविधाएँ दे सकता था, उतने ही पर किसानो को संतोष कर लेने की सलाह देते थे। इसके साथ ही साथ किसानों मे मेल और संघटन पैदा करने का प्रयत्न भी करते थे। कभी-कभी किसानों को अड़ जाने की सलाह भी देते थे और एक मामले मे विजय प्राप्त कर लेने पर भी दूसरे मामले मे कभी कभी दव जाने को ही हितकर समझते थे।

ऐसा हम इसलिए करते थे कि विजय प्राप्त कर लेने पर जो शक्ति आती है, उसको स्थिर रखने के लिए कुछ समय की अपेक्षा होती है। इसके अतिरिक्त किसानों मे इतनी शक्ति नही होती कि वे हर समय ज़मीदार से लड़ते रह सके। ऐसी अवस्था मे वहुत संभव है कुछ लोग थक कर और लालच मे आकर ज़मीदार की ओर जा मिले। इस प्रकार गाँव का संघटन टूट जाता है और उसमे फूट उत्पन्न हो जाती है।

हम लोग उस क्षेत्र मे किसानो के झगड़ों को इस तरह सुलझाने की कोशिश करते थे, जिससे किसानों की न्यूनातिन्यून शक्ति के प्रयोग से काम चल जाय। जहाँतक सम्भव होता था, शान्ति से ही काम लेते थे।

इन उपर्युक्त कार्यों में हम लोग सर्वदा लगे ही रहते थे किन्तु इन्हीं कार्यों के प्रसंग मे रह रह कर हमारे सारे मस्तिष्क मे यह भावना उठा करती थी कि इस जमींदारी-प्रथा की समाज मे क्या आवश्यकता है? सम्भव है, किसी युग-विशेष मे इससे कोई सहूलियत की व्यवस्था होती रही हो अथवा यह शासन-व्यवस्था मे एक मध्यस्थ एजेण्ट की तरह सहायक का काम देती रही हो किंवा समाज-संघटन का सफल नेतृत्व करती रही हो, किन्तु उस समय यह भी रहा होगा कि इन जमींदारो के प्रति भी सामाजिक बन्धन अत्यन्त दृढ और कठोर रहे होंगे और उनके लिए समाज-द्वारा निश्चित किये गये कार्यों की अवहेलना करना अत्यन्त कठिन रहा होगा। किन्तु आज जनता के साथ राष्ट्रीय शासन का सीधा सम्बन्ध हो गया है और सम्पूर्ण व्यवस्था केन्द्रीय शासन-द्वारा ही परिचालित होती है। इस प्रकार की व्यवस्था मे जमींदार का कोई स्थान नही रह गया है। समाज मे कोई भी श्रेणी कर्तव्य-हीन अवस्था मे जड़वत् स्थिर नहीं रह सकती। वह या तो कोई सुकर्म करेगी अथवा कुकर्म ही। ऐसी परिस्थिति मे जिस श्रेणी के लिए

आज जमींदार व्यर्थ है।

अपना कोई कर्तव्य ही नही रह जाता उसके लिए कुकर्म करने लगना स्वाभाविक ही है। इसके अतिरिक्त इन ज़मींदारो की उत्पत्ति विदेशी लूट मे सहायक के रूप में हुई थी इसलिए जब तक इनके भीतर प्राचीन संस्कृति का अवशेष रहा, तब तक इनकी प्रवृत्ति कुछ अच्छी रही। किन्तु धीरे-धीरे बृटिश साम्राज्यवाद की लूट की शिक्षा ने उन्हे सर्वथा जालिम बना दिया और अन्त मे उनका अत्याचार साम्राज्यवादी अत्याचार से भी आगे बढ़ गया। स्वभावतः ऐसा होना ही चाहिए था। शंकरजी के तेज और प्रताप के आश्रय मे रहने वाले उनके शृंगीदल, भूत, भवानी, पिशाच और पिशाचिनिया लोगो को अधिक परीशान करती हैं। सूर्य का ताप शरीर को उतना नही जलाता जितना उसकी किरणो से तपा हुआ लोहा जलाता है। आज का जमींदार देहात की ग़रीब और मजदूर जनता के लिए शोषण और अत्याचार की मशीन बन गया है। हम लोगों ने अत्यन्त शान्ति और धैर्य के साथ तीन-चार वर्ष तक ज़मींदार और किसानों के झगड़ों का निपटारा कराया किन्तु इस प्रयत्न से अन्त मे हमारे मस्तिष्क पर यही प्रभाव पड़ा कि ज़मींदारी-प्रथा समाज के लिए अत्यन्त व्यर्थ और हानि-प्रद संस्था है। जितने ही शीघ्र यह प्रथा समाप्त हो सके उतने ही शीघ्र देहात की समस्याओं को हल करने का मार्ग साफ हो जायगा। मेरी यह धारणा हो गई है कि ग्रामीण-समाज को सुखी और स्वावलम्बी बनाने के लिए यह परमावश्यक है कि ज़मीन की अधिकारी या तो पंचायत हो अथवा स्वय वे व्यक्ति हों जो उत्पादन का कार्य करते हैं। मै समझता हूँ कि प्राचीन भारत मे यही व्यवस्था प्रचलित भी थी।

आख़िर ज़मींदार है ही कितने? युक्तप्रान्त मे कुल साढे बारह लाख ज़मींदार हैं। इनमें भी लगभग दस लाख तो ऐसे ज़मींदार हैं जो केवल सौ रुपये वार्षिक तक मालगुज़ारी देते हैं। ये इतने ग़रीब हैं कि इनकी अवस्था किसानों से भी ख़राब है। उन्हे एक प्रकार का रैयतवारी किसान ही कहना अधिक संगत है। किन्तु चूँकि इनका

नाम ज़मीदार है, इसलिए चाहे इनके घरो में दोनों समय चूल्हा भले ही न जले किन्तु इनकी ऐंठ बादशाही ढंग की ही होती है। लखनऊ के नवाब घराने के लोगो के विषय मे सुनता हूँ कि उनलोगों में से कई एक को सरकार की ओर से केवल आठ आने वार्षिक गुजारे के लिए मिलता है, किन्तु उनकी नवाबी ऐंठ मे कोई अन्तर नही है। इसी प्रकार जब हम छोटे-छोटे जमींदारो से अलग व्यक्तिगत रूप से बात-चीत करते हैं तो वे कहते हैं कि हम इस ज़मीदारी से तंग आ गये हैं। यदि पेट भर खाने को मिल जाय तो यह जमींदारी चूल्हे जाय। किन्तु अच्छी से अच्छी समाज-व्यवस्था मे यदि उन्हे कोई स्थान नही मिलता तो वे बौखला से जाते हैं। हमने जहाँ तक इन लोगो का अध्ययन किया है, ये इसलिए नही घबराते कि इनकी जमींदारी चली जायगी, बल्कि इसलिए घबराते है कि आज उनकी यह छोटी-सी ज़मीदारी उनके लिए डूबते हुए को तिनके के समान है। वे यह जानते हैं कि यह तिनका उन्हे बचा नही सकता, फिर भी वे उसे छोड़ने का स्वप्न देखना भी सहन नहीं कर सकते। यदि डूबते हुए मनुष्य से यह कहा जाय कि तुम तिनके को छोड़ दो तो वह कभी उसे छोड़ने को तैयार नही होगा, किन्तु यदि उस के सामने कोई उचित आधार डाल दिया जाय तो वह तुरन्त तिनके को छोड़ कर उस आधार को पकड़ लेगा। वर्ना यदि बिना किसी प्रकार का अवलम्ब दिये ही उसका तिनका छीनने का प्रयत्न किया जाय तो वह छीनने वाले को काट खाने को उद्यत हो जायगा। जिस समय हम लोग 'ज़मींदारी का नाश हो' का नारा लगाते है, उस समय हमारा तात्पर्य ५०००) या अधिक वार्षिक मालगुजारी देने वाले केवल २२०० ज़मीदारों से ही होता है। हमारा यह नारा उनके कानों तक तो पहुँचता नहीं, क्योकि उनकी नौका अँग्रेजी साम्राज्य की नींव के साथ भलीभाँति सम्बद्ध है। किन्तु प्रायः मुमूर्ष अवस्था को प्राप्त ये ज़मींदार नामधारी किसान हमारे उक्त नारे से घबड़ा कर पागल हो उठते हैं

और हमारे आन्दोलन के प्रवाह में गड़बड़ी पैदा कर देने के कारण बन जाते हैं। वही एक सम्प्रदाय है जो अत्यन्त ग़रीब हो जाने पर भी अपने प्राचीन संस्कार के कारण ग्रामीण जनता का मुखिया है। अतः ग्राम-सेवक को सावधानी से क़दम बढ़ाना चाहिए, जोश से काम नही चल सकता है। इसी उद्देश्य से हम ज़मींदारी प्रथा के अन्त के विषय मे निश्चित धारणा रखते हुए भी ग्राम-सेवा का कार्य करते समय इसकी चर्चा नहीं करते हैं। मै समझता हूँ कि यदि हम लोग ग्राम-उद्योग के द्वारा बेकार ग्रामीण जनता की आर्थिक समस्या हल करते रहेंगे और उसी के साथ-साथ ज़मीदारी प्रथा की अनुपयोगिता बताते रहेंगे तो इस कुप्रथा को समाप्त करना सरल हो जायगा। मै यह स्वीकार करता हूँ कि अन्त में क़ानून के ही द्वारा इस व्यवस्था को परिवर्तित किया जा सकता है किन्तु यदि वैधानिक परिवर्तन के पहले ही ग्रामोद्योग-द्वारा साढे बारह लाख ज़मीदारों में से साढ़े दस लाख ज़मीदारों में आत्म-विश्वास उत्पन्न कर उनका सहारा छूट जाने का डर हटा सके तभी कानून भी पूरा कामयाब हो सकेगा, वर्ना केवल दिमाग़ी बहस और क़ानून के दबाव से इसे करने की कोशिश करेंगे तो कभी पूर्ण सफल नही होंगे।

जमीदारी प्रथा के सम्बन्ध मे मेरी इस राय को पढ कर तुम्हे आश्चर्य होगा और तुम कहोगी कि इन ज़मींदारों को भी तो सुधारा जा सकता है। सम्भव भी है कि शायद उनका सुधार हो जाय। क्योंकि मै मनुष्य प्रकृति के सुधार पर आस्था रखता हूँ। किन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि समाज के लिए अब इस संस्था की कोई आवश्यकता और उपयोगिता नहीं रही और अनुपयोगी अवस्था मे कोई चीज़ स्थिर नहीं रह सकती। यह प्रकृति का अटल नियम है।

आशा है, वहाँ के सभी लोग सकुशल होंगे। मुझे तुमने जो किताब भेजने को कहा था वह अब तक नहीं मिली। नमस्कार।

---

[३८]

आपसी झगड़ों की समस्या

२२—१०—४१

आज भ्रातृद्वितीया है। स्वभावतः तुम लोगो की बात याद आती है। आज के दिन संसार की सब वहिनो की शुभ कामनाओ को लेकर हम लोग जीवन-सग्राम मे आगे बढ़ते हैं। आज के दिन वहिनो से अलग रहने का मौका मुझको इस साल पहले-पहल हुआ है। इसलिए और भी सब की याद आ रही है। दिल चाहता है कि लिख डालूँ लेकिन पत्र तो एक ही लिख सकता हूँ। इसलिए इसी पत्र की मार्फ़त सब वाहिनो को शुभ कामना भेज रहा हूँ।

अब चलो गाँव की वात शुरू की जाय। मै तुमको किसी पत्र मे पहिले लिख चुका था कि किसानों की शिकायतो पर झगड़ा मिटाने के साथ-साथ हमको गाँव वालों का आपसी झगड़े का भी निवटारा करना पड़ता था। ये झगड़े कई प्रकार के होते थे। मै समझता हूँ कि उन झगड़ों का विवरण लिख कर तुम्हारा समय वरवाद करना वेकार ही होगा। मुझको क्या? मै तो सैकड़ों पन्ने लिख डालूँ। क्योंकि जेल जीवन मे विना काम के रहना ही सवसे ज्यादा तकलीफ की वात है। लेकिन तुम लोगो के पास तो वहुत काम है। वेकार पत्र देखने का समय कहाँ? इसलिए मै तुमको सिर्फ किन किन वातों पर झगड़ा देहात मे होता है उसका अदाज देते हुए पत्र समाप्त करने की कोशिश करूँगा। वैसे तो तरह तरह की लड़ाई रोज़ हुआ करती है और हमको उसका फैसला करना पडता है। सब तो मुझ को याद नहीं है। लेकिन जो झगड़े आम तौर पर हुआ करते हैं वे इस प्रकार हैं।

ज्यादातर जायदाद के बॅटवारे पर झगड़ा होता है। लोग कहते हैं कि इस झगड़े की जड तुम्हारी जाति (स्त्री जाति) की माया

है । मुझे तो पता नही, तुम्हीं ठीक अंदाज़ कर सकती हो। झगड़ा कभी-कभी भयानक रूप ले लेता है। और जब भाई-भाई मे दुश्मनी हो जाती है तो आजीवन किसी न किसी बहाने झगड़ा होता ही रहता है।
बँटवारा का झगड़ा अगर कचहरी चला जाता है तो
ज़मीन-जायदाद सारा परिवार एक दम नाश हो जाता है। इस नाश
के बँटवारे के झगडे करने मे गाव भर के लोग शामिल रहते हैं। खास
तौर से जो लोग पैसा उधार देते हैं वे तो किसी न
किसी पक्ष के हितू बन ही जाते हैं और उसका खरा नाश कराके अपना काम बना लेते हैं। जो लोग उधार वगैहर नही भी देते हैं वे भी इस झगड़े को बढाने मे काफी दिलचस्पी लेते हैं। उसमें से एक श्रेणी के लोग वे होते हैं जो हमेशा उस परिवार की हैसियत से ईर्षा करते रहते हैं। दूसरी श्रेणी उनकी है जो उस परिवार के पूर्वजो के पट्टीदार के वंश के हैं। तीसरी श्रेणी के वे हैं जो गावं के रूखे जीवन से ऊबे हुए रहते हैं और हमेशा कुछ न कुछ तमाशा ढूँढते रहते हैं। स्त्रिया खास कर इस श्रेणी की होती हैं। अगर इत्तिफाक से दो भाई आपस मे सुलह से बँटवारा करने लगते हैं तो सारे गाव की ऐसी हालत होती है मानों गाव मे कुछ अन्धेर हो रहा है। मैने तुमको झगड़ों के विवरण की बावत न लिखने का वादा किया था। लेकिन इस सिलसिले मे मुझको एक मजेदार घटना याद आ गई और उसको लिखने का लोभ समाता नहीं। कहानी इस प्रकार है।

आश्रम के पास ही एक गाँव के एक जमींदार परिवार मे तीन भाई मिल कर काफी सुख से रहते थे। उनमे से दो सगे भाई थे और एक चचेरा भाई। हम लोगो के रणीवाँ जाने के बाद से उस परिवार के बड़े भाई, जो सारे परिवार का सब काम संभालते थे, कांग्रेस के प्रति आकृष्ट होते गये और धीरे-धीरे गाधी जी के परम भक्त बन गये और जैसा कि मै पहिले लिख चुका हूँ आस-पास के बहुत से लोगों के समान पुरानी रूढ़िया छोड़ते गये। इनका इस प्रकार का आचरण

चचेरे भाई साहब को पसद नही था और वह समय असमय काफी एतराज किया करते थे। समय-असमय पर बॅटवारे की भी धमकी दिया करते थे। इसका एक तत्व और था। जायदाद के आधे के हिस्से-दार वह थे और आधे मे ये दो भाई। शायद और भी कुछ अधिकार उस छोटे भाई को थे जिसको मै ज्यादा नही जानता। आखिर बॅट-वारे का निश्चय हो ही गया। लेकिन वड़े भाई ने अपने को दवा कर भी इस ढंग से बॅटवारा किया कि किसी तरह से झगड़ा न होने पावे। इस मामले ने सारे गाव तथा आस-पास के गावो मे तूफान पैदा किया। सभी लोग इस वात से परीशान थे कि विना झगड़ा किये, विना किसी को बुलाये बॅटवारा कैसे हो सकता है। शुरू मे तो लोगों ने इधर-उधर कानाफूसी करके अंट-शंट वातो को फैलाना शुरू किया जिससे भाइयों मे गलतफहमी और संदेह पैदा हो सके। लेकिन उससे लोगों का कुछ काम नहीं निकला। फिर लोगों ने वड़े भाई से जो सव काम कर रहे थे, कहना शुरू किया : भला ऐसे भी कहीं वटवारा होता है। तुम तो अपने को वरवाद कर रहे हो। तुम तो कहते हो कि वे जौन मागे तौन देई मुला यह तो समझे ना चाही कि तुम्हार भाई आटे, लरिका आटे। वै का करिहैं। भला ऐस कहीं होत है। वै तुम्हारा मूॅड़ माँगै तौ कटाके दै दै हो का ?" इत्यादि इत्यादि। लेकिन वे लोग उनको अपनी टेक से हिला नही सके। वे सव को एक ही जवाव देते थे "भइया एहिमा हमका फायदा बा।" या 'आखिर वे भी तो हमारे ही भाई हैं फिर हम तो अपनी समझ से न्यायपूर्वक ही बॅटवारा कर रहे हे।' कही किसी के दरवाजे पर दो-चार आदमी वैठ कर गपशप कर

दूसरों के घरों में आग लगाने वाले परोपकारी

रहे हैं, इतने मे कहीं उनके लड़के को जाते देख लिया तो झट एक दूसरे से कहने लगे—"अरे भइया, वै तो आज कांग्रेसी ह्वै गये, विहान जेल जवइयाँ हैं। के जानै परौ साधू ह्वै जायॅ लेकिन एह तरह एक लाग अपने वेटवा कै मूड़ काटे के चाही ?"

इस तरह वे उनके लड़को को बहकाने की कोशिश करते थे। मै उन दिनों जब देहात जाता था तब लोगो को इसी तरह बाते करता हुआ पाता था। जब तुम रणीवा आई थीं तो तुमने देखा था कि पास के गाव वालों के साथ हम लोगो का सम्बन्ध पारिवारिक-सा हो गया था। हम लोग जब गाव मे जाते थे तो निस्संकोच लोगों के घरों में चले जाते थे और वहा भी औरतो को इसी तरह की बाते करते देखते थे। एक दिन मै एक घर के आगन मे जाकर बैठा तो वहा चार-पाच स्त्रिया बात-चीत कर रही थी। वे सब मुझको बैठने के लिए चारपाई देकर स्वयं नीचे बैठ गईं। उसमें से एक स्त्री ने मुझसे कहा—"भइया एह साइत हमरे सब बहुत तकलीफ मा हईं। का बताईं अइसन सुखी घर चूर चूर होत नाही देखा जात। हमरे सब रोय रोय कै दिन काटित है।" इतने मे दूसरी स्त्री बोली—"लेकिन भइया फलाना बाबू खूब किहिन। जौन जौन भइया कहत है सब हा करत जात हैं। एतनी भारी जायदाद बटत बाय कही चूँ नाहीं सुनाई देत बाटै। अरे भइया जायदाद बंटत मा जौन गति ह्वै जात है।" तीसरी ने कहा—"रहे द बहनी तू हूँ जवन मेहरारू बाटू। वे अस किहिन तो कौन बात कै लिहिन। तुहरे लोगन दुनिया भर कै बखान करत फिरत हऊ। वे करैं न त क्या करैं। सबमे जायदाद तो छोटे भाई की ही है। अपने तो कुल कर्जा मे बूड़ल बाटै। दिखावे खातिर वै बड़े दानी बनत हैं।" चौथी स्त्री—"चाहे जौन कहौ बहिनी, वै तो सब उठा के दे देत हवैं, रंचौ खियाल नाहीं करत हवैं कि आपन बेटवा का खइहै।"

इस तरह औरते भी उनके घर की औरतों का दिमाग खराब कर रही थीं। आखिरकार लोगो ने कुछ न कुछ कह-कहकर घपला मचा ही दिया। सारा बॅटवारा हो जाने पर एक छोटी सी बात लेकर उनका लड़का लड़ पड़ा और कहा कि मै घर ही छोड़ कर चला जाऊंगा। उसके पिता ने उसको बहुत समझाया लेकिन उसने नहीं माना और सवेरे उठ कर चुपके से कही भाग गया।

उनके लड़के के चले जाने के वाद भी लोगों ने उन पर दवाव डाला। लेकिन वह अपने सकल्प पर अड़े रहे। उनके इस व्यवहार से दोनों भाइयों का फायदा रहा। बँटवारा हो जाने पर भी आपस मे दुश्मनी नही हुई। मै क्या वताऊँ? यह हाल उस गाँव का है जहा पर हमारा सम्बन्ध इतना घनिष्ट है। दूसरे गावो की हालत तो विचित्र ही है। इससे तुम देख सकती हो कि ऐसे मामले मे झगड़ा न रहते हुए भी गाव वाले झगड़ा करा ही देते हैं। क्योंकि वे जानते है कि झगड़ा होने मे दोनों फरीक़ के शरीर से जो कुछ झरेगा उसमे से कुछ न कुछ उन्हें भी मिल जायगा।

यह तो गाँव के बँटवारा-सम्बन्धी झगड़े की बात रही लेकिन गाँव के अन्दर ऐसी वहुत सी चीजे रहती हैं जो किसी एक व्यक्ति की निजी नही होतीं; जैसे सम्मिलित कुआँ, वाग, तालाव और परती इत्यादि। इन चीज़ों के लिए प्रायः झगड़ा हुआ करता है और कभी कभी फौजदारी भी हो जाती है।

सामूहिक वस्तुओ के सम्बन्ध में झगडे

वाग के फल का बँटवारा किस तरह से हो, लकडी कौन काटे, तालावों और कुएँ के पानी से कौन अपना खेत पहले सींचे, परती मे किसके जानवर चरें, तालावों की मछली किस तरह बेंचे, ऐसी अनेक वातें झगड़े का कारण होती हैं। देहात मे झगड़ा, मारपीट और मुकदमेवाजी का एक और वड़ा कारण होता है। तुमको मालूम है हमारी ओर वहुत घनी आवादी है और ज़मीन भी करीव करीव आखिरी इंच तक जुती हुई है। एक दूसरे के खेत के वीच मे एक मेंड़ होती है। दोनों तरफ के किसान इस कोशिश मे रहते हैं कि आधी मेंड़ अपने मे कर लें और जोतते समय चुपके से थोड़ी-थोड़ी मेंड अपने खेत मे मिला लेने की कोशिश करते रहते हैं। कभी-कभी टेढ़ी कुदाल़ से मेंड़ के ऊपरी हिस्से को ठीक रखते हुए नीचे से भीतर भीतर खोद लेते हैं जिससे वरसात में पानी वरसने पर मेंड़ की मिट्टी गल

कर ऊपरी भाग भी खेत मे शामिल हो जाय। इस प्रकार की चेष्टा से किसानो के बीच बड़ी-बड़ी फौजदारियाँ हो जाती हैं जिनके फलस्वरूप वे तबाह हो जाते हैं।

परिवार की कोई स्त्री यदि विधवा हो गई तो उसकी सम्पत्ति को सब लोग लालच की दृष्टि से देखते हैं और परिवार का हर एक आदमी विधवा को धोखा देकर उसके जीते-जीते उसकी सम्पत्ति स्वयं ले लेने की कोशिश करता है जिससे पारस्परिक ईर्ष्या के कारण झगड़ा होता रहता है। छोटे-मोटे झगड़ों के बढने से अलहदगी की नौबत आ जाती है और लोग अलग भी हो जाते हैं। तब भी विधवा की सम्पत्ति किसकी देख-रेख मे चलेगी, इसी पर झगड़ा बढ़ जाता है।

धन हड़पने की नीयत

गाँव के नाई,धोबी, चमार और खेत के मजदूर भी सबके काम के लिए होते हैं। इनसे कौन ज्यादे काम लेता है, कौन पहले काम ले, पट्टीदारो मे इसकी भी नोक-झोंक चलती रहती है और कभी-कभी मामला इतना बढ जाता है कि हम लोगों को फैसले के लिए जाना पड़ता है। इसी तरह से यदि दो पट्टीदारों का एक ही असामी हुआ तो लगान के अलावा उसकी जात से अन्य पचासो तरह के नाजायज फायदे उठाने के लिए झगड़ा चलता रहता है।

मजूरों को लेकर होने वाले झगडे

एक जगह तो हमको बहुत ही मजेदार अनुभव हुआ। इसकी कहानी बहुत ही रोचक है। तुम्हें मालूम है कि देहात मे हर एक परिवार का एक पंडित निश्चित होता है। यहाँ तक की तीर्थ तक मे भी सबके अपने-अपने पडे होते हैं। जब मैं इधर ग्राम-सुधार का चेयरमैन था तो अपने दौरे के सिलसिले मे एक गाँव मे पहुँचा। मैंने सोचा था कि गाँव मे सफाई आदि की बाबत कुछ बताऊँगा परन्तु जाते ही एक मामले का फैसला करना पड़ा। थोड़े ही दिन हुआ था, उस गाँव मे एक परिवार के दो टुकड़े हो गये थे। उस दिन दोनों

परिवार में उनका पारिवारिक अनुष्ठान था। उस अनुष्ठान मे पंडित से घर पर कथा सुनी जाती है और उन्हे सीधा और दक्षिणा दी जाती है। इत्तिफाक से दोनों परिवार ने उस दिन अपने यहाँ पाठ बाँचने के लिए पंडित को निमन्त्रण दिया था। तमाशा यह कि कथा का शुभ मुहूर्त भी एक ही समय पड़ता था। मैंने देखा कि इस बात को लेकर गाँव भर में एक तूफान सा मचा हुआ है कि पडित किसके यहाँ कथा सुनायेगा। तमाशा यह कि दो पडित से काम नहीं चल सकता। घर में पुरोहित तो एक आदमी है न? और उनके कथा बाँचने से ही फल प्राप्त हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसी तरह तीर्थ के पडा के गाव मे आने पर भी कभी-कभी आपस मे लड़ाई हो जाती है।

इसी तरह नावदान किधर से जायगा, छप्पर का पानी कहाँ गिरेगा, लोग कडा कहा पाथेंगे, इत्यादि छोटी-छोटी बातों से बड़े-बड़े झगड़े हो जाते हैं।

प्रायः ऐसा भी होता है कि जब किसानों के घर भाई-भाई मे अलहदगी हो जाती है तो भी जमींदार के खाते में उनकी जमीन अलग-अलग नहीं दर्ज होती। पुराना ही इन्दराज चलता रहता है। ऐसी हालत मे कोई लगान देता है, कोई नहीं देता है। जमींदार किसी से सारा वसूल करता है, कोई एक दम बच जाता है। इसी तरह घपला चलता रहता है। जमींदार जान-बूझकर अपने खाते में इस तरह की धाँधली बनाये रखता है जिससे वह किसानों की लड़ाई मे अधिक से अधिक फायदा उठा सके। छोटी कौमों मे कोई स्त्री विधवा होकर नैहर चली जाय तो उसका बच्चा कहाँ रहेगा, इस पर बहुत बड़ा झगड़ा खड़ा हो जाता है।

कहाँ तक लिखा जाय? यदि तमाम बातों का वर्णन करूँ तो उसका कहीं अन्त नहीं मिलेगा। जो कुछ मैंने लिखा है उसी से तुमको अनुभव हो जायगा कि गाँव में किस-किस किस्म के झगड़े

होते हैं और एक ग्राम-सेवक को भिन्न-भिन्न मुसीबतों का सामना करना पड़ता है।

उन झगड़ों के सिलसिले में हमको एक खास बात देखने मे आई कि ज्यादातर झगड़े ब्राह्मण क्षत्रियों में होते हैं। क्योकि ये क़ौमें चाहे कितनी भी गरीब हो जायँ खेती का काम अपने हाथ से नहीं करतीं और बेकार बैठी रहती हैं। बेकार दिमाग शैतान का घर होता है। इसलिए हम इनके तात्कालिक झगड़े का फैसला तो करते थे क्योंकि हर एक काम के लिए यह जरूरी है कि इस किस्म के झगड़ों को तय करने मे मदद करे। लेकिन इस बात को भी साथ-साथ सोचते रहे कि जब तक हम इस उच्च श्रेणी की बेकारी की समस्या हल नहीं कर सकेंगे तब तक गाँव में व्यवस्थित समाज कायम नहीं हो सकेगा। यह सत्य है कि किसानों और मज़दूरों की आर्थिक अवस्था इनकी अपेक्षा बहुत खराब है और उनकी आर्थिक परिस्थिति पर तुरन्त ध्यान देने की आवश्यकता है। लेकिन जब तक इन ऊपर वाले खुराफ़ाती दिमागों को कहीं लगा नहीं दिया जायगा तब तक बेकार पड़ी हुई बुद्धि खुराफात के साथ किसान और मज़दूरों को फँसा कर, तुम्हारी चेष्टा से उनमें जो कुछ सुधार होगा सब स्वाहा करती रहेगी।

झगड़े ऊँची जातियों मे अधिक होते हैं

सन् १९२३ में टांडा मे काम करते समय देहात-सम्बन्धी अपना अनुभव लिखते हुए मैंने इस श्रेणी की बाबत जो लिखा था, याद होगा। पुराने ज़माने मे इन लोगों की आर्थिक स्थिति अच्छी थी। और आम तौर से बड़े घर इन्हीं जातियों के होते थे। इसलिए ये खुद न काम करके मज़दूरों से काम कराते थे। बहुत से काम न करने मे अपने उच्च वंश की मर्य्यादा समझते हैं। लेकिन उनके पास शिक्षा और समाज-व्यवस्था का काम उन दिनों रहता था और उन-पर समाज की एक खास तौर की जिम्मेदारी होने से उनका दिमाग

हमेशा उसी मे लगा रहता था। दूसरी बात यह थी कि उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी होने के कारण घर पर काफी काम होता था। जिसके पास बहुत बड़ा घर होगा, अनाज व सामान काफी होगा, जिसके दरवाजे पर गाय, बैल, भैंस की तादाद होगी उसके लिए इन सब चीजो का सावधानी से इन्तजाम करना ही एक बहुत बड़ा काम होता है। इसलिए खेती का काम अपने हाथ से न करने पर भी वे कतई बेकार नही रहते थे। लेकिन आज इस श्रेणी के लोगों के पास है क्या जिसका वे इन्तजाम करे? छोटी सी जगह मे किसी कदर अनाज उबाल के खा कर दोने वक्त पड़े रहने के सिवा और उनके पास काम ही क्या है। हालत तो ऐसी है लेकिन ये लोग अपने पूर्व पुरुषों-द्वारा छोड़े हुए कामों को करना अपने उच्च वश की मान-हानि समझते हैं। अपने हाथ से काम करना कितना बुरा समझते हैं, इसकी एक मजेदार कहानी है। सुनो, एक दफा मै अपने एक सूत-केन्द्र मे गया हुआ था। इस गाँव मे सब क्षत्रिय रहते थे। आश्रम के असर से सब गाँव मे चरखा चलने लगा था और उनके घरों का पर्दा भी हट गया था। गाँव के लोग हमारे सिद्धान्त की ओर काफी बढे हुए थे। गाँव की औरतों को जब मालूम हुआ कि मैं वहाँ आया हूँ तो वे सब अपना-अपना सूत लेकर मुझको दिखाने के लिए आईं। इस गाँव मे हम लोग एक चर्खा स्कूल चलाते थे जिसमे प्रति दिन एक घंटा ग्रामीण समस्याओं पर बौद्धिक क्लास लिया करते थे। मैने उन बहिनों का सूत तो देखा मगर उनसे कहा—"बहिनो, इस बार मै सूत देखने नही आया। इस बार मै यह देखना चाहता हूँ कि तुम लोग अपने घर और अपने बच्चो को कितना साफ रखती हो। मै तुम्हारे घर-घर जाकर देखना चाहता हूँ।" इससे वे बहुत खुश हुईं और मुझको देखने के लिए निमंत्रण दे गईं। उस दिन शाम हो गई थी इसलिए दूसरे दिन मै खूब सुबह उठ कर उन लोगों का घर देखने गया। प्रत्येक घर के प्रत्येक हिस्से को देखने मे

दो दिन पूरे लग गये। सफाई तो उनके घर की अच्छी ही थी और शायद मेरी वजह से खास तौर से कर रक्खी थी। लेकिन एक बात से मुझको बहुत आश्चर्य हुआ। मैने देखा कि ये लोग चाहे जितने गरीब हों आटा के लिए औरतें चक्की नहीं चलातीं। पूछने पर मालूम हुआ कि इनके परिवार मे चक्की की शपथ है।

इस तरह के बहुत से ऐसे काम हैं जिसके लिए इनकी विरादरी या परिवार में शपथ है। इनके घर के लोग कलकत्ता और बम्बई

खुराफात की जड़ बेकारी

जाकर चमड़ा गोदाम के दरबान का काम करेंगे लेकिन घर पर हल, चक्की तथा चर्खा चलाने से इनकी इज्जत और धर्म का नाश हो जाता है। इन सब करतूतों से गाँव के उच्च वंशों के लोग बेकार बैठे-बैठे दिन रात खुराफात की बाते सोचा करते हैं।

मैने तुमको एक पत्र में लिखा था कि गाँव के इस श्रेणी के लोगों के प्रति मै बहुत घृणा की भावना रखता था और रणीवां आने पर भी मेरी पूर्व धारणा कुछ-कुछ वनी ही रही। लेकिन चुनाव के बाद जमींदारों के अत्याचार से किसानो को बचाने और उन्हें सहूलियतें पहुँचाने के सिलसिले मे कुछ दिनों तक देहाती झगड़ों का काम उठाया तो महसूस करने लगा कि ग्रामीण समस्याओं में ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा और उच्च वर्णों मे बेकारी की समस्या एक बहुत महत्व-पूर्ण स्थान दखल किये बैठी है और इसको हल किये बिना ग्रामोत्थान की गाड़ी का आगे बढ़ना मुश्किल ही मालूम हुआ। लेकिन तत्काल मुझको इसका हल कुछ नही सूझा। हमारे पास चर्खा तो था ही किन्तु वह तो स्त्रियों के लिए था। पुरुषों को समय का उपयोग करने के लिए हम कोई कार्यक्रम नहीं दे सके। उस समय तो हम तात्कालिक झगड़ों को निवटा कर लोगों मे मेल और सद्भावना पैदा करने की कोशिश करते रहे। लेकिन मुख्य प्रश्न पर हम जोरों से विचार करते रहे। तुमको मालूम है कि मैं जब किसी समस्या को

जटिल पाता हूँ तो तब तक दिन-रात दिमाग उसी मे लगा रहता है और मै निश्चिन्त नहीं हो पाता। उन दिनो हमारी यही हालत थी। कुछ नौजवानों को बुनाई और लकड़ी का काम सिखाने लगे। लेकिन इससे पूरा सन्तोष नही मिलता था।

चिट्ठी आरंभ करते समय मैने जल्दी खतम करने की सोची थी। लेकिन सक्षेप मे लिखते-लिखते भी पत्र बहुत लम्बा हो गया है। इसके पढने में समय तो लगेगा लेकिन ग्राम-सेवक की इन परम जटिल समस्याओं के सुलझाने की कठिनाइयों को तुम ठीक-ठीक समझ सकोगी। यह इतनी भारी समस्या है कि अगर और दो-चार दिन लिखता रहूँ तो कोई हर्ज नही होगा। लेकिन फिलहाल मै यही समाप्त करता हूँ। जेल से निकल कर जब कभी मिलूँगा तब इस पर और अधिक बाते हो सकेगी।

---

[३६]

पंचायत का संघटन

२५—१०—४१

अगस्त सन् १६३७ में कांग्रेस के लोगों ने मंत्रिपद स्वीकार किया। जिससे शुरू-शुरू मे पुलिस और ज़मीदार के आदमी कुछ घवड़ाये हुए से थे। इसलिए जमीदारों की ओर से किसानो पर अत्याचार कुछ कम हो गया। हमारा काम भी कुछ हल्का सा हो गया। लेकिन दूसरी तरफ से काम बढ़ भी गया। गाँव के आपसी झगड़े अब अधिक संख्या मे हमारे पास आने लगे क्योंकि ग्रामीण जनता अब कांग्रेसी लोगो को विशेष अपनेपन की निगाह से देखने लगी। उस दिशा मे काम इतना अधिक बढ़ गया कि वह हमारी

शक्ति से बाहर हो गया। अतः हमे इस काम को ठीक-ठीक ढङ्ग से व्यवस्थित करने की आवश्यकता पड़ गई। शुरू मे अपना कार्यक्षेत्र करीब दो सौ गाँवों मे परिमित कर दिया। फिर देहातो मे स्थानीय पंचायतो का संघटन करना शुरू किया। पहले पहल हमने उन गाँवों में पंचायत कायम की जिनमे आपस के झगड़े नही थे। ये पंचायते लोगो की राय से कायम हुईं। फिर धीरे-धीरे सभी गाँवों मे झगड़े फैसला करने के लिए किसी न किसी रूप मे पंचायत बन गई। पचायतों के बनने से हम लोगो के काम मे थोड़ी आसानी जरूर हुई क्योंकि अब हमारे पास किसी किस्म का मामला आने पर हम लोग उसे सरपंच के पास भेज देते थे। और जहाँ तक सम्भव होता था स्थानीय पंचायतों में ही मामला तय करने की कोशिश करते थे। पंचायत को खुद भी अपने ऊपर भरोसा नही था। यह स्वाभाविक भी था। सदियों से गाँवों में पंचायतो का रिवाज टूट गया इसलिए व्यवस्था करने की आदत और योग्यता लोगों मे नहीं रह गई और न जनता मे ही बिना कानून व पुलिस के दबाव के किसी को मानने की आदत रह गई। गाँवों मे पंचायत का किसी प्रकार का सस्कार भी नहीं रह गया। सरकारी पंचायतो का, जो गाँवो मे क़ायम थी, विवरण तो मै तुमको लिख ही चुका हूँ। उनकी मार्फत ग्रामीण समाज का कुछ भला करने की चेष्टा का मतलब भक्षक द्वारा रक्षा का प्रबन्ध करना था। अगर देहात में वाकई पंचायती व्यवस्था को लाना है तो रचनात्मक कार्यक्रम की मार्फत कुछ ऐसे लोगो को पैदा करना पड़ेगा जिनको लोग श्रद्धापूर्वक माने। आज एकाएक सही पंचायत का सघटन करना एक तरह से असम्भव ही है। तुमको याद होगा कि किसी पत्र मे मैने लिखा था कि प्रत्येक गाँव मे एक दो आदमी ऐसे हैं जो पुलिस और जमींदार के आदमी हैं। अधिकारी और पैसा साथ होने के कारण वे गाँव वालों को सताते और लूटते हैं। साम्राज्यशाही के शोषण और अष्टाचार की असली जड़ यही लोग हैं। गाँव के सब लोग इनके

खिलाफ रहते हैं और इनसे डरते हैं। फिर भी अगर किसी गाँव मे चुनने के लिए जाओ तो लोगों को इनके अलावा दूसरों को चुनने की हिम्मत नही पड़ती है। और गाँव वालो के खिलाफ होते हुए भी यही लोग पच बन बैठते हैं। इसलिए हम लोगो को काफी मेहनत और सावधानी से पंचायत बनानी पड़ी। कहीं-कही तो परिस्थिति के कारण ऐसे ही खुराफाती लोगों को सरपंच रखना पड़ा। क्योंकि उनको अगर हम बाहर रखते तो और अधिक नुकसान पहुँचाते। इस तरह की पंचायतों के लिए यह जरूरी हो जाता था कि हम कड़ी निगाह रखते। प्रत्येक ग्राम-सेवक को पंचायत बनाते समय इस खास पहलू को सामने रखना जरूरी है। कोशिश हमेशा यही रहनी चाहिए कि साधारण लोगो मे से ही पच बने और उनकी संघटित ताकत गाँव के पुराने अत्याचारी लोगों को दबा सके और धीरे-धीरे उनका दबदबा कम हो जाय।

पचायतों का संघटन करते समय इधर के देहात की परिस्थिति का एक महत्वपूर्ण पहलू देखने को मिला। प्रत्येक देश मे, प्रत्येक काल मे कुछ ही लोग होते हैं जो विशेष बुद्धिमान् और मौलिक तथा रचनात्मक योग्यता के होते हैं। ऐसे लोग स्थानीय आबादी के स्वाभाविक नेता होते हैं और बाकी इनके पीछे चलते है। आज हमारे देहात की हालत इस तरह चौपट हो गई है कि इस क़िस्म का नेतृत्व करने लायक आदमियो के लिए बुद्धि और योग्यता चलाने का साधन नहीं रह गया है। पुस्तैनी तरीके से खेती करने के सिवाय कोई उद्योग, जिसमे मौलिक बुद्धि की जरूरत पड़ती हो, गाँव मे नहीं रह गया। इसलिए गाँव की वह आबादी जो ससार मे कुछ कर सकती है, गाँव से बाहर कलकत्ता, बम्बई आदि औद्योगिक केन्द्रों मे चली जाती है क्योंकि उन्हीं स्थानों में उनकी बुद्धि और योग्यता के ग्राहक मिलते हैं। नतीजा यह होता है कि गाँव मे किसी प्रकार की व्यवस्था या आन्दोलन करना चाहे तो सही नेतृत्व के अभाव से असफल होता रहता है।

देहात मे बुद्धि का उपयोग करने के लिए केवल एक ही महकमा है जिसे साम्राज्यवादी और ताल्लुकेदारी नीति की दलाली कह सकते हैं। भला इनके नेतृत्व मे तुम अपना कौन-सा आन्दोलन चला सकोगी? वल्कि यदि कहीं कुछ कर भी लोगी, तो ये उसे नष्ट भ्रष्ट करने की कोशिश करेंगे। आज हमारे देश की हर श्रेणी के लोग ग्राम-आन्दोलन की वात करते हैं। पर वह आन्दोलन आर्थिक हो या सामाजिक अथवा राजनैतिक, वह तभी चल सकेगा जव स्थानीय स्वाभाविक नेता-द्वारा संचालित हो। वाहर के साधन से यह काम चल नहीं सकता है। इसलिए ग्राम-सेवक के लिए यह आवश्यक है कि कोई ऐसा कार्यक्रम ढूँढ निकाले जिसमे गाँव के कुशल, बुद्धिमान और योग्य व्यक्तियों को अपनी योग्यता तथा बुद्धि के विकास की सुविधा हो और वे गाँव में ही रुक जायँ।

मैं जव गाँव की आर्थिक कठिनाई के साथ-साथ वौद्धिक हीनता को देखता था तो कभी-कभी निराश-सा हो जाता था लेकिन निराश होने से काम कहाँ बनता है? इसलिए हम लोग अपने कार्यक्रम मे लगे रहते हुए भी इस समस्या के समाधान की खोज में रहे। पंचायत

गाँव में ही नेता पैदा करने होंगे

की स्थापना, उसके द्वारा गाँव के झगड़ो का निबटारा करवाना और कुछ रचनात्मक कार्य मे दिलचस्पी पैदा करना इस ओर एक क़दम था। इससे ग्रामवासियों की बुद्धि का विकास कुछ जरूर होता है। लेकिन खास लियाकत रखने वाले ग्राम के लोगो को गाव मे तभी रोक सकेंगे जव उनकी बुद्धि के अनुपात से आर्थिक आमदनी का कोई उपाय ढूँढ़ निकालेंगे। साथ ही साथ गावों मे ऐसे कार्य्य की स्थापना हो सकेगी जिसे करने मे ग्रामवासियों के अनुभव मे विचित्रता होगी और उनकी मौलिक चिन्तना को अवसर मिलेगा।

बुनियादी तालीम की व्याख्या मे पूना में तुमने इस वात का ज़िक्र किया था कि वच्चो मे नेतृत्व की योग्यता पैदा करना है। यह

ठीक है, लेकिन सामूहिक रूप में बच्चों का आन्दोलन चलाने वाला भी तो गाँव मे होना चाहिये। मेरा तो अनुभव यह है, कि वे गाँव मे होते हैं। हमारा काम उन्हे खोज निकालना है और उन्हे अपने स्थान पर कायम रखना है।

आज कल बाहर से जो लोग यहाँ मिलने आते हैं वे नज़रबन्दों के छूटने की गन्ध छोड़ जाते हैं। इसलिए यहाँ हलचल खूब रहती है। जहाँ देखो, वही छूटने की बात चलती है। लोग इस कदर व्याकुल हैं मानो इतने दिन में एक दम परीशान हो गये। मेरी समझ मे नही आता कि इस किस्म की फौज लेकर बापू जी किस अलौकिक क्रान्ति का स्वप्न देख रहे हैं। खैर, देखना है, क्या होता है? अपने राम तो मस्त हैं। बाहर भी चरखा था, भीतर भी चरखा है। फरक ही क्या? तुम लोग आज-कल क्या करती हो। तालीमी संघ की प्रगति का क्या हाल है। कभी-कभी तो पत्र लिखती रहो। नमस्कार।

---

[४०]

स्वाभाविक नेतृत्व के विकास की चेष्टा

५—११—४१

कई दिन हुए, मै पत्र न लिख सका। इधर मौसम बदलने के कारण, कई रोज़ से खाँसी, जुकाम, बुखार हो गया था। अब ठीक है।

आजकल जेल मे खूब हलचल मची हुई है। छूटने की खबर जब से आने लगी है तब से लोगों के दिमाग मे खलबली पड गई है। आज तो और भी तूफान हैं। क्योंकि आज छः-सात व्यक्ति बिना शर्त छोड़ दिये गये। लोग यह उम्मीद लगाये बैठे हैं कि १२ तारीख को

केन्द्रीय असेम्बली में राजबन्दियों की मुक्ति का प्रस्ताव पेश होते ही सरकार सब को छोड़ देगी। क्योंकि अगर ऐसा न करेगी तो वह 'अणे' वगैरह की पोज़ीशन कैसे बचायेगी। इसलिए जिन लोगों ने जेल मे नियमित कार्यक्रम वना लिया था, उनका भी सब कुछ घपले मे पड़ गया है। सभी लोग आपस में बैठ कर इस वात की चर्चा करते रहते हैं कि छूट कर अपने स्थान तक किस प्रकार जायँगे; कोई कहता हैं कि मै आगरा का ताज देख कर जाऊँगा; कोई एक दम घर पहुँच कर घर वालों को अचम्भे मे डालना चाहता है। हमारी बैरिक मे सिर्फ मुझे और एक आदमी को छोड़ कर वाकी सव कानपुर-वासी रहते है। वे तार देकर धूम से अपना स्वागत कराने की स्कीम बना रहे हैं। इस प्रकार सभी लोग कुछ न कुछ घर पहुँचने की योजना सोच रहे हैं। मै ही एक अभागा हूँ कि घर जाने की कोई स्कीम नही वना रहा हूँ। लेकिन मुझको भी सन्तोष है कि अगर जल्दी छूटूँगा तो तुम लोगो से मुलाकात हो जायगी। फिर जेल के और अनुभव की वात-चीत हो सकेगी। अब अपने मुख्य विषय पर ही कुछ लिखूँ तो ठीक होगा।

काँग्रेस के मंत्रिपद ग्रहण करने से सरकार का रुख ग्राम सघटन की ओर अधिक होना स्वाभाविक ही था। मैने भी सोचा कि यह अवसर है, जिस समय मै आठ-नौ साल से सोची हुई योजनाओं का प्रत्यक्ष प्रयोग कर सकूँगा। जिस केन्द्रीय आश्रम की कल्पना करके सन् १६२६ मे मेरठ जिले के रास्ना गाँव मे काम खोला गया था और जिसका विस्तृत रूप सोचकर इस जंगल मे कुटिया वनाना शुरू किया था उस को साकार करना अव सम्भव-सा मालूम होने लगा। पिछले तीनसाल तक ग्राम सेवा-कार्य्यों का प्रयोग करते रहने से पहिले से और भी अधिक निश्चित योजनाओ की रूपरेखा मेरे मस्तिष्क मे आने लगी थी। पिछले दिनो, जब हम लोग विस्तृत क्षेत्र मे गाववालों के आपसी झगड़ों का फैसला करते रहे, उस वक्त हमने देख लिया था कि देहात

में ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि कहे जाने वाले लोगो की बेकारी ही अधिक-तर झगड़ों की जड़ है।

पंचायत के सघटन के सिलसिले मे हमने देखा था कि गाव के जितने कुशल, योग्य और बुद्धिमान व्यक्ति होते हैं वे सब गाँव मे अपने लायक काम न होने की वजह से गाव छोड़ कर बाहर चले जाते है। इसलिए हमारे सारे देहात मे स्वाभाविक नेतृत्व का अकाल पड़ गया है। और यह तो सर्व-विदित है कि इस नेतृत्व के

स्वाभाविक नेतृत्व का अकाल

अभाव मे गाँव का कोई भी आन्दोलन ग्रामवासियो-द्वारा स्वयं चलाना असम्भव हो जाता है। तुम तो अच्छी तरह समझती हो कि लोग बाहर-बाहर से जाकर व्यापक रूप से ग्राम-आन्दोलन नहीं चला सकते। इसलिए हमारे सामने दो समस्याएँ बहुत महत्व-पूर्ण हैं। प्रथम मध्यम वर्ग की बेकारी, दूसरे स्थानीय नेतृत्व का विकास। इन दोना समस्याओं को हल करने के लिए एक ही तरीका सूझता था। वह था ग्रामोद्योग का प्रसार। ग्रामोद्योग मे कुशल और योग्य नौजवानो के लिए बुद्धि-विकास करने का बहुत बड़ा क्षेत्र है। हमने सोचा, अगर पढ़े लिखे और अच्छी भावना वाले नौजवानो को अपने यहा किसी न किसी ग्रामोद्योग का काम सिखाकर उनके घर पर उद्योग-केन्द्र खुलवा दे तो गाव की मध्यम श्रेणी की बेकारी की समस्या हल हो जायगी। और इसके जरिये गाँव का बुद्धिजावी श्रेणी को गाव मे ही रोककर ग्राम-आन्दो-लन के लिए स्वाभाविक नेतृत्व का विकास किया जा सकेगा। उससे गाँव के आर्थिक सामाजिक, संस्कृतिक और राजनैतिक संगठन का काम सहूलियत से हो सकेगा। यह सोचकर मैंने एक योजना बनाकर काग्रेसी सरकार के सामने पेश की। योजना की रूप-

एक योजना

रेखा मैंने निम्नलिखित ढंग की बनाई थी। गाँव के बीच आश्रम में एक ग्रामोद्योग विद्यालय की स्थापना करना जिसमे देहात के पढ़े-लिखे नौजवानों को नीचे लिखी दस्त-

कारियो की व्यावहारिक और व्यापारिक शिक्षा दी जाय। और साथ ही साथ ग्राम-आन्दोलन का सैद्धान्तिक परिचय कराकर ग्राम-सेवा की भावना पैदा की जाय :

१ कताई और बुनाई। २ काग़ज़ बनाना। ३ गाव के साधनो से साबुन बनाना। ४ लकड़ी और लोहे का काम। ५ चमड़ा पकाना, सरेस वनाना, मरे हुए जानवरो की हड्डी और मास से खाद बनाना। ६ बास-बेत आदि गाव के साधनों से किस्म किस्म के सामान बनाना। ७—चर्म कला (चमड़े का सामान बनाना)

मैने अपनी कल्पना के मुताबिक यह समझा कि अगर दो साल हम आश्रम जीवन के साथ-साथ ऊपर लिखी हुई कलाओ की शिक्षा दे सकेगे तो हम उनको पूरा-पूरा ग्राम-सेवक बना सकेगे। योजना मे मैने यह भी लिखा कि विद्यार्थियों की ठीक-ठीक व्यापारिक शिक्षा देने के लिए यह ज़रूरी है कि आश्रम में प्रत्येक उद्योग के लिए एक कारखाना रक्खा जाय जिसमें ये चीज़े बने और बिके।

जो विद्यार्थी विद्यालय मे सीख लेगे उनको घर पर काम शुरू करने के लिए सरकार से कुछ सहायता देने की भी मैने प्रार्थना की। मेरी समझ में ग्रामोत्थान-कार्य्य का सबसे उत्तम ज़रिया इसी किस्म के ग्रामोद्योग-केन्द्र स्थापित करके उसी केन्द्र को हर प्रकार के कार्य्य-क्रम का मध्य विन्दु बनाना है। मुझको अभी भी विश्वास है कि जब विद्यालय के सीखे हुए नौजवान स्वतन्त्र-रूप से घर बैठे उद्योग चलाकर आमदनी करने लगेगें तो हमारे सिद्धान्त के मुताबिक ग्राम-सेवा के काम मे भी उनको उत्साह और दिलचस्पी रहेगी। केन्द्रीय आश्रम को उनके माल की खपत की व्यवस्था करनी होगी और ग्रामोत्थान-कार्य्य का मार्ग-प्रदर्शन करना होगा। इस प्रकार योजना बनाकर खर्च के लिए मैने प्रार्थना-पत्र सरकार के पास भेज दिया।

ठीक इन्ही दिनों सरकारी महकमों के लिए काग्रेस मंत्रिमडल के निर्देशानुसार ग्रामोद्योग-कार्य्य कैसे चलाया जाय, इसका विचार वे

लोग कर रहे थे। और उसके लिए कार्य्यकर्त्ता तैयार करने के लिए शिक्षा-केन्द्र खोलने की भी सोच रहे थे। लेकिन ग्रामीण वायुमण्डल मे इस किस्म की शिक्षा देने का क्या जरिया होगा, यह उनकी समझ मे नही आ रहा था। उनके सामने हमारी इस योजना ने अन्वे की लकड़ी-जैसा काम किया। हमको बुलाकर इस विषय पर उन्होंने हमसे विशेष रूप से विचार-विनिमय किया। इसके बाद सयुक्तप्रान्तीय सरकार ने अपने महकमों के लिए कार्य्य-कर्त्ता शिक्षण की जरूरत को पूरा करते हुए हमारी योजना मे कुछ हेर-फेर करके ग्रामोद्योग विद्यालय खोलने का आवश्यक धन मजूर कर दिया। उन्होंने अपनी योजना में ७५ विद्यार्थियों के खाने का खर्च भी मजूर किया।

सालों से सोची हुई कल्पना को व्यावहारिक रूप दे सकने की सम्भावना से मुझे बेहद खुशी हुई। हमारे साथी लोग भी अत्यधिक उत्साहित हो गये। और हम लोग चारों ओर से अपनी शक्ति बटोर कर विद्यालय को ठीक ढ ग से स्थापित करने मे लग गये। विद्यालय का उद्घाटन १८ नवम्बर सन् १६३८ को हो गया।

मैने दो साल की शिक्षा की कल्पना की थी। शिक्षा का उद्देश्य था देहातों मे ग्रामोद्योग की स्थापना करके ग्राम-संघटन का गढ़ कायम करना। लेकिन शुरू मे हम इस ओर कदम नही उठा सके। प्रान्तीय सरकार को जल्दी से विभिन्न जिलों के देहात में उद्योग-धन्धा बढाना था इसलिए शुरू मे उन्होंने अपने लिए कार्य्य-कर्त्ता तैयार कर देने के माँग की और प्रान्त भर से नौजवानों को शिक्षा के लिए हमारे यहाँ भेजा। इस प्रकार पहिले दो साल सरकारी महकमों के लिए कार्यकर्त्ता भेजने मे हमारी शक्ति लग गई। साथ ही साथ हमे आश्रम के लिए भी खादी सेवक तैयार करके देना पड़ा। इस तरह हमे दो साल तक 'वस्त्र-स्वालम्बन' और 'ग्राम-सघटन' के काम को गौण रखते हुए विशेष रूप से उद्योग-विद्यालय का ही संघटन करना पड़ा। ग्राम-सेवा और ग्रामोत्थान की दिशा मे स्थायी कार्यक्रम की ओर हमारा यह

पहिला कदम रहा ।

आज यहीं पर अपनी कहानी खत्म करके तुमसे विदा ले रहा हूँ छूटने वाले जा रहे हैं । उनको विदा भी करना है । वहाँ के सब मित्रों से मेरा नमस्कार कहना ।

---

[४१]

बेकारी और चर्खा

६—११—४१

पिछले पत्र मे मैने ग्रामोद्योग विद्यालय शुरू करने की बावत लिखा था । उसको कायम करने मे हमारी सारी शक्ति लगने के कारण चर्खे के काम मे बिल्कुल ढिलाई आ गई थी । चर्खा के काम में ढिलाई का आरम्भ तो उसी समय हो गया था जब चुनाव के बाद गाव वालों पर जो खास तकलीफें आईं उन्हे दूर करने और उनकी समस्याओं को सुलझाने मे हमे लग जाना पड़ा । धीरे-धीरे चर्खे की गति मन्द होती गई । विद्यालय का काम जब थोड़ा-बहुत ढर्रे पर आ गया तो हमने फिर से अपना ध्यान चर्खा-कार्य बढ़ाने की तरफ लगाया । इस काम के लिए हम देहात में चर्खा-विद्यालय खोलने लगे । यह विद्यालय एक गाँव मे दो महीनों के लिए होता था और जब उस गाँव के लोग सीख जाते थे तब हम दूसरे गाँव चले जाते थे ।

पिछले एक पत्र मे मैने लिखा था कि देहात के तमाम झगड़ों का कारण उच्च श्रेणी के लोगों की बेकारी है । हमे इस बात की चिन्ता थी कि उनकी बेकारी दूर करने के लिए कौन सा रास्ता अपनाया जाय । गाँव की भयंकर बेकारी की बावत कौन नहीं जानता ।

हिन्दुस्तान की आर्थिक समस्याओं को बावत लिखते और बोलते समय, गाँव की वेकारी की लोग चर्चा करते हैं। सभी अर्थ-शास्त्री भारत के गाँव वालों की वेकारी का हिसाब लगाते गाँवों की वेकारी समय प्रायः खेती के मौसम का हिसाब जोड़कर आँकड़े वना दिया करते हैं। इस तरह प्रत्येक अर्थ-शास्त्री कुछ न कुछ अक हमको वताते रहते हैं। उनमे परस्पर थोड़ा-वहुत फर्क जरूर रहता है लेकिन मूल मे करीव-करीव सभी लोगों के अक वरावर रहते हैं। कही खेत मे एक फसल होती है, कही दो और किसी-किसी प्रदेश मे तीन-तीन फसल तक हो जाती है। इसी के हिसाव से हमको वताया जाता है कि हिन्दुस्तान मे देहात के लोगों की वेकारी कही वर्ष मे ६ महीना, कहीं ६ महीना और कही तीन महीना है। हम लोग आम तौर से इस वेकारी की दलील देकर लोगों को समझाना चाहते हैं कि चर्खा ही देहात की वेकारी का समाधान है। और इसकी पुष्टि मे चर्खा-संघ के अक के ज़रिये यह वताते हैं कि हम कम से कम तीन साढे तीन लाख वेकारों को काम में लगा रहे हैं। वेकारी की वावत ये अंक और चर्खे-द्वारा उसके समाधान की वावत हमारी दलील इतनी सहज हो गई है कि इस विषय में और विचार करना हम जरूरी नही महसूस करते। पर अगर हम इसका थोड़ा-सा विश्लेषण करें कि कहाँ तक यह वात परिस्थिति से मेल खाती है तो हम यह देखेंगे कि इस प्रश्न पर अधिक विचार करने की आवश्यकता है। सारे हिन्दुस्तान की वावत तो मैने अध्ययन नहीं किया लेकिन जितने छोटे दायरे के देहात मे मैंने देखा है, उसी के आधार पर आलोचना करने की कोशिश करूँगा।

आम तौर से वेकारी का जो अनुपात वताया जाता है वह काफी भयकर है। लेकिन मै समझता हूँ कि वास्तविक परिस्थिति इससे भी अधिक भयंकर है। आवादी का एक वहुत वड़ा भाग अपने को भलमनई कहता है और खेत में मेहनत नहीं करता। उनके लिए

तो साल मे बारहो महीना बेकारी ही रहती है। इनके अलावा जिस श्रेणी के लोग काम करते भी हैं उनके लिए भी केवल खेती के मौसम के लिहाज से बेकारी का औसत लगाने से ठीक नही पड़ेगा।

तुम्हे मालूम है कि दिन प्रति दिन देहात की आबादी बढती जा रही है और खेत दिन बदिन छोटे-छोटे हिस्सों मे बॅटते चले जा रहे हैं। नतीजा यह हुआ है कि प्रत्येक परिवार के लिए इतना खेत नहीं रह गया है कि वे सब के सब उस खेत मे काम पा सकें। इस प्रकार प्रत्येक परिवार मे कुछ ऐसे लोग हैं जिनका नाम १२ महीने की बेकारी की लिस्ट मे दर्ज किया जा सकता है। ऐसे तो देखने मे बेकार नही मालूम होते क्योंकि जिस परिवार मे पाँच समर्थ आदमी हैं और उसके पास इतना ही खेत है कि तीन ही आदमी के काम करने के लिए काफी है तो भी पाचों उसमे लगे ही रहते हैं। इसकी सत्यता देखने के लिए यदि तुम उनमें से किसी को अपने यहा नौकरी दे दो तो देखोगी कि परिवार के बाकी लोग खेती का काम खूब आसानी से पूरा कर लेते हैं। वैसे यदि तुम इस परिवार मे जाकर पूछोगी तो पाचों आदमी कहेगे कि उनके पास इतना काम है, कि उन्हे बिल्कुल फुरसत नही है। मैने जहा तक देखा है यदि इन दो किस्म के मनुष्यों की बेकारी जोड़ी जाय तो देहात के बालिग़ पुरुष की आबादी का कम से कम ⅓ हिस्सा सम्पूर्ण बेकारी मे चला जायगा। बेकारी का जो अंक आम तौर से कहा या लिखा जाता है उसके साथ यदि इस बेकारी का अक भी जोड़ दिया जाय तो परिस्थिति कल्पनातीत उग्र हो जाती है। अब चलो, हम लोग चर्खा-द्वारा इस बेकारी को हल करने की बाबत जो कहा करते हैं उसे भी जरा नज़दीक से देखें।

चरखे के समाधान पर विचार

हम जब बेकारी की बात करते हैं। तब सामने किसानों की ही बेकारी रहती है। लेकिन जब हम समस्या की बात करते हैं तो वह केवल पुरुषों की ही समस्या होती है। जब हम चर्खे से समाधान

करने के लिए निकलते हैं तो जिन बेकारों की हम बात करते हैं उन्हे छूते तक नही और हमारे तीन लाख कातने वालों मे ऊपर बताये हुए बेकारो मे एक फी सदी भी नहीं होते। चर्खा तो केवल स्त्रियां चलाती हैं। और अगर तुम गहराई से देखो तो वे उतना बेकार नहीं रहती हैं। इसी सिलसिले मे मुझे एक घटना याद आ गई। सन् १९३१ मे मै गिरधारी भाई के साथ दक्षिण भारत में खादी का आर्डर लेने के लिए निकला था। हमारे पास हर प्रकार के नमूने थे। उसमे ऊनी कपड़े का भी नमूना था। त्रिचनापल्ली भण्डार के व्यवस्थापक को जब गिरधारी भाई ने ऊनी कपड़े का सेट दिखलाना आरम्भ किया तो वे बहुत जोर से हँस पड़े। और कहने लगे मुझे यह क्यों दिखा रहे हैं? हमारे यहा तो सर्दी का मौसम होता ही नहीं। यहा तो केवल तीन मौसम हुआ करते हैं गर्मी, अधिक गर्मी, अत्यधिक गर्मी। इसी प्रकार हमारे देहात की किसान-स्त्रियों के लिए बेकारी का मौसम तो होता ही नही। उनके लिए तो सिर्फ दो ही मौसम होते हैं। एक कम भीड़ का, और दूसरा अधिक भीड़ का। अतः चर्खे के द्वारा हम देहाती जनता के लिए बहुत बड़ी आर्थिक समस्या का हल जरूर करते हैं। लेकिन गाव के सहायक धन्धे के रूप मे उनकी बेकारी दूर नहीं करते अतः अगर हम चर्खे को सच्चे प्रकार का सहायक धन्धा बनाना चाहते हैं तो हमको पुरुषों से भी चर्खा चलवाना होगा। इससे सिर्फ आर्थिक लाभ होगा, यह बात नहीं बल्कि गाव के खाली आदमी के धन्धे मे लगे रहने के कारण गाव के सारे खुराफात खतम हो जायँगे और समाज मे एक शान्तिपूर्ण व्यवस्था कायम होगी।

हम लोग गाव मे जब चर्खा स्कूल चलाते थे, तो इस बात की कोशिश करते थे कि गाव के खाली नौजवान भी चर्खा सीखे और उसे चलावे। इसमें ज्यादा सफल नहीं हो सके। ग्रामीण बेकारी को हल करने के लिए पुरुषों का चर्खा चलाना नितान्त जरूरी है, इस बात पर उतना महत्व उस समय नहीं देते थे जितना आज देते हैं।

इसलिए जब गांव के नौजवानों ने हमारे स्कूल में कातना सीख कर काम को जारी नही रक्खा तो उस ओर हम लोगों ने विशेष रूप से परिश्रम नही किया और ग्रामोद्योग की मार्फत ही हम इस समस्या को हल करने का विचार करते रहे। बाद को जब हम इस समस्या पर अधिक गहराई से विचार करने लगे तो मुझको ऐसा लगा कि हम चाहे जितना ग्रामोद्योग का काम फैलाये वह आज गांव की वर्तमान परि-

चर्खे की उपयोगिता

स्थिति मे विशेष लाभ-प्रद नही होगा। बल्कि खाली वक्त के लिए चर्खा ही उपयोगी हो सकता है। मै समझता हूँ कि चर्खा संघ को भी इस ओर ध्यान देना चाहिए। मै जब अपने साथी खादी कार्यकर्त्ताओं से इस विषय मे बातचीत करता हूँ तो वे कहते हैं कि इसकी मज़दूरी पुरुषों को आकर्षित करने लायक नहीं है। मैने देखा है कि गाव के पुरुष कभी कभी खाली बैठे रस्सी बटने-जैसे बहुत से काम करते हैं जिसकी मजदूरी चर्खे से ज्यादा नही पड़ती है। इसलिए पुरुषो का चर्खा न चलाने का कारण थोड़ी मज़दूरी नहीं है। बल्कि परम्परा से चर्खा चलाना स्त्रियों का काम होने के कारण पुरुषों मे यह संस्कार बैठ गया है कि यह स्त्रियों का ही काम है, पुरुषों का नहीं और तुमको मालूम है कि लोग संस्कार के विरुद्ध जल्दी कोई काम नही करना चाहते। इस-लिए वे इस काम को उठाते नहीं। लेकिन मै समझता हूँ कि कोशिश करने से पुरुष भी चर्खे को अपना लेगे। वस्तुतः हम लोगो ने अब तक इस ओर गम्भीरता के साथ कोशिश नहीं की। रहा संस्कार का सवाल, वह तो थोड़े दिनों में खतम हो सकती है जब हम लोग शुरू में कत्तिनों को धुनाई सिखाना चाहते थे तो धुनाई और ताँत छूने मे कत्तिनों का तीव्र विरोध था। परन्तु हम उस काम को लाज़िमी समझते थे। इसीलिए हमने किसी न किसी रूप मे उनके विरोध को खतम कर के उनमे धुनाई का रिवाज डाल ही दिया। इस तरह अगर हम ऊपर बताई हुई बातों का गम्भीरतापूर्वक विचार करके यह निश्चय कर ले

कि पुरुषों से चर्खा चलवाना ही है तो उनके दिमाग़ का परम्परागत संस्कार हमारे कार्य मे बहुत ज्यादा अड़चन नही डालेगा। जेल में फुरसत पाकर इस विषय में मै जितना भी विचार करता हूँ उतना ही मेरा विश्वास इस पर दृढ होता जा रहा है।

हाँ, मै चर्खा स्कूल की बात कर रहा था।—बीच मे प्रसङ्ग-वश साधारण बेकारी की बात छिड़ गई और मै बहक कर काफी दूर चला गया। लेकिन यह भी हमारे गाँव की समस्याओं मे से एक बड़ी समस्या है। इसलिए इतना बहकना भी शायद बेकार न होगा। इस तरह चर्खा विद्यालय खोल कर हम को दो लाभ हुए :

१—काफी देहाती परिवारो के साथ हमारा सम्बन्ध हो गया। और इससे साधारण ग्राम-संघटन कार्य मे हमको बहुत मदद मिली।

२—चर्खे की सख्या काफी बढ गई और सूत भी काफी तरक्की कर गया।

गाव के लोगों मे सम्बन्ध बढ़ने से और लोगों मे उत्साह पैदा होने से हम लोगों ने जो गाँव की पचायते कायम की थीं वे भी जाग्रत होने लगी। मै समझता हूँ कि आज मै काफी लिख गया और मैंने जो कुछ अपने अनुभव की सूचना इस पत्र मे लिखी है वह आम ख्याल से परे है। मुमकिन है, मेरा अध्ययन सकीर्ण हो इसलिए तुम इस पर विचार करके अपनी राय जरूर लिखना। मै स्वस्थ हूँ। आशा है, तुम लोग भी स्वस्थ होंगे। सब को नमस्कार ॥

---

[४२]

रात्रि-पाठशालाओं का संघटन

ता० ६—११—४१

तीन दिन कोई पत्र न लिख सका। जेल मे आजकल जो हल्ला-गुल्ला चल रहा है वह मै लिख ही चुका हूँ। अखबार के सम्वाद-

दाताओं ने तो अनुमानों की भरमार कर रक्खी है। सभी का ऐसा ढंग है कि मानों उनकी पहुँच खास वायसराय के दरबार तक है। जेल मे भी लोग अनुमान लगा रहे हैं कि किस सम्वाददाता की पहुँच कहाँ तक है। और उसी हिसाब से छूटने की बाबत वे जो कुछ बता रहे हैं उसकी कीमत लगा रहे हैं। इधर बापू जी के वक्तव्य ने लोगों को काफी परीशान कर रक्खा है। लोग कहते हैं कि राजबन्दियों को सरकार छोड़ रही है गाँधी जी ख्वाह-मख्वाह क्यों बीच मे कूद पड़े। कुछ लोग कहते हैं कि गाँधी जी ने बहुत अच्छा किया। राजबन्दियों को छोड़ कर मुल्क में किसी किस्म की राजनीतिक सहूलियत पैदा किये बिना सरकार कांग्रेस से क्या उम्मीद कर सकती है। लेकिन चूँकि अखबार के सम्वाददाता छूटने की ही खबर को अभी पुष्ट करते जा रहे हैं इसलिए गाँधी जी के वक्तव्य ने लोगों के उत्साह को किसी किस्म से कम नही होने दिया। स्वभावतः मै भी इस गप-शप में शामिल रहता हूँ। इसलिए मेरे कार्यक्रम मे भी गड़बड़ी पड़ रही है और पत्र लिखने मे भी ढिलाई हो रही है। लेकिन मै समझता हूँ कि अभी मै काफी दिनो तक जेल मे रहूँगा और ग्राम-सेवा की कहानी सारी लिख सकूँगा।

हाँ, मैने पहिले पत्र मे लिखा था कि हम लोगों ने फिर से चर्खे के प्रचार मे ध्यान लगाना शुरू किया। और धीरे-धीरे आस-पास के करीब सभी गाँवो मे कुछ-कुछ चर्खे चलवा दिये। चर्खा चलाने के सिलसिले मे हमने देखा कि पंचायत-द्वारा हमारे साथ उनका सम्बन्ध स्थापित हो जाने के कारण वे हमारे काम मे ज्यादा दिलचस्पी लेते हैं। इससे हमे ज्यादा उत्साह मिला। और हम दूसरे रचनात्मक कार्य्यक्रम को देहात मे चालू करने की बात सोचने लगे।

शुरू मे जब हम रणीवाँ आये थे तब किस प्रकार रात्रि-पाठशाला द्वारा शिक्षा का कार्यक्रम हमने शुरू किया, यह मै पहले ही लिख चुका हूँ। उस काम को हम लोगों ने गौण रूप से बराबर जारी रक्खा

साथ-साथ उद्योग और शिक्षा की आवश्यकता

था। इधर जब किसानों से विस्तृत रूप मे घनिष्ठता होने लगी तब से शिक्षा के अभाव मे उनकी बेबसी की हालत को हम लोग अधिक महसूस करने लगे। हमने देख लिया कि केवल ग्रामोद्योग से देहाती जीवन सुधर नहीं सकता है, उद्योग और शिक्षा को साथ ही साथ चलाना है। मै जितना उद्योग और शिक्षा के काम करता जाता हूँ उतना ही मेरा विश्वास इस विषय मे दृढ़ होता जाता है। जब मै सरकारी ग्राम-सुधार के महकमा के चार्ज मे था तब हमने स्काउट मास्टरो का एक शिक्षण-शिविर खोला था। एक दिन मै ग्रामोत्थान कार्य के लिए गाँवों मे उनका क्या कर्तव्य होगा, इसकी बाबत कुछ बातें बता रहा था। बाद को जब मैंने उनको प्रश्न पूछने को कहा तो उनमे से एक भाई ने हमसे पूछा कि ग्रामसुधार के लिए पहले ग्राम द्योग की आवश्यकता है या शिक्षा की ? उनको भली-भाँति समझाने के लिए मैंने उनसे पूछा—"तुम यह बताओ कि भात बनाने के लिए पहले चावल की जरूरत पड़ती है या पानी की।" प्रश्न सुनकर लोग हँस पड़े लेकिन मेरा मतलब समझ गये। सचमुच मै समझता हूँ कि ग्रामसुधार के लिए उद्योग और शिक्षण दोनों साथ-साथ चलने चाहिएँ। अतः उद्योग विद्यालय की स्थापना के साथ-साथ गाँव की शिक्षा के प्रति हमारा ध्यान आकृष्ट हुआ लेकिन सवाल यह था कि हम शुरू कैसे करें। शिक्षा-प्रसार करने के लिए तो काफी धन की आवश्यकता है। बाहर से धन लाकर एकाध पाठ-शाला चलाई जा सकती है। लेकिन व्यापक रूप से काम कैसे चले ? अतः हम लोगों ने यह काम पंचायतो के द्वारा ही चलाने का निश्चय किया। इससे दो फायदे थे। प्रथम स्कूल की व्यवस्था करने मे उनके लिए स्थायी कार्यक्रम हो जाता है। इससे उनमे धीरे धीरे व्यवस्था-शक्ति बढ़ेगी और ग्रामीण समस्याओं के प्रति दिलचस्पी होगी। कई पुश्तो से प्राचीन ग्राम-संस्थाओं के टूट जाने से गाँव वालों मे अब

सम्मिलित कार्य करने का सस्कार ही नहीं रह गया । इसलिए हमको पंचायत कायम करने मे काफी कठिनाई पड़ती थी । अतः रचनात्मक काम के जरिये हम पंचों मे खोये हुए संस्कारों को फिर से स्थापित कर सकेंगे। दूसरा फायदा यह था कि अगर हम शिक्षा का काम स्थानीय साधन और व्यवस्था-द्वारा चला सकें तो गाँव में स्वावलम्बी व्यवस्था का सूत्रपात्र हो जायगा । गाँव वालो के सामने जब हमने इस प्रस्ताव को पेश किया तो वे सहर्ष इस ओर कदम उठाने के लिए तैयार हो गये लेकिन वे विद्यालय का एकदम से सारा खर्चा सँभालने मे असमर्थ थे । हम लोगों ने उनसे बीच का समझौता कर लिया ।

गाँव के साधनों से शिक्षा

गाव के लोग दिन मे स्कूल में नहीं पढ़ सकते । सब लोग या तो मवेशी चराते हैं या घास छीलते हैं या खेती मे काम करते हैं । इसलिए गांव मे व्यापक रूप से रात्रिपाठशाला ही चल सकती है । अतः हम लोगों ने गाव वालो से निम्न प्रकार का प्रस्ताव किया ।

१. गाव मे जो लोग कुछ पढे-लिखे हैं और घर मे दिन में गृहस्थी का काम करते हैं, वे रात मे फुरसत के समय रात्रि-पाठशाला मे पढ़ा दे ।

२. विद्यार्थियों के पढ़ने का मकान, बैठने का आसन औरलालटेन तथा उसके तेल का इन्तजाम पचायत करे ।

३. शिक्षक के कुछ परितोषिक का इन्तजाम आश्रम कर देगा । शुरू में हम लोगों ने शिक्षक का परितोषिक २) मासिक रक्खा था फिर शिक्षा विभाग से कुछ सहायता मिल जाने के कारण दो की जगह तीन रुपया कर दिया था । हमने यह सोचा था कि कुछ साल चलाने के बाद पचायत का संघटन अधिक मजबूत होने पर विद्यालय को सम्पूर्ण जिम्मेदारी भी गाव के लोग अपने ऊपर ले सकेंगे और आश्रम अपना साधन दूसरे क्षेत्र मे विद्यालयो की सख्या बढाने मे लगा सकेगा ।

इस प्रकार हम आश्रम के चारों तरफ़ २५ रात्रि-पाठशालाएँ

कायम कर सके। पाठशालाओं के कायम होने से शिक्षा का प्रसार तो होता रहा, साथ साथ लड़कों में संध्या समय का तमाखू पीना, एक दूसरे को गाली देना भी कम होने लगा। गाँव में लड़के आपस में इतनी गन्दी गन्दी गाली देते हैं और वे गालियाँ उन के माँ-बाप किस प्रकार सिखाते हैं, इसका जिक्र मै पहले ही कर चुका हूँ। इसलिए

पाठशालाओं का प्रभाव

गाली देने के कुटेव को सुधारना भी ग्राम-सेवक का एक खास काम है। पढ़ने मे फँसे रहने के कारण गाली-गालौज तो हो ही नहीं सकती थी पर उसके अलावा भी हम लोग जब गाँव मे जाते थे तो लड़कों से पूछा करते थे कि किसने कितनी गाली दी। शिक्षकों से भी पूछते थे। इस तरह उस ओर विशेष ध्यान देने से कुछ फायदा ही रहा। ग्राम-सेवक अगर अपना प्रोग्राम चलाते हुए इस प्रकार गाली के खिलाफ प्रचार करते रहें तो मेरे ख्याल से इस दिशा मे काफी सुधार हो सकता है। वैसे पाठशाला का कार्यक्रम इस काम के लिए तो सर्वोत्तम है ही। मै जब रात को पाठशालाओं मे जाता था तो मुझको एक बात जानने की बड़ी उत्सुकता रहती थी। मै प्रत्येक बच्चे से खूब बातें किया करता था। उनसे पूछना कि वे दिन मे क्या काम करते हैं। मुझको मालूम हुआ कि उनमें ६० फीसदी गोरू चराते हैं। जिससे पूछूँ "तू दिन भर काब करते हो रे"। जवाब मिलता है—"गारू चराइत हय।" पूछता हूँ—"कय ठो गोरू?" तो जवाब मिलता है "एक ठो या दुइ ठो।" ताज्जुब होता है एक ठो या दुइ ठो मवेशी चराने के लिए एक एक बच्चा! इस प्रकार बच्चों का समय कितना चौपट होता है, इसका हिसाब कौन रखता है। अगर एक या दो आदमी गाँव भर के मवेशी चराने का काम कर लें तो गाव के सब बच्चे शिक्षा के लिए खाली हो जायें। लेकिन इन बातों की व्यवस्था ही टूट गई है। देखने मे यह समस्या छोटी है लेकिन राष्ट्र को कुछ करना है तो इस समस्या को महत्त्व देना ही है। ग्राम-

सेवक के लिए पंचायत की मार्फत इसे भी हल करना चाहिए। मैं अभी तक इस दिशा में कुछ कर नही सका। लेकिन पंचायत की व्यवस्था कुछ ढंग पर आ जाने से इस ओर ध्यान देने का विचार है ही। सब बाते तो एक साथ हो भी नही सकती।

---

[४३]

प्रौढ़-शिक्षा का प्रयोग

१२—११—४१

उस दिन मैने रात्रि पाठशाला के जरिये किस प्रकार ग्रामीण-शिक्षा के प्रश्न को हल करने की कोशिश हम करते रहे, इसकी बाबत कुछ प्रकाश डाला था। समय न होने के कारण उस दिन मै पूरा-पूरा नही लिख सका था इसलिए आज फिर उसी विषय पर लिखने बैठा हूँ।

गाँव मे पाठशाला खुल जाने से ग्रामीण-जीवन में एक नई जागृति पैदा होने लगी। स्कूल के विद्यार्थी रात्रि को पढते थे; राष्ट्रीय गान सीखते थे और कभी-कभी राष्ट्रीय आन्दोलन की बाते भी करते थे। इससे गाँव मे शान्ति और चहल-पहल बनी रहती थी। जो लोग स्कूल मे पढते थे। उनमे प्रति दिन एक साथ उठने-बैठने के कारण मित्रता और सद्भावना पैदा होती दिखाई देती थी। इन लोगो ने दिन मे भी, फुरसत पाने पर, आपस मे तरह-तरह के खेल-कूद भी करना शुरू किया था। इस प्रकार रात्रि पाठशाला खोलने से अक्षर-ज्ञान के अलावा गाव मे कई प्रकार का जीवन बनने लगा।

हमारी रात्रि-पाटशालाओं मे दो प्रकार के विभाग थे। एक बच्चों का, दूसरा प्रौढ विभाग। बच्चों को तो हम सीधे तरीके का अक्षरज्ञान कराके आगे बढते थे। लेकिन हम लोगों ने देखा कि बच्चों के साथ अगर बड़ी उम्र के लोगों को भी पढ़ाते हैं तो एक तो उसमे बहुत देरी होती है और फिर प्रौढ लोग बच्चों के साथ-साथ

चलने मे ज्यादा दिलचस्पी नहीं लेते है। इससे हमारे सामने एक नई समस्या खड़ी हो गई कि हम प्रौढों को किस पद्धति से शिक्षा दे। जब मै उन दिनो रात्रि-पाठशालाओ मे जाया करता था तो बच्चों और प्रौढो का एक साथ पढना कुछ अस्वाभाविक-सा लगता था। लेकिन न तो मुझको इस विषय का अनुभव ही था और न मैने कभी इस पर गम्भीर विचार ही किया था। इसलिए तात्कालिक समाधान न मिलने के कारण मैने उनको उसी तरह चलने दिया और इस विषय पर गम्भीर विचार करने लगा। ठीक इन्ही दिनों कांग्रेसी सरकार ने शिक्षा प्रसार-विभाग खोल कर प्रौढ-शिक्षा के क्षेत्र मे बहुत जोरों से कार्य्य करना शुरू किया। सरकार ने शिक्षा-विशारदों के परामर्श से कुछ ऐसी पुस्तकें तैयार कराईं जिनसे बड़ी उम्र के लोगों को जल्दी पढाया जा सके। मैंने जैसे ही इस बात को सुना, लखनऊ जाकर शिक्षा प्रसार आफिसर से मिला और इस योजना की बाबत आलोचना की। साथ ही विभाग से खर्चे का भी कुछ इन्तज़ाम कर लिया। शिक्षा प्रसार-आफ़िसर ने विभाग से विद्यार्थियों के पढने के लिए किताबें भी मुफ़्त मे दे दी। यद्यपि शिक्षा प्रसार की पुस्तके मुझको बहुत अधिक पसन्द नहीं आईं फिर भी हमारी समस्याएँ किसी न किसी प्रकार हल हो जाने से मै उस चिन्ता से कुछ मुक्त अवश्य हो गया। बाद को "शान्तिपुर प्रौढ शिक्षा-योजना" का कुछ चार्ट और साहित्य देखा। इस योजना के रचयिता श्री माडे साहब गत बीस वर्षों से प्रौढ-शिक्षा-पद्धति का प्रयोग कर रहे थे। उन्होंने युरोप और अमेरिका के विभिन्न प्रदेशों मे घूम कर प्रौढ शिक्षा की बाबत अध्ययन भी किया था। कांग्रेस के पद ग्रहण करने से उनको हर प्रकार की सहूलियत मिली और उन्होंने गोरखपूर मे प्रौढ-शिक्षा के शिक्षकों के लिए विद्यालय खोल दिया। जब मुझको विद्यालय खुलने का समाचार मालूम हुआ तो मैने आश्रम के भाई धनराजपुरी (जो कि देहात मे रात्रि-पाठशालाओं

प्रौढ शिक्षा का आरम्भ

का संघटन कर रहे थे) को गोरखपुर माण्डे साहब के विद्यालय में शिक्षा पाने के लिए भेज दिया और वे तीन माह में वहाँ की सब पद्धतियों की जानकारी हासिल कर के लौट आये। भाई धनराज ने उसी के साथ स्काउटिंग की शिक्षा ले ली, यह अच्छा ही हुआ। मैंने देखा कि उनकी स्काउटिंग की शिक्षा भी हमारे काम मे सहायक होगी। मैंने पहिले एक पत्र मे लिखा था कि केवल अक्षर-ज्ञान से ही शिक्षा का काम पूरा हो जाता है, इस पर मैंने कभी विश्वास नहीं किया। शिक्षा के साथ सफाई और व्यवस्था के साथ रहना, घर और गाँव को साफ रखना, सम्मिलित जीवन व्यतीत करना, स्वावलम्बन की वृत्ति रखना और आपस मे मेल और सहयोग करना अगर हम नहीं कर सकते हैं तो केवल अक्षर-ज्ञान कर के उनके जीवन मे क्या परिवर्तन ला सकते हैं ? अतः धनराजपुरी के स्काउटिंग के ज्ञान का हम लोगों ने फायदा उठाने की कोशिश की। सब से पहिले हम रात्रि-पाठशाला के शिक्षकों को ही शिक्षा देने मे लग गये। वे रात्रि को पाठशाला में पढाते थे, और दिन को १० बजे से ४ बजे तक आश्रम में आकर प्रौढ़-शिक्षक और स्काउटिंग की शिक्षा लेने लगे। उनको हम माण्डे साहब की पद्धति के अलावा गाँव की समस्याओ के विषय पर भी शिक्षा देते रहे। स्काउटिंग और देहाती गाना भी सिखाते थे। तीन मास शिक्षा पाने के बाद खेत काटने और बोने का मौसम आ जाने से शिक्षकों को दिन मे फुरसत नहीं मिलती थी और हमने भी शिक्षा-केन्द्र बन्द कर दिया। हाँ, मैं एक बात लिखना भूल गया। हमने उनको कातने धुनने की भी शिक्षा दे दी थी और स्वावलम्बी बनने के लिए सप्ताह मे २००० गज सूत कातना भी अनिवार्य कर दिया था।

स्काउटिंग का आरम्भ

इस प्रकार रात्रि-पाठशालाओं को हम धीरे-धीरे अधिक संगठित और व्यवस्थित करने लगे और इस केन्द्र की मार्फत गाँव की दूसरी

समस्याओं को हल करने की योजनाएँ बनाने लगे। इस दिशा मे सफलता भी मिलने लगी।

जब रात्रि पाठशाला के शिक्षकों ने प्रौढ़ शिक्षा के तरीकों को समझ लिया तब विविध प्रकार की ग्राम-समस्याओं के अध्ययन से उनका दृष्टिकोण विस्तृत हुआ तथा उनका बौद्धिक विकास भी काफी हुआ। तब वे पाठशालाओं को अधिक योग्यता और उत्साह के साथ चलाने लगे। फिर भी हमारी दृष्टि मे उनमें बहुत कुछ कमी रह गई थी। खास कर व्यवस्थित जीवन पालन करने के प्रति उनको हमने बाद में भी उदासीन ही पाया। जब तक शिक्षक खुद इन बातों का पालन नहीं करेगा तब तक वह पाठशाला के विद्यार्थियों को क्या बतायेगा? हम लोग भी तीन महीना की ट्रेनिंग मे इस दिशा मे उसके अन्दर खास सस्कार पैदा करने मे असमर्थ रहे। अतः मैने यह जरूरी समझा कि शिक्षकों को २४ घंटा अपने शिविर में रख कर कुछ दिन शिक्षा दी जाय।

खेती के काम की भीड़ खतम हो जाने के बाद हम लोग शिक्षण-शिविर खोलने का अच्छा मौका जान कर उस ओर विचार करने लगे। मैने तुमको पहिले लिखा था कि हमारी ग्राम-सेवा का हर एक कार्यक्रम ग्रामवासियो को स्वावलम्बी समाज-रचना की ओर ले जाने का होना चाहिए। इसलिए मुझको हमेशा चिन्ता रहती थी कि हम जो कुछ काम करे उसका रूप ऐसा हो कि वह हमारे ग्राम-सगठन के आखिरी उद्देश्य मे किसी न किसी अश मे सहायक हो। अगर हम बाहर से कुछ आर्थिक सहूलियतें पैदा भी कर दें या बाहर से सघटन करने के लिए सेवकों को भेजे तो उसका भी ऐसा रूप होना चाहिए कि गाँव के ऊपर यह प्रभाव पड़ता रहे कि हमारी यह मदद अस्थायी है और अन्त मे सारी व्यवस्था उनको ही करनी है। इसी दृष्टिकोण को सामने रख कर मैने शिक्षा-शिविर

स्वावलम्बी समाज-रचना का लक्ष्य

आश्रम में ही खोला और शिविर का प्रबन्ध दो-तीन गाँव की पंचायतों के जिम्मे रक्खा। यह लिखने मे मुझको खुशी है कि ग्राम-पंचायतो ने इस जिम्मेदारी को खूबी से निभाया। गाँव के पास एक विस्तृत मैदान में जब मै शिक्षण शिविर का देखता था तो खुश हो जाता था। दूर से ऐसा लगता था मानो सिपाहियों की छावनी पड़ी है। शिविर बनाने का सारा सामान भी उन लोगो ने इकट्ठा किया था। शिविर को रात्रि पाठशाला के सेवकों ने अपने हाथ से अपनी कल्पनानुसार ही बनाया था। इसका प्लैन और बनावट इतने सुन्दर ढंग की थी कि संयुक्त प्रान्त के स्काउट आर्गनाइज़र श्रीयुत् डी० एल० आनन्द राव जब रणीवाँ आये और उन्होंने इस शिविर को देखा तो उनको बहुत आश्चर्य हुआ और उन्होंने कहा कि अगर मै स्वयं भी इस शिविर को बनाता तो इससे बेहतर नही बना सकता था। कला की दृष्टि से भी शिविर बहुत सुन्दर था। यह ठीक है कि इन लोगो ने जब पहिले आश्रम मे तीन महीने की शिक्षा पाई थी तो मैं उनको सजावट की कला की बाबत भी कुछ बताता था। लेकिन वह शिक्षा भी तीन ही महीने की थी। गाँव के किसान का, घर के नौजवानों के दृष्टिकोण का केवल तीन महीने की ही ट्रेनिंग से इतना विकास हो सकता है कि अगर तुम उसको देखती तो शिक्षा-द्वारा गाँव के लोगों को कितनी जल्दी बदला जा सकता है, इसकी अन्दाज कर सकती। गाव के लोग अपने को बदलना ही नही चाहते हैं, वे अपने गन्दे और रुढिपूर्ण जीवन मे पड़े रहना चाहते हैं, ऐसी बात करना कुछ लोगों का फैशन-सा हो गया है। लेकिन मेरा अनुभव तो दूसरा ही है। गाँव के लोग जितनी जल्दी अपने विचार और ढंग बदल सकते हैं, उतना शहर के पढ़े-लिखे लोग नही। एक साधारण सी बात तो सभी जानते होगे कि एक शहरी पढा लिखा आदमी जब गाँव मे जाता है तो परीशान हो जाता है। मैंने तो उनको एक दिन मे घबड़ाते हुए देखा है।

गाँव के लोग शहरी वातावरण मे कुछ असुविधा ज़रूर अनुभव करते हैं, लेकिन हम लोग जैसे गाँव के वातावरण से घबराते हैं वैसे वे घबड़ाते या परीशान नही होते। बात तो कुछ और ही है। हम गाँव मे जाते है, उनकी बातों को अश्रद्धा से देखते हैं; उनके तरीकों के प्रति नाक-भौं सिकोडते हैं और उपदेशक वृत्ति से उनको कहने लगते हैं—"तुम्हारी यह बात ख़राब है, वह बात खराब है तुमको वैसा करना चाहिए, तुमको ऐसा करना चाहिए।" और यह सब कहकर वापस चले आते हैं। तमाशा यह है कि उनकी ज़िन्दगी की तब्दीलियों की बाबत जो उपदेश करते हैं उसका अगर विश्लेषण करके देखा जाय तो मालूम होगा कि हमारे अपने जीवन के तरीके की नकल उनके जीवन के सुधार में विशेष सहायक नहीं होगी। यही कारण है कि वे हमारे बताये हुए तरीके से बदलना नहीं चाहते हैं।

सेवक-शिक्षण-शिविर ढाई महीने तक रक्खा गया। उसमे स्काउटिंग, चर्खा, झोला बेल्ट आदि का बुनना, अनुशासन, सफाई और सहयोग से रहना इत्यादि बातों की शिक्षा दी गई। जो आदत शिविर में डाली गई, उसको कायम रखने के लिए हम लोग उनके घरों में पहुँचा करते थे क्योंकि अगर शिक्षक के जीवन तथा रहन सहन मे स्थायी परिवर्तन हो सका तो रात्रि-पाठशाला के शिक्षार्थियों के जीवन में भी उसका असर पड़े बिना नहीं रह सकेगा।

इस प्रकार रात्रिपाठशाला और स्काउटिंग की मार्फत ग्राम-सेवा और संघटन की दिशा मे एक कदम और बढ़ सके। धीरे-धीरे हम लोगों ने रात्रिपाठशाला के शिक्षकों को ग्रामोद्योग की किसी न किसी दस्तकारी में शिक्षा लेने के लिए प्रोत्साहित किया और उनमे आधे से अधिक नौजवान दिन में ग्रामोद्योग विद्यालय मे आकर शिक्षा भी लेने लगे। उद्योग की मार्फत ग्राम-सगठन की कल्पना की बाबत मैं पहिले ही लिख चुका हूँ। उस दिशा मे हमने क्या-क्या प्रयोग किया और व्यावहारिक रूप से किस तरह उस दिशा मे आगे बढ़ने का प्रयत्न

किया इसकी बावत भविष्य मे फिर कभी लिखूँगा। आज समय अधिक हो गया इसलिए पत्र यहीं समाप्त करता हूँ। नमस्कार।

---

[४४]

सरकार की सहायता का असर

१६—११—४१

इधर कई दिनों से पत्र नहीं लिख सका। इसका कारण वही है—छूटने की हलचल।

आज सुबह का दृश्य खास तौर से देखने लायक था क्योंकि आज के अखबार मे होम मेम्बर साहब का एलान निकलने वाला था। बहुत सबेरे से हर एक बैरिक के लोग इस आशा से बैठे हुए थे कि अभी खबर मिलेगी कि सब लोग कल-परसों तक छूट जायँगे। अखबार आते ही ऐसी छीना-झपटी हुई कि वह दृश्य देखने ही लायक था। लेकिन पंद्रह मिनट के अन्दर सारी बैरिकों में ऐसा सन्नाटा छा गया कि मानो किसी ने सम्मोहन फूँक दिया हो। मैक्सवेल साहब का बयान सुनकर जल्दी छूटने से लोग एकदम निराश हो गये। मैंने भी इस शांति का मौका पाकर पत्र लिखना शुरू कर दिया।

पिछले पत्र मे मैंने रात्रिपाठशाला का संघटन और शिक्षकों की शिक्षा के लिए शिक्षण-शिविर खोलने की बावत लिखा था। मेरा विचार था कि शिविर के खतम हो जाने के बाद शिक्षकों के प्रति ध्यान देकर उनके घर का पहिले सुधार करूँगा, फिर धीरे-धीरे विद्यालय के दूसरे घरों का सुधार होता जायगा। क्योंकि मुझको भय था कि अगर शिक्षकों के घर के प्रति हम खास ध्यान नहीं देते हैं तो शिविर में रह कर वे जो कुछ सफाई, अनुशासन, व्यवस्था, सहयोग और कला की शिक्षा पा चुके हैं घर के वायुमण्डल में सब कुछ भूल जायँगे। लेकिन

एक महीने मे ही पकड़ा गया। मेरे पकड़ जाने के कारण वह काम हो नहीं सका। भाई धनराज पुरी जितना कर सकते थे उतना चलाते रहे। पाठशाला का भी काम चलता रहा।

देहात के सघटन की बाबत मैं करीब करीब सब कुछ लिख चुका। वैसे तो पंचायतों की मार्फत गाँव के कुँवो की मरम्मत करना, सड़के ठीक कराना आदि छोटे छोटे बहुत से काम साथ-साथ होते ही रहे। परन्तु निश्चित योजना के अनुसार अब तक हम रात्रिपाठशाला के ज़रिये शिक्षा कार्यक्रम तक ही पहुँच पाये हैं। उद्योग केन्द्र की मार्फत ग्राम सेवा योजना का सूत्रपात तो हो गया था। लेकिन वह योजना अभी तक ठीक-ठीक अपने स्वरूप पर नही पहुँची। इसकी बाबत मैं फिर लिखूँगा। आज पिछले दो वर्ष मे केन्द्रीय आश्रम की किस प्रकार प्रगति हुई उस पर कुछ लिखना चाहता हूँ।

सम्पूर्ण ग्रामोद्योग विद्यालय की स्थापना

वैसे तो कताई धुनाई बुनाई और लकड़ी का कार्य सिखाने का कार्य-क्रम साल डेढ साल से चल रहा था और धीरे-धीरे कागज का काम भी थोड़ा-बहुत शुरू हो गया था। लेकिन काँग्रेस के पद ग्रहण करने पर ग्रामोद्योग विद्यालय की सम्पूर्ण योजना के लिए समूचा धन मिल गया। १८ नवम्बर सन् ३८ को हमने सम्पूर्ण ग्रामोद्योग विद्यालय कायम कर दिया। इससे हमारी योजना को जल्दी से अच्छी प्रगति मिल गई। जो काम हम पाँच-छः साल मे कर सकते थे वह एक ही साल मे हो गया। सन् ३८ के नवम्बर से लेकर सन् ३९ के आखिर तक आश्रम मे एक विराट चहल पहल होती रही। हम एक जंगल मे पड़े हुए थे। जितने लोग थे उनके रहने के लिए मुश्किल से काफी जगह थी। एकाएक ७५ विद्यार्थी, शिक्षक और दूसरे कार्यकर्त्ता मिलाकर आश्रम की आबादी सवा सौ के करीब हो गई। इतने लोगों का निवास-स्थान, उद्योग के सब विभागों के लिए मकान, औज़ार और कच्चे माल को व्यवस्था सब कुछ इसी वर्ष के

अन्दर करनी थी। शहर होता तो काम कुछ आसान हो जाता। लेकिन रणीवा कितना अन्दर का गाँव है, इसे तुमने देख ही लिया है। इसलिए यह सारी व्यवस्था करने में हमारे सभी कार्यकर्त्ताओं को रातदिन एक कर देना पड़ा। साथ ही कार्यकर्त्ता शिक्षण का काम भी जारी रखना था। आश्रम के खादी विभाग से और सरकारी विभागों से कार्यकर्त्ताओं की माँग हमेशा बनी रहती थी। कोई विद्यार्थी अगर थोड़ा बहुत काम चलाने लायक काम सीख लेता था तो तकाजा के कारण उसे कच्ची हालत मे ही भेज देना पड़ता था और खाली जगह नये विद्यार्थियो को भरना पड़ता था। ऐसी परिस्थिति मे हम आश्रम की किसी किस्म की भीतरी व्यवस्था नही कर पाते थे। बल्कि पहले की व्यवस्था और नियमित आश्रम जीवन मे भी गड़बड़ी पैदा हो गई। इसी कारण विविध विषयों की शिक्षा के लिए भी हम कोई निश्चित पाठ्यक्रम ठिकाने से नहीं बना सके।

परिस्थिति को देखते हुए रोज़ कामचलाऊ पाठ्यक्रम बना के उन को शिक्षा देते रहे। ऐसी दिशा मे आश्रम की व्यवस्था और आश्रम-जीवन मे बहुत कुछ ढिलाई आ गई। लेकिन ऐसी परिस्थिति में ऐसा होना अनिवार्य समझ कर मैने विद्यालय को काममाव बनाने मे ही सारी शक्ति लगा दी क्योंकि मुझको विश्वास था कि अगर सरकारी मदद का फायदा लेकर विद्यालय को अपने मन-मुताबिक बना लें तो फिर इन गड़बड़ियों को छः महीना या साल भर मे ठीक कर लूँगा; लेकिन अगर हम परिस्थिति का फायदा नहीं उठाते हैं तो मुझको अपनी कल्पित योजना का सूत्रपात करने में ही वर्षों लग जायँगे। सरकारी साधन एक साथ मिल जाने से और जल्दी से बहुत ज्यादे काम कर लेने का बोझ पड़ जाने से एक नुकसान और हुआ। उसने हमे ख़र्चे के मामले में कुछ लापरवाह कर दिया। अगर हम धीरे-धीरे चल पाते तो समय जरूर लगता पर लोगों में सस्ते में काम

कठिनाइयाँ और त्रुटियाँ

चलाने की आदत बनी रहती चाहे वे काम सरकारी पैसे से क्यो न करते लेकिन एक दम से इतने काम की व्यवस्था करने मे उस ओर सावधान होना सम्भव नही हो सका। खर्चे के इस उदार तरीके ने हमारे काम में कुछ दूसरी खराबियाँ भी पहुँचाई।

मैने तुमको किसी पत्र मे लिखा था कि अगर हमको व्यापक रूप से ग्राम-सेवा का काम करना है तो हम हमेशा वाहर के साधन से नहीं कर सकते, वल्कि ग्रामीण जनता को उनकी शक्ति और साधन का परिचय कराकर उन्हीं से अपना सघटन कराना है। चर्खा, ग्रामोद्योग, खेती की उन्नति के तरीके वताकर उनके साधनो के वढाने का प्रयत्न हम ज़रूर करते रहेगे परन्तु हमको उनका सारा संघटन उनके ही साधन से और उन्हीं से कराना है। वापू जी कहते हैं कि यदि हमने ठीक भावना से चर्खा चला लिया और भारत के सात लाख ग्रामों मे रचनात्मक कार्य पूरा कर लिया तो विना सत्याग्रह के ही हमको स्वराज्य मिल जायगा। क्योकि वापू जी के रामराज्य का आशय समाज की शासनहीन और शातिमय व्यवस्था से ही तो है। अगर हमारी ग्राम-सेवा व ग्राम-सघटन इसी आदर्श की ओर ले जाने का ही लक्ष्य रखता है, तो हमारा कोई भी कार्यक्रम होगा वह ग्रामवासी को सर्वा गीण स्वावलम्बन की ओर ही ले जाने की दिशा मे होना चाहिए। अगर वाहर से किसी किस्म की मदद होती है तो उस मदद के साथ हमारा यह दृष्टिकोण सदा जाग्रत रहना चाहिए कि ये वाहरी सहायताएँ आज की असहाय परिस्थिति मे अस्थायी व्यवस्था हैं। एकाएक इतने वड़े पैमाने पर सरकारी मदद से आश्रम के ही संघटन को देखकर गरीब ग्रामवासियों का चकाचौध होना स्वाभाविक था। स्वावलम्बन की दिशा मे हम उनके अन्दर अव तक जो कुछ भी भावना पैदा कर पाये थे उसमे ढिलाई दिखाई देने लगी और अव वे हर वात मे सहायता की अपेक्षा करने लगे। श्रद्धा तो वे अव भी करते थे। लेकिन श्रद्धा मे अव पहले जैसा सात्विक प्रेम-भाव न

होकर उसमें राजसिक सम्मान की वृत्ति आने लगी। कुछ तो कांग्रेस का मन्त्रिपद होने से यह हुआ और अगर आश्रम के विद्यालय को सरकारी धन नहीं मिलता, तो भी होता लेकिन बहुत अंश में तो पैसे की सहूलियत और हमारी उदारता से खर्च करने के कारण हुआ, ऐसा कहना होगा।

इस प्रकार एक ओर अगर हम अपनी कल्पित योजना की दिशा मे आगे बढ़े तो इष्ट भावना की दिशा मे कुछ पीछे भी हटे, लेकिन मैंने देखा कि कुल मीज़ान मे हम आगे ही रहे। क्योंकि दूसरे वर्ष से हम परिस्थिति सुधारने मे लगे तो वह धीरे-धीरे सुधरती ही गई।

दूसरे साल की बात दूसरे दिन लिखूँगा। आज अब विदाई लेता हूँ।

---

[४५]

योजना को सही दिशा में

२०—११—४१

मालूम नहीं, कल का पत्र पढ़कर तुम पर क्या प्रभाव पड़ा, क्योंकि आम तौर से जो मित्र हमारे काम से सहानुभूति रखते हैं वे इस प्रकार की परिस्थिति से घबड़ाते हैं। कहते हैं, तुमने सरकारी मदद लेकर यह क्या मुसीबत मोल ली। इस विराट रूप ने तुम्हारे असली मकसद को ही ख़त्म कर दिया। तुम अपनी चीज़ भी खो बैठे। शायद तुमको भी ऐसा ख्याल हो। लेकिन क्या ग्रामोद्योग विद्यालय की स्थापना करने से हम अपनी योजना या लक्ष्य से अलग हो गये? या उसे किसी प्रकार का नुकसान पहुँचा? ऊपरी ढंग से तो यह जरूर मालूम होता है कि हम पीछे हटे। तात्कालिक हानि अवश्य कुछ दिखाई पड़ती है लेकिन हकीकत यह है कि जहाँ हम

एक दिशा में एक कदम पीछे हटे, तहाँ दूसरी दिशा में कई कदम आगे बढ़े। तो क्या इस किस्म की तूफानी परिस्थिति से संस्था को कभी नुकसान नहीं होता ? हाँ, ऐसी सस्था को नुकसान जरूर पहुँचता है, जिसके सामने योजना और लक्ष्य स्थिर और साफ नहीं होता है। लेकिन जिसके सामने अपना दृष्टिकोण साफ रहता है वह चाहे जितनी इमदाद सरकार से ले या दूसरी अनुकूल परिस्थितियों का फायदा उठाकर अपने कदम की रफ्तार तेज कर दे वह उस कदम को अपनी योजना के अनुसार ही रक्खेगा। संभव है, अनुकूल परिस्थिति के उत्साह मे वह कुछ जरूरत से ज्यादे तेज चल दे और उसके अगों मे थकावट आ जाय लेकिन वह दिशाभ्रष्ट नहीं होगा। वैसी हालत मे किञ्चित् विश्राम से ही सब टीक हो जायगा। लेकिन अनुकूल परिस्थिति से जितना वह अधिक आगे बढ गया वह उसके लिए स्थायी लाभ ही होगा और लक्ष्य पर पहुँचना आसान हो जायगा। एक दृष्टि से देखा जाय तो इस परिस्थिति से फायदा ही हुआ। एकाएक आर्थिक सहूलियत के मिल जाने के कारण खर्च करने का हमने जो ढंग रक्खा है उससे आश्रम जीवन पर और ग्रामीण जनता के दृष्टिकोण पर जो असर पड़ा उसका ठीक-ठीक अध्ययन हमने कर लिया और उसको दूर करने की आवश्यकता भी हम अनुभव कर रहे हैं। सेवकों के लिए विभिन्न परिस्थितियों में किस तरीके से चलना चाहिये उसकी एक बहुत बड़ी शिक्षा भी हमे मिल गई। भविष्य मे इस अनुभव से लाभ उठाकर ऐसी परिस्थिति में सावधानी से अपने को सँभाल कर हम चल सकेंगे। वास्तविक व्यक्ति, संस्था और समाज जब तक परिस्थिति के उतार-चढाव के बीच से नहीं गुजरता है, जब तक उसको बाढ़ और आंधी का सामना नहीं करना पड़ता तब तक उनके अन्दर न तो मजबूत जीवन ही आ सकता है और न वे किसी किस्म की प्रगति ही कर सकते हैं। घेरे के अन्दर रहकर कोई आगे नही बढ़ सकता। मेरा तो स्थिर विश्वास है कि अगर हमारा लक्ष्य और योजना निश्चित है तो ऐसी

परिस्थितियों से लाभ ही होता है। स्थायी-हानि की तो मुझको कोई गुंजाइश नहीं दिखाई देती।

इसलिए मेरे पिछले पत्र की बताई हुई परिस्थिति को देखकर मेरे तमाम मित्रों के घबड़ा जाने पर भी मै घबड़ाया नही। हाँ, परिस्थिति को फिर से अपने ढर्रे पर लाया जाय, इसकी चिन्ता मुझको हमेशा रही और दूसरे साल मैने अपना ध्यान इसी ओर लगाना शुरू किया। इस काम के लिए मुझको खास सहूलियत भी थी। यद्यपि मै अपनी निजी धारणा और अनुभव के अनुसार ही अपनी योजना बनाता था और उसका प्रयोग करता था फिर भी यह गाधी आश्रम का ही एक हिस्सा था। इसलिए बिगाड़ने के लिए चाहे मै अकेला ही था लेकिन सुधारने के लिए तो हम कई साथी थे। और इस दिशा मे हमको सम्पूर्ण-रूप से मदद मिलती रही।

इस प्रकार हमने सन् ४० के साल भर में विद्यालय का निश्चित पाठ्य-क्रम ठीक कर लिया। हिसाब-किताब का तरीका भी सँभाल लिया और साधारण व्यवस्था भी ढर्रे पर आ गई। आश्रम जीवन सम्पूर्णरूप से सन्तोषजनक तो नही हो सका लेकिन सन् ३६ की परिस्थिति को हमने सँभाल ही लिया। गाव के लोगों के दृष्टिकोण मे भी परिवर्तन होने लगा। हमने किस प्रकार पंचायतों का संघटन किया, चर्खे का प्रचार किया और पंचायत की मार्फत रात्रि-पाठशाला, शिक्षण-शिविर आदि का संगठन करके ग्रामीण जनता मे स्वाव-लम्बन की भावना पैदा करने की कोशिश की, इसकी बावत पहिले पत्रों मे लिख ही चुका हूँ।

सन् ४० मे हमने अपनी ग्राम-संघटन की योजना के लिए एक दूसरा क़दम भी उठा लिया। आश्रम के चारों ओर के देहातो मे से

एक पग और

दर्जा ४ तथा मिडिल पास नौजवानों को काग़ज़ बनाना सिखाकर अपने-अपने गाँव मे उद्योग-केन्द्र की स्थापना के उद्देश्य से हमने आश्रम के विद्यालय

मे उन्हे भरती कर लिया। बाद को सन् ४१ के ज़नवरी महीने मे हमने उन नौजवानों से उद्योग-केन्द्र उनके ग्रामों मे खुलवा दिये। इस प्रकार सन् ४० के खतम होते-होते सन् ३६ मे एकाएक भीड़ होने के कारण जो गड़बड़ी पैदा हो गई थी उसे हमने बहुत कुछ सँभाल लिया। साथ ही अपनी अन्तिम योजना के अनुसार देहातों मे उद्योग केन्द्र-स्थापना की शिक्षा मे एक क़दम आगे बढ सके। अब हमारे सामने अगले साल के लिए नीचे लिखी हुई समस्याओं का हल करना बाकी रह गया :—

१—विद्यालय को स्वावलम्बी कैसे बनाया जाय जिससे बिना बाहरी सहायता के भी काम चलता रहे।

२—ग्रामोत्थान के काम मे पचायतो को स्वावलम्बी बनाना और जिन नौजवानों से हम उद्योग-केन्द्र खुलवा रहे थे उनको ग्रामोत्थान कार्य्य मे दिलचस्पी दिलाकर पंचायतों को सहायता पहुँचाना।

३—आश्रम-आदर्श और जीवन मे सुधार करना।

इन दिनों मैं सरकारी ग्राम-सुधार के काम से छुट्टी पर गया था। इसलिए मैने ऊपर लिखी हुई तीन समस्याओं को हल करने मे अपना ध्यान लगा दिया। मै आशा करता था कि साल भर में इस दिशा मे कामयाबी हासिल कर सकूगा। सन् ३८ के नवम्बर मे जब ग्राम-उद्योग विद्यालय की स्थापना कर रहा था तो मैं मित्रों से कह रहा था कि यह भी मेरी एक पंचवर्षीय योजना है क्योंकि मैं समझता था कि तीन साल मे विद्यालय का रूप ठीक हो जाने पर बाकी दो साल मे ग्रामोद्योग-केन्द्रों की मार्फत ग्राम-संघटन का कार्य्य चलाने में समर्थ हो सकूगा लेकिन इस साल अप्रैल मे ही मै नजरबन्द होकर यहाँ चला आया और वह काम करने का मौका नही मिला। मैं जेल आ गया लेकिन एक सस्था का अग होने से वह काम तो चलता ही रहा। अब आश्रम की ओर से विचित्र भाई रणीवाँ का काम चला रहे हैं।

हमारे इस साल के काम मे एक सुविधा और मिल गई। सरकार ने अब मदद देने से इनकार कर दिया। जो स्वावलम्बन और आश्रम जीवन में आदर्श की भावना को ठीक करने मे हम अभी लगे ही थे उस ओर चलने में यह सरकारी इमदाद निकल जाने से लाभ ही हुआ। आश्रमवासी जो काम साल दो साल मे कर पाते वह काम अब फौरन होने लगा। गाव के लोग भी अब ज्यादा मुस्तैदी से आत्म-निर्भरता की ओर जा रहे हैं। इसकी खबर मुझको जेल मे मिल रही है। अतः तीसरे साल का काम भी अब पूरा ही होना चाहता है। जिस समय हम ग्रामोद्योग की ओर बढ रहे थे उस समय सरकारी इमदाद ने हमारी गति तेज कर दी थी और आज जब हमने अपने आदर्श को ढंग पर लाना शुरू किया तो इमदाद बंद करके सरकार ने हमारे काम को फिर से तेज कर दिया। अब देखना है, आगे के दो साल मे हमारी योजना अपने स्थान पर पहुँचती है या नहीं। सब ईश्वर के हाथ है।

आश्रम के इस उतार-चढ़ाव से यह स्पष्ट होता है कि ग्राम सेवा की तात्कालिक कठिनाई से घबड़ाना नही चाहिए। केवल यह देखना चाहिए कि अपने लक्ष्य की ओर अपना रुख स्थिर है या नहीं। सब परिस्थितियों से लाभ उठाना चाहिए और अपने उद्देश्य और आदर्श को कायम रखते हुए जिस प्रकार भी मिल सके मदद और सहयोग लेना चाहिए।

चलो, अब आश्रम को कहानी खतम हो गई। जेल मे बैठकर आगे का कार्यक्रम सोचता रहता हूँ। पिछली ग़लतियों और परिस्थितियो पर विचार कर रहा हूँ, और जो कुछ समझ मे आता है विचित्र भाई और कर्ण भाई को लिखता रहता हूँ। तुम्हारे पास तो मैने सारा महाभारत ही लिख डाला। अब बहुत हो गया। पत्र यहीं समाप्त करता हूँ। नमस्कार।

[४६]

स्त्री-जाति और समाज़

२५—११—४१

उस दिन जो पत्र मैने लिखा था उसमें आश्रम की बाबत मेरे जेल आने तक की सभी बाते आ गई हैं, यह सोचकर ४-५ दिन तक फिर मैने कुछ नहीं लिखा। आज एकाएक याद आया कि एक बात तो लिखी ही नही। वैसे तो सरकारी ग्राम-सुधार महकमा की मार्फत मैने दो साल तक फैज़ाबाद जिला मे काम करने मे जो कुछ अनुभव किय।उसे फिर कभी लिखने की सोच रहा था। लेकिन आश्रम से ग्राम-सेवा करने मे स्त्रियों की शिक्षा के सम्बन्ध मे भी मैने कुछ काम किया था। उसकी बाबत आज लिखकर ग्राम सुधार महकमा की कहानी भविष्य के लिए छोड़ देता हूँ। स्त्रियों की कहानी ही भूल गया, इससे तुमको बुरा लगता होगा, लेकिन उधर का सिलसिला ही ऐसा था कि इसका ज़िक्र बीच मे कहीं आता ही नही था।

जब मै सन् १६२३ मे टाँडा के देहात मे घूमता था, उन दिनों चमारों और कुर्मियों की स्त्रियों की बाबत मै जो कुछ अध्ययन कर सका था, वह तुमको लिख ही चुका हूँ। जब हम रणीवाँ आये तो हम लोगों का सम्बन्ध मध्यम श्रेणी के परिवारों से हुआ। रणीवाँ गाँव के लोगों का सम्बन्ध तो घर के जैसा हो गया था। धीरे-धीरे दूसरे गाँवों के लोगों से सम्बन्ध बढ़ता ही गया। मेरे होम्योपैथिक इलाज की बाबत काफी दूर तक शोहरत हो गई थी। इलाज के लिए लोग आश्रम मे भीड़ लगाये रहते थे। प्रति दिन ५० से ७५ तक रोगियों की संख्या हो जाती थी। जो लोग हमसे इलाज कराने आते थे, उनमे ज्यादातर स्त्री और बाल रोग के रोगी होते थे। स्त्री रोगियों मे प्रायः सभी उच्च श्रेणी की थीं। इसलिए इनके इलाज के वास्ते हर प्रकार के लोगों के घरों के अन्दर के हिस्सों मे जाना पड़ता था।

इलाज के सिलसिले से और फिर बाद को चर्खा विद्यालय के जरिये स्त्रियों से हम लोगों का परिचय काफी हो गया।

टाँडा के इलाके के कुर्मियों की स्त्रियो की शारीरिक और नैतिक स्फूर्तियो को देखकर, उनकी घर-गृहस्थी के मामले मे भीतरी और बाहरी दिलचस्पी तथा पुरुषों से प्रत्येक काम मे सहयोग की वृत्तियों को देखकर देहाती स्त्रियों के प्रति मेरी जो भावना थी, रणीवाँ के आस-पास की उच्च श्रेणियों की स्त्रियो से मिलकर उसमें अन्तर जरूर पड़ गया। स्त्री जाति इतनी काहिल होती है, इसका अन्दाज मुझको पहिले नही था। इनमे न तो कुर्मियो—जैसी शारीरिक शक्ति है और न नैतिक बल ही। इनके घरो में सफाई की कमी दिखलाई देती है।

अगर किसी घर मे एक ही स्त्री है और वह स्त्री
ऊँचे और नीचे काफी उम्र वाली है, तो उसके घर मे सफाई भी
वर्ग की स्त्रियाँ देखने को मिलती है और परिश्रम की भावना भी
दिखाई देती है। परन्तु ऐसे घर बहुत कम हैं। जिस घर मे ज्यादा स्त्रियाँ हैं और खास तौर पर अगर वे कम उम्र वाली हैं तो काहिली और गन्दगी का कुछ हिसाब नहीं। इनका मानसिक विकास भी कुछ नहीं के बराबर है। टाँडा में कुर्मियो की स्त्रियाँ जब मुझसे बात करती थीं तो बहुत सी बाहरी बाते पूछा करती थी। गाँधी बाबा कहाँ हैं और "स्वराज्य कब होत बा" इत्यादि प्रश्न करती थी लेकिन ऊँची जातियों मे जो लोग पढ़े-लिखे हैं, जो कांग्रेस मे भी हैं उनकी स्त्रियाँ भी इन बातों से बिल्कुल शून्य हैं। मैने देखा कि पर्दा के अन्दर एक आँगन के घेरे में रहकर वे इतनी संकीर्ण हो गई हैं कि वे समाज का एक अंग है, यह भी पता नहीं चलता है। पुरुषों के काम-काज मे तो वे बिल्कुल सहायक होती नहीं और न पुरुष लोग ही अपने कार्यक्रम के बारे में उनको दिलचस्पी दिलाते हैं। नतीजा यह होता है कि वे सदा काहिली और शौकीनी में ही डूबी रहती हैं। शृंगार और शौकीनी से इतना प्रेम हो गया है कि अपने बच्चो के

प्रति भी विशेष ध्यान नही दे पाती। इस श्रेणी मे मैने देखा है। कि माताएँ सुबह उठ कर छोटे बच्चों को बिना शौचादि कराये बड़े बच्चों के कन्धे पर लाद कर बाहर कर देती हैं। फिर निश्चिन्त होकर अपने कमरे मे शीशा तेल आदि शृंगार के साधन निकाल कर घण्टा भर अपने सजाने मे लगेगी। चाहे बच्चों के नाक और आँख के कीचड़ मे मक्खियाँ भिन-भिन करती रहें लेकिन माता का साज-बाज पूरा होना जरूरी है। इस काहिली और विलास के कारण चारो ओर, घर-घर अनीति और दुर्नीति फैल गई। इस भीषण दुर्नीति का खास कारण एक और है। वह है भयंकर, सामाजिक अनमेल-विवाह। ब्राह्मण और क्षत्रियों मे, खास तौर से ब्राह्मणो मे १६-१७ और कभी २०-२० साल की लड़कियों से १०, १२, १४ साल के लड़को से विवाह सम्बन्ध कर दिया जाता है। ऐसी हालत मे विवाह के बाद लड़कियों के लिए नीति की मर्यादा कायम रखना मुश्किल हो जाता है और जब परम्परा से ऐसी प्रथा चलती है तो समाज मे इस भयंकर दुर्नीति को आम बात समझ कर लोग कुछ ख्याल भी नहीं करते हैं। धीरे-धीरे आज रोग इतना व्यापक हो गया है कि यह समाज की नस-नस मे घुस गया है। हम लोग जब बराबर इसके विरुद्ध प्रचार करते हैं तो लोग महसूस करते हैं, गलती भी मानते हैं लेकिन व्यवहार मे वही करते हैं जो होता रहा है।

विलास और पतन की ओर

इस प्रकार उच्च वर्ण के समाज मे हर प्रकार की खराबियाँ पहुँच जाने से सारी जनता मे लड़ाई-झगड़े की प्रवृत्ति घर कर गई है।

मै पहिले पत्रों मे लिख चुका हूँ कि देहातों मे स्त्रियाँ ही संसार और समाज की व्यवस्थापिका होती हैं। जिस घर मे स्त्रियाँ बेकार होती हैं उस घर मे चाहे जितनी आमदनी हो वह उजड़ जाता है और जिस घर की स्त्री सुगृहिणी होती है वह घर चाहे जितना गरीब हो बन जाता

गृहलक्ष्मी से चण्डिका

है। तभी तो हमारे देश मे लोगों ने नारी जाति को देवी कहा है, घर की स्त्री को गृहलक्ष्मी कहा है लेकिन आज तो वे देवियाँ और गृहलक्ष्मियाँ घर उजाड़ने वाली भवानी माई हो रही हैं।

स्त्रियों की यह भयावह स्थिति देख कर मै परीशान होता था। स्त्रियों में शिक्षा होनी चाहिये, इत्यादि बातों पर मै हमेशा जोर देता था। आश्रम मे हमारे साथी लोग जब अपनी स्त्रियों को लाते थे तो मै हमेशा कोशिश करता था कि वे कुछ सीख लें; कुछ काम कर सकें। यह ठीक है कि मै कभी सफल नहीं हो सका। हमारे साथी इसमें सहयोग नहीं देते थे। इसके खिलाफ रहते थे। लेकिन मै न कभी निराश होता था और न कभी कोशिश से चूकता था। मेरे साथी आज तक इस मामले मे मुझसे सहमत नही हो सके। बहुत से मित्र तो कहते हैं—"इस मामले मे तुम विलायती ख्याल रखते हो। हमारा भारतीय समाज, विशेषतया हिन्दू समाज, इस बात को नही पसन्द कर सकता।" लेकिन भाई, मै न कभी विलायत गया, न कभी विलायती साहित्य ही पढा। मै तो जानता हूँ कि हमारे भारत मे स्त्रियो को सहधर्मिणी भी कहते हैं। मै तो यही जानता हूँ कि भारत-भूमि मे बिना पत्नी के कोई यज्ञ नहीं हो सकता। मै तो गुरुदेव ने चित्रागदा की ज़बानी भारतीय स्त्री का जो आदर्श सुनाया उसी को मानता हूँ। इसी भारत-रमणी ने तो कहा था—

पूजा कर राखीबे मायाय से ओ आमि,
नइ; अवहेला करि पूषिया राखिबे
पीछे, से-ओ आमि नइ। यदि पार्श्वे राखि,
मारे संकट रे पथे दुसह चिन्तार।
यदि आज्ञा दाओ, यदि अनुमति करो,
कठिन व्रत रे तव सहाय हईते,
यदि सुखे दुखे मोरे करो सहचरी,
आमार पाइवे परिचय।"

यह तो भारत-रमणी का परिचय है। लेकिन जब आश्रम-जैसी युगावतार की क्रान्तिवाणी प्रसार करने वाली क्रान्तिकारी संस्था के लोगों की स्त्रियों को "कठिन व्रत रे सहाय हइते" योग्य-शिक्षा की बात करना हास्यास्पद होता है तो तुम साधारण जनता से क्या उम्मीद कर सकती हो। आश्रम मे मै हमेशा स्त्री-सुधार की बात करता था, आदर्श का ख्याल करके। लेकिन जब गाँव की मध्यम श्रेणी की हालत देखी तो स्तम्भित हो गया। मेरी समझ मे नही आया कि अगर स्त्री समाज ऐसा ही रहा तो ग्रामोत्थान होगा किधर से? क्योंकि मै इस बात का कायल था ही कि बिना स्त्रियों के उठे कोई सामाजिक जीवन बन नहीं सकता है। अतः मैं इस बात की चिन्ता मे लगा रहा कि किस प्रकार इनकी शिक्षा का इन्तजाम किया जाय लेकिन तत्काल कोई उपाय न देख कर इस दिशा मे साधारण प्रचार से ही सन्तोष करना था।

बाद मे जब मैने ग्राम-सुधार महकमा की जिम्मेदारी ली तो इस ओर कुछ व्यावहारिक प्रयोग करने की सुविधा मिल गई थी। और मैने एक दम मौका से फायदा उठा कर इस दिशा मे व्यापक प्रयोग के लिए कदम उठा लिया था।

ग्राम-सुधार महकमा के जरिये स्त्री-सुधार का काम करने में भी मित्रों के सस्कार की कठिनाई का सामना करना पड़ा। लेकिन ईश्वर की कृपा से कुछ अमली प्रयोग इस दिशा मे हो ही गया। इसकी भी कहानी काफी लम्बी-चौड़ी है। आज शुरू करूँगा तो खतम नहीं होगी। अतः यह कहानी आज यहाँ ही इति करता हूँ।

[४७]

स्त्री-सुधार की ओर

६—११—४१

परसों मैने एक पत्र स्त्रियों की बावत लिखा था। मैं जब स्त्रियो की बात सोचता था और कुछ नहीं कर पाता था तो कभी-कभी निराश हो जाता था। इन दिनों कॉंग्रेसी सरकार की ओर से ग्रामसुधार महकमा खुला लेकिन साल भर तक कुछ निश्चित कार्यक्रम नही बन सका। फैज़ाबाद जिले की ज़िम्मेदारी मेरे ऊपर पड़ी, इसकी बावत मै पहिले ही लिख चुका हूँ। साल भर जब प्रान्तीय सरकार कार्यक्रम तय करती रही तब तक मै भी अपने मन में योजना बना रहा था। मैने उस समय क्या-क्या सोचा और क्या-क्या करने का मौका मुझे मिला, यह मैं बाद मे लिखूँगा। आज तो केवल स्त्रियों की बावत ही लिखूँगा।

सन् ३८ के शुरू मे मुझको जब ग्रामसुधार का काम मिला तो एक दम ख्याल आया कि अब मौका है कि अपनी योजना का प्रयोग शुरू कर दूँ। लेकिन व्यावहारिक रूप क्या होगा, इसकी कल्पना ठीक ठीक नहीं कर सका। एक बार कुछ स्त्री सघटनकर्त्रियाँ भर्ती करने की योजना बनाकर सरकार के पास भेजने की सोची लेकिन मुझको उसमे खतरा ही मालूम हुआ। एक तो बाहर से कोई अच्छे घर की स्त्री अकेली गाँव मे जाकर रहने लिए तैयार नहीं होगी और जो तैयार होगी उसकी योग्यता और दृष्टिकोण हमारे मतलब के काम करने लायक नही होगा। फिर मुझको कोई निश्चित योजना नही दिखाई दी लेकिन मै विचार करता गया। इन्ही दिनो आश्रम मे सूत-सुधार के लिए जोरो से कत्तिन स्कूल खोला गया। चर्खा संघ ने कत्तिनो की मजदूरी बढाकर तीन आने कर दी। अधिक मजदूरी देने से यह जरूरी हो गया कि सूत की किस्म सुधरे। फैजाबाद जिले मे

अकबरपुर मे आश्रम का एक वड़ा उत्पत्ति-केन्द्र है। पहले पहल तो मुझ को अकबरपुर से ही गाँव का परिचय मिला। इस केन्द्र के सूत सुधारने की जिम्मेदारी मेरे ऊपर पडी। मेरे दिमाग़ मे स्त्री-सुधार आन्दोलन चलाने की चिन्ता थी ही। मै इन स्त्रियों से बाते करता था जिसमे देश-दुनियाँ की वाते ही अधिक होती थीं। मैंने सोचा, जब हम तीन आने मजदूरी देते हैं तो उनका बाकायदा कैम्प क्यों न कर दे। उनके एक जगह बैठकर कातने पर हम उनको एक साथ बहुत कुछ शिक्षा दे सकेंगे अतः मैने उनके लिए परिश्रमालय चलाने को योजना बनाई।

इस ज़िले की कत्तिनों मे तो मै सन् १९२३ से ही काम करता था लेकिन इस दृष्टिकोण से कभी अध्ययन करने की कोशिश मैने नहीं की। उन दिनों इस लायक मुझमे न तो योग्यता ही थी और न इस दिशा मे सोचने लायक अनुभव ही था। इस बार जो मैने ६ ७ माह में उनसे घनिष्ठता के साथ परिचय किया तो देखा कि पढी-लिखी न होने

स्त्रियों की असीम संभावनाएं

पर भी उनमे धारणा शक्ति बहुत है। वे बहुत जल्दी बातों को समझ सकती हैं। वैसे तो लड़कों से लड़कियाँ अधिक तेज होती हैं इसका अनुभव मुझको पहले ही था। लेकिन बड़ी स्त्रियों का बौद्धिक विकास बहुत आसानी से किया जा सकता है, इसका प्रत्यक्ष अनुभव हो गया। कत्तिने ठेठ ग्रामीण किसान के घर की होती हैं। अगर उनमे इतनी सम्भावनाएँ हैं तो देहात की किसी भी श्रेणी की स्त्रियों को शिक्षा दी जा सकती है।

मैंने सभावनाओं को तो देख लिया। कत्तिन विद्यालय एक या डेढ़ माह तक ही चलता था। यह कोई स्थायी व्यवस्था नहीं थी। इन स्कूलों की मार्फत कुछ स्थायी नतीजा निकलने को गुंजाइश नही दिखाई देती थी। अतः मैं स्त्री-सुधार आन्दोलन को व्यावहारिक रुप में लाने के विचार में लगा रहा। तीन आने मज़दूरी होने मे और कांग्रेस

मंत्रिमंडल हो जाने से चर्खे का प्रचार और संख्या भी खूब बढ़ने लगी। जिन क्षेत्रों मे चर्खा नही चलता था उन क्षेत्रो मे चर्खा-केन्द्र खोलने लगे। अकबरपुर से पूर्व बिड़हड़ परगना की बाबत कभी मैने तुमको लिखा था। उस इलाके मे मुबारकपुर हमारा सूत-केन्द्र था। उन दिनो मै नये क्षेत्रों मै चर्खा-प्रचार के लिए दौरा किया करता था। वस्त्र-स्वावलम्बन के विषय में सब जगह चर्चा करता था। साथ ही सूत न बेचकर खादी लेने के लिए खूब ज़ोर देता था।

एक दिन मैने वहाँ के लोगों से कहा कि आप के यहाँ के इतने नौजवान बेकार पड़े है। आप क्यों न इनको बुनाई सिखा दे और उनसे अपना सूत बुनवाये। इस बात से वे सब उत्साहित हुए। और कहने लगे कि आप यहाँ बुनाई विद्यालय खोल दीजिए तो हम अपने लड़कों को बुनाई सिखा लेगे। मैंने उनसे कहा विलायत वाले तो सब इन्तज़ाम कर ही रहे हैं। आप स्वराज्य के चक्कर में क्यों पड़े। विद्यालय का प्रबन्ध भी तो आप ही को करना है। आज एक विद्यालय के इन्तज़ाम से घबड़ाते हैं तो सारे मुल्क का इन्तज़ाम कैसे करोगे। इतनी बाते बताकर मैने बापू जी की स्वावलम्बिनी समाज-रचना का आदर्श समझाया। इससे वे कुछ करने के लिए तैयार हो गये। उसी ग्राम के एक नौजवान साधु होकर गाँव के बाहर कुटीर बनाकर रहते थे। उन्होंने जिम्मेदारी भी ले ली। बहुत बहस के बाद यह तय हुआ कि वे विद्यालय के मकान आदि बनवाये। तात्पर्य यह कि सारी व्यवस्था वे ही करे। यदि १६ विद्यार्थी हो जायॅ तो हम आश्रम से करघा और शिक्षक दे देगे। इन लोगों ने बहुत उत्साह दिखलाया। एक बहुत बड़ा मकान बनवाया ७० फुट लम्बी कोठी, दोनों ओर दो कोठरी और सामने उसारा। लोगो ने विद्यालय के लिए जमीन भी काफी छोड़ दी। लोग गरीब थे लेकिन मेहनत करके १००।१५० गाँव से सामान और अनाज माँग कर इस इमारत को बना डाला। बाद को यह व्यवस्था नहीं चल सकी। वे समझते थे कि बुनाई जल्दी आ जायगी।

लेकिन उसमे तो साल भर लगता है। इसलिए साल भर के बाद विद्यालय चल नहीं सका। मैं गया तो शिक्षक वापस लेने के लिए वहाँ। वे इनकार तो कर नहीं सकते थे। लेकिन वहाँ के लोग कहने लगे—"हम लोगों ने इसको कायम करने मे बहुत प्रयत्न किया है। आप कोई ऐसा काम बताइए जिसे हम लोग चला सके और यह स्थान भी कायम रहे।"

उन दिनों मेरे दिमाग़ मे स्त्री-सुधार आन्दोलन कैसे शुरू किया जाय, इसी का विचार चलता था। मैने एकाएक कह दिया कि—"आप यहाँ अगर स्त्री-सुधार केन्द्र बना दे तो मैं अपना समय आपको दे सकूँगा। फिर मैने उनको देहात की स्त्रियों की वर्तमान और भूत-कालिक हालत बताकर कहा कि बिना इनके सुधरे और बिना इनके उठे देश उठ नही सकता। स्त्रियों के बिना सामाजिक जीवन नही बन सकता और सामाजिक जीवन से ही राष्ट्रीय जीवन बनता है। वहा उस ग्राम तथा उसके आस-पास ग्राम के खास-खास कुछ लोग थे जिनके लिए पर्दा खतम करना एक महापाप था और उनके गले उतरना मुश्किल लेकिन धीरे-धीरे वे इसके सिद्धान्त को मानने लगे। अब आया निश्चित योजना का सवाल। मैने दूसरे दिन सवेरे खास-खास लोगों से सभा करने को कहा और सबके साथ विचार करके मै अपना प्रस्ताव रक्खूँगा, ऐसा कहा। क्योंकि मै समझता था कि स्त्रियों के प्रोग्राम की सफलता के लिए अधिक लोगों की सम्मति की जरूरत है। उस दिन उसी गाव मे टिक गया। रात्रि को इसी चिन्ता मे रहा कि यह काम कैसे हो सकता है? स्त्रियाँ तो पहले आवेगी नहीं। अतः पहले लड़कियों को लेकर ही काम शुरू करना है। तुमको याद होगा, मैने रास्ना में स्त्री-शिक्षा के लिए प्रयत्न किया था। उस समय वहा श्री गुलबदन बहिन रहती थीं। उसने विद्यालय खुलवा दिया था। लेकिन यहा अध्यापिका कहा से आवेगी, इत्यादि बातें सोच रहा

स्त्रियों के बिना सामाजिक जीवन संभव नहीं

था। इस प्रकार विचार करते हुए मेरे ख्याल में यह बात आई कि यदि गाव की बहुओं मे से ऐसी कोई मिल जाय, जो दर्जा ३-४ तक पढ़ी हो तो उसी को शिक्षा देकर उसी ग्राम मे स्त्री-सुधार केन्द्र खोला जाय तभी यह योजना चल सकती है। गांव की बहू घर पर रहने से ५-७ रुपया मासिक पारितोषिक से संतोष भी करेगी। और घर ही पर रहने के कारण उस स्त्री के संरक्षण की चिन्ता हमको नही रहेगी। फिर क्रमशः उसी स्त्री का बौद्धिक विकास करके उस ग्राम के स्त्री सुधार आन्दोलन की संचालिका उसे बनाया जा सकेगा। इतने दिनों से जिस समस्या के समाधान की चिन्ता से मै परीशान रहता था उसका हल एकाएक हो जाने से, साथ ही उसके प्रयोग के लिए एक क्षेत्र भी मिल जाने से मुझको बहुत शाति मिली और मै सो गया।

सुबह उठकर मैंने स्वामी यमुनानन्द से अपना विचार प्रकट किया और उनसे पूछा कि ऐसी कोई स्त्री यहां है या नही। स्वामी जी ने सोचकर बताने के लिए कहा। जब सब लोग इकट्ठा हुए तो मैंने उनसे अपना प्रस्ताव किया। इससे सब निराश हो गये और कहने लगे—"अध्यापिका का इन्तज़ाम आप करे।" मैंने उनसे अपना सारा विचार बताया। स्थानीय स्त्रियो की मार्फत ही यह काम हो सकता है, इस बात पर जोर दिया। गाव की बहुओं को बाहर आने की सम्भावना की बाबत वे सोच भी नही सकते थे। उधर अधिकतर उच्च वर्ण के लोग ही रहते हैं। पर्दे का संस्कार इनमें इतना घुस गया था कि उनके लिए इस प्रकार का विचार करना भी सम्भव नही था, फिर भी इस पर विचार करने का उन्होंने वादा किया। मैंने यमुनानन्द जी से ऐसी स्त्री की खोज करके मुझको खबर देने को कहा और कहा कि अगर स्त्री मिल जाय और इस काम को करे तो मै आश्रम से ५) मासिक पुरस्कार मंजूर कर दूँगा।

१०-१५ दिन मे स्वामी जी का पत्र आया कि उस गाव की एक बहू दर्जा ४ पास है जो उस काम के लिए तैयार है। उसमें ५) के

के वजाय ७) पुरस्कार मंजूर करने की भी प्रार्थना थी। मैने ७) मजूर करके उस गाव में लड़कियों का विद्यालय खोलकर गाव की स्त्री-सुधार योजना के प्रयोग का श्रीगणेश कर दिया।

स्त्रियों की समस्या के समाधान का एक छोर और उसके प्रयोग का मौका मिल जाने से मैं इस प्रश्न पर जोरों से विचार करने लगा। मैने सोचा कि इस तरह लड़कियों से शुरू करके स्त्रियों तक पहुँच सकेंगे। गाव के पर्दे की यह हालत थी कि जिस वहिन को हमने काम में लगा दिया था वह मुश्किल से अपने को पर्दे मे ढक कर विद्यालय मे हाजिर हो जाती थी। मै जब कभी स्कूल जाता था तो वह घूँघट काढ कर एक कोने की ओर मुँह करके बैठ जाती थी। मै लड़कियों से वात करके ही पाठशाला के काम की प्रगति देख लौट आया करता था। धीरे-धीरे वहा की अध्यापिका श्रीमती धर्मराजी वहिन विद्यालय की वावत मुझसे वाते भी करने लगीं। वाद को उस गाव की स्त्रियों मे कुछ दिलचस्पी आने लगी। एक वार जब मैने उस गाव मे स्त्रियों की सभा की तो वहुत सी स्त्रिया आ गई। इस तरह मैने इस वात को देख लिया कि अगर हम लड़कियों के स्कूल से अपना कार्यक्रम शुरू करें तो धीरे धीरे पर्दे वाली स्त्रियों तक पहुँच सकेंगे। इसमें समय ज़रूर लगेगा, मगर तरीका यही है। इस प्रकार स्त्री-सुधार की दिशा मे मैने अपना प्रयोग जारी कर दिया। अव आज और नही लिखूगा। नमस्कार।

---

[४८]

ग्राम-सेविका-शिक्षा योजना

२०—११—४१

पिछले पत्र मे मैने स्त्री-शिक्षा की वावत लिखा था। आज भी उसी विषय पर लिखने बैठा हूँ। अपनी योजना के व्यावहारिक प्रयोग के

साथ-साथ मै इस बात पर विचार करता रहा कि ग्राम-सुधार महकमा का फायदा उठाकर हम देहात मे किस प्रकार स्त्री-सुधार आन्दोलन चला सकेगे। कैसे और कहा से शुरू करे, किस प्रणाली से आगे बढ़े, गाव की बहुओ को हम इकट्ठा कर सकेगे या नही, उनकी शिक्षा का कैसे प्रबन्ध करेगे, सगठन का क्या रूप होगा, इत्यादि प्रश्नो पर दिन-रात विचार करता रहा। आखिर अपने मन मे एक काम-चलाऊ योजना बना डाली। वह इस प्रकार थी।

१ जिस तरह बहिन धर्मराजी देवी को हमने खोज निकाला उसी तरह भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के देहातों से दर्जा ३-४ पास प्रतिष्ठित घर की बहुओं को खोज निकाल कर उनको काम करने को राजी करना।

२ स्त्रियों को ग्रामसुधार महकमा की तरफ से तीन साल की शिक्षा नीचे लिखे अनुसार देना :—

क—पहिले-पहल एक केन्द्रीय शिक्षण-शिविर खोलकर उनको तीन महीने के लिए प्रारम्भिक शिक्षा देना। इन तीन महीनो मे उनकी पर्दे मे रहने की शर्म हट जायगी। बाहरी दुनिया की बाबत कुछ जानकारी हो जाने से उनके अन्दर हिम्मत और आत्म-विश्वास पैदा होगा। बहुत अर्से से पढना-लिखना छूट जाने के कारण जो भूल गई हैं दोहरा लेगी। कताई धुनाई का साधारण ज्ञान भी हो जायगा। यानी तीन महीने मे हम उनको एक साधारण रूप से ग्राम-सेविका बनने की ओर उनकी मनोवृत्ति बना लेगे। उसके बाद नौ महीना अपने गाव के कार्यक्षेत्र मे शिक्षा देना। इस नौ महीना मे एक पाठशाला चलाना जिसमे गाव की लड़कियाँ तो पढ़ेंगी ही साथ ही जहाँ तक सम्भव होगा गाँव की बहुओं को भी शिक्षा दी जाय और ग्राम-सेविका को आगे पढ़ाने के लिए एक अध्यापक निश्चय कर दिया जाय जिससे जो लोग दर्जा ४ पास नहीं हैं वे दर्जा ४ पास करके लोअर मिडिल की तैयारी कर सके और दर्जा ४ पास वालियाँ सीधे तैयारी करे। ग्राम-सेविका के लिए विद्यालय के साथ

एक छोटा-सा पुस्तकालय तथा एक साप्ताहिक पत्र का इन्तज़ाम करके देश और दुनियाँ के विषय में साधारण दृष्टिकोण का विकास किया जाय।

ख—नौ महीना के बाद फिर तीन महीने के लिए उनको केन्द्रीय शिक्षण-शिविर में बुला लिया जाय जिसमे देश और समाज का साधारण ज्ञान, देहात की स्त्रियों मे क्या-क्या सुधार करना है, बच्चों को कैसे रक्खा जाय, इत्यादि विषयों की जानकारी कराई जाय। साथ ही चर्खा और दूसरी उपयोगी दस्तकारी के साथ देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों का बोध कराया जाय, जिससे उनका मनोभावना स्वाभावतः समाज-सेवा की ओर झुक सके।

ग—पिछले साल को तरह इस साल भी ६ माह घर पर रहकर उसी ग्राम का केन्द्र चलाना। इस साल लड़कियों के साथ-साथ अधिक तादाद मे बहुओं को लाने की चेष्टा करना। गाँव के घरों की सफाई व चर्खा का कार्यक्रम। साथ-साथ उनमे जो लोअर मिडिल पास कर गईं उन्हे मिडिल की तैयारी और बाकी को लोअर मिडिल पास कराना।

घ—तीसरे साल भी ३ माह शिविर की शिक्षा और ६ माह कार्यक्षेत्र की शिक्षा देकर उनकी योग्यता निम्न प्रकार कर देने का भरोसा मुझको था।

१—मिडिल तक की योग्यता। २—चर्खा और घरेलू जरूरी धन्धे जैसे सिलाई, बुनाई। ३—देश और दुनियाँ का साधारण ज्ञान। ४—ग्रामीण समस्याओं का ज्ञान। ५—बच्चों के पालन और प्रसूति-विज्ञान की जानकारी।

तीन वर्ष मे उनके अपने जीवन और दृष्टिकोण में इतना परिवर्तन करना सम्भव है कि हमारी कल्पना के अनुसार उनकी मार्फत स्त्री-सुधार की सेविका जिम्मेदारी उठा सके, इसका मुझे विश्वास था। इस तीन साल के प्रचार और व्यावहारिक सेवा से उस क्षेत्रमें

इतना वायुमण्डल पैदा करना मुश्किल नही था, जिससे प्रायः सभी स्त्रियां हमारे कार्यक्रम मे भाग ले सकें। उस समय कार्यक्रम की क्या रूप-रेखा होगी, इसका निर्णय करना बेकार था क्योंकि इतनी तैयारी ही एक कार्यक्रम था। बाद मे परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन होता रहेगा। वैसे तो शिक्षाक्रम के जिस ढाँचे की मैने कल्पना की थी, उसमे भी अनुभव से परिवर्तन होता ही रहता है।

इस प्रकार अपनी योजना की बाबत मन मे साफ साफ रूप-रेखा बनाकर खर्चे के लिए ग्राम-सुधार आफिस से मैने बाते कीं। मैने सोचा था कि अगर उधर से कुछ उत्साह मिले तो मै अपने महकमा के मत्री श्री टि० एन० कौल आई० सी० एस की सलाह से योजना को एक निर्दिष्ट साकार रूप देकर सरकार को भेज दूँगा। लेकिन महकमा से कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। स्त्रियों के काम के नाम से वे अलग ही रहना चाहते थे। इस खतरे की जिम्मेदारी नहीं लेना चाहते थे। वे दूसरे स्थानों मे स्त्रियों को काम कराने के प्रयत्न मे विफल हो चुके थे इसलिए इसकी सफलता पर उन्हे भरोसा नहीं था। अतः महकमा के प्रातीय दफ़्तर ने कुछ-मदद मिलने की मुझको कोई आशा नही दी।

जिले मे मैने विभाग के मंत्री और इन्सपेक्टर को अपना विचार बताया। उनको यह योजना पसन्द आई। मि० कौल तो बहुत ज्यादा उत्साहित हुए। मैंने उनसे कहा कि प्रान्त से कोई मदद नहीं मिलेगी लेकिन हमारे जिले की शिक्षा के लिए जो मंजूरी है उसमे स्त्री या पुरुष थोड़े ही लिखा है? इसलिए जिला-समिति तो इसको सिर्फ स्त्री-शिक्षा मे ही खर्च कर सकती है। फिर भी मि० कौल ने एक योजना बनाकर सरकार को भेज दी। मैं पहले ही रुख देख आया था; उधर से कोई आशाजनक जवाब नहीं आया। फिर हम लोग शिक्षा कोष से मासिक वृत्ति देकर शिविर मे स्त्रियों को लाकर पहले ३ माह की शिक्षा दे ही सकते हैं, ऐसा विचार किया। शिविर-खर्च के

लिए शहर मे कुछ चन्दा लेना भी निश्चय किया और उसके लिए समिति भी वना ली। समिति वनने पर और चन्दे का काम शुरू होने से जिले भर मे योजना की वावत सब लोग जान गये। इस शिविर मे शरीक होने के लिए देहाती भाइयों के नाम एक अपील छपवा कर वटवाई भी गई।

उन दिनो मुझको बहुत मेहनत करनी पड़ी। शहर मे मित्रों को समझाना, उनकी आलोचनाओं का जवाब देना इत्यादि से लेकर देहातों मे लोगों को समझा कर शिविर मे उनकी वहू-वेटियो को भेजने के लिए राज़ी करना आदि सभी काम करना पड़ता था। मि० कौल और इन्सपेक्टर भी इसके लिए कल्पनातीत परिश्रम करने लगे। इन दिनों किस प्रकार के एतराजों का सामना करना पड़ा वह भी काफी मनोरजक कहानी है। उसे मै दूसरे पत्र में लिखूँगा। इस समय अब लिखने की तबीयत नही करती है।

आज हमारे, बैरक से भी दो आदमी छूटे। इसलिए इस वक्त वैरक की शान्ति भग हो रही है। बैरक के बुजुर्ग कानपुर के पुराने नेता श्री नारायण अरोड़ा आज छूट रहे हैं। उन्होंने बैरक की शोभा वढा रखी थी। रात को गाँधीवाद और गाधी-सिद्धान्त की किताबें पढ़कर व्याख्या करते थे। कल से वह काम मुझको ही करना होगा। इसलिए भी उनका छूटना मेरे लिए एक वोझा होगा।

इस वार जेल आने पर मेरा श्री मैथिलीशरण गुप्त और अरोड़ा जी से घनिष्ठ परिचय हुआ इसलिए अरोड़ा जी के छूटने से खुशी भी है, दुःख भी। खैर, यह सब तो होता ही रहेगा। कभी तो हम लोग भी इसी तरह छूटेंगे। आना जाना लगा ही रहेगा।

---

[४६]

खतरे की शंका

२८—११—४१

कल स्त्री-सुधार योजना के विषय में लिख रहा था। बीच में कुछ लोगो के छूटने की खबर से पत्र समाप्त कर दिया था। इधर प्रति दिन छूटना जारी है। आज विच्चित्र भाई का एक पत्र आया है। वे लोग मेरा इन्तजार कर रहे हैं। उन्हे आम रिहाई की उम्मीद है।

जो हो अभी एक-डेढ माह तो लग ही जायँगे। तब तक शायद मै अपनी ग्राम-सेवा के प्रयोग की कहानी खतम कर डालूंगा।

मैने जब ५० स्त्री-सुधार केन्द्र खोलने का इरादा किया तो मेरे मित्र समुदाय में एक बहुत बड़ी हलचल मच गई। अधिकाश लोग सिद्धान्त से तो मेरी योजना ठीक समझते थे लेकिन अब इसमे खतरा समझते थे। उनका कहना था कि गाँव के लोग भला अपने घर की स्त्रियों को कहाँ भेजने लगे? फिर आप लड़कियो को नहीं बुलाते हैं, बहुओं को आप इस योजना के लिए लेना चाहते हैं, यह तो और भी कठिन है। स्त्रियों के शिविर खोलेंगे, उसमे बड़ी बड़ी बदनामियाँ होगी। गाँव के भले घर से तो कोई भेजेगा ही नही। जो लोग आवेंगे उनसे आप क्या काम लेंगे। इत्यादि सबसे अधिक एतराज़ लोगो का यही था कि इससे व्यभिचार की वृद्धि होगी। गाँव से परदा हट जायगा तो और अनर्थ हो जायगा। भला पिटरौल और आग कहीं एक साथ रखना चाहिए। यह तो तुमको मालूम ही है कि जब कभी स्त्रियों के संगठन के सम्बन्ध मे बात की जाती है तो लोग घबरा जाते हैं। यदि स्त्रियों को समाज में पुरुषो के साथ कार्य-क्षेत्र मे भाग लेने का औसर दिया जायगा तो उनके विचार मे समाज मे एक प्रकार का सार्वजनिक व्यभिचार फैल जायगा। साथ ही वे युरोपीय समाज के साथ तुलना भी

आपत्तियाँ

करने लग जाते हैं। मालूम नही, युरोपीय समाज की नैतिक स्थिति कैसी है। उसका हमे ज्ञान है ही नहीं। मै सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि मेरे जितने मित्रो ने युरोप मे भ्रमण किया है और युरोपीय समाज का अध्ययन किया है, वे कहते हैं कि युरोपीय समाज के लोग अपने यहाँ के सामाजिक क्रिया-निषेधों की मर्यादाओ का उतना उल्लघन नही करते हैं जितना हमारे देश मे आज के लोग करते हैं। लेकिन हमको युरोप के समाज के बारे मे झगड़ा करने से क्या फायदा। जिस चीज का मैने प्रत्यक्ष अध्ययन नहीं किया है उसके विषय मे कह ही क्या सकता हूँ। हाँ, मैने अवध के देहाती समाज को देखा है। चलो, उस समाज की स्थिति का विश्लेषण करके देखा जाय कि हमारे मित्रों की धारणा किस हद तक सही है और समाज में स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध की वास्तविक स्थिति क्या है। ग्रामीण समाज मे तीन श्रेणी के लोग रहते हैं (१) ब्राह्मण क्षत्री कायस्थ बनियाँ आदि उच्च श्रेणी के कहलाने वाले (२) कुरमी अहीर काछी आदि किसान जातियाँ जो खेती मे मेहनत करके अपना गुजर करती हैं (३) चमार केवट पासी आदि मजदूर श्रेणी के लोग जो खेती और दूसरे धधो मे औरों के लिए परिश्रम करके गुजरा करते हैं।

ग्रामीण समाज की तीन श्रेणियाँ

इन तीनों में प्रथम श्रेणी के लोगों में स्त्रियों को घेरे मे अलग रखने का रिवाज है। उनके स्त्री-पुरुष एक क्षेत्र मे काम नहीं करते हैं। लेकिन आम स्त्री पुरुषों के सम्बन्धों में दुर्नीति की खोज की जाय तो इन्हीं मे इसकी अधिकता देखने को मिलेगी। दरअसल अलग-अलग रहने से ही उनके चित्त मे विकार पैदा होता है। दूसरी और तीसरी श्रेणी मे निधड़क स्त्री-पुरुप एक साथ कन्धे से कन्धा मिला कर खेत मे काम करते हैं। सभी ढोते समय शरीर से सटाकर बोझा एक सिर से दूसरे सिर पर रखते हैं लेकिन उनमे तो विकार पैदा नहीं होता। टाँडा

प्रथम श्रेणी में दुर्नीति

के देहातो मे घूमने के समय चमारो की प्रवृत्ति का जो अनुभव मैने बताया था वह भी तो उच्च श्रेणी के लोगो के सम्पर्क के कारण है। अन्यथा बाद मे मैने कितने ही चमारो को देखा है कि जो स्वतंत्र रूप से खेती करते है। उनके यहाँ तो वातावरण निर्मल ही रहता है।

हमारे यहाँ लोगों मे एक अजीब मनोभावना पैदा हो जाती है। जब कभी हम ऐसा समाज देखना चाहते हैं जिसमे पर्दा नही है या जहाँ स्त्री पुरुष सभी साथ साथ चलते हैं तो निगाह दूसरी ओर ही जाती है। ऐसे लोग भूल जाते हैं कि भारतीय समाज की ८० फीसदी आबादी किसान और मजदूरों की है। उनमे पर्दा नही है; वे स्त्री पुरुष हर एक-क्षेत्र मे साथ-साथ काम करते हैं। यदि उनमे स्वदेशी दृष्टि होती तो अपने देश की इस ८० फीसदी आबादी की ओर देखते और फिर उनको मालूम होता कि ऐसे समाजो मे जहाँ स्त्रियाँ स्वतन्त्र हैं वहाँ की नैतिक स्थिति भी ऊँची है। मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि इनमे दुर्घटनाएँ नहीं होती। ऐसी दुर्घटनाएँ हर समाज और हर देश मे थोड़ी-बहुत होती हैं और होती रहेगी। लेकिन जब हम इनकी स्थिति की उस उच्च श्रेणी के समाज की स्थिति से, जहाँ स्त्री-पुरुष अलग घेरों मे हैं और जहाँ स्त्रियाँ बचपन से सहस्र निषेधों की आड़ मे रहती हैं, तुलना करते हैं तो बन्द समाज से खुले समाज को कहीं ऊँचा पाते है। फिर अगर किसी भी समाज की नैतिक दुर्घटनाओं का गहराई से निरीक्षण किया जाय तो मालूम हो जायगा कि उनमे आधी से ज्यादा असहनीय गरीबी के कारण या उच्च श्रेणी के लोगो के सम्पर्क के कारण हैं। हम जब शहर के लोगो को यह परिस्थिति बताते हैं तो लोग स्वीकार नही करते हैं क्योंकि उनके सामने तो किसान और मजदूर का आदर्श शहर के घरों मे काम करने वाले कहार कहारिन आदि और मंडियों मे घूमने वाले मजदूर मजदूरिन ही होते हैं। लेकिन मै तो ग्रामीण समाज की बात कर रहा था। वहाँ की वास्तविकता का जब हम अध्ययन करते हैं तो स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध के आदर्श की

बाबत मित्रों की जो धारणा देखते हैं असलियत उसकी ठीक उलटी पाते है।

हाँ, मै कहाँ से कहाँ चला गया। अपने कार्यक्रम की कथा बताते बताते देहात की बहस मे पड़ गया। लेकिन यह भी देहाती स्थिति की बाबत अध्ययन था इसलिए यह हमारे विषय के बाहर नही है। और तुम्हारा समय वृथा नही खर्च होगा।

शुभारंभ प्रायः एक-डेढ माह दौड-धूप करके, मित्रों के एतराजों को सम्हाल कर और देहात के लोगों को विश्वास दिला कर मैंने ५० बहिनो का एक शिक्षण-शिविर ४ नवम्बर सन् १६३६ को फैजाबाद मे खोल दिया। मै ने कोशिश की थी कि सिर्फ गाँव की बहुओं को ही अपनी योजना मे लिया जाय पर अविवाहित बहिनों को भी बुला लिया। प्रथम चेष्टा की दृष्टि से यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं थी। देहात को भले घर के लोगों ने पुरानी रूढि तोड़ कर १६ से २५ साल उम्र की बहिनो को हमारे यहाँ विश्वास करके भेज दिया। यही एक बड़ी क्रान्ति थी। बहुत से मित्र तो इस बात पर ही आश्चर्य करते थे कि लोगों ने भेज कैसे दिया।

इस प्रकार जिस योजना पर पिछले २ साल से विचार हो रहा था उसका सूत्रपात व्यवहार के रूप मे हो गया।

---

[५०]

ग्राम सेविका-शिक्षा-शिविर

२६—११—४१

दिसम्बर आ गया। अब जाड़ा बहुत जोरों से पड़ रहा है। जाड़े के मारे मैं रोज सिकुड़ता जा रहा हूँ। आगरा की सर्दी मशहूर है।

इधर जेल मे जाड़े के कपड़े के लिए जेल अधिकारियो की रोज भिक-भिक लगी रहती है।

लेकिन मेरा जुकाम, बुख़ार आदि सब ठीक हो गया। अब खूब स्वस्थ हूँ। काम में भी अब खूब दिलचस्पी हो रही है। रात को कथा बाचने का काम अरोड़ाजी के न होने से मैंने ही ले लिया। एक फायदा इसमे भी है। हिन्दी पढ़ने का अभ्यास हो जायगा।

कल के पत्र मे मैंने महिला-शिविर के उद्‌घाटन की बात बताई थी। पहले दिन जब स्त्रिया आई तो वहाँ मि० कौल और दूसरे मित्र मौजूद थे। सामने आई हुई बहिनो के घूघट और उनके साथ बच्चो को देख कर लोग घबड़ा गये। मि० कौल तो बड़े ही परीशान हो गये। मौज मे कहने लगे—"भाई जी, यह क्या बात है? इन लोगों को क्या ट्रेनिंग देंगे? ये बच्चे तो और भी भयानक हैं। इनको हटाइये। नियम कर दीजिए कि बच्चे वाली चली जाऍ।" इत्यादि। लोगो की घबराहट और परीशानी देख कर मुझको थोड़ा मज़ा आता था; मै मुसकरा कर कहता था—"सब ठीक हो जायगा।" भला बताओ, स्त्रियों का काम करने चले हैं और झमेला भी न हो? विवाहिता बहुऍ भी हो और बच्चे न हो, यह कैसे चल सकेगा? वे बच्चो को कहाँ फेक देगी? मान लो, हम एक बार खोज-खोज कर ऐसी स्त्रियों के सुधार के लिए शिक्षा-शिविर खोलना चाहते हों और काम की योजना बनाना चाहते हों तो बच्चो के साथ ही प्रोग्राम सोचना होगा; बच्चों को अलग कर वह नहीं हो सकता। वे घर जाकर भी अगर कुछ करेंगी तो बच्चों को सम्हालते हुए ही न करेंगी; फिर बच्चों को सँभालना, बच्चों का पालना, छोटी-मोटी बीमारियों में क्या करना चाहिये, जन्म से ही उनकी शिक्षा कैसी होनी चाहिए, ये सब बातें तो स्त्री-शिक्षा का प्रधान अग हैं। इन बातों को छोड़ कर स्त्री-शिक्षा की क्या कल्पना कर सकते हैं। मै जानता हूँ कि जितनी स्त्रियों की संस्थाऍ

प्रथम दृश्य

होती हैं उनमे वच्चे वाली स्त्रियों के लिए प्रवेश निषेध होता है। लेकिन यह प्रवृत्ति विल्कुल गलत है। मेरी निश्चित राय है कि स्त्री-संस्था की कल्पना के साथ शिशु-विभाग की भी धारणा रखना जरूरी है। जो लोग वच्चो का झमेला उठाने से घवड़ाते हैं उनको स्त्री-संस्था के आयोजन का ख्याल ही छोड देना चाहिए। उन्हे कन्या पाठशाला से ही संतोष करना चाहिए। लेकिन ऐसे सन्तोष से हमारे गाँव की समस्या हल नहीं होती। इसलिए लोगों की घवराहट होते हुए भी वच्चो का हमने स्वागत ही किया और शिक्षा शिविर के साथ-साथ एक शिशुपालन-शिविर भी खोल दिया, जहाँ दिन भर वच्चे रहते थे। तीन स्त्रियों की पारी प्रतिदिन उनके देखभाल के लिए वाँध दी। मेरी चाची एक सप्ताह आकर उनको दिनचर्या वता गई। शिशु-मगल और प्रसूतिगृह के काम मे लोग मदद भी करते रहे। इससे माताओ को शिशुपालन की व्यावहारिक शिक्षा भी मिलती रही। शुरू-शुरू से वच्चों को एक घेरे मे रखना ठीक था लेकिन जल्दी ही वच्चों मे वाकी अनुशासन आ गया। इस इन्तजाम से जो लोग शुरू मे परीशान थे उन्हे भी खूव सन्तोष हुआ और वे दिलचस्पी लेने लगे।

वच्चों के बिना स्त्री-शिक्षण व्यर्थ है

शिविर खोलने मे मेरे सामने एक और कठिनाई थी। मेरे साथ काम करने वाली कोई वहिन नही थी। तो फिर काम कैसे चलेगा? जव कोई नही थी तो भी मैं आगे वढा। मैंने सोचा, मै खुद ही चलाऊंगा। लेकिन स्त्री-शिविर विना स्त्री के कैसे चले? यह सव सोच कर कर्ण की स्त्री सुशीला को ही वहाँ का इन्चार्ज वना दिया। वाद को प्रान्तीय स्काउट कमिश्नर मिस सुशीला आगा ने ३-४ माह का समय हमे दे दिया था। सुचेता और आचार्य युगल-किशोर की स्त्री श्री शान्ति वहिन ने भी एक-एक माह का समय उसमे दिया था। इस तरह कमर वाँध कर अगर कोई अच्छा काम शुरू

शुभ काम को ईश्वर बढाता है

किया जाय तो ईश्वर सारा इन्तज़ाम धीरे-धीरे कर देता है। "सारी सुविधा जुटाकर ही काम शुरू करेंगे" वाली प्रवृत्ति मेरी समझ मे कभी नहीं आई। इस तरह नया क्रान्तिकारी कार्यक्रम तो हो ही नहीं सकता। फिर तो "न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी।" सेवकों को अपनी योजना के औचित्य और व्यावहारिकता पर विश्वास होना चाहिए। अपने पर भरोसा होना चाहिए। फिर तो शुभ काम शुरू ही करना चाहिए; बाकी सामग्री व साधन धीरे-धीरे मिलता जाता है। इस सिद्धान्त पर मेरा दृढ़ विश्वास था। हुआ भी वही। विना किसी स्त्री के होते हुए भी शिविर खोलने का ख़तरा उठा लिया; फिर स्त्रियाँ मिलती गईं।

४ माह शिविर मे निम्नलिखित विषयो की शिक्षा दी गई।

१—हिन्दी, हिसाब, इतिहास, भूगोल। २—चर्खा का व्यावहारिक और औद्योगिक ज्ञान। ३—शिशुपालन व प्रसूति-विज्ञान। ४—देश-दुनिया के साधारण ज्ञान। ५—स्काउटिंग। ६—राष्ट्रीय गाना। ७—गाँव की मामूली समस्याएँ।

४ माह के बाद इन स्त्रियो के जीवन मे, दृष्टिकार्य मे, बुद्धि मे इतना परिवर्तन हुआ कि अवाक् होना पड़ता था। परिवर्तन तो कल्पनातीत था। यह उनके लिए एक दृष्टान्त था जो कहते हैं कि गाँव वाले बदलना नही चाहते हैं। पर्दे की झेंप तो तीन दिन में ही ख़त्म हो गई थी। जो लोग पहले दिन उनको देख गये थे वे एक-डेढ़ माह बाद देख कर विश्वास नही करते थे कि ये वही स्त्रियाँ हैं। डेढ माह बाद दादा (आचार्य कृपलानी) शिविर मे आये थे। उन्होंने लड़कियो को देखा, उनसे बातें की, उनसे सवाल पूछ कर जवाब देने को क्लास भी लिया। मैने दादा से पूछा कि आपने कैसा स्टैंडर्ड पाया। दादा ने कहा बहुत ठीक। "There are as many intelligent and dull girls as you will find in such a group in towns" ("यहाँ

भी उतनी ही चतुर और उतनी ही बोर्दी लड़कियाँ हैं जितनी किसी भी नगर के ऐसे समूह मे मिल सकती हैं।") ख्याल रहे, ये दादा के शब्द हैं। तुमको मालूम है कि इन मामलों मे दादा का मान कितना ऊँचा है। उनका मान इतना ऊँचा हुआ करता है कि हमारे समाज की स्थिति को देखते हुए कभी-कभी व्यावहारिकता का दायरा भी पार हो जाता है। खैर, मेरे कहने का मतलब यह है कि अगर हम थोड़ी सी कोशिश करें तो देहात की स्त्रियों के जीवन मे इतना परिवर्तन हो सकता है कि उसकी कल्पना करना मुश्किल है। कैम्प के नतीजो को देख कर इस दिशा की सम्भावनाओं पर मेरा इतना विश्वास हो गया कि हमारी कत्तिनों मे भी ऐसा होना सम्भव है, इसकी भी कल्पना करने लगा। बाद को इस दिशा मे मैंने जो कुछ प्रयत्न किया था उसकी कहानी फिर कभी लिखूगा।

अनुकूल वातावरण के लिए प्रचार

चार माह शिविर के शिक्षा-क्रम के साथ-साथ एक काम मैंने और किया। सुचेता और शान्ति बहिन ने १ माह का समय मुझे दे दिया था। मैंने उनके रहने का फायदा उठा कर देहातो मे हमारी योजना के पक्ष मे प्रचार करने की बात सोची। इसके लिए मैंने प्रतिदिन दिन को १ बजे से ४ बजे तक का गाँव का कार्यक्रम रखा। एक दिन सुचेता जाती थी और एक दिन शान्ति बहिन। जिन ग्रामों की स्त्रियाँ कैम्प मे आई थीं और जहाँ सुधार-केन्द्र खोलना था उन-उन गावों मे विराट सभा का आयोजन करते थे। कोशिश करते थे कि स्त्री और पुरुष दोनों आवें और वे काफी तादाद मे आते भी थे। सुचेता और शान्ति बहिन सभाओं मे स्त्री-सुधार की बाबत भाषण देती थीं और फिर बाद को स्त्रियों मे बात-चीत करती थीं। इस कार्यक्रम से देहाती वायुमंडल काफी हमारे पक्ष मे होता गया। सुचेता तो उसी गाँव की जो बहू हमारे शिविर मे थी उसे साथ ले जाकर उससे गाना गवाती थी। एक गाँव में उसके ससुर मुझसे कहने

लगे :—"भाई जी, मैने तो आज ही अपनी वहू की सूरत देखी। तुम लोगों के लिए यह बहुत बड़ी बात नही मालूम होती है क्योंकि तुम महाराष्ट्र के वायुमंडल मे काम करते हो लेकिन अयोध्या के इलाके के लिए यह बहुत बड़ी क्रान्ति है।"

इस तरह ईश्वर की कृपा से चार माह मे शिविर का काम समाप्त करके वहिनों को घर भेज दिया। शिविर ख़तम हो जाने पर मेरे एक मित्र ने, जो स्कूलों के इंसपेक्टर थे, कहा—"मि० मजूमदार, कैम्प की सफलता की वावत तो बहुत से लोग वहुत तरह की वातें कर रहे हैं। लेकिन एक वात के लिए मै आप को बधाई देता हूँ। वह यह है कि चार माह में किसी किस्म की समालोचना का मौका नही आया।"

वस, आज और नहीं लिखूँगा।

---

[५१]

सेविकाओं की व्यावहारिक शिक्षा

३०—११—४१

वहिनों को शिविर की शिक्षा के वाद फिर ६ माह के लिए कार्यक्षेत्र की व्यावहारिक शिक्षा की योजना के मुताविक कार्यक्रम वनाने की समस्या सामने आ गई। शुरू मे तो गाव के लोगों मे हमारे कार्यक्रम के प्रति सहानुभूति पैदा करना था। विशेषकर गाव की स्त्रियो की प्रवृत्ति में कुछ परिवर्तन लाना था। मैने सुचेता से कहा और वह समय देने को राजी हो गई। फिर स्त्री-सुधार केन्द्रों का उद्घाटन समारोह के साथ करने लगे। सुचेता इसके लिए काफ़ी मेहनत करती थी। उद्घाटन के वाद घर-घर जाकर स्त्रियो से वातें करती थी। सुचेता के घरों मे घूमने से मुझको मदद मिली और स्त्रियों मे कम से कम इसके विरुद्ध भावना दूर होती रही।

सुधार-केन्द्र मे शुरू मे लडकियो के विद्यालय से ही आरम्भ करना है, यह मै पहले ही बता चुका हूँ। वहाँ पढ़ाई और तकली की व्यवस्था की। ग्राम-सेविका के लिए पहले साल गाव का कोई काम करने का कार्यक्रम नहीं रखा। तीन साल की योजना मे प्रथम वर्ष इसकी कल्पना भी नहीं थी। इस बार हम सिर्फ इस पर जोर देते थे कि वे नियमित जीवन व्यतीत करे। अपने घर साफ रखे और अपने बच्चों को सफाई से रखे। हा, गाव की बहुओं को विद्यालय मे लाने की कोशिश करे, इसका ध्यान मै हमेशा रखता था। ग्राम-सेविकाओं से विद्यालय की पढाई और कताई का लेखा रखने और मासिक रिपोर्ट तैयार करने का भी अभ्यास कराता था। प्रत्येक केन्द्र मे १०-१२ किताबे, १ मासिक और १ साप्ताहिक पत्र का भी प्रबन्ध हो गया। सुधार-केन्द्र की सेविका इधर विद्यालय चलाने का काम करती थी और साथ ही अपनी परीक्षा के लिए तैयारी करती थी। हर एक के लिए एक अध्यापक का इन्तजाम योजना के हिसाब से किया गया।

जिले मे ५० शिक्षा-केन्द्र खोलने से और उसके लिए प्रचार करने से एक फायदा और हुआ। देहातों मे आम तौर से लड़कियों को पढाने के प्रति लोगों की रुझान होने लगी। और मैं देखता था कि बहुत से गाँवों मे लोग अपनी छोटी लड़कियों को जिला बोर्ड के प्राइमरी स्कूलों में अधिक तादाद मे भर्ती करते थे।

इस तरह ६ माह का भी कार्यक्रम पूरा होता गया। सब लोगों ने कक्षा ४ की परीक्षा भी दे दी और २७ बहिने लोअर मिडिल की परीक्षा की तैयारी करने लगी।

यद्यपि प्रधानतः सुधार-केन्द्र मे लड़कियाँ ही शिक्षा लेती थीं फिर भी बहुत से केन्द्रों मे २-४ बहुएँ भी पढ़ने लगीं। यह ठाकुरो का गाँव था। फिर भी उन्होंने पर्दा न रखने का निश्चय कर लिया। पहले ही साल के नतीजे को देखकर मुझको विश्वास हो गया कि तीन साल में जब हम ग्राम-सेविकाओं की तैयारी पूरी कर लेंगे और सुधार-केन्द्र

की सम्पूर्ण योजना का काम शुरू हो जायगा तो गाँव की तमाम स्त्रियों मे इतना मानसिक परिवर्तन हो सकेगा कि वे सब हमारी योजना में भाग लेने लगेंगी।

६ माह का कार्यक्रम समाप्त करके दूसरे साल की शिविर-शिक्षा का इन्तजाम कर ही रहा था कि कांग्रेस के आदेशानुसार हम लोग ग्राम-सुधार महकमा से अलग हो गये। इस साल तो मेरा काम आसान हो गया था। जिले की स्त्री-सुधार योजना के पहले साल के नतीजे को देख कर प्रान्तीय सरकार ने इसको जारी रखना स्वीकार कर लिया और तमाम खर्च के लिए मजूरी दे दी। केवल इतना ही नही किया बल्कि इस योजना को ४८ जिलों मे धीरे-धीरे फैलाने के लिए ग्राम-सेविका शिक्षा-शिविर को स्थायी भी बना दिया। यह जरूर है कि मेरे अलग हो जाने से सरकार ने इस योजना का रूप बदल दिया। मेरी योजना उनको समझाना भी मुश्किल था क्योंकि वे ग्रामीण मनोवृत्ति से कुछ नही करते। सरकारी महकमा मे जिस प्रकार काम होता है वह तो तुमको मालूम ही है। लेकिन योजना का ढाचा तो वही रखा। योजना स्थायी होने से कुछ फायदा तो हो ही गया। गाव की स्त्रियों मे दृष्टि का विकास तो होगा ही इसलिए भी मुझे संतोष है कि मेरा मतलब कुछ तो हल हो गया।

अब सरकार भी चेती

इस तरह ग्राम-सुधार महकमा के साधनों का फायदा उठाकर बहुत दिनों के स्वप्न को कुछ साकार रूप देने की कोशिश की। इससे आगे के लिए मुझको अनुभव भी बहुत मिला। भविष्य मे अगर कभी स्त्रियों का काम करना होगा तो इस अनुभव से लाभ होगा।

[५२]

स्त्री-शिक्षा का आधार—चर्खा

१—१२—४१

कल ग्राम-सुधार स्त्री-शिक्षा शिविर का नतीजा बताते समय मैंने तुमको लिखा था कि मुझको ऐसा लगा कि अगर कत्तिनों को किसी तरह ज्यादा समय तक शिक्षा दे सके तो उनके जीवन में हम अमूल्य परिवर्तन ला सकते हैं। यह ठीक है कि कैम्प में एक तो जो स्त्रिया आई थी वे सब अच्छे घर की लड़कियाँ थी, फिर दर्जा २, ३, ४ तक पढी भी थीं। कत्तिनें ठेठ किसान हैं। और वे पढी-लिखी हैं। मै पहिले ही लिख चुका हूँ कि अच्छे घर की स्त्रियाँ चाहे थोड़ी पढी भी हों लेकिन पर्दा के कारण बाहरी साधारण ज्ञान उनमें कम होता है। बुद्धि तो उनमे ज्यादा होती है लेकिन अनुभव कम। एक-एक माह के लिए जो सूत-सुधार विद्यालय खोला गया था उसके द्वारा उनकी समझ और धारणा शक्ति का अन्दाजा मुझको मिल गया था। इसलिए स्त्री-सुधार केन्द्र का सब अनुष्ठान समाप्त होते ही इसका प्रयोग करने का विचार हुआ। इस काम के वास्ते गोसाईंगंज से आधे मील की दूरी पर एक ग्राम पसन्द किया गया। यह सिर्फ किसानो का ही ग्राम है। यहाँ हम लोगों ने पचायत कायम की थी। वह सफलता के साथ चल रही थी इसलिए भी वहाँ प्रयोग करना आसान हो गया था। वहा एक सेवक को रख दिया। गाव की २०-२५ स्त्रिया प्रतिदिन सात घण्टे के लिए स्कूल मे आती थी। १ घंटा प्रतिदिन अक्षरज्ञान और हिसाब पढाया जाता था; और समय धुनाई और कताई। प्रयोग के वास्ते मैंने तीन माह तक विद्यालय चलाया। सप्ताह मे एक दिन बौद्धिक क्लास मे साधारण विषयों की बाते बता दी जाती थी। बीच-बीच मे मै भी वहा जाकर कत्तिनों को इधर-उधर की बाते बतलाता था। कर्ण भाई भी प्रायः जाते थे।

आशातीत सफलता

केवल ३ माह में ही उनके दृष्टिकोण में कल्पनातीत परिवर्तन दिखाई देने लगा। बाबा राघवदास एक बार हमारे यहा आये थे। उनको उस गाव में ले गया था। स्त्रियों से बात करके वे पूछने लगे— "वाकई ये अनपढ़ किसान हैं?" एक बार हमारे प्रान्तपति श्री पालीवाल जी उस गाव में गये थे। उन स्त्रियों को देखकर वे आश्चर्य करने लगे।

इसी तरह इल्तफातगज के पास एक गाव में प्रयोग किया। वहा दूर होने के कारण मैं ज्यादा नही जा सका। वहाँ के कार्यकर्ता का स्टैंडर्ड भी अच्छा नहीं था। फिर भी वहां का नतीजा अच्छा ही रहा। २-४ गावों में तीन-तीन माह के प्रयोग से कत्तिनों के जीवन में परिवर्तन की सम्भावनाओं का पता लग गया। और मैं जिस बात की कल्पना करता था उस पर विश्वास हो गया। यह अप्रैल, मई, जून की बात थी। अगस्त ६ में आश्रम की सालाना बैठक होती थी। उसमें ६-७ योग्य कार्यकर्ताओं को फिर से कताई धुनाई की शास्त्रीय शिक्षा देकर विशेष रूप से कताई विद्यालय खोलने के लिए तय हुआ। तदनुसार ६-७ कार्यकर्ताओं को रणीवाँ भेजा गया। उनको ३ ४ माह चर्खे की व्यावहारिक, यान्त्रिक और सैद्धान्तिक शिक्षा देकर अकबरपुर के पास १२ गावों में कत्तिन विद्यालय खोल दिया। वहा अपनी योजनानुसार १ घंटा बौद्धिक क्लास भी रख दिया गया। दो माह में ही उनमें परिवर्तन देखने को मिला। लेकिन मैंने देखा कि कार्यकर्ताओं की तैयारी पूरी नहीं हुई और मार्च का महीना हो जाने से २ माह के लिए कत्तिनों को फसल काटने की छुट्टी भी देनी चाहिए थी इसलिए कार्यकर्ताओं को फिर से शिक्षा देने के लिए रणीवां बुला लिया। वे रणीवा आये और मैं गिरफ्तार होकर जेल चला आया। जेल में जाकर इस प्रश्न पर विचार करता रहा। ६ माह विचार करने से मुझको एक निश्चित योजना की रूप-रेखा स्पष्ट होने लगी। कानपुर खादी मंडल के व्यवस्थापक श्रीरामनाथ टंडन यहा मेरे साथ रहते हैं। उनसे अपनी

योजना की बाबत विचार-विनिमय किया। फिर हम लोगों ने अपनी कल्पना को लिख डाला। पूज्य बापू जी को भी इसके बाबत एक पत्र मे लिखा। बापू जी ने उस पत्र को नवम्बर के खादी जगत् मे प्रकाशित करके सब प्रान्तो के खादी कार्यकर्ताओं की राय मागी है। अगर चर्खा सघ इस योजना को मान ले और व्यवहार में लाये तो ग्रामीण समाज मे क्रान्ति हो जायगी। स्त्री-सुधार के लिए कोई दूसरी योजना बनाने की जरूरत नहीं होगी। तुम लोगो को काम के लिए अनन्त कार्यक्षेत्र मिल जायगा।

इधर आज से फिर लोग छूटने का अनुमान लगा रहे हैं। ४ तारीख को वाइसराय की कमेटी मे तय होगा। अब सब छूटेंगे। मै सोचता हूँ कि अभी छूट जाऊँगा तो यह ग्राम-सेवा की कहानी ख़तम नही होगी। लेकिन क्या हर्ज है? जितना ही हो जाय उतना ही बहुत है। किस तरह ग्राम-सेवक को ग्राम-समस्याओं को समझ-समझ कर चलना है, उसकी बाबत तो सब कह चुके हैं। जेल से अगर छूटा तो श्री निकेतन के काम का अध्ययन करना चाहता हूँ। तुम इन्तज़ाम कर देना। बस, अब आज खतम करता हूँ।

---

[५३]

खादी-सेवकों की स्त्रियाँ

२—१२—४१

कल जो अनुमान छूटने के मुतल्लिक चल रहा था वह आज फिर जोर से चलने लगा। यह सब देखकर मै आज फिर लिखने बैठा। अब समय बहुत कम मिलता है। बातों बातों मे ही वक्त कट जाता है। अतः ज्यादा भूमिका न बाध कर अपने विषय पर आता हूँ।

पहले ही लिख चुका हूँ कि ग्राम-सुधार शिक्षा केन्द्र के पक्ष मे वायुमंडल पैदा करने के लिए मै देहातों मे जाकर प्रचार करता था।

उन लोगों के सामने आजकल की स्त्रियों की हालत और अनमेल विवाह आदि सामाजिक कुरीतियो की तीव्र आलोचना करता था। भारत की प्राचीन स्त्रियों के आदर्श की बाबत बताता था। कत्तिन-स्कूलों में कत्तिनों को भी इसी प्रकार बताता था। लेकिन इस प्रकार के प्रचार में मुझको एक बहुत भारी अड़चन पड़ी। फैजाबाद जिले के बहुत नौजवान हमारे आश्रम के कार्यकर्त्ता हैं। दुर्भाग्य से उनकी स्त्रियाँ बहुत पिछड़ी हुई हैं। सुधार-केन्द्र की स्त्रियों, यहा तक कि कत्तिन स्कूल की स्त्रियों का दृष्टिकोण भी उनसे उन्नत था। कार्यकर्त्ताओं की स्त्रियों की हालत यहा तक खराब है कि वे नियमित चर्खा भी नही चलातीं और खादी नही पहनती हैं। ऐसी हालत मे जब कभी मै ऐसे गाव मे पहुँच जाता था जहाँ हमारे कार्यकर्त्ता का घर हो तो मै बहुत धर्म-संकट मे पड़ जाता था। मै प्रचार करता था कि स्त्रियां पर्दा न रखे, चर्खा चलायें, खादी ही पहनें। और हमारे अपने साथियों की स्त्रिया घूँघट काढकर घर मे ~सी रहे, चर्खा न चलाये, खादी न पहनें। और हम इन्हीं कार्यकर्त्ताओं की मार्फत अपना कार्यक्रम चलाना चाहते हैं; अपने

यह विषम स्थिति! सिद्धान्तों को साकार रूप देना चाहते हैं। किसी-किसी गांव मे जब लोग इस विषय पर मुझसे सवाल भी करते थे तो मुझको झेंपना पड़ता था। इस परिस्थिति को देखकर मेरी आत्मा को बहुत कष्ट होता था। मै सोचने लगा, ऐसी हालत मे हम क्या ग्राम-उत्थान का काम करेंगे। अगर हम अपने साथियों मे ही कोई भावना पैदा नही कर सके तो संसार को क्या बता सकते हैं। आश्रम के कायकर्त्ताओ की स्त्रिया अपने पतियों के साथ कार्यक्रम में भाग नहीं लेतीं, इसकी ग्लानि तो मुझमें थी ही। इसकी बाबत तो तुमको मैं पहले ही लिख चुका हूँ। लेकिन इस बार के दौरे ने तो मुझको परीशान कर दिया। मैंने महसूस किया कि ग्रामसेवकों की स्त्रियों की शिक्षा तो पहले होनी चाहिए। उसके बाद ही कोई कार्य-

क्रम गाव में चलाया जा सकता है। लेकिन उस समय मेरे सामने कोई रास्ता नही था। और न इसके लिए कोई साधन ही था, न मौक़ा था। इसलिए इस बात को मन ही मन छोड़ा और रणीवा आश्रम में जो बहिनें रहती थीं, उनकी व्यवस्था करके मैने संतोष किया। अकबरपुर मे भी जिन-जिन कार्यकर्त्ताओं को राजी कर सका उनकी स्त्रियों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करने लगा। मेरे साथियों की राय इस मामले मे मेरे साथ न होने से विशेष उत्साह तो नहीं था। लेकिन इस ओर कुछ न कुछ चेष्टा मैने जारी ही रखी।

ग्राम-सुधार की मार्फत जो स्त्री-सुधार की योजना शुरू की थी उसके प्रथम वर्ष के शिविर के ख़तम होते ही मै तुमसे, सुचेता से और जिससे भी मुलाकात होती थी किसी बहिन को इस काम को उठाने के वास्ते कहता था। दूसरे साल के शिविर के लिए एक योग्य बहिन की आवश्यकता थी। पहली बार तो प्रयोग मात्र था। स्त्रियों को बुलाकर किसी तरह काम चालू कर दिया गया। मै खुद भी वहा बैठ गया। ऐसा तो स्थायी रूप से हो नहीं सकता था। इसलिए मुझको स्थायी इन्तजाम करना था। तुमको याद होगा, तुमसे कितनी ही बार कहा होगा। आखिर मिस इटीरा की बाबत खबर मिली और सरला बहिन की मार्फत उनसे बात करके तय किया। वे राजी भी हो गईं। उन्होंने लिखा था—नवम्बर के प्रथम सप्ताह मे आने की कोशिश करेंगी। अक्टूबर में प्रान्तीय सरकार ने शिविर को सीधे अपने निरीक्षण मे चलाने का निश्चय किया। वे मेरा असर उन स्त्रियों पर नहीं चाहते थे क्योंकि हम लोग तो उनमें राष्ट्रीय भावना ही पैदा करेंगे। जब मैं कैम्प की जिम्मेदारी से अलग हो गया तो मिस इटीरा को लिख दिया कि अब न आयें। मुझसे भूल हुई थी कि मैने तार नहीं भेजा। मिस इटीरा मेरा खत पाने से पहले ही वहा से चल दी थीं और ४ नवम्बर को आश्रम मे हाज़िर हो गईं।

मिस इटीरा जब आ गईं तो मैने उनको बहुत ही सादे जीवन

वाली पाया और मन में सोचा, आश्रम के कार्यकर्त्ताओं की स्त्रियों के लिए शिक्षा-विभाग खोल दिया जाय। मैंने उनसे योग्य व्यवस्था- अपना प्रस्ताव किया। उन्होंने रहकर देखने को पिका का अभाव कहा। कुछ कार्यकर्त्ताओं की स्त्रियों को बुलाकर मैंने आश्रम मे महिला-विभाग खोल दिया। मिस इटीरा ज्यादा दिन नहीं रह सकीं; फिर अपनी काकी (सुचेना की मां) को बुलाकर चलाता रहा। सोचा था, तुम लोग कोई इन्तजाम कर दोगी। मृदुला वहिन को बुलाकर दिखाया। उन्होने भी किसी वहिन को तलाशने की कोशिश करने को कहा। फिर मै गिरफ़ार हो गया और ५-६ माह बाद उसे वन्द कर देना पड़ा। अब देखो, कब बाहर निकलते हैं और कब मौका मिलता है। चाहे जो हो मुझको तो ऐसा लगता है कि जब तक कार्यकर्त्ता खुद अपने आदर्श की ओर नहीं चलेंगे तब तक हम अपना आदर्श दूसरो को क्या वता सकते हैं। और इस बात मे हम अशक्य इसलिए हैं कि हमारे साथी अपनी स्त्रियों को साथ लेने की चेष्टा तक नही करते।

वाहर निकल कर फिर तुम लोगो को तंग करूँगा। यह ता तुम्हारी जाति का काम है। लेकिन तुम लोगो मे जो योग्य हैं वे तो पुरुषों के समान होने के आन्दोलन मे व्याख्यान देकर और प्रवन्ध लिखकर अपना सारा समय व्यतीत कर देती हैं, चाहे स्त्री समाज अन्धकार मे पड़ा रहे। ख़ैर, यह सव झगड़ा तो निकलने पर ही होगा। फिलहाल तो मै जेल मे हूँ और आश्रम का स्त्री-शिक्षा विभाग वन्द है।

मै जव से आगरा जेल मे आया तभी से तुमको पत्र लिखता रहा। मैने आश्रम में शुरू से ग्राम-सम्बन्धी जो कुछ सोचा, देखा और किया सब कुछ जहा तक याद कर सका लिख दिया। इसके अलावा मैने सरकारी ग्राम-सुधार का काम दो साल किया। उससे भी काफी अनुभव हुआ। उसकी वावत भी लिखने की कोशिश करूँगा। स्त्री-सुधार सभा के अनुभव तो वता ही चुका हूँ लेकिन वह तो आश्रम-

कार्य के सिलसिले से ही था। केवल सरकारी साधनों का इस्तेमाल करके अपनी कल्पना के अनुसार प्रयोग कर लिया। अब मैं दूसरे पत्रों में सीधे सरकारी तरीके से ग्राम-सुधार की कहानी लिखने का प्रयत्न करूँगा।

---

[५४]

सरकारी ग्राम-सुधार

३—१२—४१

कल के पत्र में आश्रम की ग्राम-सेवा की बात खत्म हो गई थी। वादा के मुताबिक आज सरकारी तरीके से सरकारी महकमा की मार्फत ग्राम-सुधार के अनुभव लिखने बैठा हूँ। सरकारी महकमा में एक कठिनाई यह है कि उसमे परिस्थिति के अनुसार अपनी कल्पना को पूरा करने का मौका नहीं होता। दूसरी बात यह कि उनका कार्यक्रम किसी निश्चित आदेशानुसार ग्रामीण समाज को संघटित करने की दिशा मे नहीं होना है। उनके कार्यक्रम अलग-अलग धुन लिये होते हैं। गाँव के लोगों को कुछ सहायता पहुँचाने का ही लक्ष उनके सामने होता है। मुझको प्रान्त भर के लिए बनाये हुए निश्चित कार्यक्रम को लेकर चलना पड़ता था। उसे मै अपनी धारणा के अनुसार मोड़ने का प्रयत्न तो करता था। फिर भी बहुत हद तक कार्यक्रम अलग-अलग ही होता था।

मुझको जब जिला ग्राम-सुधार संघ के अध्यक्ष पद की जिम्मेदारी सरकार की ओर से मिली तो सबसे पहले पुरानी सरकार की योजनाओं का अध्ययन किया। फैज़ाबाद मे अयोध्या के राजा के कोर्ट आव् वार्डस की ओर से कुछ ग्राम-सुधार का काम होता था। सरकारी ग्राम-सुधार भी उसी के साथ शामिल कर दिया गया था। मैंने देखा,

जो सुधार हुआ है उसमें अक्षरशः ग्राम-सुधार ही हुआ है। न तो ग्राम-वासी-सुधार की कोई चेष्टा की गई थी और न ग्राम-समाज-सुधार की कोशिश थी। वहाँ विभाग के सेवकों मे ही जाति-भेद था। सुधार अफसर, इन्सपेक्टर, आर्गनाइज़र आदि जातिया अलग-अलग थी और उसी हिसाव से आपस मे व्यवहार था। जैसा कि मै शुरू मे ही लिख चुका हूँ शहर के लोग ग्राम-सुधार उसी को कहते हैं जिससे गाव वालों को वे चीज़े मिल जायॅ जिनके विना शहर वालों को तकलीफ होनी है। यानी पक्की गलिया हो जायॅ, ओसारा पक्का हो जाय, सीमेन्ट का फर्श हो जाय, बड़े-बड़े खिड़कीदार कमरे हो। अगर हो सके तो विजली की रोशनी और रेडियो हो जाय।

मैने ऊपर कहा है कि वे ग्राम-वासियो का सुधार नहीं करते। मेरी इस किस्म बातों से कुछ सुधार-आफीसर नाराज़ हो जाते थे। "क्या आप समझते हैं, हममे इतनी भी अक्ल नहीं कि हम यह न जानते हो कि उनका अज्ञान ही सारे कष्ट का मूल है। हम उसका भी इन्तज़ाम करते हैं।" हा, ठीक है वे यह भी करते हैं। वे मैजिक लैटर्न से वताते हैं, मक्खियाँ क्या-क्या वीमारी फैलाती हैं; हैज़ा से वचने के क्या-क्या उपाय हैं इत्यादि और उनका प्रतीकार ऐसा वताते है कि ग्रामवासी ग्रामीण साधन से पा नहीं सकते हैं। वे सफाई की वात भी करते हैं लेकिन अपने खेमे की सफाई रखने मे इतने खर्च का नमूना दिखाते है कि देहाती स्वभावतः यही कहते हैं कि सफाई रखने के लिए इतना तूल-कलाम अगर करना है तो परमात्मा ने हमको साफ रहने के लिए पैदा ही नही किया। यह भी अमीरों के अनेक विलासों मे एक विलास ही है।

हाँ, वे समाज-सुधार भी करते हैं। व्याख्यान और पर्चा-द्वारा यह वताते हैं कि "तुम बड़े वेवकूफ हो। ठीक से रहना नहीं जानते तुममे जात-पात का भेद है। तुम विवाह श्राद्ध आदि अनुष्ठानों मे फिजूल खर्च करते हो; तुम चमार धोबियों का नाच कराते हो; होली

उपदेशों की भरमार

खेलते हो; तुम बेकार जेवर बना कर सोना-चाँदी घर में फँसा कर रखते हो। इस तरह तुमको महाजन के चगुल मे फँसकर कर्जा में डूबना पड़ता है। तुम्हारे बच्चे मूर्ख रहते और गोरू चराते हैं। घास छीलते हैं, पढ़ते नहीं। इसीलिए तुम बरबाद हो गये। अतः तुमको चाहिए, घर पर किसी किस्म के बेकार आनन्दोत्सव न मनाकर मुँह लटकाकर १२ माह बैठे रहो। जितना भी सोने चादी के जेवर हैं बेचकर रुपया को-आपरेटिव बैंक मे रख दो। ज़रूरत पर महाजन के पास न जाकर सरकारी समिति से उधार लो। बच्चे गोरू न चरावे, मवेशी खूँटा मे बाँधे रहो। घास बिना उनका काम चल जायगा। बच्चों को सरकार ने जो हर गाँव मे निराकार स्कूल खोल रखा है उसमे भर्ती कर दो। इत्यादि उपदेशों की भरमार से गाँव वालों का दम घुटने लगता है। अगर कुछ लोगों ने सुनने कोशिश की तो वे दूसरे के चगुल में फँसे जिसका नाम सरकारी शोषण है।

यानी उनका दृष्टिकोण ऊपर-ऊपर से गाव मे कुछ सजावट लाता था। जिससे यह प्रचार हो सके कि सरकार भी ग्राम-सुधार कर रही है। परोक्ष रूप से सरकार इन विभागों की मार्फत ग्रामवासियों को केवल अपने हाथ मे रखने का उद्देश्य पूरा करती है।

काँग्रेस मन्त्रिमडल ने जब ग्राम-सुधार का काम काम करना शुरू किया तो सुधार की नीयत तो उन्होंने बदल दी लेकिन तरीका पुराना ही रखा। उनकी नीयत गांव वालों को वाकई मदद करने की थी लेकिन उच्च श्रेणी के सदियों के सस्कार के अनुसार उनमे भी दया की वृत्ति थी। बेचारे गाँव वालों का कुछ भला करना था। नीयत होने पर भी अनुभव न होने से समस्या की जड़ पर वे नही पहुँच पाये।

वही पुराने तरीके

समस्याओं का अध्ययन करने का साधन भी तो उनके पास पुराने सरकारी कमीशनों की रिपोर्ट और युरोप के प्रयोगो का विवरण ही था। अतः जिस

प्रकार सन् १९२१ मे हमने सारे देश में कांग्रेस की ओर से राष्ट्रीय शिक्षा की संस्थाएँ खोली थी जिनमे शिक्षा-पद्धति तो वही पुराने तरीके की नकल थी, सिर्फ राष्ट्रीयता की सफेदी कर दी गई थी, उसी प्रकार कांग्रेस सरकार ने ग्राम-सुधार के काम मे पुराने तरीके की नक़ल करके उसमें अपनी शुद्ध नीयत का पोचाड़ा मात्र लगा दिया।

शुरू के ७-८ माह तक तो कोई ख़ास कार्य-क्रम ही नहीं मिला; साधारण प्रचार ही चलता था। आख़िर प्रचार तुम कितने दिन चला सकते हो। कुछ ठोस काम तो चाहिए ही। आख़िर जब कार्यक्रम आया तो वह इस प्रकार था :—

१—गाँव मे पंचायत घर बनाना। २—गाव के कुओं की मरम्मत कराना। ३—गली सड़क ठीक करना। ४—पचायत कायम करना। ५—रात्रि पाठशाला और दूसरी शिक्षा का प्रबन्ध करना। ६—खेती का सुधार करना।

हर एक काम के लिए थोड़ा-थोड़ा रूपया भी मंजूर हुआ। काम चलाने के लिए प्रत्येक जिला बोर्ड के निर्वाचन क्षेत्र को क्षेत्र मानकर सर्किल खोल दी गई। इस तरह फैज़ाबाद ज़िले मे २७ सर्किलें हो गई थीं।

पहले तो इतने अधिक विस्तृत सर्किल में इतने अधिक प्रकार का सुधार देखकर ही मै घबड़ा गया। फिर जब उसके लिए मजूर रक़म देखी तो मैंने समझा कि यह भी ऊपरी-ऊपरी कुछ भला करने का कार्य-क्रम है। अतः मैंने इसके लिए बहुत दिमाग़ ख़र्च करने की जरूरत नही समझी। मैंने केवल यही निश्चय किया जो कुछ भी कार्य-क्रम ऊपर से आये उसे जोर से चला दिया जाय जिससे सरकारी साधन गाव वालों के लिए ज्यादा से ज्यादा लाभदायक हों।

शुरू में पंचायत घर पर जोर दिया गया। मैंने भी उस पर ज़ोर देकर करीब २५-३० पंचायत घर बनवाये। इस काम मे हमारे मंत्री श्री महेन्द्रसिंह रनधवा आई० सी० एस बहुत उत्साही थे। जिस तरीके

का पचायत घर वन रहा था उसके साथ मै वहुत सहमत नहीं था। लेकिन मैने पहले ही देख लिया था कि काग्रेस मंत्रिमंडल भी पुराने महकमों के तरीके से चल रहा है और उल्टे रास्ते जा रहा है। अतः मैने अपने मत्री पर ही ज्यादातर वात छोड़ दी थी। मै तो पचायत घर के पक्ष में था ही। मै चाहता ही हूँ कि अगर साधन जुटाया जा सके तो प्रत्येक गाँव मे कोई सार्वजनिक स्थान हो, नही तो सामाजिक जीवन नहीं वन सकता है। लेकिन शुरू मे पचायत घर नही वनाना चाहिए। पहले पंच वनें, फिर पंचायत और उसके वाद ही पंचायत घर वने। जव तक पच नहीं वनेंगे तव तक पचायत भी नही वन सकती है। पचायत की वावत् मैं अपना अनुभव और राय वता ही चुका हूँ। गाँव मे जो लोग पच वनने लायक हैं, वे कैसे हों यह सव लिख ही चुका हूँ। अतः अगर गाँव को आगे वढाना है तो पहले पचों को खोज निकालना होगा और उसके लिए पहले कोई रचनात्मक ठोस काम शुरू कर देना चाहिए। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि हरेक गाव मे ऐसे कुछ लोग होते हैं जो अवसर पाने से सार्वजनिक काम मे दिलचस्पी लेते हैं। किसी गाव में पाठशाला, पुस्तकालय, औषधालय आदि खोल कर देखो; २-४ आदमी ऐसे निकल आते हैं जो उत्साह से अपना तन, मन, धन उस काम में लगा देते हैं। लेकिन आज के साम्राज्यशाही शोषण के दलाल सत्तात्मक ग्राम-समाज में उनके लिए अपने सद्गुणों के विकास का कोई अवसर नही है। अतः सार्वजनिक जीवन मे इनका कोई स्थान नहीं है। इसलिए सव से पहले जरूरी है कि ऐसे रचनात्मक कार्य को शुरू करना जिसको करने से इस तरह का सत्तात्मक लाभ नहीं होता है। ऐसा करने से हम गाव के ईमानदार और लोक-हितैषी वृत्ति वाले समूह के व्यक्तित्व को ग्रामीण जनता के सामने प्रतिष्ठित कर सकेंगे। और इनके प्रधानतः साधारण लोगों मे से होने के कारण इन पर

पहले पंच या पंचायतघर ?

जनता का विश्वास पैदा होगा। पिछले एक पत्र में हमने लिखा था कि हम जब तक गाँव में स्वाभाविक नेतृत्व कायम नही कर सकेंगे तब तक एकाएक पंचायत कायम करके उसके हाथ में सत्ता छोड़ देने से जनता को उन्ही के हाथ मे छोड़ देना होगा जो लोग अब तक उसका उत्पीड़न करके स्वार्थ-साधन करते थे और शोषक वर्ग के एजेंट के रूप से गाँव में फैले हुए हैं। अतः सही पचायत कायम करने के लिए पहले पचों के व्यक्तित्व का विकास करना है। इस तरह पंचायत की स्थापना होने पर ही पंचायत घर की

बात सोचनी चाहिए। फिर पंचायत घर उसी

शहरी दृष्टिकोण स्थान पर कायम करना चाहिए जहा इस

वाले अधिकारी प्रकार पंचायत की मार्फत शिक्षालय, पुस्त-

कालय आदि किसी क़िस्म की स्थायी संस्था का संगठन हो गया हो। फिर उसी संस्था का काम चलाने के लिए ही घर बनाना चाहिए जिसकी बनावट इस तरह की हो कि उसी इमारत से पंचायत घर का भी काम चल जाय। लेकिन मुश्किल तो यह है सरकारी अधिकारी, चाहे वे कांग्रेसी क्यो न हों, शहरी दृष्टिकोण रखते हैं। इसलिए कार्य-क्रम भी ग्रामीण समस्या की दृष्टि से उल्टा ही होता है।

लेकिन तुमको तो मालूम ही है, मै कोई चीज़ आधे दिल से नहीं करता हूँ। जो काम करना है उसे डटकर करना चाहिए। आख़िर पचायत घर बनने मे फ़ायदा ही था। लोगों में जोश होता है। विभाग के प्रति कुछ विश्वास भी होता है और पचायत घर के लिए कुछ सामान जुटाना और उसके बनाने की व्यवस्था करने मे कुछ त्याग की भावना और कार्य कुशलता तो पैदा होती ही है। इसलिए जब सुधार-मंत्री श्री काटजू साहब का आग्रह और हमारे मंत्री श्री रन्धवा के असीम उत्साह को देखा तो मैने भी अपनी सारी शक्ति इसको सफल बनाने मे लगा दी। श्री रन्धवा ने इसके लिए इतनी अधिक मेहनत की थी कि जो देखता था वही आश्चर्य करता था। पंचायत घरो के कारण

इस ज़िले का ग्राम-सुधार कार्य प्रान्त-भर मे मशहूर हो गया। तुमको मै यहा पर कह देना चाहता हूँ कि पंचायत घर तो बनाया और बाद को उन्हें उपयोगी बनाने की कोशिश भी की लेकिन पंचायत घर के मामले मे ऊपर-लिखे मुताबिक मेरी राय अभी भी कायम है। अनुभव ने भी इसकी पुष्टि की। क्योंकि जहा ठीक-ठीक पचायत क़ायम हो सकी वहा तो घर कुछ उपयोगी है, बाकी स्थानों पर बेकार पड़ा है।

पचायत घर के साथ-साथ दूसरा कार्य-क्रम भी उसी तरह चलता रहा जैसा कि महकमे मे चलता है। मै पहले ही लिख चुका हूँ कि कार्यक्रम के तरीकों को देखकर मुझको बहुत उत्साह नहीं हुआ था। और रणीवा आश्रम को भी बनाना था इसलिए दफ़्तरी ढग से ही अपना समय साल भर तक महकमा के काम मे देता था। क्योंकि मै समझता था कि इस ओर सर पटकने पर भी गांव के जीवन का संगठन कायम करने की सम्भावना कम है। मुझको यह भी कहा गया था कि प्रान्त से जो कार्य-क्रम आता है उसमें हेर-फेर भी नहीं हो सकता है। इसलिए भी उसमे कुछ नई बात सोचने की गुंजायश नहीं थी।

बाद को जब स्त्री-सुधार के लिए विचार करते-करते उसी सरकारी कानून के भीतर से अपने विचार के अनुसार काम चलाने की सम्भावना देखी तो उस ओर भी मै अपना ध्यान देने लगा। आज बस। आगे की बात कल लिखूँगा।

---

[५५]

कोआपरेटिव सोसाइटी

४—१२—४१

कल पंचायत घर और पंचायती सगठन की बाबत कुछ बताया था। आज मै कोआपरेटिव सोसायटियों (सहकारी समितियों) की बाबत

कुछ अनुभव बताना चाहता हूँ। ग्राम-सुधार काम के वास्ते सरकार का अलग महकमा बना हुआ है। महकमों के साथ सम्बन्ध होने से मैंने समझा कि इन कामों में भी दिलचस्पी लेना अच्छा ही है। इन महकमों की जिम्मेदारी तो मेरे पर नहीं थी लेकिन मैं हमेशा इनका अध्ययन करता था और जहां सम्भव होता था मदद करता था।

जब पहले गांव में काम करता था तो देखता था गांव वालों की तकलीफों में कर्जे की मद ही ज्यादा दुःख देने वाली होती है। २-४ आदमी कर्ज देकर सबको बांधे हुए हैं। कोई किसान ऐसा नहीं जो महाजन के हाथ में बँधा न हो। यह समस्या इतनी व्यापक है कि गाँव के कर्ज की बाबत कुछ विस्तार से विचार किया जाय तो कोई हर्ज न होगा। सबसे पहले यह देखा जाय कि जो कर्ज होता है उसे किसान चाहे तो रोक सकता है या उसकी परिस्थिति ही ऐसी है कि वह उससे बच नहीं सकता। आजकल अर्थशास्त्र के पंडितों का एक प्रकार का फैशन हो गया है कि वे किसानों की फ़िज़ूलखर्ची की बात कहकर कर्ज में उनके डूबने के खिलाफ आलोचना करते हैं। विवाह, जनेऊ, त्यौहार आदि अनुष्ठानों में शक्ति से ज्यादा खर्च करने पर उनको कोसते हैं और उनको उपदेश देते हैं। लेकिन वे चाहते क्या हैं? क्या गांव के लोग गले में रस्सी बांधकर अपने को दरख्तों से टाँग लें। दरख्त भी तो गरीबी के मारे खतम हो रहे हैं। आखिर गांव वालों की जिन्दगी में है क्या? किसान का सारा जीवन नीरस और रूखा है। चाहे गर्मी हो, चाहे सर्दी वही एक ही तरह का सुबह उठना, हल-बैल लेकर खेत में जाना। १२ माह वही चर्बन, वही मकुनी बाजरा की रोटी दाल। कोई विभिन्नता नहीं, कोई तब्दीली नहीं। आँख मूँदकर घानी के बैल जैसा छोटे से दायरे में जिन्दगी भर घूमना ही उनके लिए रह गया है। हम लोग ७-८ माह से यहां नजरबन्द हैं। यहां किस्म-किस्म के कार्यक्रम हैं। खेल,

आजीवन कारावास-सा नीरस जीवन

कूद ही जीवन का उद्देश्य है, आदर्श है। फिर भी ७-८ माह मे लोग ऊब गये दीखते हैं। छूटने की कहीं से गन्ध मात्र आ जाय तो लोग बावले हो उठते हैं, मानो आसमान से चाद टूटकर गिर रहा है। गाव के किसान तो आजीवन कारावास भाग रहे हैं, सो भी सी० क्लास का। ऐसे दुस्सह और नीरस जीवन मे कभी एक आध बार कोई शुभ अवसर आता है तो कुछ खुशी मनाना, कुछ प्रमोद करना, स्वजन कुटुम्ब से भेंट मुलाकात करना उनके लिए स्वाभाविक और अपरिहार्य होता है। गाव भर की नीरसता के बीच वही एक-आध मौका होता है जब आबालवृद्धवनिता थोड़ा हँस लेते है, थोड़ा खुश हो लेते हैं। अगर अर्थशास्त्र के पंडित समाज-सुधार के लिए इनको भी बन्द कराकर उनको पत्थर की मूर्त्ति बना देना चाहते हैं, उनको मम्मी बनाना चाहते हैं तो परमात्मा उनकी बुद्धि उन्हीं तक रखे। मेरी समझ मे यह बात आती नहीं। भला उन उपदेशकों से पूछो ऐसी परिस्थिति मे अगर पड़ते तो वे क्या करते। २।१ दिन के लिए भी अपने आराम के साधन बाधकर ही गाव पहुँचते हैं। फिर भी 'मोनोटोनस' (नीरस) कहकर ग्रामीण वायुमंडल से भाग आते हैं। इनकी ज़बान से यह उपदेश शोभा नही देता है। यह ठीक है, उनको फिजूल खर्च से बचाना चाहिए। लेकिन वह काम आलोचना करने से नही होगा और न उपदेश देने से ही होगा। उसके लिए चाहिए कि लोग गाव मे जाकर बैठे और अनुष्ठानों का ऐसा तरीका बतावे कि खर्च भी कम हो और विनोद भी पूरा हो जाय।

यही बात जेवर की भी है। अगर जेवर वृत्ति न होती तो २०० साल से जिस तरह सर्वतोमुखी शोषण चल रहा है उसमे अब तक जो कुछ भी हाड़-मास इन किसानों के शरीर मे क़ायम है वह भी स्वाहा हो जाता।

किसानों की एक और बात बताकर वे हँसते और नाक सिकोड़ते हैं। मैंने बहुत से उद्धारकों को देखा है। अवध में मौरूसी हक़ जमीन

जीवन की कठोर वास्तविकताएँ

पर नही है, यह मै पहले ही लिख चुका हूँ। बाप के मरने के ५ साल बाद, और कितने ही पहले से किसान को खेती से बेदखल होने पर नज़राना देकर जमीन लेते हैं। जो लोग बेदख़ल भी नहीं होते हैं उनके पास खेत इतना कम होता है कि जब कही कोई भी खेत ख़ाली होता है तो नज़राना लेकर टूट पड़ते हैं। इस चढा-ऊपरी मे उनको बहुत ज्यादा रुपया देना पड़ता है। जिन्दा रहने के एक मात्र साधन को प्राप्त करने के लिए चाहे जितने सूद पर चाहे जितना पैसा दे देने मे न बेवकूफी है और न लापरवाही। जिसको आज ही जिन्दा रहने की समस्या को हल करना है वह भविष्य की बात नही सोच सकता; उसमे किसी क़िस्म की भावना का अवशेष नही रह जाता है। भीषण दुभिक्ष मे माता-द्वारा बच्चा भून कर खा जाने की कहानी भी तो इतिहास ही बताता है। भूखे और बेकार लोगो द्वारा सड़क के कूड़े की टंकी मे से पड़ा अखाद्य खाकर मौत का सामना करने की कथा भी तो सुनने मे आती है!

ग्रामीण उद्योग-धन्धों के खिलाफ आलोचना करने वाले पश्चिमी अर्थशास्त्र के पंडित जब कहते हैं कि किसान जमीन के वास्ते टूट पड़ते हैं और उसे बेवकूफी और लापरवाही कहते हैं तो समझ मे नही आता उनकी बुद्धि को हम क्या कहे। गाँव का पचायती समाज टूट जाने से लड़ाई-झगड़ा के कारण अदालत मे मामला ले जाना पड़ता है, उसके लिए भी कर्ज़ा बढ जाता है। सम्मिलित परिवार टूट जाने से छोटा-छोटा परिवार हो गया, इस प्रकार उनके साधन कम हो जाते हैं इसलिए भी वह कर्ज मे फँसता है। अतः जब मै देहातों में काम करता था और किसानों को कर्जे की असम्भव स्थिति मे देखता था और उनके कारणों का अध्ययन करता था तो मालूम होता था कि कर्ज़ का कारण किसानो की बेकसी और बेवसी है और आज की स्थिति में वह अनिवार्य है। इसलिए इस समस्या के हल पर मैने कभी गम्भीर

विधायक तरीका

विचार ही नहीं किया था। क्योंकि व्यक्तिगत रूप से एक ग्राम-सेवक ग्रामवासी को इस दिशा मे कुछ मदद नहीं कर सकता। अपनी शक्ति-भर आनन्द रखवो में सही ढङ्ग पर खर्च करने के नवीन तरीके बताकर, खेती से अधिक पैदा करने का तरीका बताकर, गाव मे मेल व सद्भाव पैदा करके, मुकद्मेबाजी कम करा कर और सहायक धन्धा से कुछ आमदनी का जरिया बताकर भविष्य के लिए किंचित् सहूलियत पैदा करके ही हम कर्ज का भार बढने से रोक सकते हैं। लेकिन इस दिशा मे प्रत्यक्ष रूप से कुछ संयोजित चेष्टा करना ग्राम-सेवक के लिए बेकार ही है।

मै समझता हूँ, इस सिलसिले मे गाव के महाजनों और दूसरे उधार देने वालों के तरीकों को भी देख लें तो अच्छा होगा। महाजनों की कर्ज-नीति की बाबत सभी लोग जानते हैं। उसपर अधिक कहना बेकार है। वैसे तो किसान के कर्जे का इतिहास अंग्रेजी राज्य के साथ ही शुरू हुआ है। लेकिन गौर करने पर मालूम होगा कि पिछली

गले का फंदा कैसे कसा गया?

लड़ाई के बाद ही ज्यादा कर्ज बढ़ा है और महाजनों ने अधिक व्यापार किया है। मैंने ऊपर कहा है कि कर्ज किसानों की बेकसी के कारण ही होता गया। लेकिन बहुत-सा कर्ज तो महाजनों के कारण हुआ है। यह तो सब को मालूम है कि पिछली लड़ाई के दिनों मे जिनके पास पैसे थे उन्होंने खूब पैसा पैदा किया। लडाई ख़तम हो जाने से लड़ाई के समान की माग बन्द हो गई तो बहुत सी पूँजी जो लड़ाई के कारण दूनी तिगुनी हो गई थी सब ख़ाली हो गई। इन पूँजीपतियों ने जब रुपया लगाने का बाहर कोई ज़रिया नहीं देखा तो गाव में उधार देने मे लगाना शुरू किया। फिर क्या था उनके दलाल भी नियुक्त हो गये। इन दिनों अनाज महँगा तो था ही इसलिए ज़मीन से आमदनी भी बहुत थी। जहाँ कहीं ज़मीन खाली हुई कि महाजन के दलाल, लोगों को ज़मीन लेने का

फ़ायदा बताने के लिए तैयार। ये लोग गाव में बैठकर लोगों को उकसाकर ज़मीन ख़रीदने को चढ़ा देते थे और रुपया दिला देने का भी जिम्मा ले लेते थे। वे तो बिल्कुल हितू बन बैठते थे। कहते थे—"भला तुम्हारे परिवार से हमने इतनी मदद पाई है। तुम्हारा दादा न होता तो अब तक हम सब भीख मागते फिरते और मै इतना भी न करूँ कि दौड़-धूप करके इतने रुपये का इन्तज़ाम कर दूँ।" इसी तरह के शुभाकाक्षी लोग किसान को नज़राना देकर ज़मीन लेने के लिए कर्ज़ा का इन्तज़ाम करके असीम त्याग और सेवा का प्रदर्शन करते रहे।

किसी के घर कोई अनुष्ठान हो तो फौरन उसके ये हितैषी हाज़िर। भला उनके रहते हुए परिवार की नाक कट सकती है? कदापि नही। इस प्रकार परिवार की नाक बचाने वाले प्रत्येक गाव मे मौजूद है। इन पारिवारिक प्रतिष्ठा कायम रखने वालों के मारे कई जगह मुझको हार खानी पड़ी है। मैने तो कम ख़र्च करने को राजी करा लिया लेकिन उनके हिताकाक्षी लोग कहा मानने वाले। इस प्रकार नाक कटने से बचाने वाले लोग सैकड़ो परिवारों की नाक बचाकर गला घोंट कर अपना व्यापार चलाते रहे। इस दिशा मे ग्राम-सेवक व्यक्तिगत रूप से उचित सलाह देकर ग्रामवासी को कुछ कर्ज़ से बचा सकते हैं।

ये महाजन सूद भी कस कर लेते हैं। मैने हिसाब करके देखा तो मालूम हुआ कि अगर महाजन किसी को २६) क़र्ज़ दे तो १० साल मे ५००) पावना हो जाता है। एक सज्जन, जो समाज मे एक ज़िम्मेदारी लिये हुए हैं, कहते थे कि मैने ५०) कर्ज देकर २०००) का दावा किया है। और वे इसमे बहुत गर्व करते हैं। गाव मे लेन-देन के सैकड़ो तरीक़े हैं। उन सब का बयान करने लगूँ तो पत्र समाप्त ही न हो। इतना ही समझ लो कि जब मै रणीवा के चारो ओर के गांव के कर्ज की बाबत अध्ययन करने लगा था तो उसको इतना विशाल

पाया और मुझको समस्या इतनी अगम-अथाह मालूम हुई कि मैंने इस दिशा मे विचार करना ही छोड़ दिया था; समाधान सोचना तो दूर की बात थी।

जब कांग्रेस मन्त्रिमंडल हुआ और ग्राम-सुधार महकमे की ज़िम्मेदारी ली तो मुझको ऐसा ख्याल हुआ कि शायद कोआपरेटिव विभाग की मार्फत इस दिशा मे कुछ सहूलियत पैदा की जा सके। वैसे तो मेरा विश्वास हो गया था कि पिछले कर्ज़े के लिए अगर सरकार कुछ कर सकती है तो वह केवल एक ही तरीका है। उसे रद्द कर देना और किसानों को कर्ज़ से बरी कर देना। परिस्थिति इतनी जटिल है कि इसका दूसरा कोई रास्ता ही नही है। लेकिन मुझको ऐसा लगा कि भविष्य की समस्या का शायद सहकारिता-द्वारा दूसरा हल हो सके। अतएव मै इस विभाग की कार्यपद्धति और कार्यक्रम को देखने लगा। उनके कर्मचारियों से तो परिचय हो ही गया था। उनसे विचार-विनिमय करता रहा और गाँव मे जो सोसाइटियाँ बनी हैं उनका अध्ययन करता रहा।

जब मैंने इसके कार्यक्रम और संगठन की रूपरेखा देखी तो मेरी सारी उम्मीदों पर पानी फिर गया। सहकारी बैंक एक केन्द्रीय संगठन होता है जो कहने के लिए प्रतिनिधिमूलक है। लेकिन सरकारी विभाग के कर्मचारी ही बैंक वालों पर हावी होते हैं। देहातो मे सोसाइटिया खोली जाती हैं; उसकी पचायते बनती हैं। वे भी वही होते हैं जिनका विवरण मै कई पत्रों मे लिख चुका हूँ। यूनियन का प्रधान सरकारी अफसर होता है और तीन सदस्य उसके असर से बाहर से लिये जाते हैं। पंच लोग भी उन्ही के आदमी होते हैं। जिला बैंक सोसाइटी को कर्ज देता है। और सोसाइटी मेम्बरो को देती है। बैंक सीधे भी कर्ज़ देता है। बैंक ६°/० सूद लेता है और सोसाइटी १५°/० तक लेती है। फिर इसकी जमानत रूप मे फसल बंधक

नागनाथ हटे तो सॉपनाथ आये!

फ़ायदा बताने के लिए तैयार। ये लोग गाव में बैठकर लोगों को उक्साकर ज़मीन ख़रीदने को चढ़ा देते थे और रुपया दिला देने का भी जिम्मा ले लेते थे। वे तो बिल्कुल हितू बन बैठते थे। कहते थे—"भला तुम्हारे परिवार से हमने इतनी मदद पाई है। तुम्हारा दादा न होता तो अब तक हम सब भीख मागते फिरते और मै इतना भी न करूँ कि दौड़-धूप करके इतने रुपये का इन्तज़ाम कर दूँ।" इसी तरह के शुभाकाक्षी लोग किसान को नज़राना देकर ज़मीन लेने के लिए कर्ज़ा का इन्तज़ाम करके असीम त्याग और सेवा का प्रदर्शन करते रहे।

किसी के घर कोई अनुष्ठान हो तो फौरन उसके ये हितैषी हाज़िर। भला उनके रहते हुए परिवार की नाक कट सकती है? कदापि नही। इस प्रकार परिवार की नाक बचाने वाले प्रत्येक गाव मे मौजूद हैं। इन पारिवारिक प्रतिष्ठा कायम रखने वालों के मारे कई जगह मुझको हार खानी पड़ी है। मैने तो कम ख़र्च करने को राजी करा लिया लेकिन उनके हिताकाक्षी लोग कहा मानने वाले। इस प्रकार नाक कटने से बचाने वाले लोग सैकड़ो परिवारों की नाक बचाकर गला घोट कर अपना व्यापार चलाते रहे। इस दिशा मे ग्राम-सेवक व्यक्तिगत रूप से उचित सलाह देकर ग्रामवासी को कुछ कर्ज़ से बचा सकते हैं।

ये महाजन सूद भी कस कर लेते हैं। मैने हिसाब करके देखा तो मालूम हुआ कि अगर महाजन किसी को २६) कर्ज़ दे तो १० साल मे ५,००) पावना हो जाता है। एक सज्जन, जो समाज मे एक ज़िम्मेदारी लिये हुए हैं, कहते थे कि मैने ५०) कर्ज देकर २०००) का दावा किया है। और वे इसमे बहुत गर्व करते हैं। गाव मे लेन-देन के सैकड़ो तरीक़े हैं। उन सब का बयान करने लगूँ तो पत्र समाप्त ही न हो। इतना ही समझ लो कि जब मै रणीवा के चारो ओर के गांव के कर्ज की बाबत अध्ययन करने लगा था तो उसको इतना विशाल

पाया और मुझको समस्या इतनी अगम-अथाह मालूम हुई कि मैंने इस दिशा मे विचार करना ही छोड़ दिया था; समाधान सोचना तो दूर की बात थी।

जब कांग्रेस मन्त्रिमंडल हुआ और ग्राम-सुधार महकमे की ज़िम्मेदारी ली तो मुझको ऐसा ख्याल हुआ कि शायद कोआपरेटिव विभाग की मार्फत इस दिशा मे कुछ सहूलियत पैदा की जा सके। वैसे तो मेरा विश्वास हो गया था कि पिछले कर्जे के लिए अगर सरकार कुछ कर सकती है तो वह केवल एक ही तरीका है। उसे रद्द कर देना और किसानों को कर्ज़ से बरी कर देना। परिस्थिति इतनी जटिल है कि इसका दूसरा कोई रास्ता ही नही है। लेकिन मुझको ऐसा लगा कि भविष्य की समस्या का शायद सहकारिता-द्वारा दूसरा हल हो सके। अतएव मै इस विभाग की कार्यपद्धति और कार्यक्रम को देखने लगा। उनके कर्मचारियों से तो परिचय हो ही गया था। उनसे विचार-विनिमय करता रहा और गाँव मे जो सोसाइटियाँ बनी हैं उनका अध्ययन करता रहा।

जब मैंने इसके कार्यक्रम और संगठन की रूपरेखा देखी तो मेरी सारी उम्मीदो पर पानी फिर गया। सहकारी बैंक एक केन्द्रीय संगठन होता है जो कहने के लिए प्रतिनिधिमूलक है। लेकिन सरकारी विभाग के कर्मचारी ही बैंक वालों पर हावी होते हैं। देहातो मे सोसाइटिया खोली जाती हैं; उसकी पचायते बनती हैं। वे भी वही होते हैं जिनका विवरण मै कई पत्रों मे लिख चुका हूँ। यूनियन का प्रधान सरकारी अफसर होता है और तीन सदस्य उसके असर से बाहर से लिये जाते हैं। पंच लोग भी उन्ही के आदमी होते हैं। जिला बैंक सोसाइटी को कर्ज देता है। और सोसाइटी मेम्बरो को देती है। बैंक सीधे भी कर्ज़ देता है। बैंक ६% सूद लेता है और सोसाइटी १५% तक लेती है। फिर इसकी जमानत रूप मे फसल बंधक

नागनाथ हटे तो सॉपनाथ आये !

रखनी पड़ती है। फसल हो जाने पर पंचायत फसल कब्ज़े में कर लेती है और बेंच कर अपना पैसा ले लेती है। फसल जिसके हाथ बेंची जाती है वे भी इन्ही पंच के भाई-बन्द होते हैं। जिसको वे चाहे जिस भाव से बेंच दे। जो लोग फसल बंधक नही रखते और दूसरी चीज़ों की ज़मानत पर क़र्ज़ लेते हैं उनसे इतने अमानुषिक तरीक़े से वसूल किया जाता है कि लोग त्राहि-त्राहि करते हैं।[1]

मैने जहाँ तक देखा है कि जिस इलाक़े मे सोसाइटी खुली हुई है वहाँ पहले से ज्यादा कर्ज लोगों पर हो गया है। वसूली के तरीके और पंचों के स्वार्थ के कारण लोग बरबाद हो जाते हैं। फिर जिसके पास ज़मानत के लिए कुछ है ही नही उनको तो कोआपरेटिव से कुछ कर्ज मिलता ही नहीं। इसलिए जिस क्षेत्र मे कोआपरेटिव होगई है वहाँ के साधनहीन किसान और पिस जाते हैं। स्थानीय महाजनी प्रथा नष्ट हो जाने से और बिना ज़मानत के कोआपरेटिव से कर्जा न मिलने के कारण उनकी तो मौत ही है। जहाँ-जहाँ भी सोसाइटी कायम है वहाँ-वहाँ लोग इसके ख़िलाफ हैं, यह मैने कई जिलों मे देखा है। अब तुम कहोगी कि सोसाइटी छोड़ क्यों नही देते। वह भी तो मजबूरी है। सोसाइटी के कारण स्थानीय महाजनी संस्था टूट जाती है और कानून ऐसा बना है कि जो लोग सोसाइटी से क़र्ज़ लेते हैं उनको महाजन क़र्ज़ देने से घबड़ाता है क्योंकि क़ानूनन कर्जदार की सम्पत्ति पर पहले सोसाइटी का हक़ होता है फिर दूसरे कर्जदार का। ऐसी हालत में कौन महाजन बेवक़ूफ होगा कि वहाँ अपनी रक़म फँसायेगा? फिर

---

[1] कर्ज देने का एक खास तरीका है उसे "जिज़िराबन्द" कहते हैं। याना अगर १ गाँव के १० आदमी कर्ज लेना चाहते हैं तो हर एक के कर्जा अदा करने के लिए दसों आदमी सम्मिलित रूप से जिम्मेदार होते हैं। अर्थात् अगर एक ने नही अदा किया और उसके पास लेने को कुछ बाक़ी नही रहा तो शेष सब से या उनमे से किसी एक से वसूल कर लेंगे।

सोसाइटी का सेक्रेटरी ऐसा आदमी होता है कि गाँव वाले दूसरे, पचासो तरीको से उससे बॅधे रहते हैं। वह सबको फॅसाये रखता है।

कोआपरेटिव का तरीका और उसके कागजी ढंग अर्थशास्त्री के कान मे चाहे जितना मधुर लगे मै समझता हूँ जब तक कोआपरेटिव इस किस्म की है तब तक उसके फेर में पड़ना एक महाजन को खतम करके दूसरे अधिक ताकतवर और बेरहम महाजन की प्रतीक्षा करना है। गाँव के छोटे महाजन व्यक्ति होते हे। गाँव वालों से उन का सम्बन्ध होता है; वे छूट देते हैं, मोहलत देते हैं; कर्जदार के कष्ट को भी देखते हैं। लेकिन आज का कोआपरेटिव तो एक सरकारी मशीन है। अगर उसमे व्यक्तिगत स्वार्थ न होता तो भी एक बात थी। केन्द्रीय बैंक मे बड़े बडे डाइरेक्टरों का सोलह आना स्वार्थ भरा है। इसे गाँव के जुलाहो को तोड़कर मिल खड़ा करने की बात जैसी ही समझो।

अतएव मैने देखा कि कोआपरेटिव के जरिये कर्ज की समस्या हल करना उसको और जटिल बनाना है; साथ ही साम्राज्यशाही सरकार होने से ग्रामवासी का अपने घर के महाजन के हाथ से निकाल कर बड़े शोषण की मशीन की ओर ढकेल देना है। मैंने यह भी देखा कि हमारे गुलामी को कस के जकड़ने के लिए जैसे ताल्लुकेदार, बड़े ज़मींदार, सरकारी पंचायत आदि ज़रिया हैं उसी तरह यह भी दूसरा ज़रिया बना है। यह तो और भी मजबूरी पैदा करने वाली है क्योंकि इसके ज़रिये किसानो की आर्थिक लगाम अपने हाथ मे रखते हैं। जनता की राय के खिलाफ इन सोसाइटियों को धमकाकर लड़ाई का चन्दा इकट्ठा करते हुए मैंने अपनी आँखों देखा है।

कांग्रेसी सरकार कोआपरेटिव विभाग की मार्फत किसान का गल्ला आदि बेचने का प्रबन्ध करना चाहती थी। कुछ काम शुरू भी किया लेकिन वह भी वही बडे-बड़े महाजनों द्वारा, जो कोआपरेटिव बैंक के डाइरेक्टर हैं। इसमे भी उसी गुट की स्वार्थ-सिद्धि होती रही।

अगर सचमुच ग्रामीण जनता को कोई भी सरकार सही फायदा

पहुँचाना चाहती है तो मैंने पिछले पत्र में जिस क्रम से पंचायतों का संगठन करने की बात कही है उसी प्रकार पंचायतें कायम करके उनको मज़बूत बनाकर स्वावलम्बी व्यवस्था की ओर चलाना चाहिए। फिर सब काम पंचायतों की मार्फ़त हो सकेगा और ऐसी पंचायत ही सही कोआपरेटिव हो सकती है। तब तक यह सब विभाग बन्द कर देना चाहिए। क्या हर्ज है, अगर देहातों के सार्वजनिक वृत्ति वाले व्यक्तियों को खोजकर पंचायतों को क़ायम करके उनको व्यवस्थित करने मे ५-७ साल लग जायँ? राष्ट्र-निर्माण का काम तो छू मन्तर जादू नहीं है कि रात भर मे हो जायगा। फिर गाव के महाजनों को अनुशासन में लाकर भी कर्ज़ की समस्या आसानी से हल हो सकती है। उस समय पंचायत उचित सलाह देकर एक ओर ख़र्च कम करने की कोशिश करेगी, दूसरी ओर खेती सुधार और सहायक धन्धों से आमदनी बढ़ाने की कोशिश करके गाव वालो के कर्ज का बोझ कम करने का प्रयत्न करेगी।[1]

सही तरीका

वस्तुतः महाजन भी इतने बिगड़ गये हैं और सूद ज़्यादा लेते हैं इसलिए कि वे देखते हैं कर्ज़ लेने वाले इतने गर्ज़मन्द हैं कि वे जो भी शर्त रखेंगे झक मारकर मानना पड़ेगा। फिर पंचायत का संगठन मज़बूत होने से महाजन की रक़म डूबने का अन्देशा कम होने पर वे खुद ही सूद कम लेंगे। आज तो जो रकम डूब जाती है उसको भी जोड़कर सूद का हिसाब होता है। मुझको बहुत से महाजन कहते हैं आप कोआपरेटिव जैसी वसूली की गारंटी करा दीजिए हम ६ % सूद पर अपना काम चला लेंगे। उनका कहना सही है। क्योंकि बहुत से बड़े किसान हैं जिनको महाजन से कम सूद पर कर्ज़ा मिल

[1] सरकार की ओर से पंचायतों के मार्ग-प्रदर्शन के लिए विशेषज्ञों का इन्तज़ाम करना काफ़ी है।

जाता है। उनको इसलिए मिलता है कि समय पर वसूली की गारंटी रहती है। लोग कहते हैं ऐसे सार्वजनिक वृत्ति वाले व्यक्ति कहा मिलेंगे। यह भय बेकार है। जैसा कि मै पहले ही लिख चुका हूँ ऐसे आदमी देहातों मे फैले हुए हैं। लेकिन प्रोत्साहन और अवसर के बिना वे दबे पड़े हैं। सही तरीके से अग्रसर होने से उन्हें खोज निकालना मुश्किल नहीं है।

गाव के कर्ज और सरकारी कोआपरेटिव की बाबत मैने जो कुछ देखा है सब इस पत्र में लिख दिया। मुमकिन है, साहित्य मे अंकों की कहानी दूसरी हो। लेकिन आँख की देखी हुई स्थिति तो ऐसी ही है।

आज बहुत लिखा। आज सरकार की ओर से राजनैतिक कैदियों को छोड़ने का एलान हो गया। मुझको डर लगा कि कहीं फट से छोड़ न दिये जायँ। इसलिए अपना अनुभव सारा बताने की जल्दी के मारे इतना लिख डाला।

---

[५६]

खेती का महकमा

५—१२—४१

कल गाव के कर्ज की हालत और सरकारी महकमा से उसके हल की जो चेष्टा है, उसकी बाबत लिख ही चुका हूँ। आज कुछ खेती-सुधार के मुतल्लिक लिखूगा। इस दिशा मे तो मुझको भी कुछ करने का अवसर मिला था। सच पूछो तो खेती की हालत से ही गाव वालों की स्थिति जानी जा सकती है। शुरू मे जब मैंने ग्राम-सुधार का काम हाथ मे लिया तो पहले खेती की हालत का अध्ययन किया। को-आपरेटिव की तरह खेती के लिए भी सरकार की ओर से खेती महकमा अलग था। लेकिन यह महकमा केवल सरकारी ही है। कोआपरेटिव बैंक की तरह किसी

पैसे वाली श्रेणी के स्वार्थ से जुड़ा हुआ नही है। इसलिए इस विभाग से मेरा सहयोग अधिक था। मै जब कोआपरेटिव मे दिलचस्पी लेने लगा तो देखता था कि वहाँ के कर्मचारी कोशिश करते थे कि मै उसमे घुस न सकूं। उनके ढंग से मालूम पड़ता था कि अपनी बातों को मुझसे छिपाना चाहते हैं। लेकिन खेती महकमा मे ऐसी बात नही थी। उसमें केवल महकमावाला दोष था। वे अपने को किसान का सेवक नही समझते बल्कि अफसर के रूप में रहते हैं। दूसरी बात यह है कि वे बहुत ही सुस्त और लाल फीता वाली मनोवृत्ति रखते हैं। खेती के काम के लिए जब तक ग्रामीण मनोवृत्ति न हो तब तक उनकी सारी सलाह किसानो के लिए अव्यावहारिक हो जाती है। फिर भी मै इस विभाग से कुछ लाभ उठा सका था।

आर्यनायकम जब रणीवा आये थे तो यहाँ की खेती को देखकर बहुत खुश हो रहे थे कि यहाँ की ज़मीन बहुत उपजाऊ है। सचमुच अवध का ज़मीन इतनी अच्छी है कि यहाँ वैसे ही अच्छी खेती हो जाती है। फिर भी लोग भूखे हैं। इसका कारण जमीन अच्छी होते हुए भी पैदावार ठीक से न होना है।

पहले जमाने के सम्मिलित परिवार खतम हो जाने से रोज-रोज खेतों का टुकड़ा होता जा रहा है। नतीजा यह हो गया है कि खेती इतने छोटे-छोटे टुकड़ो मे फैली हुई है कि किसान अपने मौजूदा साधनों से पूरा पैदा नही कर सकता है। कुछ इतने छोटे टुकड़े हमने देखे हैं जिनकी नाप २० × ३० इंच बल्कि इससे भी कम है। बहुत से टुकड़े इतने छोटे हैं कि बैल हल चलाते समय घूम भी नही सकते हैं। फिर एक किसान की जमीन १०-१५ टुकड़े में इतनी दूर दूर है कि हल और बैल लेकर एक टुकड़े से दूसरे टुकड़े घूमने मे ही सारा दिन कट जाता है। कभी-कभी तो एक आध टुकड़े १ या २ मील

जमीन के असंख्य दूरी पर भी होते हैं। इस तरह किसानो के पास जो

टुकड़े जमीन है उसको जोतने मे शक्ति और सामर्थ्य घटता

ही चला जाता है। इस प्रकार ठीक रूप से सेवा न होने से ज़मीन भी दिन ब दिन ख़राब होती जाती है।

हमारे गाँवों मे जगल ख़तम हो जाने से गोवर जलाने का रिवाज है और इस कारण खाद कम होने की बात सभी जानते हैं। लेकिन अवध के इलाके की हालत "मोटाई मा राधे·तस और पाता।" अवध की ज़मीन इतनी अधिक जुत गई है कि इधर गाँव मे मवेशी नही मिलते हैं। जो २—४ गाये हैं भी, वकरी जैसा छोटी-छोटी होती हैं। सो भी विरले ही मिलेंगी। बैल भी बहुत कम मिलते हैं। बहुत से लोगों के खेत छोटे टुकड़ो मे चारों ओर इस प्रकार बँटे हैं कि बैल रखने की ज़रूरत भी नही होती। मवेशी कम होने से न तो खेत की जुताई ठीक से होती है और न गोवर ही मिलता है

खाद का अभाव

इसलिए मैने कहा था कि यहाँ तो गोवर होता ही नहीं, फिर जलाने न जलाने की वात भी क्या सोचे। फिर भी जितना होता है वह जला ही डालते हैं। जिस क्षेत्र मे चरागाह हैं वहाँ अगर गोवर जला भी देते हैं तो भी जून से सितम्बर तक चार माह में कुछ तो खाद हो ही जाती है। लेकिन यहाँ चार माह मे क्या मिलेगा जिससे जमीन को खूराक पहुँच सके।

इस जिले के किसानों की तीसरी कठिनाई पानी की है। जहाँ १० हाथ दूर पानी निकलता है, जहा दो-दो तीन तीन फर्लांग पर तालाब हो वहा पानी का कष्ट हो, यह वाकई आश्चर्य की वात है। लेकिन जिस देश मे भगवान रामचन्द्र जी खुद राज कर रहे थे वहा सभी वातें आश्चर्य की होनी चाहिएँ। मैने देखा इस जिले मे पहले ज़माने मे तालावों की भरमार थी। लेकिन सब के सब सदियों की लापरवाही के कारण विल्कुल भठ गये हैं। वरसात मे उनमे थोड़ा पानी हो जाता है। लेकिन अक्तूवर खतम होते होते सव पानी ख़तम हो जाता है। कुओं से पानी भरना जिले मे काफी आसान है क्योंकि यहा पानी

सिंचाई की कठिनाई

नज़दीक मिलता है। देखने में आता है कि यहाँ सिंचाई के कुएँ भी बहुत थे। लेकिन ग़रीबी और जहालत के कारण आधे से ज्यादा मरम्मत बिना बेकार हो गये हैं। ग़रीबी के कारण साधन न जुटने से कुओं की मरम्मत नहीं हो पाती है। लेकिन जब खेत बँटता जाता है और एक ही कुएँ से कई पट्टीदार सींचते है तो कौन मरम्मत करेगा, तय नही हो पाता है। इस तरह असंख्य कुएँ ख़तम हो गये हैं।

इसी तरह कुछ गरीबी के कारण और कुछ ग्राम-व्यवस्था के अभाव से लापरवाही के कारण सदियो से जिले मे तालाव व कुएँ होते हुए भी आज किसान पानी बिना तरसते रहते हैं।

ऊपर की बातो से तुम देख सकती हो कि किसानों को खेती के काम मे तीन महा संकट पड़े हुए हैं:—

१—थोड़ी ज़मीन का भी छोटे-छोटे टुकड़ों मे दूर-दूर बँटा रहना।

२—खाद का सम्पूर्ण अभाव।

३—पानी की बिल्कुल कमी।

मै जहाँ तक देख सका और विचार कर सका उसके अनुसार मै समझता हूँ कि कोई भी राष्ट्रीय सरकार खेती की दिशा मे सबसे पहले इन तीन समस्याओं को हल करे। बाकी बाते फिर होगी। कल के पत्र मे मैंने तुमको लिखा था कि सरकारी महकमा में ऊपरी और दिखावटी काम वहुत होता है। और हरेक समस्या को हल करने के लिए युरोप और अमेरिका के तरीकों की नक़ल करने की प्रवृत्ति होती है। मैंने एक पत्र मे यह भी लिखा था कि कांग्रेसी सरकार भी उसी तरीके से चलना पसन्द करती थी; नीयत की शुद्धता की पालिश अवश्य लगा देती थी। अतः पहले सरकारी योजनाएँ कागज़ पर ही होती थीं और अब उनका अमल कुछ और होता दिखाई देने लगा। ग्राम-वासी के लिए सरकारी महकमे पहले निराकार परब्रह्म के रूप में थे; आज उनको साकार रूप दिखाई देने लगा। लेकिन रूप-रेखा वही पुरानी ही थी।

मैंने देखा कि महकमा वाले दो चीज़ों पर मुख्य रूप से जोर देते थे; सुधरे हुए बीज और खेती के लिए सुधरे हुए औज़ार का इस्तेमाल। सुधरा हुआ बीज कुछ अंश तक फायदा पहुँचा सकता है। गेहूँ के बीज तो फयदा देते थे लेकिन अधिकाश बीज तो स्थानीय रूप से ख़रीद कर सवाई पर देने की प्रवृत्ति थी। इस पर कुछ मतभेद होते

सुधरे बीज और सुधरे औज़ार

हुए भी हम थोड़ी देर के लिए यह मानने को तैयार है कि सुधरे हुए बीज से किसान का फायदा है और वाक़ई मै मानता हूँ कि फस्ल की नस्ल सुधारने की जरूरत है। लेकिन आज समस्या इस बात की नहीं कि हमारे किसान की फसल घटिया दर्जे की है। आज की समस्या तो ऊपर बताये हुए तीन संकट की ही है। सरकार की सारी शक्ति उसी मे लगनी चाहिए। अपने साधन फुटकर बातों मे, पश्चिमी नक़ल मे, खर्च कर अपव्यय नहीं करना चाहिए। लेकिन जैसा कि मैने बताया है ऊपरी बातों पर विचार करके बीज और औजार को ही प्राधान्य दिया जाता है।

उक्त औजार भी गौर से देखा जाय तो बेकार ही हैं। अव्वल तो वे इतनी कीमत के होते हैं कि साधारण किसान गृहस्थ उन्हे इस्तेमाल नही कर पाते। कुछ खुशहाल गृहस्थ कभी-कभी महकमा के प्रचार से २—१ चीज़े ख़रीद लेते हैं। लेकिन मैने देखा है कि उनके यहा इन चीजो का इस्तेमाल नही होता है। फिर ये उन्नत औज़ार हमारे लिए किस हद तक मुफीद हैं, इसका भी विचार होना चाहिए। इस पर भी खेती महकमा के विशेषज्ञो मे मतभेद है। लेकिन मै उस पर नही जाना चाहता हूँ। हमारे प्रान्त में हर साल करीब सब शहरों मे नुमाइश हुआ करती है। उनमे खेती वाले उन्नत औज़ारों को दिखाते हैं और किसानों को समझाते हैं, इनको इस्तेमाल करो। लेकिन किसानों को विशेषज्ञों की बाते समझ में नहीं आती। मै सरकार के कृषि के डिप्टी डाइरेक्टर से आलोचना कर रहा था।

वे कहते हैं कि इस ज़िले के किसानों के पास इतनी ज़मीन नहीं कि वे उनको आर्थिक दृष्टि से लाभदायक ('इकानोमिक होल्डिंग') कह सके। दूसरी बात यह कि उनके पास खाद-पानी काफी नहीं है। साथ ही यह भी कह डालते हैं कि किसान इतने सुस्त हैं कि किसी किस्म की उन्नति करना ही नहीं चाहते हैं। कहते हैं कि उन्नत औज़ार इनको इस्तेमाल करना चाहिए। चलो, इन्हीं बातो की परीक्षा की जाय।

हवाई बाते

अगर गाव वालो के पास इतनी ज़मीन नही है जिससे परिवार को खिला सके और १ हल और १ जोड़ा बैल का पूरा काम देख सकें; अगर इतनी ज़मीन नहीं है कि ज़मीन की आमदनी से सारे परिवार को खाने को हो जाय तो उन्नत औज़ार के लिए और उसको चलाने लायक उन्नत बैल के लिए साधन कहां से लावेगे। मान लो, खेती के महकमे के लोग कही से कुवेर का धन-भडार पा जावे और सब को उन्नत औज़ार और बैल मुफ्त दे दें। फिर जब छोटे हल-बैल के लिए ही ज़मीन काफी नही है तो बड़े बैल और उन्नत औज़ार को पूरा काम देने के लिए कहा से लावें और जब उनकी खेती परिवार भर की ही ख़ूराक पैदा नही कर सकती तो बड़े बैल की बढती ख़ूराक कहां से लावेंगे।

दूसरी बात खाद पानी काफी नही है। यह भी खेती के विशेषज्ञ बताते है कि गहरी जोताई होने से नीचे की मिट्टी ऊपर आ जाती है और ज़मीन की नमी भी जल्दी सूख जाती हैं। यह सब लोग समझ सकते हैं कि गहरी जुताई मे जब नीचे तक जमीन उल्टी पुल्टी होती रहेगी तो जितनी गहराई तक खाद पहुँचे उतनी खाद चाहिए और नमी सूख जाने से सिंचाई भी ज्यादा होनी चाहिए। और इन्ही दो बातों के संकट का ख़ास तौर पर इस ज़िले के किसानों को सामना करना पड़ता है। अतः ज़मीन को ऊपर ऊपर जोत कर, जमीन की स्वाभाविक नमी का फायदा उठा कर और थोड़ी खाद डाल कर

अपनी जो कुछ भी फसल पैदा कर लेते हैं, गहरी जुताई करके खाद-पानी-बिना उससे भी हाथ धोना पड़ेगा।

लोग बहस मे कहते है कि हम तो सस्ते से सस्ते हल देते हैं। यह ठीक है कि वे जो मेस्टन हल देते हैं, उसका दूसरे वैज्ञानिक हलों से कम दाम है। लेकिन एक तो उसका दाम (८-१० रुपया) भी अवध के किसानों के लिए ज्यादा है। फिर मेस्टन हल सिर्फ बरसात की पोली ज़मीन पर ही चल सकता है। इसलिए मेस्टन हल हो जाने से देशी हल से छुट्टी नहीं मिलती। उनको दोनों हल रखना पड़ता है। इसका मतलब और ख़र्चा। मैने देखा है कि ये हल जल्द टूट जाते हैं और टूटने पर मामूली लोहार बना भी नही सकते। ऊपर की बातो से तुम्हारी समझ मे आ जायेगा कि किसान जो इन औजारो को नहीं इस्तेमाल करना चाहते, इसका मतलब यह नही है कि वे बड़े दकियानूसी हैं। मैने खूब देखा है कि किसान चाहे जितना बेवकूफ हो खेती के मुतल्लिक अपने फायदे की बाते झट समझ जाता है। वे इन चीजों से उदासीन इसलिए हैं कि वे ठीक समझ जाते हैं कि इन औज़ारों को इस्तेमाल करने के लिए योग्य परिस्थिति नही है। इसी तरह कुछ उन्नत बीज भी फायदा कर सकता है। लेकिन वह आज की समस्या नहीं है।

किसान अपने लाभ को खूब समझता है!

मेरे कहने का मतलब यह न समझना कि मै इन चीजों को बेकार समझता हूँ। इनसे अच्छी खेती हो सकती है, इससे कौन इनकार कर सकता है? लेकिन जिन बातों की सब से पहले आवश्यकता है उनको पहले करना चाहिए। तात्कालिक समस्या को, जिसके बिना मौजूदा तरीके से भी ठीक-ठीक पैदावार नही होती है, हल करके उन्नति के लिए परिस्थिति पैदा करने के बाद इन बातों को सोचना चाहिए। इस तरह पश्चिमी देशों की नकल से शक्ति व साधन का अपव्यय होगा।

मै जब ये बाते महकमा वालो से कहता हूँ तो वे नाराज़ हो जाते हैं। वे कहते हैं कि आप लोग ऊपर-ऊपर से देख कर इसी तरह राय कायम कर के सारी उन्नति पर पानी फेर देते हैं। वे अपने अंकों से साबित करते हैं कि पिछले तीन साल में किस प्रकार इन औज़ारों की बिक्री बढी है। अगर किसान इसमें फायदा न देखते तो पैसा खर्च करके क्यों लेते? इसकी भी रामकहानी सुनो। गाव मे इन औज़ारों को ऊँचे किसान और जमीदार ही लेते हैं। वे दो कारणो से इनको खरीदते हैं। १—कुछ लोग ऐसे हैं जो सरकारी कर्मचारियों से मेल-मिलाप पैदा करके नाना प्रकार का फायदा उठाते हैं। वे सरकारी कर्मचारी की नज़र मे पड़ने का एक साधन समझ कर खरीदते हैं ताकि उनका नाम नोट हो जावे। २—कृषि वाले गाव मे अपने आदमी-द्वारा इन औजारो के इस्तेमाल का प्रदर्शन करते हैं। पहले साल न ज़मीन की नमी खतम होती है, न स्वाभाविक उपजाऊपन सूखता है। इससे नतीजा अच्छा ही दीखता है। फिर औज़ार टूट जाने पर महकमा वाले उस गाँव के लोहार पर तो भरोसा करते नहीं। सिर्फ इस नतीजा को देखकर भी बहुत से खुशहाल किसान इसे खरीद लेते हैं। लेकिन मैने देहातों मे सैकड़ों घरों मे देखा है कि इस किस्म के औजार कूड़ाखाने या भूसा घर के कोने या ऐसे ही स्थानों मे पड़े रहते हैं और उनमे जंग लगता रहता है। कुछ तो इस्तेमाल बिना और टूट जाने पर मरम्मत बिना। इस-लिए इनके अंकों पर मुझको कोई भरोसा नही होता। मै तो अपनी आँख-देखी और अनुभव पर ज्यादा भरोसा करता हूँ। ये आँकड़े भी बड़ी खतरनाक वस्तु हैं। आजकल हम लोग इन आँकड़ों के गुलाम बनते जा रहे हैं। दादा को मैने कई जगह व्याख्यानों में शब्दो की गुलामी की बाबत कहते सुना है। उसी तरह यह अंक की गुलामी भी आधुनिक शिक्षित लोगों को अन्धा बना रही हे। तुम लोग बुनि-यादी तालीम मे अंकों पर बहुत ज्यादा जोर देते हो। देखना, इसकी

अति न हो जाय। नही तो फार्म के खानों को देखते देखते खाली आँख से परिस्थिति को देखने की दृष्टि-शक्ति ही खतम हो जायगी। फिर तो 'लेखा की धाँधली' ही दिमागी दुनियाँ पर राज करती रहेगी।

इस तरह जब मैने देखा कि इन बातों से कुछ तात्कालिक समस्या हल नही होती है तो मै फिर ऊपर बताई तीन संकट की समस्या पर विचार करने और उनको हल करने की कोशिश करने लगा।

इस प्रयत्न मे मुझको क्या-क्या अनुभव हुए, कहाँ कुछ कर सके, कहाँ-कहाँ बिल्कुल असफल हुए इत्यादि बातों पर कल लिखूँगा। आज कुछ देर भी हो गई और मेरी तबीयत भी कुछ ठीक नही है। इसलिए यही खतम करता हूँ।

---

[५७]

खेती की समस्याएँ

७—१२—४१

कल मै इस सम्बन्ध मे कोई पत्र नही लिख सका क्योंकि एक तो कल और दो पत्र लिखने पड़े। फिर घर से मेरे बड़े भाई साहब का मृत्यु-संवाद आ जाने से भी तबीयत कुछ सुस्त थी। लेकिन अब रोज न लिखने पर भी कोई हर्ज न होगा। लोग इतने धीरे-धीरे छोड़े जा रहे हैं कि छूटने मे महीनों लग जायँगे। फिर धीरे-धीरे लिखने पर भी मेरी यह कहानी खतम हो ही जायगी।

हाँ, मै परसों खेती महकमा के काम-सम्बन्धी अपना अनुभव लिख रहा था। सरकारी महकमों का काम ऐसा होता ही है; वे ग्रामीण वृत्ति से किसी चीज को नही देखते हैं। इसलिए हमेशा उल्टे रास्ते चलते हैं। ग्रामवासियों के शरीर की पुष्टि के लिए जब ये सुधार करना चाहते हैं तो "विटामिन चार्ट" छपवा कर बाटते हैं। भूल

जाते है कि आज विटामिन की समस्या नही है। समस्या तो पत्थर से ही सही, किसी तरह पेट का गड्ढा भरने की है। अतएव अगर कोई सरकार वाकई खेती का सुधार करना चाहती हैं तो पहले इस बात का पता लगाना चाहिए कि गाव के किसान जिस तरीके से अब तक खेती करते थे उस तरीके से ही पूरा पूरा ढंग से करने में परिस्थिति के कारण क्या-क्या कठिनाई है या किन-किन बातो की कमी है। सरकार उन्ही को पूरा कर दे। आज भी हमारे किसान खेती के तरीकों को अच्छी तरह जानते हैं। इस असम्भव परिस्थिति मे भी वे जितना पैदा कर लेते हैं, मै दावे से कह सकता हूँ आधुनिक खेती-विशेषज्ञ उस परिस्थिति मे हरगिज उतना नही पैदा कर सकते। फिर तुम किसको ज्यादा कुशल खेतिहर कहोगी? साधनहीन दशा मे पैदावार मे जो लोग दुनियाँ के बहुत से उन्नत मुल्कों का मुकाबला कर लेते हैं उनको, या जो लोग राधा के नाचने के लिए ९ मन तेल के इन्तज़ार मे बैठे रहते हैं उनको? फिर इसका भी कोई निश्चय नही कि राधा नाचकर जितना अधिक पैदा करेगी उसकी कीमत ९ मन तेल की कीमत के बराबर हो सकेगी या नहीं।

राधा के नाचने के लिए नौ मन तेल का इन्तज़ार

इस प्रकार मै विचार कर ही रहा था कि कांग्रेसी सरकार ने "चकबन्दी" का कानून-पास किया। मैने समझा अब उसकी जड़ पर जाना सम्भव होगा। स्थानीय अधिकारी की मदद से मैने यह काम करने की कोशिश की। कानून ऐसा था कि किसानों को राजी करके चकबन्दी की जाय। अतः मै जहाँ-जहाँ जाता था इस बात की कोशिश करता रहा कि किसान तैयार हो जायॅ तो मै अधिकारी से मिलकर इसे कराने का यत्न करूँ। लेकिन मैने देखा कि यह काम एक प्रकार से असम्भव है। मुझको इस बात मे पूरी असफलता मिली। दरअसल आज की परिस्थिति मे चकबन्दी हो ही नहीं सकती।

मैने पिछले पत्र मे लिखा था कि प्राचीन सम्मिलित परिवार के बँट जाने से खेती टुकड़ा-टुकड़ा होकर बँट गई है। इस बटवारे मे तुम एक तरफ से आधा हिस्सा एक भाई को और दूसरी तरफ से आधा हिस्सा दूसरे भाई को नही दे सकती हो। उसमे हर प्रकार की जमीन को बाटना होगा। कुछ ऊँची जमीन है तो कुछ नीची। फिर कुछ जमीन इतनी नीची है कि सिर्फ जड़हन धान ही हो सकता है। कुछ जमीन मटियार होती है, कुछ दूमट जिसमे अलग फसले अच्छी पैदा हो सकती हैं। कुछ जमीन गाव से दूर और कुछ नजदीक। इस दृष्टि से भी जमीन की कीमत मे फर्क पड़ जाता है। फिर यह भी देखा जाता है कौन जमीन पानी के पास है, जंगली जानवर की पहुँच पर है या पेडों के छाँह मे है, इत्यादि। इन्हीं बातों का ध्यान रखकर बँटवारा होना है। किसान जो लगान पर ज़मीन लेता है बँटवारा के पीछे वह भी इसी किस्म की हर तरह की ज़मीन से थोड़ा-भी एक तत्व है थोड़ा लेता है। अतः जो टुकड़ा टुकड़ा ज़मीन दूर दूर फैली हुई है वह खामख्वाह गाव वालों की बेवकूफी के कारण हो गई है, ऐसी बात नहीं है। इसके पीछे एक निश्चित तत्व है; एक नियम है जो कम वैज्ञानिक नही है। हमारे यहाँ खेती बरसात के भरोसे होती है और यह प्रकृति देवी की खामख्याली पर निर्भर है। कभी अतिवृष्टि, कभी अनावृष्टि। कभी कम बारिश, कभी कुछ ज्यादा। यह तो हमेशा लगा ही रहता है। हर किस्म की ज़मीन और हर किस्म की खेती होने के कारण ही इस किस्म की दैवी दुर्घटनाओं का सामना हमारे किसान कर लेते हैं। क्योंकि ये दुर्घटनाएँ हमेशा एक ही किस्म की नहीं होती हैं। इसलिए कभी कुछ ज़मीन फेल करती है, तो दूसरी जमीन कुछ दे देती है। इस तरह उनको हर परिस्थिति में कुछ औसत पैदावार मिल जाती है। हरेक किसान को हर किस्म की खेती से एक और फायदा है। यहा किसानों के पास इतनी ज़मीन नहीं है कि वे काफी परती छोड़कर ज़मीन बनाते रहें। इसलिए

वे हरसाल हेर-फेर करके अपना खेत बोते हैं। इसके लिए हर प्रकार की कुछ कुछ ज़मीन उनके पास होना ज़रूरी है।

मै जब इस दिशा में कोशिश करता था तो टुकड़ा खेती के नुकसान की बाबत लोग मुझसे सहमत होते थे। उनको मालूम है कि एक चक की खेती कम ख़र्चे से हो सकती है। लेकिन ऊपर बताये कारणों से वे चकबन्दी करने मे असमर्थ थे। मैंने भी देखा कि जबतक एक आदमी का थोड़ा खेत है जो कि 'विशेषज्ञों' की भाषा में मे आर्थिक दृष्टि से लाभदायक ('इकानोमिक होल्डिंग') नहीं है तब तक वे इस तरह थोड़ी-थोड़ी ज़मीन हर किस्म के खेत से लेकर अपने देहाती विज्ञान से थोड़ा-बहुत लाभदायक बना लेते है। इसे विज्ञान के विशेषज्ञ लोग समझ नही सकते है।

ज़मीन की चकबन्दी की दिशा मे मैंने जो कुछ प्रयत्न किया उस से मैंने देखा कि इसके लिए समय और शक्ति ख़र्च करना बेकार है।

दो ही उपाय

इस जिले मे एक चक की खेती तभी हो सकेगी जब प्राचीन सम्मिलित परिवार प्रथा चल सके या गाँव के कुछ परिवार मिल कर खेती करे यानी खेतो के मामले मे वे एक परिवार हो जायँ। इस समस्या के हल करने का कोई दूसरा रास्ता मेरी समझ मे नही आया।

किसानो के जिन तीन संकटो के बारे में मैंने लिखा था उसमे से एक संकट का हाल तो मैं ऊपर लिख ही चुका। अब खाद की बात आती है। खाद बढ़ाने के लिए महकमा वाले जो तरीका बताते है वह मौजूदा हालत मे भी व्यावहारिक मालूम हुआ। मैंने पहले ही कहा था कि आर्थिक परिस्थिति के कारण और चारा के लिए काफी ज़मीन न होने से इधर लोग मवेशी रख नही सकते है। इसलिए गोबर बहुत कम होता है। तिस पर भी लोग गोबर जला देते हैं। अतः जो कुछ खाद के लिए बचता है वह नहीं के बराबर ही है। लेकिन जब कि सारा जंगल कटकर खतम हो चुका है तो यह कहना कि "गोबर न जलाओ"

बिल्कुल बेकार है। आख़िर जब लकड़ी है ही नही तो वे क्या करें। इस विकट समस्या को हल करने के लिए महकमा वाले दो बातो पर जोर देते हैं और ठीक ही करते है। एक जितना गोबर वे खाद के लिए छोड़ते है उसको वैज्ञानिक रूप से गड्ढा खोदकर व्यवस्था के साथ सड़ायें। इधर खाद के लिए जो घूर खोदते है उनसे खाद का हिस्सा ख़राब हो जाता है, कभी-कभी तो खेत के पास वैसे ही ढेर लगा देते हैं। खाद का गड्ढा बहुत बड़ा नही खोदना चाहिए। छोटे गड्ढे खोदकर जल्दी भर जाने के बाद उसे मिट्टी से बन्द कर देना चाहिए। फिर उसके चारो ओर एक मेड़ होनी चाहिए कि उसमे वर्षा का पानी बहकर न जा सके। वे लोग मवेशी का पेशाब भी इकट्ठा करके घर मे डालने की हिदायत करते है। ये सब तरीके ऐसे है कि ग्राम-समस्या पर विचार करने वाले सबों को मालूम हैं और तुम भी जानती हो इसलिए इस पर अधिक लिखना बेकार है। मै जब देहातों मे जाता था तो इन चीज़ों के लिए लोगों पर ज़ोर देता था। मुझे ज्यादा दिलचस्पी उन चीजों से थी जिनको महकमा वाले 'कम्पोस्ट' कहते हैं। इसको वनस्पति खाद भी कह सकते हैं। हरे और सूखे पत्ते और गाव के जगल, गन्दगी, झाड़ू का कूड़ा सब इसमें काम आ जाता है। इन चीजो का ढेर लगाकर सड़ाया जाता है और बीच-बीच मे उन्हें उल्टा-पुल्टा कर देना पडता है ताकि सब समान रूप से सड़ जाय। इस चीज़ के लिए मै खास तौर से कोशिश करता रहा। और काफी कामयाब भी रहा। इस काम मे मुझको दिलचस्पी इसलिए भी रही कि इसमे "एक पथ दो काज" हो जाता है। जो कहावत है "आम के आम गुठली के दाम" उसी के अनुरूप यह भी खाद की खाद और गाव की सफाई है। गाव वालों को अगर हम कहेंगे कि गाव की सफाई करो तो वे नहीं करेंगे। चाहे हम ख़ुद उनके गाव साफ करते रहे तो भी वे नही करेंगे। गाव मे बहुत से अच्छे सस्कार ख़तम हो चुके हैं। लेकिन

खाद की समस्या

दूसरी बातो की कुछ न कुछ दवी हुई सोर पकड़ने को मिल जाती है जिसकी मार्फत आज बढ सकते हैं। लेकिन सफाई के मामले मे कही कुछ भग्नावशेष की गन्ध भी नहीं मिलती है। यानी हमारे गाव मे सफाई की वृत्ति या तो कभी थी ही नही या इस संस्कार का इस तरह खातमा हो गया है कि किसान के दिल मे आज किसी तरह का सुर निकालना सम्भव नही। वह तार ही नही तो स्वर क्या निकलेगा। इसलिए सफाई का सस्कार डालने के लिए किसी दूसरे रास्ते से ही घुसना पड़ेगा। हम लोग जब शुरू मे रणीवा आये थे तो सफाई की बावत् अपना अनुभव क्या था, लिख चुका हूँ। उस समय मैने बाहरी सफाई त्यौहार, अनुष्ठान आदि की मार्फत ही करने की वात कही थी। साबुन का उद्योग चला कर सफ़ाई की समस्या हल करने का जो प्रयत्न करते थे उसकी बावत् भी मै लिख चुका हूँ। उसी प्रकार जव मैने देखा कि हम खाद बढाने के लिए 'कम्पोस्ट' की वाते करते हैं और यह किसानो को झट समझ मे आ जाती है तो इस काम को गाव की सफाई की समस्या हल करने का एक बहुत भारी साधन समझ कर मै इस पर जुट गया। साधारणतया ग्राम-सेवा के काम मे सफाई का काम बहुत महत्व का है लेकिन ग्राम-सेवक के प्रति मेरा नम्र निवेदन है कि गाव मे पहुँचते ही गाव की सफाई के लिए तूल-कलाम न शुरू कर दे बल्कि अपने आप सफाई से रह कर अध्ययन करे कि कौन सा कार्यक्रम गाव वालों को तात्कालिक लाभ देने वाला ऐसा है जिसकी मार्फत सफाई हो सकती है। उसी को करने लग जायॅ। हा, मै अपने विषय से बहक रहा हूँ लेकिन वनस्पति खाद वनाने के सिलसिले में इतनी सफाई की वात आ ही जाती है। वनस्पति की खाद का रिवाज चल जाने से एक फायदा और हो सकता है। देहातों मे आदमी की टट्टी को गड्ढे मे डालकर खाद वनाने के प्रयोग की बात भी मैने सोची थी। पहले मैने आश्रम में ही प्रयोग करने की कोशिश की। लेकिन दुर्भाग्य से कोशिश करने पर भी मै आश्रमवासियों द्वारा इसे करा न सका।

जब आश्रमवासियों के साथ ही मैं असफल रहा तो गाँव के लोगों से क्या करा सकेंगे। इसलिए इसको शुरू ही नही किया। इस बात से मुझको बहुत शर्म और दुःख है। लेकिन हमारा चरित्र ही ऐसा है! पता नहीं, कब ठीक होगा।

सब से ज्यादा तकलीफ पानी की है। मै पहले ही लिख चुका हूँ कि जितने तालाब थे वे सब के सब भट गये हैं और कुओं मे से अधिकाश खतम हो चुके हैं। अब सवाल यह था कि इस समस्या का हल कैसे किया जाय। सरकार की ओर से इस मद में हमको जो खर्च करने को मिला था वह भी इतना अपर्याप्त था कि उससे एक कुएँ भर की मदद नही हो सकती थी। ससार मे सभी चिन्ताशील लोगों का एकमात्र कथन है कि नहर से ही पानी की समस्या हल हो सकती है। यह बात ठीक है लेकिन यह सर्वकाल और सर्वदेश के लिए सही है या नहीं, इस पर विचार होना चाहिए। इत्तफाक से जब हम लोग ग्राम-सुधार-सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करते रहे उसी समय हमारे ज़िले मे नहर का महकमा खुल गया और उससे किसानों को खूब पानी मिलने लगा। मुझे भी नहर की बातों को देखने का मौका मिल गया। मै महकमा के लोगों से परिचय करके इसके बारे मे जानकारी हासिल करने लगा। नहर ज़िले के बहुत थोड़े ही हिस्से मे आई हुई है। लेकिन उतने इलाके के किसानों को पानी का फायदा खूब मिला। पानी की इफरात देख कर किसान नाच रहे थे। मैं जब उन देहातों मे घूमता था तो खेतों को बिल्कुल हरा पाता था। लेकिन साल भर बाद ही लोगो मे असंतोष दिखाई देने लगा। एक तो लोगों को समय से पानी नहीं मिलता था। फिर जैसा कि स्वाभाविक था जो लोग बड़े किसान थे, बड़े जमींदार थे और सरकारी कर्मचारियों से मेल-जोल रखते थे उनके यहा पानी पहले जाता था। यह शिकायत तो शुरू से ही थी। और महकमा की व्यवस्था ठीक करके दूर की

पानी की समस्या

जा सकती थी। लेकिन इफरात पानी होने से खूब पानी खेत मे भर रखते थे इससे खेत बहुत ठण्डे हो गये। पानी काफी होने से फसल देखने में काफी ताज़ी मालूम होने लगी। इससे गोड़ाई के प्रति लोग उदासीन रहने लगे। जो लोग खेती के बारे मे जरा भी ज्ञान रखते हैं वे जानते हैं कि अगर ठिकाने से गोड़ाई करके पपड़ी फोड़ न दी जाय तो जमीन के नीचे की सतह पर न हवा पहुँच सकती है और न रोशनी। इससे नीचे की सतह ख़राब हो जाती है। ज़मीन के नीचे हवा और रोशनी न पहुँचने से फसल की जड़ नीचे नही जाती है क्योंकि उसको तो जिधर आसानी पड़ेगी उधर जायगी। जड़ ऊपर ऊपर होने से एक नुकसान यह होता है कि जब ऊपर की सतह सूख जाय तो फिर से पानी से तर न करो नो पौधा जिन्दा नहीं रहता है। फिर वह पानी जरूरत से ज्यादा माँगता है और ज़मीन अधिक ठडी हो जाती है। नतीजा यह होता है कि ज़मीन से गर्मी निकल जाने से अन्त में रबी को फसल खराब हो जाती है। सरकार पानी का दाम प्रति बीघा के हिसाब से लेती है; पानी की तादाद पर लगान नहीं लेती है इसलिए भी किसान पानी लेने मे अन्धाधुंधी करते हैं।

पानी के इफरात से हानि

पानी की इफरात के कारण एक और नुकसान होता है। पानी खेत से कट कर या बाहर फूट कर इधर-उधर फैल जाने पर किसान परवाह नही करते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि जितनी जगह इधर-उधर नीची है सब भर जाती है और सड़ती रहती है। वैसे तो सभी नीची जगहें नहर की वजह से हमेशा नम रहती हैं और उनमे काई जमती रहती है क्योंकि नहर के पानी की सतह उन ज़मीनों से ऊँची होने के कारण पानी का सोता नीची ज़मीन पर ख़ामख़ाह पहुँचता है। इस तरह नहर के पानी के सोते के कारण और खेत और बाहर के पानी के फैलने से नहर के पास के देहातों के आस-पास तमाम जगह सड़ती रहती है और गाँव का स्वास्थ्य ख़राब होता है।

नहर की वजह से देहातों का स्वास्थ्य ख़राब होने का एक दूसरा कारण भी है। नहर के हो जाने से वर्षा के पानी को जो निकास के स्वाभाविक रास्ते होते हैं, रुक जाते हैं। यह ठीक है, नहरवालों ने जहाँ तक सम्भव हो सका पानी के निकास की नालियाँ बना दी हैं, लेकिन फिर भी पहले-जैसी स्वतन्त्रता से पानी नहीं निकल पाता है। इससे भी वर्षा का पानी जहाँ-तहाँ रुक कर ज़मीन ख़राब करता है और स्वास्थ्य का भी नाश होता है। जहाँ वर्षा बहुत कम होती है, आब-हवा काफी खुश्क है, वहाँ यह पानी तो सूख भी जा सकता है लेकिन वर्षा-प्रधान देश में तो यह समस्या काफी गम्भीर होती है। क्योंकि वर्षा जहाँ ज्यादा होगी वहाँ पानी के निकास की स्वतन्त्रता अधिक चाहिए। वैसे रेलवे आदि से पानी का निकास रुकता ही था लेकिन नहर हो जाने से स्थिति और भयकर हो गई।

पानी की निकासी रुकने से हानि

मैं जब महकमा वालों से बात करता हूँ तो वे इन बातों को मानते हैं। वे तो इससे भी ज्यादा नुकसान की बात करते हैं। उनका कहना है कि जिस इलाके मे रेह ज्यादा है उस इलाके में नहर से पानी मे घुलकर तमाम ज़मीन मे फैल जाती है। जिन इलाको मे अधिक दिन से नहर चल रही है उन क्षेत्रों में इसका दुष्परिणाम दिखाई देने लगा है, यह तो थोड़ी जानकारी रखने वाला भी जानता है। इस तरह फैजाबाद ज़िले में भी जब कुछ दिन नहर रह जायगी तो कहीं सारी ज़मीन चावल ही चावल के लिए न रह जाय। क्योंकि चारों ओर से नमी ही नमी इकट्ठा होने से खेती मे गर्मी रह ही न जायगी और इस कारण गेहूँ के लिए खेत ख़राब हो जायेगा। फिर रेह वाली जमीन हो जाने से, धान के अलावा और कौन फसल रह जायगी। और यह सबको मालूम है कि अवध मे बहुत अधिक रेह है।

एक और खतरा

पानी की बाबत भी मैने सैकड़ों किसानों से पूछा है। वे सब कहते

हैं कि नहर से कुएँ का पानी खेती के लिए ज्यादा फायदे का है। तालाब का पानी कुएँ के मुकाबले में उतना अच्छा नही होता है लेकिन नहर से वह भी अच्छा है, ऐसा सभी किसान कहते है। मै जब पूछता हूँ कि फिर आप लोग कुएँ से क्यों नही सीचते हैं तो जवाब मे वे कहते हैं एक तो नहर उनके सिर पर आ पड़ी है। दूसरे इतने कुएँ और तालाब अब रह भी तो नही गये।

क्या नहर सस्ती है?

यह कहा जाता है कि नहर सस्ती पड़ती है। आदमी कुआँ से या तालाब से सींचेगे तो वह महगा पड़ेगा। यह बात मेरी समझ मे नही आती है। मैंने पहले ही कहा था कि प्रत्येक परिवार मे इतने आदमी हैं और ज़मीन इतनी कम है कि सब के लिए पूरा काम नही मिलता है। यह बात मैंने उस हालत में कही थी जब लोग कुएँ या तालाब के पानी से खेती करते हैं। यानी नहर से सिचाई होने पर और लोग खाली हो जायँगे। वे लोग भी तो घर बैठे खायँगे। इसलिए सस्ता और मँहगा जाँच करने के लिए पानी के लगान को ही सिर्फ थोड़े देखना है, उस लगान मे उनकी खुराक भी जोड़ दो, जो लोग नहर की वजह से बेकार हो जाते हैं। फिर तो नहर सस्ती भी नहीं पड़ेगी। ख़ास कर उस ज़िले मे जहाँ ८-१० हाथ पर पानी मिलता हो।

मैंने जहाँ तक नहरी इलाकों मे दौरा करके, किसानों से बात करके और नहर के विज्ञान की जानकारी रखने वालों से आलोचना करके देखा है उससे तो यही समझा कि नहर उन स्थानों के लिए मुफीद हो सकती है जहाँ पानी की सतह बहुत नीची हो, वायुमंडल खूब सूखा हो जिससे स्वास्थ्य खराब न हो सके, ज़मीन इतनी हो कि आबादी को ज़मीन मे काफी काम हो और जहाँ वर्षा कम होती हो। लेकिन फैजाबाद जैसे जिले मे, जहाँ पानी इतना नजदीक है, जहाँ आबादी इतनी है कि अगर बाल्टी भर भरकर भी सिंचाई करे तो भी

सबको काम न मिले, जहा वर्षा इतनी अधिक हो कि पानी के स्वतन्त्रता के साथ निकास की पूरी गु जाइश लाज़मी हो और जहा रेह वाला ऊसर इतना हो, नहर फैलाना बेकार है। इससे तो सरकार अगर पुराने तालाब और कुओ का पुनरुद्धार करने मे किसानो की मदद कर दे, कुओ की खुदाई मे इमदाद दे दे तो ज्यादा फायदा पहुँच सकेगा।

इन बातों को सोचकर मै अपने ग्राम-सुधार महकमा मे कुछ थोड़ा सा जो साधन था उसी के द्वारा तालाबो और कुओ के पुनरुद्धार के प्रयोग मे लग गया।

प्रान्तीय सरकार ने ज़िले मे ३०-४० कुओं की 'बोरिंग' करने का साधन दिया था। उनका तरीका यह था कि प्रत्येक सर्किल मे २-१ कुआ बनवा दिया जाय। पानी के लिए कुछ और ख़र्च करने की मजूरी थी जो गाव के कुओं की जगत बनाने की मदद देने के काम मे आती थी। इतने कम साधन से किसी किस्म के प्रयोग करने की गु जाइश नहीं थी। मैं चाहता था एक छोटे से क्षेत्र मे १००-१५० कुओ मे 'बोरिंग' करने की मदद दे सके और उस इलाके मे जितने तालाब हों उन्हें खोदवाने का इन्तज़ाम हो सके। उस समय कांग्रेस का मन्त्रि-मंडल पद त्याग कर चुका था। इसलिए मन्त्रियो से कहकर कुछ मदद लेने की भी आशा नहीं थी। वैसे तो पिछले

कुओं की 'बोरिंग' साल से ही मै इसका प्रयोग करने की सोच रहा था। लेकिन पिछले साल तो स्त्री-सुधार योजना को सफल बनाने की धुन थी। इसलिए इस दिशा मे न कोई निश्चित योजना ही बना सका और न कोई काम ही शुरू कर सका। लेकिन मै समझता था कि यह काम काफी खर्च का है इसलिए साल भर पहले से ही हमको जिले का जो पैसा मिलता था उसमें से बचाना शुरू किया था। इस साल भी मैने कुएँ की जगत् का और 'बोरिंग' का सब रुपया इस प्रयोग मे लगा देने की सोची। मैं इस बारे मे कुछ

प्रयोग करने की सोच ही रहा था कि मि० मार्श, जो प्रान्तीय सरकार के ग्राम सुधार महकमा से अर्गनाइज़र थे, फैजाबाद स्त्री-शिक्षा का काम देखने आये। उनको मैंने अपने प्रयोग की बाबत कहा। वे सहमत हो गये। लेकिन साल का आख़िरी समय आ जाने से कोई ख़ास मदद नहीं कर सके। फिर भी दूसरे जिलों से, जहां का 'बोरिंग' का काम ठीक से नही हो रहा था, ग्रांट का पैसा फैजाबाद के लिए दे देने का आदेश दे दिया। मैंने २० गाव घूम कर करीब ८०-६० कुओं की 'बोरिंग' की। 'बोरिंग हो जाने से उधर के किसान बहुत ख़ुश हुए। वे कहने लगे कि नहर वालो से वे अच्छे रहे। मै चाहता था कि पूस-माघ के महीनों मे, जब किसान खाली रहते हैं, गाव वालों की मार्फत पुनरुद्धार कर सकूँ। लेकिन वह हो नहीं सका। २-१ जगह कोशिश की लेकिन एक तो अभी पंचायतों का संगठन इतना व्यवस्थित नही हो सका था फिर तालाव ख़ास व्यक्ति की सम्पत्ति होने से लोग उसके लिए मेहनत करने को तैयार नही थे।

कुओं के काम में चौड़े क्षेत्र मे सफलता देखकर मैंने दूसरे साल के लिए उसी क्षेत्र में ५०० कुएँ 'बोर' करने की योजना बनाई। उस साल के प्रयोग के लिए प्रान्त से मदद मिल जाने से साल भर पहले जा रुपया मैंने बचा रखा था वह बच गया। उस साल का सारा रुपया भी बच गया और नये साल मे 'बोरिंग' के प्रयोग के लिए हमारे ज़िले को विशेष रकम मिली थी और कुओ की जगत् वाला रुपया तो नये साल मे भी मिला। इस तरह १५००) हमारे पास हो गया।

जिस इलाके मे पिछले साल कुओं मे बोरिंग का काम किया गया था उस इलाके में लोगों से बातचीत करने पर मालूम हुआ कि वे सब इसको बहुत उत्साह के साथ करना चाहते हैं। वे तो यहाँ तक तैयार हैं कि अगर सरकारी तकावी मिल जाय तो सामान और मज़दूरी अपनी

ओर से दे सकते हैं। वैसी हालत में हमारे पास जो साधन था उससे ५०० कुएँ ठीक हो सकते थे। इसकी योजना भी मैंने अपने कर्मचारियों को समझा दी। दिसम्बर से काम शुरू होना था लेकिन नवम्बर मे ही कांग्रेस के लोगों ने ग्राम-सुधार से इस्तीफा दे दिया। फिर तो यह काम ज़िला मजिस्ट्रेट के हाथ मे वही पुराने अधिकारी ढंग से गाव मे कुछ लोगो की कुछ मदद करने वाली नीति से चलने लगा।

थोड़े समय मे पानी-सम्बन्धी समस्या पर मै जितना गौर कर सका उससे मेरी राय मे अगर सरकार वाकई किसानों की मदद करना चाहती है तो उन क्षेत्रों मे, जहा नहर बिना काम नहीं चल सकता है, नहर बनावे लेकिन मैने जैसी स्थिति फैज़ाबाद के लिए पहले बताई है वैसी स्थिति वाले इलाकों मे तो अगर विस्तृत रूप से नीचे-लिखे मुताबिक मदद किसानों को कर दे तो नहर की अपेक्षा उनको अधिक फायदा होगा।

एक योजना

१ जितने कुएँ ख़राब हो गये हों उनको ठीक करने और ज़रूरत पड़े तो उनमे बोरिंग करने मे किसानों की मदद करना।

२. पचायतों को व्यवस्थित करके उनके ज़रिये जितने तालाब हैं उनका पुनरुद्धार करना। इसके लिए सरकारी इमदाद देना।

३. बहुत-सी छिछली नीची ज़मीन देहातों मे पड़ी रहती है जिसमे न खेती हो सकती है और न वह इतनी गहरी है कि पानी कुछ दिन ठहर सके। हमारे ज़िले में इसे ताल कहते हैं। इस किस्म की ज़मीन बहुत विस्तृत होती है। कभी कभी ५०० से १००० बीघ तक होती है। इनको सरकार को मुआवज़ा देकर ले लेना चाहिए। उनके बीच मे खोद कर बडे बड़े तालाब बना दे और चारों ओर जो जमीन निकल आवे उसे चरागाह बना दे। सरकार चाहे तो ऐसे पब्लिक चरागाह में मवेशी चराने की फीस लेने का अधिकार रखे और उसके जरिए चरागाह और तालाब का इन्तज़ाम करे। इसमें पानी का

और मवेशी चराने का दोनो काम हो सकता है। अभी ये ज़मीनें बेकार पड़ी रहती हैं।

आज मैने बहुत लिखा। कल की न लिखने की कसर पूरी कर दी। आज मैने बहुत सी ऐसी बातें लिखी है जो चालू बातों के खिलाफ हैं। मुमकिन है, विशेषज्ञ के लिए ये बातें बिल्कुल बेवकूफी की हो। लेकिन मैने जो कुछ देखा और उस पर से जो कुछ राय कायम की उसी को लिख दिया। आज दिन भर लिखता ही रहा। अतः अब थक गया हूँ।

---

[५८]

सुधार महकमा का काम

६—१२—४१

कल फिर कुछ नही लिख सका। कल के अख़बार मे जापानी लड़ाई शुरू होने की ख़बर निकली थी। इससे जेल भर मे तूफान था। इधर जेल मे ज़ोरों की अफ़वाह उड़ रही थी कि देवली के साम्यवादी लोगों ने लड़ाई मे सरकार की मदद करने का निश्चय किया है। यहा के साम्यवादियो मे भी हलचल रही। चारों ओर आलोचना ही चल रही है। अब कांग्रेस क्या करेगी। कोई कुछ कोई कुछ कहता है। इस तरह जेल भी आज कल विवाद सभा हो रहा है। अच्छा है, सप्ताह भर ऐसा ही रहेगा। समय कटेगा, पता ही नही लगेगा। मै भी उसी गोल मे पड़ गया इससे कल कुछ नही लिख सका।

इधर के कुछ पत्रों में सहकारिता और खेती-महकमा के सम्बन्ध मे मैने क्या-क्या अनुभव किया था उसे बताने की कोशिश की। आज ग्राम सुधार महकमा ख़ास के ज़रिये क्या-क्या काम कर सका उसकी बाबत कुछ लिखने की चेष्टा करूँगा। मैने पहले ही लिखा था कि

महकमा मे अपने मतलब की ज्यादा नहीं कर सकते। प्रोग्राम ऊपर मे आता है फिर भी कुछ अपने मतलब की बातें तो निकाल ही लेता था। ग्राम सुधार के महकमा से केवल पाच ही बातें कर सकते थे।

१ पचायत घर। २ कुआँ आदि की मरम्मत। ३ गली कूचा तथा गाँव में जाने का रास्ता ठीक करना। ४ शिक्षा। ५ स्काउटिंग।

पंचायत घर के और कुओं की बाबत जो कुछ किया या सोचा सब पिछले पत्र मे कह दिया। गाव के कुओं की जगत और रास्ता वगैरह बनाने के काम मे मै अपना समय या शक्ति नहीं लगाता था। वह काम सेक्रेटरी और इन्सपेक्टर पर छोड़ दिया था। मै सिर्फ शिक्षा पर ही विचार करता रहा। अपने साथी काम करने वालों से मै कहा करता था—"अगर आदमी बन जायेंगे तो कुआँ सड़क वे खुद बना लेंगे। लेकिन आदमी न बनेंगे तो तुम लोग जो कुआँ बनवाओगे वे उसकी ईंट निकाल कर चूल्हा या नाबदान बना लेंगे। और सड़क जो बना दोगे उसे खोद डालेंगे।

तुमको पहिले ही लिखा था कि ग्राम-सुधार के लिए स्त्रियों का सुधार पहले होना चाहिए, ऐसा मै समझता हूँ। इसलिए किस तरह शिक्षा का पैसा स्त्री सुधार-शिक्षा मे लगा दिया था और ५० सुधार के केन्द्र खोल दिये थे इसका विस्तृत विवरण भी लिख चुका हूँ। स्त्री-सुधार व शिक्षा-केन्द्रों को स्थापित करते ही मैने अपना ध्यान पुरुषों की शिक्षा और स्काउटिंग पर लगाया।

प्रौढ़ शिक्षा का जो सरकारी कार्यक्रम था उसके अनुसार प्रत्येक सर्किल के कुछ पढ़े-लिखे नौजवानों को ३) से ५) मासिक देकर रात्रि-पाठशाला खुलवाना था। मैने पहले ही तुमको लिखा था कि स्त्री-शिक्षा केन्द्र खोलने के लिए इन सबको बन्द करा दिया था। अब प्रान्तीय सरकार के स्त्री-सुधार का काम मजूर कर लेने से प्रौढ़ शिक्षा वाला साधन खाली हो गया था। इधर महकमे की ओर से ग्रामीण स्काउटों का सगठन करने के लिए प्रत्येक जिले के लिए एक स्काउट

अर्गनाइजर मिल गया। यह तो तुमको मालूम ही है कि सरकारी काम दिखावटी होते हैं। एक स्काउट आर्गनाइज़र ज़िले भर घूम कर कुछ क़वायद करा दे इतना काफी था। मैने सोचा प्रौढ़ शिक्षा और स्काउटिंग को मिलाकर अगर हम योजना बनाते हैं तभी तो यह काम स्थायी रूप से चल सकेगा। गाँव के लोग इतने लापरवाह हो गये हैं कि बिना स्थायी केन्द्र बनाये उनके जीवन मे कोई स्थायी परिवर्तन नही आवेगा अतः मैने तय कि कुछ लड़कों को ३।४ रुपया मदद करके गाँव मे सिर्फ रात्रि पाठशाला चलाने के बजाय एक सर्किल मे एक योग्य कार्य-कर्त्ता पूरे समय के लिए ले लिया जाय और वह रात को प्रौढ पाठशाला चलावे और दिन को स्काउट-सगठन करे। जो जिला अर्गनाइज़र सरकार की ओर से मिला है वह इनके काम का निरीक्षण करे।

प्रौढ़ शिक्षा और स्काउटिंग

इस प्रकार पूरे समय के लिए कार्यकर्त्ता का इन्तजाम हो जाने से मैने २।३ केन्द्र के लिए २३ नौजवान भर्ती कर लिये और रणीवा मे ढाई माह के लिए ग्राम-सेवक शिक्षा-शिविर खोल दिया। इसका कार्यक्रम वही था जो आश्रम की ओर से प्रौढ-शिक्षक-शिविर मे था। उनको चर्खा, ग्राम-समस्या और स्काउटिंग की शिक्षा भी दी जाती थी। उनसे सिर्फ तीन काम लेने का विचार थाः—

१ चर्खे का प्रचार। २ प्रौढ शिक्षा। ३ गाँव की सफाई। इसके अलावा परिस्थिति को देखकर दूसरा काम देने का विचार किया था। इसी दृष्टि से शिक्षा दी गई।

इन २३ शिक्षकों ने अपने-अपने सर्किल मे जाकर ठीक उसी किस्म का एक-एक स्काउट-शिक्षा-शिविर खोला। इन शिविरों के लिए कोई सरकारी मदद नही मिली थी। सारे खर्च का भार स्थायी पचायतों ने उठाया। इन शिविरों मे ११ शिक्षक प्रति शिविर के हिसाब से शिक्षक की शिक्षा हुई। इस प्रकार २३ सर्किलों मे १५३ शिक्षा-केन्द्र खुल

सके। इन केन्द्रों से गाँव की जनता के सुधार-काम मे बहुत उत्साह दिखाई देने लगा।

प्रान्त के ग्राम-सुधार अफसर जब ज़िले में आये तो स्काउटो की भरमार देखकर कहने लगे कि इतने स्काउट कहा से आये? मैने उन्हे अपनी योजना समझाई। उन्होंने पूछा इतनी वर्दी कहा से आवेगी। मैंने कहा कि मै तो सबको चर्खा सिखा रहा हूँ और ३ पूनी प्रति सप्ताह कातने की प्रतिज्ञा लेना नियम मे रखा है। इसी से वर्दी हो जायगी। उन्होंने इसको बहुत पसन्द किया और सारे प्रान्त के लिए इसे चला दिया। जब प्रान्त भर के लिए शिक्षा शिविरों का इन्तज़ाम हुआ तो मैने इसका फायदा उठाकर दुबारा केन्द्रीय शिविर खोल करके सर्किल शिक्षकों को फिर से बुला लिया। इससे उनकी शिक्षा और अच्छी हो गई।

इस बार शिविर मे एक और बात का प्रयोग करने की कोशिश की। मुझको मौजूदा स्काउटिंग का तरीका पसन्द नहीं था। यह सब दिखावटीपन से भरा था। इससे गाव के किसानों की सुस्ती तो थोड़ी ज़रूर हटती है, लेकिन उनके जीवन मे बहुत लाभ नही होता था। इसलिए कवायद मे खेती की जितनी क्रियाएँ होती हैं, उनकी शिक्षा कवायद रूप मे देने की विधि निकालना शुरू किया। इस तरह फावड़ा-ड्रिल, खुरपा ड्रिल, चर्खा ड्रिल आदि की शिक्षा देकर ग्रामीण स्काउटिंग को किसान-लायक बनाने का प्रयोग करता रहा।

मेरा विचार था कि इसी योजना की मार्फत गाव के किसानों के जीवन को संगठित करने की कोशिश करूँगा। लेकिन इसी समय हम लोग महकमा से अलग हो गये।

आश्रम, सरकारी महकमा और ग्राम-सेवा की मार्फत जो कुछ प्रयोग मे अनुभव हुआ सब कुछ इतने दिनों में कह डाला। मुमकिन है, इसमे कुछ नतीजा देश के और हिस्सों के लिहाज से गलत हो। मेरी राय भी शायद दोषपूर्ण हो क्योंकि मेरा अनुभव प्रायः एक ही

ज़िले का है। मैंने सिर्फ गाव मे जो कुछ देखा, सोचा और किया उसी को लिखकर अपना वादा पूरा किया। फिर जेल से बाहर जाकर अगर कुछ काम करने को मिला तो और ज्यादा अनुभव होगा। तब तो ज़बानी भी बता सकूँगा।

अब यहीं खतम करता हूँ। नमस्कार।

---

[५६]

ग्राम-सेवा की वृत्ति और सेवक की जिन्दगी

१०—१२—४१

कल के पत्र में मेरी ग्राम-सेवा की कहानी खतम हुई। तुमने देखा होगा, शुरू से ही गाव के काम में मेरी रुचि थी। रणीवाँ में जिस प्रकार योजना का सूत्रपात हुआ उसकी कुछ कल्पना १६२६ मे हुई। फिर कुछ रास्ना में प्रयोग करने का प्रयास हुआ। बाद मे सन् १६३५ से १६४१ यानी ६ साल तक लगातार इस दिशा मे प्रयोग करते रहे। सरकारी साधन की भी सहायता मिली; तब जाकर योजना का साकार रूप दिखाई देने लगा। इससे समझ सकती हो, गाँव मे कुछ करने के लिए कितने धैर्य्य की ज़रूरत पड़ती है। प्रायः ग्राम-सेवक इसी से घबड़ा कर भागते हैं। सरकारी ग्राम-सुधार भी दो साल तक करने को मिला। पहले तो मै कुछ उदासीन था इसलिए कि उसमे हो ही क्या सकेगा, फिर उधर ध्यान दिया। स्त्री शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा व स्काउटिंग की मार्फत सुधार करने की कल्पना का प्रयोग व आयोजन कर रहा था। कुछ खेती की व कर्ज की समस्या पर भी अध्ययन कर रहा था। २-३ साल तो अध्ययन, विचार, प्रयोग और आयोजन मे ही लगता है, फिर कुछ ठोस काम का रूप मालूम होता है

लेकिन उद्योग पूरा नही होने पाया कि यवनिका पतन हो गया और महकमा का दृष्टिकोण ही बदल गया। इसलिए मेहनत तो बहुत की लेकिन किसी किस्म के स्थायी रूप का सूत्रपात ही नही हो सका। लेकिन महकमा के काम से मुझको निजी फायदा बहुत हुआ। ग्रामीण समस्या का अध्ययन और अनुभव जितना इन दो सालों मे हो सका उतना कोई भी किताब पढने से न होता।

अब तो ८ माह हो गये; जेल में बैठा हूँ। इससे भी फायदा हुआ। एकान्त मे बैठकर विचार करने का मौका मिला। पिछले २० साल की कहानी तुमको लिखने के बहाने उनको स्मरण करना पड़ा। पिछली ग़लतियों पर भी ग़ौर कर सका; इससे भविष्य में फायदा ही होगा। देहातों की वास्तविक समस्या पर जितना भी विचार किया जाय उतना थोड़ा है। यह समस्या इतनी जटिल है कि कभी-कभी दिमाग खराब हो जाता है। ग्राम-समस्या हल करने का काम कितने महत्व का है, इसको कहना ही बेकार है। सरकारी, गैर-सरकारी सभी दल वाले इस बात पर ज़ोर देते हैं कि ग्राम मे जाकर ग्रामीण जनता को उठाओ। आज इसके सिवाय देश में कोई दूसरी आवाज सुनने को नही मिलती है।

जब से मै जेल आया हूँ और नये-नये लोगों से परिचय हुआ है, तो प्रायः सभी लोग पूछते हैं कि गाव मे काम करने के लिए कोई स्कीम बताइए। दरअसल यह बताना मुश्किल ही है। प्रत्येक देश, प्रत्येक काल के लिए तो ग्राम-सेवक को खुद ही परिस्थिति देख कर स्कीम तय करनी होगी। हमको सिर्फ इतना देखना है कि हमे किस वृत्ति से काम करना है और ग्राम-सेवक की तैयारी कैसी होनी चाहिए।

अब तक सरकारी, गैर-सरकारी जितना भी ग्राम-सुधार का काम हुआ है उनको देखा जाय तो उसमे प्रधानतः तीन वृत्तियाँ पाई जाती हैं:—

१—दया-वृत्ति। २—उपदेशक वृत्ति। ३—सेवा-वृत्ति।

१—आजकल जहाँ कहीं ग्राम-सुधार का काम होता है अधिकतर, ग्राम-सेवकों की प्रथम प्रकार की वृत्ति होती है। हम अपनी परिस्थिति को देखते हैं और गाँव वालो की परिस्थिति से तुलना करते हैं। फिर देखते है कि गाँव के लोग बहुत ग़रीब हैं। उनके पास रहने का घर नहीं है; जो है वह टूटा-फूटा है। उनके पास पहिनने का कपड़ा नही है। गाँव मे जाने के लिए कीचड़ पर से चलना पड़ता है; वे उसे वनवा नही सकते। उनके कुएँ टूटे हुए हैं। बेचारे गाँव वाले नंगे, भूखे, गन्दे और साधनहीन हैं। अतः इनकी कुछ मदद करनी ही चाहिए। उनमे कुछ दवा बाँटनी चाहिए। कुछ मदद उनकी सड़क वनाकर करनी चाहिए। कुछ कुओं की मरम्मत द्वारा करनी चाहिए। वे गन्दे रहते हैं, उनको कुछ साबुन देना चाहिए। उनके बच्चो को कुछ कपड़े देना चाहिए। कही से पैसा लाकर स्कूल खोलना चाहिए।

दयावृत्ति से सेवा

इसके पीछे उदारचेता लोगो का करुणा व दया की भावना है। दान देना दया की वृत्ति है। दान देने वाले उनको छोटे, दीन व हीन समझते हैं और उन पर दया करते हैं। शहर के पढ़े-लिखे मध्यम श्रेणी के लोग सम्भ्रान्त श्रेणी के लोग, जिनके हृदय कुछ कोमल हैं, उच्च श्रेणी से निकले हुए राष्ट्रीय सेवक और सरकारी महकमा के कर्मचारियो मे इस किस्म की वृत्ति पाई जाती है। लेकिन ऐसी दया और करुणा वृत्ति को पूरा करने के लिए ये लोग साधन लाते कहाँ से हैं? जो लोग अपने को शिक्षित भद्र श्रेणी के कहते हैं उनके पास जो कुछ साधन है वह मिला है डाक्टरी की आमदनी से, वकालत से, सरकारी नौकरी से, या तिजारत से। यह आमदनी आती है उसी गाँव के बेचारे लोगों से, ज़मीदार की आमदनी है उन्हीं की लगान से। राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता के पास है उसी पब्लिक के चन्दे से और सरकारी मुहकमा का धन भी उन्हीं से है। फिर यह मेहरवानी किस पर? किसका धन किसको करुणापूर्वक दान देना है? १०००) की हैसियत

के आदमी से पूरा हज़ार रुपया छीन लेने के बाद जब वह भूखों मरे तो ५) मदद करने की उदारता कैसी ? अगर कोई किसी को खूब बेत मार कर सारे शरीर मे घाव पैदा कर दे, फिर उसको ठेले पर लाद कर अस्पताल भेज दे और यह कह कर अपने को सन्तोष दे कि हमने उस दुखी शरीर पर मलहम पट्टी का इन्तज़ाम कर दिया है तो उसकी इस उदारता को तुम क्या कहोगी ? हमारे ग्राम-सेवको को इस प्रकार के दंभ से अपने को बचाना है और अपना दृष्टिकोण साफ रखना है। ग्राम-सेवक को समझना चाहिए कि गाव के लोग दीन हो सकते हैं, हीन नही। यह सही है कि वे इतने बेबस हो गये हैं कि इस अपमान को महसूस नही करते। तुम्हारा दान पाकर तुमको आशीर्वाद करते हैं। कुछ अर्से पहले सड़क, रेलगाड़ी और अस्पताल पाकर अंग्रेजी सरकार को भी 'माई बाप' कहते थे। लेकिन यह आशीर्वाद, यह माई-बापपना तभी तक है जब तक वे इस अपमान को महसूस न करे। इस वृत्ति से देने वाले और लेने वाले दोनों का नैतिक पतन होता है। देने वालों का बड़प्पन के दम्भ से और लेने वालो का बेबसी की हीनता से। हमारे राष्ट्रीय सेवकों मे अधिकतर लोग इसी वृत्ति के असर में रहते हैं क्योंकि वे उच्च श्रेणी-प्रधान समाज के संस्कार के अधीन रहते हैं। ऐसे समाज मे भी अपना स्थान, मर्यादा की मोह, छोड़ नहीं पाते हैं। मैंने यह भी देखा है बहुत से ख़ास ग्राम-सेवक, जिन्होंने अपना जीवन सेवा के लिए अर्पण कर दिया है, अपने पूर्व पुरुष के उच्चकुलीन बडप्पन के सस्कार के वशीभूत होकर अनजान में इस कृपा-वृत्ति के असर मे आ जाते हैं।

ग्राम-सुधार की समस्याओं को सोचने वाले कुछ बुद्धिजीवी लोग होते हैं। वे समझते हैं, गाँव वाले जाहिल अगढ़ तो हैं ही, उनके पास बुद्धि कहा से हो। वे बेवकूफ हैं और नासमझी के कारण तकलीफ भोगते हैं। अतः उनको अच्छी ज़िन्दगी का ज्ञान कराना चाहिए। उनके घरों मे रोशनदान नहीं होता है; रोशनदान का

फायदा वताना चाहिए। संतुलित भोजन किसे कहते हैं, उन्हें मालूम नहीं। सफाई किसे कहते है, गन्दा रहने से क्या-क्या नुकसान होता है, मक्खियाँ कितनी भयानक चीज़ हैं, रोग के जीवाणु कैसे फैलते हैं, रोगों का प्रतीकार किस तरह हो सकता है, बच्चों को कैसे रखना चाहिए, प्रसूता को किस तरह रहना चाहिए; गाँव वालों को इन बातों की जानकारी कराने के लिए बड़े-बड़े पोस्टर वनाना चाहिए; पर्चे छपवा कर बँटवाना चाहिए; मैजिक लैंटर्न का खेल दिखाना चाहिए; सिनेमा बनवाना चाहिए और गाँव-गाँव प्रचार करना चाहिए। वे भूल जाते हैं कि गाँव वाले साधनहीनता के कारण कितने मजबूर हैं। इसी प्रकार की वृत्ति वाली बहुत सी समितिया हैं। ऐसी वृत्ति को मै उपदेशक वृत्ति कहता हूँ।

उपदेशक वृत्ति वाली सेवा

तीसरी वृत्ति है गाँव में ग्रामवासी जैसा बसना, उनकी सेवा करना, उनकी शक्ति का परिचय करना, अपने आचरण से वताना कि परिश्रम से क्या क्या हो सकता है। हनुमान जी के अन्दर ताक़त थी; वे भूल गये थे। उनको याद दिला कर ही उनसे विराट काम लिया गया था, कन्धे पर चढ़कर नही। फिर हनुमान जी को कौन कन्धे पर चढाता ? अगर कोई चढ़ाने का दुस्साहस भी करता तो कन्धा टूट जाता। उसी तरह ग्राम-वासी की अन्तर्निहित शक्ति सुप्त है। उसी को जाग्रत करके उनके विस्तृत सामर्थ्य की याद दिला कर ही योग्य सामग्री का उत्पादन करना है। उनको उनके अधिकार समझाकर, उत्साह को वाहर जाने न देकर अपने भोग में लाने का साहस दिलाना है। वाहरी साधनों पर भरोसा न कर स्वावलम्बी भावना पैदा करनी है। कोई चाहे कि बाहरी साधन से यानी कन्धे पर चढकर ग्रामीण समस्या की दरिया पार करा देंगे तो वह उस विराट बोझ को सह नही सकेगा, कन्धा टूट जायगा। इस प्रकार ग्राम-वासी के साथ मिल कर उसकी शक्ति का

वास्तविक सेवा-वृत्ति

परिचय करा कर उन्हें स्वावलम्बी बनाने में मदद करने की प्रवृत्ति होनी चाहिए।

इस प्रकार की सेवा करने वालों को अपना जीवन भी नियमित करना होगा। उनको अपना चरित्र हमेशा ही माँजते रहना होगा। सेवा भी तो एक कला ही है। कुशल कलाकार हमेशा अपना औज़ार घिस कर तेज रखेगा, उसे शुद्ध रखेगा और सजावट ठीक रखेगा। सेवक का जीवन ही अपनी कला का औज़ार है, उसे तेज़ रखना होगा, साफ रखना होगा, व्यवस्थित रखना होगा।

सेवक का जीवन ही उसकी कला की तूलिका है

दूसरी बात यह देखनी होगी कि उस पर कोई दूसरे रंग का शेष तो नहीं रह गया है। ललित कला का कारीगर अपने चित्र-पट को जिस रग से चाहता है वह अपनी तूलिका सिर्फ उसी रग से रँगता है। अगर उसके ब्रश मे दूसरा रंग रह जाता है तो चित्रपट ही बदरग हो जायगा। सेवक समाज को जिस आदर्श से रंगना चाहते हैं अपने जीवन पर भी सिर्फ उसी रग को चढाना होगा। नहीं तो वह जो कुछ करेगा बदरग होगा। साथ ही उनको दारिद्र्य व्रत भी ग्रहण करना होगा। अपने निजी ख़र्च और सार्वजनिक धन का ख़र्च करने मे बहुत ही मितव्ययी होना है। हमारे नवीन राष्ट्रीय सेवक इस वृत्ति को पसन्द नहीं करते। वे कुछ ठाट-बाट की सजावट पसन्द करते हैं। अगर वे ठाट-बाट से न रहें तो आजकल सजावट-पसन्द समाज मे लोग उनको पीछे ढकेल देंगे, उनको ऐसा डर हमेशा लगा रहता है। सार्वजनिक धन को भी उदारता से ख़र्च करते हैं। उसका कारण कुछ अपनी पैतृक उच्च श्रेणी वाली दया का संस्कार है जो परोक्ष रूप से उनके आचरण पर असर डालता है। दूसरा कारण लोक-प्रियता का मोह है। उनके तमाम व्यवहारों को देखकर यह मालूम होता है कि वे किसी रईस के कर्मचारी हैं, ग़रीब जनता के नौकर नहीं। सेवा वृत्ति से ग्राम-सेवा करने वालों को समझना चाहिए कि हम कगाल बेकस

मैनेजर हैं। उनके मालिक भूखे, नगे जन हैं। हम उनके नौकर होकर उनसे शान से कैसे रहे ? यह तो सभी जानते हैं कि जिनका नौकर मालिक से ऊँची हैसियत से रहता है वह मालिक का दिवाला जरूर निकाल देगा। अतः अगर सेवक पैतृक सस्कार के कारण, शारीरिक असमर्थता के कारण कुछ विषय में समझौता करता है तो उसे मजबूरी और कमजोरी समझे। कमजोरी से समझौता तो जहा तक सम्भव है कम से कम होना चाहिए। ग्राम सेवक को गाव वालों को बेवकूफ, गन्दे कहकर नाक नही सिकोड़नी चाहिए। उनकी श्रद्धा से सेवा करनी चाहिए। जिसे हम बड़ा समझ कर श्रद्धा नही कर सकते हैं उसकी सेवा कैसे करेगे। ग्राम-सेवक सदियों की सड़ी हुई नमी के कारण बदबूदार कमरों को अपना कमरा समझना है। तेल पसीना और मिट्टी के लेप वाली बदबूदार चारपाई पर अपना समझ कर बैठता है। नाक से सर्दी बहती हुई आख मे कीचड़ चपके हुए मुख-मडल पर मक्खी भिनभिनाती हुई, ऐसे बच्चो को अपने बच्चे समझ कर प्यार करना होगा। घृणा का कोई स्थान नहीं।

आप एक कंगाल मालिक के सेवक हैं

ग्राम-सेवक को इसी तरह सेवा-वृत्ति से और चारित्रिक तैयारी के साथ गांव मे जाना चाहिए। उनके लिए कोई बनी-बनाई स्कीम नहीं है। वह तो ग्राम में जाकर ही मालूम होगी। तुमको बिहार भूकम्प का हाल मालूम ही है। आरियन दा और तुम जाने वाले थे; शायद तुम नहीं जा सकी। लेकिन बाते तो मालूम ही हैं। भूकम्प से जब सारा प्रान्त विध्वंस हो गया था तो चारों ओर से कर्मी लोग दौड़ पड़े थे। उन्होंने कोई प्लान नही सोचा, स्कीम नही सोची; वे सिर्फ दौड़ पड़े। वहा जाकर विशाल विध्वंस को देखकर लोग किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गये थे। क्या करे, कहा से और कैसे शुरू करे, समझ नहीं पा रहे थे। उसी समय मौके पर पं० जवाहरलाल जी आये और फौरन फावड़ा लेकर खोदने लगे। "सोचना क्या ? खोदो ?" की आवाज़ प्रतिध्वनित

हुई। सहस्र खन्ती, सहस्र फावड़े चलने लगे। क्या करना है, पहले से कैसे सोचते? किसको मालूम किस स्तूप के नीचे कौन सम्पत्ति, कौन प्राणी दबा पड़ा है। पुनर्गठन तो तभी हो सकता था जब मलबा हट जाता और दबी हुई सम्पत्ति बाहर निकलती।

कुसंस्कारों के मलबे के नीचे मानवता दबी पड़ी है

सदियों की अवहेलना से, लूट और शोषण के प्रहार से हमारे ग्रामीण समाज की प्राचीन विधि-व्यवस्थाएँ और आर्थिक, धार्मिक नैतिक व व्यावहारिक संस्कारों की इमारत का चकना-चूर हो गया। और उस ध्वसावशेष के ढेरो के नीचे मालूम नहीं कौन सी सम्पत्ति, कौन-सी मानवता दबी पड़ी है। अगर आज ग्रामीण समाज का ध्वंस से उद्धार करना है; समाज की पुनर्स्थापना करनी है तो सेवकों को दौड़ पड़ना होगा और जवाहरलाल की वह आवाज़ "सोचना क्या? खोदो!" के अनुसार खोदना शुरू करना होगा और जब प्राचीन व्यवस्था का धंसावशेष और कुसंस्कारों का मलबा हट जायगा, भीतर से प्रचीन व्यवस्था और सस्कृति की सम्पत्ति निकल आवेगी, तभी ग्राम-समाज का पुनर्गठन व रचना हो सकेगी।

ग्रामीण जीवन की प्राचीन अग्नि, प्राचीन चरित्र की ज्योति सदियों से राख और धूल के नीचे दब जाने पर आज चारो ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई दे रहा है। लेकिन ग्राम-सेवक को निराश नहीं होना है। भीतर की आग की गर्मी राख और धूल भेद करके आज भी ऊपर दिखाई देती है। सेवक को इस अन्धकार में

यहीं की आग से यहीं के दीप जलाओ

प्रकाश डालना है। वह बाहर से टार्च ले जाकर, बिजली की बत्ती ले जाकर नही, बड़प्पन और शिक्षा के दम्भ से ध्वंस स्तूप पर पैर रखकर नहीं होगा; उस पर पैर रखने से जल जाना पड़ेगा, बल्कि नम्रता से झुककर, धीरे से सम्हाल कर फूतकार से राख उड़ाकर, नीचे की आग जगाना है। राख उड़ने से सेवक का

सारा शरीर गन्दा हो जायगा, आंखे भर उठेंगी। उससे घबड़ाना नहीं है। उसी ढेर के नीचे से जो आग निकलेगी उसके सहारे उसी भूमि की मिट्टी का दीप जलाकर समाज के आगे-पीछे कोने-कोने मे दीपावली करनी है। देखना है कि वह रोशनी कला की व्यवस्था के साथ रखी गई है या नही। जिससे सुन्दर मालूम हो, इस तरह तथा धैर्य और सावधानी से आड़ मे सजाकर यों रखना है कि आज की पश्चिमी अव्यवस्थित और तीव्र वायु से बुझ न जाय।

ग्राम-सेवा के प्रयोग मे जो कुछ देखा, मन मे जो कुछ कल्पना थी, धारणा थी सब तुमको सुना दी। मालूम नही यह करुण कहानी तुमको कैसी लगेगी। शायद इससे कुछ मतलब निकल आये। आज आखिरी पत्र है। इसके बाद फिर मुलाकात पर ही बात होगी। वहां जितने भाई-बहिन हैं सबको मेरा प्रेमपूर्ण नमस्कार कहना। मीतू का क्या हाल है। उसे बहुत-बहुत प्यार कहना।

तुम्हारा

धीरेन्द्र।

समग्र ग्राम-सेवा की ओर

श्री धीरेन्द्रनाथ मजूमदार

भाग २

[विवेचन, निष्कर्ष और योजनाएँ]

[१]

चीन का ग्रामोद्योग आन्दोलन और गांधीजी की विचारधारा

नैनी सेंट्रल जेल
२६ अक्टूबर १९४३

न जाने कितने दिन बाद आज तुम्हें फिर पत्र लिखने बैठा हूँ। मार्च सन् १९४२ के शुरू मे पटना मे आखिरी मुलाकात हुई थी। उसके बाद हलाँकि डेढ़ साल ही बीता है किन्तु मालूम होता है कि एक युग बीत गया। इस बीच न मालूम कितनी बाते हो गईं। क्या क्या बवडर मुल्क मे उठे, उनका कोई हिसाब नहीं। चंपारन से पटना तक रास्ते मे न जाने कितनी योजनाएँ हम लोगों ने बनाई थी। स्त्री-शिक्षा योजना की बात सुनकर तो तुम कितनी खुश हुई थीं और अपना समय देने के लिए भी तैयार हो गई थी। तुमने ऐसी आशा भी दिलाई थी कि वासन्तीदेवी आकर उसकी ज़िम्मेदारी ले लेगी। रामदेव भाई भी कितने उत्साहित थे। सारा इन्तज़ाम करने के लिए तैयार हो गये थे। उसके बाद डेढ साल तक न तो तुमसे मुलाकात ही हो सकी और न कोई पत्र-व्यवहार ही हुआ। इसके लिए समय कहाँ मिला ? मै भी बृहत् कार्यक्रम मे फँस गया और तुम भी नई-नई योजनाओं में मशगूल रही। मै चाहता था कि मैंने जो योजनाएँ आगरा सेंट्रलजेल में बैठकर बनाई थी, उनका प्रयोग जल्दी से हो सके। साल भर जेल मे रहने से काम मे जो कमी आ गई थी उसको पूरा करना था। देश मे वस्त्र-समस्या जटिल हो जाने के कारण आश्रम पर भी काफी बोझ पड़ गया था। इन कारणों से तुमसे संपर्क न रख सका।

"अपने मन कछु और है, कर्ता के कछु और।"

फिर ग्रामोउद्योग-संघ की १४ अगस्त की बैठक में शामिल होने के लिए मैं वर्धा आने ही वाला था और सोचा था कि उक्त अवसर पर दो-चार दिन तुम लोगों के स्नेहपूर्ण आतिथ्य का सुयोग मिलेगा। उस समय के लिए बहुत सी बाते सोच रक्खी थीं; किन्तु "मेरे मन कछु और है, कर्ता के कछु और।" इस बीच मे ६ अगस्त के सरकारी अमल ने देश भर में क्रांति मचा दी। फिर कौन किससे मिलता? उस समय पता नहीं चल रहा था कि कौन कहाँ है? कौन पकड़ा गया और कौन बचा? ६ अगस्त को रणीवाँ आश्रम पर पुलीस ने छापा मारा। सारा आश्रम ज़ब्त करके कर्ण तथा ३० अन्य साथी नज़रबन्द कर दिये गये। मै उस समय मेरठ मे था इसलिए उस दिन गिरफ्तार नहीं हुआ। फिर मै केन्द्रों मे दौरा करता रहा। बलिया, गाज़ीपुर आदि ज़िलों मे दमन की पराकाष्ठा थी। फिर भी मैंने कुछ काम करने की चेष्टा की। जब तक बाहर रहा तब तक यह कोशिश करता रहा कि इस प्रान्त के लिबरल नेता एक रिलीफ कमेटी बनावे। मेरी धारणा थी कि मनुष्यता के नाते राजनीति से कोई सम्बन्ध रक्खे बिना भी यह काम हो सकता है। इसी उद्देश्य से मै सेवा-समिति के संचालकों से मिला। हरी जी (श्री हृदयनाथ कुँजरू) से भी मिला। लेकिन उन्हे राजी न कर सका। फिर अपने से जो थोड़ा-बहुत हो सके वही करने की चेष्टा करने लगा। लेकिन कुछ ख़ास काम कर सकने के पहले ही १७ अक्टूबर को गिरफ्तार कर लिया गया। इलाहाबाद से दिल्ली जा रहा था; स्टेशन पर ही पकड़ लिया गया। तब से नैनी सेंट्रल जेल मे हूँ। शुरू के ६ महीने तो बाहर से कोई संपर्क रखने की ही इजाजत नहीं थी। लिखने का सामान भी नहीं रख सकता था। बहुत इंतजारी के बाद महीने मे एक पत्र लिखने की इजाज़त मिली। पहले तो घर पर, आश्रम वालों को और दादा को ज़रूरी पत्र लिखने थे। उन्हीं में ५-६ पत्रों की बारी ख़तम हो गई अब इस मास यह ख़त तुम्हे लिख रहा हूँ।

यहाँ का जीवन अच्छा ही है। पढ़ने का वायुमंडल खूब है। अधिक समय पढने में ही बीतता है। मै भी पढने मे काफी समय लगा रहा हूँ। लेकिन मनचाहे विषय पर किताबे नहीं मिलतीं। अभिप्राय यह कि मुझे ग्राम-समस्या पर किताबे चाहिए थो सो मिल नही रही हैं। अतः साधारण राजनीतिक किताबें ही पढ रहा हूँ। इससे समय का दुरुपयाग नहीं हो रहा है। लेकिन अपने काम की दृष्टि से सदुपयोग भी नही हो रहा है। मेरठ को लिखा था; लेकिन वहाँ भी कोई ऐसा आदमी नही है जो पुस्तकें भेज सके। विचित्र भाई, रामधारी आदि सभी तो नज़रबन्द हैं। क्या इस मामले मे तुम कुछ मदद कर सकोगी? कम से कम शिक्षा-सम्बन्धी कुछ किताबे तो भेज सकती हो। और मुल्कों मे इस पर क्या-क्या प्रयोग हुए हैं, इस विषय पर किताबें मिल सके तो बहुत लाभ होगा। सब जगहो का हाल मालूम होने से, उस पर कुछ विचार करके कम से कम तुम लोगो की कुछ थोड़ी-बहुत मदद ही कर सकूँगा। इस दिशा मे थोड़ी चेष्टा करना।

चीन की उद्योग समितियाँ और हमारी दशा

अब तक जितनी किताबे पढी हैं, उनमें एक किताब अवश्य मेरे काम की थी। वह चीन के औद्योगिक सहयोग के सम्बन्ध में थी। उसे पढते समय मुझे ऐसा मालूम होता था जैसे कोई हमारी ही परिस्थिति मे यह सब काम कर रहा है। हमारे सामने जो समस्या है, वही चीन वालो के सामने भी है। वही पूँजी का अभाव, आबादी की अधिकता और उस पर लड़ाई की परिस्थितियों से उत्पन्न कठिनाइयाँ।

वास्तव मे चीन के लोग कमाल कर रहे हैं। ऐसी परिस्थिति मे युरोप का कोई भी मुल्क हताश हो जाता। छोटे-छोटे गृह-उद्योगों से आवश्यक सामान उपलब्ध हो सकेगा, ऐसा विचार मात्र ही उन्हें असंभव मालूम पड़ता। चीन के लिए बड़े पैमाने मे गृह-उद्योग चलाना कोई नई बात नहीं थी। वहाँ दस्तकारी का काम प्राचीन काल से चल

ही रहा था। कारीगर भी मौजूद थे। केवल संघटन की आवश्यकता थी। लड़ाई के जोश मे वह संघटन भी संभव हो गया। फिर भी इतने कम समय मे और इतने बड़े पैमाने पर संघटन कर लेना आसान काम नहीं था। क्योंकि जहाँ एक तरफ उनके यहाँ प्राचीन काल से दस्तकारी का संस्कार रहा; विभिन्न दस्तकारियों के कारीगर मौजूद रहे और लड़ाई के कारण माल की आवश्यकता बढी वहाँ जनता मे आत्म-संघटन का कोई परंपरागत भाव नही था। सैकड़ों वर्षों से होते आने वाले गृह-विवाद के कारण समाज मे किसी प्रकार का संघटन नहीं रह गया था। देहाती जनता स्वार्थी तथा ईर्ष्यालु हो गई थी। ऐसी जनता में जितना भी संघटन हुआ, वह आश्चर्य की ही बात है। जब मै वहाँ की योजनाओ और संघटन के सम्बन्ध में पढ रहा था तो ऐसा लगता था कि अपने यहाँ भी लोग उसी प्रकार का संघटन क्यो नही करते हैं? जो परिस्थिति चीन की है वही तो हमारी भी है। हाँ, इतना फ़र्क ज़रूर है कि वहाँ अपनी सरकार है; यहाँ विदेशी। लेकिन वहाँ भी जो सहयोग समितियाँ संघटित हुई है वे सरकार की ओर से नही हुई हैं; गैर-सरकारी लोगों ने ही उन्हे स्थापित किया। सरकारी मदद बाद मे मिली। फिर अपने यहा इस किस्म का काम क्यों नहीं हो पाता है? अगर हम चाहते हैं कि हम भी इस प्रकार का कुछ काम कर सकें तो हमको इस न कर सकने का कारण ढूँढ़ निकालना होगा। जवाहरलाल जी भी चीन से लौटने के बाद ग्राम-उद्योग तथा गृह-उद्योग के लिए काफ़ी ज़ोर दे रहे हैं। जवाहरलाल के इस ओर ध्यान देने के बाद जो लोग पहले इन बातों को महज़ पागलपन समझते थे, अब इनके पक्ष मे सोचने लगे हैं। फिर भी अपने यहा यह विचार तक ही सीमित रहा। तुम तो अपने काम से विभिन्न प्रान्तों मे दौरा करती हो; सरकारी तथा गैरसरकारी सभी लोगों के संपर्क मे आती हो; क्या तुम बता सकती हो कि इसका कारण क्या है? लोग कहेंगे कि हमारे यहा गुलामी है इसलिए हम कुछ नही कर पाते हैं। यह सही है कि

हमारे सभी कष्टों की जड़ गुलामी है, लेकिन केवल यह कह देने से ही तो हमारी जिम्मेदारी खत्म नहीं हो जाती। इस तरह तो हम गुलामी हटाने की चेष्टा भी नही कर सकेंगे।

गहराई से विचार करने पर और अपने अनुभव से मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि हमारी असमर्थता का प्रधान कारण कार्यकर्त्ताओं की कमी है। दो साल पहले आगरा सेंट्रल जेल से मैने तुम्हें लिखा था कि हमारे यहा के पढे-लिखे नौजवान देहात मे जाना और रहना पसन्द नही करते। मैने उसका कारण भी बताया था। हम अपने यहा जब कोई स्थायी काम करना चाहते हैं तो योग्य कार्यकर्ताओं के अभाव से उसे नही कर पाते। चीन के औद्योगिक सहयोग के इतिहास और उसके कार्यक्रम को देखो तो मालूम होगा कि किस तरह सैकड़ों विज्ञान के विशेषज्ञ अपने आराम तथा अपनी आर्थिक सुविधाओं को त्याग कर, ग़रीबी का जीवन अपना कर औद्योगिक सहयोग-समितियों की स्थापना करने और उनका सचालन करने मे अपना अमूल्य जीवन उत्सर्ग किये हुए हैं। अपने यहा इस प्रकार से दारिद्र्य-व्रत ग्रहण कर जीवन को स्थायी कार्यक्रम मे उत्सर्ग कर देने की रुचि लोगों मे नहीं है। कदाचित् हमारे नौजवान चीनी नौजवानों की तरह राष्ट्रोत्थान के लिए व्याकुल नहीं हैं। लड़ाई ने उनकी आशावादिता को इतना ऊँचा उठा दिया है कि इस अनिवार्य आवश्यकता से हट कर उनका ध्यान और आगे की बातों पर चला गया है। इस तरह अपने यहा लोगों को इसका अवसर ही नहीं मिलता। तुम कहोगी, और यह सच भी है कि गत बीस-सालों मे हमारे यहां बहुत अधिक राष्ट्रीय चेतना पैदा हुई है। इस बीस साल के अर्से में बापू के नेतृत्व मे नौजवानों ने तीन बार देशमाता के चरणों पर अपने जीवन उत्सर्ग किये। अभी, इसी आन्दोलन में ही, ६ अगस्त को भारत के नेताओं की गिरफ्तारी के साथ ही देश

कार्यकर्ताओं का अभाव हमारी दुर्दशा का कारण है

के नौजवान विद्रोही हो गये। सैकड़ों और हज़ारों की संख्या में बहादुर नौजवानों ने खड़े होकर छाती पर गोलियाँ खाईं। हज़ारों नौजवानों ने लंबे अर्से तक सड़ने के लिए जेल जाना स्वीकार किया। इस किस्म के आत्म-बलिदान का यह उदाहरण भारत की गुलामी के इतिहास में अभूतपूर्व था। यह सब सही है। और आन्दोलन-काल में दो ढाई माह तक बाहर रह कर मैंने इन बातों को अपनी आँखों देखा है। फिर भी भारतवर्ष के इस विस्तृत क्षेत्र में ग्राम-उद्योग और ग्राम-उत्थान-सम्बन्धी काम के लिए कार्यकर्ताओं की समस्या जहाँ की तहाँ ही रह जाती है। क्षणिक जोश मे नौजवान आग में कूद पड़ते हैं, बंदूकों के सामने सीना तान देते हैं। सालों जेलों में हँसते-हँसते सड़ते हैं। लेकिन किसी स्थायी काम मे आजीवन कष्ट सहने को तैयार नहीं होते। गोली के सामने आत्म-बलिदान करके शहीद हो जाते हैं लेकिन बापू की भाषा मे जिंदा शहीद नहीं बन पाते। यदि कुछ नौजवानों के दिल मे इस प्रकार जिंदा शहीद बनने की उमंग उठती भी है तो वे अपने शहरी संस्कार तथा रहन-सहन के तर्ज को नही छोड़ पाते। इसके अलावा हमारे पढ़े-लिखे नौजवानों मे अपनी सभ्यता और संस्कृति मे कमी आ जाने का भय कूट कूटकर भरा हुआ है। वे जल्दी ही देहाती जीवन से ऊब जाते हैं। अतः चीन की गृह-उद्योग-समितियों के विवरण पढ़ते समय मुझे कुछ तकलीफ भी महसूस होती थी। पढ़ते समय मै यह सोचता रहता था कि हाय! हम ऐसा क्यों नही कर पाते?

गोली से शहीद होने वाले हैं पर जिंदा शहीद नहीं

मेरी इन बातों से शायद तुम्हे बुरा लग रहा होगा। तुम सोचती होगी कि यह कैसा आदमी है! इतने बलिदान से भी यह संतुष्ट नहीं है। किन्तु ऐसी बात नहीं। जब मै देखता था कि हज़ारों की तादाद मे विश्व-विद्यालय के नौजवान गोलियों की परवाह न करके जुलूस मे बढ़ जाते हैं तो मैं सिर्फ अवाक् ही नहीं रह जाता था बल्कि इनके

प्रति मेरे मन मे असीम श्रद्धा उत्पन्न होती थी। सोचता था कि शायद मै ऐसा नही कर सकता। मेरा कहना तो केवल इतना ही है कि भारत के साढे छः लाख गाँवों को पुनर्गठित करने के लिए जिस प्रकार के बलिदान की आवश्यकता है उसका हमारे यहाँ अभाव है। इस प्रकार के साधन मे हम आज चीन से कोसों पीछे हैं।

इन बातो को सोचकर मुझे परीशानी होती है, लेकिन तुम्हें मालूम ही है कि मै जन्म से ही आशावादी हूँ। जहाँ अपने निजी अनुभव से योग्य और भावनाशील कार्यकर्ताओं के अभाव के कारण परीशानी रहती है वहाँ यह सोचकर कि इस बार के राष्ट्रीय आन्दोलन मे नौजवानों ने जिस अद्भुत जोश तथा आत्म बलिदान का परिचय दिया है उसके कारण स्थिर और स्थायी तरीके से राष्ट्रोत्थान के कार्य मे लगने के लिए कम से कम भविष्य मे नौजवानों की कमी न रहेगी, दिल को तसल्ली होती है। इतना विराट् बलिदान व्यर्थ तो जा ही नहीं सकता। अगर मेरी यह आशा, जिसके लिए शक की गुञ्जाइश कम है, ठीक निकली, तो भविष्य मे हम देहात मे जिन उद्योग-समितियो आदि का सघटन कर सकेगे, उनकी बुनियाद कदाचित् चीन से अधिक मज़बूत और टिकाऊ होगी, क्योंकि जहा कुछ मामलों मे चीन हमसे काफी आगे है, वहा कुछ और विषयों मे हमारा दृष्टिकोण चीनियों से बहुत अधिक साफ है।

चीन की उद्योग-सहयोग-समितियों के विस्तार तथा सफलता को देख कर हमें आश्चर्य होता है। वहा के नौजवानों का जोश देख कर कदाचित् हमे थोड़ी ईर्ष्या भी होती है; लेकिन जब हम उनकी कार्य-शैली तथा कार्यक्रम के बुनियादी सिद्धांतों को देखते हैं तो उनके सारे कार्यक्रम के लिए कुछ डर भी लगता है।

जब से डाक्टर सनयातसेन के नेतृत्व मे राष्ट्रीय चेतना का आविर्भाव हुआ, तभी से चीन मे उद्योगों का विकास होने लगा। लेकिन उस विकास का स्वरूप युरोप और अमेरिका के अनुसार हो

रहा है। चीन के लिए ऐसा करना स्वाभाविक था। उसके पड़ोस में ही जापान ने युरोप की नकल करके इतनी उन्नति कर ली थी कि उसके लिए दूसरी बात सोचना आसान न था। चीन को अमेरिका से काफी मदद मिलने के कारण उस पर अमेरिकन असर पड़ना भी स्वाभाविक ही था।

अतः जब चीन की राष्ट्र-चेतना ने उसे सर्वतोमुखी विकास की ओर बढाना आरंभ किया तो आर्थिक स्वावलबन की ओर सब से पहले ध्यान जाना स्वाभाविक ही था। नतीजा यह हुआ कि चीन मे थोड़े ही दिनों में काफी कल-कारख़ाने बन गये। इसी बीच चीन पर जापान का हमला हुआ। फिर तो लड़ाई के कारण चीन को तेज़ी से स्वावलंबन की ओर बढ़ना पड़ा और चार-पाच साल मे इस दिशा में जितनी अलौकिक उन्नति हुई, उसका हाल मै तुम लोगों को क्या बताऊँ? इसका तुमने मुझसे अधिक अध्ययन किया है। लड़ाई के कारण किस तरह उनके कारख़ाने जापानी बमों का निशाना बनते रहे और किस तरह ध्वंस के कारण उन कारख़ानों को अनेक कठिनाइयो के बावजूद असाधारण तेज़ी से सुदूर पश्चिमी प्रान्तों मे हटना पड़ा, इसकी कहानी किसे मालूम नहीं? ऐसे आपत्तिकाल मे चीन को अपने पुराने ग्रामोद्योग की बात याद आई। उसने देखा कि अगर इस समय गाव-गाव मे सहयोग-समितियो-द्वारा गृह-उद्योगों का संघटन किया जाय तो बेकार जनता को काम मे लगाया जा सकता है और हवाई हमले से बचा कर, छोटी-छोटी झोपड़ियों मे बाट कर युद्ध के संकट-काल के लिए इतने विस्तृत क्षेत्र मे उत्पत्ति का काम हो सकता है कि जनता के पोषण के साथ ही ज़रूरत पड़ने पर इन छोटे कारख़ानों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से हटाया भी जा सकता है। इन बातों का हाल भी तुम्हें मुझसे अधिक मालूम होगा, अतः इस पत्र मे उसका ज़िक्र करना निरर्थक है। हमारे देश मे जो लोग चर्खे और ग्रामोद्योग की खिल्ली उड़ाते हैं, उनसे कहो

कि वे चीन की ओर नज़र डालें। यदि ग्रामोद्योग न होता तो आज के समरकालीन महा-संकट के समय उनकी क्या दशा होती? यह ग्राम-उद्योग ही आज उनका सहारा हो रहा है। इस घटना से मानव-समाज समझ ले कि ग्रामोद्योग से उसका क्या सम्बन्ध है। समय पर काम आने वाला ही सच्चा मित्र होता है। आज की परवशता मे उन्हीं छोटे-छोटे उद्योगों ने साथ दिया।

चीन के ग्रामोद्योग की सफलता का हमारे देश के लोगों पर जो असर पड़ा, चीन से लौटकर जिस तरह जवाहरलाल जी ग्रामोद्योगो के प्रसार के पक्षपाती हो गये, वह तुम्हे मालूम ही है। तुम्हें आश्चर्य भी होता होगा कि जब मै जानता ही हूँ कि तुम्हे ये सब बाते मालूम हैं तो फिर बेकार इतना लिख कर समय, कागज़ और दिमाग़ क्यों ख़र्च कर रहा हूँ? बात यह है कि जेल मे समय की क्या कमी? काग़ज लगता ही कितना है? और दिमाग? वह अपने पास कोई उत्तम कोटि का होता तो बचाने का भी प्रयत्न करता। जब इतने अर्से के बाद लिखने बैठा हूँ तो सम्हाल कर कहाँ तक लिखूँ? जो भी बात दिमाग़ मे आती है लिख डालता हूँ। तुम लोग हो काम-काजी; लबे पत्र से शायद उकता जाती होगी। लेकिन यहाँ जेल मे पत्र जितना ही लबा लिखा जाय उतना ही अच्छा क्योंकि उतना ही समय कटता है। खैर!

यह ठीक है कि चीन मे जो कुछ हो रहा है, उसका हाल हम सब को मालूम है और भारत के लिए वर्तमान चीन एक महान शिक्षा-भूमि बन गया है। फिर भी मै कह रहा था कि मुझे वहा के इस कार्यक्रम के भविष्य के संबंध मे आशंका हो रही है। कारण यह है कि चीन की इन सारी चेष्टाओं के पीछे जो प्रेरणा है वह है लड़ाई की मजबूरी, साधन-हीनता के साथ चरम अभाव की व्याकुलता और उस व्याकुलता से उद्भूत ग्राम-उद्योग की व्यवस्था। उस प्रेरणा के पीछे ग्राम-उद्योग की बुनियाद पर भावी समाज-व्यवस्था की कोई निश्चित विचार-

धारा नहीं मालूम पड़ती। अतः मुझे इन ग्राम-उद्योग संघटनों के स्थायित्व मे काफी शक मालूम होता है। मुझे ऐसा

चीनी ग्रामोद्योगों के पीछे किसी निश्चित विचार-धारा का अभाव

लगता है कि जिस तरह अततायी के हवाई हमलों से बड़े-बड़े केन्द्रित कारखाने ध्वस्त हो जाते हैं, उसी तरह जब यह लड़ाई का ज़माना समाप्त हो जायगा और फिर पश्चिमी केन्द्रीय उद्योगवाद का हमला चीन की जनता की बुद्धि और मन पर होगा तो यह मजबूरी से संभूत ग्राम-व्यवस्था उसके सामने टिक न सकेगी। जब आज का सारा संगठन विशेषतया इंग्लैण्ड और अमेरिका की मदद से चल रहा है तो शान्ति के बाद के संगठन में भी चीन पर उनका असर पड़ना अवश्यंभावी है। अगर बाद को चीन के विचार मे युरोप का केन्द्रीय उद्योगवाद घर कर गया, जिसकी मुझे पूरी आशंका है, तो फिर चीन के सामने दूसरी समस्या भी खड़ी हो सकती है।

केन्द्रित उद्योग के आधार पर आर्थिक योजना की सफलता के लिए चीन को शुरू मे ही अधिक धन की आवश्यकता होगी। यह धन आज चीन के पास मौजूद नहीं हैं, अतः स्वभावतः चीन मित्रता के नाते अमेरिका और इंग्लैंड से क़र्ज लेने के लिए विवश हो जायगा। इंग्लैंड और अमेरिका जैसे साम्राज्यवादी देश ऐसे अवसर पर कब चूकने वाले हैं? वे तो चीन के राष्ट्र-निर्माण के काम मे तन-मन-धन से लग ही जायँगे और चीन ने जहाँ एक वार पश्चिमी मित्रों के क़र्ज़ की पूँजी से मशीनों-द्वारा आर्थिक संघटन आरंभ किया वही उसको उस क़र्ज़ के दलदल मे इतना फँस जाना पड़ेगा कि फिर उससे अपने को मुक्त करना आसान न रह जायगा। अमेरिका और इंग्लैड आदि पूँजीपति देशो को भविष्य मे सैनिक साम्राज्य के वजाय इस प्रकार का आर्थिक-साम्राज्य ही अधिक इष्ट होगा, क्योंकि अब सैनिक साम्राज्यवाद पुराना और

आर्थिक साम्राज्यवाद से अधिक झंझट की चीज़ हो गया है। सैनिक साम्राज्यवाद मे जहाँ लाभ के साथ-साथ राज्य-व्यवस्था की ज़िम्मेदारी उठानी पड़ती थी वहा नये किस्म के आर्थिक साम्राज्यवाद मे केवल लाभ ही लाभ रहेगा। मुझे ऐसा लगता है कि जिस तरह पुराने ज़माने मे जब इंग्लेंड को गुलाम मज़दूर से आज़ाद मज़दूर सस्ता मालूम होने लगा, तो उसने बड़े ऊँचे-ऊँचे सिद्धान्तों के नाम पर गुलाम-प्रथा हटानी शुरू की, उसी प्रकार भविष्य मे सैनिक साम्राज्य से आर्थिक साम्राज्य सस्ता पड़ने पर 'आत्म-निर्णय' का नारा इंग्लैंड और अमेरिका की ज़ुबान पर सदा विराजमान रहेगा। चीन के भी इसी नारे के माया-जाल मे फँसने का मुझे डर है। इसलिए जहा चीन के जोश, उसके सैकड़ों नौजवानों के व्यक्तिगत त्याग, उसकी कार्य-पद्धति और उद्यमशीलता आदि बातों को देखकर हम भारत-वासियों को लाभ उठाना चाहिए, वहा उसके खतरों पर भी ग़ौर करना चाहिए।

बापू की विचार-धारा

तुम कहोगी कि भारत भी तो वही ग्राम-उद्योग चलाने की चेष्टा कर रहा है; यहा भी तो लड़ाई के बाद वही परिस्थिति आ सकती है जो चीन मे आयेगी फिर भारत मे और चीन मे फर्क़ क्या है? वह फर्क़ यह है कि भारत मे ग्रामोद्योग का जो क्रम चला उसकी बुनियादी प्रेरणा लड़ाई की मजबूरी नहीं थी। उसका सूत्रपात लड़ाई के बहुत पहले बापू जी ने इस देश मे किया। उनके चर्खे और ग्रामोद्योग के पीछे एक विशिष्ट विचार-धारा है। उसके पीछे ग्राम-स्वावलम्बन के आधार पर भावी समाज-व्यवस्था की निश्चित योजना है। हमारे उन देशवासियों से जिनमे चीन की औद्योगिक सहयोग-व्यवस्था से हमारी चर्खे और ग्रामोद्योग की चेष्टा की तुलना करने का आजकल रिवाज सा हो गया है, मेरा नम्र-निवेदन है कि वे ज़रा गहराई से इस अन्तर पर भी विचार करें। और हमारे चर्खे और ग्राम-उद्योगों की

मूलभूत बापू जी की विचार-धारा को शान्ति-पूर्वक समझने की कोशिश करे ।

बापू जी ने तो अपने विचारों का स्पष्टीकरण उसी समय कर दिया था, जब उन्होंने "हिन्द-स्वराज्य" नाम की पुस्तक लिखी थी । फिर उन्होंने भारत मे "हिन्द-स्वराज्य" का व्यावहारिक रूप प्रकट किया । भारत की आजादी के लिए अहिसात्मक असहयोग आन्दोलन चलाया । उस अन्दोलन का केन्द्र-विन्दु चर्ख़ा रक्खा । तब से २५ वर्ष हो गये, चर्ख़े की रट लगाते वे कभी नहीं थकते; क्योंकि बापू के लिए स्वराज्य की चेष्टा ससार मे सत्य और अहिंसा की राज्य-व्यवस्था कायम करने की चेष्टा मात्र है । येन केन प्रकारेण अंग्रेज़ चले जायॅ और हम आज़ाद हो जायॅ; यह उनका ध्येय नही है । वे तो देश को गुलामी के बंधन से मुक्त करके भारत मे और भारत के द्वारा संसार भर मे उस शान्ति-मय तथा अहिंसात्मक समाज की स्थापना करना चाहते हैं जिसका वे स्वप्न देखते हैं और उसकी स्थापना वे चर्ख़े और ग्रामोद्योग के द्वारा ही करना चाहते हैं । फलतः उनके लिए चर्ख़ा और ग्रामोद्योग जहा आज जन-साधारण को स्वराज्य आन्दोलन के लिए जाग्रत और संघटित करने के मूल साधन हैं, वहाँ वे उस समाज की स्थापना के भी साधन हैं जो हिसा और शोपण से मुक्त होकर मानवता के वास्तविक कल्याण और उसकी सच्ची स्वतत्रता का प्रवर्तक और परिपोषक हो । इसी कारण और इसी उद्देश्य को सम्मुख रखकर, उनकी प्रेरणा के फलस्वरूप भारतीय राष्ट्र-ध्वजा पर चर्ख़े का चित्र अकित किया गया है, जो इस वात का प्रदर्शक है कि भारत उस नई समाज-व्यवस्था की स्थापना के प्रयत्न में सलग्न है ।

ससार आज जिस पूजीवाद की आग मे जल रहा है वापू का चर्ख़ा उसी के विरुद्ध मौलिक विद्रोह का प्रतीक है । युरोप मे मानव की स्वतंत्रता, समानता और वन्धुत्व का सिद्धान्त उदीयमान हुआ । और उनके आधार पर लोकतंत्र की कल्पना की गई । लोकतंत्र मे व्यक्ति-

मात्र की स्वतंत्रता और समानता स्वीकार की गई और केन्द्रीय गुट, दल या वर्ग की प्रभुता, शासन तथा हित के स्थान पर समाज के अधिक से अधिक लोगो के हित को नैतिक आदर्श के रूप मे प्रतिष्ठित किया गया। लोकतंत्र के सिद्धान्त का यह उदय अहिंसा परक वृत्ति का ही प्रदर्शन था। मानव-सभ्यता के इतिहास को देखने से यह मालूम होता है कि मनुष्य समाज आरम्भ से ही हिंसा और अशान्ति के स्थान पर शान्ति और संतुलन की प्रतिष्ठा की चेष्टा करता रहा है। इस

मानव प्रगति के मूल में अहिंसा है

चेष्टा के सिलसिले मे भिन्न भिन्न देशों ने अपनी भौगोलिक स्थिति, काल और परिस्थिति के अनुसार विभिन्न प्रकार के प्रयोग किये। उन्ही प्रयोगो के फल-स्वरूप समाज ने शासन-सत्ता की कल्पना जन-तंत्र के रूप मे की और जीवन-सम्बन्धी समस्त प्रश्नों के निवटारे के लिए सिर फोड़ने मे नही वल्कि सिर गिनने और पारस्परिक हित-सामंजस्य मे मानवता की प्रगति समझी क्योंकि सभ्यता के इतिहास मे हिंसा और पशुवल के स्थान पर मनुष्य के नैतिक और नैसर्गिक अधिकारों की स्थापना को न्याय्य माना गया है।

मानव-इतिहास के आदि काल मे जब मनुष्य-जीवन में कोई संगठन या व्यवस्था नही थी और संसार में मत्स्य-न्याय का ही बोल-बाला था तब स्वभावतः हिंसा तथा बर्बरता के कारण मनुष्य-जीवन की अनिश्चितता से परीशान होकर 'सरदार प्रथा' तथा राज-संस्था की स्थापना की गई होगी। यह व्यवस्था भी शातिमय समाज व्यवस्था के प्रयास रूप में ही रही होगी। इससे मनुष्य को कुछ शान्ति भी

शासन सत्ता का केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण

मिली होगी। फिर समाज ने व्यवस्था के नाम पर शासन किसी केन्द्रीय तत्र या व्यक्ति के हाथ में सौप दिया होगा। इस प्रकार संसार मे केन्द्र-वाद की सृष्टि हुई। मनुष्य स्वभावतः ही शान्तिप्रिय जीव है। केन्द्र-व्यवस्था की शृंखला को देख कर वह

निश्चिन्त हुआ। शासक वर्ग इस निश्चिन्तता का फ़ायदा उठाने लगे और क्रमशः यह केन्द्रवाद, शासन-क्षेत्र की पुंजीभूत शक्ति के द्वारा आगे बढ़ कर आर्थिक क्षेत्र में भी फैल गया और आर्थिक क्षेत्र में पूँजीवाद की सृष्टि हुई। फिर तो केन्द्र-वाद पूँजीवाद के रूप में मनुष्य की सारी आवश्यकताओं के लिए केन्द्रीय वर्ग का मुहताज हो गया। नतीजा यह हुआ कि मनुष्य स्वतन्त्र नहीं रह गया। फलतः मनुष्य ने हिंसा, अशान्ति और अनिश्चितता से बचने के लिए केन्द्र-व्यवस्था की रचना की थी। वही व्यवस्था वर्ग-शासन और पूँजीवाद के रूप मे मनुष्य को फिर से हिंसा और शोषण का शिकार बनाने का साधन हो गई! मानव समाज ने इस बात को देखा और तब उसने लोकतन्त्र के आविष्कार से शासन-सत्ता को विकेन्द्रित करके व्यवस्थित स्वतत्रता को प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की। शासन-सत्ता के विकेन्द्रित होने के साथ ही आर्थिक क्षेत्र में स्वावलम्बन तथा स्वतंत्रता का कायम होना सहज तथा स्वाभाविक ही था; लेकिन दुर्भाग्य-वश ऐसा नहीं हो सका।

जिस समय जनतंत्र के रूप मे अहिंसात्मक वृत्ति का क्रमिक-विकास हो रहा था, कि उसी समय भौतिक विज्ञान की कृपा से वाष्प-यंत्र का आविष्कार हुआ। इस आविष्कार ने उत्पत्ति के तरीके और साधनों में अकल्पित परिवर्तन कर दिया। युरोप में औद्योगिक क्रान्ति हुई और पूँजीवाद ने अपनी नीव मज़बूत कर ली। अब तक केन्द्रवाद ने जिस पूंजीवाद की सृष्टि की थी उसकी सत्ता केवल व्यवस्था पर ही सीमित थी; उत्पादन के साधन फिर भी वहुत-कुछ उत्पादक के हाथ मे थे। अगर वही उत्पत्ति का तरीका उसी तरह बना रहता तो जनतंत्र के वायु-मडल के विकास के साथ-साथ उत्पादक वर्ग अपने-अपने साधन और कला के द्वारा स्वावलम्बन के आधार पर स्वतंत्र हो जाता। लेकिन वाष्प-यंत्र के आविष्कार के साथ-साथ पूँजीवाद को उत्पत्ति

उत्पादन के साधनों पर पूँजीवाद का प्रभुत्व

के साधनों को इस प्रकार केन्द्रीभूत करने का मौका मिला कि क्रमशः उसने उत्पादकों को उत्पादन के साधन और कला के स्वामित्व से वंचित कर दिया और जिस प्रकार शासन-सत्ता-द्वारा जनता का निःशस्त्रीकरण हो जाने से जन-समूह को सत्ता के चंगुल मे बुरी तरह फँस जाना पड़ता है उसी तरह साधन और कला के अधिकार से वञ्चित होकर जनता के लिए केन्द्रित सत्ता से छुटकारा पाना कठिन हो गया। फिर तो सारी व्यवस्था ज़ोरों से उस केन्द्रीकरण की ओर बढ़ने लगी और जनतंत्र की कल्पना कल्पना-मात्र ही रह गई। उत्पादन के केन्द्रीकरण ने यह आवश्यक कर दिया कि समाज की सारी शक्ति केन्द्रित की जाय; क्योंकि जब समस्त जन-समूह अपने जीवन-धारण की आवश्यकताओं के लिए किसी केन्द्रित व्यवस्था के मुहताज होते हैं तो स्वभावतः समाज उसी केन्द्र का पूर्ण रूप से आश्रित हो जाता है। परिणाम यह हुआ कि लोकतंत्र के रूप मे जिस मानव-स्वतंत्रता ने जन्म ग्रहण किया था उसकी प्रगति कुंठित हो गई। वर्ग की प्रभुता वर्ग-शासन और वर्ग-हित मुख्य हो गया जिस की स्थापना और रक्षा के लिए पशुबल आवश्यक हो गया। सारी शक्ति, सारे वैभव और उनकी प्राप्ति के साधनों का एक वर्ग के हाथ मे केन्द्रित होना, सार्वजनिक और सामूहिक स्वतंत्रता और अधिकार के निर्दलन मे ही सभव था।

इस तरह मनुष्य-समाज की सभ्यता के विकास का इतिहास बहुत कुछ उत्पादन के तरीके का इतिहास है। उत्पादन की पद्धतियों मे होने वाले परिवर्तनों के साथ-साथ समाज के संघटन मे परिवर्तन होता रहा। यही कारण है कि जैसे-जैसे समाज को उत्पादन की प्रणाली मे केन्द्रीकरण होता गया वैसे-वैसे शासन की व्यवस्था मे भी केन्द्रीकरण होता गया और क्रमशः सारे समाजतन्त्र के केन्द्रित हो जाने से आज ससार भर मे तानाशाही का वोलवाला हो गया है। वापू जी ने मानव-समाज की इस गति को देखा, उन्होंने देखा कि शासन-तत्र

जितना ही केन्द्रित हो रहा है उतना ही समाज का जीवन भी केन्द्रीभूत होता जा रहा है और मनुष्य की स्वतत्रता का यह लोप तथा उसके निर्दलन एवं शोषण की यह मात्रा-वृद्धि उसी केंद्रीकरण का प्रतिफल है। ऐसी स्थिति प्रकृति-विरुद्ध होने के कारण उसे स्थायी बनाये रखने मे अधिकाधिक हिसा और पशुबल का आश्रय लिया जाने लगा। इस दशा से मनुष्य का उद्धार करने के लिए बापू जी ने यही उपाय सोचा कि जिस मूल से यह अनर्थ का सिलसिला जारी हुआ है और इसमें वृद्धि होती गई है उसी का सर्वथा निराकरण कर दिया जाय। जिस दानव ने आकर जनतंत्र को शैशवावस्था में ही गला घोंट कर मार दिया उस दानव का नाश हुए बिना स्वतंत्रता की स्थापना होना असंभव है। वाष्य-यंत्र की उत्पादन-प्रणाली से उद्भूत केन्द्रीकरण को विघटित किये विना शासन-तंत्र की केन्द्रीभूत शक्ति न हटेगी और जब तक ऐसा नही होता तब तक न हिंसा का लोप होगा, न मनुष्य शोषण तथा पराधीनता से मुक्त होगा। फलतः यह आवश्यक है कि उत्पादन की पद्धति का विकेन्द्रीकरण किया जाय और उसके आधार पर ऐसे स्वावलम्बी समाज की रचना की जाय जिससे उत्पादन के साधन उत्पादक के हाथ मे रहे और उत्पन्न पदार्थ उत्पादक की संपत्ति हो। न प्रणाली केन्द्रित हो और न सारी संपत्ति थोड़े से लोगों के हाथ मे पड़ कर पूजीवादी शोषण जारी रखे। मनुष्य अपने जीवन की आवश्यक वस्तुओं के लिए यथासंभव किसी के परवश न होकर स्वतंत्र रहे। ऐसे विकेन्द्रित आर्थिक समाज मे वर्गों के हित परिवर्तित हो जायँगे। फलतः न केन्द्रीभूत शासन-तत्र की आवश्यकता रहेगी न हिसा की। केन्द्रतंत्र के विकेन्द्रीकरण के विना मनुष्य की स्वतंत्रता का अक्षुण्ण रहना और उसकी प्रगति सभव नहीं है, क्योंकि उत्पादन और उसके साथ शासन केन्द्रित होने का मतलब शक्ति को केन्द्रित करना है। शक्ति को केन्द्रित करने के बाद अगर किसी किस्म के वैधानिक आधार पर कानूनी हक से संपत्ति पर जनसाधारण का स्वामित्व स्थापित

भी किया जाय तो वैसा स्वामित्व सांकेतिक होगा, वास्तविक नही। मनुष्य स्वभाव मे अनुकूल परिस्थिति पर पहुँचते ही प्रभुत्व करने की इच्छा बलवती होती है। इसी प्रवृत्ति के कारण उत्पादन के साधन के वैधानिक मालिक जब अपनी केन्द्रित सपत्ति के इन्तज़ाम के लिए व्यवस्थापक वर्ग को कायम करेगे तब वही वर्ग अपने मालिक प्रजा वर्ग पर प्रभुत्व करने लगेगा। इस प्रकार जीवन-यापन के लिए आवश्यक पदार्थों के उत्पादन के तरीकों को केन्द्रित रखकर मिलकियत की धारणा मे सुधार करने पर उत्पादन के साधनों पर पूँजीपति के कब्जा के स्थान पर व्यवस्थापक वर्ग का कब्जा हो जायगा। फिर साधनों पर कब्जा पाने की स्थिति पर आकर वह अपने स्वभाव के कारण प्रजा पर प्रभुत्व जमाना शुरू कर देगा। तर्क किया जा सकता है कि जिस प्रकार मनुष्य मे प्रभुत्व करने की वृत्ति बलवती होती है उसी प्रकार उसमे स्वतन्त्र रहने की वृत्ति भी तो बलवती होती है, और जिस समय व्यवस्थापक वर्ग प्रभुत्व करने लगेगा उस समय प्रजा स्वतन्त्र रहने के लिए उनसे सघर्ष करेगी। मै इस बात को मानता हूँ। लेकिन प्रभुत्व करने की वृत्ति, स्वतन्त्र रहने की वृत्ति आदि सभी वृत्तियों से बलवती वृत्ति जिन्दा रहने की होती है। जब जिन्दा रहने के साधन केन्द्रीय व्यवस्थापक वर्ग के कब्जे मे होंगे तो प्रजा को मजबूर होकर प्रभुत्व से समझौता करके किसी किस्म की मनबहलाव की स्वतन्त्रता मान कर जिन्दा रहने के साधनों को प्राप्त करना पड़ेगा और इस प्रकार की वैधानिक स्वतन्त्रता नाम मात्र ही रह जायगी। इसीलिए जब तक उत्पादन के तरीकों मे मौलिक परिवर्तन नही होगा तब तक लोकतंत्र, प्रजा की स्वतन्त्रता आदि बातें कल्पना मात्र ही रह जायँगी। फिर जब उत्पादन के साधन और उसका तरीका विकेन्द्रित कर दिये जायँगे और इस प्रकार जब उत्पादित सम्पत्ति का वास्तविक मालिक स्वभावतः उत्पादक खुद होगा तो पूँजी का भी उचित बँटवारा अपने-आप हो जायगा। इसीलिए बापू जी का कहना

है कि "भारतवर्ष जिस साम्यवाद को पचा सकता है वह साम्यवाद तो चर्खे की गूँज में गूँज रहा है।"

आज हम चर्खे और ग्रामोद्योग का जो कार्य-क्रम चला रहे हैं, वह कार्य-क्रम बापू जी की इसी कल्पना का प्रतिनिधित्व कर रहा है। वह आज के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक केन्द्रवाद के विरुद्ध विद्रोह की सजीव मूर्ति है, जो न केवल उत्पादन और शासन-तंत्र का विकेन्द्रीकरण करके नये आधारों पर नये समाज की रचना की ओर संकेत करता है बल्कि उसके मार्ग को प्रशस्त करता है। हमारे चर्खे और ग्रामोद्योग के पीछे बापू जी की यह सारी विचार-धारा दौड़ती है। (चीन के आज के कार्य-क्रम के पीछे इस प्रकार की कोई निश्चित सामाजिक तथा आर्थिक विचार-धारा की बुनियाद नहीं है। इसलिए मैं कह रहा था कि चीन के ग्राम-उद्योग का कार्यक्रम अपूर्व और प्रशंसनीय होते हुए भी, उसके उज्ज्वल भविष्य के सम्बन्ध में मुझे आशंका है।) हममें से जो लोग ग्राम-उद्योग के पक्षपाती हैं, उनको बापू जी की उपर्युक्त विचार-धारा को समझ कर सारे कार्यक्रम और योजना की बुनियादी प्रेरणा उसी विचार-धारा से लेनी होगी। अपनी कार्य-पद्धति तथा दृष्टिकोण को उसी सामाजिक सिद्धान्त की पूर्ति के अनुकूल बनाना होगा। भविष्य में हमको समूची ग्राम-सुधार योजना भी इसी आधार पर बनानी होगी। अगर ग्राम-उद्योग का काम केन्द्रीय उद्योग के साथ मिश्रित करके मजबूरी की परिस्थिति में केवल उत्पादन का परिमाण बढ़ाने की नीयत से किया जायगा तो न केवल यह कार्य-क्रम व्यर्थ ही होगा बल्कि राष्ट्र की शक्ति और सामर्थ्य का अपव्यय भी होगा; क्योंकि जब एक ही वस्तु के उत्पादन के लिए दोनों तरीकों से काम चलता रहेगा तो प्रथमतः जन-साधारण के सामने कोई निश्चित सामाजिक और आर्थिक सिद्धान्त नहीं रह पायेगा और दोनों तरीकों से उत्पादित माल के बँटवारे में निरर्थक चढा-ऊपरी होती रहेगी। अतः भारत के लिए यही श्रेयस्कर होगा कि हम इधर-उधर

की अस्थायी कल्पनाओं को छोड़कर बापू जी के विचारों को सामने रख कर ही अपनी योजनाएँ बनाये और उसी के अनुसार काम करे।

लेकिन मै तो जेल मे अपने दैनिक कार्यक्रम की चर्चा कर रहा था; किताबों की बात कर रहा था। बीच मे बहक कर व्याख्यान देने लगा। तुम इन बातों पर हँसना नहीं। जेल मे रहने से लोग शायद कुछ भावुक हो जाते हैं। इसलिए मैं भी शायद उसी का शिकार बन गया होऊँ।

जब से हमारे समस्त राष्ट्रीय जीवन पर एकाएक सरकारी हमला हुआ, तब से तुम्हारा हाल कुछ भी मालूम नहीं हुआ। सुना था विनोबा जी का नालवाड़ो ज़ब्त है। कौन कौन काम चल रहा है और कौन कौन बन्द है? लिखना, महिलाश्रम का क्या हाल है? कृष्णदास भाई का खादी-विद्यालय चल रहा है या बन्द है? मगनवाड़ी और गोशाला आदि सबका हाल देना। तुम लोगों का बुनियादी तालीम का कुछ प्रयोग चल रहा है या बन्द है? सुना था, श्री आर्यनायकम् बीमार थे, उनका क्या हाल है? बच्ची मीतू की क्या ख़बर है? वह तो बहुत बड़ी हो गई होगी।

मेरा स्वास्थ्य ठीक है। आशा है वहाँ आनन्द है। सब भाई-बहिनो को मेरा नमस्कार। बच्चों को प्यार।

---

[२]

रणीवाँ के ग्राम-सुधार का अनुभव

१५ नवम्बर, १९४३

तुम्हारा पत्र मिला। वहाँ का समाचार मालूम हुआ। श्री आर्य-नायकम् अभी तक अच्छे नही हुए, यह जान कर चिन्ता हुई। आशा है कि होशंगाबाद के मित्र की सुश्रूषा से वे जल्द, अच्छे होकर, काम करने लगेंगे। तुम लोग तालीमी-संघ की ओर से प्रयोगार्थ एक आदर्श

विद्यालय भी चला रहे हो, यह जान कर बहुत खुशी हुई। इस विषय मे मेरी राय तुम्हें मालूम ही है। पहले पहल सन् ३६ मे पूना मे जब प्रथम बुनियादी-शिक्षा परिषद्-की बैठक हो रही थी, उसी समय मुझे ऐसा लगा कि यह जो सरकारी महकमे की मार्फत काम चल रहा है, वह न तो स्थायी होने वाला है और न संघ के सिद्धान्त के अनुसार पूर्ण-रूप से प्रयोग मे आने वाला ही है। तुम्हे याद होगा कि उस समय मैने वहाँ उपस्थित राष्ट्रीय संस्थाओं के प्रतिनिधियो की एक बैठक करने के लिए कितना ज़ोर दिया था। तुम लोगों की कृपा से जब बैठक बुलाई गई तो मै इसी बात पर ज़ोर दे रहा था कि संघ की ओर से एक बुनियादी विद्यालय और एक शिक्षक ट्रेनिंग-स्कूल आदर्श तरीके से चलाया जाय। क्योंकि मेरा विश्वास था कि कोई भी नवीन और क्रान्तिकारी प्रयोग न सरकारी महकमों की मार्फत चल सकता है और न उसे पंडितों-द्वारा ही चलाया जा सकता है। उसे तो क्रान्तिकारी व्यक्ति ही, जिन्हे कार्यक्रम तथा उसके बुनियादी सिद्धान्त पर विश्वास हो, चला सकते हैं। चाहे उनकी बौद्धिक योग्यता कुछ कम ही क्यों न हो। दादा (आचार्य कृपालनी) ने उस सभा के आख़िरी व्याख्यान में जो यह कहा था कि अवतारी पुरुष-द्वारा बताये आदर्श और सिद्धान्तों को तो विश्वास करने वाले मोची, मल्लाह आदि साधारण लोग ही फैलाते हैं, वह अक्षरशः सत्य है। उस बैठक मे श्री आर्यनायकम्, काका साहब कालेलकर, आदि तालीमी संघ के सदस्य-गण जब तुमको इस काम के लिए अवकाश देने को तैयार हो गये तो मुझको बहुत खुशी हुई थी। लेकिन खेद की बात यह हुई कि उस दिन का प्रस्ताव कार्य-रूप मे परिणित नही हुआ। अतः तुम्हारे पत्र से यह जान कर कि अब तुम लोग अपने संघ की ओर से विद्यालय चला रहे हो, मेरी खुशी की सीमा न रहना स्वाभाविक ही है। लेकिन मराठी भाषा में जो प्रयोग कर रहे हो उससे सबको फायदा न मिलेगा। अतः हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए युक्तप्रान्त या विहार मे

कही तुम लोगों को अपना काम करना होगा। आशा है, धीरे-धीरे यह काम भी हो ही जायगा।

तुम मेरे पिछले लंबे पत्र से परीशान न होकर खुश हुई, यह जाना। तुम चाहती हो कि ग्राम-सुधार-सम्बन्धी अपनी विचारधारा तुम्हे बराबर लिखता रहूँ। लेकिन दो साल पहले आगरा जेल से जो चिट्ठियाँ लिखी गई थी, उनमे ग्राम-सेवा के सम्बन्ध मे मै अपना अनुभव करीब-करीब लिख ही चुका हूँ। उसके बाद मुझे बहुत कम समय प्रयोग करने के लिए मिला। रिहाई के ६ माह बाद ही तो फिर पकड़ लिया गया। यहाँ से उस ६ माह का अनुभव, तथा उस अनुभव और कल्पना के अनुसार भावी योजना की रूपरेखा के सम्बन्ध मे कुछ लिख तो सकता हूँ; लेकिन उस बार की तरह इस बार सहूलियतें प्राप्त नहीं हैं। उस बार सप्ताह मे दो पत्र लिख सकता था तो इस बार महीने मे एक ही पत्र लिखने की इजाज़त है। फिर भी जहाँ तक मुझसे बन पड़ेगा इस विषय मे तुम्हारा अनुरोध मान कर लिखने की कोशिश करूँगा। जितना भेज सकूगा उतना भेज दूँगा; बाकी कभी बाहर आकर एक साथ ही दे दूँगा। उसमे से तुम लोग अगर काम के लायक कुछ मसाला पा सको तो बहुत अच्छी बात है।

मै पहले ही लिख चुका हूँ कि किस तरह मै फैज़ाबाद ज़िले मे आश्रम के द्वारा तथा सरकारी ग्राम-सुधार-विभाग द्वारा ग्राम-सुधार योजनाओ का प्रयोग करता रहा और उस ओर जब कुछ ख़ास तरीके के काम का सूत्रपात करने जा ही रहा था कि नज़रबन्द करके जेल भेज दिया गया लेकिन जेल जाना बुरा न हुआ। पिछले बीस साल मे मैने ग्राम-समस्या के सम्बन्ध मे जो कुछ देखा, किया या समझा, उस पर ग़ौर करने का मौका तो पहले पहल वहीं मिला। विचार करने पर बहुत सी बाते, जो अब तक धूमिल थी, साफ़ होती गई और भविष्य के लिए निश्चित सिद्धान्त के आधार पर योजनाओं की कल्पना करना आसान हो गया। चर्खे-द्वारा कत्तिनों की सर्वांगीण उन्नति कर के

उन्हीं की मार्फत ग्राम-उत्थान की सूझ उसी समय हो सकी थी। उसका आभास मैने उसी समय "हम आठ आना कैसे दे" शीर्षक योजना के साथ बापू जी को भेजा था। वह सूचना तुमने 'खादी-जगत' में देखी होगी। वहीं बैठ कर तुमको पत्र लिखने के बहाने अपने पिछले अनुभवो का सिहावलोकन भी कर सका था। यह सब भी फायदे मे ही रहा। इस प्रकार जेलों मे दस माह बिताने के बाद जनवरी १९४२ मे रिहा होकर रणीवाँ आ गया। पहिले दो-तीन महीने इधर-उधर जाने में और परिस्थिति को समझने में लग गये। फिर मै सब से पहले रणीवाँ के पुर्नसंघटन के काम में लग गया। यहाँ रणीवाँ ग्रामोद्योग विद्यालय तथा उसके द्वारा आस-पास देहातों में गृह-उद्योग के प्रसार के सम्बन्ध में तीन साल के सक्रिय अनुभव के बारे मे कुछ बता देना, मेरी समझ में अप्रासंगिक न होगा।

रणीवाँ आश्रम की नींव किस तरह पड़ी और अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर उसने किस तरह आज का रूप ले लिया, इसका विवरण मै काफी दे चुका हूँ। वहाँ विभिन्न उद्योगों की स्थापना करते समय मैने स्थानीय साधन तथा परिस्थितियों की छान-बीन नहीं की थी। शायद उस समय उस प्रकार की छान-बीन करने का अनुभव भी मुझको नही था। अतः दूसरी बातों का ख्याल न करके अपने सामने हर प्रकार का प्रयोग करने की नीयत से जितने तरह के उद्योगों की स्थापना का अवसर मिला उन्हें स्थापित किया। इस प्रकार वहाँ खादी विद्यालय मे (१) धुनाई, कताई तथा बुनाई। (२) तेल-पानी। (३) कागज बनाना (४) बेत, बाँस तथा मूंज आदि का काम (५) दरी, कालीन तथा कंबल बनाने का काम (६) लोहारी (७) चमड़ा पकाना तथा (८) जूता चप्पल बनाना आदि चर्मकला के विभागों को संघटित किया गया। आरंभ से ही रणीवां की ग्राम-उद्योग-योजना बनाने में मैने उसी ध्येय को सामने रखा था

हर तरह के ग्रामोद्योगों की स्थापना

जो बापू की विचार-धारा के अनुसार देहातो को ग्राम स्वावलंबन के आधार पर संघटित करने का था। मै चाहता था कि दो-चार या पाँच-सात गावो मे ग्रामीण जनता की आवश्यकता पूरी करने वाले हर प्रकार के उद्योग की स्थापना हो जाय, और उन्ही की सहयोग-समितियों के द्वारा ग्राम-संघटन की योजना बनाई जाय। अतः जहा प्रान्त के विभिन्न जिलो के नौजवान विद्यालय मे विभिन्न उद्योगों की शिक्षा पा रहे थे, वहा अधिक से अधिक नौजवानों को उन उद्योगों मे शिक्षित करके आश्रम की मदद से ऐसी व्यवस्था कराई जाती थी कि वे अपने घर पर उत्पादन का काम कर सके। इस विषय मे वहुत से मित्र एतराज करते थे कि जिन उद्योगों मे कारीगरो की कमी नही है, उनके लिए भी नये नौजवान तैयार करने से क्या लाभ? हज़ारों बुनकर काम के बिना तरस रहे हैं उस-पर भी उनकी तादाद वढाने से लाभ के स्थान पर हानि की ही सभा-वना अधिक है। देश मे इतने चमार भूखो मर रहे हैं, उस पर चमड़े के कारीगर वढाने से क्या फायदा? इत्यादि। तुम्हें भी इस प्रकार का एतराज हो सकता है; अतः संक्षेप मे इसका कारण वता देना अच्छा होगा। मैने पिछले पत्र मे लिखा है कि जब समाज मे केन्द्र-वाद की सृष्टि हुई तो आर्थिक क्षेत्र में पूंजीवाद की भी सृष्टि हुई क्योंकि केन्द्रवाद के साथ केन्द्रीय वर्ग की सृष्टि हुई और उस वर्ग के हितों को संघटित करने की भी आवश्यकता पड़ी। अतः उत्पादन के क्षेत्र मे कारीगरो को एकत्र कर व्यवस्था की सहूलियत की ओर लोग आगे वढ़ते रहे। इस तरह बुनकर चर्मकार आदि की केन्द्रित वस्तियाँ वनती रहीं। आज जो हज़ारों कारीगरो का उल्लेख किया जाता है वे सव इन्हीं वस्तियों मे वसते हैं।

एक आपत्ति और उसका निराकरण

जनता मे स्वावलम्बन की दृष्टि न होने के कारण उनका फैलकर गाव-गाव मे वसना संभव नही था, क्योंकि वैसा करने से केन्द्रित व्यावसायिक संसार मे उनका

टिकना असंभव था। लेकिन जन-साधारण के स्वावलम्बन तथा स्वतंत्रता के आधार पर आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के विचार से अगर ग्राम उद्योग का कार्यक्रम चलाना है तो यह ज़रूरी है कि हमे आबादी की आवश्यकता के अनुसार प्रत्येक क्षेत्र मे प्रत्येक प्रकार के कारीगरों की ज़रूरत पड़ेगी और हमको समस्त क्षेत्र मे उनका सयोजित सघटन करना पड़ेगा। आज एक ही काम करनेवाले जो कारीगर एक जगह बस्ती बनाकर रह रहे हैं, उनको या तो फैलाकर गाव-गाव में जाकर बसाना होगा या उनका पेशा बदलवाना पड़ेगा। समाज-व्यवस्था मे क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के लिए इन कठिनाइयों और तकलीफों से घबराने से काम नही चलेगा। आज की परिस्थिति मे रणीवाँ-जैसे छोटी प्रयोगशाला के लिए कारीगरो की बस्तियो को विकेन्द्रित करना संभव नही था अतः प्रारंभ मे हज़ारो कठिनाइयाँ होते हुए भी स्थानीय कारीगर तैयार करना ज़रूरी था। अतः हमको बुनाई, धुनाई, चर्मकला और वढ़ईगीरी आदि सभी पेशों के लिए किसानों के बेकार नौजवानो को सिखा कर कारीगर बनाने और गाँव मे प्रतिष्ठित करने की योजना बनानी पड़ी।

अब विभिन्न उद्योगों के बारे मे क्या-क्या अनुभव हुए और उन अनुभवों के आधार पर ग्राम-उद्योग तथा उसके द्वारा ग्राम-सुधार-कार्य के सम्बन्ध मे मेरी राय किस प्रकार कायम हुई, यह वतला कर आज का पत्र समाप्त करूँगा।

कताई के सम्बन्ध मे मैने जो कुछ प्रयोग किया और उसके द्वारा तथा ग्राम-सुधार की संभावनाएँ मुझे दिखाईं दी, उनका ज़िक्र मै दो साल पहले आगरा जेल से तुमको लिखे पत्रों मे कर चुका हूँ। उसे फिर से दोहराना व्यर्थ होगा। अतः आज अन्य उद्योगों का ही ज़िक्र करूँगा। सबसे पहले काग़ज-विभाग का वर्णन करना ठीक होगा। क्योंकि यही वह विभाग है कि जिसमे हम अपनी योजना के अनुसार कुछ आगे वढ़ सके हैं। काग़ज़ वनाने में स्थानीय युवकों को शिक्षित

करके किस तरह गाँव में यह विभाग स्थापित किया गया उसका वर्णन भी मैं आगरा जेल से भेजे गये पत्रों मे कर चुका हूँ। मै जिस समय गिरफ्तार हुआ उसके तीन ही मास पहले इन कारखानो की स्थापना की गई थी, और मेरे जेल जाते-जाते दस-बारह कारखाने कायम हो गये थे। मैं यह भी लिख चुका हूँ कि किस प्रकार उनका सघटन कर उसके द्वारा ग्राम-सुधार का काम चलाना होगा, इसकी कल्पना मै उन्ही दिनों करता था, लेकिन इस दिशा मे कुछ काम शुरू करने से पहले ही पकड़ लिया गया। मेर पीछे विचित्र भाई खुद रणीवाँ की देख-भाल करते थे। मैने जेल से उनको इस दिशा मे आगे बढने के लिए लिखा था। लेकिन उन पर आश्रम की बहुमुखी ज़िम्मेदारी थी; अतः मेरे छूटने से पहले तक वह इस दिशा मे कुछ कर नहीं सके।

कागज का उद्योग— दस महीने बाद मै जेल से लौटकर आया और देखा कि अब तक २३ कारखाने कायम हो चुके हैं। केवल इतने कारखाने ही नही कायम हुए थे बल्कि उन नौजवानों की सफलता देखकर आस-पास की जनता में आशा और विश्वास का सचार दिखाई दे रहा था। वे यह महसूस करने लगे थे कि कोशिश करने पर मौजूदा सीमित साधनों से ही अपनी हालत वे बहुत कुछ सुधार सकते हैं। किसी भी योजना की सफलता के लिए जरूरी है कि जनता मे उत्साह हो। ऐसा उत्साह आशा और विश्वास से ही पैदा होता है। अतः जेल से लौटकर ही मैने अपनी कल्पना के अनुसार काम शुरू कर दिया। कागज बनाने वाले नौजवानों को बुलाया और उन्हें बताया कि भविष्य मे सारा ग्राम-उत्थान कार्य उनके ही द्वारा कराने की कल्पना मै किस तरह करता हूँ। उन्हे बताया कि ग्राम-उद्योग का सिद्धान्त क्या है, भविष्य में किस तरह इन उद्योगों के साथ ही ग्रामीण समाज अनुबन्धित रहेगा क्योंकि आवश्यक सामान की प्राप्ति की चेष्टा मे ही मानव-समाज का संघटन सन्निहित है तथा उस चेष्टा की रूप-रेखा के अनुसार ही समाज-जीवन की रूप-रेखा

बनती है और किस तरह ग्रामीण नौजवानों पर यह निर्भर करता है कि अगर वे चाहें तो आज की शहर मे केन्द्रित सभ्यता को वदल कर ग्राम-मुखी बना सकते हैं। उनसे मैने कहा कि आज बापू जी जो सामाजिक क्रान्ति करना चाहते हैं, उसके वे अग्रदूत बने। मेरी बात कुछ-कुछ उनकी समझ में आई और बहुत कुछ नही भी आई। लेकिन आर्थिक सफलता के कारण हमारे कार्यक्रम पर उनका विश्वास और उत्साह था। और कम से कम वे इस बात को तो समझ ही सकते थे कि ग्रामोद्योग के पीछे जो व्यापक योजना है उसका ध्यान न रख कर और उसके साथ न चलकर अगर हाथ से कागज बना कर सिर्फ उसे गुजारे का व्यवसाय मात्र बनाये रखे, तो वह गुजारे का व्यवसाय भी उनके हाथ से निकल जायगा, क्योंकि सिर्फ वाणिज्य-वृत्ति से मिल के साथ चढा-ऊपरी में कैसे ठहर सकेंगे ? मेरे कहने के अनुसार उन सब ने काग़ज़ संघ के नाम से एक समिति संघटित की। विचार यह था कि थोड़ी-थोड़ी पूंजी आश्रम मे कटा कर आश्रम के काग़ज़ विभाग की ज़िम्मेदारी यह समिति अपने हाथ मे ले लेगी। उन्होंने काग़ज़ के उद्योग के साथ ग्राम-उत्थान का काम भी अपने उद्देश्य मे रखा। उसमे उन्होंने कुछ विभिन्न विभाग भी वना लिये, जो इस प्रकार थे। (१) कच्चामाल (२) उत्पादन कला (३) विक्री (४) शिक्षा (५) अन्य ग्राम-सुधार।

(१) कच्चामाल के विभाग का काम यह था कि वह इस वात की ाज करे कि स्थानीय सामानो मे से कौन-कौन से सामान ऐसे हैं, जो दूसरे आवश्यक काम में न आते हों और जो काग़ज़ बनाने के काम मे अच्छी तरह आ सके। प्रारम्भ मे यह ज़रूरी था कि वे अपने कारख़ाने काग़ज़ की कतरन से ही चलावे क्योंकि पहले-पहल उनको उसी मे सहूलियत हो सकती थी। लेकिन वह स्थिति अधिक दिन नहीं चल सकती थी। क्योंकि कतरन के लिए फिर वही शहर तथा मिल का सहारा ज़रूरी था। अतः यह आवश्यक था कि वे इस वात की खोज

करे कि किन-किन देहाती सामानों के द्वारा नये सीखने वाले कारीगर भी अच्छी क़िस्म का काग़ज़ बना सकते हैं। पहले-पहल वे काग़ज़ की कतरन के साथ केले के रेशे, धान का पयाल, टाट की कतरन तथा सन के रेशे मिला कर बनाने लगे और क्रमशः कतरन का अनुपात घटाते गये।

(२) उत्पादन कला-विभाग का काम काग़ज़ की किस्म मे सुधार करने का था। जिन लोगों ने काग़ज़ बनाने की अच्छी कारीगरी सीख ली थी, उन्होंने अपने कम सीखे हुए भाइयो को सिखाने का काम करना तय किया। इस विषय मे प्रधानतः आश्रम के शिक्षक से ही मदद मिलती रही। उनका यह विचार था कि साधन काफी होने पर उनके प्रतिनिधि विभिन्न कागज़-केन्द्रों से अनुभव ले।

(३) यद्यपि उस समय सारे कागज़ की बिक्री की व्यवस्था आश्रम करता था, फिर भी उन्होंने बिक्री-विभाग इसलिए कायम किया था कि क्रमशः उन्हे स्वतंत्र व्यवस्था करनी थी। मै चाहता था कि आरम्भ से ही कुछ कागज़ स्थानीय बिक्री मे खपता रहे। इसका संघटन उन्हीं को करना था। उसके अनुभव पाकर वे सारी बिक्री की ज़िम्मेदारी ले सकते थे।

(४) सबसे अधिक काम शिक्षा-विभाग के सामने था। उसके लिए ग्राम-सुधार कार्य मे शिक्षण-कार्य ही मुख्य रखा गया था। प्रत्येक कारीगर अपने गाँव मे एक रात्रि-पाठशाला चलाता था। विभाग की ओर से उन पाठशालाओं का निरीक्षण होता था। शिक्षा के काम मे काग़ज़ बनाने वालों का विशेष सम्बन्ध होना स्वाभाविक भी था। उनके द्वारा उत्पादित काग़ज का बाजार भी तो वही विभाग था। इसलिए इस विभाग मे खास ध्यान देने के लिए वे प्रेरित हो गये।

आश्रम ने पिछले दिनो गाँवों मे रात्रि-पाठशालाओं के द्वारा प्रौढ़-शिक्षा का प्रसार करने की किस तरह चेष्टा की, उसका वर्णन मै पहले कर चुका हूँ। यहाँ इस विषय में अपने अनुभव लिखना शायद अप्रा-

संगिक न होगा। दो-तीन साल मे रणीवाँ के आस-पास हमने करीब १५०० प्रौढ़ों को प्रौढ़-शिक्षा की परीक्षा पास कराई। इस काम में मुझे बहुत उत्साह था। इस कार्यक्रम से न केवल साक्षरता का प्रसार होता था बल्कि उन विद्यालयो के सञ्चालन के कारण जनता मे जो शिक्षा के प्रति उदासीनता उत्पन्न हो गई है वह दूर होती थी। नतीजा यह हुआ कि लोग अधिक तादाद मे बच्चों को पढ़ने के लिए विद्यालयों मे स्वतः भेजने लगे। लेकिन जेल से लौट कर जब मै देहातों मे घूमने लगा तो देखा कि हम जो साक्षरता योजना चला रहे थे, उससे शिक्षा का वायुमडल तो पैदा हुआ लेकिन साक्षरता की दृष्टि से विशेष लाभ नही हुआ। जो लोग साक्षरता की परीक्षा पास कर चुके थे, वे क्रमशः जो कुछ सीख सके थे वह सब भूलते जाते थे। सारी स्थिति को देख कर मुझे ऐसा लगा कि अब तक हम जितना अक्षर-ज्ञान उनको कराते रहे, वह स्थायी साक्षरता के लिए काफी नही है। अतः अगर जनता को वास्तविक साक्षर बनाना हो तो हमको चाहिए कि उसे कम से कम दर्जा ४ तक की तालीम ज़रूर दे। लेकिन प्रौढ लोग साधारणतः इस उम्र मे उतनी शिक्षा लेने का धैर्य नही रखते। अतः मैने सोचा कि अगर गाव-गाव मे बच्चों के लिए ही दर्जा ४ तक की शिक्षा की व्यवस्था की जाय और उसका समय ऐसा रखा जाय कि किसान अपनी फ़ुरसत के समय उसमे पढ़ सके तो क्रमशः कुछ प्रौढ भी उन पाठशालाओं मे पूरी तालीम लेने की ओर अग्रसर होंगे। मेरी समझ मे कम से कम अगर १५-१६ साल के युवक भी पाठशालाओ मे भर्ती हो सके तो काफी है। अधिक उम्र के लोगों को छोड़ देने मे कोई हानि न होगी। इस तरह ६-७ साल मे तो प्रायः सभी नौजवान साक्षर हो जायँगे। इस-लिए जब काग़ज़ संघ के लोगो ने रात्रि-पाठशालाओं की योजना बनाई तो मैने उनको दर्जा २ तक की स्थायी पाठशाला कायम करने की सलाह दी। फिलहाल दर्जा २ तक के विद्यालय चल जाने पर

क्रमशः उन्हीं को दर्जा ४ तक का बनाया जा सकेगा। इन पाठशालाओं मे कागज-कारीगर ही अवैतनिक शिक्षक का काम करते थे।

(५) अन्य ग्राम-सुधार-विभाग के द्वारा फिलहाल गाँव की सफाई का काम रखा गया, क्योंकि शुरू मे इससे अधिक संभव नहीं था। बल्कि मैने उनको यह सलाह दी कि शुरू मे वे गाँव की सफाई के चक्कर में न पड़ कर सिर्फ अपने घर और पड़ौस को साफ रखे। इससे क्रमशः दूसरे भी अपने घर साफ रखने के लिए प्रोत्साहित होंगे। गाँवों के सास्कृतिक सुधार से पहले सफाई की चेष्टा के सम्बन्ध मे अपनी राय मैं तुमको पिछले पत्रों में लिख चुका हूँ। अतः उसे दोहराना बेकार होगा।

कागज़ सघ के संचालन के ख़र्च का कार्य चलाने के लिए सदस्यों से उनके उत्पादन की आय से १) चन्दा लेने का निश्चय किया गया और प्रत्येक सदस्य के लिए निम्न-लिखित शर्तें रखी गई—

(१) सदस्य खुद और उनके आश्रित जन सब खादी का ही व्यवहार करेंगे और जल्दी से जल्दी ऐसा प्रवन्ध करेंगे कि वह खादी अपने घर के कते हुए सूत की हो।

(२) सदस्य अपने घर तथा उसके आस पास की ज़मीन सदैव साफ रखेंगे।

(३) सदस्य अपने पढ़ने लायक सभी बच्चों के पढने की व्यवस्था करेंगे।

(४) सदस्य संघ के निर्देशानुसार प्रतिदिन दो घंटे का समय ग्राम-सेवा मे ख़र्च करेंगे।

(५) सदस्य एक साप्ताहिक पत्र मँगायेंगे और सप्ताह मे एक दिन रात को गाँव भर के लोगो को पढ कर सुनायेंगे।

(६) सदस्य सप्ताह मे एक बार आश्रम मे साधारण ज्ञान के क्लास मे आयेंगे, जिसमे विभिन्न समस्याओं पर विचार-विनिमय होगा।

इन तमाम बातों की व्यवस्था करने मे दो-तीन मास का समय

लग गया। मै चाहता था कि थोड़े दिन बाद जब क्रमशः संघ के लोग अपना काम व्यवस्थित रूप से चलाने लगे तो सहयोग-समिति-कानून के अनुसार संघ की रजिस्ट्री करा दी जाय। उन नौजवानों में काफ़ी उत्साह था, यह मै ऊपर लिख चुका हूँ। उनमे से दो तीन भाइयों ने तो अपने गाँव के आस-पास तेल घानी आदि दूसरे उद्योगों का प्रसार करने की चेष्टा करना प्रारंभ कर दिया था। लेकिन इस प्रकार के कार्यक्रम की प्रगति अधिक न हो पाई क्योंकि इसकी शुरूआत के दो-तीन माह के ही अन्दर ६ अगस्त की क्रान्ति मच गई। आश्रम ज़ब्त हो गया। आश्रम से कर्ण के साथ ३० भाइयों को ६ ता० को ही गिरफ़्तार कर लिया गया। सरकारी दमन ने, हमारे द्वारा जितना भी रचनात्मक कार्य हुआ था, सब को समूल नष्ट करने का घोर प्रयत्न किया। पुलिस के आदमियों ने इन नौजवानो को भी काफी तंग किया। नतीजा यह हुआ कि जो कुछ थोड़ी-बहुत प्रगति संघ की ओर हुई थी, सब नष्ट हो गई। प्रारंभ मे तो वे कारख़ाने भी बन्द से हो गये। लेकिन मुझको मालूम हुआ कि कुछ महीनो के बाद धीरे-धीरे वे नौजवान अपना काम फिर से चलाने लगे और क्रमशः अपनी चेष्टा से बाज़ार भी प्राप्त करने लगे। अभी दो मास हुए रणीवाँ के रामलाल भाई के पत्र से मालूम हुआ कि अब उनका काम खूब ठिकाने से चल रहा है और उन्ही के यहा सीख कर नौजवानो ने तीन-चार कारख़ाने और कायम किये है। यह ख़बर पाकर मुझे बहुत सन्तोष हुआ। शुरू से ही स्वावलंबन की ओर दृष्टि रखने के कारण आश्रम ज़ब्त होने पर भी उनमे आत्म-विश्वास की कमी नहीं होने पाई बल्कि आश्रम के न होने से उनमे आत्म-निर्भरता की वृत्ति बढी।

बयालीस के दमन में

अब तक जेल से लौटने के बाद काग़ज़-उद्योग के द्वारा ग्राम-सुधार कार्य चलाने की मेरी जो योजना थी, उसकी सफलता की बाबत बताया। इस काम मे मुझे कठिनाइया भी हुई, जिन्हें जाने बिना सारी

स्थिति को समझना सम्भव नहीं होगा। प्रारंभ मे जब मैने गाव के नौजवानों को काग़ज़ का काम सीख कर अपने घर पर उद्योग चलाने के लिए निमंत्रित किया था तो साधारणतः पढे-लिखे नौजवान इधर आकृष्ट नही हुए। पढे-लिखे नौजवानो से मेरा क्या मतलब है, इसका अन्दाज़ा शायद तुम्हे न होगा। तुम्हारी दृष्टि से पढे-लिखे नौजवान का अर्थ विश्वविद्यालय की शिक्षा पाये हुए लोगो से होगा या कम से कम हाई-स्कूल पास से। लेकिन मै जिस इलाके मे काम करता हूँ वहाँ अगर पाच-सात गावों के बीच कोई मिडिल पास कर ले तो उसे लोग बहुत बडा पडित समझते हैं। ऐसी स्थिति मे मिडिल पास नही बल्कि दर्जा ४ पास किये हुए लोग भी पढे-लिखो मे गिने जाते हैं। अतएव आश्रम की योजना मे शामिल होने के लिए जो लड़के आये वे न तो मिडिल पास थे और न तो दर्जा चार ही पास ऐसे लड़के थे जो कुछ होनहार भी हों। हमारे यहा तो वे ही आये जो दूसरा कुछ काम न कर सकते थे। और जीवन से निराश थे। काम शुरू करने के लिए मैने उन्हीं को ले लिया और शुरू-शुरू मे अधिकतर उन्होने ही कारखाने चलाये। बाद को जब मैने अपने ध्येय के अनुसार कार्यक्रम चलाने की कोशिश की तो इन लड़कों मे योग्यता की कमी के कारण हमारे काम मे बाधा पड़ने लगी। नतीजा यह हुआ कि उनमे काफी उत्साह होने पर भी जितनी सफलता की आशा करता था, उतनी न हो सकी। हाँ, मै अपने उद्देश्य के सम्बन्ध मे जेल से बार-बार लिखता रहा। उससे, और इन लड़को की सफलता को देख कर बाद को कुछ अच्छे और शिक्षित अर्थात् मिडिल पास नौजवान इस ओर झुके। और फिर जो थोड़े दिन काग़ज़ सघ के सचालन की चेष्टा हुई, वह भी इन्ही दो चार नौजवानो के नेतृत्व मे हुई। इस सिलसिले मे एक दूसरी कठिनाई की बाबत बताना भी बहुत आवश्यक है। देहात मे ही ग्राम-उद्योग की

हमारी कठिनाइयाँ

कारीगरी सिखा कर गाँवों मे उद्योग-कार्य कायम करने की मेरी राय से मेरे साथी और मित्र बहुत कुछ सहमत नहीं हो सके थे। अक्सर उनसे मेरा मतभेद होता था। यह सच है कि पढ़े-लिखे नौजवानों को भर्ती कर के यदि कारीगर बनाया जाय तो वे पेशेवर कारीगरों के मुकाबिले अच्छा माल नही बना सकते। अतः उनका बनाया माल खपाना कठिन हो जाता है। यह भी सही है कि उनका माल शुरू मे ही नही बल्कि काफी दिनों तक बाज़ार के अन्य कारीगरों के मुकाबिले ख़राब होगा। लेकिन अगर हमको कुछ निश्चित सिद्धान्तों और निश्चित योजना को ध्यान में रख कर ग्राम-उद्योग का काम चलाना है तो निस्सन्देह ऐसे नौजवानों को ही इन उत्पत्ति-कार्यों मे लगाना होगा जिन्हे हम अपना आदर्श तथा अपना दृष्टिकोण समझा सके और जो समाज की भावी व्यवस्था के अग्रदूत बनने की कल्पना कर सकें। हम चाहे जितने छोटे पैमाने पर काम चलावे, हमको आरंभ से ही अपनी सारी व्यवस्था अपने सिद्धान्त के दृष्टिकोण से ही करनी होगी। सन् १६२१ से ही हमने चर्ख़ा और खादी का काम चलाया। उस काम के चलाने मे हमारा एक निश्चित सामाजिक तथा राजनीतिक उद्देश्य रहा। हमने जनता मे उस उद्देश्य का प्रचार किया। जनता ने भी उसे समझा और चाहे जितना मोटा, खुरदुरा तथा कमज़ोर खद्दर बना उसे ख़रीदा और व्यवहार किया। नतीजा यह हुआ कि आज खादी, कपड़े की दृष्टि से भी, मुकाबिले मे टिक रही है। इसी प्रकार अगर ग्राम-उद्योग के बुनियादी उद्देश्य को सफल करना है, तो हमे देहातों के ऐसे नौजवानों को शिक्षित करना होगा जो हमारे उद्देश्य को समझ कर उसी के साधक बन सकें। तैयार माल ख़राब होगा तो शुरू मे उसे उसी रूप में जनता को देना होगा जिस तरह हमने शुरू मे खादी दी थी। फिर खादी की तरह क्रमशः इनकी भी तरक्की करनी पड़ेगी। यह सही है कि आज भी ग्रामोद्योग

आदर्शोन्मुख कारीगर पैदा करने होंगे

के करीब-करीब सभी कामों के लिए पेशेवर कारीगर मिल सकते हैं लेकिन अगर हम बाज़ार की सहूलियत के मोह में पड़ कर उन्हीं के द्वारा माल बनवा कर बेचते रहे तो देश की समस्या को हम अपने ढंग से हल करने की ओर न बढ़ कर सामान्य व्यापार चलाने लग जायँगे।

यद्यपि खादी तथा ग्राम-उद्योग का बुनियादी उद्देश्य ग्राम-स्वावलम्बन है तथापि शुरुआत का माल तो हमें शहरों में ही खपाना होगा। क्रमशः उद्योग की प्रगति के साथ-साथ ग्रामीण आर्थिक परिस्थिति जैसे-जैसे उन्नति करती जायगी, वैसे-वैसे गाँव का उत्पादन अधिकाधिक गाँवों में ही खपने लगेगा। अतएव उस समय तक तो हमें संघ-द्वारा बना हुआ अपना माल बेचने के लिए बाहर का बाज़ार देखना ही पड़ता था तथा इस काम में अपने साथियों का ही भरोसा था और मेरे दृष्टिकोण से उनके सहमत न होने के कारण कुछ कठिनाइयाँ थीं। हाँ, काग़ज़ के काम में इस कठिनाई का असर अधिक नहीं पड़ा क्योंकि शुरू में जितना काग़ज़ बनता था वह अधिकांश आश्रम के खादी-विभाग के केन्द्रों में खप जाता था। मेरे साथियों के और मेरे दृष्टिकोण में पूर्णतया मतैक्य न होने पर भी ग्राम-उद्योग की साधारण कठिनाइयों के सम्बन्ध में तो दो रायें नहीं हो सकती थीं। अतः माल की किस्म में कुछ ख़राबी होने पर भी वे उसे सहर्ष इस्तेमाल कर लेते थे। दूसरे एक बात यह भी थी कि काग़ज़ का उद्योग ऐसा था कि वह प्रायः मर ही चुका था और इसके लिए शायद पेशेवर कारीगर थे ही नहीं। सभी जगह नये लोग ही सीख कर बनाते थे। अतः मुकाबिले में सब जगहों के उत्पादन का प्रायः एक ही हाल था। माल में भी विशेष फर्क नहीं था। अतएव इस सम्बन्ध में आपत्ति की गुञ्जाइश कम थी। फलतः दृष्टिकोण में फर्क होने के कारण विशेष कठिनाई दूसरे उद्योगों के चलाने में ही पड़ी। उसका वर्णन उन्हीं उद्योगों के वर्णन के सिलसिले में करूँगा।

बुनाई—दूसरा उद्योग बुनाई का था। तुम्हें मालूम ही है कि जब मै शुरू में रणीवां आया था और दूसरे उद्योगो के सम्बन्ध में कल्पना भी नहीं करता था उस समय तो बुनाई को ही मैंने अपनी ग्राम-सुधार-योजना का साधन बनाने की चेष्टा की थी और प्रारंभ में बुनाई विभाग का काम ही जारी किया था। लेकिन मै लिख ही चुका हूँ कि आश्रम के खादी-विभाग से मदद न मिलने से मुझको बुनाई के द्वारा सुधार-योजना की चेष्टा छोड़नी पड़ी थी। फिर भी बुनाई-विभाग मैंने जारी रखा था और सरकारी मदद से चलने के कारण किसी को विशेष एतराज़ न रहा। खादी-विभाग की मदद के बिना इस विभाग की प्रगति सम्भव न थी, अतएव इस विभाग मे विशेष उन्नति नही हो सकी। आस-पास के गाँवों के ७-८ नौजवानों ने बुनाई सीखी और लड़ाई के वस्त्र-सङ्कट के दिनों मे गाव का सूत बुन कर वस्त्र स्वावलंबन मे मदद कर सके। अकबरपुर के कुछ बुनकर तो विभिन्न डिज़ाइनों की खादी बुनना सीख गये थे। यद्यपि इस विभाग मे नतीजा कम निकला फिर भी ग्राम-स्वावलंबन के प्रयोग मे मुझे काफी अनुभव मिला। इस विभाग के द्वारा गाँव-गाव में बुनकर पैदा करके ग्राम-स्वावलंबन योजना चलाने की सम्भावनाओ के प्रति मेरा विश्वास पहिले से भी बढ़ गया। इस समय मुझे सूचना मिली है कि आश्रम बन्द होने पर ये नौजवान स्थानीय कत्तिनों का सूत बुन कर यथाशक्ति निज की आर्थिक तथा देहात की वस्त्र-समस्या हल करने मे मदद कर रहे हैं। मुझे अब भी विश्वास है कि चर्खा-संघ चाहे तो बुनाई के द्वारा ग्राम-सुधार का बहुत बड़ा काम कर सकता है। बशर्ते वह अपने तरीक़ो को तब्दील करे और सारे काम को विकेन्द्रित करके ग्राम-स्वावलंम्बन की ओर बढे।

लोहारी और बढईगीरी—तीसरा विभाग बढ़ईगीरी और लोहारी के काम का था। सन् १६३५ मे पहले पहल जब मैं रणीवा गया था और चर्खे का प्रचार शुरू किया था, उसी समय से चर्खा-

सरंजाम की कठिनाई महसूस करता था। मैंने देखा कि बाहर से चर्खा आदि सामान मँगाने से काम नहीं चलेगा। उस समय मैंने स्थानीय बढ़इयों के अभाव से कत्तिनों के गाँव में ही सामान निर्माण करने में कठि-नाई अनुभव की थी। उसका विवरण पहले भी कुछ लिख चुका हूँ। नगीना सहारनपुर तथा बरेली आदि लोहार-बढ़इयो की केन्द्रित वस्तियों से आसानी से चर्खा सरंजाम बन सकता था और आश्रम नगीना से ही चर्खा आदि सामान बनवा कर विभिन्न केन्द्रो मे भेजता भी था। लेकिन इस तरह हमारा काम नहीं चल सकता था। इसलिए ग्राम-उद्योग विद्यालय स्थापित होते ही मैंने स्थानीय किसान युवको को लकड़ी और लोहे का काम इसी उद्देश्य से सिखाना शुरू किया। लेकिन इस विभाग में हमारी समस्या काग़ज़-विभाग जैसी आसान नही थी। पहले तो लकड़ी का काम ठीक तरह से सीखने के लिए काफी दिन लग जाते हैं। दूसरे लोहे और लकड़ी का काम करने के लिए पेशेवर बढ़ई और लोहार एक से एक बढ़ कर मौजूद हैं। वे चाहे केन्द्रित वस्तियो मे हों चाहे बड़े शहरों मे। उनका बना सरंजाम तो हर जगह पहुँच ही सकता है। ऐसी स्थिति मे उन लड़कों को बाजार के मुक़ाबिले में आना पड़ा। पहले मै अपने सिद्धान्त के अनुसार चलना चाहता था लेकिन आश्रम की आवश्यकता तथा साथियों के विचारानुसार मुझे बाहर से बढई और लोहार बुलवाने पड़े। यह स्थिति अस्वाभाविक थी तो भी मै उसे चलाता रहा क्योंकि मै उम्मीद करता था कि उसी के साथ क्रमशः मैं लड़को को सिखाकर उनके घर पर उत्पादन की व्यव-स्था कर सकूँगा। फिर उनका संघ बना कर कत्तिनों से सीधा सम्बन्ध बनाने मे सफलता मिल सकेगी। इस विभाग मे मुझे शुरू में अनपढ़ लड़के लेने पड़े। फिर धीरे-धीरे पढे-लिखे लड़के इस ओर आकर्षित होने लगे। आश्रम जब्त होने से पहले ये लड़के घर पर स्वतंत्र कार-खाने तो नही खोल सके थे लेकिन इन्होंने आश्रम मे स्वतंत्र रूप से अपना-अपना माल बना कर आश्रम को ही बेचना शुरू कर दिया

था। विचार यह था कि कुछ दिन आश्रम के अन्दर ही स्वतंत्र काम करके जब पूरा विश्वास हो जायगा कि वे घर पर भी ठीक काम कर लेंगे तो उन्हें अपना केन्द्र खोलने मे मदद की जा सकेगी। हाल में उन लड़कों ने 'यरवदाचक्र' आदि बना कर आश्रम के भण्डारों मे भेजना शुरू कर दिया था। आश्रम जब्त होने के बाद वे लड़के ख़ास तौर से साधन के अभाव से अपने आप कोई कारखाना तो खोल नही सके, लेकिन जिन देहातों मे अच्छे बढइयो की कमी थी वहाँ उनका हो जाना भी एक लाभ ही है।

तेलघानी—तेल-घानी विभाग के सम्बन्ध मे ऐसी कोई बात नही है कि जो मै तुम्हे लिखू। केवल इतना कहना काफी है कि जेल से लौटकर इसका प्रसार कुछ अधिक हो सका। इसमें एक सहूलियत यह थी कि गाव मे लोग तेल का इस्तेमाल करते ही हैं। पुरानी किस्म की घानी के बदले मगनवाड़ी घानी का प्रयोग करने लगे। इससे उनको आसानी यह रही कि जहा पुरानी घानी से ढाई सेर सरसों ४ घंटे मे पेरी जाती थी वहा इस घानी से ८ सेर सरसो डेढ़ घटे मे पेरी जाने लगी। लेकिन मगनवाड़ी घानी मे इतनी सहूलियत होने पर भी आज की परिस्थिति मे घानी चलाने वालों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पहले-पहल जब तक आश्रम की ओर से ही काम होता था तब तक तो कोई बात नहीं थी। आश्रम के पास सरसों का स्टाक होता था। आश्रम उसको पेरवा कर बिक्री की व्यवस्था करता था। लेकिन जब दूर-दूर इस घानी का प्रचार हो गया और फैजाबाद जिले के बाहर भी जाने लगी, तब घानी चलाने वालों को स्थानीय परिस्थिति के ही अनुसार उसे चलाना था। गाव मे घानी चलाने के लिए दो ही तरीके काम में लाये जा सकते हैं। (१) किसानों की सरसों पेर कर उनसे पेराई का खर्च ले लेना। (२) अपनी सरसों पेर कर खली तथा तेल की बिक्री करना। गरीबी के कारण उनके लिए सरसों का स्टाक रखना आसान न था। अतः उन्हे किसानों का

ही काम करने में लाभ था। ऐसी दशा मे पेरने वालों के लिए एक समस्या यह हो जाती है कि प्रायः किसान् ८ सेर सरसों एक साथ नहीं पेरवा सकते। वे तो अपने साधन और आवश्यकता के अनुसार ही काम ले सकते हैं। ऐसी दशा मे पेरने वालों के लिए मुश्किल हो जाती है। यह ठीक है कि कई किसानों की सरसों एक साथ पेरी जा सकती है, और तेल घानी वाले वैसा करते भी थे। लेकिन अधिकतर किसान अपनी ही सरसों पेरवाना चाहते हैं। इस प्रकार उनके यहाँ ग्राहकों की सख्या जितनी होनी चाहिए थी उतनी नही हो पाती थी। फिर किसान सरसों के मौसम में ही काम ले सकते थे। अतः साल भर लगातार उनको काम नही मिल सकता। पेरने के लिए प्रायः उनको चैत से जेठ तक और फिर जहाँ थोड़ा-बहुत तीसी का रिवाज है, भादो के वाद काम मिल जाता है। वाकी दिन उनके लिए अपनी सरसो पेर कर उसका वाजार ढूढना जरूरी है। यह काम उनके लिए प्रायः असभव ही है। प्रथमतः उनके पास इतनी पूँजी नहीं है कि वे इतने दिन के लिए रोज (पाच घानी) एक मन सरसों के हिसाव से जितनी सरसों की आवश्यकता होगी, उतनी सरसो का स्टाक रख सके। फिर एक आध तेली कही पूँजी की व्यवस्था कर भी लें तो उनके लिए व्यक्तिगत रूप से वाजार की व्यवस्था करना करीव-करीव असंभव है। आजकल सस्ता मिश्रित तेल बेचने का रिवाज इतना चल गया है कि शुद्ध तेल पूरी कीमत पर तवतक नहीं विक सकता जव तक जनता की विश्वास-पात्र किसी संस्था की मार्फत न विके। ऐसी दशा मे घानी का प्रसार तभी सभव है, जव ग्राम-उद्योग-सघ' जैसी सस्था खुद काम शुरू करके क्रमशः उनकी सहयोग-समितियाँ कायम कर दे। भविष्य मे हमको ऐसा ही करना पड़ेगा वर्ना यह काम चल नही सकेगा। अगर भविष्य मे हमको ग्राम-सुधार का संयोजित काम करना होगा तो समस्त उद्योगो के लिए पहले-पहल संस्थाएँ वनानी होगी। फिर भी हमारा अनुभव यह रहा कि घानी का उद्योग दूसरे

उद्योगों के मुकाबिले आज की परिस्थिति मे भी लोग स्वतंत्र रूप से चला सकते है। हमे भी ऐसा ही अनुभव हुआ। आश्रम जब्त हो जाने पर जितने उद्योग गाँव मे स्वतन्त्र रूप से चल रहे हैं उनमे घानी चलने वालों को सब से कम कठिनाई हो रही है। उनकी हालत आज भी उसी प्रकार है जैसी आश्रम के होते हुए थी। बल्कि कुछ किसान मिलकर ८ सेर के घान की समस्या भी हल कर रहे हैं, ऐसी सूचना भी मुझको मिली है।

बेत, बाँस, मूँज — बेत, बाँस और मूंज आदि का काम शुरू तो किया था, लेकिन उसे साल भर मे ही बन्द करना पड़ा। कोई भी विभाग दो ही उद्देश्यों से चल सकता है। (१) प्रान्त मे उद्योग-कार्य चलाने के लिए कार्यकर्ताओं की शिक्षा और (२) गांव मे उद्योग-कार्य तथा ग्राम-सुधार के लिए कारीगरो को तैयार करके उनकी कारीगरी की स्थापना करना। प्रथम उद्देश्य से नौजवान इस काम को सीखना इसलिए नही पसन्द करते थे कि आज कल इस उद्योग के लिए ऐसी सस्थाओं की कमी थी, जिनकी मार्फत वे अपना काम चलाते। ग्राम-उद्योग की स्थापना के लिए ज़रूरी था कि उन्हे उसी क्षेत्र मे स्थापित किया जाय जहा से शहर निकट हों, क्योंकि जैसा पहले कहा है कि यद्यपि हमारा मुख्य ध्येय ग्राम-स्वावलबन ही है, फिर भी गावों की आज-कल की परिस्थिति में हमको तैयार सामान प्रधानतः शहरो में ही बेचना होगा और बेत-बास का सामान दूर लेजा कर बेचना आसान नहीं है। इसलिए शहर के आस-पास के गावो के लोग ही उसे सफलता-पूर्वक कर सकते हैं। अतः हमने देखा कि रणीवा-जैसे दूर के गांव मे इस उद्योग को चलाना फ़िलहाल संभव नही है।

दरी-कालीन — दरी-क़ालीन का काम हमने बुनाई विभाग के साथ शुरू किया, लेकिन उसे स्थानीय उद्योग के उपयुक्त न बना सके। जहा ग़रीबी इतनी अधिक है कि लोग बिना बिछावन के ही गुज़र करते हैं, वहा दरी-क़ालीन का इस्तेमाल क्या हो सकता है?

अतः गाव मे खपत के लिए इसका उत्पादन करना संभव नही था। शहरो मे भी इनकी खपत इतनी कम है कि गाव गाव इस उद्योग का प्रसार करना बेकार है। अतः इस उद्योग को सिखाने के लिए योजना स्वतन्त्र रूप से नहीं रखी गई। हा, इस विभाग में जो पुराने फटे चीथड़ों की दरी बनाने का प्रयोग किया गया वह गृह-उद्योग की दृष्टि से भी देहातों मे चलाने लायक़ था और आस-पास के गाव के एक दो नौजवान स्वतंत्र रूप से इस उद्योग को चला भी रहे थे, क्योंकि गाव वालों को इससे रद्दी चीज़ो के इस्तेमाल का नया तरीका मालूम हो गया था। चीथड़ों की दरी का प्रचार इतना हुआ कि दूर-दूर के लोग इसमे दिलचस्पी लेने लगे, यहाँ तक कि एक बार शान्ति-निकेतन की श्री नन्दिता देवी ने भी अपने यहा से पुराने कपड़े दरी बनाने के लिए भेज दिये थे।

चमडे का काम —अब चमड़ा पकाने का और उससे तैयार माल बनाने का विभाग रह गया। भारत-जैसे कृषिप्रधान देश मे चमड़े के काम का कितना महत्व है यह मै पहले के पत्रो मे लिख चुका हूँ। मुझे उसे यहा दोहराना नही है। रणीवा के आस-पास चमड़ा पकाने वालों की कमी के कारण दूसरों को यह काम सिखाने की चेष्टा का भी विवरण दे चुका हूँ। वस्तुतः इसी उद्योग मे मुझे कठिनाइया अधिक थीं। रणीवा के कार्यक्रम के द्वारा आस-पास की देहाती जनता मे छूत-छात आदि की कट्टरता तो बहुत कुछ कम हो गई थी। दो-चार स्थानीय नौजवान सामाजिक प्रथाओं के बावजूद भी चमड़े का काम सीखने लगे थे। और जनता उसे बरदाश्त भी करने लगी थी। स्थानीय जनता मे कट्टरपन्थियों की इस प्रकार की शिथिलता के बारे मे भी मै काफी लिख चुका हूँ। फिर भी अब तक वे इतना अग्रसर नहीं हो पाये थे कि घर मे पेशे के रूप मे चमड़े का काम चलाये। हा, जेल से लौटकर एक परिवर्तन मैने अवश्य देखा। पहले चमार जाति के लोगों मे अपने जातीय निषेध के कारण चमडे के काम करने में जो

एतराज़ था, वह अब कुछ-कुछ शिथिल हो गया था। ६-७ चमारों ने इस बीच हमारे यहां काम करना शुरू किया था। लेकिन वे भी यहां तक आगे नहीं बढ सके थे कि अपने घर पर काम चलावे इसलिए बावजूद अपनी कोशिश के हम एक भी कारखाना नहीं खुलवा सके। लेकिन चमड़ा पकाने का काम ग्राम की आर्थिक समस्या में इतना महत्व रखता है कि मैं उसे चलाता रहा। मुझे आशा भी थी कि बाद को इस दिशा मे कुछ कामयाबी अवश्य होगी। समाज-बन्धन इतनी कठिन चीज़ है कि उस की शिथिलता की ओर लोग जितना भी आगे बढ़े थे वह कम बात नही थी और अगर उसी तरह प्रगति होती रहती तो इस दिशा मे पूर्ण सफलता मिलने की आशा को मैं असंभव नहीं समझता। लेकिन यह सब होते हुए भी यह सच है कि अब तक हम अपने ध्येय मे सफल नहीं हो सके। अतः चमड़ा पकाने का काम देहातों मे कहाँ तक सफल हो सकता है और किसानों की स्थिति सुधारने मे किस हद तक मदद पहुँचा सकता है हमारा अब तक यह प्रयोग इन बातों की संभावनाओं का प्रयोग-मात्र था। लेकिन यह अनुभव भी भविष्य के लिए कम पूँजी नहीं है।

यही हाल जूता चप्पल आदि माल तैयार करने के सम्बन्ध मे रहा लेकिन मेरे ख्याल से इस काम को जारी करना ज्यादा आसान था। पकाने के काम को जितनी घृणा की दृष्टि से देखा जाता है, उतना इस काम को नही। दो-तीन नौजवान अपने यहाँ काम चलाने की दृष्टि से काम सीख भी रहे थे। मै समझता हूँ कि अगर इस काम में भी दो-चार लड़को को लगाया जा सके तो भविष्य मे लोगों की घृणा दूर करना आसान होगा। लेकिन उनकी शिक्षा पूरी होने से पहले ही सरकारी हमला हो गया।

कंबल का उद्योग — हाँ, कंबल बनाने के विभाग की बाबत तो लिखना भूल ही गया। सन् ४१ के शुरू में पकड़े जाने से पहले कुछ नौजवानों को अपना काम चलाने के लिए तैयार करने का आयोजन-

मात्र ही कर पाया था। लेकिन लौट कर देखा कि इस दिशा में लड़के बहुत आगे बढ़ गये थे। करीब दस-बारह घर इस काम मे जोरों से लग गये थे। और वहाँ के लोग उन्नत ढ ग का कम्बल लेना पसन्द करने लगे थे। वास्तव में उनके काम के लिए इस देश मे संभावनाएँ बहुत हैं। अगर हम अपने यहाँ की उनकी स्थिति की संसार की ऊन की स्थिति से तुलना करें तो देखेंगे कि हमारी स्थिति परम शोचनीय है। हम काश्मीर के शाह तूश, शाल आदि जगत्-प्रसिद्ध चीजों की बाबत सोचकर खुश होते हैं और समझते हैं कि इस दिशा मे हम दुनिया के अग्रणी हैं। कश्मीर का काम हमारी कला की प्रशसा की बात हो सकती है, लेकिन यह ऊनी स सार के अनुपात से नगण्य है। हमारी ऊन की स्थिति की कोई तरीफ नही की जा सकती। यह सही है कि स सार के शीत-प्रधान देशों के मुकाबिले भारत-जैसे गरम देश के लिए ऊन के उद्योग के प्रति ध्यान देने की प्रेरणा कम होनी स्वाभाविक थी। फिर भी इस दिशा में यहाँ की स्थिति ऐसी शोचनीय है कि इसकी उन्नति की बहुत अधिक गुजाइश है। जहाँ संसार की भेड़ों के ऊन की औसत उत्पत्ति प्रतिभेड़ ६ पाउण्ड या साढे चार सेर सालाना के करीब है, वहा भारत की औसत उत्पत्ति प्रति वर्ष प्रति भेड़ १ ६पाउण्ड (लगभग पद्रह छटाँक) मुश्किल से होती है। इतनी कम ऊन भी अच्छे किस्म की होती तो कोई बात थी। हमारे यहाँ की ऊन स सार भर मे सबसे घटिया किस्म की होती है। जहाँ आस्ट्रेलिया न्यूजीलैण्ड और अर्जेण्टाइना आदि देश सुदूर स्पेन आदि देशों के मेरीनों जैसी अच्छी नस्ल की भेड़ों से अपने यहाँ की नस्ल सुधार कर ऊनी दुनिया मे कमाल हासिल कर रहे हैं, यहाँ एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त मे भेड़ों को लेजाकर नस्ल सुधारने का भी प्रयोग नही हो रहा है। भेड़ों की नस्ल का सुधार तो दूर की बात है उनके विभिन्न अंगों से निकलने वाली विभिन्न किस्म की ऊन अलग अलग रखने की चेष्टा भी नहीं होती है और ऐसा हो भी कैसे ? भेड़ पालन का काम तो गड़रिया कौम के हाथ

में ही पड़ा है । वे अशिक्षित हैं, समाज में प्रायः अछूत हैं और उनकी गरीबी का जिक्र ही क्या करें । सरकार अपनी है नहीं । विदेशी सरकार के लिए इस दिशा में उन्नति करना अपने स्वार्थ में धक्का पहुँचाना है । अतः सरकारी महकमों से बड़ी-बड़ी रिपोर्ट तो तैयार होती है लेकिन काम कुछ नहीं होता । अपने तुच्छ साधनों से हम कर ही क्या सकते थे । केवल प्रयोग मात्र हो सकता था । अतः उतनी ही सफलता मेरे संतोष के लिए काफी थी । इससे इस काम की संभावनाएँ तो मालूम ही हो गईं । क्रमशः ब्राह्मण क्षत्रिय आदि घरों मे यह काम होने से इसकी मार्फत अप्रत्यक्ष रूप से समाज-सुधार का काम होना भी संभव था । लड़ाई की वजह से उत्पादन बढ़ाने का मौका भी था । अतः मैने इस दिशा मे कुछ अधिक काम करने की योजना बनाई और आश्रम ने भी उसे स्वीकार किया । मै चाहता था कि उत्पादन के साथ-साथ ऊन की किस्म का सुधार तथा मौका लगे तो भेड़ों को नस्ल-सुधार का भी प्रयोग किया जाय । गाव के शिक्षित नौजवानों को ऊन के उद्योग-कार्य मे लगा कर उनके द्वारा शिक्षा आदि कार्यक्रम चलाने के आलावा ऊन के काम को, जो समाज में छोटा काम समझा जाता था, सर्व-देशीय बनाया जाय । इस उद्योग को फैलाना हमारे लिए आसान भी था क्योंकि एक तो खादी भडारों के द्वारा बहुत बड़ी तादाद मे कम्बल बेचे जा सकते थे, दूसरे गरीब जनता की आवश्यकता का सामान होने के कारण क्रमशः गाँव मे ही अधिकाश माल खपने की गुंजाइश भी थी । इस विभाग से मुझे जो कुछ थोड़ा-बहुत अनुभव हुआ उससे मेरी यह निश्चित राय हो गई कि भविष्य में हमें खादी के काम के साथ-साथ ऊन का काम चलाना हितकर होगा । इस उद्योग मे उन्नति का मौका बेहद है, विशेष कर किसानों के लिए भेड़े पालने का काम लाभदायक है क्योंकि ऊन के उद्योग के अलावा इससे उनको कीमती खाद तथा खाद्य भी मिलता रहता है ।

साबुन का काम — पहले पत्रों में मैंने तुम्हे साबुन के उद्योग के सम्बन्ध में लिखा था कि किस तरह मै गाव की सफाई की समस्या के साथ साबुन के उद्योग की बात शुरू से ही सोचता रहा। इस विषय मे मैंने क्या-क्या किया और कठिनाइयों के कारण कैसे असफल रहा, इसका ब्यौरा लिख चुका हूँ। लेकिन ग्राम-सुधार कार्य के लिए मै साबुन-उद्योग को इतना जरूरी समझता था कि सारी कठिनाइयों और सारी असफलताओं के बावजूद इसकी चेष्टा को छोड़ना मेरे लिए संभव नही था। अतः जेल से छूटते ही मैंने आश्रम के सामने देहाती साधनों से साबुन बनाने का प्रस्ताव पेश किया। पहले आश्रम के साथी जिस तरह इस मामले मे सहमत नहीं हो पाते थे, अब वैसी परिस्थिति नही रही थी। अब लड़ाई के कारण साबुन के लिए कास्टिक सोडा भी सुलभ नही था। अगर मिलता भी था तो इतना मँहगा कि कास्टिक सोडे वाला साबुन बहुत मँहगा पड़ने लगा। अतः मेरे प्रस्ताव को मानना अब उनके लिए आसान हो गया था। अकबरपुर में पुराने तरीके से साबुन बनाने के स्थान पर नये देहाती साबुन बनाने के लिए प्रयोग करने की अनुमति मिल गई। अकबरपुर में इस काम के विशेषज्ञ भी थे। अतः थोड़े ही दिन मे रेह और चूना के द्वारा अच्छे किस्म के साबुन बनने लगे। मैंने देखा कि बहुत छोटे परिमाण में घर घर यह साबुन बन सकता है। अतः दूसरे उद्योगों की तरह इस काम के लिए भी स्थानीय नौजवानों को भरती करने का आयोजन करने लगा। लेकिन उसका भी अवसर सरकारी हमले के कारण नहीं मिल सका और नौजवान भर्ती नहीं हो सके। एक लड़के ने कुछ काम सीख लिया था। आश्रम ज़ब्त होने के बाद उसने अपने घर पर काम शुरु किया था। अब मुझे खबर मिली है कि उसका काम अच्छा चल रहा है। इस थोड़े दिन के प्रयोग से मुझे मालूम हो गया कि गत ४-५ सालों से मैं जिस बात की चिन्ता मे था, वह आसानी से पूरी हो सकती है। मुझे ऐसा लगता है कि चर्खे के समान यह उद्योग भी

घर घर चलाया जा सकता है।

शिक्षा का प्रयोग—अब तुम थोड़े में यह जानना पसन्द करोगी कि इस बीच मे शिक्षा सम्बन्धी क्या क्या काम किया जा सका। यह बात तो ख़ास तौर से तुम्हारी ही है। अतः तुमको इस विषय मे दिलचस्पी होना स्वाभाविक ही है। छूटने के बाद मै थोड़े दिनों के लिए दरभगा ज़िले में अपने घर गया था। वहीं से मै मधुबनी के लक्ष्मी बाबू और रामदेव बाबू के कहने से मधुबनी गया। उन लोगों ने मुझे इसलिए बुलाया था कि मैं वहाँ कि कत्तिनों को आठ आने मज़दूरी देने की अपनी सुधार-योजना का अध्ययन करूँ। वहाँ के लोगों से बात-चीत करके मै सेमरी के देहाती क्षेत्रों को देखने चला गया और लक्ष्मी बाबू चंपारन ज़िले के सरकारी बेसिक शिक्षा केन्द्रों का निरीक्षण करने गये। गाँव से तीन-चार दिन बाद जिस दिन बाद मै मधुबनी लौटा, उसी दिन लक्ष्मी बाबू भी चंपारन से लौट आये और बताया कि तुम वहाँ आई हुई हो और मुझे और रामदेव बाबू को तुमने बुलाया है। उसी दिन रात की गाड़ी से चल कर हम दोनों तुम्हारे पास पहुँच गये और तुम्हारे साथ वहा के प्रयोग का अध्ययन किया। चंपारन जाना और वहा की बेसिक-शिक्षा प्रणाली का अध्ययन करना मेरे कार्य-क्रम मे नहीं था। लेकिन वहा जाने से लाभ ही हुआ। इस-लिए मै मन में तुम्हें धन्यवाद देता रहा। फिर रात को भीड़ मे तुम्हारे साथ मै पटना बेसिक-ट्रेनिङ्ग कालेज देखने गया। तब से अब तक प्रायः २ साल बीत चुके हैं लेकिन मालूम होता है कि सब कल की बातें हैं। रात भर मे कई जगह गाड़ी बदलने के लिए इन्तज़ार और शिक्षा-सम्बन्धी योजनाओ की बाबत हमारी आलोचनाएँ तुम्हें याद होंगी। मेरी योजनाओं के लिए तुम्हारा उत्साह, उनके लिए मदद का तुम्हारा वादा आदि बातें मानो अभी हुई हैं। मेरे सामने एक बड़ी कठिनाई थी। मेरे पास प्रयोग करने के लिए कोई अपना साथी नहीं था; तुमने श्रीगोविन्द भाई की बाबत कहा। वे उस दिन पटना में ही

थे, लेकिन शायद कहीं गये हुए थे। अतः मुझसे मुलाकात न हो सकी और मैं ज़रूरी काम से उसी दिन पटना से वापस चला आया।

बाद को तुम्हारे कहने से गोविन्द भाई रणीवा आये और मेरी योजना की बाबत मुझसे समझना चाहा। पिछले दो साल तक मैंने किस तरह प्रौढ शिक्षा का काम चलाया था, उसके अनुभव और उस विषय पर अपनी राय दे चुका हूँ। किस प्रकार उद्योग केन्द्र के साथ-साथ निम्न प्राथमिक रात्रि-पाठशालाओं का संघटन करने की चेष्टा की थी उसे भी लिख चुका हूँ। मैं चाहता था कि उन शिक्षा-योजनाओं के साथ साथ कोई ऐसी योजना चलाई जाय जिससे क्रमशः बेसिक शिक्षा के प्रयोग की ओर बढ़ सकूं। आरंभ से ही पूर्ण रूप से बेसिक-पद्धति से प्रयोग करने की हिम्मत मुझे नहीं हुई। उसके लिए न मुझे अनुभव था, न साधन ही थे। आश्रम भी उस समय किसी नये प्रयोग के लिए मंजूरी देने को तैयार नहीं था। तुम्हें मालूम है कि मैं कोई काम शुरू करने से पहले उसके लिए अनुकूल वातावरण पैदा करने की चेष्टा करता हूँ अतः मैंने यह निश्चय किया कि अभी कताई-द्वारा न कर के कताई के साथ शिक्षा की व्यवस्था की जाय। बेसिक-पद्धति अभी तक तुम्हीं लोगों के लिए प्रयोग की दशा में थी। जनता के सामने यह पद्धति एक तरह से अनिश्चित पद्धति ही थी। अतएव फिलहाल मैंने उसे सार्वजनिक रूप से चलाना उचित नहीं समझा। मैंने सोचा कि तुम लोगों की सफलता तक इन्तज़ार न कर के अगर पुराने पाठ्य-क्रम को ही उद्योग के साथ संयुक्त कर के विस्तृत क्षेत्र में शिक्षा का कार्य आरम्भ किया जाय तो दस्तकारी के द्वारा वायुमंडल में उचित परिवर्तन हो कर वर्तमान-पद्धति का दोष बहुत कुछ दूर हो जायगा और तुम्हारी बेसिक पद्धति के लिए आधार तैयार होता रहेगा। अतएव पाठ्य-क्रम तो यद्यपि पुराना ही रक्खा गया तथापि कताई का समय और क्रम तालीमी संघ के निर्देशानुसार ही मिलाया गया। गोविन्द भाई से मैंने कहा कि मेरी यह योजना 'एसिक शिक्षा'

है; 'बेसिक- शिक्षा' इसके बाद आयेगी। गोविन्द भाई को मेरी योजना पसन्द आई और इसके प्रयोग के लिए रणीवा में रह गये।

मै चाहता था कि इस प्रकार की योजना गाव वालों की चेष्टा तथा साधन से ही चलाई जाय अतः मैंने अपनी योजना जनता के सामने साफ कर देने के लिए तीन चार सौ गावों के मित्रो का एक शिक्षा-सम्मेलन संघटित किया और उसी में अपनी योजना रक्खी। जनता में शिक्षा के लिए उत्साह था ही, अतः उन्होंने इस योजना का हृदय से स्वागत किया। उन्हीं मित्रो मे से कुछ लोगो की एक छोटी समिति पर संघटन का भार सौंपा गया। स्थानीय दो-तीन नौजवान अपने-अपने गाव मे प्रयोग करने को और गाव के लोग साधन प्रस्तुत करने को तैयार हो गये। इन साधनो को संघटित करके गोविन्द भाई ने प्रयोग के लिए दो उच्च प्राथमिक विद्यालयों का कार्य प्रारभ कर दिया। दो-तीन मास मे ही उन्होंने देख लिया कि इस प्रकार की शिक्षा-योजना देहात में सफलता के साथ चल सकती है और यह विचार हुआ कि काग़ज़ के कारख़ाने वालो मे जो लोग कुछ पढ़े-लिखे हैं, उन्हे भी इसी प्रकार पाठशाला चलाने की शिक्षा दी जाय। बरसात मे काग़ज़ के कारख़ाने का काम, सूखने की दिक्कत के कारण, लगभग बन्द-सा ही रहता है। इस कारण जुलाई, अगस्त और सितंबर के महीने इसके लिए अनुकूल भी थे। मैंने काग़ज़ वालों के सामने अपना प्रस्ताव रक्खा; उनमे जो योग्य व्यक्ति थे वे सहर्ष तैयार हो गये। उनके लिए धुनाई कताई की शास्त्रीय शिक्षा की व्यवस्था की गई।

इसके उपरान्त यह विचार हुआ कि गाव के साधन तथा चेष्टाओं का संघटन करके उपर्युक्त योजना के साथ, बेसिक शिक्षा के पूर्ण प्रयोग के लिए आश्रम मे एक विद्यालय खोला जाय जिसमे हम लोगो को अनुभव भी हो सके और हमारी देहाती पाठशाला के शिक्षकों को भी बेसिक शिक्षा की रूप-रेखा मालूम होती रहे। आश्रम

की प्रबन्धक समिति तथा साधारण सभा की बैठक अगस्त मे होने वाली थी। उसमे पेश करने के लिए मैने एक योजना और एक बजट बनाया लेकिन उससे पहले ही ९ अगस्त का दिन आ गया और सब स्वाहा हो गया। उसके बाद अब डेढ साल हो गये। मालूम नही और कितने वर्ष इसी तरह जेल मे ही बीतेगे। जब हम सब बाहर होंगे, तो उम्मीद है कि तुम लोगो का प्रयोग काफी प्रगति कर चुका होगा और फिर हमे बीच का रास्ता नही ढूँढना पड़ेगा। लेकिन मेरा अभी भी ख्याल यह है कि मुझे स्त्री-शिक्षा कार्य-क्रम चलाने का मौका मिलेगा तो पहले अपनी 'एसिक' चला कर वायुमंडल बनाने के बाद तुम्हारी 'बेसिक' चलाने का प्रबन्ध करूँगा। हाँ, इतना जरूर होगा कि पहले वाले कार्यक्रम की अवधि अब थोड़ी होगी। क्योंकि भविष्य मे तुम लोगों का निश्चित निर्देश भी मिलेगा और गाव मे अच्छे किस्म के कार्यकर्ता भी मिलेगे, ऐसी आशा मुझे हो गई है।

रणीवाँ के उपर्युक्त कार्यक्रम के अलावा आश्रम के खादी कार्यक्रम मे अपनी कल्पना के अनुसार कुछ प्रयोग करने का भी मौका इस बीच मिला। ये प्रयोग उन्हीं प्रयोगों की परंपरा मे थे जिन्हे मै पहले अकबरपुर के क्षेत्र मे करने की चेष्टा करता रहता था, लेकिन उन्हें यहाँ बयान करने मे यह पत्र बहुत बड़ा हो जायगा। अतः आगे फिर कभी उन्हे लिखूंगा। आज केवल रणीवाँ के अनुभव के आधार पर ग्राम-उद्योग का कार्यक्रम शुरू करने के लिए किन बातों पर ध्यान देना चाहिए, केवल इसी का जिक्र करके पत्र समाप्त करूँगा।

कार्यक्षेत्र का चुनाव सन् १९३८ के दिसम्बर मे कांग्रेस सरकार की मदद से रणीवाँ मे ग्रामोद्योग विद्यालय की स्थापना की गई थी जो सन् १९४२ के अगस्त के आन्दोलन मे समाप्त हो गया। विद्यालय सिर्फ साढ़े तीन साल ही चल पाया। इस साढ़े तीन साल मे दस मास के लिए जेल चला गया था। इस थोड़े दिन के काम से नतीजा ही क्या निकल सकता था और निकला भी नहीं। इस दृष्टि से लोग

कह सकते हैं कि रणीवाँ का प्रयोग सफल नही हुआ। लेकिन इतने दिन में ही हमने करीब ८०० छात्रों को शिक्षा दी। सात-आठ उद्योगों का प्रयोग किया और किस प्रकार उन्हें देहातों में प्रसारित किया जा सकता है, इसका अनुभव प्राप्त किया। यहाँ के अनुभव के कारण हम भावी योजनाएँ आरंभ से ही उचित रीति से चला सकेंगे। पहली बात क्षेत्र चुनने की होगी जिसके लिए निम्न-लिखित बातें दृष्टि मे रखनी जरूरी है।

१—जहाँ काम शुरू किया जाय वहाँ के लिए यातायात की सुविधा हो। तुमने देखा होगा कि रणीवाँ आने जाने और माल ढोने में कितनी मुश्किल होती थी। यह सत्य है कि अगर सुदूर देहाती इलाकों में यह काम नहीं शुरू करेंगे तो हम जनता को इतना अधिक आकृष्ट नही कर सकते। क्योंकि बाजार और कस्बा आदि स्थानों मे लोग कुछ नीरस होते हैं। उनकी समस्या भी देहात के समान जटिल नहीं होती। इसलिए उन्हें अपने दैनिक कार्यक्रम से बाहर किसी वस्तु से दिलचस्पी नही होती। वहाँ लोगों मे आपस का व्यवहार शुष्क होता है। अतएव अगर हमको ग्राम-सुधार की दृष्टि से अपनी योजना चलानी है तो देहात के अन्दर काम शुरू करना होगा। यह भी सच है कि हमारे देश में देहाती इलाको मे यातायात की सुविधा है ही नहीं। कच्ची सड़कें भी तो नहीं के बराबर हैं और जो हैं भी वे बरसात मे काम के योग्य नही रह जातीं। लेकिन प्रथम प्रयोग की अवस्था में हमको विस्तृत क्षेत्र तो चाहिए नही और कुछ देहाती क्षेत्र तो यातायात की सुविधानुसार भी मिल ही सकता है। हमे क्षेत्र चुनते समय ऐसे ही स्थान की खोज करनी चाहिए।

२—जिस क्षेत्र मे काम शुरू करना है वहा की जनता में कुछ उत्साह हो तथा हमारे काम से थोड़ी स्वाभाविक दिलचस्पी हो। यह सच है कि परपरागत ग़रीबी के कारण देहाती जन-समूह में इतनी निराशा आ गई है कि उनके अन्दर सहज मे किसी वस्तु के लिए

दिलचस्पी नहीं पैदा होती। लेकिन इस निराशा का भी प्रकार और मात्रा-भेद तो है ही। हा, इस दृष्टि कोण से क्षेत्र चुनना कुछ आसान नही है। इसमे भूल की गुंजाइश काफी है। जब कभी तुम कोई भी योजना बना कर उसे देहाती जनता के सामने पेश करोगी और कहोगी कि मै उन्ही के यहा प्रयोग करूँगी जिन्हें दिलचस्पी है, तो क़रीब-करीव सभी स्थानों के लोग इस प्रकार आग्रह दिखायेंगे कि मानो तुम्हारी मदद करने मे और अपने यहा तुम्हारी योजना को सफल बनाने के लिए सब के सव जान दे देने को तैयार हैं। फिर जब तुम अपना आसन जमा दोगी तो वे दिखाई भी न देंगे। इस विषय में मुझे वहुत कुछ अनुभव हो चुका है। अतः मै सबको इस सम्बन्ध मे सचेत किये देता हूँ। इस पर बहुत विचार करने पर मै इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि अपना काम शुरू करने से पहले काम की कुछ शर्तं स्थानीय जनता पर लगा देनी चाहिए। उसके पूरा हो जाने पर इसका अन्दाज़ा लग जायगा कि उनमे कितनी दिलचस्पी है। मेरे ख़्याल से हम जहा काम करें वहा के लोग कम से कम हमारे लिए तथा हमारे कार्यक्रम के लिए स्थान की व्यवस्था करें। इसके अलावा परिस्थिति के अनुसार दूसरी शर्तें भी लगाई जा सकती हैं।

३—जिन उद्योगों को आरम्भ करना हो उनके लिए कच्चा माल और विशेष कर कारीगरों की सुविधा हो। वैसे तो देहाती क्षेत्र मे अच्छे कारीगर मिल ही नहीं सकते फिर भी कुछ पेशेवाले कारीगर होने पर प्रारम्भ मे सहूलियत होगी। तुम समझती होगी कि मै यह राय अपनी राय के ख़िलाफ दे रहा हूँ। यह बात नहीं है। अभी मैंने कहा है कि हमे जन-समाज की आवश्यकताओं के लिए स्वावलवन की दृष्टि से ही ग्राम-उद्योगों को विकेन्द्रित करके गाव गाव फैला देना चाहिए, और जिस क्षेत्र मे कारीगर नही हैं वहा उन्हें पैदा करना चाहिए। मैंने यह भी कहा है कि हमें आज ऐसे पढ़े-लिखे नौजवानों को, जो भावना-शील हों, विभिन्न उद्योगों का कारीगर बनाकर उनके

घर पर ही उद्योगों को स्थापित करना है, ताकि वे हमारे ढंग से ग्राम-सुधार कार्य की प्रगति कर सकें। लेकिन मैं उस समय अपने ध्येय की बात कर रहा था। व्यावहारिक दृष्टि से आरंभ से ही अगर अपने काम को कुछ साकार रूप नहीं दे सकेंगे तो प्रथमतः तो साधनों से मदद करने वाले हमारे साथी घबड़ाकर उसकी सफलता से निराश हो जायेंगे और हमारी मदद नहीं करेंगे, साथ ही हमको हर प्रकार से निरुत्साह करेंगे। मैंने देखा है कि प्रायः लोग ग्राम-उद्योग और ग्राम-सुधार जैसे अंधकार-मय कार्यक्रम की सफलता के लिए स्वाभाविक विलंब में धैर्य्य नहीं रखते हैं और तात्कालिक नतीजा न देख कर घबरा जाते हैं। अपनी योजना की निश्चित सफलता पर तुम्हें चाहे जितना विश्वास हो किन्तु इस वस्तु स्थिति से अपने को अलग तो नहीं रख सकती हो। आखिर साथी तथा शुभाकांक्षियों के सहयोग और प्रोत्साहन की आवश्यकता तो होती ही है। वही तो हमारे पथ का पाथेय है। दूसरी बात यह है कि जनता भी अपने सामने हमारी योजना के साकार रूप को देखकर ही आकर्षित हो सकती है। जिन पढ़े-लिखे नौजवानों को हम तैयार करेंगे वे भी काम की कुछ आर्थिक सफलता को देखकर ही इधर झुकेंगे। इसलिए हमको इसकी भी चिन्ता करनी है कि हमारा उत्पादन का काम आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी हो। और अगर हम आरंभ से ही स्वावलम्बी नहीं होंगे तो हम उतने साधन ही कहाँ से लावेंगे। अतः हमें शुरू में पेशेवर कारीगरों से उत्पादन का प्रारंभ करा के तब क्रमशः अपने ध्येय की ओर बढ़ना होगा।

उपर्युक्त तीन बातों को ध्यान में रखकर जहाँ काम शुरू करें वहां उद्योग के साथ शिक्षा, सुधार, सफाई आदि ग्राम-उत्थान के काम भी एक साथ ही शुरू करने होंगे। कारण यह है कि हमारे सामाजिक जीवन में अलग-अलग महकमे नहीं हैं। हर एक कार्यक्रम एक दूसरे से अनुबन्धित हैं; एक दूसरे पर असर रखता है। आजकल

विशेषज्ञता की जो धूम मची हुई है, वह आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक केन्द्र-वाद का फल है जिसने मनुष्य को पूरा मनुष्य न रहने देकर मशीन का पुर्ज़ा बना दिया है। मै जानता हूँ कि इस विषय में मेरे साथ सहमत होने वाले साथी कम हैं; लेकिन अनुभव से मेरा विश्वास दृढ हो गया है कि ग्राम-उत्थान के किसी भी कार्यक्रम को अलग करके चलाया ही नही जा सकता। अगर वैसा किया गया तो वह एक मुर्दा कार्यक्रम हो जायगा। उसका सामाजिक जीवन से कोई सम्बन्ध नही रहेगा और हमारे लिए उस कार्यक्रम को चलाना निरर्थक बोझा ढोना होगा; वह समाज के संघटन का हिस्सा नही होगा।

आज यहीं पत्र समाप्त करता हूँ। इधर कई दिनों से जेल मे कोलाहल मचा हुआ है। कुछ लोग छूट रहे हैं, बाकी लोग आशा बाधे बैठे हुए हैं। जेल भी एक अजीब वस्तु है। जब कोई आन्दोलन शुरू होता है तो जेल जाने के लिए व्याकुल हो जाते हैं। अगर सघटन की आवश्यकता के लिए अथवा रचनात्मक कार्यक्रम के कारण जेल जाने से रोका जाता है तो परीशान हो जाते हैं। लेकिन जब जेल आ जाते हैं तो फौरन छूटने के दिन गिनने लगते हैं। यह भी एक अजीब माया है। खैर, यह कोलाहल भी अधिक दिन नहीं चलेगा। फिर निश्चिन्त होकर लिख सकूंगा। अतः आज विदा दो। नमस्कार।

---

[३]

कताई-द्वारा सर्वांग ग्राम-सेवा की ओर

५ दिसम्बर, सन् ४३

इधर तुम लोगों का कोई समाचार नहीं मिला। मेरठ के पत्र से मालूम हुआ कि श्री आर्यनायकम् ने मेरे लिए कुछ किताबें भेजी थीं, लेकिन वे मुझे मिली नही। पता लगाना कि क्या हुई?

आज कल यहां का वातावरण कुछ शान्त है। जिनको छूटना था छूट गये। अब जो रह गये वे शायद लड़ाई की समाप्ति तक यहीं पड़े रहेंगे। मालूम हुआ कि विचित्र भाई और मेरठ के दूसरे भाई छूट गये हैं। यह भी मालूम हुआ कि रणीवाँ के साथियों को भी छोड़ दिया गया है, केवल करण को रोक लिया गया है। मुझे प्रसन्नता है कि मै छूटने से बच गया। आज कल छूट कर भी कुछ फायदा नहीं। सरकार कोई काम करने नही देगी। ख़ास तौर से देहातों में तो हम लोगों का घुसना संभव ही नहीं होगा। आश्रम के उत्पादन और बिक्री का जो काम बच गया है उसके लिए जितने लोग बाहर हैं वे ही काफी हैं। अतः इस समय जेल मे बैठ कर शान्ति से अध्ययन करने मे ही ज्यादा फायदा है। इधर कान की तकलीफ़ के कारण काफी कमज़ोर हो गया हूँ। अब कुछ समय और आराम कर लेने से स्वास्थ्य भी ठीक हो जायगा।

मै अपने पिछले पत्र मे सन् ४२ मे जेल से छूटने के बाद के ६ माह के अनुभवो का वर्णन कर रहा था। उसमे कताई सम्बन्धी कार्य को जान-बूझकर छोड़ दिया था क्योंकि यह काम रणीवाँ के कार्य-क्रम के अलावा आश्रम के मुख्य खादी-विभाग से सम्बन्ध रखता है। जेल से लौटने पर देखा कि कत्तिनों के सुधार की दृष्टि से जो कुछ प्रयोग शुरू किया था, वह सब बन्द हो गया है। अकबरपुर के मातहत निनाये क्षेत्र का काम भी बन्द था। मेरे चले जाने से आश्रम मे उस दृष्टिकोण से प्रयोग करने वाला दूसरा कोई नहीं रह गया था। अतः उसे बन्द कर देना ही उचित था नहीं तो बेकार धन तथा समय का अपव्यय होता। जितना प्रयोग पहले कर पाया था उसका अनुभव और उसके आधार पर जेल मे जो कुछ विचार करता रहा, लिख चुका हूँ। उसके अनुसार आठ आना मजदूरी वाली योजना का भी कुछ व्यावहारिक अनुभव क्रियात्मक प्रयोग के आधार पर करना था। उस समय रामधारी भाई अकबरपुर तथा पूर्वी ज़िलो के उत्पादन केन्द्रों

के व्यवस्थापक थे। उनसे मैने अपना विचार प्रकट किया। अपनी कल्पना का कुछ अन्दाज़ दिया। मैने उनसे कहा कि निनाये के क्षेत्र को फिर से लिया जाय या दूसरे किसी क्षेत्र मे प्रयोग आरंभ किया जाय। साथ ही मैने यह भी कहा कि अगर मेरी कल्पना के अनुसार काम करना है तो अकबरपुर के समस्त क्षेत्र के दृष्टिकोण तथा वायु मंडल मे परिवर्तन लाना होगा क्योंकि अगर बाकी क्षेत्र के कार्यकर्ता पुराने दृष्टिकोण से काम करेगे तो केवल एक जगह पर थोड़ा काम करने से हमको सफलता नहीं मिल सकती। अब तक जो कुछ किया वह सब केवल कताई के द्वारा हम कितना काम कर सकते हैं, इसकी संभावनाओं को समझने के लिए किया। अतः वह काम मौजूदा वायु मडल मे ही एक-दो गावों मे प्रयोग करने से मेरे उद्देश्य के अनुसार पूरा हो सकता है। लेकिन अब तो हमे सारा कार्यक्रम ही नये ढंग से चलाना है। अतः अकबरपुर के सारे क्षेत्र के लोगों मे दृष्टिकोण का परिवर्तन करना ही होगा। इसके लिए नये कार्यकर्ताओं को नये सिरे से शिक्षा दे कर उन्हीं के द्वारा धीरे-धीरे कार्य-संचालन किया जाय। रामधारी भाई को मेरी बात पसन्द तो आई लेकिन अकबरपुर के क्षेत्र के बारे मे उन्हे आशा नही थी। उन्होंने कहा "अकबरपुर अब म्यूनिसपलिटी की भैसा गाड़ी हो गया है, वह अपनी ही चाल से चलेगा। आप किसी नये केन्द्र को लीजिए।" उन का कहना ठीक ही था। नये क्षेत्र मे सफलता पाने के बाद ही पुराने क्षेत्र मे काम आसान होगा। थोड़े ही दिन हुए बस्ती ज़िले मे मगहर केन्द्र खोला गया था और वहाँ काम बढाने के लिए आश्रम ने तय कर लिया था। अतः मगहर के क्षेत्र मे अपना प्रयोग करने की बात सोची गई।

नूतन प्रयोग के लिए क्षेत्र का चुनाव

उन्ही दिनों बापू जी काशी विश्वविद्यालय के उत्सव के लिए बनारस आये हुए थे। आश्रम के अधिकतर लोग और बिहार के

लक्ष्मी बाबू आदि भी वहाँ उपस्थित थे। आठ आना वाली योजना खादी जगत् में प्रकाशित हो चुकी थी और उसकी चर्चा भी थी। मैंने देखा कि आश्रम के बड़े भाई लोग मेरे विचार को पागलपन समझते हैं। अतः मैंने अपनी योजना उस समय आश्रम की प्रबन्धक समिति के सामने पेश नहीं की। हाँ, बिहार चर्खा संघ के लोगों को मेरे विचार पसन्द आये और लक्ष्मी बाबू ने कहा—"आप एक बार आइए और वहाँ की परिस्थिति के अनुसार योजना बनाइए तो हम लोग प्रयोग करने को तैयार हैं।" रामदेव भाई तो काफी उत्साहित मालूम पड़ते थे। प्रबन्धक समिति के सामने तो मैंने अपना विचार प्रकट नहीं किया लेकिन जो योजना आश्रम ने मगहर केन्द्र के द्वारा गोरखपुर ज़िले में सूत बढ़ाने तथा सुधारने की रक्खी उसी में मुझे काफी दूर तक सुधार करने की गुंजाइश मालूम पड़ी। मैंने सोचा कि आरंभ से ही अगर मैं मगहर में अपने दृष्टिकोण से काम चला सकूँ और इस बीच बिहार में कुछ सफलता मिले तो अगस्त की सालाना बैठक में अपनी पूर्ण योजना पेश कर सकूँगा। मगहर केन्द्र की व्यवस्था रामधारी भाई ही कर रहे थे और वे नये ढंग से काम करना पसन्द ही करते थे अतः मैंने उस समय उतने में ही सन्तोष किया।

उसके बाद मैं बिहार गया और वहाँ की परिस्थिति के अनुसार आठ आने मज़दूरी के द्वारा कत्तिनों की सुधार-योजना बनाई। सत्रीक कार्यकर्ताओं की शिक्षा-व्यवस्था रामदेव बाबू ने अपने हाथ में ली। पहले-पहल सौ कत्तिनों से काम शुरू करने का निश्चय हुआ। इसकी सूचना मैं तुम्हें चंपारन में मुलाकात होने पर दे ही चुका हूँ।

चंपारन और पटना से लौटकर मैं सीधा मगहर गया और स्थानीय सूत-सुधार कार्यकर्ताओं को बुलाकर १० दिन के लिए शिक्षा कैम्प खोला। उसमें मैंने अपनी योजना और उस योजना के द्वारा हम देहाती स्वावलम्बन तथा स्वतन्त्रता का संगठन कर सकेंगे, इत्यादि बातें समझाईं और उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में भेज दिया। मगहर के मातहत

गोरखपुर और वस्ती के ज़िलों के लिए उस समय जो योजना बनाई उसकी रूपरेखा जानने की उत्सुकता होना तुम्हारे लिए स्वाभाविक है। अतः उसके बारे मे दो-चार बातें कहना अच्छा होगा।

उस समय लड़ाई के कारण देश भर में वस्त्र-समस्या बहुत उग्र रूप धारण किये थी। प्रत्येक प्रान्त के चर्खा संघ के सामने जल्दी उत्पादन बढाने की समस्या थी। आश्रम भी जल्दी चर्खे का प्रचार करना चाहता था। लेकिन खादी जगत् की वर्तमान परिस्थिति में किसी भी प्रकार के चर्खे की तादाद बढा देने से काम नहीं चल सकता था। इतने दिन में खादी बहुत तरक्क़ी कर चुकी थी। पहले जैसी रद्दी और कमज़ोर सूत की खादी बनाना अब संभव नहीं था। अब तो भडारों मे खादी की किस्म इतनी एकसार और मज़बूत हो गई है कि नई कत्तिनों के कमज़ोर और असमान सूत का माल लोग पसन्द ही नहीं कर सकते। अतः आश्रम के सामने जल्दी से उत्पादन बढाने के साथ-साथ प्रारभ से ही ऐसी खादी बनाने की समस्या थी जो पुराने केन्द्रों की खादी के मुकाबले खप सकती हो। और यह तभी संभव था जब हम प्रत्येक कत्तिन को शुरू मे ही शास्त्रीय ढग से कताई की विभिन्न प्रकियाओ की शिक्षा दे सकते। इसका मतलब यह कि हम जो हज़ारो की तादाद मे कत्तिनों की संख्या बढाना चाहते थे, उसके लिए आवश्यक था कि उनमे से प्रत्येक को किसी कताई विद्यालय मे बैठाकर कुछ दिन तालीम दे। इतना विराट् काम करना आसान नहीं था। इसके लिए सैकड़ों शिक्षकों की आवश्यकता थी। शिक्षकों को कताईशास्त्र सिखाना, फिर उनके द्वारा कत्तिनों की शिक्षा आदि का सारा काम जल्दी से करना था। उन ग्राम-शिक्षकों को कुछ वृत्ति भी देना ज़रूरी था। इन सारे कामो के लिए जितना धन ख़र्च करना आवश्यक होता उतन धन आश्रम के पास कहाँ था? कत्तिनों का शिक्षा-कैम्प चलाने के लिए मैने अकबरपुर मे स्थानीय ग्राम-शिक्षकों

कल्पनाएँ और कठिनाइयाँ

का संघटन पहले किया था, जिसका विवरण मै तुम्हे पहले ही लिख चुका हूँ। वह प्रयोग काफी कम ख़र्च का था। लेकिन उस प्रकार के ग्राम-शिक्षकों को भी थोड़ी वृत्ति तो देनी ही होती थी। इसलिए बड़ी तादाद मे उनको सिखाना आश्रम के साधनो से बाहर की बात थी। अतः आश्रम ने यह तै किया कि कम से कम ग्राम-शिक्षक की वृत्ति गाँव वाले ख़ुद दे। मै पहले कह चुका हूँ कि बापू जी खादी तथा ग्राम-उद्योग के द्वारा सहज और स्वाभाविक लोकतंत्र की स्थापना करना चाहते हैं और यह तभी हो सकता है जब ग्रामवासी अपना काम ख़ुद संचालन कर सके। हमारे संघटन की प्रगति ऐसी होनी चाहिए कि हम उत्पादन करने वालो के स्वतत्र और सुव्यवस्थित संघटनो की क्रमशः स्थापना करके उन पर सारा काम सौप सके। काग़ज़ के उद्योग के सिलसिले मे मैने इस दिशा में कुछ प्रगति भी कर रखी थी। लेकिन मुझे अब तक कोई ऐसा सूत्र नहीं मिल रहा था जिसके ज़रिये मैं उस प्रकार के स्वावलंबी संघटन की नीव डाल सकता। ग्राम-उद्योग के समस्त कार्यक्रम की बुनियाद तो चर्खा ही है। इसीलिए बापू जी बार-बार चर्खे की सौर मडल के सूर्य से और बाकी उद्योगो की ग्रह-उपग्रह से तुलना करते हैं। बात भी ऐसी.हो है। चर्खा मनुष्य की तीन मौलिक आवश्यकताओं—अन्न, वस्त्र तथा आश्रय—का प्रधान साधन है। इस उद्योग मे गाँव का प्रत्येक परिवार शामिल होता है; अतएव चर्खा चलाने वालो के स्वावलम्बी संघटन का अर्थ समस्त ग्राम-समाज का लोकतत्र के आधार पर संघटित होना है; क्योंकि चर्खे के द्वारा आबादी के समस्त परिवार उस संघटन मे शामिल होते हैं। इसलिए आश्रम के इस निश्चय से कि ग्राम-शिक्षक का वेतन ग्रामवासी ही दे मै बहुत उत्साहित हुआ। मैने देखा कि इस निश्चय की कामयाबी की चेष्टा से इस बात की परीक्षा हो जायगी कि अमुक ग्राम के लोगों मे चर्खा योजना में वाक़ई दिलचस्पी है या नहीं और ग्राम-शिक्षक के पुरस्कार की इस रकम का

चन्दा वसूल करने मे ग्राम-वासियों को थोड़े-बहुत संघटन की आवश्यकता ह गी। उसी का विकास करके हम उनको पूर्ण रूप से संघटित करेंगे तथा भावी व्यवस्था की इकाई बना सकेंगे।

मै मगहर गया और इन्हीं बातो को सोचकर वहाँ का कार्यक्रम बनाया। जनता मे वस्त्र-संकट था ही। हमारे वहा पहुँचने पर चारों तरफ से इस बात की माग आने लगी कि उनके क्षेत्र मे केन्द्र खोला जाय। मैने उनको अपनी योजना बताई और इसका वादा किया कि जो कोई भी उस योजना के अनुसार अपने यहा काम शुरू कर सकेगा, उसके यहा केन्द्र खोला जायगा। योजना इस प्रकार थी:—

प्रथम तीन मास तक ग्राम-शिक्षकों को शिक्षा देना। इसके लिए छः क्षेत्रों मे शिक्षण-शिविर खोले गये। उन क्षेत्रो मे मिडिल पास से लेकर प्रवेशिका तक की योग्यता वाले नौजवानों से अपील की गई कि आज की वस्त्र-समस्या हल करने के लिए और आगे के ग्राम-सुधार कार्य के संचालन में सहायक होने के लिए उनको स्वयसेवक का काम करना चाहिए। उनके लिए यह नियम रखा गया कि वे आश्रम के शिविर मे तीन माह तक की शिक्षा लें। इसके लिए वे प्रतिदिन घर से आकर काम सीखें। चर्खा रुई आदि सामान आश्रम उनको उधार दे देगा। और वे उसी तीन मास मे शिक्षा-काल के उत्पादन से उसका दाम पूरा कर दें। उद्देश्य यह था कि आरंभ से ही व्यावहारिक रूप से अगर वे स्वावलम्बी बन सकेंगे तो उनमे स्वावलम्बन के सिद्धान्त पर विश्वास पैदा हो सकेगा। तभी तो वे ग्राम-वासियों को इसकी संभावनाएँ बता सकेंगे और उनका असर भी पड़ेगा। साथ ही भविष्य के लिए उन्हें चर्खा आदि सामान बिना अतिरिक्त दाम खर्चे मिल जायगा। तीन माह की शिक्षा के बाद जो लोग परीक्षा मे पास होंगे, उन्हे ग्राम-शिक्षक का प्रमाण-पत्र दिया जायगा, ताकि ग्राम-वासी ऐसे प्रमाणित शिक्षको से ही सिखाने का काम ले सकें। छः शिविरों मे करीब

योजना

१५० नौजवान शिक्षा पाने लगे। शिविरों का काम पहली मार्च से शुरू हुआ था। ३० मई की परीक्षा में करीब ८० नौजवान पास हुए और जून के प्रथम सप्ताह में ही वे काम में लगा दिये गये।

ग्राम-शिक्षक का काम यह स्थिर किया गया कि वे अपने गाव से तीन मील तक दूर के किसी गाव में सात सप्ताह का शिक्षा-शिविर स्थानीय स्त्रियो के लिए चलायेंगे। एक सप्ताह प्रारम्भिक व्यवस्था का समय लेकर उन्हें दो मास का समय एक गाव मे देना था। इस काम के लिए शिक्षकों को गाव वालों से दस रुपया फीस पाने का नियम रक्खा गया। इसके लिए आश्रम की ओर से देहातों मे अपनी योजना का प्रचार किया गया। उनसे कहा गया कि जो गाव इस योजना मे शामिल होना चाहते हैं वे हमारे पास आवेदन पत्र भेजे। आवेदन-पत्र के साथ उन्हे दस रुपया फीस ग्राम-शिक्षक के लिए और दो रुपये आश्रम के निरीक्षण के सफर ख़र्च के लिए जमा करनी होगी। हमारे प्रचार का आशातीत फल हुआ और सौ से ज्यादा गावों से आवेदन-पत्र आ गये। उन्ही गावो मे हमारे यहां शिक्षा पाये हुए शिक्षकों को लगा दिया गया। शिक्षको को बेकार न बैठना पड़े, इसलिए यह निश्चय किया गया कि प्रथम शिक्षा-शिविरों का शिक्षण समाप्त होने से पहले नये शिक्षा-शिविरों की व्यवस्था कर ली जाय।

गांव मे दो मास का कत्तिन शिक्षण-शिविर चलाने के लिए हमारे सुधार कार्यकर्ता को निरीक्षण के लिए बीच बीच मे जाना पड़ता था। शिक्षक तो दो मास के लिए सारे समय उस गाँव मे काम करता ही था। दो-एक उत्साही सज्जन उस गाँव मे होते ही थे, जिनके उद्योग से हमारी शर्त पूरी होकर वहाँ केन्द्र खुलने की नौबत आती थी। इससे दो मास की कोशिश से उस गाँव मे स्थायी और व्यवस्थित चर्खा समिति कायम करना मुश्किल न होता था। अतः मैने आरभ से ही ऐसा संघटन करना चाहा जिससे उन्हीं समितियों के द्वारा सारे क्षेत्र का संघटन किया जा सके। मेरा विचार था कि शुरू में समिति

के द्वारा कत्तिनों की कताई मे सुधार, आश्रम के सूतकेन्द्र और कत्तिनों के बीच के व्यवहार और रात्रि-पाठशालाओं के संघटन का काम किया जाय। फिर परिस्थिति के अनुसार दूसरे कार्यक्रम भी शामिल हो सकेंगे।

इन सारे कामों के लिए मुझे प्रायः मगहर जाना पड़ता था। अपने दृष्टिकोण से काम की नींव मज़बूत करने के लिए शुरू मे मेरा वहाँ रहना भी आवश्यक था। लेकिन वह नहीं हो सका। उन दिनों मुझे अधिक समय रणीवाँ मे लगाना था क्योंकि वहाँ के काम को पुनः संघटित करना था। अतः मगहर के भाइयों से अपनी शक्ति भर और सिद्धान्त के अनुसार काम करने को कहकर और यह वादा करके कि नवम्बर से दो-तीन मास तक वहीं अपना प्रधान अड्डा बना कर काम करूँगा, चला आया।

वस्त्र-स्वावलंबन की दृष्टि से हमें एक दूसरी समस्या भी हल करनी थी। इस प्रान्त के पूर्वी इलाके में कपास की खेती नही होती; परन्तु कताई के लिए स्थानीय कपास की व्यवस्था होना ज़रूरी है। जब दूसरी अच्छी कपास पैदा ही नहीं हो सकती है तो सहज ही मेरा ध्यान देव कपास की ओर गया। जाँच करने से मालूम हुआ कि दोनों जिलों में पहले देव कपास काफी होती थी और आजकल भी तिथि-त्यौहार, पूजा तथा यज्ञोपवीत के लिए लोगों के घर में एक-आध पेड मौजूद रहता है। कताई का अब तक विशेष महत्व नहीं रहा।

पूर्वी युक्तप्रान्त में कपास की कमी की समस्या

बिहार मे मस्लिन आदि बारीक सूत के लिए और कहीं-कहीं बहुत थोड़ी मात्रा मे इसका इस्तेमाल होता था। अतः मेरे लिए इसी के द्वारा वहाँ की कपास-समस्या हल करने का विचार दुस्साहस ही समझा जाता था। मैंने देखा कि देव-कपास से नीचे के नंबर का सूत भी ठीक कत जाता है, बल्कि रेशे अच्छे होने से उस सूत का कपड़ा मज़बूत होने की ज्यादा संभावना थी। फिर भी

इस कपास का विस्तृत प्रचार नही हो सका। इसका कारण संभवत. धुनाई की कठिनाई थी क्योंकि इसके रेशे बहुत मुलायम होने के कारण धुनते समय धुनकी मे लिपट जाते है। बारीक कातने वालों को बहुत कम रुई की आवश्यकता होती है। अतः वे हाथ से तुन कर पूनी बना सकते थे। मोटा सूत कातने वालो के लिए वैसा करना कहाँ संभव था?

उन्हीं दिनों विनोबा जी की नई तुनाई पद्धति से पूनी बनाने का 'प्रयोग चल रहा था। जेल से लौट कर वर्धा मे उस प्रयोग की प्रगति को मै देख भी आया था। तुनाई की पद्धति का जितना भी अनुभव कर सका था उससे मालूम हुआ कि लबे रेशे की तुनाई अधिक आसानी और गति से हो सकेगी। पूनी बनाने के इस नये ढ ग की प्रगति को देख कर देव कपास की भावी सफलता पर मेरा विश्वास और भी दृढ हो गया। अतः देव कपास के प्रचार के साथ-साथ मैने तुनाई का भी प्रयोग करना शुरू किया। रणीवाँ के विद्यालय मे और मगहर के सुधार कार्य-कर्ताओं के द्वारा ही मै प्रयोग करता रहा। यह प्रयोग अधिक दिन नही कर पाया था और एकाएक ६ अगस्त सिर पर आ पड़ा। यहाँ जेल मे तुनाई का अभ्यास कुछ दिन मैने खुद किया। इससे मुझे एक बात मालूम हुई। तुनाई की पूनी से रुई के रेशे समानान्तर हो जाते हैं। उससे सूत मज़बूत तो अवश्य ही होगा; तुनाई की गति भी अच्छी हो जायगी, लेकिन तुनाई मे समानता लाना सब लोगों के लिए सम्भव नहीं है। यह ख़ास कला की चीज़ है। अतएव तुनाई से अच्छी पूनी वही बना सकते हैं जिनमे स्वभावतः कला की प्रवृत्ति हो। अतएव अगर देव कपास को सार्वजनिक बनाना है तो उसकी तुनाई के लिए हमे प्रयोग करना होगा। फिर भी देव कपास की भावी सफलता पर मेरा विश्वास अभी तक कायम है। इसका कारण यह है कि पुरुषों से स्त्रियों मे कला की वृत्ति अधिक है

देव कपास की संभावनाएँ

और कुछ दिन प्रयोग करने से स्त्रियो-द्वारा तुनाई की समस्या हल होना सम्भव है।

देव कपास के प्रचार से एक दूसरा फायदा होता है। स्थायी पेड़ होने से आबादी के अन्दर घरों के आगे पीछे जो खाली ज़मीन रहती है वहाँ भी इसे लगाया जा सकता है। औसतन एक चर्खे के लिए पाँच-सात पेड़ काफी होते हैं। इतने पेड़ लगाने के लिए वैसी वेकार जगह करीव-करीव सभी गावों मे मिलेगी। इससे कृषि के लायक खेत अन्न पैदा करने के लिए ख़ाली रहते हैं। वैसे ही इस अभागे देश की आवादी के लिहाज़ से खेत इतने कम हैं कि भर पेट खाने के लिए अन्न की पैदावार काफी नही होती। अतः वस्त्र के लिए इसमे से जितनी कम ज़मीन ली जाय, उतनी ही उदर देवता पर कृपा होगी। इन वातों को सोच कर मै देव कपास का प्रचार ज़ोरों से करने लगा। जून-जुलाई मे वहा हज़ारों की तादाद मे लोगों ने पेड़ लगाये भी। मालूम नही कि अव उनका क्या हाल है ?

देहातों मे स्वावलम्बन की दृष्टि से चर्खे के प्रसार के साथ-साथ उसी क्षेत्र मे मै दूसरे प्रयोग भी करना चाहता था। सन् १९४१ मे जेल जाने से पहले अकवरपुर मे आश्रम के सुधार-विभाग की मातहत जो कत्तिन-विद्यालयो का प्रयोग कर रहा था, उसका हाल मैने आगरा जेल से लिखा था। आख़िरी दिनों किस प्रकार ६ मास का परिश्रमालय चलाने की कल्पना कर के दो गावों मे उसका प्रारभ करने का आयोजन कर रहा था और गिरफ्तार होने के कारण किस प्रकार कल्पना कार्यान्वित न हो सकी, सो मैने तुम्हे पूरा-पूरा लिखा था। अव मगहर मे उन्ही प्रयोगों के कुछ व्यावहारिक कार्यक्रम से चलाने के विचार से कम से कम एक स्थायी परिश्रमालय चलाने का निश्चय किया। विचार यह था कि एक ऐसा परिश्रमालय चलाया जाय जिसमें स्त्रियो को कताई की व्यावहारिक तथा वौद्धिक शिक्षा के

परिश्रमालय की योजना

साथ-साथ दर्जा ४ तक की तालीम दी जाय। परिश्रमालय का समय ५ घंटा कताई तथा ३ घटा पढाई का रखने का विचार किया। इस योजना को मगहर की बहिनो को समझाने के लिए उनकी एक सभा बुलाई। इस सभा मे तीन चार सौ बहिनें मौजूद थी। उनमे बहुत सी ऐसी बहुएँ थी जो हमेशा परदे मे रहती थी। उस सभा मे बहिनों के उत्साह को देख कर मुझको स्वयं थोड़ा आश्चर्य हुआ। वहाँ मैने अपनी योजना, बापू जी की कल्पना, बहिनो का समाज मे स्थान, समाज-रचना में उनका महत्व आदि बाते बताईं और कहा कि मेरे कल्पनानुसार परिश्रमालय का उद्देश उनको इन तमाम बातों की शिक्षा देना है। उनके ढंग से मालूम हुआ कि वे उस योजना को पसन्द करती हैं। बाद को क़रीब बीस-बाइस बहिनें मुझसे मिलीं और योजना के सम्बन्ध मे पूछ-ताछ की और उनमें से १३ परिश्रमालय में भर्ती होने के लिए तैयार हो गई। बाद को उनकी तादाद बढ़कर सत्रह हो गई थी। मैने उन्हे साफ़-साफ़ समझा दिया था कि इस प्रकार का परिश्रमालय चलाने के लिए उन्हे स्वावलंवी होना पड़ेगा। इसलिए यह तय किया गया कि वे अपने कते हुए सूत में से चार गुंडी सूत मासिक परिश्रमालय के खर्च के लिए देंगी। बाद को जब मै रणीवा चला आया था तो उन बहिनों ने मुझे लिखा कि वे चाहती हैं कि प्रारंभ में फीस दो गुण्डी रक्खी जाय। जब कताई की गति बढ़ जाय तो चार गुंडी कर दी जाय। बस्ती ज़िले से देहातों-जैसे पिछड़े इलाके में सत्रह स्त्रियाँ परदे से बाहर निकल कर परिश्रमालय मे भर्ती हो गई थी यही बड़ी बात थी। फिर वे वहाँ पढने के लिए फीस देना भी स्वीकार कर रही हैं, इतना ही मेरे संतोष के लिए काफी था। अतः मैने उसकी स्वीकृति दे दी। इस परिश्रमालय के द्वारा मै दो बातों की जाँच करना चाहता था। इसके द्वारा किस प्रकार की और कितनी शिक्षा गाँव की स्त्रियों को दी जा सकती है और आठ आना मजदूरी वाली योजना मे कत्तिनों को परिश्रमालय द्वारा जिस गति, समानता, तथा मज़बूती तक पहुँचाने

की कल्पना की थी वह कहाँ तक व्यावहारिक है। यह परिश्रमालय ६ अगस्त के तूफ़ान से पहले केवल दो माह चल पाया था। अतः इस प्रयोग का नतीजा मालूम न हो सका। इस तरह इस प्रकार के प्रयोगों का सिलसिला दूसरी बार टूटा। आशा है कि अब जेल से निकल कर जो चेष्टा करूँगा उसमे सफल ही हो कर रहूँगा। अब उस पर और गहराई से विचार करने को समय भी मिल गया। आजकल मै इस दिशा मे पिछले अनुभवों के आधार पर निश्चित योजनाओं पर विचार कर रहा हूँ। बाहर जाकर उन्हें चर्खा संघ की कौंसिल के सामने पेश करने का विचार है। संभव हुआ तो आगे के पत्रों मे उसकी कुछ रूप-रेखा बताने की कोशिश करूँगा।

इस प्रकार पिछली बार सन् ४० मे जितने कार्यक्रमों का प्रयोग करते हुए जेल चला आया था उन सब को जेल से लौट कर इन चार-पाँच महीनों मे फिर से जारी करने और उनकी प्रगति करने की चेष्टा करते हुए पुनः १६४२ मे जेल चला आया। यों वे काम छूट गये लेकिन अच्छा हुआ कि मै नैनी जेल आया। इलाहाबाद के कार्यकर्ताओं से मेरा विशेष परिचय नहीं था। उनसे परिचय हुआ। इस जेल मे रहने से एक ख़ास लाभ और हुआ; वह यह कि जिस बस्ती और गोरखपुर के ज़िलों में मैने अपना प्रयोग शुरू किया था उनके तमाम कार्यकर्त्ता इसी जेल मे आ गये। उनसे भी घनिष्ठता हुई। बाहर हमारे प्रयोग को वे उतना नहीं समझते थे जितना यहाँ। इन प्रयोगों की तमाम रूपरेखा और इसके पीछे जो कुछ भी मेरी कल्पना है, उसका पूरा पूरा नकशा उनके सामने आ गया। अधिकाश कार्यकर्ता सहमत भी हैं। अतः भविष्य मे यदि क्षेत्र में प्रयोग करना हुआ तो उनका संयोजित और सचेष्ट सहयोग मिलेगा ही।

अब मै अपने अनुभवों की कहानी समाप्त कर चुका हूँ। मालूम नहीं कि कब तक जेल मे ही रहना पड़ेगा और निकलने के बाद क्या स्थिति होगी। राष्ट्रीय जीवन का अब दूसरा अध्याय शुरू होने वाला

है। हमारा राष्ट्रीय जीवन भी ससार की स्थिति मे आमूल परिवर्तन होने के साथ-साथ परिवर्तित होने वाला है। आज के सर्व-ग्रासी विनाश के वाद संसार की समूची व्यवस्था मे उथल-पुथल होगी। विश्व-व्यापी खॅडहर के पुनर्गठन की समस्या उठेगी। उस समय तुम्हारा-हमारा क्या स्थान होगा, क्या कर्तव्य होगा, कौन जाने। आज सभी बातें, सभी चीज़े, भविष्य के गर्भ मे पड़ी हुई हैं। हाँ, एक बात निश्चित है कि हिसा, द्वेष और गुलामी के इस मनमाने ताडव से लोग इतना जर्जरित हो गये हैं कि ससार को आज बापू जी की शान्ति और समता के संदेश की जितनी आवश्यकता है उतनी और कभी नही थी। अतः हमारी ज़िम्मेदारी अब हज़ार गुनी बढ़ जायगी। भगवान ही जानता है कि उस दिन हम खोटे उतरेंगे या खरे।

अब इतना कह कर आज विदा लेता हूँ। सबको मेरी शुभा-कान्क्षा और नमस्कार।

---

[४]

ग्राम-सेवा की विधि

१० जनवरी, सन् ४४

एक मास से ऊपर हुआ, तुम्हें पत्र लिखा था। अब सन् ४३ भी बीत गया। इस बीच तुम्हारा एक पत्र मिला। तुमने लिखा है कि यह सब ग्राम-सुधार कार्य के प्रयोगों का विवरण तो मालूम हुआ लेकिन असली सवाल तो ग्राम-सुधार कार्य के लिए निश्चित और सिलसिले-वार योजनाओं का है। अगर कोई ग्राम-सेवा का काम करना चाहे तो उसे करना क्या होगा? अभी दादा का भी एक पत्र आया था। उन्होंने भी लिखा है कि मै अपने अनुभवों के आधार पर ग्राम-उद्योग और ग्राम-उत्थान पर कुछ लिखूँ जिससे दूसरे कार्यकर्ताओ को मदद मिले। मैने उन्हे लिखा था कि मै तो सिर्फ मिस्त्री या दस्तकार आदमी

हूँ; लिखने पढने से मुझे क्या मतलब। उन्होंने फिर लिखा कि मेरी ज़िम्मेदारी अपनी दस्तकारी की रूप-रेखा बताने की भी है। यहा भी कुछ लोग ग्राम-सुधार योजना माँग रहे हैं। लेकिन मेरी समझ मे नहीं आता कि निश्चित योजना क्या बताऊँ ? असल मे गाँव तो आदमियों की बस्ती है। ससार मे दो आदमियों का भी दिमाग एक सा नहीं होता। हर एक गाँव की, हर एक क्षेत्र की समस्याएँ पृथक्-पृथक् हैं; परिस्थितिया अलग अलग हैं। जीवन के हर महकमे मे भिन्नता है। आर्थिक परिस्थिति अलग, सामाजिक रूप-रेखा अलग, मानसिक वृत्ति और प्रवृत्ति अलग तथा जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति की देन तथा साधन अलग। अतएव हर कार्यकर्ता को अपने-अपने क्षेत्र के लिए अलग-अलग योजना बनानी होगी। मैने जो कुछ देखा, सोचा या किया सब कुछ लिख दिया। कहाँ क्या कठिनाइयाँ हुईं और उन्हे हल करने के लिए क्या-क्या कोशिशे की, उनका पूरा-पूरा विवरण तो लिख ही दिया। इन्हीं अनुभवों का फायदा उठा कर लोग अपनी अपनी समस्याओं के अनुकूल योजना बना सकते हैं। अगर मै आम तौर पर कामचलाऊ कोई योजना बनाऊँ भी तो वह काम की नही होगी। हाँ, एक बात मैं ज़रूर कर सकता हूँ। अब तक के अनुभवों के आधार पर यह ज़रूर बता सकता हूँ कि हमे, ग्राम-सुधार कार्य के लिए किस तरीके से, किस आधार तथा किस सिलसिले से काम करना होगा। वह भी मेरी ही कल्पनानुसार होगा; उसे भी दूसरे भाइयों को अपनी प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुसार परिवर्तित करके काम मे लाना होगा।

सेवक का जीवन—मै पहले ही कह चुका हूँ कि ग्राम-सेवा का सबसे प्रथम और महत्व का साधन सेवक खुद है। उसकी निजी तैयारी ही सबसे ज़रूरी चीज़ है। किस तरह हमारे पढे-लिखे नौजवान अपनी सभ्यता और सस्कृति मे कमी आ जाने के भय से गाव मे टिक नहीं सकते हैं, किस प्रकार उनकी नाक हमेशा सिकुड़ी ही रहती

है, किस तरह वे गाव वालों से घुल-मिलकर ग्राम-जीवन विताने में सफल नही होते हैं, आदि बातें भी मै लिख चुका हूँ। अपने जीवन के तरीके और अपनी योजनाओ का सामंजस्य रख सकने के सम्बन्ध मे भी पहले लिखा है। वस्तुतः इन्हीं बातों के कारण प्रायः हम सुधार-कार्य में असफल होते हैं और अपनी असफलता का कारण गाँव वालों की अनुदारता और उनका दकियानूसीपन समझते हैं। भला बताओ तो, यह कैसे संभव हो सकता है कि तुम प्रचार तो करो कि लोग घर भर खादी पहनें, अपना बचा समय कातने में लगावें, लेकिन खुद न कातो। दूसरो की स्त्रियाँ, जो खेती का काम करती हैं, चक्की चलाती हैं, धान कूटती है, मवेशियों की सेवा करती हैं, घर-गृहस्थी के अनाज-पानी की व्यवस्था करती हैं, खाना पकाती हैं, वर्तन साफ करती हैं, और घर परिवार का सम्पूर्ण काम करती हैं, तो चर्खा चलाने के लिए फुरसत पा जाती हैं; लेकिन अपनी स्त्रियों को, जिन्हें सिर्फ खाना पकाना ही होता है फुरसत कतई नहीं होती। हम हरिजन-सेवा का काम करना चाहते हैं, छुआछूत की अनुदार नीति मिटाने का प्रचार करते हैं लेकिन जब अपने घर पर जाते हैं तो सोचते हैं—"बाप रे बाप! घर वाले देख लेंगे कि भंगी को छू लिया तो आफत आ जायगी।" हम शारदा'ऐक्ट का प्रचार करते हैं; बाल-विवाह, अनमेल विवाह का विरोध करते हैं; विवाह-शादी मे फिजूलखर्ची के विरोध मे सभाएँ और भाषण करते हैं। लेकिन अपने यहाँ और मित्र कुटुंवी जनों के यहाँ, उन्हीं सामाजिक कुप्रथाओ मे न केवल शरीक होते हैं वल्कि उन अनुष्ठानों के लिए सक्रिय व्यवस्था और मदद करते हैं। दूसरों की स्त्रियों का पर्दा तुड़वाते हैं, उनसे हिल-मिल कर काम करते हैं, लेकिन अपनी स्त्री को परदे मे रखते हैं। इस प्रकार की बातों के कारण ही हमारे सेवक अधिकाश असफल होते है, गाँव-वालों की दकियानूसी मनोवृत्ति के कारण नहीं। पहले किसी पत्र मे मैने विस्तार से लिखा है कि मेरा तो अनुभव यह है कि दकियानूसी

वृत्ति पर गाँव वालो का ही एकाधिकार नहीं है। वे तो अपना तरीका छोड़ भी देते हैं, लेकिन शहर के पढ़े-लिखे लोग अपनी आदत और संस्कार आदि वदल नहीं पाते। अतः ग्राम-सुधार कार्य की पहली आवश्यकता यह है कि सेवक जिस रग मे समाज को रँगना चाहे उसी रंग मे अपने जीवन को रंग डाले अन्यथा उसका सारा काम वदरग हो जायगा।

सेवा की वृत्ति—दूसरी आवश्यकता इस वात की है कि हमारी वृत्ति सही हो। आगरा जेल से आख़िरी पत्र मे विभिन्न प्रकार की वृत्ति की रूप-रेखाएँ वताई थी। मैंने वताया था कि ग्राम-सुधार कार्य प्रधानतः तीन वृत्तियों से किया जाता है। (१) दया या करुणावृत्ति (२) उपदेश और प्रचार वृत्ति और (३) सेवा-वृत्ति। मुझे इन वृत्तियों की परिभाषा दोहरानी नहीं है। सुधार की अव तक जितनी चेष्टा सरकारी तथा गैर-सरकारी तरीके से की गई है, वह प्रायः प्रथम दो प्रकार की वृत्ति से की गई है। ग्रामवासी गरीव हैं, साधन-हीन हैं, अतः उन्हें कुछ दान कर दो; वीमार हैं तो कुछ दवा दे दो। एक-आध कुआँ वनवा दो। वे अनपढ़ हैं तो दो-चार को वज़ीफ़ा देकर किसी विद्यालय में भेज दो। इस प्रकार की दान या दया वृत्ति के प्रति ही अधिकतर ध्यान रहता है। उपदेश-वृत्ति की भी कमी नहीं है। गाँव वाले जाहिल हैं, अपना हित नही समझते। उन्हें उनका हित समझाओ। वे गदे हे अतः गंदगी से हानि और सफाई के लाभ का प्रचार करो। पर्चे छपवा कर वाँटो; प्लेग, कालरा, मलेरिया आदि से वचने के उपायों की तस्वीरे मैजिक लालटेन के ज़रिये दिखाओ इत्यदि। ऐसे प्रचारक यह भूल जाते हैं कि प्रचार के वताये तरीकों के लिए जिन साधनों की सिफारिश की जाती है उन साधनों का स्वप्न देखने के लिए भी ग्राम वासी वेचारे असमर्थ हैं।

इन वृत्तियों के सम्वन्ध में पूरी तौर से समझने के लिए आज तक ग्राम-सुधार का जो कुछ काम हुआ है, उस पर एक नज़र डाल

कर विचार कर लें तो अच्छा होगा। वैसे तो ग्राम-सुधार की चेष्टा बहुत पुरानी है। गुड़गाँव ज़िले की सरकारी चेष्टा, बोलपुर की विश्वभारती की चेष्टा, कही-कही ईसाई पादरियो (सालवेशन आर्मी) आदि सार्वजनिक चेष्टाओं के सम्बन्ध मे तुम्हे मालूम ही है। लेकिन ये सब व्यक्तिगत या स्थानीय रूप से हुई हैं। सामूहिक और विस्तृत रूप से ग्राम-सुधार-योजना की ओर बापू जी ने ही मुल्क का ध्यान पहले-पहल सन् १६३४ ई० मे बम्बई काग्रेस के अवसर पर आकर्षित किया और स्वय राजनीतिक क्षेत्र से अलग होकर ग्राम उद्योग-संघ के द्वारा ग्राम-उत्थान के कार्य मे अपनी शक्ति लगा दी। फिर वर्धा मगनवाड़ी मे बैठकर उन्होंने किस प्रकार से इस कार्य को प्रतिष्ठित किया, उसे तुमने देखा ही है। उन्होने ग्राम-उद्योग स घ की स्थापना इसीलिए की कि मुल्क भर मे इस कार्य की नीव पड़ जाय। उनकी इस नीति का प्रभाव भी हुआ और ग्राम-सुधार की ओर सारे देश की रुचि पैदा हुई। सभी प्रान्तो मे सभी कार्य-कर्ता ग्राम-सुधार कार्य की ओर आकृष्ट हुए और ग्रामीण जनता को संघटित करने का प्रयत्न ज़ोरो से आरभ हुआ। गाधी जी की इस नई योजना का असर सरकार पर भी पड़ा। उसे कदाचित् यह भय हुआ कि कही काग्रेस वाले ग्राम-उद्योग तथा सुधार योजना के द्वारा ग्रामीण जनता को संघटित न कर दे। उनसे घनिष्ठता स्थापित करके इस महती जन-शक्ति के अधिकारी न बन जायँ। इसका परिहार करने के लिए उसने भी इसका विभाग खेल दिया और उसके लिए एक करोड़ रुपये का बजट भी बना डाला। यह सब बाते हो गई। अतः मै इनकी जड़ मे अधिक न जा कर इतना ही कहूँगा कि यद्यपि काग्रेस और सरकार दोनों की ओर से इस कार्य के लिए कदम उठाया गया पर सही रास्ता दो मे से एक को भी नहीं मिल सका। राष्ट्रीय कार्यकर्ता देहातों में जाते हैं, गाँव वालों की कमियाँ बयान करते हैं और कही कहीं झाड़ू लेकर गाँव की गलियों के कूड़ा-करकट की सफाई करने की चेष्टा

करते हैं। यह सब तो किया गया लेकिन गाँव की असली समस्याओं के मूल को नही देखा गया। यही कारण है कि ग्राम-सुधार कार्य मे अधिक सफलता नहीं मिली। ग्राम-सुधार के कार्य को गाव वालों की आर्थिक समस्या से अलग करके देखना मूल प्रश्न की उपेक्षा करना है। वस्तुतः लोग बापू जी का दृष्टिकोण न समझ सके। बापू जी ने ग्राम-उत्थान का कार्यक्रम चलाने के लिए ग्राम-उद्योग सघ की स्थापना क्यों की? गाव-वालों की आर्थिक उन्नति और आर्थिक स्वतन्त्रता के बिना उनका सामाजिक और सास्कृतिक विकास संभव ही नहीं है। आर्थिक दृष्टि से यदि वे अपने पैरों पर खड़े हों जायँ तो दूसरे विकारों का परिहार आसान हो जायगा। फलतः बापू जी की दृष्टि मे ग्राम-उत्थान व सुधार, खादी और ग्राम-उद्योग का सहज और स्वाभाविक नतीजा है। राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता यद्यपि प्रचार-कार्य करते रहे पर गाँव की मौलिक आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए स्थायी रूप से गभीर प्रयत्न न कर सके। इसका प्रधान कारण यह है कि वे सेवाकार्य के लिए सही वृत्ति को ही धारण न कर पाये।

दूसरी ओर सरकारी ग्राम-सुधार महकमा गाँव के लोगों को आर्थिक मदद देकर कही सड़क और कही घरों मे रोशनदान नाबदान आदि बनाने के लिए उभारता आ रहा था। मौलिक समस्या की ओर उसका ध्यान जरा भी नहीं था। वह देहातों मे प्रचार का काम भी करता रहा। उसका सारा काम प्रधानतः दान तथा उपदेश वृत्ति से ही होता रहा। कांग्रेस सरकार भी ग्राम-सुधार के कार्य को प्रायः इसी दृष्टि से चलाती रही। ऐसा लगता था कि हमारे शहरी भाई गाँव की मौलिक समस्याओं को समझते ही नही हैं। शायद गाव मे जाने मे उन्हे जो असुविधाएँ होती थीं, और ये असुविधाएँ उनके विचार से जिन कारणों से होती थीं उन्ही को वे ग्रामीणों के दुःख का कारण समझ लेते थे और सोचते थे कि कुएँ और नाबदान तथा आने जाने के लिए सड़कों का निर्माण करा देने से ही उनका सारा कष्ट दूर हो जायगा।

फल यह हुआ कि ग्राम-उद्धार विभाग उद्धार विभाग न हो कर गाव की ऊपरी सफ़ाई के लिए दान-विभाग हो गया और वास्तविक ग्राम-सुधार न होकर उसका नाटक होने लगा।

फिर जिस पद्धति से काम किया गया उसमें दया और करुणा का भाव भले ही रहा हो उससे ग्राम-वासियों की उस अन्तःशक्ति का उद्‌बोध नहीं हो सकता था जो उन्हें अपने पैरों पर खड़ा कर सकती। मै यह कह ही चुका हूँ कि गांव वालो का उद्धार उनकी अपनी अन्त-र्निहित शक्ति से ही होगा और जब वे स्वावलंबन के महत्व को समझेंगे तभी उस स्थिति को पलट सकेंगे जो उनके पतन का कारण हो रही है। उपदेश देकर और करुणा दिखाकर उनको असहाय ही बनाया गया। सदा की भाँति वे यही समझते रह गये कि कोई बाहर से आकर उनके कष्ट दूर कर देगा और वे स्वय निकम्मे तथा निर्बल हैं। इस प्रकार गाँव का उद्धार होने वाला नही है। पंचायत का सहज और स्वाभाविक विकास हुए बिना पंचायत घर किस काम का? ग्राम-वासियो की शिक्षा, संस्कृति और चरित्र का विकास हुए बिना कुएँ की जगत, पुल और पक्की गली एक बार बन जाने पर भी टिक न सकेंगी। ऐसी दशा मे पुलो और कुवो की ईटें निकाल कर वे अपना चूल्हा या नाली बना लेगे। यह ठीक है कि उन्हें आराम का सामान चाहिए। लेकिन हम उन्हे दान देकर तो उसे पूरा नही कर सकते। हमको ऐसी परि-स्थिति पैदा करनी है कि वे सामान वे खुद अपनी शक्ति से ही जुटा सके। केवल भारत के लिए ही नहीं, संसार के उन देशों के लिए भी, जहाँ दिन-दिन राष्ट्र के सर्वांगीण जीवन की व्यवस्था केन्द्रीय सरकार द्वारा करने की चेष्टा हो रही है, वहाँ के चिन्ताशील लोग इसी सिद्धान्त का प्रचार करते है। श्री बर्नार्ड शा को तो सभी जानते हैं। लोगो को आराम की सामग्री के प्राप्ति के सम्बन्ध मे वे कहते हैं:—"There should be more food, more clothing, better houses, more security, more health, more virtue, in a word more prosperity.

Any attempt to secure the above should be self-initiated, self-directed, self-corrected and self controlled," अर्थात् "जनता को अधिक अन्न अधिक कपड़ा, अधिक अच्छे घर, अधिक शान्ति, अधिक स्वास्थ्य, अधिक सद्गुण अथवा एक शब्द मे अधिक खुशहाली चाहिए। उक्त स्थिति पाने की जो भी चेष्टा हो वह आत्मनिर्दिष्ट, आत्म-संचालित, आत्म-परीक्षित और स्वतंत्र होनी चाहिए।"

फलतः आवश्यकता है उनमे उस भावना के विकास की जो उन्हे अपने कुएँ, अपनी गली और अपने घरों के रोशनदान स्वयं बना लेने और उनकी रक्षा करने की प्रेरणा करे। आन्तरिक, आर्थिक, और सास्कृतिक विकास से ही यह सभव है, और तभी उनका वास्तविक उद्धार भी हो सकेगा। बाहर से आर्थिक मदद करके ग्रामीण जनता के अथाह अभाव का पार पाना सम्भव ही कहाँ है? गाँव वालो से ही कर के रूप मे उनकी आमदनी का अश वसूल किया जाता है और फिर उसका बहुत थोड़ा सा अश यदि उन्हे दान के रूप मे प्रदान भी किया जाय तो वे उसे अपनी रक़म समझने मे समर्थ नही होते। और फिर कर की रक़म वसूल करके उसमे से अधिक हिस्सा वसूल करने के एक महकमे और इमदाद करने के दूसरे महकमे का ख़र्च काटने के बाद सुधार कार्य के लिए जो बचता है वह भी नही के बराबर होता है। इन तमाम बातो को देखते हुए सही रास्ता यही मालूम होता है कि यदि सचमुच ग्राम-उद्धार का काम करना है तो इस बात की चेष्टा करनी होगी कि गाँव वाले यह अनुभव करे कि अपना उद्धार उन्हें स्वयं करना है और उनमे यह शक्ति है कि वे चाहे तो अपने को उठा सके। उन्हे यह भी ज्ञात हो जाना चाहिए कि उनकी आज की दशा किन कारणो का परिणाम है और उन कारणों को उन्हें स्वयं ही दूर करना है। आज तो उन्हे यह भी ज्ञात नही कि वे दारिद्र्य-पीड़ित और अभावग्रस्त हैं। सदियों से होने वाली लूट और शोषण के कारण वे इतने गिर गये हैं कि एक प्रकार से

बेहोशी की हालत पर पहुँच चुके है, जिसमें उन्हे अपनी पीड़ा का भी अनुभव नही होता है। आवश्यकता इस बात की है कि वे पहले अपने होश मे लाये जायँ और उन्हे यह ज्ञान हो जाय कि वे सचमुच गिरे हुए हैं तथा अपनी चेष्टा से ही अपनी हालत सुधार सकते हैं। जिस दिन गाव की जनता को यह ज्ञान हो जायगा और उसमें यह आत्म-विश्वास जाग उठेगा, उस दिन उसकी अन्त-र्निहित शक्ति अपने आप संघटित हो जायगी। उनके आत्मोत्थान का स्रोत उनकी इस संघटित शक्ति में ही है। हमारा काम केवल इस स्रोत को खोद निकालना है और यह तभी हो सकेगा जब ग्राम-सेवक सुधार का काम शुद्ध सेवा-वृत्ति से ही करेगा। इस वृत्ति की परिभाषा बापू जी ने स्वयं छोटी सी पुस्तिका 'ग्राम सेवा' के पन्नों में भलीभाति कर दी है। मेरी सम्मति मे इस वृत्ति की जो कुछ रूप-रेखा हो सकती है उसका ज़िक्र तो मै पहले ही आगरा जेल से लिखे पत्रों में कर चुका हूँ। अब इस विषय पर अधिक लिखना व्यर्थ होगा।

कार्यक्रमो का सिलसिला—अब प्रश्न यह उठता है कि मान लो कि सेवको के जीवन की तैयारी ठीक है और उनकी वृत्ति भी ठीक है तो वे किस राह से चलेंगे? उनका कार्यक्रम तथा पद्धति क्या होगी? वे कहा से शुरू करेंगे और किस ओर बढ़ेंगे? कौन सा तरीका होगा जिससे जनता को अपने सुधार के लिए सघटित किया जा सके? बापू जी ने तो खादी और ग्राम-उद्योग को ही उस संघटन का साधन माना है। वस्तुतः खादी और ग्राम-उद्योग के द्वारा आर्थिक उन्नति के साथ ही उस आत्म-विश्वास को जाग्रत किया जा सकता है जिसके बिना जन-शक्ति का संघटन संभव नहीं है। अतएव हम चाहे जिस परिस्थिति मे काम करे प्रारंभ मे हमें खादी तथा ग्राम-उद्योग की आर्थिक योजना को ही हाथ में लेना होगा और इनमे भी चर्खे का स्थान प्रथम होना चाहिए। चर्खे के लिए साधन की आवश्यकता नही के बराबर होने के कारण उसे शुरू करना आसान है। प्रारंभ मे

साधन का सवाल मुख्य होता है। वस्तुतः किसी भी योजना की कल्पना करते समय इस बात का ख्याल रखना ज़रूरी है कि जिस सस्था के द्वारा काम हो रहा है, उसका और जिन गावों मे काम हो रहा है, उनके सपूर्ण साधन कितने है? फिर जब चर्खा चलने लगता है तो स्वभावतः वस्त्र के अभाव की पूर्ति हो जाती है। गाव वाले आत्म-चेष्टा के इस परिणाम को देख कर स्वभावतः आगे बढने को उत्साहित होते हैं। ऐसे उत्साह के वातावरण मे दूसरे कार्यक्रम उनके सामने पेश करने से वे उन्हे सहज ही ग्रहण करते हैं। इस तरह सुधार-कार्य करते हुए हमे कार्यक्रम ऐसा बनाना चाहिए जिसकी प्रगति सहज और स्वाभाविक ढ ग से हो सके। ग्राम-वासी उसे अपना काम समझ कर स्वतः सहयोग करने के लिए आगे बढे। अब तक हमने गाव मे कार्य करने का ढ ग कुछ दूसरा ही रक्खा है। यह नहीं देखा कि ग्रामवासी क्या चाहता है? बल्कि अपनी इच्छा-शक्ति और संस्कार के अनुसार जिन-जिन बातों को सुधारने की ज़रूरत हमे महसूस हुई, उन्हीं को अपने कार्यक्रम का अंग बनाकर काम शुरू कर दिया। परिणाम यह हुआ कि देहाती उससे एकात्मिकता की अनुभूति न कर सके। इसलिए अब आवश्यकता इस बात की है कि देहाती जनता की प्रवृत्ति और उसके दृष्टिकोण तथा इच्छा को लेकर कार्य-क्रम बनावे। उसका क्रम कुछ इस प्रकार हो सकता है :—

(१) ऐसे कार्य जिनके लिए ग्रामीण जनता खास तौर से अभाव महसूस करती हो और जिनसे उसका प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ हो और जिन्हे शुरू करने मे अधिक झंझट न मालूम हो। चर्खा इस प्रकार का काम हो सकता है।

(२) ऐसे काम जिनके लिए ग्रामवासी के हृदय में आदर हो किन्तु साधन तथा संघटन के अभाव से वे उसे न कर पाते हों। पाठशालाओं की स्थापना ऐसा काम है। भारतीय जनता आज की जहालत की हालत में भी शिक्षा का महत्व समझती है। आज के स्वार्थ-पूर्ण और

भौतिकवादी वातावरण मे भी गाव मे पाठशालाओं के लिए दान देने का रिवाज बचा है। हमारे पूर्व-पुरुषों ने विद्यादान का संस्कार इतना अधिक भर दिया है कि प्रत्येक भारतीय के हृदय मे इसके लिए स्थान है। अगर वे स्वयं इस काम को नही कर सकते, तो केवल इसलिए कि आज उनमे संघटन का अभाव है।

(३) ऐसे काम जिन्हे हम उनके फायदे का समझते है, परन्तु वे जिनका अभाव महसूस नही करते हैं। लेकिन वे काम ऐसे हों जिनके लिए प्रारम्भ मे उन पर किसी का आर्थिक बोझ न पड़े। जब आर्थिक बोझ नं पड़ेगा तो पहले दो किस्म के कामो के बाद हमारी बात सुन कर वे ऐसे काम करने मे एतराज नही करेंगे। उदाहारणार्थ अखाड़ा चलाना, आर्थिक स्थिति की जानकारी के लिए रजिस्टर रखना, त्योहार आदि मनवाना और पेड़ लगवाना आदि काम बताये जा सकते है।

(४) ऐसे काम जिनके न करने से जनता को नुकसान है लेकिन रूढ़ि, आदत तथा आलस्य के कारण वे उसे करना नहीं चाहते। जैसे घर की सफाई और नाबदान की सफाई आदि।

(५) ऐसे काम जो सामूहिक रूप से गाव के लाभ के हैं, जिनमे व्यक्तिगत लाभ कुछ न हो बल्कि उसे करने मे कुछ त्याग ही करना पड़े। जैसे गांव की सफाई, सड़क निकालना, खाद के गड्ढे खुदवाना आदि।

(६) ऐसे काम जिन्हे करने के लिए ग्राम-समिति या पचायत के ठोस संघटन को नैतिक अधिकार प्राप्त हो।

क्रम से काम चुनते समय इस बात का ध्यान रखना भी जरूरी है कि जिस संस्था के द्वारा संघटन किया जाय वह उसके लिए उचित साधन जुटा सके। छोटी-छोटी स्वतंत्र संस्थाओं के लिए जिस क्रम से योजना बनानी होगी वह चर्खा संघ तथा ग्रामोद्योग सघ जैसी बड़ी संस्थाओ के लिए लागू न होगा। चर्खा संघ तथा ग्राम-उद्योग संघ

के क्रम से भी राष्ट्रीय सरकार द्वारा बनाई योजना का काम बिल्कुल पृथक होगा। जिस गाव मे काम होगा उसकी योग्यता तथा प्रवृत्ति का भी ध्यान रखना होगा।

अब तक ग्राम-सुधार के लिए जितनी चेष्टा की गई है, उसमे प्रायः इन बातों का ध्यान नही रक्खा गया। सिर्फ यह देखा जाता रहा कि किस काम में हमको आसानी होगी। अधिकतर दृष्टि तो प्रदर्शन की संभावनाओं पर रहती रही है। उदाहरण लें तो प्रारंभ मे प्रायः बाहरी आर्थिक मदद से कुवो की मरम्मत, नाबदानों और गलियो की सफाई आदि कामों की ओर ही ध्यान जाता रहा है। इस काम मे कुछ रूढि भी बन गई है। ग्राम-सुधार-योजना में स्वभावतः लोग ग्राम-पचायत बना कर गाव के झगड़े निबटाने की ओर पहले ही झुक जाते हैं। लेकिन ग्राम-सघटन के लिए पचायत की चाहे जितनी आवश्यकता हो, प्रारम्भ मे वह चल नही सकती। यह सही है कि प्राचीन काल से भारत की समाज-व्यवस्था ग्राम-समिति और पचायत पर बनी रही जो काफी वैज्ञानिक और उन्नत थी। इसकी सफलता का असर समाज मे इतनी गहराई का था कि आज की गिरी हुई दशा मे भी इस सस्था को जनता श्रद्धा और आदर से देखती है। पच-परमेश्वर की भावना प्रत्येक भारतवासी के हृदय मे संस्कार-भूत हो गई है। यही कारण है कि जहा लोग अदालत मे निःसकोच झूठ बोल जाते हैं वहा पचायत के सामने झूठ-बोलने मे हिचकते हैं। अतः ग्रामीण जनता पंचायत की बात आसानी से समझ कर इसके लिए जल्द तैयार हो जाती है। लेकिन जैसे ही वह पंचायत गाव के मामलो को सुलझाने बैठती है कि फौरन झगड़े होने के कारण टूट जाती है। इसका कारण यह है कि गाव में किसी पर जनता का विश्वास नही है। जब तक समिति या पचायत पर जन-समाज का विश्वास पैदा नही होता है तब तक उसके द्वारा कोई भी काम नही हो सकता। और यह तभी हो सकता है जब जनता मे सही नेतृत्व पैदा हो सके।

आज देहातों मे किस प्रकार के लोगों के हाथो मे नेतृत्व है और उसका क्या कारण है, उसे दूर करने का क्या उपाय है, इसका जवाव मै पिछले पत्रों में विस्तार के साथ दे चुका हूँ। आज मै सिर्फ इतना ही कहूँगा कि आजकल जो लोकतत्र का नारा बुलन्द हुआ है, उसके असर मे आकर गाव की वास्तविक स्थिति को ग्राम-सेवक भूल न जाय। और तब तक गाव के झगड़े निबटाने आदि के लिए पंचायत का संघटन न करे जब तक ठोस कार्य-क्रम के आधार पर देहातों मे सेवा की बुनियाद पर सही नेतृत्व की स्थापना न हो जाय। मै जानता हूँ कि तुम लोग मुझसे सहमत न होगे लेकिन सेवक को धैर्य से ही काम करना होगा। हा, इस बात का ध्यान ज़रूर रखना होगा कि जो भी काम करे उसको यथासम्भव आरम्भ से ही गांव के कुछ लोगों की समिति द्वारा चलाने की चेष्टा करे। उसके लिए कुछ न कुछ ज़िम्मेदारी उन पर ज़रूर रक्खे। जिससे इन्ही लोगों की समिति क्रमशः ग्राम-पंचायत का रूप लेकर भविष्य में लोकतंत्र की सही बुनियाद बन सके। भावी स्वावलबी समाज, आर्थिक सहयोग समितियों के आधार पर ही संघटित होगा; लेकिन आज हम जिन छोटी-छोटी समितियों का सघटन करेंगे, वह समाज-व्यवस्था उन्ही की समष्टि होगी। अतः आरम्भ से ही जल्दबाज़ी नही करनी चाहिए। गाँव की हालत देख कर सेवक के लिए ऐसी जल्दबाज़ी करना स्वाभाविक है। मै उसे दोष नही देता, क्योंकि हममे से सभी चाहेंगे कि उनकी हालत फौरन बदल जाय। लेकिन सब काम क्रमशः ही हो सकते हैं। किसी पेड़ को जल्दी से वड़ा करने के लिए उसें ज़मीन से उखाड़ कर लंबे बाँस मे वाँध कर ऊँचा करने से वह वढ़ नही जायगा। उस समय वह ऊँचाई पर दिखाई देगा ज़रूर, लेकिन थोड़ी देर में सूख कर मर जायगा। अतः जो लोग गाँव की मौजूदा परिस्थिति मे रेडियो का प्रचार करना चाहते हैं या बैलगाड़ियों मे मोटर का टायर लगाना तथा धुरों मे वाल-बेयरिंग लगाना चाहते हैं उनसे मेरा

नम्र निवेदन है कि वे ज़रा धैर्य धारण करें और उतनी ही सुधार-योजना बनावें जितनी आज के देहाती पचा कर उसे अपने जीवन का अंग बना सकें। पक्की ज़मीन पर थोड़ी नींव खोद कर जल्दी से ईंट चुनवा कर घर बन सकता है। लेकिन जहाँ दलदल है वहाँ तो पहले गहरी नींव खोदनी ही पड़ेगी। फिर उसे सूखने के लिए छोड़ देना पड़ेगा, तब उसके अन्दर पिटाई करनी पड़ेगी, उसके बाद कहीं दीवार उठा कर घर बन सकेगा। इसके लिए अगर धैर्य न होगा और पक्की ज़मीन वाली इमारतों की पद्धति से काम किया गया तो सारी इमारत दलदल के नीचे धँस जायगी। इसलिए मैंने कहा है कि योजना का क्रम निश्चित करते समय गाँव वालों की आवश्यकता तथा योग्यता का विचार करना आवश्यक है। पहले अन्न, वस्त्र तथा आश्रय की व्यवस्था होनी चाहिए, फिर आराम और उसके बाद शृंगार आदि की।

ऊपर लिखी बातों को ध्यान मे रख कर ही हमारी सुधार-योजना बन सकती है। यद्यपि समाज-जीवन एक सम्पूर्ण वस्तु है, फिर भी हमें योजना बनाने के लिए गाँव की विभिन्न समस्याओं पर अलग-अलग विचार करना होगा। इस तरह हम सारे कार्यक्रमों को मुख्यतः निम्न-लिखित श्रेणियों मे विभक्त कर सकते हैं। (१) उद्योग, (२) शिक्षा और संस्कृति, (३) सफाई और स्वास्थ्य, (४) कृषि और बाग़वानी (५) गोपालन, (६) यातायात और पानी या जल तथा (७) व्यवस्था और अनुशासन। यदि उपर्युक्त विषयो का संघटन हम एक दूसरे से सामंजस्य रख कर कर सकें तो ग्राम-समाज व्यवस्था मे क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकते हैं। मैंने प्रत्येक विषय के पारस्परिक सामंजस्य रखने की बात कही है क्योंकि मैंने देखा है कि हमारे सुधार कार्य-कर्ता प्रायः इस दिशा मे उदासीन रहते हैं। आज कल दुनिया का वायु-मण्डल भी कुछ इसी प्रकार की विशेषज्ञता का है। यही कारण है कि विभिन्न सरकारी विभागों मे या विभिन्न कार्यक्रम चलाने वाली राष्ट्रीय

संस्थाओं मे एक दूसरे से कोई सम्बन्ध या सम्पर्क नही रहता। नतीजा यह होता है कि एक दूसरे मे सम्मिलित न रहने के कारण समाज-जीवन की इमारत वन ही नहीं पाती।

सस्था का रूप—मैने पहले ही कहा है कि हमारी सारी योजना का क्रम, उसकी रूप-रेखा इस वात पर निर्भर करती है कि हम किस संस्था के द्वारा सुधार कार्य करते हैं। हमारे देश मे चार मुख्य ज़रिये इसके लिए हो सकते है। (१) व्यक्तिगत रूप से सामान्य साधन के साथ, (२) छोटी-छोटी स्वतंत्र सस्थाओ द्वारा, (३) चर्खा संघ तथा ग्राम उद्योग संघ की मार्फत और (४) प्रान्तों की लोकतत्री सरकार द्वारा। जो लोग व्यक्तिगत रूप से काम करना चाहते हैं, उनके लिए मेरे सामने अव और कुछ कहने को नहीं रह गया। शुरू से मैने अपने जिन अनुभवो का वर्णन किया है वे उनके लिए पर्याप्त सकेत हैं। अपने अनुभव से मै सिर्फ इतना कहना चाहता हूँ कि आज की दुनिया मे व्यक्तिगत रूप से अकेले काम करने का ज़माना चला गया है। हमारे शास्त्रों मे भी कलियुग मे संघ-शक्ति ही शक्ति बताई गई है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम संघटित रूप से कुछ कर नही सकते। प्रायः देखा गया है कि जिनमे बुद्धि है, योग्यता है, आर्थिक कठिनाई नही है, त्याग की सामर्थ्य रखते हैं, वे या तो संस्थाओ मे शामिल नही होते या अगर शामिल हुए भी तो टिक नही सकते। वे उन संस्थाओ को या तो अपने आदर्श के अनुकूल नही देखते अर्थात् उनमे उनको बुराई ही बुराई नज़र आती है; उनको यह लगता है कि "संस्था मे स्वतंत्रता ही नही है, वहाँ तो व्यक्ति ही ख़तम हो जाता है, मेरी तो कुछ चलती ही नही" इत्यादि। मेरा नम्र निवेदन है कि ऐसा सोचना पढ़े-लिखे नौजवानों की उच्छृंखलता और अहभाव का ही परिचायक है। वे पाँच साथियों की राय मे राय मिला कर चल नही सकते। वापू जी से वढ़कर व्यक्तित्व किसमे है? वे भी काग्रेस के द्वारा ही सव काम करते हैं। काग्रेस जब उनकी वातों को नहीं मानती

तो वे भविष्य के लिए इन्तज़ार करते हैं, अपनी खिचड़ी अलग नही पकाते। यद्यपि वे वैसी अलग खिचडी पकाने की शक्ति रखते है। हमारे नौजवान अपने अह के वशीभूत होकर अपने व्यक्तित्व को बापू से भी अधिक समझते होगे। यही कारण है कि हमारे यहाँ सस्थाएँ नही बन पातीं। और बनती भी हैं तो अधिक दिन टिक नही सकतीं। लेकिन बिना संस्था बनाये देहातो का पुनर्गठन कार्य सफल नही हो सकता यह मेरी पक्की धारणा है। अतः मै तुम्हे जो कुछ कार्यक्रम और योजना लिखना चाहता हूँ वह सस्थाओ के द्वारा चलाई जाने वाली होगी।

ग्राम-उद्योग का चुनाव---सस्थाओं मे सबसे पहले मेरी निगाह चर्खा संघ तथा ग्राम-उद्योग संघ की ओर जाती है क्योंकि मेरी दृष्टि मे सरकार के अलावा यही दो सस्थाएँ हैं जो किसी किस्म की व्यापक योजना का प्रयोग कर सकती हैं। और राष्ट्रीय काग्रेस से सम्बन्धित संस्था हाने के कारण जनता उन्हे अपनी चीज़ समझती है। अतः मै इन सस्थाओ के साधन तथा शक्ति के अनुसार उपर्युक्त विभागो के सम्बन्ध मे ऐसा विचार करता हूँ।

क-उद्योग—ग्राम उद्योग कार्य चलाने के लिए मुख्य प्रश्न उद्योगों का चुनाव है। हम चाहेगे भी तो कोयले की खान सरीखे काम को ग्राम उद्योग मे शुमार नही कर सकते। हर एक उद्योग के लिए कच्चा माल और अन्य साधन प्रकृति की देन हैं। जिस वस्तु के लिए ऐसी देन केन्द्रित है, जिसकी उत्पत्ति की पद्धति मे खतरा अधिक है तथा कच्चे माल के लिए दूर दूर की चीजें एकत्र करनी पड़ती है उसे ग्राम-उद्योग के द्वारा करना सभव नही। फिलहाल उन्हें केन्द्रीय उद्योग के वास्ते छोड़ देना ही श्रेयस्कर होगा। हमे उन्ही उद्योगो को चुनना होगा जिनके लिए कच्चे माल का साधन देहातों मे सुलभ हो, जिनके लिए औज़ार और मकान आदि की पूँजी गाव की हैसियत के अन्तर्गत हो और अधिकाश माल की खपत गाँव मे हो। अधिकाश माल की

खपत होने का मतलब यह नहीं है कि आज भी उसे बाहर बेचने की आवश्वकता न होगी आजकल तो गांव की आर्थिक स्थिति ऐसी है कि गांव वाले न भर पेट खाने को समर्थ हैं और न उनको तन ढकने के लिए चिथड़ा ही प्राप्य है। मेरा मतलब यह है कि मामूली तौर से अपनी कल्पना के अनुसार ग्राम-सुधार कार्य कुछ साल करने के बाद जनता अपना माल अपने इस्तेमाल में ले लेने मे समर्थ होने लगेगी। अर्थात् ऐसा सामान जिसकी आवश्यकता तो ग्राम-वासियों को है लेकिन अभाव-वश वे उसकी पूर्ति नही कर पाते। निम्नलिखित उद्योगों को इस श्रेणी मे रक्खा जा सकता है।

सूत कताई
आटा पिसाई
धान कुटाई
ईंट का भट्ठा
तेल-घानी
गुड़ से चीनी बनाना
बुनाई
साबुन बनाना
काग़ज़ बनाना
चमड़ा पकाना
चमड़े का सामान बनाना
सरेस, तात आदि
लोहारी
बढ़ई गिरी
भेड़ पालना
कंबल बनाना
कुम्हारी
दरी कालीन बनाना
कपड़ा सीना
अण्डे मछली आदि का काम
दियासलाई बनाना
रोशनाई बनाना
शीशा चूड़ी आदि
ठठेरी
रँगाई छपाई
सोनारी
पेंसिल बनाना
ब्रुश बनाना
लाख का काम
पत्थर का काम
पशु-पालन
मधुमक्खी-पालन
सींग का काम
खाद बनाना
रेशम के कीड़ों का पालना और रेशम कातना

करने के लिए कौन-कौन उद्योग खेती से सम्बन्धित हैं। भारत का प्रधान उद्योग खेती है और वह अभी तक विकेन्द्रित और स्वावलबी तरीके से ही जारी है। अतः हमारे उद्योगो का केन्द्र खेती ही होनी चाहिए। खेती से सम्बन्धित उद्योग से मेरा मतलब यह है कि जिन के लिए कच्चा माल खेती की उपज हो या जिन्हे खेती से फ़ुर्सत के मौसम मे आसानी से किया जा सकता-हो। जैसे, तेल-घानी के काम मे कच्चा माल गाँव की खेती से प्राप्त हो जायगा। चर्खा चलाना, ईंट पकाना आदि काम खेती से फ़ुर्सत के समय किये जा सकते है। तीसरी बात यह देखनी चाहिए कि कौन से क्षेत्र मे कौन काम आसानी से शुरू किया जा सकता है। इसके लिए कई बातो की ओर ध्यान देना आवश्यक है। कच्चे माल की सुलभता, बाज़ार की व्यवस्था, स्थानीय आवश्यकता, प्राचीन उद्योग के भग्नावशेष के कारण कारीगरो की सुलभता आदि।

फिर हमे इस बात पर भी विचार करना आवश्यक है कि कौन से उद्योग का माल कितनी मात्रा मे उत्पन्न किया जाय। आज हम एक-आध केन्द्रो मे उत्पादन का काम कर रहे हैं और बिक्री के लिए हमारे पास बहुत से शहर पड़े हैं। लेकिन मान लीजिए कि उसी मात्रा मे सात लाख गाँवो मे उत्पादन होने लगे तो क्या होगा? अतः हमे आज से ही क्षेत्र-विशेप मे इतनी उत्पत्ति करनी चाहिए जितना भविष्य की आवश्यकता के लिए उक्त क्षेत्र के हिस्से मे पड़े। एक ही जगह हज़ारो कारीगरों की बस्ती का विरोध मै कर चुका हूँ। ऐसा न होने पाये कि हम उन्ही कार्यों को पुनः स्थापित कर डालें। इसलिए इसका हिसाब करते समय इस बात का ध्यान रखना मुनासिब है कि भविष्य मे अगर हम ग्राम-उत्थान का कार्य अपनी कल्पना के अनुसार सम्पूर्ण रूप से कर सके और राष्ट्र की आर्थिक स्थिति सुधर गई तो उस समय उस क्षेत्र मे कितने माल की आवश्यकता होगी। उस आवश्यकता की पूर्ति के उपरान्त शहरों को बेचने के लिए

कितना माल चाहिए यह भी कूता जा सकता है। एक दो उदाहरणों से इस सिद्धान्त को स्पष्ट करना अच्छा होगा। बुनाई का उद्योग ले लीजिए। आजकल गाव मे औसत कपडे की खपत १० गज़ प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति भी नहीं है। अगर हमारी अपनी सरकार भी हो और काफी तेजी से संयोजित योजना चलाई जाय तो भी १५-२० साल के अन्दर गाँव की खपत प्रति व्यक्ति २५ गज़ सालाना से अधिक न होगी।

युक्तप्रान्त के औसत गाँव की आबादी को लो। हमारी कल्पना के अनुसार भी प्रति गाव केवल ११७५० गज़ सालाना कपड़े की आवश्यकता होगी और इसके लिए ८ परिवार से अधिक बुनकरों की आवश्यकता न होगी। अतः प्रति गाव ५ बुनकर के हिसाब से अधिक बुनकरों का संगठन नहीं करना चाहिए। इसमें परिस्थिति के अनुसार इस बात की छूट अवश्य देनी होगी कि प्रत्येक गाँव में ५ बुनकरों की वस्ती चाहिए या ५।६ गाँवों के बीच में चाहे जहाँ २५।३० बुनकरों की वस्ती हो; तुम कहोगी कि अगर हमारी कपडे की आवश्यकता और तुम अपने स्वावलम्बी सिद्धान्त में संशोधन करके उसके लिए बुनकर ५।६ गाँवों मे २५।३० बुनकरों की वस्ती वसाने की इजाज़त देते हो तो फिर ५०० गाँवों के बीच कहीं पर २५०० जुलाहों की वस्ती क्यों न वसाई जाय? यह एक ऐसा सवाल है कि इस पर प्रकाश डालना आवश्यक है। यह सच है कि स्वावलम्बी सिद्धान्त की आदर्श स्थिति यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं के लिए पूर्णतः स्वतंत्र हो। लेकिन आदर्श स्थिति अन्तिम स्थिति है। प्रकृति की, सृष्टि की और समाज की प्रगति अनन्त है। अनन्त का अन्त आज होता नहीं। अतः आज व्यावहारिक दृष्टि से हम आदर्श के जितने पास जा सकें उतने की ही चेष्टा करनी होगी और अनन्त काल तक आदर्श की ओर बढ़ते रहना होगा। लेकिन व्यावहारिकता के नाम पर आदर्श का गला घोंट देने की बुद्धि आज की भौतिकवादी दुनिया में बहुत ज़ोर की है। अतः यह व्यावहारिकता

का संशोधन कहाँ तक आगे जा सकता है उसका भी एक कामचलाऊ नियम सिद्धान्त के आधार पर बना लेना चाहिए जिससे हमारे कार्यक्रम की प्रगति आदर्श की ओर ही हो, विमुख नही। मुख्य नियम यह होना चाहिए कि कारीगरों की बस्ती इतनी पास हो जिससे उस क्षेत्र के लोग उनसे प्रत्यक्ष लेन-देन कर सकें। कारीगर से अधिक दूर रहने से लेन-देन के लिए मध्यस्थ की आवश्यकता होगी और यही मध्यस्थता की संस्था समाज के

मध्यस्थता स्वावलंबन की विनाशक है

स्वावलम्बन को नष्ट करने वाली चीज है। अतः हमारी योजना में मध्यस्थता का स्थान जितना कम हो उतना ही हम सिद्धान्त के नजदीक होंगे। अब प्रश्न यह उठ सकता है कि "आख़िर आप कितने गाँवों की इकाई को स्वावलम्बी बनाना चाहते हैं।" इस प्रश्न का कोई निश्चित हिसाब से निश्चित जवाब नही दिया जा सकता। यह हिसाब गाँव की आबादी, एक गाँव से दूसरे गाँव की दूरी, उद्योगों के प्रकार आदि बातों पर निर्भर करता है। अगर बस्ती घनी है तो इकाई थोड़े गाँवों की होगी। अगर आबादी थोड़ी है तो इकाई में अधिक गाँवों को ले सकते हैं। अगर गांव दूर दूर हैं तो थोड़ी आबादी होने पर भी कम गाँव लेने पड़ेंगे। फिर जिस उद्योग की मात्रा और आवश्यकता अधिक हो, कारीगर से रोज़ का हिसाब रखना ज़रूरी हो उसके लिए जितने कम गाँवों की इकाई होगी उतना ही अच्छा। जिस चीज़ की आवश्यकता कभी-कभी और कम मात्रा मे हो उसके लिए कारीगर की बस्ती दूर भी हो सकती है। मतलब यह कि हमको हरेक पहलू ध्यान मे रख कर ही अपना काम करना है। लेकिन व्यावहारिकता, सहूलियत, कुशलता या दक्षता आदि बातों का ख्याल उसी हद तक करना होगा जिस हद तक जाने पर हमारी प्रगति का रुख़ आदर्श की ओर बना रह सके। मैने यहाँ जेल की फ़ुर्सत में बैठकर संयुक्तप्रान्त के देहातों के लिए कितने गाँवों में कौन-सा

उद्योग किस मात्रा मे चाहिए, इसका हिसाव लगाने की चेष्टा भी की है। कभी मौका लगा तो यह भी लिखने की कोशिश करूँगा।

इस पत्र मे बहुत सक्षेप मे मैंने यह वताने की कोशिश की है कि ग्राम-उद्योग-सघ की मातहत किस सिद्धान्त तथा दृष्टिकोण से उद्योग का काम चलाना होगा। मैंने उद्योग के प्रश्न को पहले उठाया है क्योंकि पहले कह चुका हूँ कि हमे उद्योग के द्वारा ही ग्राम-उत्थान का सारा काम करना होगा। वस आज इतना ही। नमस्कार।

---

[५]

सुधार के दूसरे कार्यक्रम

१—२—४४

शिक्षा और सस्कृति-—पिछले पत्र मे मैंने इस बात पर विचार किया था कि उद्योग-कार्यक्रम चलाने के लिए किन-किन पहलुओं पर ध्यान देना चाहिए। आज कार्यक्रम के भिन्न-भिन्न अंगों पर प्रकाश डालने की कोशिश करूँगा। ग्रामोत्थान के कार्यक्रम मे उद्योग के वाद मै शिक्षा को स्थान देता हूँ। किसी भी राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति उसके वौद्धिक विकास पर ही निर्भर है। उद्योग का काम भी विना शिक्षा के आगे नहीं वढ़ सकता, उसमे नई खोज, नया ढंग नही हो सकता। मै जव कांग्रेस सरकार के ग्रामसुधार का काम करता था उस समय ग्राम-सेवकों की एक सभा मे एक सेवक ने मुझसे सवाल किया था कि "ग्राम उत्थान के काम मे उद्योग और शिक्षा मे कौन अधिक महत्व का है?" मैंने उसके जवाव मे उसी से पूछा था कि भात बनाने के लिए कौन सी चीज ज्यादा ज़रूरी है चावल या पानी? वास्तव मे उद्योग और शिक्षा दोनों ही समान महत्व के हैं। दोनों का ही फल विकास है। इस सम्वन्ध में तुम्हें मै अधिक क्या लिखू? तुम लोग तो स्वयं हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के विधाता हो। तुम लोगों ने

तो अपनी बुनियादी शिक्षा पद्धति मे उद्योग और शिक्षा दोनों को एक ही वस्तु बना दिया है। तुम लोगों ने इतिहास पढा है, तुम्हे प्राचीन भारत का हाल मालूम है। मै उसे नही जानता लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि पुराने जमाने मे बुद्धि और उद्योग के विकास का क्षेत्र अलग अलग रखा गया था। ब्राह्मण अलग थे, कलाकार अलग। नतीजा यह हुआ कि हमारा उद्योग विज्ञान-हीन तथा शिक्षा अनुभव-हीन विचार मात्र रहकर दोनो नष्ट हो गये। अतः हमे गावों में उद्योग के साथ ही साथ शिक्षा का प्रबन्ध करना होगा। प्रश्न यह है कि हमारी शिक्षा-पद्धति किस प्रकार की हो। अब तक जो शिक्षा देहातों मे होती रही उस पर विशेष लिखकर समय तथा काग़ज़ का अपव्यय करना बेकार ही है। उसकी असारता आज भारत की जनता भली प्रकार जान गई है। केवल प्रवाह में बह कर और दूसरी पद्धति के अभाव मे लोग उस पर चल रहे हैं। लेकिन "कुशिक्षा से अशिक्षा अच्छी है" कहते रहकर भी मोह के कारण जनता लिखना-पढना बन्द नहीं करती है। और सच पूछिए तो जिस मात्रा मे हमारे देश मे शिक्षा का प्रचार है उसे देखते "लिखना पढना बन्द है" यह कहना भी ज्यादा ग़लत न होगा। ग्रामीण जनता मे बहुत बड़ा हिस्सा तो जान-बूझकर इस असार शिक्षा से उदासीन रहता है। हम देहातों मे जाकर जब लड़कों को स्कूल में भर्ती होने के लिए कहते हैं तो अधिकतर लोगों से जवाब मिलता है कि "पढ़ कर का होई? कत्थू लायक न रह जाई। ऐस जौन दुइ चार बिस्सा खेत गोड़ लेत हैं और ढोर चराय लेत हैं पढ़कर ऊहो न कर पइ हे।' इत्यादि। उधर तुम लोगों की बुनियादी पद्धति अभी प्रयोग की दशा मे है। अभी विस्तृत क्षेत्र मे उसे चलाने का समय नहीं आया। अतः बीच का रास्ता निकालकर फिलहाल चलना ठीक होगा। बुनियादी प्रणाली मे उद्योग के द्वारा शिक्षा की व्यवस्था है। मै अपनी सुधार योजना मे फिलहाल उद्योग के साथ शिक्षा का प्रबन्ध रखना ठीक

समझता हूं। पुराने पाठ्यक्रम को भी उद्योग के साथ संयुक्त करके यदि विस्तृत क्षेत्र में शिक्षा का कार्य आरम्भ किया जाय तो दस्तकारी के वायुमंडल में वर्तमान शिक्षा-पद्धति का दोष भी बहुत-कुछ दूर हो जायगा और बुनियादी पद्धति के लिए आधार भी तैयार होता रहेगा। आज की परिस्थिति मे ऐसा करना इसलिए भी ठीक है कि आज सरकार हमारे हाथ मे न होने से अधिकतर लड़के पुराने हिसाब से पढ़ना चाहेगे। हाँ, एक बात हो सकती है कि लड़कियों के लिए तुम्हारे तालीमी सघ के बताये पाठ्यक्रम के हिसाब से पाठ्यक्रम बनाया जा सकता है क्योंकि उनके सामने बाहरी काम करने की समस्या उतनी नही है।

ग्राम-सुधार की दृष्टि से केवल बच्चों की पढाई ही एक मात्र काम नही है। हमे तीन श्रेणियों के लोगों की शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी (१) प्रौढ़ पुरुष (२) प्रौढ़ स्त्रिया (३) बच्चे। प्रौढ पुरुषो की शिक्षा के लिए कांग्रेस सरकार ने साक्षरता का जो कार्यक्रम चलाया था उस सम्बन्ध मे अपने अनुभव मै पहले लिख चुका हूँ। अतः उस प्रकार का साक्षरता का कार्यक्रम चलाना वेकार है। पूरी शिक्षा के लिए न उन के पास समय है, न धैर्य। कताई जैसा कोई सार्वजनिक उद्योग उनके लिए हमारे हाथ मे होता तो उसके सम्बन्ध मे कुछ चेष्टा की जा सकती थी लेकिन हमारे साधन इसके लिए काफी नही हैं अतः इस काम की व्यापक चेष्टा भविष्य की राष्ट्रीय सरकार के लिए छोड़ देनी पड़ेगी। हम आज बच्चो के लिए रात्रि-पाठशाला आदि जो प्रबन्ध करेगे उसी मे प्रौढों को भी पढाने की थोड़ी व्यवस्था हो सकती है और उद्योग के कार्यक्रम मे जो लोग हमारे प्रबन्ध मे काम करेगे उनके काम के साथ शिक्षा का कुछ इन्तज़ाम हो सकता है। त्यौहार आदि का उचित प्रबन्ध कर स्वास्थ्य, सफाई, कला आदि की शिक्षा की चेष्टा भी की जा सकती है। हमे फिलहाल इतने से ही संतोष करना होगा। परिश्रमालय की मार्फत प्रौढ़ स्त्रियों की शिक्षा की बाबत मै पहले लिख चुका हूं। कताई की

मज़दूरी देकर शिक्षा-शिविर चलाने की योजना के साथ भी शिक्षा की व्यवस्था की चर्चा की है। विहार मे तुमसे जब मुलाकात हुई थी तब भी इस विषय मे सारी बाते विस्तार से वताई थी। इस दिशा मे मैने जो कुछ प्रयोग किया है उससे मेरा विश्वास दृढ हो गया है कि प्रौढ़ पुरुषो की अपेक्षा प्रौढ स्त्रियाँ आसानी से शिक्षा ग्रहण कर सकती हैं। वे जल्दी सीख लेती है। फैज़ाबाद में सरकारी ग्राम-सुधार के द्वारा अपने प्रयोग का विवरण मैने आगरा जेल से भेजा था। उससे भी तुम्हे अन्दाज़ मिला ही है। अतः इस पर और न लिखूँगा। चर्खा संघ के पास साधन भी पूरा है। ३।४ लाख कत्तिनों से वह सम्बन्धित है। उनमे अगर २ लाख स्त्रियो को ठीक से शिक्षित कर दे तो ग्रामीण जनता क्रान्तिकारी गति से सुधार की ओर बढ सकती है। अगर हम सफलता के साथ कताई परिश्रमालय चला सकें तो क्रमशः यही परिश्रमालय स्थायी रूप लेकर स्त्रियों को शिशुपालन, प्रसूति-सेवा आदि की शिक्षा भी देने का प्रबन्ध कर सकता है।

वच्चो की शिक्षा के लिए रणीवाँ मे मैंने जो कुछ प्रयोग किया है वह तुम्हे मालूम हो गया है। मेरी राय मे उसी तरह का प्रबन्ध अच्छा होगा। जितने बच्चे उद्योग के साथ दिन भर के विद्यालय मे आ सके वे उसी मे पढ सकते है। लेकिन हमारे साधन से तथा गाव वालों की आज की स्थिति के अनुसार इस प्रकार के विद्यालय अभी अधिक नहीं खुल सकेंगे और न उन विद्यालयों में कुल लड़के आ सकेंगे। अतः शुरू मे गाव की कताई समिति की मार्फत रात की तथा दोपहर की पाठशालाओं का सघटन करना ठीक होगा। पाठशालाओं का समय रात मे २ घंटे और दोपहर के २ घंटे रखा जा सकता है। वहुत छोटे बच्चों के लिए दोपहर का और कुछ वड़ो के लिए रात का समय अधिक सुविधाजनक होगा। किसान और मज़दूरों के वच्चो के लिए दूसरे समय गृहस्थी का काम छोड़कर पाठशालाओ मे आना संभव नही है। इस प्रकार २. घटे की पाठशालाओं के लिए शिक्षक भी

सुगमता से प्राप्त होंगे क्योंकि वे दूसरे काम के साथ बीच मे पढा सकेंगे। वस्तुतः बच्चों को पढाने के लिए स्त्री अध्यापिकाओं की तलाश करनी चाहिए। मेरी राय मे बच्चो की शिक्षा के लिए स्त्रिया अधिक उपयोगी हो सकती हैं। देहातों की पाठशालाओं का मेरा जो अनुभव है उसके आधार पर मै निस्सन्देह कह सकता हूँ कि बच्चों के लिए पुरुष शिक्षक प्रायः अयोग्य ही नही बल्कि हानिकारक होते हैं। लेकिन गावों मे शिक्षित पुरुष ही मिलने कठिन हैं, शिक्षिता स्त्रिया कहा से मिलेगी? अतः प्रारम्भ मे पुरुषों से ही काम चलाकर स्त्रियों की तलाश करनी होगी। परिश्रमालय के द्वारा स्त्री-शिक्षा की योजना सफल होने पर हम क्रमशः इस कमी को भी दूर कर सकेंगे। पाठशालाओ के चलाने मे थोड़ा खर्च अवश्य होगा। उसके लिए बच्चों मे फीस के रूप मे एक आध गुंडी सूत रख सकते हैं। गाव की पाठशालाओं के अलावा १०।१२ गावों के बीच उद्योग के साथ मिडिल स्कूल की योजना बनाई जा सकती है। इन स्कूलों मे ४ घंटा कताई तथा अन्य उद्योग और ४ घटा पढ़ाई का समय रखा जा सकता है। कताई के सूत मे से ही विद्यार्थी पाठशाला के खर्च के लिए फीस देने का और अपनी किताबों आदि का काम चला सकते हैं। मेरा विश्वास है कि उचित वायुमंडल पैदा होने पर ये स्कूल स्वावलम्बी हो सकते हैं। फिर तुम लोग इन स्कूलों मे जितने नई तालीम की पद्धति से चला सको उतना ही अच्छा होगा।

संस्कृति शिक्षा का ही परिणाम है फिर भी उद्योग तथा पढ़ने-लिखने की शिक्षा के सिवाय गाव मे सामूहिक रूप से कुछ साप्ताहिक कार्यक्रम रखना आवश्यक है। इसके लिए कुछ चुने हुए त्योहारों का मनाना, भजन मडली, नाटक आदि का आयोजन किया जा सकता है। हर गाव मे ग्राम समिति दीवाली, वसंत पंचमी, होली, ईद मनाने का आयोजन कर सकती है। इसके सिवा अक्सर गावों मे स्थानीय त्योहार भी होते हैं जिनके कलापूर्ण ढंग से मनाने का आयोजन

किया जा सकता है। होली, दीवाली आदि त्यौहारों के द्वारा आधुनिक ढंग से सांस्कृतिक शिक्षा और उसका विकास करना हमारा लक्ष्य है। इन त्यौहारों का उपयोग इस प्रकार करना मनोरंजन के साथ-साथ ग्राम-जीवन की उन्नति का कारण होगा। जैसे ईद और दीवाली के अवसर पर गाव की सफाई का कार्यक्रम ख़ास तौर से रखा जा सकता है। रात को दीपावली की सजावट के द्वारा कला का विकास किया जा सकता है। वसंतपंचमी का त्यौहार बच्चों के लिए रखा जा सकता है। अगर उसी दिन पाठशालाओं का वार्षिकोत्सव मनाया जा सके तो उसी त्यौहार को सांस्कृतिक शिक्षा का एक बड़ा साधन बनाया जा सकता है। सोचने की बात है कि सारे बच्चे वसन्ती रंग के कपड़े पहन कर पाठशालाओ मे जाने लगेंगे, उनकी सजावट करने लगेंगे, विनोद के लिए खेल-कूद का प्रदर्शन करेंगे, छोटे-छोटे बालोपयोगी नाटक खेलने का आयोजन करेंगे; माताएँ जब उस अवसर पर यत्न से संचित वस्त्रों को निकालकर अपने बच्चों को सजायेंगी, तो क्या गाव के लोगो मे आज जैसा अपने को दीनहीन समझने का भाव मन्द न पड़ेगा? मैने तो कही कही थोड़े से अनुष्ठानों की व्यवस्था करके देखा है कि ऐसे समय ऐसा लगता है मानो सारे गाव मे किसी ने जान फूंक दी है। इसी प्रकार होली का भी उचित ढंग से संघटन करके उसे आपस के सद्भाव तथा शिष्टाचार की शिक्षा देने का साधन बनाया जा सकता है। ईद हिन्दू मुसलमानों के मिलन का आधार हो सकती है। कुछ गाँव मिलकर दशहरा, नागपंचमी आदि का सम्मिलित कार्यक्रम रख सकते है; इससे संघटन और सहयोग का अभ्यास हो सकेगा। दशहरे के अवसर पर रामलीला और नाटक आदि की व्यवस्था हो सकती है। नागपंचमी का तो बड़ा सुन्दर उपयोग देहातों मे किया जा सकता है। इस कार्यक्रम की अवधि करीब १५ दिन की होनी चाहिए। पंचमी से पहले १४ दिन ग्राम-समितियों की देख-रेख मे गावों मे टूर्नामेंट भी हो।

पंचमी के दिन प्रतियोगिता के साथ समिति-द्वारा पारितोषिक-वितरण आदि का कार्यक्रम रखा जा सकता है। इस प्रकार टूर्नामेंट से रणीवा के आस-पास के ग्राम जीवन में कितनी स्फूर्ति तथा उत्साह पैदा होता था, इसका जिक्र मैने आगरा जेल से लिखे पत्र मे किया था सो तुम्हें याद ही होगा। जब यह अनुष्ठान कई ग्रामों की चीज़ हो जायगा तो हर साल दूसरे दूसरे गावों मे बदलकर अनुष्ठान करने से प्रत्येक गांव को कलाकौशल, व्यवस्था शक्ति आदि का विकास करने का मौक़ा मिलेगा। इन अनुष्ठानों के अलावा कही-कही योम मीलादे नबी, गाँधी जयन्ती और पितृपक्ष का त्यौहार मनाया जाना लाभ-दायक होगा। योम मीलादे नबी के अवसर पर हज़रत मुहम्मद साहब के प्रति हिन्दू मुसलमान सभी श्रद्धाजलि अर्पित कर सकते है। गाधी जयन्ती मे चर्खा-यज्ञ का संघटन तथा नाटक, कथा आदि के द्वारा वर्तमान आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थिति का विवेचन, उस पर गाधी जी के जीवन का असर और उनके द्वारा समस्याओ का हल आदि बातें बता कर जनता को दुनिया की बातों का ज्ञान कराया जा सकता है। पितृपक्ष के १५ दिनों मे महाभारत की कथा के द्वारा भारत के पितरों की याद करने की प्रथा जारी की जा सकती है। इन कथाओं मे भारत का प्राचीन इतिहास, दूसरे मुल्कों से हमारा सम्बन्ध आदि विस्तृत क्षेत्रों में जनता का ज्ञान विकसित करने की सम्भावनाएँ मौजूद हैं।

शिक्षा और सस्कृति के उपर्युक्त कार्यक्रम चलाने मे समय-समय पर सभा, मेला आदि अनुष्ठानो के सघटन की आवश्यकता होगी। ऐसे अवसरो पर इसके लिए शिक्षा के साथ सेवादलो का संघटन होना चाहिए। हा, सेवादल का मतलब केवल कवायद सिखाना नही होगा। स्वयसेवकों को गाव का सघटन मज़बूत बनाये रखने की शिक्षा देनी पड़ेगी। गाव की सफाई, सड़कों की हालत ठीक रखना, आग, बाढ़ आदि आकस्मिक दुर्घटनाओं के समय हिफाज़त करना आदि

काम सेवादल को करने होंगे। अतः उनकी शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए कि यदि कभी डाकुओं आदि का आक्रमण हो तो वे उनका मुकाबला भी ठीक से कर सकें।

मैंने अपने निजी साधनों से प्रौढ साक्षरता के कार्यक्रमों को न चलाने की सलाह दी है। लेकिन अगर उपर्युक्त अनुष्ठानों को उचित ढंग से गठित किया जाय तो जनता साक्षर भले ही न हो सके लेकिन प्रौढ़ शिक्षा तो भली-भाँति हो जायगी। उनका जीवन संस्कृत तथा परिमार्जित तो हो ही जायगा; ज्ञान का भडार भी बढ़ेगा। फिर जब जनता मे इतना ज्ञान और संस्कृति का प्रसार हो जायगा तो लोग स्वतः पढने के लिए आग्रह करने लगेंगे। उस समय चीन में प्रौढ़ शिक्षा के लिए जिस प्रकार बाल शिक्षक का संघटन चल रहा है उस प्रकार कुछ आन्दोलन यहाँ भी अपने-आप चलने लगेगा।

सफ़ाई और स्वास्थ्य—सांस्कृतिक विकास के साथ सफाई और सफाई के साथ स्वास्थ्य का कार्यक्रम सहज और स्वाभाविक रूप से आ जाता है। गाँवों में स्वास्थ्य तथा सफाई-सम्बन्धी आरम्भिक नियमों के ज्ञान की कितनी आवश्यकता है, यह किसी से छिपा नही है। बापू जी ने अपनी 'ग्राम-सेवा' नामक पुस्तक मे सब से मुख्य प्रश्न सफाई और स्वास्थ्य का ही रखा है। उन्होंने सारे गांव को एक प्रकार से घूर ही कहा है। फिर भी मैंने प्रारम्भ मे सफाई का कार्यक्रम रखने की राय नही दी है। पिछले पत्रों में कई जगहों पर इसके कारणों का ज़िक्र मैंने किया है। हा, ग्राम-सेवक प्रारम्भ से ही सफाई की बाबत बात-चीत अवश्य करेंगे लेकिन हमारी योजना मे आरम्भ से ही सफाई आदि का निश्चित कार्यक्रम रखने पर गाँव वालों को इस दिशा मे आकृष्ट करना सम्भव न होगा। सफाई ऐसी वस्तु है जो मनुष्य की परिस्थिति तथा आदत पर निर्भर करती है। आदत भी बहुत कुछ परिस्थिति के आधार पर ही बनती है। यदि जनता की आर्थिक तथा सांस्कृतिक उन्नति हो तो स्वभावतः सफ़ाई की ओर रुचि होगी ही।

यह सच है कि आज हमारे देहात इतने गन्दे हैं कि हम जव पहले-पहल ग्राम-सेवा की ओर वढते हैं तो हमारा ध्यान स्वभावतः एकाएक इस भयानक परिस्थिति की ओर जाता है। हम सोचते हैं कि भला इस नरक कुड मे वैठकर ये लोग कैसे जीवन धारण कर सकते हैं। हालाँकि ऐसा सोचने मे हमारी अपनी रुचि और स स्कृति का भी असर वहुत हद तक है। शुरू में जव मै वनारस ज़िले मे धौरहरा गाव में गया था तो वहाँ की गन्दगी देखकर कितना घवड़ाया था, इसका जिक्र मैंने पिछले किसी पत्र मे किया था। लेकिन यह सव वाते होते हुए भी व्यावहारिक दृष्टि से हमारी योजना मे सफाई के कार्यक्रम का स्थान तीसरा ही होना चाहिए। हम आज ग्राम-सुधार कार्य आरम्भ करते ही हल्ला करना शुरू करते हैं कि गाँव के खाद का घूर दूर ले जाओ। उससे क्या फायदा? हाँ, एक फायदा यह ज़रूर है कि गाँव के लोग हमारी वातों को समझ न सकने के कारण यह समझते हैं कि ये आये हैं खामखाह हमे तग करने के लिए। मै सरकारी ग्राम-सुधार कार्य के सिलसिले मे शुरू में जव प्रतावगढ ज़िले का काम देखने गया था तो वहाँ गाँव के लोग ग्राम-सुधार के कार्यकर्ताओं को 'घूर साहव' कह कर मज़ाक उड़ाते थे। वस्तुतः अगर ग़ौर से सोचा जाय तो गाँव की आज की परिस्थिति मे घूर हटा भी दिया जाय तो सफाई और स्वास्थ्य की दृष्टि से विशेष फायदा नहीं होने वाला है। कारण यह है कि आज देहातों में प्रायः सभी परिवार अपने जानवरों को अपने घर के साथ ही रखते हैं। वे उन्हें जिस घर मे रखते हैं उसका फर्श कच्चा होता है। उस पर लोग राख-पात आदि भी डाले रखते हैं। यह राख-पात और साथ ही उसके नीचे की ज़मीन काफी अर्से तक सड़ती रहती है। उसमे मक्खी, मच्छड़, कीड़े आदि खूव पैदा होते रहते हैं। ये जगहें खाद के घूर से कम गन्दी नहीं होतीं। खाद का खड्ढा फिर भी वाहर होने से उस पर धूप, रोशनी और हवा पहुँचती रहती है। उसके उपरान्त उस पर कभी कभी थोड़ी

मिट्टी डलवाकर सफ़ाई रखने की व्यवस्था भी आसानी से की जा सकती है। लेकिन घरों से मवेशियों को तुम कैसे हटाओगे? उनके लिए पक्का फ़र्श कहाँ से लाओगे? ऐसे मवेशियों के घरों में हवा रोशनी तो पहुँचती ही नहीं, इससे घर भर की हवा जो दूषित होती है उसका क्या उपाय है? वास्तव मे मवेशियों को घरो के अन्दर ऐसी हालत मे रखने से स्वास्थ्य की दृष्टि से जो हानि होती है, घर के पास बाहर खुले मे स्थित घूर द्वारा होने वाली हानि उसका शतांश भी न होगी। हाँ, ऊपर से देखने से बेशक घूर ही गाँव मे सब से गन्दी चीज़ मालूम होते हैं। अतः हम गाँव में घुसते ही इस गन्दगी को दूर करने के लिए हल्ला तो मचाते हैं, लेकिन यह नही सोचते है कि मवेशियों को घरों के अन्दर कायम रहने देकर घूर हटाने के कार्यक्रम का कोई अर्थ ही नहीं। वल्कि व्यर्थ के लिए लोगों की परीशानी बढाने का प्रस्ताव करना है। आज अगर घूर को दूर रखते हैं तो एक बार गोबर ढोकर उतनी दूर ले जाना होगा; फिर वहाँ से दूर दूर खेतो मे ले जाना पड़ेगा। फिर दूर जंगल मे उनके खाद की रखवाली भी ठीक से नही हो पाती है। अगर हम सफाई के इस महत्वपूर्ण कार्यक्रम को उठाना चाहते हैं तो हमे इसे गोपालन के आर्थिक कार्यक्रम के साथ ही लेना होगा और वह कार्यक्रम हम तभी शुरू कर सकते हैं जब छोटे-छोटे उद्योगों के द्वारा गाँव के लोगों मे आत्मविश्वास और सहयोग की भावना पैदा होगी। साबुन के उद्योग के द्वारा सफाई का काम करने की चेष्टा और प्रयोग का विवरण लिख ही चुका हूँ। इसी तरह शिक्षा के द्वारा अनुष्ठान उत्सवादि के 'साथ किस तरह सफ़ाई की भावना का क्रमशः विकास किया जा सकता है, उसका ज़िक्र भी मैने यथा स्थान किया है। इस प्रकार गाँव मे भिन्न-भिन्न उद्योग और सास्कृतिक कार्यक्रमों के साथ-साथ जनता मे रुचि तथा दृष्टिकोण का उचित परिवर्तन होने पर ही सफ़ाई की प्रत्यक्ष योजना बनाई जा सकती है।

स्वास्थ्य के लिए कोई अलग ख़ास योजना बनाना कठिन है। वस्तुतः अभाव दूर होने पर और आहारादि के परिमाण का ज्ञान होने पर स्वास्थ्य का सुधार अपने आप हो जाता है। बहुत सी बीमारियां ग़रीबी का नतीजा हैं और कुछ रोग गन्दगी के कारण होते हैं। फिर भी हमें स्वास्थ्य-सुधार का कार्यक्रम तो चलाना ही है। कम से कम बीमारियों का इलाज करना, दवादारू की व्यवस्था करना, सेवा का एक मुख्य अंग रहता है। एक पड़ोसी के नाते उनके सुख-दुःख में शामिल होना, उनकी तात्कालिक तकलीफों को दूर करने की चेष्टा करना हमारा सहज कर्तव्य हो जाता है। दिल की स्वाभाविक प्रेरणा ही हमें गांव में दवा का इन्तज़ाम करने की ओर झुकाती है। लेकिन हमारे पास जितने साधन हैं उनके अनुसार तथा हमारे अन्तिम ध्येय की दृष्टि से औषधालय का कार्यक्रम विशेष लाभदायक नहीं होता। मैं जानता हूँ कि बहुत से मित्र मुझसे इस विषय में सहमत नहीं हो सकेंगे। मैंने २० साल पहले श्री रामकृष्ण मिशन के कालिका महाराज की प्रेरणा से ग्राम-सेवा की नीयत से किस प्रकार खुद होमियोपैथी का काम सीखना शुरू किया था और उसी इलाज के सिलसिले में अकबरपुर गया था, उसकी कहानी विस्तार से लिख चुका हूँ। दस साल बाद मैंने फिर रणीवां में दवा बांटने के काम से ही ग्राम-सेवा शुरू की थी। इस प्रकार मैं खुद ग्राम-सेवा में औषधालय का बहुत बड़ा स्थान रखता था। बापू जी बार-बार औषधालय के विरोध में लिखा करते थे, उससे मैं सहमत नहीं हो सका था लेकिन अनुभव से मैंने देखा कि हमारे लिए इस प्रकार की चेष्टा बेकार है। आज देहाती जनता का स्वास्थ्य इतना गिरा हुआ है कि दवा देकर कहाँ तक पार लग सकता है। हमारे पास इतने साधन कहाँ हैं? मैं रणीवां में जब दवा देता था तो सुबह ६ बजे से ११ बजे तक भीड़ साफ नहीं कर पाता था। फिर इलाज के लिए लोगों के घर जाना पड़ता था। इस प्रकार अगर औषधालय का काम करने लगें तो सारा समय उसी

मे चला जायगा, फिर सब के घर न जा सकने के कारण कुछ लोगो को हम नाराज़ भी कर देते हैं। हमारे औषधालय से एक बुनियादी हानि पैदा होती है कि लोगो की ख़ैरात की ओर रुझान हो जाती है और हर बात के लिए वे हमारा मुँह ताकने लगते हैं। अगर ऊपर बताई हानियों का ख्याल न भी किया जाय तो भी केवल साधन के अभाव से ही औषधालय का काम करना सम्भव नहीं। तुम कह सकती हो कि अगर साधन नही है तो दवा का दाम तो लिया ही जा सकता है। उससे तो और भी जटिल समस्या पैदा हो जाती है; ग़लतफ़हमिया बढ़ती हैं और लोग नाराज़ हो जाते हैं। साधन न होने के कारण लोगों को तकलीफ के समय दवा देने से हम मजबूर है इसलिए इस काम को करते ही नही, यह वात तो जनता की समझ मे आ सकती है। लेकिन अगर यह कह कर इन्कार करते हैं कि बिना दाम के दवा नही दे सकते तो लोगों मे स्वभावतः क्षोभ पैदा होगा। रणीवा मे मै दवा देता था। ग्रामवासियों की दान लेने की वृत्ति को देख कर वाद को जब मैंने मुफ़्त दवा देने की प्रथा हटाने की चेष्टा की थी तो मुझे तरह-तरह की कठिनाइयो का सामना करना पड़ा था। मै औषधालय वन्द ही करने की वात सोच रहा था। इसी वीच सारा काम सरकार ने बन्द करा दिया। मुझे अलग से सोचने की आवश्यकता ही नही पड़ी। वस्तुतः औषधालय की योजना तो ग्राम-सुधार का काम वहुत आगे वढ जाने के बाद जब देहाती समितियां काफी योग्य तथा साधन सम्पन्न हो जायेंगी, तभी कार्यान्वित हो सकती है।

प्रश्न यह उठता है कि क्या गाव के रोग-निवारण के लिए हम कुछ भी चेष्टा नहीं करेगे? करेंगे क्यों नहीं? मै तो सिर्फ अपनी संस्था की ओर से औषधालय खोलने का विरोध कर रहा था; रोग-निवारण की चेष्टा का नही। मेरी राय मे ग्राम-सेवक को देहात मे प्राप्य वस्तुओं से साधारण इलाज का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। यह

सच है कि हमारे काम के लायक इस विषय पर साहित्य नहीं है। फिर भी खोज करने से हमे काफी मसाला मिल सकता है। गाव वालों से भी बहुत बाते सीखी जा सकती हैं। तुलसी, नीम, बेल के पत्ते आदि महौषधि का काम करते हैं। इन दवाओ के सम्बन्ध मे मै जो थोड़ा अनुभव कर सकता था उससे मेरा विश्वास हो गया है कि इस दिशा मे ग्राम-सेवक के सामने खोज के लिए विस्तृत क्षेत्र पड़ा है। इस काम के लिए योग्य वैद्यों से भी मदद मिल सकती है। गाव मे किसी को तकलीफ हो तो सेवकों को अपने ज्ञान के आधार पर उसे बता देना चाहिए कि वह क्या करे। मैने देखा है कि आम तौर से गाँव के लोग मामूली बुखार, खासी, पेट दर्द, पेचिश, चोट आदि छोटी-मोटी बीमारियो का ही इलाज कराने हमारे पास आते हैं। इनके लिए उपयुक्त दवाइया काफी हैं। अगर कभी किसी को कठिन पीड़ा हो जाय तो शुरू मे देहाती दवा देकर किसी वैद्य के पास भेजा जा सकता है। इस तरीके से सेवक केवल रोगी की सेवा ही नहीं करेंगे बल्कि उनको रोग के इलाज का साधारण ज्ञान भी दे सकेंगे। देहाती दवाइयों की खोज करके एक पुस्तिका बनवाने की मैंने जो चेष्टा की थी उसके सम्बन्ध मे पहले बता चुका हूँ। इस किस्म की खोज की कोई योजना बनाई जाय तो अच्छा है जिसमे हम इलाज के साथ-साथ इलाज का साधारण ज्ञान देकर जनता को स्वावलम्बन की ओर बढा सकेंगे। हमारे वैज्ञानिक मित्र मेरी इस सम्मति से घबड़ायेंगे। कहेंगे—"क्या जहालत की बात करते हो।" उनसे मेरा नम्र निवेदन है कि देहात की आज की स्थिति को वे देखे और उसी हिसाब से बात करें। आखिर विज्ञान है क्या वस्तु? किसी चीज का विशेष ज्ञान ही तो विज्ञान है। मेरे-जैसा मामूली सेवक अगर जनता को साधारण ज्ञान देने की चेष्टा कर के विशेष ज्ञान का क्षेत्र वैज्ञानिक मित्रों के लिए छोड दे तो क्या हानि होगी? और मेरी क्षुद्र बुद्धि से ऐसा लगता है कि परिस्थिति का विश्लेषण करके उसी के आधार

पर समस्याओं के समाधान की चेष्टा वैज्ञानिक चेष्टा है। अगर इस परिभाषा से तुम लोगों को संतोष न हो तो मै मजबूर हूँ। मैं तो अनुभव के आधार पर ही बात करूँगा।

अभी मैने कहा कि कुछ साल काम करने के बाद जब ग्राम-समितियां योग्य तथा साधन-सम्पन्न हो जायँगी तो औषधालय की योजना उन्ही के द्वारा कार्यान्वित की जा सकती है। उस समय समितियाँ किसी अच्छे वैद्य या हकीम को व्यक्तिगत रूप से कुछ ग्रामो के बीच स्थापित करें तो भी काम चल सकता है। उनको मदद करते समय कुछ शर्तें भी रखी जा सकती हैं।

कृषि और बाग़बानी—क्रम के अनुसार कृषि और बागबानी का स्थान चौथा है। इससे तुम्हें कुछ आश्चर्य होता होगा। आश्चर्य होने की बात भी है। भारत कृषि-प्रधान देश है। कृषि ही यहाँ का उद्योग है। गाँव की आबादी के ९० प्रतिशत लोग इसी उद्योग के भरोसे जीवन धारण करते हैं। अतः सबसे पहले हमे कृषि-सुधार का काम करना चाहिए, ऐसा ख्याल करना स्वाभाविक है। ज़मीन की पैदावार बढ़े और खेती के तरीके मे सुधार हो, यह सभी का अभीष्ट है। लेकिन यह कार्यक्रम इतना व्यापक है और इसके लिए इतने साधन चाहिएँ कि यह काम हमारी शक्ति से बाहर है। संयोजित रूप से खेती-सुधार का काम तो राष्ट्रीय सरकार के द्वारा ही हो सकता है। आज की सरकार को इस काम मे न अधिक दिलचस्पी है और न वह अधिक कुछ करने को तैयार ही है। अगर वह कुछ प्रयोग करती भी है तो उसकी दृष्टि अपने मुल्क के उद्योग के लिए सस्ता कच्चा माल प्राप्त करने की ओर ही रहती है। सरकारी कृषि-विभाग का जहाँ तक जनता से सम्बन्ध है वह अफसरी ढंग की ओर ही अधिक रहता है। अफसर लोग जनता के सामने तरह-तरह के खेती सुधार के कामों का प्रचार अवश्य करते है। लेकिन उनपर अगर गभीर विचार किया जाय तो उनसे पैदावार उतनी नही बढती जितना खर्च बढ़ता

है। हमारे किसानों का खेती-सम्बन्धी ज्ञान किसी से कम नहीं है। विदेशी विशेषज्ञ लोग भी जब यहाँ की खेती का तरीका देखते हैं तो कहते हैं कि यहाँ का किसान दुनियाँ के किसी भी किसान का मुकाबला कर सकता है। सरकारी खेती कमीशन की रिपोर्ट में भी इस बात की ताईद की गई है। लेकिन वह बेचारा चाहे भी तो कर ही क्या सकता है? न खाद, न पानी और न उसके पास पर्याप्त जमीन। उन्नत खेती के प्रथम उपादान हैं प्रचुर पानी, खाद और विस्तृत भूखंड का चक, जिसमें हिसाब से फसलों का उचित बँटवारा किया जा सके, हल बैल का किफायत से इस्तेमाल हो सके और खाद-पानी पड़ने की व्यवस्था ठीक हो सके। इस प्रकार व्यवस्था तभी हो सकती है जब सरकार जनता की हो और खेती सम्मिलित हो। सम्मिलित खेती भी तो जनता की सहयोग-वृत्ति पर ही निर्भर करती है। अतः खेती-सुधार की योजना बनाने से पहले व्यापक रूप से ग्रामीण उद्योग-धन्धों का संघटन तथा शिक्षा का प्रसार हो जाना चाहिए। मैंने उद्योग को भी सहयोग के सिद्धान्त पर ही चलाने की सलाह दी है। सहयोग के सिद्धान्त पर उद्योग का व्यापक प्रसार होने से जनता में व्यवस्था शक्ति तथा सहयोग-वृत्ति पैदा होगी। साथ ही आर्थिक उन्नति से साधनों की उन्नति करने की शक्ति प्राप्त होगी। इस प्रकार उद्योग और शिक्षा-योजना की सफलता से सम्मिलित खेती का आधार स्थापित किया जा सकता है और तभी उन्नत खेती की कोई स्थायी योजना बन सकती है। जनता में इतना संघटन होने पर वह सरकार से साधन भी प्राप्त कर सकती है।

मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि अपनी संस्था की ओर से ग्रामोत्थान की जो योजना बनाई जाय उसमें खेती का कोई स्थान ही न हो। आज की परिस्थिति और साधनों से जो कुछ भी सुधार हो सकता हो उस पर ध्यान देना आवश्यक तो है ही। बीज का सुधार, पानी का प्रबन्ध, बैलों की नस्ल की उन्नति आदि छोटी-छोटी

योजनाओं-द्वारा कम से कम जनता की दृष्टि खेती-सुधार की ओर आकृष्ट तो की ही जा सकती है। ऐसी छोटी योजनाओ का सहयोग के सिद्धान्त पर चलवाने की चेष्टा करके भविष्य की सम्मिलित खेती का आधार तैयार किया जा सकता है। जिससे भविष्य में परिस्थिति अनुकूल होने पर हमारा काम सरल हो सके। अपनी स्थिति के अनुसार हम जो योजना बनाये वह कुछ इस प्रकार की हो सकती है:—

(१) **बीज गोदाम का संघटन**—चर्खे का काम करने के साथ-साथ गाँवो मे चर्खा-समितियाँ कायम करने की सलाह मै पहले ही दे चुका हूँ। ये ही चर्खा सम्मितियाँ भविष्य मे ग्राम-समितियो का रूप ले लेंगी, यह भी कह चुका हूँ। इन्हीं समितियो-द्वारा अगर एक छोटे बीज गोदाम का सघटन किया जाय तो क्रमशः समिति के सदस्यो के अलावा दूसरे भी इसी के बहाने हमारे संघटन मे शामिल हो सकते हैं। इसके लिए प्रत्येक सदस्य से फ़सल मे ५ सेर अनाज किस्त के रूप मे जमा करके एक बीज गोदाम-समिति कायम की जा सकती है। यह रकम इतनी थोड़ी है कि गाव का करीब प्रत्येक किसान इसमें शामिल हो सकता है। बीज की समस्या उनके सामने ऐसे प्रत्यक्ष रूप मे मौजूद रहती है कि इतना देने के लिए उन्हें राजी करना कठिन नहो होगा। यह सच है कि शुरू मे सब लोग ऐसे गोदाम के महत्व को नहीं समझेगे और हमारे कार्यकर्ता का लिहाज करके किस्त का अनाज उसी तरह दे देंगे जिस तरह लोग पाठशाला आदि के लिए फसल के दिन अनाज का दान देते है। लेकिन क्रमशः जब उन्ही के हाथों से गोदाम के आकार मे वृद्धि होती जायगी और उसकी व्यवस्था मे उन्हें प्रत्यक्ष भाग लेना पड़ेगा तो वे इसमे अधिक दिलचस्पी लेंगे। साथ ही उनमें व्यवस्था शक्ति का विकास तथा सहयोग का अभ्यास होता रहेगा। मेरी प्रस्तावित योजना गाव के बीज के अभाव की पूर्ति की दृष्टि से तो विशेष मदद नहीं कर सकेगी लेकिन शिक्षा और संघटन की दृष्टि से

इसका महत्व बहुत है । इसी किस्म के छोटे-छोटे कार्यक्रमो से ही तो गाव की जनता मे संघटन शक्ति का विकास होगा । आर्थिक दृष्टि से भी ८—१० साल मे यही बीज गोदाम बढकर किसानों के बीज की समस्या हल करने मे काफी मदद कर सकता है ।

इस सिलसिले मे तुम्हे पहले की बात बताना ठीक समझता हूँ । फैज़ाबाद में जब सरकारी महकमे के द्वारा बीज गोदामो की देख-भाल करता था तो मुझे जो अनुभव हुआ था उसके सम्बन्ध मे मै लिख चुका हूँ । तुम्हे याद होगा, महकमा के गोदाम के द्वारा समस्या हल करने की चेष्टा कितनी कठिन है । मैने लिखा था कि वहाँ जो उन्नत बीज दिया जाता था वह परिस्थिति के अनुकूल किसी निश्चित योजना के अनुसार नहीं होता था । जैसा कि मैने अभी लिखा है कि आज की सरकार जो कुछ करती है वह प्रदर्शन मात्र है । वहाँ के कार्यकर्ता अपनी अफ़सराना धाक कायम रखने के फेर मे किसानों से कुछ सीखना तो दूर की बात उनसे मिलकर उनकी असली परिस्थिति और समस्याओं का भी अध्ययन नही करना चाहते । वे गाव के वायुमडल से अलग रहकर अपनी प्रयोगशाला मे आदर्श स्थिति मे ही प्रयोग करते है और इस प्रयोग मे विदेशी तरीक़ा और विदेशी नस्लों को काम मे लाते हैं । उनके सामने पैदावार और बाज़ार की दृष्टि ही अधिक रहती है । ग्राम-स्वावलम्बन या खाद्य गुण का हिसाब वे नही करते हैं और न वे हमारे किसानों के खाद-पानी के साधन का ही ख्याल रखते हैं । अतः सरकारी बीज-गोदामों में चाहे जैसे भी काम होता हो पर जो भी काम हमारी संस्था के निर्देशानुसार हो वह हमारे देहात की परिस्थिति के अनुसार ही हो । सरकारी महकमे के विशेषज्ञों से हम जरूर मदद लेगे; उनसे हम परामर्श तो करेंगे लेकिन हमें किसी किस्म के बीज के प्रचार करने के पहले इस बात का ध्यान रखना होगा कि वह बीज उस गाव की जमीन के लिए अनुकूल है या नही । केवल अनुकूल होने से ही काम नहीं चलेगा । यह देखना होगा कि

अमुक प्रकार का बीज ज़मीन की उर्वरता कितनी समाप्त करता है और खर्च हुई उर्वरता की पूर्ति के लिए हमारे किसानों के पास काफी सामान है या नही। मै जब देहातों में जाता था और उन्नत बीजो के नतीजे की बाबत प्रश्न करता था तो प्रायः यही जवाब मिलता था कि है तो बीज अच्छा, पैदावार भी ज्यादा है लेकिन भाई जी २-३ साल के बाद वैसी पैदावार नही होती है। मालूम होता है कि ज़मीन की ताकत कुल खीच लेता है; इत्यादि। यह रिपोर्ट केवल देहात के किसान ही देते हैं, ऐसा नही बल्कि सरकारी विशेषज्ञ भी इसे कबूल करते हैं। इसके लिए वे कहते हैं—"खाद पानी बढ़ाओ।" भला बताओ तो सही कि खाद पानी लावे कहाँ से? यह तो वही बात हुई कि देहात मे इलाज करने के लिए पहुँच कर डाक्टर साहब जैसे कह आते है, "फलो का रस पिलाओ!" मै फ़ैज़ाबाद मे जब ग्राम-सेविका शिक्षा शिविर चला रहा था तो सेविकाओ के बच्चो के लिए एक शिशु-विहार खोला था। तुम्हे याद होगा कि उस शिशु-विहार के सामान के लिए हैल्थ अफसर, लेडी हेल्थ विज़िटर से परामर्श करने पर वे किस तरह माताओं को रोग-कीटाणु-नाशक द्रव साबुन (anti-septic liquid soap) इस्तेमाल करने की सलाह देने को कह रही थीं। "खाद-पानी बढ़ाओ" वाली राय भी कुछ उसी प्रकार मालूम होती है। बीज की स्थानीय क्षेत्र में अनुकूलता, किसानों के साधनों की प्राप्ति और उसके साथ अनाज के खाद्य गुणों का ख्याल हमारे कार्यकर्ताओं को अधिक करना चाहिए। हमेशा ध्यान रहे कि हमारा प्रधान लक्ष्य "पेट भरना है," पेट काट कर "अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार" देखना नहीं।

इस विषय मे स्थानीय क़िस्म के बीजों की छँटनी करने का प्रयोग जो कुछ मै कर सका था उसकी सूचना तुम्हे दे चुका हूँ। अपने निजी अनुभव से कह सकता हूँ कि गाँव मे बहुत से स्थानीय क़िस्म के अनाज पैदावार की दृष्टि से अच्छे, खाने मे अधिक पुष्टिकर और स्थानीय भूमि के अनुकूल मिलते हैं। ऐसी फ़स्ल सदियों से स्थानीय

(परिस्थिति) मे पैदा होने के कारण जमीन की कम खुराक लेकर भी अपनी पुष्टि प्राप्त करने की आदी हो गई है। लेकिन आमतौर से किसानो की अनभिज्ञता और सरकारी विशेषज्ञों की उदासीनता तथा उपेक्षा के कारण आज उनकी कद्र नहीं है और क्रमशः वे घटिया किस्म के अनाज से मिश्रित होकर घटिया हो जाते हैं। मैने देखा है कि ऐसे स्थानीय अनाजों का ज्ञान गाँव के बहुत से प्रवीण खेतिहारों को है। हमे ऐसे जानकार लोगों से तथा दूसरे सरकारी और गैर-सरकारी विशेषज्ञों से परामर्श करके शुरू मे ऐसे स्थानीय अच्छे और शुद्ध किस्म के बीजो की छटनी करने की योजना बनाने के लिए ग्राम-समितियो को प्रोत्साहन देना चाहिए। इससे एक साथ दो लाभ होंगे। एक तो आसान और ग्रामवासियो के साधन के अन्तर्गत होने से उन्नति की गति अधिक होगी और दूसरे इस प्रकार की सफलता से ग्रामवासी—इस ओर आगे बढ़कर प्रयोग करने को स्वभावतः प्रेरित होकर वैज्ञानिक खोज के लिए आधार तैयार करेंगे।

बीज गोदामो के सघटन के लिए जहा मैं सरकारी महकमो के तर्ज-तरीकों से सावधान करना जरूरी समझता हूँ वहा स्थानीय महा-जनों के प्रति हमारा क्या रुख होगा, उसका भी विचार कर लेना आवश्यक है। यह तो तुम्हे मालूम ही है कि आजकल हवा ऐसी चली हुई है कि सार्वजनिक काम करने के लिए जो भी युवक मैदान मे उतरता है वह राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक बुराइयों की उग्र समालोचना करने लगता है। वह ऊपर-ऊपर से उन बुराइयों का कारण कुछ निकाल कर उनके पीछे डडा लेकर पड़ जाता है। उसे आगे-पीछे देखने की जरूरत ही नहीं है। समाज पर या जिनके हित के लिए हम इतना तूफान करते हैं उन्हीं पर हमारे तरीकों का क्या असर पड़ेगा, इसका भी ख्याल नहीं करते हैं। हो सकता है कि रोग के सम्बन्ध मे उनका निदान सही हो किन्तु गलत इलाज, गलत अनुमान, गलत पथ्य या गलत तरीके के उपचार से भी रोग का

उपशम न होकर रोग की वृद्धि भी हो सकती है। फोड़ा कितना भी सड़ा हो लेकिन डाक्टर उस पर छुरी चलाने से पहले दिल की धड़कन की परीक्षा अवश्य कर लेता है। जिससे कहीं ऐसा न हो कि चीर-फाड़ से मवाद तो साफ हो जाय लेकिन अस्त्र की उग्रता से रोगी के दिल की धड़कन ही बन्द हो जाय। ऐसी परिस्थिति में डाक्टरो को मरहम-पट्टी आदि दूसरी किस्म के इलाज सोचने पड़ते हैं, चाहे उस इलाज मे जरूरत से अधिक समय क्यों न लगे। ठीक उसी प्रकार ग्राम-सुधार कार्य मे हमको सावधानी से आगे बढना होगा। हमारे एक-एक कदम की प्रतिक्रिया समाज में क्या होगी, हम जो बात करते हैं उसको सहने के लिए उनके पास कितनी शक्ति है, हमारी बात सुन कर उनमे समझने की कितनी शिक्षा है, एक गलत चीज़ के स्थान पर सही चीज़ देने के लिए हमारी शक्ति कितनी है, इत्यादि बातो का विचार करके ही हमे आगे बढना होगा। मैने जिस परिमाण के बीज गोदामों का प्रस्ताव किया है वे गाव के अभाव रूपी समुद्र मे एक बूंद पानी के भी बराबर नही है। लेकिन हमारे सेवक इसी को केन्द्र कर के गाव के बीज के मौजूदा कारबार के खिलाफ झंडा खड़ा कर सकते हैं। अतः हमे इस बात की सावधानी रखनी होगी कि आज जो महाजन बीज का लेन-देन करते है वे हमारे काम को सन्देह की दृष्टि से न देखने लग जायँ। यह सच है कि हमे उनके ढंग पसन्द नहीं हैं। गाँव के लिए वे हानिकारक भी है। सीधे-सादे गरीब किसानों की मजबूरी का वे बेजा फायदा उठाते हैं। लेकिन आज ग्रामीण आर्थिक स्थिति मे उनका जो स्थान है, वह तो है ही। अगर आरम्भ से ही ये लोग हमारी चेष्टाओ को सन्देह की दृष्टि से देखने लगे तो हम आज उनका कुछ सुधार करने के पहले ही अपने काम को असफल बना डालेगे। अतः हमको उनसे मिलकर उनको यह महसूस करा देना होगा कि हमारा कार्यक्रम उनके लिए फ़ायदे का ही है और उनका ज़माने को देखते हुए अपना ढंग बदलने मे ही फायदा

है। जहाँ तक संभव हो, बीज के प्रकार की उन्नति उनके द्वारा भी की जाय। उनके स्टाक को सुधारने मे हमको शक्ति भर कोशिश करनी चाहिए। अगर हम उनके बीज का स्टाक ही कुछ सुधार सके तो खेती की उन्नति हो जायगी।

सिचाई——खेती के सुधार का मुख्य साधन खाद व पानी है। हमारे देश मे जितनी खेती होती है उसकी २० प्रतिशत खेती को किसी कदर सिंचाई से पानी मिलता है। अगर उस भूमि को जोता जाय जो खेती लायक है लेकिन अभी काम मे नही आ पाती है तो यह अनुपात बहुत कम हो जायगा अतः पानी की सुलभता के लिए जो कुछ भी किया जाय, वह थोडा है। लेकिन हम अभी अपनी संस्थाओ के द्वारा किस तरह ग्रामसुधार योजना बना सकते है उसका विचार कर रहे हैं। पानी की व्यवस्था क काम इतना व्यापक है कि विना सरकारी मदद और ग्राम-सहयोग-वृत्ति के प्रसार के इस समस्या का हल सम्भव नहीं है। फिर भी हम अपनी प्रारम्भिक ग्रामसमितियो के द्वारा इस दिशा मे थोड़ी चेष्टा तो कर ही सकते हैं। मेरे ख्याल से ३-४ साल मे उद्योगादि का सघटन हो जाने से ग्रामसमितियो के दृष्टिकोण तथा उनकी आर्थिक स्थिति का इतना विकास हो जायगा कि जगह-जगह उन्नत कुओ के निर्माण-द्वारा सिचाई की योजना की जा सकेगी। इसके अलावा भट्ठे का कार्यक्रम चलाकर तालावो का का पुनरुद्धार तो कर ही सकते है। भट्ठे का कार्यक्रम गाव के लिए कितना लाभदायक हो सकता है और उसके द्वारा हम किस तरह तालाबो का पुनरुद्धार करके सिंचाई का तथा मछली का प्रबंध कर सकते हैं, इसकी सूचना मै तुम्हे दे ही चुका हूँ। वस्तुतः तालावों के द्वारा सिचाई की समस्या हल करने की काफी गुंजाइश है। आज भी मद्रास प्रात की सिचाई अधिकतर तालावो से ही होती है। रायल एग्रीकलचरल कमीशन की रिपोर्ट तो वताती है कि हिन्दुस्तान में जितना पानी वरसता है उसका ३५ °/ₒ वहकर समुद्र में चला

जाता है। इस पानी को इकट्ठा करके सिंचाई का प्रश्न हल किया जा सकता है। फिर भट्टों का निर्माण तथा उनके द्वारा तालावों का जीर्णोद्धार का काम हमारे सन्धान के अन्तर्गत है। अतः हम जो योजना वनाये उसमें उक्त दो प्रकार का प्रयोग अवश्य शामिल रहे। हमे अपनी सस्थाओं द्वारा नहर की बात सोचना ही व्यर्थ है। प्रथमतः जहा कुवाँ बन सकता है वहाँ नहर के मै खिलाफ हूँ। इसका कारण भी मै तुमको विस्तारपूर्वक लिख चुका हूँ। दूसरी बात यह है कि नहर की कोई भी योजना सरकार के बिना नही हो सकती है। अतः अपनी राष्ट्रीय सरकार होने पर ग्राम-सुधार योजना कैसी हो, इसका विचार करूँगा तव इस पर अपनी राय और विस्तार से भेजने की चेष्टा करूँगा। फिल-हाल उसे छोड़ देना ही ठीक होगा।

खाद—सिंचाई के बाद खेती की उन्नति के लिए खाद महत्व की चीज़ है। अतः अब थोड़ी देर हम इस पर विचार करें कि अपने साधनों से इस दिशा मे क्या-क्या कर सकते हैं। मैने अपनी योजना में पहले उद्योग का काम रक्खा है। उन्ही उद्योगों के साथ खाद की उत्पत्ति भी की जा सकती है। जहाँ कही भी चमड़ा पकाने का उद्योग जारी किया जाय उसके साथ हड्डी की खाद बनाने का काम जारी करना चाहिए। इसके जारी करने मे सामाजिक प्रथा के कारण कठिनाई विशेष न होगी। थोड़ी संस्कारगत कठिनाई तो हमारे व्यापक रूप से कार्यक्रम शुरू करने के साथ ही खतम हो जाती है। फिर हम उच्च वर्ण के लोगों को कुछ अभी से हड्डी छूने को नही कह रहे हैं। उद्योगों के विकास के साथ-साथ उस प्रकार के संस्कार मे अपने आप ही परिवर्तन हो जायगा। तुम जब रणीवा गई थी तो देखा ही होगा कि किस तरह स्थानीय उच्च वर्ण के युवकों ने चर्मालय मे काम करना शुरू कर दिया था और इस कारण उन्हे समाज मे किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नही करना पड़ता था। उसके लिए मुझे कुछ खास समाज-सुधार का अलग कार्यक्रम नही चलाना पड़ा

था। वल्कि अगर मै अलग से इस प्रकार का काम चलाता तो उक्त परिवर्तन नहीं हो पाता और असर उलटा ही होता। आज भी देहातो मे एक श्रेणी के लोग हड्डी बीन कर एकत्र करते हैं और उसे व्यापारियो के हाथ वेच आते हैं। ऐसे व्यापारी तमाम हड्डियों का ढेर विदेशो को भेज दिया करते हैं। मेरा प्रस्ताव केवल यह है कि गाँव-गाँव उन्हें एकत्र कराकर उनकी खाद बनवाई जाय। यह खाद वड़ी आसानी के साथ वन जाती है। थोड़े पत्तो आदि से आग लगा देने से हड्डियाँ टूटने लायक हो जाती हैं। इसके लिए पत्ते भी अधिक नही चाहिएँ। हड्डी के ढेर के नीचे और ऊपर तीन तीन इञ्च पत्ते से काम चलाया जा सकता है। फिर ढेकी से या चूना सानने के पत्थर के वेलन से चूर कर लिया जा सकता है। इसके लिए कई तरीके हैं लेकिन पत्रो मे हम किस प्रकार की योजना वना सकते हैं, सिर्फ उसी पर विचार कर रहे हैं। अतः कुछ लोगो के तरीके लिख कर पत्रो का आकार वढ़ाना ठीक न होगा। हड्डी के अलावा दूसरी प्रकार की खाद भी वनाने की योजना आसानी से वन सकती है। गाँव में इधर-उधर काफी जंगल, खर-पत्ते आदि चीजे पड़ी रहती हैं। अगर स्थानीय समिति को प्रोत्साहन दिया जाय और युवको को संघटित किया जा सके तो उनको वटोर कर कम्पोस्ट (compost) खाद वनाने का सिलसिला जारी किया जा सकता है। मैने देखा है कि इस तरीके से बिना साधन के ही काफी खाद वढाई जा सकती है। इससे दूसरा फायदा यह होगा कि गाव की सफाई आप से आप हो जायगी। अधिक कार्यक्रम के फलस्वरूप सफाई हो जाने का यह भी एक उदाहरण है जिसका पहिले मैंने जिक्र नही किया था। नाव-दान साफ करके उसका कीचड़ किस तरह से खाद वढाने के काम आ सकता है, यह फैजावाद के ग्राम-सुधार के प्रयोगो का विवरण लिखते समय लिख ही चुका हूँ। इस प्रकार उद्योग के साथ और अलग से भी थोड़ी चेष्टा की जाय तो कुछ खाद की वृद्धि तो हम

आज की स्थिति में भी कर ही सकते हैं। बापू जी ने भी अपने लेखों-द्वारा मनुष्य की विष्टा को किस तरह खेती के काम मे इस्तेमाल किया जा सकता है. इसका काफी प्रचार किया है। इस विषय पर मेरा अधिक कहना बेकार है। वास्तव मे मैले की हानि हमारे राष्ट्रीय जीवन की सबसे बड़ी हानि है। चीन के किसान प्रसिद्ध हैं। वे अपने मल-मूत्र को किसी तरह बेकार नहीं जाने देते हैं। प्रत्येक किसान उसे अपने खेत में गाड़ देता है। वस्तुतः इस द्रव्य का खोना हमारे लिए एक प्रकार से सोने का खोना है। विशेषज्ञो की राय है कि एक आदमी की साल भर की टट्टी से ढाई मन खाद होती है। जिसमे वनस्पति का क़ीमती खाद्य, नाइट्रोजन (Nitrogen) पोटाश (Potash) तथा फास्फोरिक एसिड (Phosporic acid) बहुत अधिक मात्रा मे होता है। मलमूत्र का यों इस्तेमाल केवल खाद की समस्या हल करने का सहायक ही नही होगा बल्कि गाँव के स्वास्थ्य की दृष्टि से भी लाभदायक है। बापू जी इस ओर भारतवासियों का ध्यान दिलाने मे कभी नही थकते। केवल बापू ही क्यों ससार मे जो कोई भी सम्पूर्ण समाज-सुधार की बात सोचेगा उसका ध्यान इस ओर जायगा। श्री फ्रेडरिक एंजेल्स ने भी शहर गाव की अलग-अलग स्थितियो की बुराई बताते हुए कहा है—"ओनली थ्रू ऐन अमलगमेशन ऑव टाउन ऐंड कंट्री विल इट बी पासिबुल टु पुट ऐन एंड टु दि करेंट पायज़निग ऑव वाटर ऐंड स्वायल; ओनली इन दिस इट विल बी पासिबुल टु अरेंज फार दि मासेस हू आर नाऊ क्राउडेड इन पेस्टीलेंटियन टाउस दैट देयर एक्सक्रेटा शैल बि टर्न्‌ड टु यूजफुल एकाउंट ऐज़ मैन्योर इनस्टेड ऑव् जेनेरेटिंग डिसीज़।" अर्थात् आज पानी और मिट्टी जिस भाँति विषाक्त होती जा रही है उसे गाँव और शहर के समन्वय द्वारा ही रोका जा सकता है। इस तरीके से ही यह सभव होगा कि जो लोग रोगबहुल शहरो की घनी बस्तियो में रहते हैं उनके मलमूत्र को रोग पैदा करने के साधन की

जगह लाभदायक खाद के रूप मे परिवर्तित किया जा सके।"

लेकिन इस कार्यक्रम को जल्दी शुरू नही कर सकते हैं। लोग अपने संस्कारो तथा आदतों से मजबूर रहते हैं। अतः सघटन की दिशा मे काफी प्रगति होने पर ही इसे आरम्भ किया जा सकता है। अगर शुरू से ही हम साधारण रूप से प्रचार करते रहे और कार्यकर्ता अपनी आदत मे परिवर्तन कर सके तो क्रमशः इस दिशा मे निश्चित कार्यक्रम भी बनाया जा सकता है। इसमे कुछ विशेष पूजी आदि का साधन तो चाहिये नही, केवल संस्कार को परिवर्तित करके आदत डलवाने की बात है। इस सिलसिले मे एक अनुभव की बात बता देना चाहता हूँ। एक बार अपना वास्तविक हित समझ जायँ और परम्परा तथा रूढि की हिचक ज़रा भी ढीली हो जाय तो ग्रामवासी किसी भी काम को बड़े उत्साह से करने लगते हैं। अतः इस दिशा मे हमारे काम करने के लिए विस्तृत क्षेत्र पड़ा है।

ऊपर बताये तरीके से हम खाद की वृद्धि के लिए कुछ न कुछ प्रयोग कर सकते हैं। खाद का मुख्य ज़रिया देहात के जानवर ही हैं और हमेशा रहेगे। हम चाहे जितनी रासायनिक खाद तैयार करे, हमको खाद के लिए प्रधानतः गोबर, जानवरो का पेशाब आदि का भरोसा करना ही पड़ेगा। अतः हमारा अधिकाश ध्यान इस जरिये से प्राप्त खाद की ओर ही होना चाहिए। दूसरी बात यह है कि भारत के प्रत्येक गाव के लोग गोबर का अधिकाश हिस्सा जला ही डालते हैं और पेशाब को गोशाला के नीचे जज्ब होने देते हैं। फिर भी मै गाव की आज की दशा मे इस दिशा मे विशेष चेष्टा करने की सलाह नही दे सकता हूँ। ग्राम-सुधार योजना ५-६ साल चल जाने के बाद जब गोपालन का व्यापक कार्यक्रम चलाया जाय तभी इस दिशा मे कुछ किया जा सकता है। तब भी इस ओर व्यापक रूप से प्रगति नही हो सकेगी। ग्राम-सेवक तो इस बात का प्रचार झट करने लगते हैं कि गाँव वाले कैसे बेवकूफ हैं कि गोबर जला देते हैं। लेखों-द्वारा,

भाषणों-द्वारा गांव के लोगों से इस प्रकार की बुद्धिहीनता का काम करने के लिए निषेध करते हैं। लेकिन प्रचार के जोश में वे भूल जाते हैं कि अगर गाव वाले गोबर न जलावे तो ईंधन कहा से लावे ? सदियों की उदासीनता तथा जन-संख्या-वृद्धि से उत्तरोत्तर खेती की वृद्धि के कारण आज गाँवों के आस-पास जगलों का कोई निशान ही नही रह गया। तुम कहोगी—"हमारे यहा ज़मीन का पाँचवाँ हिस्सा तो जंगल ही है। फिर जंगल की कमी का रोना क्यों रोते हो।" खास तौर से जव,तुम मध्यप्रांत में रहती हो और अपने आस-पास जगल ही जंगल देखती हो तव तुम्हारे लिए ऐसा कहना स्वाभाविक ही है। लेकिन जंगल जो कुछ रह भी गया है वह भी हमारी आवादी के साथ फैला हुआ तो नही है। जहाँ आवादी है वहाँ जंगल नही और जहाँ जंगल है वहाँ आबादी नही। अगर सरकार अपनी होती तो रेल किराया आदि मे सहूलियत कर के कुछ ईंधन आबादी के पास पहुँच भी सकता था। लेकिन आज तो उसकी भी कोई गुंजाइश नहीं। नतीजा यह होता हे कि आबादी के पास लकड़ी नही मिलती है और जंगलों के पास ईंधन सामग्री बेकार जाती है। कुछ नही तो जंगल के पत्ते जितने नीचे सड़ते हैं उन्हें ही गोबर के साथ मिलाकर अगर कडी वनाई जाय तो भी खाद के लिए काफी गोबर वच जाय। लेकिन आज ऐसा नहीं हो पाता। जंगल के पास गाँव वाले ऐसा कर भी लेते हैं। लेकिन वहाँ गाव ही कितने हैं। अतः गाव मे जाते ही गोवर न जलाने का बेकार प्रचार करने से क्या लाभ ?

मेरे कहने का यह मतलव नही है कि आज की मजबूरी की दशा में जानवरो के ज़रिये जितनी खाद मिल रही है उसमें कुछ भी वृद्धि नही हो सकती है। खेती के और कार्यक्रम जैसे थोड़ी मात्रा मे आज हम कर सकते है उसी तरह इस दिशा में कुछ होना तो सम्भव नहीं है। और वह काम कुछ इस प्रकार का हो सकता है:—

(१) जिस स्थान पर मवेशियो को वाधा जाता है उसके फर्श पर

मिट्टी डाल दी जाय। बीच-बीच मे उसे खोद निकाल कर खेतों म डाला जा सकता है।

(२) जलाने के वाद जितना गोवर खाद के लिए रक्खा जाता है उससे घूर की उन्नति की जाय। प्रायः देखा गया है कि लोग घूर के लिए वहुत गहरा गड्ढा खोदते हैं और वरसात का सारा पानी उसी मे चला जाता है। कहीं-कहीं तो गोवर को एक जगह ढेर कर के रख देते हैं। इससे वर्षा के पानी से गोबर का वहुत सा कीमती हिस्सा वह कर नष्ट हो जाता है। अतः गावो मे सघटन की थोड़ी प्रगति के साथ-साथ व्यापक रूप से घूर-सुधार का कार्य आरम्भ कर देना चाहिए। इसके लिए कम गहरा गड्ढा वना कर चारों तरफ मेड़ वना देनी चाहिए। फिर उसे कूड़े के साथ गोवर को घोल मिला कर भर देना चाहिए और ऊपर से वन्द कर देना चाहिए।

बागवानी— गोवर तथा पेशाव के उचित इस्तेमाल की व्यवस्था तथा गोवर जलाने से रोकने का कार्यक्रम भविष्य के लिए छोड़ कर हमको बाग़वानी तथा ईंधन के लिए पेड़ लगाने की ओर जनता का ध्यान दिलाना चाहिए। क्योंकि जिस हद तक ईंधन की समस्या हल हो सकेगी उसी हद तक खाद भी सुलभ होगी। इस कार्यक्रम को हम वहुत जल्दी शुरू कर सकते हैं। यह काम ऐसा है कि सहयोग तथा संघटन की प्रगति काफी हुए विना ही शुरू किया जा सकता है। मैंने देखा है कि गाव मे काफी ऐसे लोग मिलते है जो थोड़ी मदद से पेड़ लगाने के लिए तैयार हो जाते हैं। पेड़ लगाने का संस्कार प्राचीन है। इसलिए भी लोग आसानी से झुक जाते हैं। आज वे उदासीन इसलिए नही कि उनमे इच्छा या सस्कार नहीं वल्कि इसलिए कि गरीवी के कारण उनमे किसी तरह का उत्साह नही। खेत जोतना, वोना, और काटने का काम परम्परा से मशीन की तरह करते आते हैं। अतः लोगों को जव इस ओर उत्साहित किया जायगा तो व्यक्तिगत रूप से ही इसके लिए वहुत से लोग तैयार हो जायँगे। ईंधन और

फल के वास्ते निम्न प्रकार के पेड़ लगाये जा सकते हैं। पेड़ के चुनाव में खास ध्यान इस बात की ओर होना चाहिए कि वे मवेशियो की खुराक के भी काम आवे।

बबूल, ढाक, आम, जामुन, बेल, गूलर, बेर, अमरूद, केला, महुआ, आँवला, अनार, कटहल, पपीता, इमली, नीबू, फालसा आदि इतने नाम केवल सकेत के लिए ही लिखे। वैसे तो स्थानीय परिस्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के पेड़ लगेगे। मै अपने क्षेत्र के ही अनुभव से बता सकता था अतः इतने नाम लिख दिये। ईंधन के लिए मैने प्रधानतः बबूल और ढाक की ही राय दी है। इसका कारण यह है कि इससे बहुत सी ख़राब ज़मीन भी काम मे आ सकेगी और इनकी लकडी ईंधन के लिए अच्छी है। बबूल तो आर्थिक दृष्टि से भी फायदे का है। उसकी मोटी लकड़ी खेती-सम्बन्धी औज़ार धन्नी, कोल्हू का सामान आदि बहुत से काम आती है। इसके अलावा चमड़ा पकाने मे इसकी छाल मुख्य सामग्री है। हमारे-जैसे कृषि-प्रधान देश मे चमड़ा पकाने का उद्योग किस तरह से गाँव-गाँव मे फैलाना ज़रूरी है, उसके सम्बन्ध मे अपनी राय मै दे ही चुका हूँ। अतः आवश्यकता के साथ बबूल के प्रचार से इस आवश्यक उद्योग के लिए भी साधन सुलभ हो जायगा।

यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि आज की परिस्थिति मे पेड़ लगाने की जगह कहाँ। खेत की भूख ने तो ग्रामीण क्षेत्र की सारी ज़मीन हड़प ली है। यह सच है कि दिन-दिन हमारी आबादी घनी होती जा रही है और खेती की भूख बढ़ती ही जाती है। लेकिन आज की दशा मे भी अगर देहातो की निराशा और बेहोशी को हटाकर उत्साह तथा जीवन पैदा किया जा सके तो इस काम के लिए काफी बेकार ज़मीन मिल सकती है। अवध का इलाका काफी घनी आबादी का इलाका है यह तो तुम जानती ही हो। फिर भी मैने देखा है कि देहातों मे ऐसी ज़मीन बेकार है जहाँ पेड़ लग सकते हैं। जब कभी

किसी देहात की तरफ निकल जाओ तो देखोगी कि जगह-जगह काफी ज़मीन बेकार पड़ी रहती है जिसे लोग जगल कहते हैं । शुरू मे जब मैंने अकबरपुर के इलाकों मे जाना शुरू किया था उस समय जब लोग जगल की बात करते थे तो मैं परीशान होता था; इधर जगल हैं ही कहाँ ? मै तो जंगल का मतलब हज़ारीबाग-जैसे जगल समझता था। बाद को मालूम हुआ कि इधर के जगल का मतलब उस परती ज़मीन से है जिस पर इधर-उधर दस-बीस, ढाक के छोटे-मोटे पेड़ हों। इनके अलावा भी बहुत सी खाली ज़मीन है जिसे ऊसर कहते हैं । सयुक्तप्रान्त काफी घनी आबादी का प्रान्त है, फिर भी जितनी ज़मीन खेती लायक है उसकी ८०.२ °/₀ ज़मीन पर ही आज खेती हो रही है। बाकी ज़मीन खाली पड़ी हुई है। इसके अलावा जो ऊसर-बाँगड़ ज़मीन खाली पड़ी है और जो खेती लायक नहीं है उसमे बहुत सी ऐसी भी ज़मीन मिलेगी जिसमे कोशिश करने से महुआ, ढाक या बबूल के पेड़ लग सकते हैं। रणीवाँ आश्रम जिस विस्तृत भूमि पर बना है वह भी तो वैसी ही बेकार ज़मीन थी। फिर भी तुमने देखा होगा कि उस पर किस प्रकार का बाग लगा हुआ है। अतः ज़मीन तो है, चाहिए केवल हमारे कार्यकर्ताओ की सूझ और ग्राम्य-समाज मे उचित वातावरण। इस प्रकार पेड़ लगाने के काम मे काफी प्रगति हो जाने पर ही गोबर न जलाने का सफल प्रचार हो सकता है। इसलिए मैंने कार्यक्रमों के क्रम से खेती और बागवानी का काम साथ ही साथ रखा है।

गोपालन — खेती और बागवानी के साथ हमारी दृष्टि गोपालन की ओर स्वभावतः आकृष्ट होती है। इतना कर लेने के बाद ग्रामीण जनता का ध्यान भी इस ओर आसानी से चला जायगा। अतः अब गोपालन का कार्यक्रम शुरू करना आसान होगा। अब तक सहयोग-समितियों के सघटन की प्रगति काफी बढ़ी हुई होगी। चर्खे के काम की व्यवस्था का काफी हिस्सा अब तक ग्रामसमितियो की ज़िम्मेदारी

के अन्तर्गत हुआ रहेगा अतः इस कार्य-क्रम का, आरम्भ से ही ग्राम-समितियों के द्वारा, सहयोग के सिद्धान्त पर संघटन करना श्रेयस्कर होगा। वस्तुतः भारत-जैसे कृपिप्रधान देश में गोपालन का काम जितना भी किया जाय वह थोड़ा है। भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ "गो" शब्द पर सारे देश का दिल फड़क उठता था। गो माता की पूजा शायद इसी देश की विशेषता है। लेकिन आज उसी गो माता का क्या हाल है? हम जब देहातों मे वकरी-जैसी छोटी, अस्थिचर्मावशेष गौवों को देखते हैं तो सोचते हैं कि गो माता की पूजा करने वाले भारत की गो जाति का यही आकार और प्रकार है! आज हमारी ही दशा क्या है? कहावत है कि "अभाव से स्वभाव नष्ट होता है।" इसी भारत भूमि मे एक समय ऐसा था जब यह नियम बना था कि अमुक ऋतु मे ही वह दुही जाय, और अमुक ऋतु में वह दुही भी इतनी जाय जिससे वच्चो को भरपेट पीने को मिल जाये और आज उसी माता की पूजा करने वाले फूँका प्रथा (कष्टदायक तरीका) का आम इस्तेमाल करने लग गये हैं।

अतः यह बात जरूरी है कि गोपालन के काम की वावत हम गम्भीर रूप से विचार करें और हमे क्या और कितना करना चाहिए और कितना कर सकते हैं, इस पर ध्यान से सोचे। जमनालाल जी कितना अधिक याद आ रहे हैं। उस दिन शाम को जब मुलाकात हुई तो कितने आग्रह से कहने लगे—"धीरेन! तुमसे मुझे काफ़ी वाते करनी है। तुम्हारे प्रान्त मे गो सेवा का कितना काम हो सकता है? अच्छा हो तुम मेरे यहाँ कल आ जाओ; वही खाना खाना और उधर से ही स्टेशन चले जाना।" दूसरे दिन सुबह उठा। खादी विद्यालय के विद्यार्थी चाहते थे कि मै उनको ग्राम-सेवा की वावत कुछ बताऊँ। सेठ जी के यहा जाना है, कहकर उनसे छुट्टी माँग रहा था। पर उन्होने न माना और उसी समय सव एकत्र हो गये। जैसे-तैसे उनसे जल्दी छुट्टी लेकर वर्धा को रवाना हो गया। सीधे गो-

सेवा आश्रम गया। मालूम हुआ कि सेठ जी खाना खाने तक आ जायगे। कुछ समय था, मै नालवाड़ी चला गया; विनोवा जी से मिल-कर आने मे मुझे कुछ देरी हो गई। लौटकर मालूम हुआ कि सेठ जी अभी लौटे नही। मैने देर तक प्रतीक्षा की। जब काफी देरी हो गई तो सोचा कि कही वर्धा अपने बंगले पर तो नही रह गये? अतः मैने खाना खा लिया और बंगले पर चला गया। बगले पर भी वे नहीं थे। वहा मालूम हुआ कि कोठी पर कुछ काम से रुक गये और ४ वजे शाम को लौटेगे। उस समय २॥ वजा था। मैने सोचा अभी समय वहुत है। इतने मे मगनवाड़ी ग्राम-उद्योग-संघ मे कुमाराप्पा साहव से कुछ काम की वाते कर लूँ। मगनवाड़ी गया और दफ़्तर मे वैठकर अपने प्रान्त के काम की वाते करने लगा। उनको भी वहुत सी वाते पूछनी थी, अतः कुछ समय लग गया। एकाएक खादी भडार के एक भाई ने आकर खवर दी 'सेठ जी का देहान्त हो गया!' खवर सुनकर हम दोनो स्तम्भित रह गये। उस पर विश्वास नही हुआ। उस भाई को फिर बुलाया। पूछा—"तुम्हे किसने भेजा? यह खवर किसने दी?" उसकी वातों से यकीन हो गया। हम दोनों भागे वजाजवाड़ी की ओर। पहुँच कर देखा, सव समाप्त है। वह दृश्य तुम्हे कैसे वताऊँ? लिखकर वताना मुश्किल है; जानकीवाई का कहना—"वचा दो वापू" कितना हृदय-विदारक था। माता जी का फूट-फूट कर रोना। वापू की सान्त्वना का क्या असर होता? माता का हृदय कैसे मान सकता था? आख़िर शवदाह के लिए लोग उन्हे उठा ले गये। सारी जनता साथ चली। मै जा न सका। वहीं खड़ा रहा। याद नहीं, क्या सोचने लगा। केवल इतना ही जानता हूँ कि मुझसे साथ नही जाया गया और मै स्तम्भित होकर वही खड़ा रहा। याद नही पड़ता, कितनी देर यों खड़ा रहा। फिर धीरे-धीरे मगन-वाड़ी चला गया। वहा कोई भी नही था। केवल झवेर भाई की पत्नी थी। खाना खाकर लेट गया। अकेले मे सोचने लगा। सेठ जी

क्या थे, आज मालूम होता है। भारत ने किसे खोया ? काग्रेस का एक बड़ा स्तम्भ गिर गया और चर्खा संघ, ग्राम-उद्योग संघ का प्राण। सेठ जी बापू के रचनात्मक कार्यक्रम की जान थे। चर्खा संघ, ग्राम-उद्योग संघ तो चल निकला था। उन्होंने अब जीवन का अन्तिम कार्यक्रम गो-सेवा को बनाया था। इस योजना से भारत का सबसे आवश्यक और महत्व का अभाव पूरा हो जाता। काम व्यापक और कठिन था लेकिन सेठ जी की इच्छा शक्ति और मधुर व्यक्तित्व तथा साथ ही उनकी कर्म-कुशलता क्या न कर सकती थी ? करीब २० साल पहिले उनसे परिचय हुआ था। फिर घनिष्ठता भी हुई। साथ काम किया। आश्रम वालों से वे कितना स्नेह रखते थे। मतभेद भी होता था, झगड़ा भी होता था लेकिन श्रद्धा की कमी कभी न हुई। ऐसा ही व्यक्तित्व था उनका !

मै अकेले पड़ा-पड़ा सोचता रहा। क्या बताऊँ अगर मगनवाड़ी न जाकर सीधे बजाजवाड़ी चला जाता तो शायद मुलाकात हो जाती। आखिरी वक्त तो सामने होता। शायद गो-सेवा की कुछ बातें वे कह जाते लेकिन भविष्य कुछ दूसरा ही था। आखिरी वक्त की यही बात रह-रह कर याद आती थी—"तुमसे बहुत बाते करनी है। तुम्हारे प्रान्त मे गोसेवा का कितना काम हो सकता है।" उसके बाद थोड़े ही दिन बाहर काम कर सका था लेकिन जब जब गोपालन की बात होती है सेठ जी याद आ जाते हैं। मगहर मे गोरखपुर, बस्ती के लोगो से जब मैंने अपनी ग्रामोत्थान योजना के वास्ते १०० बीघा जमीन माँगी तो वहाँ के लोगो ने एक ५०० बीघा का जंगल रामनगर के पास दिखाया। जमीन देखते ही मैंने कहा—"सेठ जी होते तो मै इसे ले लेता और गोपालन का प्रयोग करता।"

आज सेठ जी नही हैं लेकिन उनका गोसेवा संघ है। और उनकी अधिष्ठात्री देवी जानकीबाई है। हमको गाँव की प्रधान आवश्यकता के नाते और जमनालाल जी की यादगार मे भी गोपालन का

व्यापक काम करना है। लेकिन आज उस विषय पर मै अधिक लिख न सकूंगा। तबियत भी भर गई और कलम नही चलती है। आज यही खतम करता हूँ। सबको नमस्कार। बच्ची को याद दिलाना। पता नही उसको याद है या नहीं। उसे बहुत बहुत प्यार।

---

[५]

गोपालन

५ मार्च, १९४४

पिछले पत्र मे ग्राम सेवा के कार्यक्रमों की चर्चा करते हुए गोपालन पर पहुँचा था। इस सिलसिले मे सेठ जी की बात याद आना स्वाभाविक ही था। उनके निर्वाण दिवस की कहानी कहकर पत्र समाप्त किया था। मैंने कहा था कि खेती और बागवानी के कार्यक्रमों के साथ गोपालन का काम स्वतः आ जाता है। हमारे देश मे खेती का सारा काम गो जाति पर निर्भर करता है। अगर आवश्यकता के अनुसार ही अपनी योजना बनाना सम्भव होता तो मै सबसे पहले गोपालन का ही काम लेता। अन्न मनुष्य की बुनियादी आवश्यकता है और बैल उस अन्न को पैदा करने का साधन। अतः हमारे देश के

प्राचीन काल मे गो-सेवा

जीवन की जड़ बैल ही है। इसीलिए तो गो जाति को माता कहा गया है। इसकी रक्षा और पालन के लिए भारत के सपूतों ने क्या क्या त्याग नही किया। इसीलिए कि वे आत्म-रक्षा का उपाय गोरक्षा समझते थे। यहाँ धन गोधन ही से नापा जाता था। कौन कितना धनी है, जानने के लिए यह देखा जाता था कि उसके पास कितना गोधन है। दुर्योधन विराट् राज्य से गोधन ही उठा लाया था। जब गोधन की इतनी मर्यादा थी तो स्वभावतः गोपालन के प्रति हमारे यहाँ पर्याप्त ध्यान था। प्राचीन मौर्यकाल मे तो इसके लिए राज्य की तरफ से खास महकमा था। उसका काम था यह देखना

कि कहाँ कितने गाय-बैल हैं। उनके लिए कितने चारागाह चाहिए, उन्हे कितनी खुराक चाहिए, किसान उसी हिसाब से खुराक देता है या नही। यहा तक निश्चित कर दिया जाता था कि एक चराने वाले के जिम्मे कितने जानवर रहेगे। गोपालन के विशेषज्ञों की एक जाति ही अलग थी। उनका काम था कि घूम-घूमकर जहाँ आवहवा, चारागाह आदि के लिए अनुकूल परिस्थिति हो वहा जाकर गोजाति की नस्ल सुधारे। और सुधरी हुई नस्ल को देहातो में पहुँचा आवे। लेकिन आज उनकी क्या दशा है, उसे शब्दों में वर्णन करना असम्भव है। तुमने भी तो इधर काफी देहातों मे दौरा किया। कही ऐसे भी गाय-बैल नज़र आये है जिनकी तमाम हड्डिया दूर से गिनी न जा सकें? देहातो मे अच्छी गाये रहेगी भी कहा से? अच्छे पिता-माता से ही तो अच्छी सतान होगी। अच्छी खुराक से ही न अच्छा शरीर बनेगा? माता पिता अच्छे हों तो कैसे? गाव तो गरीबी की चरम सीमा पर पहुँचे हुए हैं। अगर कही कभी अच्छी गाय इत्तिफाक से मिल भी जाती है तो उसे शहर के ग्वाले खरीद ले जाते हैं और बेरहमी से खून की आखिरी बूँद दूध के रूप मे खींच लेकर जब दूध बन्द हो जाता है तो कसाई के हाथ बेच देते है। और फिर देहात से दूसरी गाय खरीद लाते हैं। मिलिटरी डेरी वाले भी अच्छी गाय छाँट और खरीद कर विदेशी साड़ से मिश्रित करके उसे नष्ट कर देते है। क्योंकि विदेशी साड़ के व्यवहार से एक दो बार ही अच्छा दूध मिल सकता है। फिर बीमार पड़कर देशी गाय खराब हो जाती है। इस तरह लगातार जब शहर वाले और मिलिटरी वाले गाव की चुनी हुई अच्छी गायों को बाहर भेजते जायँगे तो जो रद्दी किस्म की गाये बाकी बच जाती है उन्ही से न गाँव की गायों की नस्ल बनेगी?

अच्छे नस्ल की गाओं का अभाव

और खुराक? इस विषय पर कहना ही क्या है? गाव के जानवर एक तरह से उपवास ही करते हैं। ऐसा होना स्वाभाविक भी है। जहाँ

आदमी भूखों मर रहे हैं वहा जानवर को कौन खाना देगा ? बँगला मे एक कहावत हैं "चाचा आपन बाचा।" यह अक्षाशः सत्य है। दुनिया मे अपना पेट भर कर ही लोग दूसरों की ओर देख सकते हैं। बंगाल का हाल आज कल अखबारों मे निकलता है। कितनी करुण कहानी है। माता-पिता भूख के मारे सन्तान बेचने निकलते हैं। स्नेह, प्रेम आदि की बात भूख के आगे सब स्वाहा हो जाती है। अतः ग्राम-सुधार का चाहे जितना प्रचार करें आज की स्थिति में जानवरों को खाने को मिलना कठिन है। आबादी इतनी घनी होती जा रही है कि अनाज बोने के लिए जमीन नही मिलती। फिर चरी के लिए परती कहाँ से छूट सकती है? आजकल वैज्ञानिक युग में आँकड़ों को देख कर स्थिति को समझने का रिवाज हो गया है। अतः प्रान्तों के चरागाह के अंको पर एक बार नजर डाल लो। नीचे-लिखे हिसाब से किस प्रान्त के जानवरों के लिए चारे की भूमि कितनी है इसका अंदाज मिल जायगा।

प्रान्त	जानवर लाख में	भूमि एकड़ लाख मे	चरागाह प्रति जानवर
आसाम	१००	२४२	२·४०
बंगाल	१०८	३३	.३०
बिहार उड़ीसा	८८	५६	.६३
बम्बई	३८	३३	.८७
मध्यप्रात	५६	१०७	१ ६०
मद्रास	७५	७६	१·००५
पंजाब	६०	६२	१·००३
युक्तप्रान्त	६१	५२	.५८

ऊपर के आकड़ों से मालूम होगा कि हमारे यहाँ चरने के लिए कितनी वन-भूमि है। इन अंको से भी ठीक पता नहीं चलेगा क्योंकि हिसाब मे तो औसत भूमि का ही ब्योरा बताया गया है। लेकिन

वस्तुतः इतनी भी भूमि चरने के लिए नहीं है। इस बात को भी थोड़ा समझ लेना चाहिए कि चरागाह के लिए भूमि प्रधानतः जगली क्षेत्र में ही होती है। और तुम्हें मालूम ही है कि सरकार की कृपा से उन मे बहुत से क्षेत्रों मे लोगों को जानवर चराने का हक हासिल ही नहीं है। इस तरह अगर सही स्थिति का विचारपूर्वक अंदाज किया जाय तो अधिकाश मवेशियों को बिना चरागाहों के ही गुजर करनी पड़ती होगी।

चरागाह की ऐसी स्थिति के कारण हमारे अधिकाश जानवरों को इतने चारे से ही जीवन धारण करना पड़ता है जितना उनके मालिक किसान अपनी खेती से बचाकर उनके लिए खाद्य सामग्री बोते हैं।

लेकिन जैसा कि अभी मैंने कहा है किसान जब खुद

चारे की कमी भूखों मरते हैं तो जानवरों कि लिए कहाँ तक पैदा

करें। वे उनकी चरी के लिए उतना ही छोड़ते हैं जिससे कम मे उनका प्राण बचना असम्भव होता है। बल्कि कुछ प्रान्तों मे प्राँण धारण के लिए जितनी चाहिए उतनी जमीन भी उनकी चरी के लिए नही छोड़ी जाती है। और यह स्थिति आबादी बढ़ने के साथ-साथ दिन ब दिन और भयंकर हो रही है। यहाँ अनाज की पैदावार भी इस प्रकार की है कि उनसे जानवरों को खाने के लिए कुछ विशेष नहीं मिलता है। वस्तुतः अब ऐसी परिस्थिति आ गई है कि जब तक हम अपनी खाद्य सामग्री कें लिए ऐसे अनाज न पैदा करें जो बाजरा का तरह अनाज और चरी दोनों के काम आ सके तब-तक हमारे पशुओं का बचाना संभव नही होगा। यही कारण है कि हमारे यहाँ गाय-बैलों की मृत्यु-संख्या बहुत अधिक है। अभी थोड़े दिन पहिले सरकारी मारकेटिंग बोर्ड की चमड़ा-सम्बन्धी एक रिपोर्ट पढ़ रहा था। उसमे जानवरों की मृत्यु-संख्या का जो अनुपात बताया गया है उसको देखकर प्रत्येक भारतवासी को चिंतित होना चाहिए कि कितनी विराट आर्थिक हानि हो रही है। तुम्हारी जानकारी

के लिए मै नीचे अंक दे रहा हूँ।

प्रान्त	कुल गाय बैल (लाख)	सालाना मुर्दार चमड़ा (लाख)
पंजाब	६७ ६	५ २
मद्रास	१७७.६	३० १
मध्यप्रान्त	११६.५	१२.२
युक्तप्रान्त	२३७.७	११.२
विहार	१३६ ४	१२.४
उड़ीसा	४४.८	४.०
बंगाल	२५८.३	२४ ६
आसाम	५४ ५	३ =
बम्बई	८४.८	६ ०२

इसके उपरान्त प्राय: जब जानवर मरने के करीब हो जाते हैं तो कसाई को बेच दिये जाते हैं। ऊपर के अंको से मालूम होगा कि हमारे प्रान्तो मे कितने जानवर मरते हैं। ये अक भी चमड़े के बाज़ार की रिपोर्ट से लिये गये हैं। इसके अलावा कितने ऐसे मवेशियों की मृत्यु हो जाती है जिनका हिसाब बाज़ार के अकों में आ ही नही पाता है। इन अंकों से यह भी साफ हो जाता है कि जिस प्रान्त मे खुराक कम है उसी प्रान्त की मृत्यु-सख्या का अनुपात अधिक है। और प्रान्तों का पूरा हाल तो मै जानता नही लेकिन युक्तप्रान्त के पूर्वी ज़िलों का हाल तो मै देखता ही रहता हूँ। देहातों मे घूमने से चरी के खेत मुश्किल से दिखाई देंगे। अच्छे किस्म की चरी तो इधर बोते ही नही। दाना खली तो नही के बराबर देते हैं। कितना चारा बोते हैं इसका अदाज़ इधर के तीन जिलो की औसत से मिलेगा।

गोंडा	१.५% जमीन	इस हिसाब से औसत १०० जानवर के खाने के लिए ५.२४ एकड़ ज़मीन पड़ती है।
बस्ती	१.६% जमीन	
गोरखपुर	१.०% जमीन	

इसी से तुम मालूम कर सकती हो कि हमारी गायो को खाने को कितना मिलता है।

अतः गाँव में जब अच्छी गाय रह ही न जाती हों और जो रह भी जाती हो पर उनको खाने को न मिलता हो तो हम अच्छी नस्ल की गाये और बैल कहाँ से पावेगे?

इन्ही सब कारणो से मैं कह रहा था कि अगर सिर्फ आवश्यकता के महत्व पर ही योजना बनानी होती तो मै सब से पहले गोपालन को ही लेता। लेकिन मैने लगभग सबसे बाद मे ही गोपालन के कार्यक्रम को शुरू करने की सलाह दी है। इसका भी ख़ास कारण यह है कि गोपालन केवल सहयोग-समिति द्वारा ही सम्मिलित ढ ग से चल सकता है। इसके लिए चारा आदि की व्यवस्था, नस्ल की उन्नति, दूध, बैल, चमड़ा आदि के बाजार आदि के लिए उन्नत ढ ग के स ंघटन की आवश्यकता है। चर्खा, उद्योग, शिक्षा व संस्कृति, कृषि व बाग़वानी आदि कार्यक्रम उचित ढ ंग से ४-५ साल चलाने के बाद गाँव के स ंघटन की स्थिति ऐसी होगी कि हम गोपालन का काम सफलता के साथ चला सकते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि जब तक गाँव मे इस किस्म का स ंघटन कायम न हो तब तक हम हाथ पर हाथ धर कर बैठ जायँ। आख़िर जहाँ भी हमारे कार्य-कर्ता रहते हैं वहाँ ख़ुद कुछ दूध घी खाते ही हैं; उतनी ही खरीद के लिए ऐसे आदमी ठीक करना चाहिए जो हमारे बताये मुताबिक गोपालन के लिए तैयार हों। इससे उसके फायदों को देख कर दूसरों को भी शिक्षा मिल सकती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि हम कैसे गाय-बैलों की नस्ल का प्रसार करे। हमारे यहाँ गो जाति की दोहरी उपयोगिता है:—१—दूध २—खेती।

दूध के लिए गोपालन मुख्यतः शहरों मे और देहात के धनी कहलाने वाले घरों में ही होता है। गाव मे दूध के लिए इसकी कोई कीमत नहीं

है,। मै जहा-जहाँ भी गया हूँ दूध के लिए भेंस पालने का ही रिवाज पाता हूँ। ग्रामीण जनता को दूध पीने का तो मौका मिलता ही नहीं, न वे पीने की हैसियत ही रखते हैं। अतः उनको दूध की आवश्यकता घी बेचने के लिए ही होती है। भैंस के दूध मे घी अधिक होता है इसलिए वे भैंस पालना ही पसन्द करते हैं। वे गाय पालते अवश्य हैं। लेकिन सिर्फ बैलो के लिए। नतीजा यह होता है कि जब बछड़ा पैदा होता है तो वे गाय को कुछ खिलाते भी हैं और दूध न दुह कर बछड़े के लिए छोड़ देते हैं ताकि बैल उन्हे मिल सके। आज हमारी ग्रामीण जनता के लिए दूरदर्शी होना असम्भव है इसलिए जब बछिया पैदा होती है तो वे न गाय को ही ठीक से खिलाते हैं और न बछिया के लिए दूध ही छोड़ते है। स्वल्पाहार के कारण वैसे ही गाय दूध कम देती है। उसे भी किसान दुह लेता है जिससे कभी अबेर सबेर उसके बच्चे दूध की शक्ल देख ले। वे ऐसा इसलिए करते हैं कि बछिया से उनको कोई दिलचस्पी नही। फिर जितने दिन गाय दूध नही देती उतने दिन तो ईश्वर ही उसे बचाता है। नतीजा यह होता है कि दिन ब दिन हमारी गायो की हालत खराब ही होती जाती है। आखिर जो बछड़े पैदा होगे वह इन्ही गौओं से ही न होंगे? फलतः किसान दोनों से हाथ धो बैठते हैं; न दूध मिलता है, न अच्छे बैल। तुम कह सकती हो दूध भैंस से मिल ही जाता है। लेकिन जरा यह तो बताओ कि तुम्हारे देश मे कितने किसान ऐसे हैं जो भैंस और गाय दोनों पाल सकते हैं। जो थोड़े लोग पाल भी लेते हैं तो उन्हे गायों की बछियों और भेसो के बच्चों को मार ही डालना पड़ता है क्योंकि जिनकी उपयोगिता नहीं उन्हें बैठे कौन खिलायेगा? इस प्रकार हमारी ग्रामीण आर्थिक स्थिति मे कितनी भारी हानि होती है। अगर थोड़ी देर के लिए मान भी ले कि किसान भैंस और गाय दोनों रख सकता है, फिर भी गाय की तात्कालिक उपयोगिता न रहने से

दूध के लिए गोपालन प्रथा का ह्रास

निस्सन्देह लोग उसकी उपेक्षा करेंगे और खेती के लिए जो बैल मिलेंगे वे सब इन्ही उपेक्षिता गौओं की सन्तान होंगे। अतः अच्छे बैल पाने की समस्या जहा की तहा रह जाती है।

अतएव गोपालन की किसी प्रकार की योजना बनाने से पहले यह तय कर लेना होगा कि हमें किस हेतु गोपालन करना है। गाव की उपर्युक्त स्थिति पर विचार करने से यह साफ हो जाता है कि हमें दूध और खेती की आवश्यकताओं को देखने से काम न चलेगा। अगर दूध के लिए भैंस पाल कर खेती के लिए गाय पालेंगे तो कभी हमारा उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा। आज कल केन्द्रीय असेम्बली में दूध देने वाले जानवरों की हत्या बन्द करने का कानून बनाने की वात चल रही है। ऐसा कानून बनाकर असेम्बली के सदस्य दया और उदारता का ही काम करेंगे। लेकिन ज़रा गौर से सोचो तो सही जब गौओं की हत्या कानूनन बन्द हो जायगी तो हमारे गोरक्षक हिन्दू किसान भाइयों की क्या दशा होगी। आज तो फालतू गौओं को हत्यारे के हाथ बेंच कर धर्म के साथ आँख मिचौनी खेल कर बेकार गौओं को बैठाये खिलाने से अपनी जान छुड़ा भी लेते हैं। लेकिन कानून से जब उनकी धर्म-रक्षा पूरी हो जायगी तो उन पर जो बोझ आ पड़ेगा उससे उनकी प्राण-रक्षा कौन करेगा।

गोदुग्ध के प्रचार की ज़रूरत

अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम दूध के लिए भी गोपालन का प्रचार करें। ऐसा करने से हमारा ध्यान गौओ की उचित सेवा की ओर जायगा जिसके परिणाम स्वरूप से अच्छे बैल मिलते रहेंगे। हमारी योजना में चेष्टा होनी चाहिए कि हम ऐसी नस्ल की गाय पैदा करें जिसकी सन्तान दोनो कामों के लिए उपयोगी हो। यह तभी हो सकेगा जब हम गाय के दूध की ओर अधिक ध्यान दें और भैंस का पालना घटाते चलें और आखिर भैंसो की संख्या नाम मात्र रह जाय। इधर बापू ने गाय के घी और दूध के सेवन का ज़ोरो से प्रचार करना शुरू

किया था तो हमारे वहुत से मित्र उसे हिन्दूपन समझते थे। वे अगर हमारे देहातों की स्थिति का अध्ययन करें और ज़रा हिसाव से सोचने की चेष्टा करें तो उन्हें मालूम हो जायगा कि बापू गाय के घी और दूध का महत्व वढाने के लिए इतनी कोशिश क्यों कर रहे हैं।

दुःख की वात यह है कि हमने अपना दिमाग़ विलायत वालों के हाथ बेच दिया है। हमारे वैज्ञानिक विशेषज्ञ लोग भी, जो सरकारी महकमों मे काम करते हैं, अपने सारे प्रयोग की भित्ति विलायती प्रयोगों की नकल के आधार पर रखते हैं। वे हमारे देहात की परिस्थिति और समस्याओं का ख्याल नहीं करते और अपने तरीके का प्रचार करते हैं। आज किसी भी पढ़े-लिखे मित्र से बात करो तो वह झट कहेंगे कि "गो जाति की नस्ल सुधारो।" "नस्ल सुधारो" तो एक प्रकार का नारा हो गया है। और यह नस्ल कैसे सुधारी जाय? अच्छे साँड़ गाँव-गाँव छोड़ कर। खास कर जब लार्ड लिनलिथगो ने कह दिया है तो कहना ही क्या? चारों तरफ से आवाज़ उठ रही है—"अच्छे साँड़ की व्यवस्था करो।" जब गैर-सरकारी शिक्षित जनों की यह दशा है तो सरकारी महकमा के लोगों की बात क्या कहे। उनके लिए दूसरी बात सोचना अधर्म सा हो गया है। कुछ दिन इस

नस्ल सुधारने की समस्या

वात की धूम रही कि विलायती स्थूलकाय साँड़ मँगाये जायँ। लेकिन इसका प्रचार करने वाले यह नही देखते कि विलायती साँड़ से देशी गौओं की जो सन्तान होती है वह २-१ बार अच्छा दूध देकर फिर बेकार हो जाती है। और उसके पैदा हुए बैल तो काम ही नहीं कर पाते हैं। जो लोग विलायती तरीके से हमारी समस्या हल करना चाहते है वे भूल जाते हैं कि हमारी आवश्यकता और उनकी आवश्यकता एक नहीं है। उनको चाहिए दूध और मक्खन और हमको चाहिए दूध और हल चलाने के लिए मज़बूत और गाड़ी के लिए तेज़ बैल। अतः जहा उनको स्थूलकाय गाय-बैल की आवश्यकता है

वहा हमको चाहिए कि गाय काफी दूध दे और बैल मध्यम और पुष्ट शरीर वाले मज़बूत हो। हमारी और उनकी समस्या में एक भेद और है। युरोप और अमेरिका उद्योग-प्रधान देश हो गये हैं। कृषि का अब उनके यहा विशेष महत्व नही रह गया है। जहा हमारे यहा ७५% आवादी जमीन पर गुजर करती है वहा इगलैंड मे खेती पर भरोसा करने वाली आबादी केवल साढे ग्यारह प्रतिशत है अतः वे मवेशियों की खूराक पैदा करने के लिए काफी जमीन छोड़ सकते हैं। वे उनके चरने के लिए परती भी छोड़ सकते हैं। और हमारे यहाँ कितनी ज़मीन उनके हिस्से पड़ती है, इसे तुमने देख ही लिया है। इसलिए हमारे यहा के जानवर ऐसे होने चाहिए जो कम ज़मीन से भी अपनी पुष्टि कर सके। अतः आज-कल जो धूम का प्रचार हो रहा है कि कही से भी अच्छे साड़ों को उन इलाकों मे भेजा जाय जिधर की गाये कमज़ोर और छोटी हों, यह कुछ ग़लत दिशा की चेष्टा है। वास्तव मे नस्ल सुधारना तो दूर रहा उतने बड़े सांड़ यहां की गायों के काम के ही नहीं थे। फिर मान लो, काम के हों भी लेकिन जव उस साड़ की पैदा की हुई वड़े डील-डौल वाली सन्तान भूखी रह गई तो ताकत कहा से लावेगी। अतः अगर गाय बैलों की हालत सुधारनी है तो हमको समस्या की जड़ से सुधार शुरू करना चाहिए। हमको देहात की असली स्थिति को समझ कर ही समस्याओं का हल निकालना चाहिए। हमेशा साड़ वाहर से आवे और गाय हमेशा भूखी, कमज़ोर और छुटनी वाली हो तो अनन्त काल तक उन्नति नहीं हो सकती। नस्ल तभी सुधर सकती है जव साड़ और बैल उत्तरोत्तर अच्छे होते जायँ। गाय अच्छी तभी रह सकती है जव देहाती लोगो की प्रवृत्ति गो सेवा की ओर हो। गो सेवा की प्रवृत्ति पैदा करने के लिए गाय के दूध के प्रति किसानों की दिलचस्पी होनी चाहिए और यह दिलचस्पी तभी हो सकती है जव गाय के दूध और घी का वाज़ार हो। केवल गो माता कह कर सेवा-वृत्ति नही जगाई

जा सकती। गो माता का सस्कार तो हिन्दुओं का कल्पित संस्कार है और उस संस्कार को समाज-हित और रक्षा के लिए हम सिर्फ परम्परा से भोगते आये है। लेकिन जो हमारी असली माता है, जो हमारी कर्मधारिणी है वह भी जब बूढी हो जाती है तो हम तभी उसकी सेवा करते है जब उसके पास कुछ जेवर हो, कुछ रकम हो। धन से रहित माताओ की क्या-क्या दुर्दशा होती है यह तुम देखती ही हो। फिर यह कैसे उम्मीद की जा सकती है कि केवल गो माता की भावना ही लोगों को गो सेवा के प्रति प्रेरित करेगी। अतः गो जाति की उन्नति के लिए सबसे पहला काम यह होना चाहिए कि हमारी गो माता के पास जेवर हो, रक़म हो, अर्थात् आवश्यकता इस बात की है कि जो गो माता की सेवा करना चाहते हैं उनको अपनी गाय का दूध बेच कर पैसा मिले। जो लोग चाहते है कि भारत के सात लाख गावो की दुर्दशा दूर हो, जो चाहते हैं कि हमारो खेती की उन्नति हो, जो चाहते हैं कि गोजाति की नस्ल सुधारें, जो चाहते है कि गौवों की हत्या न होने पाये, जो आज असेम्बली मे दूध देने वाले जानवरो की हत्या न होने देने का प्रस्ताव लाते है वे गाय का दूध और घी इस्तेमाल करके उसकी मांग पैदा करे। हमारे देश मे बहुत से अमीर भाई हिन्दुत्व का ख्याल करके पिंजरापोल खुलवाते हैं; गोशालाओं मे दान देते है। उनसे मेरा नम्र निवेदन है कि अगर वे पिजरापोल न भी खुलवाये और भैंस के दूध और घी के बदले गाय का दूध और घी हो इस्तेमाल करे तो अधिक गो-सेवा कर सकेंगे। और ऐसा न करके हज़ार पिजरापोल खोलने पर भी गोरक्षा की दिशा मे इंच भर भी आगे नही बढ सकेंगे।

अतएव गोपालन के लिए हमारी जो योजना होगी उसके प्रधानतः दो हिस्से होंगे:—

१—गाय के दूध के उचित बाज़ार का संघटन।

२—योग्य मार्ग से नस्ल सुधारने की चेष्टा।

आज हमारे देश में दूध की उत्पत्ति औसत ५०० पौंड प्रति गाय और ७०० पौंड प्रति भैंस प्रति वर्ष है। यानी औसत एक गाय प्रति दिन ग्यारह छटाँक होता है। अगर वैज्ञानिक ढंग से गो-सेवा का प्रचार किया जाय तो इस औसत को काफी बढ़ाया जा सकता है। फ़ीरोज़पुर को एक साहिवाल गाय साल मे ७००० पौंड यानी प्रति दिन औसत नौ सेर नौ छटाँक दूध देती थी। अगर यह माना जाय कि वह आधे समय ही दूध देती थी तो दिन मे दूध होता था १६ सेर के करीब। लेकिन यह एक ख़ास उदाहरण है। तुम्हारी सेवाग्राम की गोशाला के पारनेरकर भाई का कहना है कि थोड़ी चेष्टा करने से प्रति दिन एक गाय की औसत तीन साढ़े तीन सेर तक जा सकती है। इस सिलसिले में एक बात कह देना चाहता हूँ कि बहुत से विशेषज्ञों का यह अनुभव है कि गाय का औसत दूध जिस हिसाब से बढ़ाया जा सकता है उस हिसाब से भैंस का दूध नहीं बढ सकता है। पारनेरकर भाई से मेरी बात हुई थी। उनकी भी राय इसी क़िस्म की है।

दूध की पैदावार के साथ-साथ हमको गाय के दूध और घी की बिक्री की भी उसी प्रकार व्यवस्था करनी होगी, जिस तरह खादी की बिक्री की व्यवस्था की गई है। चर्खा संघ, ग्राम उद्योग संघ, तालीमी संघ के कार्यकर्त्ताओं को तथा अन्य सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं को, जो ग्राम-उत्थान से दिलचस्पी रखते हैं, ठीक उसी तरह केवल गाय का दूध और घी का ही व्यवहार करना चाहिए जिस तरह वे शुद्ध खादी के सिवाय दूसरा कपड़ा नहीं पहनते हैं। मै समझता हूँ, गो-सेवा संघ इस दिशा मे कुछ प्रगति कर पाया है।

अब रही नस्ल सुधारने की बात। इस विषय मे ग्राम-सेवक को बड़ी सावधानी से काम करना होगा। अनाज का बीज एक साल बोने के बाद दूसरे साल बदला भी जा सकता है। लेकिन गाय की नस्ल एक दिशा मे बदल जाने के बाद ग़लत मालूम पड़े तो आसानी से फिर से सुधारना सम्भव न होगा। विलायती साड़ों का कतई प्रयोग

नहीं करना चाहिए। देशी साँड़ों को चुनने मे भी इस वात का ध्यान रखना होगा कि वे स्थानीय गौत्रों के लिए उपयोगी होंगे या नहीं। फिर उससे जो वछड़े पैदा होंगे वे स्थानीय जलवायु तथा खूराक कहा तक वरदाश्त कर सकते हैं, इसको देखना होगा। इस दिशा मे मेरी सलाह यह है कि ग्राम-सेवक साँड़ो के लिए इधर-उधर निगाह न दौड़ाकर जिस ज़िले मे काम करते हैं उसी ज़िले मे अच्छे साँड़ों की खोज करे। मैने देखा है, सभी क्षेत्रों के गाँवों मे एकाध अच्छी गाय और वछड़े दिखाई देते हैं। हमारा काम होगा उचित संघटन से अच्छी गौत्रों को गाँव से वाहर जाने से रोकना और अच्छे साँड़ो को अच्छी गायों के साथ सयुक्त करना। स्थानीय गाय-बैल-साँड़ उस स्थान पर रहने के आदी हो गये हैं अतः अगर हम ठीक से खूराक प्राप्त करने का सघटन कर सके और अच्छी गाय और बैल की छँटनी करने का कार्यक्रम चलाते रहें तो कुछ दिन मे नस्ल की काफी उन्नति हो सकेगी। अगर हम स्थानोय नस्ल की छँटनी का प्रयोग सही तरीके से, वैज्ञानिक ढग से, करे तो हमको दूध वाली गाय और जोतने के लिए मजवूत बैल मिल जायँगे। इसके लिए सरकारी विशेषज्ञों से भी हम परामर्श करेगे। सिर्फ हमारा दृष्टिकोण और हेतु भिन्न होगा। सरकारी विशेषज्ञो के अलावा देहातों मे उन जातियों मे, जिनका पेशा प्राचीन काल से गोपालन रहा है, वहुत से प्रवीण लोग ऐसे मिलेंगे जो किसी विशेषज्ञ से कम नहीं हैं। वल्कि वे हमारे देहातों की आज की परिस्थिति मे अधिक सही सलाह दे सकेंगे। हमारे कार्यकर्त्ताओं को उनसे भी काफी मदद मिलेगी। यह सच है कि आज उन कंजर जातियों की सख्या वहुत कम है जो प्राचीन काल में गोजाति की नस्ल की हिफाज़त करते थे। फिर भी अगर ढूढा जाय तो आज भी हमारी सलाह के लिए ऐसे लोग मिल सकते हैं। भारत की इस मरी हुई हालत में भी आज ऐसे लोग हैं जिनके गोपा-लन-सम्बन्धी ज्ञान की तारीफ विलायती विशेषज्ञ लोग भी करते हैं।

इस विषय पर रायल एग्रीकलचरल कमीशन क्या कहता है, देखो—"अगर संयुक्तप्रान्त के पनवार, पंजाब के हरिआनो और साहिवाल, सिन्ध के थारपारकार, मध्यभारत के मालवी, गुजरात के काकरेज़, काठियावाड़ के गीर, मध्यप्रान्त के गौवलव, मद्रास के अगोलों के इतिहास की खोज की जाय तो मालूम होगा कि उनकी विशेषता के कारण वे पेशेवर जातिया हैं जो पहले भारत में आम तौर पर घूमा करती थी लेकिन खेती की वृद्धि के साथ साथ जो अब गोपालन का काम छोड़ती जा रही हैं। ग्रामीण जनता मे वे ही जातिया थी जो गोपालन का अच्छा ज्ञान रखती थीं और गाय और साड़ो को छाँटने तथा उन्हे पालने की कला को वे इतनी अच्छी तरह जानती थीं कि ऊँची नस्ल के जानवर पैदा कर सकती थीं।" आज भी मैने देखा है पंजाबी बजर जाति के लोग अच्छे किस्म के बैल हमारे प्रान्त में घूम घूम कर बेंचते हैं। हमारा काम होगा इन जातियों को अच्छी गाय पालने के लिए प्रोत्साहित करना और देहातों में ग्राम समितियो के द्वारा गोपालन का प्रसार करना। केवल वे ख़ास जातियाँ ही हमारी सहायक होंगी, यह बात भी नही। वल्कि सारी जनता हमको सिखाने का काम कर सकती है। वस्तुतः उसकी सहायता बिना समस्या पूर्ण रूप से हम समझ भी नही सकते। हम चाहे जितने वैज्ञानिक ज्ञान के पडित हो, चाहे जितने अनुभवी हो, हमारा दृष्टिकोण हमेशा एकरुखा ही रहता है। हम जो कुछ देखते हैं ऊपर-ऊपर से ही देख पाते हैं। तुम कहोगी जनता की दृष्टि भी तो एकरुखी है। वह भी तो सिर्फ नीचे ही नीचे देख पाती है। तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक होगा। मै इसे मानता हूँ। लेकिन ऊपर और नीचे दोनो ही तो रुख है। दोनों मिल कर ही तो पूर्ण स्वरूप होता है। अतः अगर हमको सम्पूर्ण दृष्टि से काम करना है तो जहाँ हम अपने ज्ञान से ग्रामवासी को सिखाने की चेष्टा करते हैं वहां हमको पद-पद पर उनके ज्ञान से सीखकर अपने ज्ञान को पूर्ण करने का यत्न करते रहना पड़ेगा। और मै तो ऐसा

कहूँगा ही क्योंकि मैंने जो कुछ सीखा या समझा है सारा उन से ही न ?

मैं सभी विषयों पर थोड़ा थोड़ा लिखना चाहता था लेकिन गोपालन पर कुछ ज्यादा लिख गया। इसका कारण यह है कि जैसा मैंने अभी कहा है गाय हमारे सब सुधारों की बुनियाद है। मुझको कुछ ज्यादा कहना इसलिए भी पड़ा कि प्रथमतः आज का चालू ख्याल तोड़कर लोगों से भैंस का व्यवहार छुड़ाना है और दूसरे आज कल ग्राम सुधार के सिलसिले में गाय की नस्ल सुधारने की जो भी चेष्टा की जाती है वह सब गलत दिशा में हो रही है, इसको स्पष्ट करना है। तुम कह सकती हो कि जब देहात के सभी लोग जानते हैं कि भैंस के दूध मे घी अधिक होता है इसलिए आर्थिक दृष्टि से भैंस ही फायदे की है तो उसके बदले मे गाय पाल कर देहाती क्यों हानि उठाने जायँ। लेकिन आम तौर से जिस अर्थशास्त्र की बात लोग कहते हैं वह अहीरी अर्थशास्त्र है, ग्रामीण अर्थशास्त्र नहीं है। अहीर को तो तात्कालिक लाभ ही देखना है। गाँव की या खेती की हालत देखने की जरूरत ही क्या ? किसानों मे भी न इतनी योग्यता है और न सब्र है कि वे दूरदर्शिता का हिसाब लगा सके। सिर्फ कितना घी होता है वही जोड़ते हैं। लेकिन अगर यह जोड़ा जाय कि जितने भैंसे होते हैं उन्हे कुछ दिन बेकार खिलाकर नष्ट करने में कितना कितना खाद्य बेकार जाता है, गाय की जितनी बछिया होती हैं उनको नष्ट करने से पहले कितना खिलाना पड़ता है, गाय को ठीक से न पालने से जो घटिया बछड़ा पैदा होता है उसका दाम कितना कम मिलता है और इस तरह कमजोर बैलों के कारण हम को कितने अधिक बैल रखने पड़ते हैं और उनके लिए कितनी अधिक खूराक जुटाना पड़ती है तथा कमजोर बैल से जुताई ठीक न होने के कारण जमीन की पैदावार मे कितनी कमी हो जाती है तो मालूम हो जायगा कि किस का पड़ता क्या है। केवल बैलों की घटिया तादाद के कारण कितना नुकसान होता है,

जानते हो ? जहा १०० एकड़ जमीन के लिए केवल २० अच्छे बैलों की आवश्यकता होती है वहा आज हमारे यहा ३०।४० के करीब हैं। लेकिन देहाती जनता इतना हिसाब नहीं लगा सकती। अतः हमारा काम होगा कि उनका सब चीजों का केवल हिसाब ही न बताये बल्कि उनके सामने कुछ उदाहरण रख कर कायल करे।

मैने गोपालन के सिलसिले मे इसलिए भी कुछ ज्यादा कहा है कि अपनी योजना की जिस स्थिति मे मैंने गोपालन का कार्यक्रम शुरू करने की बात की है उस स्थिति मे गाव की सहयोग-समितियाँ कुछ संघटित हुई रहेंगी। और दूसरे उद्योगों के रहने से उनकी आर्थिक स्थिति, सहयोग वृत्ति तथा योग्यता की उन्नति हुई रहेगी। ऐसी स्थिति में समितिया गोपालन का कुछ व्यापक परिमाण मे काम करने मे समर्थ भी होंगी। इस प्रकार कुछ काम हो सकता है। समिति की ओर से पूँजी तथा अन्य साधन के हिसाब से कुछ अच्छी गाये लेकर सदस्यों को किस्त पर दी जायँ। क़िस्त की रकम वे दूध से पूरी कर सकेंगे। समिति की ओर से दूध का घी खोवा आदि बाज़ार के अनुसार सामान बनाकर बेचना होगा। जब तक हम गोपालन का काम शुरू करेंगे तब तक विभिन्न ग्राम-समितियों-द्वारा तथा सदस्यों के परिवारों द्वारा चलाये भिन्न भिन्न उद्योगो के बाज़ार के लिए किसी किस्म की बिक्री-यूनियन का संघटन भी हुआ होगा। इन्हीं यूनियनो के द्वारा घी आदि की बिक्री की व्यवस्था करनी होगी। इस तरह मान लो कि २० गाँव की एक सर्किल सोसाइटी इस काम को शुरू करती है। और इस सोसाइटी के पास इतना साधन हो गया है कि वह २० गाय खरीद सकती है। २० गायों को २० सदस्यो को इस शर्त पर दिया जायगा कि वे अमुक दाम पर दूध देकर गाय का दाम पूरा कर दे। सदस्यों पर दूसरी शर्त यह होगी कि वे समिति के निर्देशानुसार इन गायों की सेवा करे। ऐसा करने के लिए यह आवश्यक

गोपालन की एक योजना

होगा कि कुल गायों को एक ही गाँव मे दिया जाय। इसमे कोई झगड़े की बात ही नहीं उठेगी क्योंकि सोसायटी की शर्त मान कर गौवों को लेने के लिए विभिन्न गाँव के लोगों मे प्रतियोगिता होने की गुंजायश कम है। शुरू शुरू मे किसी एक प्रगतिशील गाँव को तैयार करने मे कुछ कठिनाई होगी। मैने एक ही गाँव मे कुल गौवो को देने की सलाह इसलिए दी है कि इससे हम कई समस्याओं का हल निकाल सकेंगे। और एक गाँव में सब गौओं के रहे बिना सोसाइटी के निर्देशानुसार उनको पालने की शर्त पूरी होना सम्भव नही होगा। एक गाँव मे ही कुल गौओं को रखने के, मेरी समझ मे, ये फायदे होगे:—

१—गाव भर की गौवों के लिए समिति के ओर से चारा-दाना की व्यवस्था तथा बीमारो की देख-भाल आसानी से हो सकेगी।

२—सम्मिलित वायुमडल होने से गाव के लोगों को गोपालन का वैज्ञानिक ज्ञान देने का ठीक प्रवन्ध किया जा सकता है।

३—उसी गाव की ग्राम-समिति की ओर से इन गौओं के बीच एक अच्छा साड़ रखवाने का प्रवन्ध किया जा सकता है।

सर्किल सोसाइटी अपने यहा सिर्फ घी बनाने की व्यवस्था करके मक्खन निकालने के बाद जो दूध बचेगा उसे उन्ही सदस्यों के हाथ बेंच देगी और घी की बिक्री का प्रबन्ध करेगी। इससे कम से कम मक्खन निकाला हुआ दूध तो सदस्यों के बच्चों को पीने के लिए मिल ही जायगा। इसके उनके स्वास्थ्य पर भी अच्छा असर होगा। मैने संक्षेप में गाव में किस प्रकार से काम करना होगा, इसका सकेत किया। यह कोई ब्योरेवार योजना नही है। मै पूरी योजना भी तो यहाँ बनाने के लिए नहीं बैठा हूँ। "हम किस तरीके से ग्राम-सुधार करे" इसका एक अन्दाज़ तुमको देने के लिए इन पत्रों को लिख रहा हूँ। इसके लिए जितना स केत मैने किया है उतना काफी होगा।

तुमको इस बात की परीशानी होती होगी कि इस बीच मे ग्राम-

समिति, सर्किल सोसाइटी के यूनियन की वात कहाँ से टपक पड़ी। मैंने पहले एक पत्र में लिखा था कि जब हम अपनी योजना की शुरुआत मे चर्खे का काम आरम्भ करेंगे तभी से चर्खा समितियाँ कायम करके क्रमशः छोटी-छोटी ज़िम्मेदारियाँ उन पर डालेंगे। उस पत्र में यह भी लिखा था कि वाद को यही समितियाँ गाव के तमाम उद्योगो तथा सुधार-कार्य के लिए सहयोग-समितियो के रूप मे परिणित होंगी। फिर इन्हीं के द्वारा सम्मिलित सोसाइटियाँ बन सकेंगी। लेकिन इन संघटनों की वाबत आज लिखना शुरू करूँगा तो पत्र वहुत बड़ा हो जायगा। अतः इनकी क्या रूप-रेखा होगी और उन्हे हम किस प्रकार और किस क्रम से संघटित कर सकेंगे, इत्यादि बातें आगे कभी लिखूगा।

इस पत्र को समाप्त करने से पहले हमारे देहातों की एक परिस्थिति का ज़िक्र करना शायद लाभप्रद होगा। यद्यपि इस समस्या को हल करने की कोई संयोजित चेष्टा करना सरकारी मदद के विना सम्भव नही फिर भी समस्या की जटिलता की बाबत हमारे ग्राम-सेवक जानकारी रखें तो अच्छा होगा। देहात के सम्बन्ध मे जिसको ज़रा भी जानकारी है उसे मालूम है कि कमज़ोर बैल से बहुत कम खेत जोता जा सकता है। इस कारण हमको ज़रूरत से अधिक बैल रखने पड़ते हैं। इसलिए हमारे यहाँ प्रति जानवर थोड़ा चरागाह और थोड़ी ज़मीन दाना के लिए पड़ती है। इस समस्या का हल मैंने बताया है कि हमको अच्छे बैलो का प्रबन्ध करके घटिया बैलो की तादाद घटाना चाहिए। शाही कृषि कमीशन का भी कहना है कि भारतीयों का खेत के बैलों की संख्या घटाकर उनकी कार्यशक्ति बढ़ाने की चेष्टा करनी ही होगी। लेकिन ऊपर से देखने से यह समस्या जितनी आसान मालूम पड़ती है वास्तव मे उतनी आसान नही है। तुमको तो मालूम ही है कि हमारे यहाँ खेती पर कितनी घनी आबादी गुज़र करती है। इसका नतीजा यह हुआ है कि ठीक से गुज़ारा करने के लिए किसी के पास काफी खेत नहीं हैं। ख़ास तौर से हमारे प्रान्त की स्थिति तो

अजीब है। एक किसान के हिस्से मे २॥ एकड़ ज़मीन भी मुश्किल से पड़ती है। इस कारण भी किसान को अच्छे बैलों से दिलचस्पी नही है। जिनके पास अधिक खेत हैं उनकी तादद ही कितनी है? भारत की प्राचीन सम्मिलित परिवार की प्रथा भी तो अब रह नही गई। अब तो दो भाई एक मे नही रहते। अतः खेतो के छोटे-छोटे टुकड़े अलग-अलग मालिकों के अधीन हो गये हैं। सहयोग की कोई भावना है ही नही। ऐसी हालत मे प्रत्येक किसान को अपने अलग-अलग बैल की व्यवस्था करनी पड़ती है। इससे बैलों की तादाद अनिवार्यतः वढ़ गई है। फिर थोड़ी ज़मीन के लिए छोटे कमज़ोर बैल काफी होते हैं। और कम खूराक वाले होते हैं। हमारे छोटे किसानो को वैसे बैल ही फायदे के पड़ते है। ऐसी हालत मे शाही कमीशन के साथ सुर मिलाकर यह कह देने से कैसे काम चलेगा कि भारत को बैलों की तादाद घटाकर कार्यशक्ति बढानी चाहिए। जब किसान के पास काम ही नहीं है तो कार्यशक्ति बढाकर क्या फायदा होगा। और जब छोटे-छोटे स्वतत्र किसानों की तादाद इतनी अधिक है तो बैलों की तादाद कम करने से उनका बॅटवारा किस प्रकार होगा। अतः अगर वस्तु स्थिति पर विचार किया जाय तो हमारे गाव मे बैलो की उन्नति की या तादाद घटाने की गुजाइश कहाँ? तुम कहोगी "जिस किसान के पास ज़मीन कम है उसकी वात तो मै समझ सकती हूँ लेकिन जिनके पास ज्यादा ज़मीन है वे क्यो छोटे बैल रखते हैं। २ जोड़े छोटे बैल के वजाय १ जोड़े वड़े बैल क्यो नही रखते है?" तुम्हारा ऐसा सोचना ठीक है। लेकिन समुद्र के वीच तो सब ही खारा पानी मिलेगा न? वहा मीठा पानी एक घड़ा भी चाहोगी तो नहीं मिलेगा। यह तो तुमको मालूम ही है तुम जिन बड़े किसानों की वात करती हो वैसे किसान १००|२०० किसानों के वीच कहीं एकाध मिलेंगे। वे सिर्फ अपने लिए एक-दो जोड़े अच्छे बैल पैदा करने की अलग व्यवस्था थोड़े ही रख सकते हैं? उनको तो जानवर की जो आवादी मौजूद है उसी मे अपने

काम के बैलों को छांटना पड़ेगा फिर आदमी जिस वायुमंडल में रहता है उसका दृष्टिकोण भी वैसा ही हो जाता है। कंगालों की बस्ती में किसी के पास २।४ पैसे हो जायँ तो वह अपने को कुबेर का सगा भाई ही समझने लगता है। जहां सारी आबादी मे बकरे-जैसे बैल ही दीख पड़ते हैं वहा किन्ही एक दो के पास थोड़े भी मोटे-ताजे बैल हो जाते हैं तो वह समझता है कि इससे बेहतर बैल ब्रह्मांड में कहीं नहीं मिल सकते। कहीं इत्तिफाक़ से किसी किसान के घर पर कुछ पढ़े- लिखे लोग गये वा बाहरी दुनिया की हवा खा आये तो कभी कभी अपनी खेती के लिए बड़े-बड़े बैल लाते जरूर हैं। लेकिन उनको काफी मुसीबत उठानी पड़ती है। कभी कोई बैल बीमार पड़ा या मर गया तो सारे क्षेत्र मे जोड़ा मिलाना मुश्किल हो जाता है। अतः जो समझदार भी है वे भी स्थानीय अच्छे बैलों से बढ़कर बड़े बैल लाने में घबड़ाते हैं। इतना तो मैंने परिस्थिति को समझाने के लिए लिखा। बड़े किसानों की स्थिति आम स्थिति नही है। साधारण स्थिति तो वही है जो पहले बताई गई।

कार्यकर्ता जब गोपालन के कार्य को आरम्भ करेगा तो स्वभावतः उसको उल्लिखिति परिस्थिति दीख पड़ेगी। ऐसी हालत मे वह परीशान हो जायगा। सोचेगा कि फिर गोजाति की नस्ल सुधारने में क्या लाभ? जब कोई उपयोगिता ही नहीं है तो ऐसा कार्यक्रम बेकार क्यों चलाया जाय? या समस्या का समाधान करने के लिए जिन कारणो से परिस्थिति ऐसी जटिल हो गई है उन कारणों को हटाने के चक्कर मे क्यों न पड़ा जाय? लेकिन वे लाख कोशिश करें, जमीन जितनी है उतनी ही रहेगी और आबादी घटने के बजाय बढ़ती ही जायगी। हमारे देहातों के बैलो की तादाद घटाकर कार्य शक्ति बढ़ाना तभी सम्भव होगा जब कम से कम उतनी खेती सम्मिलित व्यवस्था मे हो जितनी एक जोड़ा उन्नत बैल को पूरा काम देने के लिए काफी हो। यह तभी हो सकेगा जब गाँव मे सम्मिलित खेती का प्रबन्ध किया जा सके लेकिन

इस काम के लिए आज हमारे पास कोई शक्ति नहीं है। इस किस्म का कार्यक्रम तो वही सरकार उठा सकती है जो जनता के प्रतिनिधियों द्वारा सचालित हो, जो कानून-द्वारा खेत जोतने वालों को बराबरी की हैसियत से आपस मे सहयोग करने के लिए अपनी अपनी ज़मीन का मालिक बना दे। आज की ज़मीदारी प्रथा के अन्तर्गत किसान को अपनी जमीन का चाहे जिस तरह बँटवारा करने का हक ही कहाँ? हमारी सस्थाएँ तो उतना ही काम कर सकती हैं जितने के लिए उन मे शक्ति है।

फिर भी मैंने अपनी सस्थाओं-द्वारा चलाई ग्राम-सुधार योजना में गोपालन के काम को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। समाधान करने की शक्ति या साधन हमारे पास नहीं है, इसका मतलब यह नहीं होता कि देश के सामने समस्या ही नहीं है। समस्या तो है ही; उसका हल भी निकालना ही होगा। हम लोग अपने साधन से जिस परिमाण मे काम कर सकते हैं उससे गाव की विभिन्न समस्याओ का हल नही होता है। जो कुछ करते हैं वह प्रयोग मात्र है। हम अपने प्रयोग से केवल देश की विभिन्न समस्याओ को सुलझाने का रास्ता ढूँढ़ निकलते हैं, जिससे जब जिसे जरूरत हो वह उस रास्ते से आगे बढ सके। हमारी गोपालन-योजना भी उसी प्रयास का प्रयोग मात्र है। हमारे संघटन के अन्तर्गत जितना काम होगा उससे अगर उन थोड़े बड़े किसानो की समस्या कुछ हल हो जाय तथा ग्रामीण जनता की व्यावहारिक शिक्षा तथा सही रास्ते की ओर दृष्टि हो जाय तो वह अपनी सफलता के लिए काफी अच्छा नतीजा होगा। अतः हमारे कार्यकर्त्ताओं को समस्याओं की विशालता और जटिलता से न घबड़ाकर जो रास्ता सही है उसी दिशा मे प्रयोग करना होगा।

गोपालन के कार्यक्रम के साथ-साथ हमारे सामने मृत जानवरो का प्रबन्ध करने का काम स्वतः आ जाता है। पहले ही एक पत्र मे मैंने लिखा था कि हम उद्योग का क्रम ऐसा रखे जिससे एक दूसरे से

मृत पशुओं के चमड़े का उपयोग

सम्बन्धित रहे। भारत-जैसे कृषि-प्रधान देश के लिए मृत गाय बैल की आर्थिक उपयोगिता के प्रति खास तौर पर ध्यान देना आवश्यक है लेकिन दुःख की बात यह है कि इस उद्योग के प्रति हम दुनिया मे सब से ज्यादा उदासीन हैं। तुमको मालूम ही होगा कि ससार मे जितने गाय, बैल, भैस आदि जानवर है उनके ३० सैकड़ा केवल भारत मे ही हैं और संसार मे जितना चमड़ा होता है भारत का हिस्सा उसकी तिहाई से भी ज्यादा है। लेकिन हमारे देहाती इससे ज़रा भी लाभ नही उठाते। जात-पात का ऐसा चक्र बना रक्खा है कि जिनमे बुद्धि है, आर्थिक साधन हैं, कौशल है और समाज मे प्रतिष्ठा है उनको मृत जानवर से कोई दिलचस्पी नही। मर जाने पर जानवर ऐसे लोगों के हाथ जाकर पड़ता है जो हमेशा समाज मे दलित होने के कारण शोषित हैं, दरिद्र हैं, जाहिल है। उनके पास न साधन है, न वह कौशल जिससे वे बुद्धि-पूर्वक मृत जानवर का उचित इस्तेमाल कर सके। नतीजा यह होता है कि जब कोई जानवर मरता है तो वह किसी प्रकार उसका चमड़ा उधेड़ कर किसी व्यापारी को नाम मात्र दाम पर बेच आते हे। उन्हें यह देखने की भी आवश्यकता नहीं होती कि चमड़ी निकालते समय कही कट न जाय, छेद न हो जाय या मास लगा न रह जाय। वे इसका विचार ही नही करते कि ठीक ढंग पर चमड़ा निकालने से और ज्यादा दाम मिलेगा। और उनको इस बात की फ़िक्र ही क्यों हो। एक तो ज्ञान के अभाव से वे इन बातों की बारीकियो को जान नही सकते। दूसरे यह कि सारा माल मुफ़्त मिलता है। जो चमार उस चमड़े का पकाने का काम करते हें वे भी साधन तथा ज्ञानहीन होने के कारण उसे इस तरह पकाते हैं कि वह बाज़ार मे अधकच्चे माल के नाम से घोषित होता है और विदेश जाकर वही पक्का माल बनकर हमारे यहा वापस आ जाता है। इस प्रकार हमारे यहा जितना माल होता है उसका लगभग ४० सैकड़ा

कच्चा और अधकच्चा के रूप मे विदेश चला जाता है। इसके अलावा मृत जानवर से दूसरी उपयोगिता की चीजे वनाने के प्रति तो लोग कतई उदासीन हैं। चमडा निकाल कर बाकी जानवर के मास को वे गाव की एक तरफ फेक देंगे और चील, गिद्ध, कुत्तों और कौओं का जमघट कराकर एक वीभत्स दृश्य पैदा करेंगे। कुछ दिन तक इतनी वदबू होगी कि उधर का निकलना मुश्केल। उस दृश्य से घृणा नही, उस दुर्गन्ध से घृणा नही, सारी घृणा चमड़ा छूने से हैं। इस घृणा के मामले मे जाति-पाति कानून भी अजीब ऊटपटाग है। रणीवा के चर्मालय का अनुभव बताते समय मैंने लिखा था किस तरह चमार जाति मृत जानवर का चमडा तो छीलकर निकालेगी लेकिन चमड़ा पकाने मे उस पर हाथ नही रख सकती क्योंकि ऐसा करनेवाले को जाति से निकलना पड़ेगा। नतीजा यह होता है कि जो चमार चमडा निकालता है उसको इस वात की फिक्र ही नही रहती कि किस तरह चमड़ा छीला जाय जिससे पकाने मे अच्छा माल निकल सके। फलतः हम इस उद्योग मे दूसरे देशों के इतने पीछे पड़ गये कि घटिया चमड़ा या कच्चा माल के व्यापारी मात्र रह गये हैं। सो भी जानवर के और हिस्से की तो कोई वात ही नही।

मृत जानवर के उपयोग द्वारा अनेक वस्तुओं का निर्माण

वस्तुतः अगर इस ओर जरा ध्यान देकर ठीक प्रवन्ध कर लिया जाय और देहाती जनता मे इस ओर दिलचस्पी पैदा की जाय तो मृत जानवर की उपयोगिता बहुमुखी हो सकती है। सवसे पहले चमड़ा का ही एक प्रधान और व्यापक उद्योग चल सकता है। मृत जानवर की समस्या प्रत्येक गाँव की होने के कारण चर्खा-जैसा यह उद्योग भी व्यापक रूप ले सकता है। हड्डी से बहुत उच्च कोटि की खाद वन सकती है, इसका जिक्र मैंने पहले भी किया है। हमारे यहा खेती के लिए खाद की कितनी कमी है सो किसको मालूम नहीं है। मास से भी अच्छी खाद वनती है। प्रत्येक

जानवर की सिर्फ चर्वी से ही १) के करीब आमदनी हो सकती है। चमड़े के लीज और टुकड़ों से लाखों रुपये का सरेस हम न केवल अपने काम के लिए ही बना सकते वल्कि फालतू माल वाहर भी भेज सकते हैं। इसके अलावा सींग तांत का काम आदि और वहुत से उद्योग चल सकते हैं। वास्तव में मृत जानवर से ही हम देहातों को उद्योगमय बना सकते हैं। मृत जानवरों का ठीक से उपयोग न कर सकने से हमको कितनी हानि होती है, इसका हिसाव लगाना शुरू करेंगे तो घबड़ा जाओगी।

यह भयंकर हानि !

जहाँ तक गिनती की जा सकी है हमारे यहा हर साल दो करोड़ सत्तावन लाख जानवर मरते हैं। इनके चमड़े की ठीक व्यवस्था न होने से हमारे गावो का कम से कम प्रति फर्द २) का नुकसान होता है। उसके अलावा प्रति जानवर मास से आठ आने, हड्डी से एक रुपया, चर्वी से एक रुपया, सीग पुट्ठा आदि से चार आने मिल सकता है। इस प्रकार हम आज प्रति जानवर २ रु०) + ॥) + १) + १) + ।) यानी पौने पाच रुपये हानि उठा रहे है अर्थात् हमको कुल ४॥।) × २५७०००००=१२, १८, १२,०००) वार्षिक हानि होती है। इतनी रकम तो हम केवल संघटित रूप से मृत देह की व्यवस्था करने से ही वचा सकते हैं। लेकिन अगर हम चमड़े का उद्योग चलाकर कुल चमड़ों को पक्के माल के रूप मे बेचे और उतनी खाद के कारण खेती की पैदावार की जो वृद्धि होगी उसका हिसाव जोड़ें, विभिन्न प्रकार के उद्योगो में कितनो आमदनी होगी और कितनी बेकारी दूर होगी, उसका विचार करे तो हमारी वचत कितनी गुना वढ़ जायगी, इसे तुम समझ ही सकती हो। इस तरह जब मृत जानवर की कीमत काफी वढ़ जायगी तो आज जैसे बुड्ढे जानवर को काट डालने के लिए मजबूर हो जाते है वैसा नही करना पड़ेगा। दूसरा यह है कि जब लोगो को मुर्दार चमड़े का उम्दा माल मिलता रहेगा तो वे

कत्ल किये हुए जानवर के चमड़े की मांग नहीं करेंगे। अतः हमारी योजना में गोपालन के साथ मृत जानवर के उद्योग की व्यवस्था होनी चाहिए।

यह पत्र बड़ा हो गया। सोचा था, इसी पत्र मे बाकी सब कार्यक्रम पर विचार समाप्त कर दूँगा। लेकिन यह विषय इतना व्यापक था कि इसी ने काफी समय ले लिया। अतः इस पत्र को आज समाप्त करके अगले महीने और विषयों पर विचार करने की चेष्टा करूँगा।

---

[६]

यातायात और जल की व्यवस्था

१—४—४४

यातायात— तुम्हारा पत्र मिला। तुम लोग मेदनीपुर ज़िले में नई तालीम का प्रयोग शुरू कर रहे हो, जानकर खुशी हुई। इसका मतलब यह कि अब अपने तालीमी संघ के तने से शाखाएँ पर शाखाएँ फूटनी शुरू हो गई हैं। यह अवस्था सुखकर है। हमारे प्रान्त मे कब प्रयोग होगा? मै अब भी समझता हूँ कि तालीमी संघ की प्रयोगशाला हमारे ही प्रान्त में होनी चाहिए। हिन्दुस्तान तालीमी सघ का काम हिन्दुस्तानी भाषा मे ही न होगा? और हिन्दुस्तानी भाषा का प्रधान अड्डा युक्तप्रान्त ही तो है।

अब हम लोग सब जेल के अन्दर ही अन्दर नये आर्डिनेंस मे फिर गिरफ़्तार हुए हैं, ऐसा सुनने में आया है। पता नही इस बीच कितने कानून बदलेंगे और बनेंगे? चाहे जो कुछ कानून बनें बिगड़ें, हमारे लिए उनका कोई मूल्य नहीं। हमे नज़रबन्द रहना ही है फिर वे चाहे जो कहकर रक्खें। लोमड़ी भेड़ को खायेगी ही। दलील क्या होती है, यह भेड़ के लिए कोई दिलचस्पी की बात नहीं। हा, अब

हमे गर्मी मे बाहर सोने को मिलेगा। खाने को आलू भी मिला करेगा। महीने मे एक बार सम्बन्धियो से मुलाकात हो सकेगी और एक पोस्टकार्ड ज्यादा लिखने को मिलेगा। अब सरकार अखबार भी देगी, यह भी सुना है। इतनी बात खुशी की है। बाकी जेल जीवन जैसा था, वैसा ही है। हा, मालूम हुआ है कि सरकार अब एक प्रमाण पत्र भी हमको देगी जिसमे हमारे बन्द रहने का कारण रहेगा। यहा कोई भी उसके लिए फिक्र नही करता। सब जानते हैं कि वही लोमड़ी जैसी ही कोई दलील होगी।

अब तक जो पत्र मै तुमको लिखता रहा उनमे हम ग्राम सुधार के लिए क्रमशः उद्योग, शिक्षा व संस्कृति, सफाई व स्वास्थ्य, कृषि व बागबानी तथा गोपालन पर अपने विचार प्रकट करते रहे। इतने कार्यक्रमो का सघटन हो जाने पर गाँवों की स्थिति ऐसी होनी सम्भव है कि हम कुछ ऐसे कार्यक्रम भी शुरू कर सके जिनके लिए गॉव भर की सहयोग वृत्ति तथा सार्वजनिक लाभ के वास्ते व्यक्तिगत त्याग की तैयारी की आवश्यकता हो। ऐसा काम है गाँव की यातायात की समस्या हल करना। तुम जब रणीवा आई थी तो देखा होगा कि आश्रम तक जाने मे रास्ते भर कितनी तकलीफ हुई थी। परीशान होकर वापस जाते समय तुमने पैदल जाना ही पसन्द किया था। फिर भी तुम ऐसे मौसम मे गई थी जब सूखा था। खेत खाली होने के कारण बैलगाड़ी चाहे जिस गाँव मे जा सकती थी। बरसात मे तो पैदल चलने के अलावा दूसरा कोई उपाय ही नही है। रणीवाँ जाने मे रास्ते का जो हाल तुमने देखा था वह भी हमारे ग्रामो के हिसाब से अच्छा था। अधिकाश गावों की उससे भी बदतर हालत रहती है। पर यातायात की कठिनाई को उसी तरह से रहने देकर औद्योगिक प्रगति करना एक प्रकार असम्भव नही है। अधिकतर लोगो की तो यह राय है कि यातायात की सुविधा पहले

गॉव के रास्तों की दुर्दशा

होनी चाहिए, फिर उद्योगों का सघटन शुरू करना चाहिए। आज जो सरकारी तथा गैरसरकारी ग्राम-सुधार कार्य हो रहा है उसमे सड़क बनाने और सुधारने का काम प्रथम और मुख्य माना गया है। देहात की सड़कों को दुरुस्त करना इतना महत्व का होने पर भी मैने ग्राम-सुधार योजना मे यह कार्य-क्रम सबसे अखीर मे रखा है। इसका कारण मै पहले एक पत्र मे बता चुका हूँ। अगर हम चाहते हैं कि ग्राम-सुधार का काम ग्रामीण जनता की शक्ति का विकास करके करें तो ऐसे कार्यक्रम बाद को ही रखना होगा। क्योंकि जब तक गाव के लोगो मे सघटन की प्रथा न जारी होगी तब तक कोई सम्मिलित काम नहीं हो सकता। आज जो सडक आदि का काम होता है वह कहीं-कहीं पैसे की इमदाद से एकाध सडक मरम्मत कर देने का ही है। इस दिशा मे कोई व्यापक योजना तो देहात की जनता की आर्थिक स्थिति, शिक्षा, संस्कृति तथा सघटन शक्ति की उन्नति के साथ ही हो सकता है।

मै कह रहा था कि यातायात की समस्या हल करने के लिए हमको चाहिए गाँव भर का सम्मिलित प्रयास, स घटित परिश्रम और कुछ लोगो की उतनी ज़मीन जो सड़क बनाने के लिए ज़रूरी हो। अब तक मैने जितने कार्यक्रमों का ज़िक्र किया है उनके बाद जनता मे इतनी सार्वजनिक भावना पैदा होगी जिससे वे लोग खुशी से इतना त्याग सबके भले के लिए करेंगे, ऐसा मेरा अनुभव है। अगर छान-बीन के साथ खोज की जाय तो मालूम होगा कि प्रथम दृष्टि से यहाँ यह जितनी त्याग की बात मालूम होती है वस्तुतः इस जमीन छोड़ने के मसले पर उतने त्याग की आवश्यकता न होगी। प्रथमतः सड़क निकालने की योजना ऐसी बनाई जाय जिसमे अधिकतर हिस्सा परती, जंगल आदि पड़े। इसके अलावा अगर पटवारी के नक्शों को देखा जाय तो मालूम होगा कि अधिकाश गाँवों में ऐसा डहर मौजूद था जो किसी की व्यक्तिगत भूमि नहीं समझा जाता था। उतना डहर

छोड़ा जाता था यातायात की सुविधा के लिए। वह ग्राम पंचायत के अधीन था और उसका सस्कार गांव वाले मिलकर करते थे। लेकिन गाँव का स्वाभाविक संघटन नष्ट हो जाने पर उस भूमि को आस-पास के किसानो ने अपनी भूमि मे मिला लिया। आज भी अगर जरीबी नक्शा निकाला जाय तो उतना डहर अलग मालूम हो जायगा। यह भूमि आज भी कानूनन सर्वसाधारण की सम्पत्ति है। हमारा ग्राम-संघटन पुनर्जीवित होने पर उन डहरो को फिर से सर्वसाधारण को वापस करना कठिन नही होगा। लेकिन इतने दिनो से उसका दख़ल भोग करते रहने पर अब किसान उसे अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति ही समझने लगे हैं और अब उसे छोड़ना उतना ही अखरेगा जितना उनको अपनी जमीन छोड़ने में अखरता।

मार्गों का पुनरुद्धार

चार साल पहले जब मैं फैजाबाद मे इन डहरों की खोज करके उनके पुनरुद्धार के काम मे लगा था तो किस तरह उनके कब्जेदार लोग झगड़ा करते थे और हमको अधिकारियों की मदद से भी कहीं-कहीं सफलता नही मिलती थी, इसकी पूरी कहानी मै तुमको पहले लिख चुका हूँ। अतः यद्यपि उस सर्वसामान्य सम्पत्ति को अपनी जमीन मे मिलाना किसानों के लिए बेजा दख़ल है फिर भी आज उसे फिर से सवजनिक काम मे देना उनके लिए त्याग की ही बात होगी।

अतएव यद्यपि दूसरे कार्यक्रमो-द्वारा हमने गाँव की स्थिति मे काफी सुधार कर लिया है तथापि हमको यह काम काफी सँभाल कर करना होगा। इस विषय मे जल्दवाजी करने पर गाँव में झगड़ा होने का डर रहेगा। गाँव की पंचायत मे कई आदमी होगे। मान लो उनमे से दो आदमी की जमीन सड़क के लिए जरूरी है। ऐसी हालत मे अगर कोई ऐसा प्रस्ताव हुआ कि अमुक-अमुक टुकड़े सड़क के लिए लिये जायँ तो झट वे दो आदमी समझ बैठेंगे कि 'यह प्रस्ताव फलाँ शख्स ने हमारी हानि करने की नीयत से किया है।' इस तरह

झगड़ा खड़ा होकर गाँव के सघटन की हानि हो सकती है। हमारे कार्यकर्त्ताओ को हमेशा ख्याल रखना चाहिए कि वे जो संघटन गाँव मे कायम कर रहे हैं उनकी स्थिति वहुत नाज़ुक है। प्रथमतः उनके संघटन के लिए सरकारी कानून का वन्धन नहीं है और वह सम्पूर्ण जनता की सद्भावना पर ही निर्भर है। दूसरी वात यह है कि हम अपने थोडे साधनों से थोडे ग्रामों मे ही संघटन कायम कर सकेगे। उनके अलावा उन देहातों के चारों तरफ विस्तृत क्षेत्र के देहातो के लोग पुराने तरीके से जीवन विताते होंगे। उनकी मनोवृत्ति का असर हमारे संघटन के अन्तर्गत देहातों पर पड़ना अनिवार्य है। जो कुदरती असर पड़ता है उसके अलावा भी दूसरे गाँव के लोग जव देखते हैं कि अमुक गाँव उन्नति कर रहा है तो वे हर तरह से कोशिश करते हैं कि वना हुआ संघटन टूट जाय। इस प्रकार दूसरे गाँव की ईर्ष्या के कारण काफी सफल संघटन टूटने का अनुभव मुझको अपने कार्यक्रम मे हुआ है। इसके अलावा अगर वह गाँव किसी की ज़मींदारी मे (आज प्रायः सभी गाँव किसी न किसी ज़मींदार के ही हैं) पडता है तो ज़मीदार ऐसा मौका हमेशा ढूँढा करता है जिससे झगड़ा हो जाय। फिर जव सरकार जनता की नही है और जनता के शोषण पर ही कायम है तव भला सरकारी महकमों के लोग कैसे हमारे सघटनों को पनपने देना चाहेंगे। पुलिस, कानूनगो, जरायत के कर्मचारी, को-आपरेटिव विभाग के लोग सभी अपने-अपने ढग से कोशिश करते हैं कि किसी प्रकार गाँव वालों का स्वतन्त्र सघटन वनने न पावे। अतः सड़कों के लिए किसी किस्म का नक्शा वनाते समय परिस्थिति का ध्यान वहुत सावधानी के साथ रखना होगा। इसका क्रम कुछ इस प्रकार हो सकता है :—

प्रथमतः गाँव के नौजवानों को सम्मिलित करके गाँव के उन डहरों का संस्कार किया जाय जिन पर कोई खेती तो नही करता है लेकिन जिनकी ऐसी हालत हो गई है कि वे काम मे नहीं आ

सकते है। इन सड़कों के भी कई प्रकार है :—

(१) ऐसी सड़के हैं जो आम तौर पर तो ठीक काम लायक है लेकिन कही-कही कटकर इतना गड्ढा हो गया है कि वरसात मे ऊपर से चलना असम्भव हो जाता है।

(२) ऐसी जो अभी तक किसी के ख़ास दख़ल मे तो नही गई है लेकिन लोगो ने अपने खेत की खाई बनाने के लिए उन्हीं से मिट्टी खोद-खोद कर उनकी सतह इतनी नीची कर दी है कि अब वे वह सड़क न रहकर गाव भर के पानी का निकास हो गई हैं।

(३) कुछ ऐसी हैं कि अभी पूरे तौर पर खेतो के गर्भ में तो नही चली गई हैं लेकिन इतनी पतली हो गई हैं कि उन पर बैलगाड़ी नही चल सकती। मालूम होता है, लोगो ने इतनी मेहरबानी उन सड़कों पर केवल बैलो के निकास के लिए ही कर रक्खो है। हमको क्रमशः प्रथम, दूसरे और आख़िर मे तीसरे प्रकार की सड़को की मरम्मत का काम लेना चाहिए, जिससे लोगों में धीरे-धीरे बढ़ने का हौसला हो।

उक्त तीन क़िस्म की सड़कों का जीर्णोद्वार होने के बाद नई सड़क या डहर बनवाने की योजना बनानी चाहिए। उसका नक्शा ऐसा बनाना चाहिए जिससे अधिकाश बाग, परती, ऊसर या जगल जैसी ज़मीन पड़े जो खेती के काम मे न आती हो, जिससे खेत मे से कम से कम हिस्सा लेना पड़े। इसके आगे आज हम नहीं जा सकते। जिस सड़क के लिए अधिकाश ज़मीन खेत मे से लेनी पड़े उसे जिला बोर्ड या सरकार ही कर सकती है। हमारे कार्यकर्त्ता या ग्राम-पचायत ज़िला बोर्ड से मिलकर ऐसी सड़क बनवाने की कोशिश अवश्य करें लेकिन अपनी ओर से उसकी चेष्टा करने मे सफलता नही मिल सकेगी। मेरे कहने का मतलब यह है कि हमको ऐसे छोटे-छोटे काम करने होंगे जो हमारी ग्रामीण जनता की आर्थिक, सामाजिक तथा नैतिक स्थिति के अनुकूल हों। बड़ी सड़क की बात हम को सोचना ही नहीं है। हमारा काम केवल गाव से बाहर निकलने के रास्ते का प्रबन्ध

करना मात्र है। अगर हम अपनी योजना के अन्तर्गत कुछ गावों में इतनी ही सफलता प्राप्त कर सकें तो बहुत होगा। बाकी काम सरकार पर छोड़ देना होगा। यातायात की योजना आरम्भ करते समय ग्राम-सेवक को इतना सतर्क ज़रूर कर देना है क्योंकि कितने ग्राम-सेवक एक गाँव की सडक की समस्या हल करने मे सोचते हैं कि कम से कम स्टेशन तक तो सड़क बन ही जानी चाहिए। चाहे वह स्टेशन ४।६ मील दूर ही क्यों न हो। मै जब उनको ऐसे विचार की व्यर्थता बताना चाहता हूँ तो वे प्रायः यह दलील करते हैं कि अगर लोगों को स्टेशन तक जाने का रास्ता न मिले तो गाव से निकास ही होकर क्या लाभ ? ऊपर से सोचने पर उनकी दलील कुछ सही मालूम पडती है। लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से ऐसा करना सम्भव नहीं है। प्रथम हमारे पास इतना साधन नहीं है। द्वितीय ऐसी सड़क पर कई गाँव पड़ेंगे। हमको प्रधानतः गाव के सम्मिलित परिश्रम से ही काम करना है। अभी इतना सम्भव नहीं होगा कि गाव के लोगों को अपने गाव की सीमा छोड़कर बाहर परिश्रम करने को ले जा सके। अतः इस दिशा में हमको गाँव की हद के अन्दर ही रहना श्रेयस्कर होगा। इस प्रकार एक क्षेत्र में अधिकाश डहर और सड़क बन जाने से उन ग्रामो के सम्मिलित संघटन, जिला बोर्ड या सरकार से तमाम क्षेत्र के लिए केन्द्रीय सड़क की माग रखने की शक्ति प्राप्त करेंगे। वे जब अपने संघटन से गाँव के अन्दर की सड़कों को ठीक कर लेगे तो जिला बोर्ड के लिए उनकी माग की उपेक्षा करना कठिन होगा। क्योंकि उनकी माग के पीछे केवल अपनी सडक बना लेने की बात ही तो नहीं रहेगी। इस बीच जो औद्योगिक उन्नति हो जायगी उससे भी केन्द्रीय सड़क की माँग का बहुत बडा और माकूल कारण उनका रहेगा।

ईंट भट्ठा का उद्योग—सड़क की योजना के साथ पानी की व्यवस्था करने का काम साधारणतः आ जाता है। पानी का काम भी सुधार-योजना की उसी अवस्था में हो सकता है जिस मे हम

यातायात का काम शुरू करते क्योंकि इसमे भी कुछ सम्मिलित परिश्रम की आवश्यकता है। हा, यातायात के काम से यह काम ज़रूर कुछ आसानी से हो सकता है। एक तो इसमें उतने अधिक सार्वजनिक श्रम की आवश्यकता नही है। दूसरे जब किसी कुएँ का जीर्ण सस्कार कराना होगा तो किसी से कुछ त्याग तो कराना नही। फिर कुआँ किसी ख़ास आदमी की सम्पत्ति होने से उसे ख़ूब दिलचस्पी रहती है। लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से मै दोनों को एक साथ ही लेने का पक्षपाती हूँ। पिछले एक पत्र मे मैने किसानों को फुर्सत के समय करने लायक कामों मे भट्ठे के काम का जिक्र किया था। उद्योग के कार्यक्रमों को शुरू की अवस्था मे प्रारम्भ करने की ही बात थी। अतः जब तक कुएँ का कार्यक्रम शुरू करना होगा तब तक भट्ठो का उद्योग काफी प्रगति कर जायगा। इस कारण भी कुँओं की मरम्मत करना आसान हो जायगा। मेरा तो विश्वास यह है कि एक बार इसका आन्दोलन चल जाय और साथ ही ईंट आदि सामान सुलभ हो जायँ तो लोग आप से आप अपने कुओं की मरम्मत करेंगे।

ईंट के भट्ठो के नाम से तुम को कुछ आश्चर्य होता होगा। तुम कहोगी चर्खा तथा अन्य ग्राम-उद्योग का काम तो समझ मे आता है, यह ईंट के भट्ठे से क्या लाभ? इससे गाँव की आर्थिक स्थिति मे किस प्रकार की उन्नति होगी? उनको बेच कर कहाँ से आमदनी होगी? किसी के लिए ऐसा सोचना शायद स्वाभाविक है। लेकिन जैसा कि मै पहले लिख चुका हूँ कि हमारा उद्देश्य तिजारत नहीं, ग्राम-सुधार है। और स्वावलम्बन के आधार पर देहातों का आर्थिक, सामाजिक, संस्कृतिक तथा राजनैतिक सुधार करना है। हम बाज़ार का संघटन तो जरूर करते हैं लेकिन उसका अधिक महत्व प्रारम्भिक दशा मे ही रहेगा। बाद को गाँव मे उत्पादित माल का अधिकाश तो गाव के ही इस्तेमाल के लिए बनेगा। फिर उद्योग केवल उन्हीं चीज़ों के लिए थोड़े ही किया जाता है जिनकी विक्री बाहर हो। गाँव की

उपयोगी चीजों की उत्पत्ति भी तो उद्योग है। गाँव मे विस्तृत रूप से नये-नये उद्योगों के चलाने के कारण कारखाने आदि के वनाने मे काफी ईंट की ज़रूरत पड़ेगी। कृषि-सुधार कार्य मे भी अधिक कुएँ वनवाने का कार्यक्रम रहेगा। सुधार का वायुमंडल पैदा होने पर सड़क मरम्मत तथा निर्माण कार्य मे कदाचित् पुलियाँ भी वनानी पड़ेगी। अभी मैने जो गाँव के कुओं की मरम्मत करने का ज़िक्र किया था उनके लिए ईंट की आवश्यकता होगी। इन कामों के लिए गाव मे ईंटों का सुलभ होना जरूरी है। जो लोग गाव मे रहते हैं उनको मालूम है कि वाहर से ईंट मगाना कठिन है। एक तो ईंट का दाम ही अधिक होता है; दूसरी वात यह है कि दूर होने के कारण ईंट के दाम से ढोने की मज़दूरी अधिक हो जाती है। अधिकांश ग्रामों के लिए तो रास्ते के अभाव से दूर से लाना भी कठिन हो जाता है। जव तक गाँव रहेगा, तव तक गड्ढे रहेगे। हम ज्यादा से ज्यादा इनकी शक्ल आदि मे कुछ उन्नति कर सकते हैं। इस दिशा मे मैंने जो कुछ प्रयास किया था उसका अनुभव तुमको लिखा ही है। मिट्टी की भीत उठाने के कारण घरों के आस-पास छोटे-वड़े गड्ढे हो जाते हैं; उनमे स्थायी रूप से गन्दगी सड़ती है। ख़ास तरह से उन प्रान्तो की वात तो कहना ही वेकार है जहा वर्षा काफी होती है और भारत के अधिकाश प्रान्त वर्षा-प्रधान हैं। गड्ढों का इस तरह से सड़ते रहना वीमारी का कारण होता है। खाद के घूर को लोग हटाने का तो प्रस्ताव करते हैं, लेकिन इन गड्ढों को भला हटाकर कहाँ ले जायँगे? देहातो में मिट्टी का घर वनाने का तरीक़ा आज जैसा जारी रहा तो इनका क्रमशः वढते जाना अनिवार्य है। इनसे स्वास्थ्य-सम्वन्धी जो हानि है वह तो है ही; गड्ढों की वढ़ती के साथ-साथ आवादी के अन्दर काफी स्थान वेकार होता जायगा, जिसका कुछ दूसरा उपयोग हो सकता है।

ग्राम-सुधार कार्य के सिलसिले मे नावदान का पानी वहाने के

लिए पक्की नालियों का प्रस्ताव हम हमेशा करते रहते हैं लेकिन जब तक गाँव के मकान बनाने की पद्धति बदली न जाय तब तक स्वाभाविक विकास के अभाव मे इस कार्य मे हमेशा कठिनाई रहेगी। गाँव मे किसी मकान का जब कोई अंश ख़राब हो जाता है तो लोग उसे नष्ट कर उसकी मिट्टी उसी स्थान पर फैला देते हैं और उसी पर नई भीत खड़ी कर देते हैं। नतीजा यह होता है कि आस-पास की ज़मीन की सतह ऊँची हो जाती है और नावदान नीचा हो जाता है, जिससे पानी न निकल कर वही सूखता रहता है।

ईंटों के मकान बनाने का प्रोत्साहन दो

इनका परिहार इसी से हो सकता है कि लोगों मे ईंट के मकान बनाने की प्रथा प्रचलित हो जाय। मैंने ग्राम उद्योगादि के जिन कार्यक्रमों के बारे मे लिखा है उनके कारण लोगों की आर्थिक तथा संस्कृतिक स्थिति अच्छी होने पर उन्हे इस ओर प्रोत्साहित करना कठिन न होगा। साथ ही यदि पुरानी भीत गिराते समय मिट्टी को पास के गड्ढे मे डालने का रिवाज हो जाय तो धीरे-धीरे गड्ढे भी भरते जायँगे और जगह समतल होती जायगी। पक्की दीवारो की संख्या बढ़ जाने पर गाँवों का दृश्य भी बदल जायगा और देहाती जनता का जीवन सुरुचिपूर्ण होता जायगा। यह सच है कि हमारी कोशिशों के बाद गाँवों मे बहुत से कच्चे मकान बनेंगे पर उनके लिए मिट्टी लेने की व्यवस्था ग्राम-समिति की निश्चित योजना के अनुसार करनी होगी। निश्चित स्थान पर निश्चित विधि और नाप से यदि मिट्टी ली जायगी तो उससे बने गड्ढे धीरे-धीरे तालाब का रूप ले सकेंगे। मछली पालकर और अन्य उपायों से उसके पानी को साफ रखना कठिन न होगा। यह सच है कि सभी स्थानो से मिट्टी न लेने से लोगों को कभी-कभी दूर से मिट्टी लानी पड़ेगी लेकिन जिन्दगी भर के आराम के लिए एक बार थोड़ी तकलीफ़ करना अच्छा ही है। इतनी तकलीफ के लिए उनको समझाना कठिन न होगा।

पक्की ईंटों के सुलभ होने पर गाँवों की और कई समस्याएँ हल होती रहेंगी। आज जो नाबदान का पानी सड़ता है, पक्की नाली बन जाने से इस दिशा में सफाई रखना आसान हो जायगा। पशुओं के रहने का फर्श पक्का होना कितना आवश्यक है यह मै कह ही चुका हूँ। इससे सफाई और खाद की प्राप्ति दो लाभ हैं। इस प्रकार ईंट की सुलभता से गाँव की बनावट मे सर्वतोमुखी सुधार होना सम्भव है।

भट्ठो की स्थापना से कृषि को भी लाभ पहुँच सकता है। कृषि के प्रोग्राम पर विचार करते समय मैने तालावों के महत्व की वावत जिक्र किया था। जितना पानी वेकार वह जाता है उसमे से कुछ अगर रोका जा सके तो सिंचाई की समस्या का एक वड़ा हिस्सा हल हो सकता है। यही कारण है कि पुराने समय मे वड़े-

भट्ठों की स्थापना बड़े तालाब खोदने की प्रथा थी। तालाब खुदवाने से अन्य लाभ के पुण्य की वहुत प्रशंसा की गई है। आबपाशी के साथ-साथ लोग तालावों मे मछली पाला करते थे। इस प्रकार खाद्य भी मिलता था। अब गरीबी और जहालत के कारण वे तालाव भी पटकर ऐसी हालत में हो गये हैं कि किसान उनसे कोई फायदा नहीं उठा पाते। वे तो जहा कहीं ऊँची जगह पाते हैं वहा फसल वो देते हैं। और इस प्रकार "कुछ नहीं तो थोड़ा थोड़ा" के न्याय के अनुसार थोडा वहुत अनाज पैदा कर लेते हैं। मैंने देखा है कि गाँव के लोग तालाब खोदने की वृत्ति को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं पर गरीबी और संघटन के अभाव से वे ऐसा कर नही पाते। अगर यह सुना जाता है कि कहीं कोई तालाव खुदवा रहा है या पुराना भटा हुआ तालाव साफ करवा रहा है तो उसकी प्रशंसा दूर दूर तक होती है। रणीवाँ का तालाव तो तुमने देखा है। जब हम उसे खुदवाते थे तो दूर-दूर से लोग देखने आते थे और प्रशंसा करते थे। ग्राम-सुधार के लिए तालाब का होना कितना आवश्यक है, इसको लोग पूरे तौर से

महसूस करते हैं। लेकिन आज गाँवों की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि तालाब फिर से आसानी से खुदवाये जा सके। तालावों की मिट्टी अधिकाश चिकनी होती है। लेकिन जहाँ ऐसे तालाब मिले जिनकी मिट्टी ईंट के काम में आ सकती हो तो उनका उपयोग करके भट्ठे बनाये जायँ। इससे एक साथ दो काम होंगे। भट्ठे बन जायँगे और तालाबों का पुनरुद्धार हो जायगा इसके अलावा जो भट्ठा नई ज़मीन खोदकर बनेगा उस जगह भी आसानी से तालाब बन सकता है।

जल की व्यवस्था—मै गाँवों मे शुद्ध पानी की व्यवस्था करने की बात कर रहा था। बीच मे प्रसंगतः भट्ठे और तालावों की बात आ गई। मै कह रहा था कि यातायात के प्रोग्राम के साथ ही इस कार्यक्रम को लेना है क्योंकि दोनो ही ग्राम-सुधार योजना की एक ही अवस्था में आरम्भ करने लायक हैं। आज अधिकाश गाँवों के कुओ की दशा ऐसी है कि तबीयत घबड़ा जायगी। कहीं-कहीं २-४ अमीर घरों के सामने के कुएँ ऐसे होते हैं जिनकी जगत् बनी होती है। उनमे से भी ७५ सैकड़ा ऐसे होंगे जिनका पाट टूटा है और अन्दर पानी मरता है। बाकी जितने कुएँ हैं उनमे किसी किस्म की

कुओं की दुर्दशा

जगत् नही है। उनके किनारों की सतह इतनी नीची है कि बरसात मे गाव का पानी बहकर उनमे चला जाता है और पानी के साथ गाव भर की गन्दगी भी उन्ही के अन्दर जाती रहती है। आज कल लोग न नया कुआँ खुदवाते हैं, और न पुरानों की मरम्मत कराते हैं। अधिकाश कुओ के कोठे सड़ गये हैं और लोना या नोना लगकर घिस गये हैं। उनके दरारों से किस्म किस्म के पेड़ निकल पड़े हैं और कुएँ के अन्दर रोशनी और हवा का भी रास्ता बन्द कर दिया है। कोठे के अन्दर की यह स्थिति तो उन अमीर घरों के भी अधिकाश कुओं की है जिनकी जगत् बनी हुई है।

ऊपर की बातो से पानी की समस्या की भयंकरता का अन्दाज़

कर समझ सकती हो कि हमको इस दिशा में कितनी चेष्टा करनी होगी। यह सच है कि मैने इतने ही या इससे ज्यादा महत्व के कामों के लिए आज परीशान न होकर भविष्य सरकार के लिए छोड़ देने की सलाह दी थी। लेकिन मै समझता हूँ गाँव के कुआँ सुधारने का काम हम आज की परिस्थिति मे भी व्यापक रूप से कर सकते हैं। मैने देखा है कि थोड़ा सघटन हो जाने पर और सामान सुलभ होने पर लोग उत्साह के साथ यह काम करते हैं। अतः मेरा विश्वास है कि अगर उचित अवसर पर यह काम शुरू किया जाय तो गाव की समितियों की मार्फत विना बाहरी मदद के इसे वहुत हद तक सफल वनाया जा सकता है।

ग्राम-सगठन का रूप-रेखा—पिछले महीने के पत्र में मैने देहातो की कुछ समितियो का ज़िक्र किया था। उसके साथ ही मैने उन समितियों की रूप-रेखा वताने का वादा किया था। हमने प्रथम से ही सारी सुधार-योजना गाव की आन्तरिक शक्ति सघटित करके उसी की मार्फत चलाने का ध्येय रक्खा था। क्योंकि स्वावलम्वन के सिद्धान्तानुसार हमको समाज की बुनियाद से काम शुरू करना होगा। हमारा अन्तिम ध्येय केन्द्र तन्त्र को क्रमशः घटाकर आदर्श स्थिति मे उसे शून्य कर देना है। अतः हमारी व्यवस्था ऐसी हो जिससे समाज क्रमशः व्यक्ति-स्वावलम्वन की ओर अग्रसर हो। यही कारण है कि हम सब से पहले गावों की मूल जन-संख्या को स्वावलम्वी वनाने की कोशिश करते हैं; फिर ग्राम-समिति तथा सर्किल सोसाइटी की ओर वढ़ते हैं। मैने पहले भी कहा है कि हम गाँव मे काम करने के लिए सवसे पहले चर्खे के उद्योग से आरम्भ करेगे क्योंकि यही एक उद्योग है जिसमे गाँव का प्रत्येक परिवार शामिल हो सकता है। अतः सर्वप्रथम व्यक्तिगत रूप से जितने घरों मे सम्भव हो सकेगा चर्खा चलाकर उनके कते हुए सूत की बुनाई-बिक्री आदि की व्यवस्था अपनी संस्था द्वारा की जायगी। फिर कातने वालों की एक समिति वनाकर, सूत-सुधार, कातने वालियों

के सूत की जाँच आदि की जिम्मेदारी उन पर डालनी होगी। फिर धीरे-धीरे रात्रि-पाठशाला लेकर क्रमशः अधिक कार्यक्रमों का भार मेरे पिछले पत्रों के बताये क्रमानुसार उनको सौंपा जा सकता है। कार्यक्रमो की वृद्धि तथा संघटन की मज़बूती के साथ उत्तरोत्तर अधिक परिवार के लोग समिति मे शामिल होकर क्रमशः यही समिति सम्पूर्ण गाँव की समिति तथा पंचायत बन जायगी। ग्राम-समितियों के सघटन की इकाई बन जाने पर कुछ गाँव मिलाकर सर्किल सोसाइटी और कुछ सर्किल सोसाइटियां मिलाकर एक यूनियन के रूप मे, इस तरह क्रमशः ऊपर की कमेटियो का संघटन किया जा सकता है। इन समितियो का विधान तथा नियम क्या होगा, आज मै क्या बताऊँ? यह तो जब इस प्रकार का सघटन वास्तविक क्षेत्र में किया जायगा तो स्थानीय परिस्थिति तथा जनता की मानसिक स्थिति देखकर ही किया जायगा। मैं सिर्फ इसका निर्देश करना चाहता हूँ कि जो भी विधान बने वह ऐसा होना चाहिए कि हरेक समिति अपनी आन्तरिक व्यवस्था के लिए स्वतन्त्र हो। ऊपर की कमेटिया केवल सहायक रूप मे होंगी। ऐसा न करने से हमारा स्वावलम्बन का आदर्श सफल नही होगा।

धीरे-धीरे उक्त कमेटियों को अपनी-अपनी योग्यतानुसार विभिन्न कार्यक्रम का भार देते रहना चाहिए जिससे कुछ साल मे समस्त कार्यक्रम की जिम्मेदारी वे ले सके। समितियो का काम समस्त सामाजिक, सार्वजनिक प्रोग्राम तथा उन उद्योगो का संचालन है, जिनके लिए सम्मिलित संचालन की आवश्यकता हो या जिनको चलाने के लिए साधन की आवश्यकता तथा खतरे की संभावना हो, या जिन्हें आम तौर से व्यक्तिगत रूप से चलाना वाछनीय न हो सके। यानी मेरे पहले बताये उद्योगो की श्रेणियों मे, जिन्हे मैने ग्राम-उद्योग कहा है, उनका संचालन समितियों के जिम्मे रहेगा। इनमे कौन उद्योग या प्रोग्राम ग्राम-समिति, कौन सर्किल सोसाइटी तथा कौन यूनियन आदि के मातहत होगा, इसका निर्णय इस समय नहीं किया

जा सकता। काम की व्यापकता तथा विभिन्न समितियों के सामर्थ्य के अन्दाज से उनका श्रेणी-विभाग करना होगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि उन उद्योगों की व्यवस्था किस प्रकार की होगी जिन्हे मैने 'कुटुम्ब उद्योग' कहा है। उन्हे तो व्यक्तिगत परिवार स्वतन्त्र रूप से चलायेगे। फिर क्या वे सघटन-हीन हालत मे ही रहेगे? मेरे ख्याल से उनमे अलग-अलग उद्योग चलाने वालों की अलग-अलग समितियाँ वन जायँ तो अच्छा होगा। जैसे लोहार-बढई समिति, कागजी समिति, तेलघानी समिति आदि। ऐसा विधान बनाया जा सकता है जिससे विभिन्न सर्किल सोसाइटियों के समान ये समितियाँ भी केन्द्रीय यूनियन मे शामिल हो सके। हाँ, अगर चाहो तो इतनी शर्त रख सकते हो कि इस प्रकार की शुद्ध उद्योग-समितियाँ यूनियन मे केवल उद्योग-सम्बन्धी प्रश्नों पर ही अपनी राय दे सके। समितियों के खर्च के लिए सदस्यों से उनसे उत्पादित सामान का कुछ अश चन्दा रूप मे लिया जा सकता है। इतने से मै ग्रामों मे किस प्रकार का सघटन कायम करने की कल्पना करता हूँ, इसका अन्दाज मिल गया होगा। वस्तुतः इन बातों को अधिक ब्योरेवार बताना इन पत्रों मे सम्भव नही है। वास्तविक क्षेत्र में सही योजना बनाते समय ऊपर लिखे सकेत के अनुसार सघटन की रूप-रेखा, विधान और नियमादि का ब्यौरा निश्चित किया जा सकेगा।

मैने पिछले एक पत्र मे पचायत की मार्फत गाव का झगड़ा तय करने के लिए जल्दी न करने की सलाह दी थी। समिति मे जब हम उपर्युक्त संघटन सफलता के साथ कर लेगे तो गाव के झगडे आदि अनुशासन का प्रोग्राम ले सकते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि अगर हमारी योजना पूरी होने मे दस साल लग जायँ तो दस साल तक हम गाव के अनुशासन-सम्बन्धी प्रश्नों की उपेक्षा ही करते रहे। जिन गावों मे समिति पर जनता का विश्वास होने लगेगा उनमें समिति द्वारा झगड़ा आदि का निबटारा थोड़ा-बहुत तो होगा ही।

जब किसी व्यक्ति या संस्था पर जनता का विश्वास होने लगता है तो लोग स्वभावतः अपने मामलों को उसके पास ले आते हैं और उसके फैसलों का सम्मान करते हैं। इस प्रकार जैसे जैसे हमारा संघटन मज़बूत होता जायगा वैसे-वैसे अनुशासन-सम्बन्धी काम समितियों पर अपने आप आता जायगा। इस कार्यक्रम की स्वाभाविक प्रगति को हमारे कार्यकर्त्ता अपनी सहायता से आगे भी बढ़ा देंगे। मेरा कहना केवल यह था कि आज जैसे गाँव मे पहुँचते ही ग्राम-सेवक पंचायत के झगड़ों को कार्यक्रम के रूप मे अपने हाथ मे लेने लगते हैं वह तरीका गलत हैं। सयोजित रूप से अनुशासन-सम्बन्धी व्यापक प्रश्न को हम ग्राम-संघटन का ढाचा पूर्ण और मज़बूत होने पर ही उठा सकते हैं। ऐसे समय हमारा काम आसान भी होगा क्योंकि तब तक समितियां अपने नैतिक बल से इस दिशा में काफी प्रगति किये हुए रहेंगी और गावो का सही और स्वाभाविक नेतृत्व भी प्राकृतिक हुआ रहेगा। हा, गाव की समस्या का एक बड़ा अंश रह गया। वह है देहातियो के कर्ज़ का प्रश्न। हमारे देहाती कितने कर्ज़ के भार से लदे हुए हैं, इसका अन्दाज़ तो करीब करीब सभी को है। यद्यपि इसका हिसाब जोड़ना संभव नहीं है तथापि लोगो ने जो अन्दाज़ लगाया है वह लगभग १२०० करोड़ रुपये का है। इसके अलावा अरबो रुपयों का लेन-देन तो स्त्रिया पर्दे के भीतर-भीतर करती रहती हैं, इनका तो कोई हिसाब ही नहीं लगा सकता है। लेकिन यह प्रश्न इतना जटिल और साधन-सापेक्ष्य है कि इसे हम अभी कर ही नहीं सकते हैं। इसलिए मैंने इस प्रश्न को जानकर ही छोड़ दिया है। इसका हल तो राष्ट्रीय सरकार ही कर सकती है। अतः हमारे कार्यकर्त्ताओं को सावधान कर देना चाहिए कि वे आवेश मे आकर इस मसले मे फँस न जायँ।

मै समझता हूँ, कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम की संस्थाओं के द्वारा जितना काम हम कर सकते हैं उसके लिए मैं अपना विचार

प्रगट कर चुका हूँ। मैने जो कुछ कहा है वह अपने अनुभव के आधार पर ही कहा है। अतः शास्त्रीय दृष्टि से शायद मेरी राय ठीक न सावित हो। लेकिन मेरे-जैसा देहाती सेवक शास्त्रों को कहा तक जान सकता है। मैने जो विचार समस्याओं के समाधानों के लिए किया है वह परिस्थिति तथा साधन के अनुसार ही किया है। लेकिन तुम लोग शास्त्रीय कसौटी पर इनकी परीक्षा तो कर ही सकते हो और इसमे जो कुछ सार हो उन्हें भी अलग कर सकते हो।

अब यह प्रश्न उठता है कि अगर कोई छोटी स्वतन्त्र सस्था हो तो क्या करेंगे? उनके लिए भी मेरी सलाह है कि वे इसी प्रकार की योजना वनाये। हाँ, स्थानीय परिस्थिति के अनुसार प्रोग्राम के क्रम मे अन्तर कर सकते हैं। लेकिन दृष्टिकोण और आदर्श तो ऊपर वताये अनुसार ही हो। आखिर मैने तुमको कोई योजना तो नही भेजी है। योजना बनाने मे किन-किन वातों का ध्यान देना चाहिए उन पर विचार मात्र किया है और मैने जो विचार किये हैं, वे दोनों प्रकार की सस्थाओं के लिए लागू है। अगर सरकार जनता की हो तो इसमे अन्तर अवश्य होगा। लेकिन वह अन्तर भी कार्यक्रमों के सिलसिले और समूह मे ही होगा, दृष्टिकोण और सिद्धान्त मे नहीं। उद्देश्य तो वही ग्रामवासी को स्वावलम्बी वनने की ओर ले जाना होगा। राष्ट्रीय सरकार कायम हो जाने पर ग्राम-सुधार योजना किस प्रकार हो, उसकी आज एक कल्पना मात्र कर सकते हैं। असली विचार तो उस समय की परिस्थिति को देख कर ही हो सकता है। फिर भी कोशिश करूँगा कि मै अपनी कल्पना का नक्शा तुमको भी भेजूँ। लेकिन उसे फिर कभी लिखूगा। आज पत्र यहाँ ही खत्म करता हूँ।

[८]

प्रान्त के देहातों की हालत

२५—४—४४

पहली तारीख को मैने तुमको एक पत्र लिखा था। मिला होगा। आज से हमको बाहर सोने को मिलता है। यह पत्र मै बाहर बैठकर ही लिख रहा हूँ। डेढ साल से ऊपर हो गये रात को आसमान का तारा कैसा होता है, नही देखा था। आज नज़रबन्दो के लिए एक खास त्यौहार का दिन है। सभी बैरको के अड़गड़े गुलज़ार दिखाई देते है। इधर गर्मी के कारण रात को पढना-लिखना बन्द-सा हो गया था। अब रात ही पढने लिखने के लिए खास समय हो गया। मैने भी सोचा ऐसा अच्छा मौका क्यो छोड़ा जाय, पत्र ही लिख डालूँ लेकिन समझ मे नही आ रहा है, क्या लिखूँ। पिछले पत्र मे मैने वादा किया था कि सरकार-द्वारा किस प्रकार से ग्राम-सुधार का काम किया जा सकता है, इसपर मैं तुमको अपने विचार लिखूँगा। सन् १९२१ से आज तक का सारा अनुभव लिख डाला। उन अनुभवों के आधार पर मैने यह भी लिख भेजा कि हमको ग्राम-सुधार की योजना किस आदर्श, दृष्टिकोण तथा प्रकार से बनानी चाहिए। इस तरह पिछले पत्रो मे मुझको जितना कहना था, कह डाला। मैने कहा था कि ग्राम-सुधार का काम दो ज़रियो से किया जा सकता है। एक अपनी सस्था द्वारा और दूसरा राष्ट्रीय सरकार द्वारा। मैने सरकार के साथ राष्ट्रीय जान कर ही जोड़ा है क्योकि आज जैसी विदेशी सरकार द्वारा ग्राम-सुधार योजना कैसे चल सकती है? विदेशी सरकार का हित ग्राम-उजाड़ मे ही पूरा हो सकता है; वह ग्राम-सुधार कैसे कर सकती है। पजाब मे मि० ब्रायेन अग्रेज़ कर्मचारी थे। उनमे ग्राम-सुधार का जोश था। एक सरकारी उच्च कर्मचारी, उसपर अँग्रेज अतः वे जितना चाहते थे उतना साधन सरकार से मिल सकता था।

फिर भी आखिर उनको कहना पड़ा, कि ग्राम-सुधार का काम सरकारी महकमा और अफसरों-द्वारा नहीं हो सकता। इसका मतलब यह नहीं है किसी भी सरकार द्वारा ही नहीं हो सकता। चाहे वह ब्रायेन साहब हो चाहे कोई साहब हो, जब तक सरकार का हित और जनता का हित एक दूसरे के विरोधी है तब तक सरकारी महकमे कहने को ग्राम-सुधार के महकमे रहेंगे लेकिन असलियत में वे ग्राम-विगाड़ योजना के एजेंट का ही काम करेंगे। उनकी योजना बड़े-बड़े सैद्धान्तिक शब्दों से भर-पूर रहेगी लेकिन उनका कार्यक्रम हमेशा देहाती जनों को उत्तरोत्तर पशु बनाने का ही रहेगा। लेकिन कुछ लोगों का खयाल ही ऐसा हो गया है कि किसी भी सरकारी महकमा द्वारा ग्राम-सुधार नहीं हो सकता; वह सही नहीं है। अगर ऐसा होता तो तुर्की, रूस, और कनाडा के कार्यक्रम सफल न हो पाते। सवाल सरकारी और गैर-सरकारी का नहीं है। सवाल यह है कि जो लोग सुधार-कार्य करेंगे उनका ध्येय क्या है, उनका आदर्श क्या है और उनका हित किसमें है। स्वभावतः राष्ट्रीय सरकार का उद्देश्य और आदर्श नीतिपूर्ण होता है और उसका हित जनता के हित में ही है। फिर जब सरकार ही जनता की होगी तो उसके कर्मचारियों को जनहित-व्रती ही होना ही पड़ेगा।

ग्राम-सुधार बनाम सरकार

मैं अब तक तुमको जो कुछ लिखता रहा वह सब अपनी संस्थाओं द्वारा काम करने की बात थी। उतना लिखना मेरे लिए आसान था क्योंकि इतने साल तक मैंने जो कुछ देखा, जो कुछ किया, या जो कुछ सोचा सब अपनी संस्था के अन्तर्गत रह कर ही किया। इसलिए मेरा सारा अनुभव संस्था के साधन के मुताबिक काम करने का ही है। कांग्रेस सरकार के ज़माने में सरकारी महकमा की मार्फत जरूर कुछ प्रयोग किया था लेकिन पिछले दिनों जो कांग्रेस सरकार थी वह कुछ राष्ट्रीय सरकार तो थी नहीं। उस समय हमारे मन्त्रियों का इतना

अधिकार ही कहाँ था कि वे जन-हित की दृष्टि से ही सारी व्यवस्था करते। अतः उस अनुभव से मुझको लाभ ज़रूर हुआ था फिर भी एक सही जनता की सरकार क्या कर सकती है उसका पूरा पूरा अनुभव नही मिल सकता था। लेकिन साधारण रूप से देहाती समस्याओं को मैने जैसा समझा है और ग्रामीण जनता को जितना पहिचान सका हूँ उसके आधार पर हम अपनी सरकार-द्वारा किस प्रकार से और क्या-क्या कर सकते हैं उसकी कल्पना मात्र हो सकती हैं। इस पत्र में मै उसी की कुछ झलक देने की चेष्टा करूँगा। इस सिलसिले मे एक बात ध्यान मे रखनी होगी कि मै जो कल्पना करूँगा वह अपने उद्देश्य, दृष्टिकोण तथा सिद्धान्त के अनुसार ही होगी। और तुम को मालूम ही है कि मै उसी मार्ग से चलना चाहता हूँ जो मेरे विचार से बापू का बताया हुआ मार्ग है और जिसका ज़िक्र मैने जेल से प्रथम पत्र मे किया था। अतः मै जिस प्रकार योजना बनाने का विचार करता हूँ उसका मूल होगा ग्राम-स्वावलम्बन।

यह सच है कि हमारे भविष्य की राष्ट्रीय सरकार प्रारम्भ में किस प्रकार की होगी, यह हमको पता नही है। उसकी रूपरेखा तो भारतीय जनता तय करेगी। लेकिन विधान चाहे जिस प्रकार का बने यह तो तय ही है कि हमारी सरकार का रूप कुछ संघराष्ट्र के तरीके का होगा। उसमे हर एक प्रान्त अपनी-अपनी आन्तरिक व्यवस्था करेगा। हमारा भी आदर्श तो यही है कि जहाँ तक हो सके संघटन के नीचे की इकाई अपनी भीतरी व्यवस्था के लिए स्वतंत्र हो। अतः हम जो ग्राम-सुधार योजना की कल्पना करेंगे वह किसी एक प्रान्त के लिए होगी। दूसरे प्रान्तों की बातों की जानकारी मुझको है ही क्या? अतः मेरे लिए अपने प्रान्त की स्थिति पर विचार करना आसान होगा। मैने पहले ही कहा है किसी योजना बनाने से पहले हमको जिस क्षेत्र के प्रोग्राम बनाना है उसकी मौजूदा स्थिति का अध्ययन करना

संघटन के दो भाग

होगा। फिर हमको यह सोचना होगा कि हम कितने साल की योजना बनावें। योजना का समय तय करने के लिए हमको यह तय करना होगा कि हमारा ध्येय क्या है ? फिर हमको इस बात पर विचार करना होगा कि हमारा मार्ग क्या होगा और संघटन का कल-पुरज़ा किस प्रकार का हो। इस संघटन के दो विभाग होंगे (१) सरकारी व्यवस्था-सम्बन्धी और (२) देहाती समिति आदि का। एक निरीक्षण तथा सहायता के लिए, और दूसरा संघटन तथा व्यवस्था के लिए होगा।

मै लिख चुका हूँ कि सरकार-द्वारा भी जो ग्राम सुधार का काम होगा उसका सिद्धान्त तथा तरीका वही होगा जो हम अपनी संस्थाओं मे वर्तते है। केवल फर्क यह होगा कि जिन समस्याओ को हमने अपने साधन के बाहर कह कर छोड दिया है उन्हे भी इस योजना मे सम्मिलित करना होगा और हमने जैसे मूल उद्योग चर्खा को लिया है उसी प्रकार सरकारी योजना मे मूल उद्योग खेती को लेकर बाकी उद्योगों को उसी से सम्बन्धित करना होगा। उद्योग के सिलसिले से एक और बात का ध्यान होना ज़रूरी है। हमको पहले ही तय करना होगा कि किस उद्योग को विकेन्द्रित ग्राम-उद्योग के रूप मे चलाया जाय और किस उद्योग को केन्द्रीय उद्योग के रूप मे चलाना होगा। इनकी सूची बताना कठिन है। समय आने पर उन्हे तय करना होगा। इस समय कुछ सिद्धान्तों पर विचार करना काफी होगा।

पिछले एक पत्र मे मैने ग्राम-उद्योगो को तीन श्रेणियो मे बाँटा है और इस बँटवारे मे एक सिद्धान्त निश्चित किया था। ग्राम-उद्योग तथा केन्द्रीय उद्योग के बारे मे भी हमे उसी तरह के सिद्धान्त के आधार पर निश्चय करना होगा। मै शुरू से ही कहता रहा कि जहाँ तक सम्भव हो हमको आवश्यक सामान ग्राम-उद्योग के ज़रिये यानी विकेन्द्रित प्रणाली से प्राप्त करने की चेष्टा करनी है। लेकिन कुछ उद्योग ऐसे हैं जिनके लिए प्रकृति ने हमको कच्चा माल केन्द्रित रूप से ही दिया है या जिनके उत्पादन

मे दूर दूर के साधनो की आवश्यकता हो या जिनकी उत्पत्ति मे खतरा ज्यादा हो या जिनको उत्पत्ति के लिए इतनी ज्यादा शक्ति की आवश्यकता हो जो मनुष्यों या पशुओ के परिश्रम से प्राप्त होना सम्भव नही है, उन्हे हमेशा केन्द्रीय उद्योगो के रूप मे, जन-सेवा के सिद्धान्त से, चलाना होगा। कुछ ऐसे उद्योगों के उदाहरण के लिए

मौलिक आधार

खानो का काम, लोहे और इस्पात का काम, रेल तार का काम, जहाज़ मोटर आदि के काम का उल्लेख किया जा सकता है। इसके अलावा अधिकाश दैनिक आवश्यकता के सामान तो ग्राम-उद्योग से ही प्राप्त हो सकते है। ग्राम-उद्योगो के प्रकार तथा कुछ मुख्य उद्योगों की सूची मै पहले पत्र मे लिख चुका हूँ। हम इस समय केवल ग्राम-सुधार योजना पर विचार कर रहे हैं। अतः केन्द्रीय उद्योग हमारे विचार के बाहर की चीज़ है। हाँ, उनमे कोई ऐसा उद्योग हो, जिसपर देहाती कार्यक्रम का कुछ आधार हो तो उसपर थोड़ा विचार कर लिया जायगा।

मैने कहा है कि सुधार-योजना बनाने से पहले हमको अपने गाँव की मौजूदा स्थिति जान लेनी चाहिए। जिस प्रान्त की योजना बनानी है उसका क्षेत्रफल क्या है, आबादी कितनी और किस प्रकार की है, लोगों के पेशे क्या है, औसत आमदनी क्या है, उस आमदनी का खर्च किस प्रकार का है, उसका कितना खाते हैं और दूसरे काम मे कितना लगाते हैं, लोगों पर कर्ज़ा है तो कितना है, मुख्य उद्योग खेती का क्या हाल है, कितनी खेती लायक ज़मीन है, कितने मे खेती होती है, खेती-सुधार मे क्या-क्या बाधाएँ हैं—साधन की कमी के कारण या जानकारी की कमी के कारण या कानूनी बाधा के कारण; पशुओं की क्या तादाद है, उनकी हालत

जाँच और जानकारी

क्या है, चरागाह कितना है, जंगल कितना है, उनमें उद्योग के लिए क्या क्या सामान मिल सकता

है, इनमे से कुछ बातो की तो समय-समय पर जाँच पहले से होती रहती है, कुछ चीजो की जाँच राष्ट्रीय सरकार को नये सिरे से करना है। इसके मतलब यह नहीं है कि राष्ट्रीय सरकार कायम होते ही केवल जाँच ही करती रहे और सम्पूर्ण स्थिति की जाँच होने पर ही कोई काम शुरू करे। शुरू मे तो जितनी बातो की जानकारी है उसी के आधार पर काम शुरू करना होगा। इसके अलावा नई सरकार को पिछले महकमो को देखना होगा कि वे कितना और किस दृष्टिकोण से काम करते है। उन्हे सुधारा जा सकता है या बदलना जरूरी है। नई परिस्थिति मे नये-नये दृष्टिकोण के लिए तथा नई आवश्यकताओं के लिए जो कार्यकर्त्ता अब तक काम करते थे उन्ही से काम चल जायगा या दूसरे लोगों को तैयार करना होगा।

यहाँ जेल मे बैठ कर सयुक्तप्रान्त की आज की स्थिति ऊपर लिखी बातो पर क्या है, ठीक-ठीक बताना मुश्किल है। फिर भी जितना मालूम है उस पर विचार कर लेना ही ठीक होगा। बाकी बातों की जाँच तो जब अपनी सरकार होगी तो आसानी से हो जायगी। आज अगर कुछ मुख्य बातो की बाबत ठीक-ठीक स्थिति मालूम कर ले तो हम किस तरह की योजना बनावे, यह सोचना हमारे लिए आसान हो जायगा। अतः मै नीचे अपने प्रान्त की हालत की कुछ मुख्य बातों पर प्रकाश डालने की कोशिश करता हूँ।

क्षेत्रफल तथा आबादी—प्रान्त का क्षेत्रफल १०६२४७ वर्गमील है और आबादी ५,५०,२०,६१७ है यानी प्रति वर्गमील की आबादी ५१८ है। इस आबादी मे ४४५ शहरो की ६८,५५,२६८ और १०२३८८ ग्रामों की ४,८१,६५,३४६ है। अर्थात् गाँव की आबादी कुल आबादी की ८७ सैकड़ा है। हमको इसी ८७ प्रतिशत आबादी के भविष्य की बात सोचना है। इस प्रान्त के गावों की आबादी मे प्रत्येक १००० पुरुष मे ६५४ स्त्रियाँ हैं। इस हिसाब से औसत प्रति गाँव की आबादी ४७० पड़ती है। प्रति गाँव की जन-सख्या का बँटवारा

इस प्रकार है :—

अवस्था	कुल	स्त्री	पुरुष
बूढे (६० से ऊपर)	२६	१५	१४
प्रौढ (१६ वर्ष से ६० तक)	२५३	१२४	१२६
लड़के (७ वर्ष से १५ तक)	१२२	६०	६२
बच्चे (जन्म से ६ तक)	६६	३२	३४

तुमको मालूम होगा कि हमारा प्रान्त खेती-प्रधान प्रान्त है। सरकारी रिपोटो से मालूम होगा कि इस प्रान्त की कुल आबादी की ७३ सैकड़ा खेती से गुजारी करती है। यानी देहाती जनसंख्या का साढ़े तिरासी सैकड़ा लोग खेती पर भरोसा करते हैं। अगर ५ व्यक्ति का परिवार माना जाय तो प्रति गाँव की बस्ती ६४ परिवारों की होती है। इसमे साढे अठत्तर परिवार खेती करते हैं। बाकी साढ़े तेरह परिवार क्या करते हैं, इसका हिसाब ठीक-ठीक मै नही दे सकता। शायद किसी ने इसका हिसाब लगाया भी न होगा। मै समझता हूँ, इनमे अधिक से अधिक २ या ३ परिवार कुछ उपयोगी काम करते होंगे और बाकी बैठ कर साढे अठत्तर किसान परिवारों पर बोझ बने हुए हैं। जो लोग उपयोगी काम मे लगे हैं उनमे कुछ तो बाहर नाई, धोबी आदि सेवा का काम करते हैं और बाकी कुछ न कुछ उद्योग मे लगे हुए हैं। लेकिन उद्योग के नाम से गाँव में है ही क्या ? प्राचीन गृह-उद्योग मे जो कुछ थोड़ा बहुत जिन्दा रह गया है वह सब बाज़ार की सहूलियत के कारण शहर और कस्बों मे ही केन्द्रित हो गया है। यहाँ तक कि सार्वजनिक आवश्यकता का उद्योग बुनाई भी कस्बों और शहरों मे ही रह गई है। गाँवों मे जो बुनकर थे उनमे अधिकांश खेती मे चले गये हैं या खेती के साथ कुछ लोग अवेर-सवेर कभी-कभी बुनाई भी कर लेते हैं। इसके अलावा देहातों मे ग्रामीण आवश्यकता के लिए कहीं-कही कुछ लोहार, बढ़ई, कुम्हार, चर्मकार बसे हुए दीख

पड़ते हैं। लेकिन उनके काम को हम उद्योग न कह कर किसानों की सेवा कहे तो शायद अधिक सही होगा। कही कही एक आध स्थान पर प्राचीन उद्योग का ध्वसावशेष रह गया है। लेकिन उनकी सख्या इतनी थोड़ी है कि उनसे प्रति गॉव के हिसाब मे कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

आमदनी—वस्तुतः भारत के लोगों की औसत आमदनी क्या है, इसका हिसाब अर्थशास्त्री अब तक शायद ही ठीक से कर पाये हैं। इस मामले मे भिन्न-भिन्न पडितों का भिन्न-भिन्न मत है। कोई ३०) सालाना कहता है तो कोई ७०) तक बताता है। इस तरह विभिन्न अर्थशास्त्रियों की राय के अनुसार हमारी औसत आमदनी ३०) से ७०) प्रति व्यक्ति प्रति व र्ष है। लेकिन यह आमदनी भारत की सारी आबादी का औसत है। यह तो तुमको मालूम है कि आज के केन्द्र-वाद के जमाने मे धन भी प्रधानतः शहरों मे ही केन्द्रित है। गाँव के किसी को कुछ आमदनी होने भी लगे तो वे गाँव छोड़ कर शहर मे आकर बसने लगते हैं। इसलिए उपर्युक्त हिसाब से गाव की आमदनी का कुछ भी अन्दाज़ नही कर सकोगी। मुझको मालूम नहीं; किसी ने भारत के गावों का अलग हिसाब लगाया है या नही। हाँ, सन् १९३१ मे एक सज्जन ने एक हिसाब अन्दाज़ से निकाला था। इनका कहना है कि खेती करने वालों की प्रति व्यक्ति आमदनी ४२) सालाना है। लेकिन उनके हिसाब से भी ठीक अन्दाज़ा लगाना कठिन है। प्रथमतः उन्होने खेती की कुल उत्पत्ति पर अपना आधार रक्खा है, उनमे से कितना हिस्सा गाँवो के किसानों के पास रहता है और कितना शहर के व्यापारी महाजन आदि के पास चला जाता है, कितने हिस्से उन जमीदारों के हैं जो शहरों में रहते हैं। फिर यह आमदनी उनकी है जो खेती करते है। जो १०-१२ परिवार ग्रामों मे वैसे ही बेकार रहते हैं वे भी इसी आमदनी मे हिस्सा बटाते हैं। इसके उपरान्त उन्होंने उत्पत्ति का बॅटवारा उतनी ही आबादी मे किया जो १९२१ की थी।

दस साल मे जो आबादी बढ़ी उसका हिसाब नही किया गया। इस प्रकार अगर सही स्थिति की जाँच की जाय तो आमदनी और कितनी कम हो जायगी, इसका अन्दाज़ तुम खुद कर सकती हो।

आज ही मै लखनऊ के हिन्दुस्थान नामक एक साप्ताहिक पत्र मे (२१ अप्रैल सन् १९४४) श्री राधाकमल मुखर्जी का एक लेख पढ रहा था। उसमे उन्होंने कहा है भारत के खेतिहर परिवारो की औसत आमदनी ९०) प्रति परिवार प्रतिवर्ष है। श्री राधाकमल मुखर्जी का हिसाब काफी सही माना जा सकता है। उन्होंने कई वर्ष तक और कई बार भारत के देहातो की आर्थिक परिस्थितियों की जाँच खुद की है। अतः उनका कहना प्रामाणिक है। ५ व्यक्ति का परिवार मान कर उनके हिसाब से प्रति व्यक्ति आमदनी १८) होती है। यह आमदनी खेतिहरों की है; अगर इसमे बेकार आबादी शामिल की जाय तो और कम हो जायगी। मध्य-प्रान्त की कांग्रेस सरकार ने श्री कुमारप्पा की प्रधानता मे एक कमेटी मुकर्रर की थी। उन लोगों ने ६०६ गाँवों की सम्पूर्ण जाँच की थी। उनका कहना है कि मध्यप्रान्त के गाँवों की औसत सालाना आमदनी लगभग १२) है। अगर यह मान ले कि मध्य-प्रान्त हमारे सूबे से गरीब है और श्री कुमाराप्पा तथा श्री मुखर्जी के रिपोर्टों पर विचार करे तो हम आसानी से यह मान सकते हैं कि युक्तप्रान्त की ग्रामीण जनता की औसत आमदनी १५) वार्षिक प्रति व्यक्ति है।

रहन-सहन—अब देखना यह है कि इस १५) मे वे गुज़र किस तरह करते हैं? क्या खाते है, क्या पहनते है और कैसे घर मे रहते है? लेकिन इसमे देखना ही क्या है? मकान की बात तो पूछो मत, एक लम्बी दीवार; उस पर फूस का या ईख के सूखे पत्तो का छाजन, सो भी चारों ओर चूता रहता है। दरवाजा बाँस की कइनों का एक टट्टर। फैजाबाद के देहातो मे घूमने की कहानी मैने तुमको लिखी थी; उन पत्रों मे इन घरों का बयान काफी किया था। अतः उन्हे फिर दोहराना

बेकार है और यह दुःख की कहानी जितनी कम कही जाय उतना ही अच्छा। और वस्त्र! वह तो नही के बराबर है। गाव मे किस तरह लोग जाड़े मे रात भर आग के सामने बैठकर और दिन मे धूप खाकर दिन काटते है उसका हाल पहले लिख चुका हूँ। भारत के औसत कपड़े की खपत १३ गज़ मे से शहर वालो का हिस्सा निकाल देने से गाँव की औसत शायद ८ या ९ गज़ प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष की हो और इस प्रान्त की हालत इससे कुछ भिन्न तो है नही। अब रह गया भोजन। जहाँ एक व्यक्ति की कुल सालाना आमदानी १५) मात्र है वहा के लोगों के भोजन का क्या हिसाब लगाया जाय। तुम तो गृहस्थी चलाने वाली हो। सुनते हैं तुम लोग (स्त्री जाति) घर को इस तरह चलाती हो कि दूसरो को पता नही चलता। लेकिन तुम लोग भी इसका अन्दाज़ नही कर सकती कि इतने में परिवार का भोजन किस तरह हो सकता है। अगर ३-४ रुपये अन्य आवश्यकताओं मे खर्च हो तो भोजन के लिए १) मासिक भी तो नहीं बचता है। हमारे पढे-लिखे भाई-बहिन गाँव की गन्दगी देखकर कहने लगते हैं कि इस गन्दगी के बीच रहकर लोग बीमार होकर मर क्यों नही जाते और गाँव के लोग जिन्दा रहते हैं इसी पर आश्चर्य होता है। अगर उन शिक्षित भाइयों को भोजन की स्थिति मालूम हो जाय तो मारे डर के गाँव को जाना ही नही चाहेगे। क्योंकि उनको विश्वास ही नही होगा कि गाव मे जो लोग दीख पडते हैं वे जीवित मनुष्य हैं। उनको यह शक होगा कि ये कहीं मृत ग्रामवासी की प्रेतात्मा तो नहीं हैं। क्योंकि वे जीवित मनुष्य होते तो क्या खाकर जिन्दा रहते? भोजन-सम्बन्धी स्थिति, जो रिपोर्टों मे दिखाई पडती है, गाव की स्थिति नही है क्योंकि रिपोर्टों मे हमेशा जितना प्राप्त भोजन है उसे कुल आबादी से तकसीम किया जाता है। शहर और गाव का अनुपात अलग कहाँ रहता है। इसलिए भी समस्या की भीषणता मालूम नहीं पड़ती। वैसे गाना गाने के लिए ही देहात "सुजला सुफलाँ शस्य श्यामला" है।

वास्तविक स्थिति तो है—"पानी पानी हर हर पानी। चारों ओर पानी। लेकिन पीने को बून्द भर भी नही।" जैसा श्री डवलू० एस० ब्लंट नाम के एक अंग्रेज महाशय बहुत साल पहले, जब कि गाँव मे खाना आज से कही अधिक था, यहाँ की हालत देखकर बोल उठे थे—"हम ने अपनी रैय्यत को हिंसा से, मृत्य-भय से बचाया लेकिन भूख से मृत्यु भय को बढाया ही है।" मालूम नहीं उक्त महाशय की आत्मा आज क्या कह रही होगी। आखिर हिंसा से कितने आदमी मरते हैं? कहीं एकाध फौज़दारी हो जाय तो सनसनी फैल जाती है। लेकिन भूखे करोड़ो की मौत हो जाती है और पता ही नहीं चलता है। इसीलिए बापू ने अंग्रेज़ों से कहा है—"अगर कोई चार्ज लेने वाला नही है तो तुम अराजकता के हाथ मुल्क को छोड़ चले जाओ। वह स्थिति हमारे लिए आज से कही अच्छी होगी।"

अगर सारे भारत के अनाज का हिसाब देखा जाय तो हमारी कुल उत्पत्ति ६—७ करोड़ टन के करीब होगी। इसमे जितना विदेश चला जाता है, जितना बीज के लिए रक्खा जाता है, जितना यातायात मे नष्ट होता है, जितना पशुओं के लिए अलग किया जाता है उनको घटा दिया जाय तो ५ करोड़ टन से भी कम बचेगा।

देहात के लिए अन्न और दूध का औसत

अगर कम से कम आवश्यकता का हिसाब जोड़ा जाय तो हमको ६ करोड़ टन के करीब चाहिए। इस कमी मे से शहर का अनुपात निकालने पर देहात के लिए आधा भी भोजन नही बचता है। हमारे प्रान्त की भी यही हालत है। दूध-घी का हिसाब भी इसी तरह का है। तुम लोगों को ख्याल हैं कि पंजाब और युक्तप्रान्त मे लोग घी-दूध खूब खाते पीते हैं। लेकिन स्थिति कुछ और है। युक्तप्रान्त मे १० करोड़ मन दूध होता है जिसमे ५० लाख मन के करीब तो घी-दूध मे बाहर चला जाता है। अतः ९॥ करोड़ मन दूध साढे पाँच करोड़ आबादी के लिए बचता है। यानी १ मन २६ सेर सालाना। अगर सब को बराबर मिले तो

हर व्यक्ति का ३ छँटाक होता है। उसी मे से चाहे पित्रो चाहे घी वनाओ, चाहे और कुछ। लेकिन तुमको मालूम है कि इसका ७५ सैकड़ा शहर मे ही दूध या घी के रूप मे खर्च हो जाता है। इस तरह देहात मे मुश्किल से १ छटाँक दूध प्रति व्यक्ति के लिए बचता है। इतने मे तुमको हमारे प्रान्त के देहात की आमदनी, और वे क्या खाते हैं, आदि की स्थिति का अन्दाज़ हो गया होगा।

घर-द्वार -- पिछले पत्र मे मैने देहात के रास्तों का जिक्र किया था; शहरी भाई इन रास्तों के मारे गॉव जाना ही नही पसन्द करते हैं। दूसरों की वात छोड दो; हमारे काग्रेसी भाई, जिनका दावा देहातियो की सेवा करने का है, सड़कों के न होने से गाँवों मे जाने मे घवड़ाते हैं। रणीवाँ जाने और देखने के इच्छुक होने पर भी जव लोग रास्ते की वात सुनते थे, तो वहाँ जाना स्थगित कर देते थे। इधर जव हम लोगो ने सड़क आदि की थोड़ी सहूलियत कर दी थी तव लोग कुछ-कुछ आने लगे थे। लेकिन गॉव की हालत अगर देखी जाय तो रास्ते की काठनाई उसके आगे कोई चीज ही नहीं है। और हो भी कैसे? जहाँ आमदनी का यह हाल है, वहाँ घर वनावे कहाँ से? एक दो मुखिया, नम्वरदार को छोड़ किसी के पास ठिकाने का घर नहीं है। थोड़ी सी मिट्टी की दीवार और ऊपर से घास या ईख के पत्ते का छाजन। अधिकाश घर ऐसे हैं। वे घर भी इतने चूते हैं कि वरसात मे रात भर जागकर ही काटनी पड़ती है। पश्चिमी ज़िलो मे कुछ घर ज़रूर इससे अच्छे हे। लेकिन वे भी मिट्टी के ढेर ही हैं। पशुओं को घर के अन्दर रखने की वात मै पहले लिख चुका हूँ। घरो मे कही भी किसी किस्म के रोशनदान न होने पर इस प्रकार पशुओ का वाँधना अस्वास्थ्यकर है, सो तुम समझ सकती हो। उतने छोटे घर के एक कोने पर ही खाना पकाने का चूल्हा भी होता है। दूसरी निकलने की जगह न होने से घर भर मे धुआँ भर जाता है। मवेशियों की गन्दगी के साथ जव इस धुआँ का

योग होता है तो कैसा दुःखदायी अनुभव होता है, इसे भुक्तभोगी ही जान सकते हैं। तिसपर जब मिट्टी की खुली ढिबरी से निकले मिट्टी के तेल के धुएँ की दुर्गन्ध उसमे शामिल हो जाती है तो फिर क्या पूछना। गनीमत इतनी ही है कि गरीबी के कारण अधिकाश घरों मे दिया ही नही जलता है। लोग सारी जिन्दगी अन्धकार मे ही बिताते हैं!

घर के आगे-पीछे तथा अगल-बगल की गलियों की हालत देखो तो और परीशान हो जाओगी। मैने पहले कहा है कि घर बनाने का तरीका ऐसा है कि ज़मीन का सतह कभी समतल नही रह पाती है। स्वाभाविक ढाल न होने से नाबदान का पानी निकल नहीं पाता। और वह भीतर-भीतर सड़ता तथा कीचड़ पैदा करता है। छोटे छोटे पुरवा किस्म के गाँवों मे आबादी की कमी के कारण फिर भी गनीमत है। लेकिन पुराने गाँवो की तो अजीब हालत है। जब एक परिवार के लड़के अलग होते हैं तो अक्सर पैतृक मकान के भी टुकड़े कर लेते हैं। स्वभावतः टुकड़ा किया हुआ घर नये परिवार के काम की चीज़ नही रह जाता। मान लो, किसी को आँगन और अन्दर और किसी को कोठरी और सदर मिला। फिर दोनों फरीक ने उसी हिस्से के साथ अपनी आवश्यकतानुसार मकानो को बढाया।

गड्ढों के गन्दे पानी में

उनके बेटो ने उन घरों के फिर टुकड़े किये और बढाया। इस तरह बढते-बढ़ते अब घरो के बीच मुश्किल से चलने-फिरने लायक गलियाँ रह गई हैं। जब उन्ही गलियों से लगातार नाबदान के पानी के साथ खर-कूड़ा सड़ता रहता है तो एक अजीब हालत पैदा होती है। यह दृश्य और मनोरजक होता है जब ऐसी गलियों में जगह-जगह बच्चों की टट्टियों के बेल-बूटे काढ़े रहते हैं। खाद के घूर और गड्ढो की बाबत मैंने पहले पत्रों मे कई बार जिक्र किया है। इन गड्ढो मे गाँव भर की टट्टी और धोवन का मैला पानी जमा

होता है उसी में लोग आबदस्त लेते हैं, बर्तन माँजते हैं, धोबी का कपड़ा धुलता है, सुअर लोटते हैं और पशुओं को पानी पिलाया जाता है। और कभी-कभी लोग भी उसी में डुबकी लगाकर नहा लेते हैं। गड्ढों की हालत पश्चिमी जिलो से पूर्वी ज़िलों में ज्यादा भयानक है क्योंकि पश्चिमी इलाकों में फिर भी पानी सूखकर वैशाख-जेठ की धूप तो लग जाती है।

ऐसे घरों में कितना सामान होगा, इसका अन्दाज़ लगाना कठिन नहीं होना चाहिए। बर्तनों में जिनके पास कुछ सामान पीतल का हो तो वे अच्छी दशा में हैं, ऐसा कहा जा सकता है। नहीं तो मिट्टी के बर्तन ही काफी हैं। मैंने देखा है कि ग्राम-उत्थान के प्रचारार्थ जो लोग गावों में जाते हैं वे प्रायः गाँव के लोगों के ज़ेवर-प्रेम के खिलाफ़ खूब जोरों से प्रचार करते हैं। यह बात गाँवों का उद्धार करने वालों के लिए नशा सा बन गया है। लेकिन ज़रा खोज तो करो, उनके पास जेवर नाम से है क्या चीज। सोने का जेवर तो किसी के पास है ही नहीं। जो कुछ सोना था वह तो पिछले दिनों सरकार की "मुद्रा-राक्षस" की कृपा से बाहर भेजकर हमारे लोगों ने, सरकारी मेम्बरों की भाषा में, विपुल सम्पत्ति का लाभ उठा लिया है। जो कुछ बचा था वह भी इस लड़ाई में हिन्दुस्तान की मरदद, अफ्रिका, इटली और हागकाग की रक्षा में समाप्त कर देना पड़ा। तिस पर जो कुछ खुर-चन बाकी रहा वह सब जापानी बम से पिघलने न पावे, इसलिए इंगलैंड में सुरक्षित रक्खा हुआ है। इस प्रकार सोना शायद कहीं किसी कोने-खाँचे में एकाध दाना अटका रह गया होगा। लेकिन महाजनों की सर्वशोषणी दृष्टि से वह बचा है या नहीं, कौन बतावे? जब कर्ज का पैसा पूरा होगा तो उतना "स्वर्ण कण" वापस हो जायगा, यह आशा कई पुश्त तक तो रहती ही है। आज जिसके पास थोड़ा चाँदी का जेवर है वे लोग भाग्यशाली कहलाते हैं। बाकी लोगों के पास जो रह गये हैं वे हैं काँसा, पीतल आदि धातुओं के

बने जेवर। लुटेरो के जाल से छनकर जो कुछ बचा है उसे ग्रामवासी अपने उद्धारको के और सेवकों के प्रचार की आँधी से उड़ने न दे सके तो गनीमत है।

बाकी सामान में एक चक्की, एकाध हल और मरियल बैल दिखाई देगे। कही एकाध फटी कथरी और गुदड़ी भी दीख पड़ती है, सो भी सब के घर नहीं।

क़र्ज़---गाँवों के कर्ज की हालत तो मैं पहले ही लिख चुका हूँ। यहाँ केवल इतना कहना काफी होगा कि सन् ३० तक हमारे प्रान्त के गाँवों पर १२४ करोड़ का क़र्ज़ा था। उसके बाद मंदी के कारण देहाती जनता की हालत अधिक खराब हुई। उसका कोई हिसाब मुझको मालूम नही। लेकिन जिस अनुपात से बाद को कर्ज की रकम बढ़ी है उससे अगर १७० करोड़ का कर्ज है, ऐसा कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। यह कर्ज भी उनको अठारह से सैंतीस सैकड़ा तक के चक्रवृद्धि सूद के हिसाब से मिला है। जिस परिस्थिति मे लोगो को कर्ज लेना पड़ता है उसको देखते हुए सूद पर रुपया मिल जाता है, यही गनीमत है। उनके पास है क्या जिसके आधार पर वे महाजन को विश्वास दिला सके। उनकी आमदनी, भोजन-वस्त्र का और उनके घर-दुआर सामानादि का हाल तो देखा। ऐसी हालत मे महाजन भला किस भरोसे कम सूद पर रुपया दे? आखिर वे कुछ अपना दिवाला निकालने के लिए तो बैठे नही है? उनको तो रुपया न मिलने का खतरा हमेशा बना रहता है। इसलिए वे इतना सूद ले लेते हैं जिससे डूबन्त रकम की हानि भी पूरी हो सके। आज की परिस्थिति में लोग महाजनी के खिलाफ बैंको तथा कोआपरेटिव क्रेडिट सोसाइटी का बेहद प्रचार करते है। मुझको पूरा विश्वास है कि ऐसे ग्रामीण बैंक अगर आज स्थापित किये जायँ तो महाजन जितने लोगों को क़र्ज़ देता है उनमे से ६५ सैकड़ा लोगों को क़र्ज़ ही नही मिलेगा क्योंकि बिना सम्पत्ति के ऐसा सभ्य बैंक क़र्ज़ देगा ही

नहीं। आज जो गाँवों मे को आपरेटिव सोसाइटियाँ हैं उनको भी तो मैंने आम तौर पर पद्रह सैकड़ा सूद पर रुपया देते देखा है। हालाँ कि उनको रुपया वसूल करने का इतना जवरदस्त कानूनी हक प्राप्त है। देशी महाजनों के अलावा एक प्रकार का कर्ज और है। वह है अफगान महाजनों का, जिनको इधर आगा कहते हैं। उनके सूद की दर और वसूली का तरीका और भी भयकर है। वे आम तौर पर दो आना प्रति रुपया प्रति मास लेते हैं। हिसाब से डेढ सौ रुपया सैकड़ा पड़ा। और वसूली का तरीका क्या है, यह तुम्हे लिखकर क्या बताऊँ। कौन नहीं जानता है ?

खेती-बारी—वस्तुतः देहात की स्थिति का मतलब खेती-बारी की ही स्थिति है। पहले ही मैंने कहा है कि साढे तिरासी सैकड़ा लोग खेती पर भरोसा करते हैं। इस खेती की हालत क्या है, उसे भी देख लो। पजाब के श्री डार्लिंग साहब के हिसाब से इस प्रान्त के प्रति किसान को ढाई एकड़ भूमि पड़ती है। तुमको मालूम है, युक्तप्रान्त जमींदारी प्रधान प्रान्त है। अगर उन ज़मीदारों की, जिनके पास बड़ी-बड़ी सीरें हैं, भूमि घटाकर जोड़ा जाय तो युक्तप्रान्त में प्रति किसान के पास औसत जमीन शायद ही दो एकड़ रह जाय। यहा के छोटे-छोटे खेतों की हालत मैंने पहले ही लिखी थी। दो एकड़ खेत अगर ६-७ जगहों मे बँटा हो तो उस छोटेपन का अन्दाज कर सकती हो। मैंने सैकड़ों ऐसे टुकड़े देखे हैं जिन पर बैल हल लेकर घूम ही नही सकते और फावडे से ही उन्हे गोडना पड़ता है।

इस प्रान्त की कुल ज़मीन ६,७६,८६,०८० एकड़ है। जिसकी ५७ १ सैकड़ा यानी ३८,८५५, ७४४ एकड़ खेती लायक है। जितनी जमीन खेती लायक है उसका ६१.६ सैकड़ा ज़मीन पर आज कल खेती हो रही है। इस प्रकार आज हमारे प्रान्त में ३५,८१६,२०० एकड जमीन पर पैदावार होती है। खेती लायक जमीन के २२.३ सैकड़ा पर दो बार अनाज बोया जाता है। इस हिसाब से प्रति गाव में औसत

६४७.८ एकड़ पर खेती होती है और ३२.३ एकड़ खेती लायक ज़मीन बेकार पड़ी है। इसका मतलब यह नहीं है कि हर गाँव मे ३२. ३ एकड़ खेती लायक जमीन खाली पड़ी है। अलग-अलग ज़िले की अलग-अलग स्थिति है। जैसे नैनीताल, झांसी और मिर्जापुर जिले मे क्रमशः खेती लायक ज़मीन के ७८.६,७६.५ और ७८.२ प्रतिशत जमीन पर ही खेती होती है। अतः इन ज़िलों में जितनी खाली जमीन है उतनी खाली ज़मीन दूसरे ज़िलो मे नही है। अलमोड़ा ज़िले में जितनी ज़मीन खेती लायक है सब पर खेती हो रही है। इस तरह अगर देखा जाय तो औसतन २५ एकड़ जोतने लायक ज़मीन प्रति ग्राम खाली होगी।

उपर्युक्त ज़मीन का हिसाब मैने १९४१ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट के अंकों के अनुसार किया है। लेकिन युक्तप्रान्त सरकार की खेती-सघटन कमेटी १९४३ के लोगो ने कुछ ऐसी जमीन का भी हिसाब किया है जिसको कोशिश करने से खेती के काम मे लाया जा सकता है। उन्होंने खेती लायक, लेकिन खेती नहीं होती है ऐसी, ज़मीन को दो हिस्सों मे बाटा है। एक ऐसे ऊसर, जिन्हे काम मे लाया जा सकता है; दूसरा मामूली। उनके हिसाब पड़ी हुई जमीन इस प्रकार है :—

मामूली जोतने लायक ६,८६६ ४५२ यानी ६६.३ एकड़ प्रति गाँव।

ऊसर जोतने लायक ५,१००,६२१ यानी ४६.८ एकड़ प्रति गाँव।

दोनो हिसाब मिलाकर हम अपने प्रान्त की खेती लायक ज़मीन का इस प्रकार बँटवारा कर सकते हैं। मैं प्रायः प्रति गाव की औसत लगा कर ही बताने की चेष्टा करूँगा जिससे समझने मे आसानी हो।

प्रति ग्राम की औसत

कुल रक़बा ६६४.१ एकड़

परती आसानी से खेती होने लायक ३१.३ एकड़

खेती होती है ३४७.८ एकड़

'जिन्हें खेत बनाया जा सकता है ६४.० एकड

ऐसे ऊसर जिनको खेत बनाया जा सकता है ४६.८ एकड़

जिस जमीन पर खेती होती है उसमे से ८५.८ एकड़ पर साल मे दो फस्लें होती हैं। इस प्रकार आज फस्ल के लिए प्राप्त कुल जमीन ४३३.६ एकड़ है।

एक बात का ख्याल रखना। मैंने ऊपर का जो हिसाब प्रति गाव का बताया है वह यह मान कर कि सारी खेती लायक जमीन गाव की है। लेकिन ऐसा नहीं होता। तुमने देखा है, छोटे शहरो के अन्दर भी काफी खेती होती है। लेकिन प्रथमतः उनका हिसाब अलग मिलाना मुश्किल है और वह जमीन अनुपात से इतनी कम है कि उसे प्रान्त के १०२३८८ गावों मे बाटने से वह नही के बराबर होगी। इसलिए उसे मैंने अपने हिसाब मे छोड़ दिया है।

मैंने कहा है कि २ फस्लवाली ज़मीन को जोड़ने पर इस प्रान्त के प्रति ग्राम मे ४३३.६ एकड़ ज़मीन पर ४७० आदमियों के गुज़र के लिए अनाज पैदा होता है। केवल ४७० आदमी क्यों, उसी ज़मीन पर उनका भी गुज़र होता है जो देहात के मत्थे शहर मे बैठ कर खाते हैं। और अनुपात से उनका ही हिस्सा ज्यादा है।

उक्त जमीन पर फस्ल का बॅटवारा इस प्रकार है:—

फस्ल	प्रतिशत	एकड़
गेहूँ	१७.६	७६.२१
जव	८.६	३७.२५
चना	१२.४	५३.६८
चावल	१६.८	७२.७५
ज्वार	४.१	१७.७७
बाजरा	४.६	२१.६२

जोन्हरी	४.५	१६.५०
सरसो	.३	२.३०
अलसी	.६५	२.८२
तिल	.७५३	३.२४
अन्य तेलहन	.४०	१.७३
कपास	१.४७	६.३७
तम्बाकू	.२१	.६०
चारा	३.४७	१५.०२
सन	.४८	२.०७
नील	.००२	.०१
फल-तरकारी	.६४	४.०३
कोदो	२.४४	१०.७७
सावाँ	१.३०	५.६३
आलू	.३४६	१.५०
अफीम	.०६	.२६
मटर	६.५	२८.१५
अरहर-उद	५.५	२३.८२
ईख	५.०	२१.६६
मसाला	.६७६	४.२०

प्रान्त भर की मुख्य पैदावार का हिसाब इस प्रकार हैः—

अनाज	पैदावार हजार मन	अनाज	पैदावार हजार मन
गेहूँ	७४६७६	सरसों	१३६५६
जव	३५१२७	अलसी	४२३६
चना	४४२२१	तिल	३१०५
चावल	५४४५६	कपास	२८६५
ज्वार	११७७२	तम्बाकू	१७०१

बाजरा	८७२१	ईख	८३७२७
जोन्हरी	२०५२१		

कुल खर्च प्रान्त मे ७३३११७ हजार मन

ऊपर के अंक इतने बड़े है कि एक दम से पैदावार की हालत की धारणा करना कठिन है। खेती की हालत का अन्दाज़ उसकी प्रति एकड़ पैदावार के हिसाब से ही लगाया जाता है। वस्तुतः कहाँ की खेती कैसी है, इसका मिलान लोग प्रति एकड़ क्या पैदावार है, इस बात से ही करते हैं। अतः तुम भी इस प्रान्त के कुछ मुख्य अनाजों की पेदावार कितनी है देख लो तो आगे योजना बनाने पर आसानी से विचार कर सकोगी:—

अनाज	पैदावार प्रति एकड़	अनाज	पैदावार प्रति एकड़
गेहूँ	६ मन २६ सेर	अन्य तेलहन	४ मन २० सेर
जव	६ मन २६ सेर	कपास	४ मन ३३ सेर
चना	७ मन ३१ सेर	तम्बाकू	१६ मन २२ सेर
चावल	७ मन २० सेर	मटर	७ मन ३० सेर
ज्वार	५ मन १२ सेर	आलू	७५ मन
बाजरा	३मन २५ सेर	ईख	३६८ मन
जोन्हरी	१० मन ५ सेर	सरसों	५ मन १८ सेर
अलसी	४ मन २१ मेर	तिल	२ मन ४ सेर

इन अको से मालूम होगा कि हमारे यहाँ औसत पैदावार कितनी कम है। ऊपर के हिसाब से यह न समझना कि यहाँ की ज़मीन खराब है या यहाँ के किसान बेवकूफ हैं। मैंने देखा है, यहाँ ही किसान प्रति एकड १५ १८ मन गेहूँ, २० मन धान, १२५ मन आलू और ६०० मन गन्ना पैदा करते हैं। कम पैदा होने के कई कारण हैं। प्रधान कारण है किसानों की गरीबी। उनको न तो उपयुक्त खाद मिलती है और न पानी। फिर बहुत कम जमीन होने से मजबूरन जिस जमीन मे जो

अनाज अच्छा नही हो सकता है, उसमे भी वही अनाज बोना पडता है, नही तो खाये क्या ? लगान कानून के कारण भी अधिकाश किसानो को जमीन की पैदावार वढाने मे दिलचस्पी नही है। इन नाना बाधाओं से किसानो को गुजरना पड़ता है। इन बाधाओ की कहानी अगर पूरी पूरी बताने लगूँ तो यह पत्र समाप्त हो न हो पायेगा। अतः उन बाधाओ की बात दूसरे किसी अवसर पर छोड़ इस पत्र मे गाँव की आर्थिक स्थिति पर ही कुछ दो-चार बाते बताने की चेष्टा करूँगा।

खाद—खेती बारी का मुख्य साधन खाद-पानी है, यह शायद ही किसी को मालूम न हो। अतः हमको यह देखना है कि हमारे प्रान्त मे खाद पानी की क्या स्थिति है। पिछले एक पत्र में मैने कहा है कि हमारे गाँवो मे अधिकाश गोवर का कंडा बनाकर जला देते हैं। युक्तप्रान्त पुराना देश है। भारतीय इतिहास के प्रथम युग से हो इसी गगा यमुना के कंठ पर लोग रहते आये हैं। अतः स्वभावतः इस भूमि पर जगल वहुत कम रह गया है। ज़मीन के उपजाऊ होने तथा नदीतट पर होने से यहाँ की आबादी भी घनी है। इस कारण लोगों ने अधिक से अधिक जंगल काट कर खेत बना लिये हैं। अब आबादी के अन्दर कोई जंगल रह ही नहीं गया है। वैसे ही इस प्रान्त में कुल इलाके के बीसवे हिस्से से भी कम जगल रह गया है। फिर यह जंगल भी जंगली इलाकों में केन्द्रित है। अतः उन जंगलो का भी फायदा आम आबादी के लोग विशेष नहीं उठा सकते हैं। इसलिए मैने कहा है कि जिन इलाको मे लकड़ी है, वहाँ आबादी नही, जहाँ आबादी है वहाँ लकड़ी नही। अतः आज जलाने के लिए केवल गोबर का कंडा ही रह गया है। गाँव मे चले जाओ तो क्या देखोगे ? जिधर निगाह उठाओ उधर ही ऊँचे-ऊँचे ढेरों मे कंडे भरे पड़े देखोगे। आज गोबर का मुख्य उद्देश्य कंडा हो गया है। ग्रामवासी केवल उतने ही दिन गोबर खाद के लिए रखते हैं जितने दिन कडा पाथना सम्भव नही होता। अगर बरसात मे गोब-

रौली लगने का डर न होता तो शायद लोग छप्पर के नीचे कंडा पाथने की व्यवस्था करते। कडा कितने दिन पाथा जाय, उसका एक नियम पुराने जमाने से चला आता है। हमारे देश मे हर चीज के लिए त्यौहार अनुष्ठानादि की व्यवस्था की गई थी ताकि उसके ज़रिए आर्थिक तथा सामाजिक आवश्यकताओ की व्यवस्था नियमित रीति से चल सके और साथ ही उत्सवादि के अनुष्ठान से सांस्कृतिक विकास तथा विनोद व अवकाश का मौका मिले। जिस दिन भ्रातृ-द्वितीया का अनुष्ठान होता है उसी दिन यहाँ यमद्वितीया का उत्सव होता है। उस दिन स्त्रियाँ गोधन कूटती हैं। तुमने कभी गोधन कूटना देखा है? वनारस मे रहते समय देखा होगा। उस दिन वे गोवर का एक लम्बा पिंडा वनाती हैं, फिर उसकी छोटी-छोटी चकती वना कर सब अपने यहाँ ले जाती हैं। उसके वाद की एकादशी का दिन देवोत्थान एकादशी कहलाता है, यानी देवता लोग जो वरसात के मारे सोये पड़े रहते हैं, उस दिन उठते होगे। देवता चाहे जो कुछ करते हों, इससे मुझको वहुत दिलचस्पी नहीं है। मै तो नरनारायण का उपासक हूँ। मुझको देखना है कि नरजाति उस दिन से क्या करने लगती है। उसी दिन से कडा के लिए गोवर जमा करने का विधान है। फिर होली से पहले ही कडा पाथ कर सुखा लेना है और गाँव मे जो मंदिर-जैसे ऊँचे-ऊँचे ढेर दिखाई देते हैं, वैसा वना डालना है। इसका मतलव यह है कि कम से कम होली के १५ दिन पहले ही कंडा पाथना वन्द करना ज़रूरी है। इस प्रकार कार्त्तिक सुदी एकादशी से लेकर फाल्गुन की अमावस्या तक यानी साल मे चार माह गोवर से कंडा वनाया जाता है। यह अनुशासन उस समय का है जिस समय लोग गोधन से धनी थे। लोग गाय-भैंस दूध के लिए रखते थे। वे अगर सिर्फ आठ माह का गोवर ही खाद के लिए रखते तो काफी खाद खेती के लिए हो जाती थी। लेकिन आज तो वह हालत रह नहीं गई है। आज जो कुछ जानवर गाँव मे

हैं वे सब खेत जोतने के लिए जितने बैलों की आवश्यकता है उतने भर के लिए काफी होते हैं। अतः आज की आवश्यकता इस बात की है कि लोग सारा गोबर खाद के लिए छोड़ दें। लेकिन छोड़ना तो दूर रहा पुराने नियम पर भी लोग कायम नहीं रह पाते हैं। उस नियमानुसार तो केवल वे ही चल पाते हैं जो अच्छे जमींदार हैं और जिनके पास पलाश आदि की लकड़ी जलाने के लिए है। बाकी लोग, जिनके पास लकड़ी नहीं, तब तक कंडा पाथते रहते हैं जब तक बरसात के कारण कंडा पाथना असंभव नहीं हो जाता। इस तरह आज अधिकांश गोबर कंडा में चला जाता है। फिर अगर हम कुल गोबर की खाद बना डालें तब भी हमारे प्रान्त भर में २,६४, १८,०२,००० मन खाद होगा। और हमारी आवश्यकता है प्रति एकड़ ३०० मन के हिसाब से १०,६६,५७,६०,००० मन खाद की। मैंने ३०० मन का ही हिसाब रक्खा है क्योंकि साधारणतः अच्छी खेती के लिए इतनी खाद से काम चल जाता है। वैसे तो विशेषज्ञ लोग कम से कम ५०० मन प्रति एकड़ खाद की आवश्यकता बताते हैं। इस प्रकार गोबर का कंडा पाथने के अलावा लोग जलाने की धुन में उन गोबरों को भी बीन डालते हैं जो मैदान या जंगलों में चरते समय पशुओं के मल के रूप में गिरते हैं। अगर उसे पड़ा रहने दें तो भी वह परोक्ष रूप से जमीन के नीचे बहकर कुछ फैलाता ही। नहीं तो मैदान की घास ही ठीक से जमने पाती। इसके अलावा मृत पशु का हाड़ मांस किस प्रकार बेकार जाता है, यह मैं लिख ही चुका हूँ।

सिंचाई—पानी के मामले में हालत और भी ख़राब है। यहां किसान को मुख्यतः वर्षा पर ही भरोसा करना पड़ता है। केवल हमारे प्रान्त की ही नहीं बल्कि सारे भारत की यही दशा है। भारत में जितनी खेती होती है उसके पाँचवें हिस्से में ही सिंचाई हो पाती है। हमारे प्रान्त में सिंचाई का प्रबन्ध अच्छा है, ऐसा कहा जाता है।

लेकिन यहाँ भी जितनी खेती होती है उसके तिहाई हिस्से मे ही सिंचाई हो पाती है। कितनी जमीन किस प्रकार से सीची जाती है उसका व्यौरा यो है :—

सिंचाई का जरिया	रकबा सिंचाई का एकड़ मे	
सरकारी नहर से	३७,३२,१६३	कुल जोड
खास नहर (व्यक्तिगत नहर) से	३३,४३१	१,१९,१७,५८९
ख़ास तालावों से	५८,२२२	यानी जितनी जमीन
कुओं से	५५,५४,०५१	पर खेती होती है
दूसरे जरियो से	२५,०६,६९०	उसका ३३ ६ सैकड़ा

ऊपर के हिसाव से मालूम होगा कि हमारे यहाँ सिंचाई के ४ जरिये हैं। (१) नहर (२) कुआँ (३) खास तालाव और (४) झील, ताल, नाला आदि। नहरे अधिकतर पश्चिमी जिलों मे हैं। इधर ५।३ साल से फैजावाद ज़िले मे भी नहर वनी है। सरकारी सिंचाई की दर ९) प्रति एकड़ ईख के लिए और ३) रुपये एकड़ अन्य अनाजो के लिए है। कुछ सिचाई प्राइवेट नहरों से भी होती है।

तुमको याद होगा तुम जव रणीवाँ से चाचिकपुर गाँव को जा रही थी तो रास्ते मे कुछ सूखे कुएँ देखकर पूछा था कि लोग इनको ठीक क्यों नहीं कर लेते हैं। उसपर साथ गाँव के जो दो भाई थे उन्होने कहा था कि वे अव इतने गरीव हो गये हैं कि भठा हुआ कुआँ खोदना उनके लिए सम्भव नही है। पुराने ज़माने मे हमारे यहाँ वहुत कुएँ थे। गाँव की सार्वजनिक अवनति के साथ-साथ कुएँ भी हजारों की तादाद मे भठ गये। वस्तुतः अगर खोज की जाय तो मालूम होगा कि हम एक गाँव से दूसरे गाँव को जाने मे जो सूखे कुएँ देखते हैं उतने ही कुएँ वेकार नहीं हुए है वल्कि उनसे कही ज्यादा तादाद मे भठे हुए कुओं की ईंट निकाल कर उन्हे लोगों ने खेत मे मिला लिया है। इसका कारण गरीवी तो है ही लेकिन एक दूसरा

बड़ा कारण यह है कि पुराने समय मे सम्मिलित परिवारो की चलन होने के कारण एक एक परिवार के पास ज्यादा खेत था और वे खेतों के बीच कुएँ बनाते थे । लेकिन बाद को खेतो का बँटवारा होते-होते एक कुएँ के आस-पास की ज़मीनें ऐसे विभिन्न व्यक्तियों के हाथ चली गई हैं कि बाद को किसी को उन कुओं से कोई दिलचस्पी नही रही । और वे क्रमशः मरम्मत बिना भठते चले गये । इस तरह खेती का छोटे-छोटे हिस्सो मे बँटना भी कुओं के भठने का एक बड़ा कारण है । यह सच है कि बाद को नये कुएँ भी बनते गये है लेकिन बनने की तादाद भठने की संख्या से बहुत कम है । अब इस प्रान्त मे कुल १,४०,००० कुएँ रह गये हैं । उनकी भी हालत बहुत अच्छी नही है । आज किस तरह सिंचाई होती है, यह तुमने देखा ही है । सच पूछो तो अधिकाश सिंचाई को जो आज होती है, सिचाई न कहकर छिड़काव कहा जा सकता है । ऐसा छिड़काव करने पर भी प्रति कुआँ औसत पाँच ही एकड़ सिंचाई पड़ती है । वस्तुतः अगर कुओं मे पानी बढ़ाया जाय और रहट की सिंचाई हो तो एक कुएँ से २० एकड़ ज़मीन की अच्छी सिंचाई हो सकती है ।

प्रान्त के तालाबो की हालत कुँओं से भी खराब है । वस्तुतः पहले जमाने मे तालाब आबपाशी का बहुत बड़ा जरिया होता था । उनका महत्व कही-कही कुँओं से भी ज्यादा था । खास तौर से पूर्वी जिलों मे जिधर निकल जाओ हर मील मे ४-६ तालाब दिखाई देंगे । लेकिन सब पट गये हैं । कुएँ तो फिर भी लोग बहुत कुछ कायम रक्खे हुए हैं, नये भी बनवाये है लेकिन तालाबो की ओर तो ध्यान ही नही । बल्कि दिन-दिन उनके अस्तित्व के चिह्न भी लुप्त होकर खेतो मे मिलते चले जा रहे है । आज जितने तालाब हैं भी वे इतने छिछले हो गये हैं कि उनसे मुश्किल से मटर की एक सिंचाई लोग कर पाते हैं । इस प्रान्त में ऐसे तालाबो की सख्या कितनी है, मुझको मालूम

नही लेकिन मैने जितना देखा है उससे. निःसंकोच कह सकता हूँ कि अगर उनकी हालत अच्छी होती तो आज जितनी सिंचाई तालाबो से होती है उससे ७-८ गुनी सिंचाई हो सकती थी। फैजाबाद जिले मे ही आज की हालत में भी झील तालाब आदि से ६१५,३२० एकड़ की सिंचाई होती है।

इसके अलावा हमारे प्रान्त के पश्चिमी ज़िलो मे बिजली के ट्यूब वेल का प्रचार इधर कुछ सालों से हो रहा है। उसके अंक मुझको मालूम न होने से मै तुमको भेज नही सका। किसी सरकारी खेती-विभाग की रिपोर्ट से देख लेना।

पशु—गाँव के पशुओं की स्थिति खेती की परिस्थिति के अन्तर्गत है। अतः इसी सिलसिले मे प्रान्त के जानवरों की हालत देख ले तो अच्छा होगा। हमारे गाँव के पशुओं की हालत मै पहले भी लिख चुका हूँ अतः आज सिर्फ युक्तप्रान्त मे कितने कौन जानवर हैं और वे कितना काम तथा पैदा करते हैं, इसका हिसाव वताकर इस प्रश्न को समाप्त करूँगा।

इस प्रान्त के कुल जानवरों की सख्या इस प्रकार है:—

साँड़	२,४०,०००
बैल	१०२,७१,०००
गाय	६२,३३,०००
भैसा	७,८१,०००
भैंस	४०,८२,०००
वछड़ा पड़वा आदि	१०२,५६,०००
भेड़	२२,३१,०००
वकरियाँ	६५,६३,०००
घोड़े	४,६७,०००
गधे और खच्चड़	२,७१,०००
ऊँट	२६,०००

इन जानवरो मे गाय और भैंस मिलाकर १००,२७४,००० मन दूध देती हैं। यानी औसत प्रति पशु ६ मन २६ सेर प्रति वर्ष दूध होता है। इस हिसाब से गाय भैंस मिलाकर एक सेर एक छटांक प्रति दिन का औसत पड़ा। यद्यपि हमारा प्रान्त दूध-घी के लिए खास प्रान्त कहा जाता है पर यह औसत बहुत कम है।

ऊपर का हिसाब सारे प्रान्त का है। अलग से देहातों के पशुओ की सख्या का नही किया गया है। लेकिन जिस अनुपात से शहर और गाँव के पशुओं को देखा जाता है उसके अन्दाज़ से गाँव की आबादी करीब इस प्रकार होगी :—

पशु	तादाद कुल प्रान्त	तादाद प्रति ग्राम
साँड	२०४७७६	२
बैल	८६००५६२	८४
गाय	५४२६५६४	५३
भैंसा	६१४३२८	६
भैंस	३५८३५८०	३५
बछड़ा-पँड़वा	८६००४६२	८४
भेड़	१६४५३७२	१६
बकरी	५५२८६२३	५४
घोड़ा-घोड़ी	१०२३८८	१
ऊँट	२०००	

कुल जोड़—३३८

गाँव मे दूध की पैदावार प्रति पशु प्रान्त के औसत से बहुत कम होगी। मैंने पहले ही कहा है कि शहर के ग्वाले हमेशा देहातों से छाँट कर अच्छे पशु ले जाया करते हैं। इस तरह शहर में चुनी हुई अच्छी दूध देने वाली गाय-भैंसें ही रहती हैं। दूसरी बात यह है शहर के ग्वाले बिना दूध वाला पशु रखते ही नहीं; वे एक बार कसके

दूध ले लेने के बाद उसे बेच देते हैं। उन्हे या तो काट दिया जाता है या देहातों को फिर बेचा जाता है। इस प्रकार बिना दूध देने वाली गाय भैंसों के न होने से भो शहर की औसत पैदावार बहुत अधिक बढ जाती है। अगर हिसाब लगाया जाय तो तुमको मालूम हो जायगा कि गाँव की गाय-भैंस शायद ही औसत ३ पाव प्रति दिन से अधिक दूध देती होंगी। यह हुई दूध देने वाले जानवरो की हालत। अब जरा बैलों की कहानी सुनो। इस मामले मे हमारे प्रान्त के दो हिस्से हाते हैं। पूर्वी ज़िलों का और पश्चिमी ज़िलों का हिसाब इतना भिन्न है कि अगर एक साथ औसत निकाला जाय तो समझना कठिन होगा। इसलिए मै दोनों क़िस्म के ज़िलो का हिसाब अलग-अलग बताने की कोशिश करूँगा। वैसे अगर औसत निकालना चाहती हो तो प्रति ग्राम ३४७८ एकड़ ज़मीन के लिए बैल और भैंसा मिला कर ६० पशुओं पर ४५ हल काम मे आते है यानी एक हल से ७·८ एकड़ खेती की जाती है। लेकिन कुल बैल हल तो नही चलाते हैं। कुछ गाड़ी मे काम करते हैं, कुछ तेलो की घानी इत्यादि दूसरे कामों मे भी चलते हैं। उन्हे अगर घटा दिया जाय तब एक हल के लिए औसत साढ़े सात एकड़ के करीब पड़ जायगी। मै पश्चिमी और पूर्वी ज़िलों का हिसाब अलग से चाहता था। वह इस प्रकार है :—

इलाका	प्रति हल भूमि जुताई (एकड़)	मवेशियों की खुराक के लिए कुल भूमि का अनुपात प्रतिशत	१०० दूध देनेवाले जानवरों के लिए चारा की भूमि एकड़
पश्चिमी ज़िले	८.५३	१६.६	७६.६८
पूर्वी ज़िले	५.२४	१.५	५.२४

—खेती-सुधार कमेटी यू० पी० १९४३

ऊपर के अंकों से मालूम होगा कि आज हमारे प्रान्त मे मवेशियों के लिए कितनी कम जमीन पर खूराक पैदा करते हैं। ऐसी हालत मे वे कम काम करेंगे इसमे संदेह ही क्या है। यद्यपि पश्चिमी ज़िलों की हालत कुछ अच्छी है लेकिन मिश्र आदि देशो की तुलना मे यह इलाका भी बहुत पीछे है। इसके अलावा हमारे प्रान्त मे चरागाह केवल ५२ लाख एकड़ ही है। इस ५२ लाख एकड़ पर १०३,१५,००० गाय-भैंसें और ८७,६४०० भेड़-बकरियाँ चरने के लिए हैं। इतना कम चरागाह भी सारे प्रान्त मे समान बँटा हुआ नही है। इस चरागाह का अधिकाश जंगल के पास और नदी के किनारो पर ही होगा। इसलिए अधिकाश देहातों में चरागाह नही के बराबर ही होगा। जब पशुओं की खूराक इतनी कम है और दूध के लिए गाँव का कोई महत्व नही तो लोग गौओ को कसाई के हाथ बेच दे, इसमे आश्चर्य ही क्या है। फलतः सारे प्रान्त मे हर साल ४,८०,००० गौओं की मास के लिए हत्या की जाती है।

जंगल—हमारे प्रान्त के जंगल प्रधानतः हिमालय की तराई, विन्ध्य गिरिमाला, बुन्देलखड आदि इलाके में ही हैं। प्रान्त के कुल क्षेत्रफल का ४.८ हिस्सा जगल है। अब तक इस प्रान्त के जगलों का इस्तेमाल केवल लकड़ी के लिए ही है। उद्योग के लिए जगलों से क्या-क्या कच्चा माल मिल सकता है इसकी पूरी जाँच भी नहीं हुई है। लोग कुछ स्थानीय माल की बाबत ज़रूर जानते हैं लेकिन कोई संयोजित जाँच की चेष्टा हुई है, यह मुझको मालूम नही हुआ। इसलिए इस प्रश्न पर रोशनी डालना मेरे लिए सम्भव नहीं है।

शिक्षा—पिछले एक पत्र में मैंने लिखा था कि हमारे प्रान्त मे शिक्षा कितनी कम है। गाँवों में ढूँढ़ने से एक मिडिल पास आदमी मिलेगा; स्त्रियों की तो कोई बात ही नहीं। फैजाबाद मे मैं जब स्त्री-सुधार योजना का प्रयोग कर रहा था उस समय ग्राम-सेविका शिक्षा-शिविर के लिए कितनी कोशिश करने पर भी दर्जा ४ पास ५० स्त्रियां

मिल नहीं सकीं और फिर मुझको करीब अशिक्षिता स्त्रियों को ही तैयार कर परीक्षा पास करने का प्रबन्ध करना पड़ा। अगर हम सारे प्रान्त के साक्षर तथा शिक्षित लोगों की संख्या की ओर देखे तो अवाक् होना पड़ेगा। वस्तुतः अंग्रेज़ी राज्य मे शिक्षा की जितनी अवनति हुई है शायद किसी बात की उतनी न हुई होगी। यह अवनति खास तौर पर देहातों मे अधिक हुई; शहरों मे राज्य-संघटन का केन्द्र होने के कारण कुछ शिक्षा उन्होंने अपने ढंग से दी भी है पर गाँव से मतलब ही क्या? पहले हमारे यहाँ जगह-जगह पाठशालाएँ चलती थीं। वहाँ के गुरु वास्तविक गुरु थे। वे विद्या-दान के लिए ही पाठशाला चलाते थे, व्यापार के लिए नहीं। यही कारण था कि गाँव-गाँव शिक्षालयों का प्रचार था। पाठशाला के प्रति जनता मे आदर-भाव इस तरह कूट-कूट करके भर दिया गया था कि आज भी पाठशाला के नाम पर गरीब से गरीब देहाती घर से कुछ न कुछ दान मिल जाता है। तुम कह सकती हो कि उस पुरानी प्रणाली की शिक्षा से आज की प्रगतिशील दुनिया मे क्या लाभ? यह ठीक हो सकता है कि उस शिक्षा से आज की दुनियाँ मे विशेष लाभ नहीं लेकिन जो सार्वजनिक शिक्षालयों का स्वाभाविक सघटन था, शिक्षक की जो सेवा वृत्ति तथा विद्यादान की भावना थी, पाठशालाओं के संचालन के लिए जैसा सहज तथा स्वाभाविक आर्थिक प्रबन्ध था अगर वह कायम रह पाता तो तुम उसी में समयोपयोगी पद्धति से भी शिक्षा दे सकतीं। आज जब कुछ होता ही नहीं है तो अच्छी बुरी बातों का कोई सवाल ही नहीं उठता।

इस प्रान्त मे कुल ४०,६७,४०० पुरुष और ६,३०,८६७ स्त्रियाँ साक्षर हैं। कुल आबादी के पुरुष तथा स्त्रियों का अनुपात क्रमशः १०.८ और २.३ है। कुल साक्षरता का अनुपात सम्पूर्ण आबादी का ८.४ प्रतिशत है। यह अनुपात भारत के औसत से भी कम है। सारे भारत मे सन् ३१ तक साक्षर आबादी का अनुपात ११ सैकड़ा था। अब तो कुछ बढ़ा ही होगा। इस प्रकार भारत की साक्षरता से हमारे

प्रान्त की साक्षरता करीब ४ सैकड़ा कम है। लेकिन मर्दुमशुमारी की रिपोर्टों मे उन्ही को साक्षर कहा गया है जो किसी तरह अपना नाम लिख सकते हैं। मैने पिछले पत्रो मे साक्षर उनको कहा है जो किताब पढ़ना और अच्छी तरह लिखना जानते हैं। अगर मेरा हिसाब न भी लिया जाय तो दर्जा २ बिना पास किये हुए लोगों को साक्षर तो तुम कह ही नहीं सकती हो। प्रान्त भर में कितने लड़के और लड़कियाँ दर्जा २ से एंट्रेंस तक के स्कूलों में जाते हैं, उसका हिसाब देखने से असली शिक्षा का कुछ अन्दाज़ हो सकेगा—

कक्षा	लड़के	लड़कियाँ	कुल
२	१८०,२७५	२५,०२३	२०५,२६८
३	१३५,०२८	१४,३०८	१४६,३३६
४	१००,५२१	६,७३४	११०,२५५
५	५०,६७७	४,६८६	५५,६६६
६	४५,८४२	३,८०४	४६,६४६
७	४३,६२६	१,८४८	४५,७७४
८	१४,८५८	१,३६३	१६,२२१
९	१३,६३०	६०७	१४,२३७
१०	१२,३१४	५३८	१२,८५२
११	३,९९३	३११	४,३०४
१२	३,९३६	१९५	४,१३१
	६,०५,३००	६२,४२०	६,६७,७२०

साधारणतः इन दर्जों मे १० साल से २२ साल तक की उम्र के लड़के-लड़कियां ही पढते हैं। और उनकी प्रान्त भर की आबादी १,१८,८४,४५३ है। यानी इस उम्र की आबादी के ६ सैकड़ा लड़के स्कूल मे पढते हैं। तुम्हें मालूम ही है कि पढ़ाई अधिकतर शहरों मे ही होती है। अगर शहर की आबादी घटाकर जोड़ा जाय तो यह

अनुपात ४ सैकड़ा से भी कम हो जायगा। यह पढाई भी ऐसी है कि लड़के दुनियाँ का कुछ सीख नही पाते हैं। लड़कियों की तो कोई बात ही नही। रामायण, महाभारत की कहानी तक वे नहीं जानती हैं। इस सिलसिले मे एक मजेदार बात तुमने कभी देखी है? हमारे उन नौजवानों को जो स्कूलों मे पढ़ते हैं, गाँव की साधारण बातों का भी ज्ञान नही होता है और तमाशे की बात यह है कि यह न जानना भी उनके लिए एक गुण-सा है। हमारे स्कूलों मे इसी प्रकार साधारण बातों को न जानने के गुण का आज कल इतना महत्व हो गया है कि देहाती नौजवान भी जो स्कूलों की शिक्षा पाते हैं जब अपने सम्बन्धियों के बीच बैठते हैं तो वे साधारण सासारिक और गृहस्थी के बातों को, जिन्हे वे जानते और समझते भी हैं, न जानने का ढोंग करते हैं। ऐसे भोले बनकर पूछते हैं मानो वे बातों को जानते ही नही। इस तरह न जानने का नाटक करके वे अपने सम्बन्धियों पर यह असर डालना चाहते हैं कि वे शिक्षित और सभ्य हो रहे हैं। मैने देखा है कि यह हाल केवल हाई स्कूल या इंटर कालेज के लड़कों का ही नहीं; बहुत से मिडिल में पढने वालों मे भी यह रोग फैल रहा है।

खेती-प्रधान प्रान्त होने पर भी यहाँ खेती-शिक्षा की विशेष व्यवस्था नही है। जो है भी वह सब जरायत महकमा के कर्मचारी बनाने की मशीन मात्र है। साधारण खेतिहार श्रेणी के लोगों की शिक्षा तो हो ही नही पाती। इस प्रान्त मे कृषि-शिक्षा के लिए तीन ही स्थान हैं:—

१—कानपुर का कालेज २—बुलन्दशहर का स्कूल और कालेज और ३—गोरखपुर का स्कूल। ये इतने खर्चीले हैं कि इस किस्म की शिक्षा सार्वजनिक होना असम्भव है। तीनों शिक्षालयों के प्रति विद्यार्थी के लिए प्रति वर्ष केवल सरकारी खर्च ही इस प्रकार है:—

१—कानपुर कालेज	६२४)	इसके अलावा छात्रों का अपना खर्च भी होता है
२—बुलन्दशहर स्कूल	३६३)	
३—गोरखपुर स्कूल	४२७)	

इतने खर्चे से कितने खेतिहरो की शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है, तुम समझ सकती हो।

ग्राम-उद्योग की शिक्षा का तो कोई केन्द्र आज है ही नहीं। हम लोगों ने रणीवा में कुछ ग्राम-उद्योगो की शिक्षा का प्रवन्ध किया था। उन्हे तो सरकार ने ८ अगस्त के प्रस्ताव के वहाने खतम ही कर दिया है। काग्रेस सरकार कुछ चमड़ा और कागज़ वनाना सिखाने की व्यवस्था कर रही थी। लेकिन वह आज मृतप्राय ही है।

बेकारी—आज संसार में अगर कोई एक चीज़ सारे राजनीतिज्ञों, अर्थशास्त्रियों, समाजसेवियों, साहित्यको, कवियों, पडितों, पादरियों और जितने सज्ञान लोग हैं उन सबको परीशान करती है तो वह है 'बेकार-समस्या।' यही एक समस्या हल कर सकने न कर सकने पर साम्राज्यों और सरकारो का वनना विगड़ना निर्भर करता है। जो सरकार इसी एक समस्या को हल कर लेती है उसकी वाहवाही ससार भर में होती है। जब आज यह समस्या इतने महत्व की हो गई है तो किसी राष्ट्र की पुनर्गठन-योजना का मध्य विन्दु इसी प्रश्न का वन जाना स्वाभाविक ही है। ऐसी हालत मे अगर हमको अपने प्रान्त की ग्राम-सुधार योजना पर विचार करना है तो पहले देख लेना चाहिए कि इस प्रान्त के देहातों में बेकारो का अनुपात क्या है। शायद ऐसा कोई अर्थशास्त्री न वचा होगा जिसने इस प्रश्न पर ग़ौर से विचार न किया हो और इसका हिसाव निकालने की चेष्टा न की हो। वस्तुतः जितना समय बीत रहा है उतनी ही बेकारी हमारे देश मे वढ़ रही है। आवादी की वृद्धि के साथ-साथ जहाँ एक तरफ प्रति परिवार ज़मीन का रक़वा घटता जा रहा है, वहाँ कर्ज की वढ़ती और जमींदारी प्रथा की मेहरवानी से दूसरी तरफ खेतीहीन आवादी वढ़ती जा रही है। नतीजा यह होता है कि खेतीहीन आवादी वढ़ने पर भी जमीन के लिए मजदूर की माँग घटती जा रही है। जब लोगों के पास इतने थोड़े खेत

रह गये कि अपने परिवार मे ही आदमी ज़रूरत से ज्यादा हैं, तो उनको मजदूरों की जरूरत ही क्या है? सारे भारत में १६२१ में प्रति १००० आबादी में २६१ खेतीहीन मज़दूरो की सख्या थी वह बढकर सन् १६३१ मे ४०७ हो गई थी। आज १६४४ मे क्या हाल होगा? यह संख्या ६००।७०० हो गई होगी। श्री राधा-कमल मुखर्जी का कहना है कि हमारे प्रान्त मे सन् १६११ मे ४,५५२, ०४३ मजदूर खेतों मे मजदूरी करते थे और सन् २१ मे ४,०३५, ८८७ मजदूर काम करते थे। इसका मतलब यह हुआ कि प्रति १० साल मे ११.३ सैकड़ा मजदूर खेत मे काम करने से वचित होते जा रहे हैं। सन् १६२६ के बाद तो यह अनुपात और भी वढ गया होगा। क्योंकि मदी के कारण लोग अपने हाथ से ही ज्यादा काम करने लगे हैं। लेकिन इस प्रकार के हिसाबों से भी असली स्थिति का पता नहीं चल सकता। क्योंकि इस प्रकार जितने भी हिसाव लगाये गये हैं सब ऊपर ऊपर से ही परिस्थितियों को देखकर लगाये गये हैं। इन हिसाबों में यह देखने की चेष्टा नहीं की गई है कि कितने परिवार खेती मे और अन्य उपयोगी कर्म मे लगे हैं; खेती मे मौसम के हिसाब से कितने दिन काम के हैं और कितने दिन खाली हैं और कितने लोग जरूरत न होने पर भी मजबूरन खेत में बेकार काम करते रहते हैं। इत्यादि। लेकिन अगर हमको ठीक-ठीक हिसाव लगाना हो तो उतने से ही काम नही चलेगा। हमको यह भी देखना है कि जितने आदमी "खेती मे लगे हैं" ऐसा मालूम होता है, दर असल उतने आदमी लगाने चाहिएँ या नही। सदियों से अधिक आदमियो से कम खेती का काम करते रहने से स्वभावतः काम की गति मे जो कमी आई है या गरीबी के कारण जो काहिली और सुस्ती आ गई है उसकी वजह से जो ज़रूरत से कुछ ज्यादा आदमियों की किसी काम के लिए आवश्यकता होती है उसे अगर आज हम छोड़ भी दे तब भी इतना तो जोड़ना ही चाहिए कि गाव

की आज की आबादी की शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार गावो मे जितनी खेती होती है उसमें कितने आदमी लगने चाहिएँ। और उससे ज्यादा आदमी अगर मजबूरन उसमें पड़े हैं तो उन्हें बेकारो में गिनना चाहिए। इधर जेल में खाली बैठे-बैठे मैने दूसरा एक हिसाब निकाला था। वह शायद तुम्हारे लिए दिलचस्प हो। अतः मैं उसकी नकल नीचे लिख देता हूँ।

इस हिसाब मे मनुष्य और पशुओ के श्रम की गति आज की गति के अनुसार रक्खी है। मेरा अनुभव पूर्वी ज़िलो का ही है। इसलिए मैने यह गति पूर्वी ज़िलों के हिसाब से ही रक्खी है। अगर पूरे प्रान्त का हिसाब लिया जाय तो औसत गति मेरे हिसाब से ज्यादा ही होगी। लेकिन मैने उसे छोड़ ही दिया है जिससे लोग यह न कह सके कि मैने बेकारी का हिसाब बढाकर रक्खा है। केवल हल की गति पूरे प्रान्त की औसत के हिसाब से लगाई गई है। जो हिसाब किया है उसे असली हालत से कम ही समझना। खेती की भिन्न-भिन्न क्रियाओ का नाम मैने अपने तरफ के जिलों का ही रक्खा है। आशा है तुम उन्हे समझ सकोगी। हिसाब मे मैने काम की कुल हाज़िरी लगाई है, बाकी समय बेकारी का ही समझना चाहिए। काम का हिसाब इस प्रकार है :—

(१) पशुओ का चराना—वैसे तो १०० पशुओं को एक चरवाहा काफी होना चाहिए। लेकिन आज की परिस्थिति में १० पर एक चरवाहा का हिसाब किया गया है।

	गाव के पशुओ की संख्या	आवश्यक		
		पुरुष	स्त्री	किशोर
गाय	६५	२	१	३
भैस	२४	१	०	२

बकरी	५०	१	१	३
भेड़	१००	१	१	२
	कुल	५	३	१०

साल भर की हाजिरी

पुरुष	२५५५
स्त्री	२५५५
वालक	६५३०

१० वालक मे ६ से १० साल तक के वालक ३ और ११ से १५ तक के ७ होंगे।

खेती के लिए आवश्यक आदमी और पशु

जेठ

निरवाही (घास-खर की सफाई) २७१ एकड़	कुल हाज़िरी			
	पुरुष	स्त्री	किशोर	बैल
खाद ढोवाई, धान, ज्वार, वाजरा, जोन्हरी, तिल, मसाला, कोदो, सावा, सरसो १८०·४ एकड़	२१७			
४५ एकड़ गाड़ी से $\left(\frac{४५ \times ५}{६}\right)$ ३८ गाड़ी ७६				७६
१३५·३४ एकड़ आदमी से ८ आदमी प्रति एकड़	५४२	५४१		
कपास ६·३७ जोताई ४ वाह (१ हल = ४/५ एकड प्रति दिन)	३२			६४

सिंचाई कपास, ईख, ज्वार ३४·४ एकड़				
बैल से ८ एकड़ (३ आदमी, ४ बैल = १ एकड़)	२४	..	.	३२
आदमी से २६·४ एकड़ (१ एकड़ ८ आदमी)	१७१	४०	...	.
जोड़	१०६२	५८१	-	१७२

अषाढ

	पुरुष	स्त्री	किशोर	बैल
अधनी धान बेहन जोताई बोआई १ एकड़ ४ बार	५	.		१०
अधनी धान जोताई २४ ७५ एकड़ १ बाँह	३१	..	.	६२
भदही धान ४८ एकड़ जोताई बोआई ३ बाँह	१८०			३६०
भदही धान घूर दहानी या वदहनी	४८	.	..	९६
ज्वार बाजरा ३९ ३९ एकड़ जोताई-बोआई ३ बाँह	१४८			२९६
अरहर उर्द २३ ६२ एकड़ जोताई-बोआई ३ बाह	८९	.	.	१७८
चरी १५ ०२ एकड़ जोताई बोआई ३ वांह	५६	...	.	११२
जोन्हरी १९·५० एकड़ ,, ,, ३ बाह	७३	.	..	१४६
तिल ३·२४ एकड़ ,, ,, ३ वाह	१२	..	.	२४
सनई १६ एकड़ ,, ,, २ वाह	४०	.	...	८०
तरकारी मसाला ४ एकड़ जोताई बोआई ४ वाह	२०	...	..	४०
तरकारी मसाला सोहनी गोड़ाई	५०	५०	..	...

	पुरुष	स्त्री	किशोर	बैल
मकई अरहर धूर दहानी ३१·५ एकड़	३२		.	६४
कपास, जोन्हरी २५.८७ एकड़ गोड़ाई २ वार	४११	.		
सावाँ कोदो १६·४ एकड़ बोआई २ वाह	४१			
जोड़	१२३६	५०		१५५०

सावन

	पुरुष	स्त्री	किशोर	बैल
अधनी धान २४ ७५ एकड़ जोताई	३२			६४
,, ,, ,, बोआई	१४०	१४०		.
भदोंही ४८ एकड़ सोहनी २ वार (११ पु० १५ स्त्री ९ बच्चा २ ए०)	५२८	७२०	४३२	..
,, उर्द सोहनी ११.८२ एकड़	१३२	१८०	१०८	.
ज्वार बाजरा ३९.३९ एकड़ सोहनी	४३८	५९२	३५५	
तम्बाकू ९ एकड़ जोताई ४ वार	४५			९०
मसाला तरकारी ४ ए० सोहनी गोड़ाई आदि	४४	६०	३६	.
सनई उलटना १४ एकड़	१८		.	३६
तिल ३.२४ एकड़ सोहनी २ बार	३६	४९	२९	.
सावाँ कोदो १६.४ सोहनी १ बार	७०	८०	२०	
कुल जोड़	१४८३	१८२१	९८०	१८०

भादों

	पुरुष	स्त्री	किशोर	बैल
गेहूँ ७६·२१ ए० जोताई बोआई ४ वाँह	३८१	..		७६२
भदोही ४८ एकड़ सोहनी १ बार (२ पु० ३ स्त्री १ लड़का प्रति एकड़)	९६	१४४	४८	.
जोन्हरी रखवाली (३० आदमी ३० दिन)	१५०	२५०	५००	...

सरसो २·६ एकड़ जोताई ४ बाँह	१३	.	...	२६
तम्बाकू ·६ एकड़ जोताई २ बाँह	२	.		४
सावा ५·५३ एकड़ कटाई (१ एकड़ मे ६ आदमी)	१०	१३	५	
कुल जोड़	६७५	४१०	५५३	७६२

कुआर

	पुरुष	स्त्री	किशोर	बैल
कपास ६.३७ एकड़ चुनाई ३ बार (४ स्त्री ४ लड़के)	..	७७	७७	..
गेहूँ ७६·२१ एकड़ जोताई ४ बाँह	३८१		.	७६२
भदोंही ४८ एकड़ कटाई (प्रति ए० ४ पु० ५ स्त्री २ लड़के)	१९२	२४०	९६	.
,, ,, दँवाई (प्रति एकड़ ३ पु० ५ स्त्री ६ बैल)	७२	४८	.	१४४
मकई १९·५ एकड़ कटाई (प्रति एकड़ ३ पु० २ स्त्री १ लड़का)	५९	३९	२०	..
कोदो उर्द २२.५६ एकड़ कटाई (प्रति एकड़३ पु० ४ स्त्री १ लड़का)	६८	९०	२३	..
सावा कोदो उर्द २८·२२ एकड़ दँवाई	४२	२८	..	८४
तम्बाकू ·९ एकड़ जोताई २ बाँह	२	..	.	४
भदोंही, मकई, सावा कोदो ८३·९ एकड़ जोताई २ बाँह	२१०	.	.	४२०
खाद, ढोवाई, गेहूँ, चना, मटर, तम्बाकू, तरकारी, मसाला, अलसी आलू २०४·३१				
५१ गाड़ी से $\frac{५१ \times ५}{६}$ गाड़ी = ४३ गाड़ी	८६	...	...	८६

	पुरुष	स्त्री	किशोर	बैल
१५३.३१ एकड़ आदमी से (प्रति एकड़ ४ पु० ४ स्त्री)	६१३	६१३		
कुल जोड़	१७२५	११३५	२१६	१५००

कार्तिक

	पुरुष	स्त्री	किशोर	बैल
तरकारी मसाला सोहनी गोड़ाई आदि ४ एकड़	२०	२५	१०	.
गेहूँ ७६.२१ एकड़ जोताई बोआई ४ बाँह	३८१		.	७६२
चना, मटर, जव, अलसी, तम्बाकू, आलू १२४.३५ ए० जोताई ४ बाँह	६२२		..	१२४८
तोरी २.६० एकड़ कटाई	१३	१३	..	.
आलू १.५ एकड़ बोआई (२५ आदमी १ एकड़ में)	२०	१८		..
,, ,, मिट्टी चढ़ाई (१६ आदमी १ एकड़ मे)	२०	४		...
,, १.५ एकड़ सिंचाई .५ एकड़ बैल से २ वार	३		.	४
,, ,, ,, १ एकड़ आदमी से २ वार	१२	४		.
मसाला तरकारी खुदाई कटाई झाई आदि	२५	२५	५	..
मसाला तरकारी ४ एकड़ जोताई ४ बाँह	२०		..	४०
कपास चुनाई ६.३७ एकड़ ५ वार (प्रति एकड़ ६ स्त्री ५ बच्चे)		१९१	१५१	...
जोड़	१३३६	२८०	१६६	२०५०

अगहन

	पुरुष	स्त्री	किशोर	बैल
सिचाई-गेहूँ,चना,मटर,जव,आलू, तम्बाकू अलसी,मसाला, तरकारी २०४·३१ एकड़				
५१ एकड़ बैल से	१५३	.	...	२०४
१५३·३१ एकड़ आदमी से	६२०	३०६	...	...
अधनी धान २४·७५ एकड़ कटाई	६६	१२४	४६	...
अधनी धान २४·७५ एकड़ दॅवाई	३७	२५	...	७५
ज्वार, बाजरा, कटाई ३६·३६ एकड़	१५८	१६७	७६	...
ज्वार, वाजार, दॅवाई ३६·३६ एकड़	६०	४०	१२०	...
खाद ढोवाई ११ एकड़ ईख ३ एकड़ गाड़ी से	४	...	..	४
खाद ढोवाई ११ एकड़ ईख ८ एकड़ आदमी से	३२	३२		.
तिल कटाई ३·२४ एकड़	६	१२	५	..
तिल दॅवाई ” ”	३	२	..	६
ईख जोताई २ बार १०॥ एकड़	२७	...	..	५४
जोड़	१५०२	७३८	१३३	४६३

पौष

	पुरुष	स्त्री	किशोर	बैल
सिंचाई गेहूँ, आलू, तम्बाकू ७८·६१ एकड़				
२० एकड़ बैल से	६०	...	..	८०
५८·६१ एकड़ आदमी से	३१५	११७	..	...
ईख १०·८३ एकड़ कटाई छिलाई २५ दिन	१००	८०	३०	.
ईख ” ” पेराई गुड़ वनाई २५ दिन	१५०	१००	५०	२००

मकई १६·५ पिटाई	५०	५०	२०	...
फुटकर काम तरकारी मसाला	५०	५०	..	...
जोड़	७६२	३६७	१००	२८०

माघ

	पुरुष	स्त्री	किशोर	बैल
आलू तम्बाकू सिंचाई २·४ एकड़				
{ एक एकड़ बैल से	३		..	४
{ १·४ एकड आदमी से	६	३		.
ईख कटाई छिलाई	१००	८०	३०	...
ईख पेराई गुड़ वनाई	१५०	१००	५०	२००
ईख १०·८३ एकड जोताई २ वाह	२८		.	५६
फुटकर काम तरकारी मसाला	५०	५०		...
जोड़	३४०	२३३	८०	२६०

फाल्गुन

	पुरुष	स्त्री	किशोर	बैल
आलू तम्बाकू सिंचाई २·४ एकड़				
{ १ एकड़ बैल से	३		..	४
{ १ ४ एकड आदमी से	६	३		
ईख कटाई छिलाई	१००	८०	३०	...
ईख पेराई गुड़ वनाई	१५०	१००	५०	२००
ईख जोताई ३ वाह	४१			८२
ईख वोआई	३३	११		६६
फुटकर काम तरकारी मसाला	५०	५०	.	..
जोड़	३८६	२४४	८०	३५२

चैत

	पुरुष	स्त्री	किशोर	बैल
कटाई, गेहूँ, मटर, चना, जव अलसी १६८·११ ए०	७००	७००		...
तम्बाकू ·६ एकड़ कटाई	५	५	...	...
आलू १·५ एकड़ खोदाई	१०	८	.	...
अरहर १२ एकड़ कटाई ६ आदमी प्रति एकड़	३६	३६	..	.
गन्ना सिंचाई ११ एकड़				
३ एकड़ बैल से	६			१२
८ एकड़ आदमी से	४३	२१		
जोड़	८५३	८२०		१२

वैशाख

	पुरुष	स्त्री	किशोर	बैल
दँवाई चना, मटर ८१·८३ एकड़	१०५	१००		२४६
दँवाई गेहूँ, ७३·२१ एकड़ (६ आदमी ४ स्त्री १२ बैल = १ एकड़)	४५७	३०५	.	६१४
अलसी २·८२ एकड़ दँवाई	३	२		६
अरहर १२ एकड़ पिटाई (४ पुरुष ४ स्त्री = १ एकड़)	४८	४८	.	.
तम्बाकू ·६ एकड़ कटाई	५	५		..
गन्ना १०·८३ एकड़ २ वार				
बैल से	६		.	१२
आदमी से	४३	२१	.	..
जव ३७·२५ एकड़ दँवाई	२२३	१४६	..	४४७
जोड़	७८८	६३०	..	१६२५

प्रति गाव की खेती पर की औसत कुल आबादी साढे अठत्तर परिवार की लोक-सख्या ३६२ है जिसमे उम्र और स्त्री पुरुप का अनुपात इस प्रकार है :—

उम्र	कुल	पुरुप	स्त्री
७० से ऊपर बूढे	१०	५	५
१६ से ७६ प्रौढ	२३२	११८	११४
११ से १५ किशोर	४६	२४	२२
६ से १० बालक	४८	२५	२३
जन्म से ५ तक बच्चे	५६	२६	२७

स्कूल जाने वाले कुल लड़के

दर्जा ४ तक		१३,०२,१३६
दर्जा ५ से ७ तक		१,६२,७१०
	जोड़	१४,६४,६५५
इसमे शहर के करीब के लड़के		२,००,०००
	शेप—	१२,६४,६५५

यानी प्रति ग्राम १२ जिसमे किशोर ३ और बालक ६ होंगे।

साल भर के काम के दिन

माह	हाजिरी पुरुष	हाजिरी स्त्री	हाजिरी किशोर	हाजिरी बैल	दिन पुरुष	दिन स्त्री	दिन किशोर	दिन बैल
जेठ	१०६२	५८१	...	१७२	७.१	५.१	...	१.९
अषाढ़	१२३६	५०	...	१५५०	१०.५	.५	...	१७.२
सावन	१४४३	१८२१	९६०	११०	१२.२	१६.०	२१.३	१.२
भादों	६७५	४१०	५५३	७९२	५.७	३.६	१२.०	८.८
कुआर	१७२५	११३५	२१६	१५००	१४.४	९.१	४.७	१६.७
कार्तिक	११३६	२८०	१६६	२०५०	९.६	२.४५	७.३	२२.८
अगहन	१५०२	७३८	१३३	४६३	१३.७	६.५	३.०	५.१
पौष	७६२	३९७	१००	२८०	६ ६	३.५	२.२	३.१
माघ	३४०	२३३	८०	२६०	३.०	२.१	१.८	३.०
फाल्गुन	३८६	२४४	८०	३५२	३.३	२.१	१.८	३.९
चैत	८५३	८२०	१८४	१२	७.२	८.०	४.०	.२
वैशाख	७८८	६३०	...	१६२५	६.८	५.५	.	१८.०
				जोड़ =	१००.१	६५.३५	५४.५	१०१.९
पशु चराना	१८२५	१०९५	२५५५		१५.५	९.६	५५.५	.
विद्यालय	...	...	१०९५	कुल =	११५.६	७४.९५	११०.०	१०१.९

आज जितनी खेती होती है उस पर काम के दिन का हिसाब इस तरह निकलता है। लेकिन इस हिसाब से भी बेकारी का अन्दाज़ लगाना शायद ठीक न हो। मैने जो काम के दिन लगाये हैं उनमे कई बातो का ख्याल नही किया क्योंकि उनका व्योरा मुझे प्राप्त नहीं है। लेकिन अपने अनुभव से तुमको कुछ अन्दाज दे ही सकता हूँ। जिस तरह की खेती आधार पर काम की हाजिरी जोड़ी गई है वह उन खेतिहरों की है जो खुशहाल हैं और जिनके पास खाद पानी का साधन है। लेकिन तुमको मालूम है कि हमारे प्रान्त मे अधिकाश किसान गरीब और साधनहीन हैं। न तो वे ज़मीन को इतनी बार जोत सकते हैं और न उतना पानी ही सींच सकते हैं। ६५.४% ज़मीन पर तो पानी की सिंचाई की व्यवस्था ही नही है। इसका मतलब यह है कि केवल ३३ ६% ज़मीन पर, जिसके लिए सिंचाई का प्रवन्ध है, भी ग़रीब किसान अनुपात से कम पानी सीच पाते हैं। फिर मैने सारी ज़मीन की सिंचाई की मज़दूरी कुएँ के हिसाव से जोड़ी है। लेकिन हकीकत यह नही है। तालाव से सिंचाई मे मज़दूरी बहुत कम लगती है। नहर की और पहाड़ या तराई के इलाकों की सिंचाई मे तो मज़दूरी नही के बरावर लगती है। इसके अलावा तराई, माँझा या कछार के इलाकों की खेती मे कुछ विशेष परिश्रम ही नही है। जो लाखों वीघा ताल-तराइया हैं उनमे तो केवल वीज छीट देने का ही काम रहता है। अगर इन सारी बातों का हिसाव कहीं से ठीक-ठीक मिल सके तो तुम देखोगी कि मैने जो काम के दिन बताये हैं उनमे और वास्तविक स्थिति मे करीब २५% का अन्तर पड़ जायगा। इसलिए परिस्थिति को समझने के वास्ते तो तुम ऊपर बताये दिनों से १५ सैकड़ा दिन निःसकोच घटा सकती हो। खेती के काम, पशु चराने आदि के अलावा गृहस्थी के और काम भी रहते हैं। उन्हे भी जोड़ लेना चाहिए। खेती के काम मे १५ सैकड़ा घटाकर और अन्य कार्यक्रमों को जोड़कर काम के दिन इस प्रकार होंगे :—

काम	दिन			
	पुरुष	स्त्री	किशोर	बैल
खेती	८५	५६	४६	८६
पशु चराना	१६	१०	५६	
स्कूल	..	..	२४	
मकान तथा अन्य निर्माणों की मरम्मत	६	४	४	
मेड़ बँधाई	८	..	४	.
लकड़ी काटना चीरना	४		४	२५/१०
अनाज ढोवाई बाजरा की	३			२५/१०
आतिथ्य	...	१२	५	
त्यौहार	७	१०	७	..
बीमारी सुश्रूषा	१०	३०	१०	..
मकान की सफाई	३	८	५	
अनाज सफाई अलग से	...	७	...	
प्रसूती	...	१०		.
फुटकर काम	६	१५	१०	.
बैलगाड़ी	३	..	१	४
कंडा पाथना	...	२०	..	.
	१५१	१८४	१७६	९१

बेकारी के दिन

पुरुष	स्त्री	किशोर	बैल
२१४=६ माह	१८१=६ माह	१८९=६ माह	२७४=९ माह

अगर ९० बैल-भैंसों के खाली समय के लिए खूराक पैदा करने वालों को बेकारी मे जोड़ना हो तो जो परिस्थिति पैदा होगी उससे घबड़ाकर कहीं पागल न हो जाना। अगर पुरुषों का एक माह का

समय दीगर काम के लिए निकाल दिया जाय तो कुल आबादी ६ माह बेकार रहती है।

यह बेकारी तो केवल उन ७८॥ परिवारों के लोगों की है जो खेती पर गुज़र करते हैं। इसके अलावा प्रति ग्राम के ६४ परिवार मे से और १५॥ परिवार बचते हैं। उनकी हालत पर भी विचार करना आवश्यक है। इनमे से ३.४ परिवार तो नाई, धोबी, कँहार, लोहार बढई, कुम्हार आदि के रूप मे वहीं ७८॥ अध-भूखे परिवारों से नोच कर किसी प्रकार गुजारा करते हैं। वे भी किसी न किसी काम मे लगे रहते हैं, ऐसा मान लो। इस प्रकार विभिन्न कामों के लिए साढ़े पाँच परिवारो को घटाने पर भी १० परिवार के लिए एक मात्र काम "जय सीताराम" भजना हो है।

उपर्युक्त हिसाब से सारे प्रान्त की ग्रामीण जनता की बेकारी किस प्रकार होगी, उसका अन्दाज़ लगा सकती हो। अगर प्रति ग्राम की बेकारी को प्रान्त भर के १०२३८८ ग्रामों से गुणा किया जाय तो परिस्थिति इस प्रकार होगी:—

७८॥ परिवारों के १, २०, ८१, ७८४-प्रौढ पुरुष ६ माह यानी ६०, ४०, ८६२ प्रौढ पुरुष सम्पूर्ण बेकार रहते हैं।

१,१६,७२,२३२ प्रौढ स्त्रियाँ ६ माह यानी ५८, ३६, ११६ प्रौढ स्त्रियाँ सम्पूर्ण बेकार रहतो हैं।

४७,०६,८४८ किशोर ६ माह यानी २३,५४,६२४ किशोर सम्पूर्ण बेकार रहते हैं।

यानी कुल संख्या २,८४,६३,८६४ में कुल १,४२,३१,६३२ आदमी सदा बेकार रहते हैं।

जो दस परिवार राम-भरोसे पड़े हैं उनमे १५ × १०२३८८ यानी १५,३५,८२० प्रौढ पुरुष, १४.४ × १०२३८८ = १४,७४,३८७ प्रौढ़ स्त्रियाँ और ५.८ × १०२३८८ = ५,९३,८५० किशोर हैं। अर्थात् उन में कुल सक्षम बेकार आवादी की सख्या ३६,०४,०५७ है। इस तरह

हमारे प्रान्त की देहाती जनता में १,७८,३५,६८६ श्रम करने लायक आवादी साल में ३६५ दिन बेकार बैठी रहती है। यानी श्रम करने लायक कुल आवादी के ६२ सैकड़ा के करीब लोग खाली रहते हैं। जो लोग बाहरी रिपोर्टों के आधार पर ही सारा हिसाब लगाते हैं वे यह कह सकते हैं कि मेरा यह हिसाब एक देहाती का पागलपन है। हो सकता है, वे कोई २—४ ऐसे कामों के नाम बता दे जिन्हें मैने अपने हिसाब मे शामिल नही किया। अगर थोड़ी देर के लिए मै उन मित्रों से समझौता करना चाहूँ तो ज्यादा से ज्यादा २८, ३५,६८६ की संख्या कम होगी। फिर भी डेढ करोड़ आदमी से कम बेकार नहीं हैं, यह साबित करना किसी जादूगर की भी शक्ति से बाहर है। क्या तुमको मालूम है, इतने आदमी दुनियाँ मे मिलकर क्या कर सकते है? अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र मे लड़ाई से पहले उद्योगों मे लगे कुल मजदूर १,५४,७५,००० ही थे, जिसमे पुरुष, स्त्री और किशोर सब शामिल है। इतने आदमी मिलकर जो सामान पैदा करते हैं उससे अपने देश की माग पूरी करने के बाद फालतू माल को सारे ब्रह्माड के बाजारों मे खपाने की आवश्यकता पड़ जाती है। और हमारे देश के केवल एक प्रान्त की सिर्फ देहाती जनता मे उतनी ही सक्षम आबादी बेकार पड़ी है। इतनी बेकारी ही बस नही है। इस पर बैलों का खाली समय भी जोड़ना है। तुमने देख लिया कि हमारे प्रान्त में प्रति ग्राम ६० बैल-भैंस ६ माह के लिए बेकार हैं। अगर मान ले कि उनको महीने में ५ रोज़ आराम की आवश्यकता है तो भी वे ७ माह बेकार है ही। इस हिसाब से प्रति ग्राम (६० × ७) ÷ १२ =५२ यानी प्रान्त भर मे ५३,२४,१७६ बैल-भैंस की सम्पूर्ण शक्ति बेकार पड़ी है। आज कल औद्योगिक दुनियाँ मे शक्ति के नाप की इकाई १ घोड़े की शक्ति के बराबर समझी जाती है। १॥ करोड़ मनुष्य शक्ति और आधा करोड़ बैल शक्ति मिलाकर कितने घोड़ों की शक्ति के बराबर होती है उसका अन्दाज कर सकती हो? आज मनुष्य-

समाज औद्योगिक कार्य के लिए शक्ति के अनुसन्धान के पीछे पागल हो रहा है। तेल, कोयला, पानी और विद्युत् से उसकी प्यास नहीं मिट रही है; वह समुद्र की लहरो से शक्ति निकाल कर उसे इस्तेमाल करने के फेर मे है। उससे ज़रा पूछो कि भारत के एक एक प्रान्त के इतने जीवित प्राणियों की वेकार शक्ति का वे किस तरह उपयोग करने को कहते हैं? वचपन मे एक कहानी पढ़ी थी। किसी ने तपस्या करके एक ऐसे दैत्य को नौकर रख लिया जो इच्छा मात्र प्रकट करने से आवश्यकता पूरी कर सकता था। उस दैत्य की एक खास शर्त यह थी कि अगर उसे आवश्यकता पूरी करने को काम न मिले तो वह मालिक की गर्दन तोड़ देगा। आज मनुष्य-समाज अपने आराम के लिए तपस्या करके जिन दानवी शक्तियों को नौकर रखता जा रहा है उनकी भी क्या वही खास शर्तें देखने मे नहीं आती हैं? अगर आवश्यकता-पूर्ति के लिए काम न मिले तो अपने मालिक मनुष्य-समाज के नाश के लिए वे विध्वंसकारी युद्ध-सामग्री वनाने लग जायँगी। क्योंकि इन दानवों की नौकरी की शर्त ही ऐसी है कि उन्हें तुम खाली न वैठने दो।

लिखते-लिखते वहुत लिख गया। अव समाप्त करना ही ठीक होगा। अतः आज विदा। सव भाई-वहिनों को नमस्कार।

---

[६]

सुधार की समस्याएँ

३—५—४४

गत महीने की २५ तारीख को एक लम्वा पत्र लिखा था; मिला होगा। आज फिर इतनी जल्दी लिखने वैठ गया। वहुत सी वाते

दिमाग़ में आ रही थी। सोचा, उन्हे भी लिख भेजूँ। पिछले पत्र में मैंने अपने प्रान्त की वर्त्तमान स्थिति पर कुछ प्रकाश डालने की कोशिश की थी। वस्तुतः ग्राम-निर्माण की दृष्टि से अगर परिस्थिति को जानना हो तो हर प्रश्न पर जाँच करना जरूरी है। आज उसकी सुविधा तो है नही। अतः जहाँ तक सम्भव हो सका कुछ सरकारी रिपोर्टो से और कुछ अपने अनुभव से स्थिति को देखने की कोशिश की गई है। मैंने जो हिसाब निकाला है वह अधिकतर अनुभव के आधार पर ही बनाया गया है। आज सरकारी रिपोर्टों मे जो आँकड़े निकलते हैं मेरा हिसाब उनसे कम प्रामाणिक नही है। मैंने तो फिर भी अपने निजी अनुभव तथा जिम्मेदार मित्रों के अनुभव के आधार पर ही विभिन्न अकों को निकाला है। लेकिन जो आँकड़े सरकारी रिपोर्टों मे दर्ज किये जाते हैं उन्हे कैसे एकत्र किया जाता है, मालूम है? एक जिले का अफसर नीचे वाले डिप्टी के पास कागज भेजता है, डिप्टी कानूनगो के पास और कानूनगो पटवारी के पास कागज भेज देता है। ये पटवारी किस तरह इन जाँच-रिपोर्टों को लिखते हैं, यह तुम्हे मालूम हो तो परीशान हो जाओगी। ये पटवारी महाशय कलम और खाता लेकर अपने घर के सामने दालान मे बैठते हैं और जो मन में आता है दर्ज कर डालते हैं। अधिक खेत मे कम पैदावार और कम खेत मे ज्यादा पैदावार लिखना तो मालूमी बात है। तुमने आमतौर पर बूढियों को माला फेर कर पूजा करते देखा है न? जिस तरह वे राम नाम के साथ घर-गृहस्थी की सारी खुराफात की बातें करती हैं—झगड़ा करती हैं, गाली देती हैं और साथ-साथ माला भी फेरती रहती हैं, ठीक उसी तरह ये पटवारी लोग लोगों से हर तरह की बात-चीत, झगड़ा, गाली आदि के साथ-साथ रजिस्टर मे दर्ज भी करते चलते हैं। रजिस्टरों के पिछले पन्नों को बिल्कुल कोरा रख कर अगले पन्ने पर कुछ का कुछ दर्ज करके सिर्फ उन्ही पन्नों को खोलकर कचहरी के सामने गवाही दे आने तक का उदाहरण विरल नही है। अतः

जो चित्र मैने अपने प्रान्त का दिया है उसे प्रायः सही समझना । कम से कम उसे भविष्य-योजना पर विचार करने का आधार तो मान ही सकती हो । वैसे तो जब राष्ट्रीय सरकार होगी तो उसको सारी बातो की खोज फिर से करनी ही पडेगी ।

प्रान्त की मौजूदा परिस्थिति की जानकारी कर लेने के बाद हमको अपनी समस्याओं पर विचार कर लेना चाहिए । हमको करना क्या है ? हर तरह की समस्याओ और अपने उद्देश्य पर विचार कर लेने के बाद ही उनके समाधान की बात सोची जा सकती है । अतः आज मै इन्ही बातों पर विचार करने की कोशिश करूँगा ।

अन्न, वस्त्र तथा आश्रय मनुष्य की तीन बुनियादी आवश्यकताएँ हैं । सबसे पहले हमको इन्ही तीन प्रश्नो पर विचार करना है । वस्तुतः अगर इनका हल हम कर ले तो पूरी तरह सुखी हो सकते हैं । हमे यह देखना है कि समस्त आबादी के स्वस्थ जीवन धारण के लिए कितने और किस प्रका के भोजन की आवश्यकता है और उसमे कितना अनाज, कितना दूध घी, कितना नमक-मसाला, कितना फलादि चाहिए । फिर सिर्फ आबादी की भोजन सामग्री मानव की मौलिक से ही बस नही होता । हमे यह भी देखना है कि आवश्यकताएँ भोजन के अलावा, मवेशियों के लिए, बीज के लिए, रिजर्व के लिए और दूसरी-दूसरी मदो के लिए कितनी और सामग्री चाहिए । आज से जो बढती सामग्री की आवश्यकता होगी वह कहाँ से आवेगी । आज जितनी जमीन है उसी पर खेती की पैदावार बढाकर कुल आवश्यक अनाजादि सामग्री पूरी हो सकेगी क्या ? अगर पैदावार बढाई जा सकती है तो किस हद तक ? इससे आवश्यकता अगर पूरी न हो तो और खेत कहाँ से आवे ? फल के लिए जमीन का प्रबन्ध कैसे किया जाय ? पैदावार बढाने के लिए और क्या क्या साधन चाहिएँ, कितनी खाद और पानी चाहिए । वे साधन कहाँ से आवे ? क्या खेती के आज के तरीके पर ही साधन

बढ़ाने से काम चलेगा या तरीकों को ही बदलना है ? अगर तरीका बदलना है तो उसकी रूप-रेखा क्या हो ? आज के तरीके मे क्या-क्या दोष हैं ? क्या रुकावटें हैं ? आज जिस तरह छोटे-छोटे टुकड़ो मे ज़मीन बँटी है उसे कैसे मिलाया जाय ? इस प्रकार चकबन्दी के लिए अनुकूल परिस्थिति है या नही । अगर नही है तो इसे बदलकर चकबन्दी करना श्रेय होगा क्या ? अगर श्रेय है तो किस उपाय से उसे करना है ? आज कानूनी बाधाएँ क्या हैं ? किसानी कानून मे आज जैसी ज़मीदारी तथा विभिन्न किस्म की काश्तकारी दर काश्तकारी आदि

कुछ प्रश्न

का सिलसिला कायम रहते हुए चकबन्दी की योजना चल सकती या नही । यदि नहीं चल सकती तो उसमें किस प्रकार से और क्या क्या तब्दीलियाँ करनी हैं । खेती अलग-अलग काश्तकार-द्वारा अलग हो या सम्मिलित । अगर सम्मिलित खेती ही श्रेय है तो इसके होने मे क्या-क्या बाधाएँ हैं । कितनी कानूनी बाधा है, कितनी सास्कृतिक ? अगर सम्मिलित खेती होती हो तो क्या ज़मीन की मिल्कियत सम्मिलित हो ? या ज़मीन की मिल्कियत व्यक्तिगत रूप से रखकर सहकारी सिद्धान्त पर सम्मिलित खेती हो ? इस प्रकार के संघटन का क्या स्वरूप हो ? उसका निरीक्षण आदि कौन करे ? व्यक्तिगत रूप से औसत कितनी ज़मीन का प्रबन्ध प्रति किसान परिवार के लिए करना होगा ? विभिन्न अनाजो की खेती का बँटवारा किस अनुपात से करना होगा ? आज जितने खेत पर दोहरी या तेहरी खेती होती है उससे ज्यादा खेत पर एक से अधिक फसल हो सकेगी या नहीं ? इस प्रकार खेती किस हद तक बढाई जा सकती है ? इसके साथ ही हमें इस बात पर विचार करना है कि क्या कुल भूमि पर हमेशा खेती होती रहे या कुछ साल बाद बारी बारी से आराम देने के लिए परती छोड़ी जाय ।

आज प्रान्त मे खेती के लिए हलादि जिन औजारों का इस्तेमाल होता है वे काफी है या उनको बदलना होगा ? बदलना श्रेय होगा

या नही ? अगर बदलना हो तो कितना साधन चाहिए ? उतना साधन प्राप्त हो सकेगा क्या ? अगर साधन बिना बदला नही जा सकता हो या हमारी खेती की स्थिति को देखते हुए उन्हे बदलना श्रेय न हो तो मौजूदा औजारों मे क्या-क्या परिवर्तन करना होगा।

मज़दूरों की समस्या क्या है ? खेती मज़दूरों से कराई जाय या खुद किसान काम करे ? अगर मज़दूर चाहिएँ तो किस स्थिति मे और किस अनुपात से ? ऐसे मज़दूरों की मज़दूरी क्या होनी चाहिए ?

तीन साल पहले आगरा जेल से मै जो पत्र लिखता था उसमें हमारे यहाँ की जमींदारी प्रथा की हानियों का जिक्र रहता था। हमको भावी व्यवस्था की योजना बनाते समय इस समस्या पर विचार कर लेना होगा। यह प्रथा रहेगी या हटेगी ? अगर हटेगी तो उसका क्या तरीका होगा ? मौजूदा जमींदारों को क्या मुआवज़ा मिलेगा ? उनके लिए रोजी की समस्या किस प्रकार हल होगी ? जमीदारी हटने पर सरकारी वसूल तहसील पर क्या असर पड़ेगा ? आज कितनी मालगुज़ारी सरकार को मिलती है और किसान कितना लगान देता है ? लगान के अलावा गैरक़ानूनी तरीके से कितनी रकम और जमींदार को देनी पड़ती है। जमीदारी प्रथा हटने पर सरकार किसान से कितना लगान लेगी, इत्यादि बातों पर बिना विचार किये एकाएक कोई योजना बना लेने पर वह व्यावहारिक नहीं हो सकेगी।

तुमको मालूम है, हमारा प्रान्त गाय-भैंस के लिए काफी मशहूर है। वैसे तो पंजाब और सिन्ध की गाये ही अच्छी होती हैं, लेकिन बाहर युक्तप्रान्त से ही घी आदि सामान का चालान जाने से यह प्रान्त काफी विख्यात है। इस दिशा मे हमको सोचना है कि जितने बैल और भैंसे आज जोताई के लिए हैं वे काफी हैं या उन्हें बढ़ाना होगा। किस तादाद मे बढाना है या इनकी नस्ल सुधार कर इनकी कर्मशक्ति को बढ़ाना है ? ऐसा सुधार किस तरीके से किया जा सकता

है ? उन्नत बैलों के एक जोड़ा से कितने एकड़ खेत जोता जा सकेगा ? उस हिसाब से कितने बैल चाहिएँ ? आज जितनी तादाद है उससे अधिक या कम ? अगर कम चाहिएँ तो किस उपाय से यह तादाद घटाई जा सकती है ? बैलों की नस्ल-सुधारने के लिए अनिवार्यतः गौओं के प्रति ध्यान देना होगा । इस प्रकार जो गौओ की संख्या बढ़ेगी उनका क्या करना होगा ? उन्हे रखना होगा या कटवा डालना है ? अगर रखना है तो भैंसों के उपरान्त ही रखना होगा क्या ? इस समस्या पर हमे भलीभाँति विचार करना है क्योंकि आज घी के लिए भेंस ही पसन्द की जाती है । अगर हमारे पसन्द-मुताबिक भैंस के घी-दूध का ही इस्तेमाल करने के लिए भैंसो की तादाद बढानी पड़े तो भैंस के उपरान्त गौओं को किस प्रकार रक्खा जा सकता है ? दोनो को रखने के लिए हमारे पास काफी चारा हो सकेगा क्या ? बढते दूध का बाजार हमेको मिल सकेगा क्या ? अगर चारा का साधन नही है और दूध का बाजार नही है तो गाय और भैंसों मे किसे तरजीह देना है ? इस प्रश्न पर आर्थिक, खाद्य गुण, सास्कृतिक तथा धार्मिक सभी दृष्टियों से विचार करना होगा । पशुओं को कितनी खूराक पानी चाहिए ? आज जितना चारा है उससे अधिक चारा कैसे पैदा हो ?

साधनों का सवाल

केवल साधन के प्रश्न हल होने पर ही खेती की समस्याओं का हल नही हो जाता । आज जो प्रति ग्राम ७८।। परिवार खेती मे लगे हैं क्या सभी हमारी संयोजित खेती के काम मे लग जायँगे ? अगर नही तो जितने परिवार आज फालतू खेती के सहारे पड़े हैं उनको निकालने का क्या प्रवन्ध होगा ? उनको दूसरा क्या काम देना होगा ?

भूमि का भार कैसे कम हो ?

वस्तुतः आज प्रायः सभी लोग यह महसूस करते है कि खेती पर आदमी का बोझ बहुत ज्यादा है । लेकिन वे सब इसलिए किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं कि उनके सामने खेती मे से आबादी को निकाल

कर क्या काम दे, इसका स्पष्ट जवाब नही है। अत· देहाती समस्याओं का हल अधिकतर इस बात पर निर्भर करता है कि जमीन पर के इस बोझ को किस तरह हल्का किया जा सकता है। खेती की उन्नति की समस्या पर विचार करने के बाद हमको उन ज़मीनों की समस्या पर सोचना होगा (१) जो खेती लायक हैं लेकिन किन्हीं कारणों से आज लोग उनमे खेती करते नही, (२) जो खेती लायक हैं लेकिन अब तक उन्हे खेत के लिए तैयार नही किया जा सका और (३) जो आज ऊसर हे लेकिन वैज्ञानिक तरीके से खेती लायक बनाई जा सकती हैं। उनमें से किस किस्म की और कितनी हमे अभी खेती मे शामिल करनी है, कितनी और किस किस्म की जमीन पर बाग तथा ईंधन के लिए पेड़ लगाने हैं, और किस किस्म की और कितनी ज़मीन आगे आने वाली बढती आबादी के लिए छोडनी है। आखिर हम कोई भी योजना बनावेंगे तो उसकी अवधि १०।१५ साल तक की हो ही जायगी। उससे कम मे कोई पुनर्गठन की योजना तो बन नहीं सकती है। ऐसी हालत मे जब तक हमारी योजना पूरी होगी तब तक आबादी भी काफी बढ जायगी। उस बढती आबादी का हिसाब जोडकर ही जमीन का हिसाब करना है। केवल क्या चाहिए, इसका हिसाब लगाने से भी काम नही चलेगा। देखना यह पड़ेगा कि नई ज़मीन को खेत मे मिलाने के लिए कितने और किस प्रकार के साधनो की आवश्यकता होगी। हमारी स्थिति में वे प्राप्त हो सकेंगे या नही। अगर प्राप्त होंगे तो उन साधनो को कोई दूसरी अधिक उपयोगी और आवश्यक योजना मे लगाना तो श्रेय नही है।

खेती की समस्याओं पर विचार के सिलसिले मे स्वभावतः ईंधन की समस्या सामने आ जाती है। ईंधन की समस्या के साथ लकड़ी की समस्या गुँथी हुई है। अतः हमको यह देखना है कि आज हमारे प्रान्त मे जितने जंगल हैं उन्हें हम किस तरह इस्तेमाल कर सकते हैं? जगल की व्यवस्था किस प्रकार हो? ज्यादा से ज्यादा ईंधन कैसे प्राप्त

किया जा सकता है। मकानादि के लिए लकड़ी की व्यवस्था किस तरीके से हो, जिससे जंगलों पर बोझ कम पड़े। जगलों की लकड़ी कितनी दूर तक भेजी जा सकती है। उसके लिए क्या-क्या ज़रिये काम मे लाये जा सकते हैं?

मैंने कहा है कि खेती की पैदावार बढाने के लिए खाद और पानी का माकूल प्रबन्ध करना हमारा सर्वप्रथम कार्य होगा। सवाल यह है कि उन्हे किस तरह प्राप्त किया जा सकेगा। खाद के लिए हड्डी, टट्टी आदि चीजों का इस्तेमाल आज की सामाजिक परिस्थिति मे कहाँ तक सम्भव हो सकेगा। इनके लिए क्या क्या बाधाएँ हैं; उन्हें पार करने का क्या उपाय है? रासायनिक खाद काम में लाना चाहिए क्या? अगर चाहिए तो किस हद तक? कहाँ तक उनका प्रचार श्रेय होगा? पानी के लिए नहर, बिजली-द्वारा चालित ट्यूबवेल, कुआँ, तालाब, नदी, नाला आदि साधनो का स्थान क्या है? कहाँ किस प्रकार की व्यवस्था श्रेय होगी? इन प्रश्नो पर इतना मतभेद है, इतने ग़लत ख्यालात हैं कि पूर्णरूप से विचार किये विना किसी प्रकार की योजना आरम्भ करने का मै पक्षपाती नहीं हूँ।

खेती की समस्याओ पर विचार करने के बाद हमें यह देखना होगा कि भोजन-सामग्री और किन उपायों से प्राप्त की जा सकती है? मछलियों की खेती कैसे बढ़ाई जा सकती है? अंडे आदि मांसाहारों का सामान कितना और किस तरह पैदा किया जा सकता है। मांस के लिए पशुओ को पालना कहाँ तक श्रेय और सम्भव होगा?

आज संसार भर में इसी बात पर आँसू बहाया जाता है कि भारत के लोग भूखे हैं, नंगे हैं। दुनियाँ के सामने यह बात इतनी ज्यादा प्रगट हो चुकी है कि यह भूख और नंगापन पैदा करने वाले बृटिश प्रभु लोग भी वैसे नहीं तो आँख मे मिर्चा लगाकर भी थोड़ा आँसू बहा डालते हैं। अतः वस्त्र की समस्या हमारे लिए अन्न-समस्या जितना ही महत्व का प्रश्न है। हमको इस बात का विचार कर हिसाब

लगाना होगा कि हर आदमी को कितना कपड़ा चाहिए ? इतना कपड़ा कहाँ से आवेगा ? चर्खा कौन चलावेगा ? किस समय चलावेगा ? उसके लिए रुई कहाँ से प्राप्त होगी ? आज इसकी कला मृतप्राय है। उसे बढाने का क्या उपाय है ? कला-विशेषज्ञ कहाँ से आवेंगे ? कौन बीनेगा ? कौन बिनावेगा ? क्या सब लोग कातेंगे ? या खास लोगों के लिए सिर्फ कताई का ही काम मुकर्रर किया जायगा। इत्यादि प्रश्नों का उत्तर सतोषजनक रूप से अपनी योजना में होना चाहिए।

रहने के लिए घर द्वार कैसा हो ? आज के घर आवश्यकता की दृष्टि से नाकाफी हैं। जो हैं वे इस ढंग से बने हुए हैं कि स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक हैं। ऐसी हालत में करना क्या ? सब घरों को तोड़ कर नये घर बनवाने होंगे ? अगर ऐसा नहीं करना है तो आज के मकानों को किस प्रकार से सशोधित किया जा सकता है। ग्राम का नकशा क्या होगा। मवेशी कहाँ रहेंगे ? आबादी की ज़मीन की सतह कैसे ठीक हो ? गड्ढे गड़इयों को बन्द करना है या संशोधन करना है। अगर बन्द करना चाहिए तो मकानों के बनाने का क्या इन्तजाम होगा। जिनके पास संतोषजनक घर नहीं हैं उनके लिए नये मकान बनाने चाहिएँ क्या ? ऐसे कितने नये मकान चाहिएँ ? जैसे मकान बनेंगे उनके लिए कितनी जमीन चाहिए ? उतनी ज़मीन आबादी के अन्दर है या नहीं ? अगर नहीं है तो क्या करना होगा ?

अन्न, वस्त्र और आश्रय की समस्याओं पर विचार करने के बाद हमको दूसरी आवश्यकताओं की बात सोचनी है। दूसरे ग्राम-उद्योग क्या-क्या हो सकते हैं ? उनकी रूपरेखा क्या हो, उन्हें कहाँ-कहाँ किया जाय ? सब चीज़ें सब जगह हो सकती हैं या कुछ चीज़ें कुछ खास स्थानों मे ही बन सकेंगी ? जिन चीजों को बनाना सब जगह सरल है उन्हें विस्तृत रूप से सभी जगह बनाने की व्यवस्था की जाय

या खास-खास उद्योगों के लिए ख़ास-ख़ास केन्द्रों का संगठन किया जाय। उन्हें व्यक्तिगत रूप से चलाया जाय या सहयोग-समितियों की मार्फ़त। उत्पत्ति के प्रकरण मे कितना भाग व्यक्तिगत व्यवस्था से हो और कितना भाग समिति का। सरकार की ओर से कुल उद्योग चलाना श्रेय होगा क्या? कच्चे माल का कहा से और किस प्रकार संग्रह किया जाय, उन्हे कौन स्टाक करे? माल का बँटवारा किस तरह हो; उसके लिए किस प्रकार का संघटन हो सकता है? उद्योग-शिक्षा की क्या-क्या व्यवस्था सम्भव है; उसके लिए तरीका क्या होगा? इसकी रूपरेखा और सिलसिले पर भी विचार करना पड़ेगा। उपर्युक्त बातो पर कोई निश्चित सिद्धान्त तय करने से पहले देखना होगा कि कौन-कौन उद्योग आज मौजूद हैं और उनकी दशा क्या है; कौन-कौन मृतप्राय हैं, जिन्हे प्रसारित करने की आवश्यकता है। कौन-कौन उद्योग मर चुके हैं और उन्हे पुनर्जीवित करना है। क्या ऐसी भी किसी चीज़ की आवश्यकता है जिसकी उत्पत्ति कभी होती ही नही थी और आज उसके लिए नये उद्योग की सृष्टि करनी होगी। अपनी योजना के लिए यह भी तय करना होगा कि कौन-कौन उद्योग पहले शुरू करना है और किस क्रम से दूसरे उद्योगो का प्रसार किया जायगा। ग्राम-उद्योग की योजना के लिए यह आवश्यक है कि हम यह जान ले कि सारी उत्पत्ति के लिए क्या क्या कच्चा माल चाहिए और उन्हे प्राप्त कहाँ से किया जाय? कितनी खेती और बाग़ से पैदा करना होगा, कितना और क्या-क्या सामान प्रान्त के अन्दर के जंगलों से प्राप्त किया जा सकेगा, कितना प्रान्त के बाहर से मँगाना होगा।

हम चाहे जितना स्वावलम्बन के आधार पर अपनी योजना बनावे, गाँव मे उत्पन्न हुए माल मे से देहात की आवश्यकता पूरी करने के बाद जो माल बचेगा उसकी बिक्री का क्या प्रबन्ध होगा, इसको भी तय करना होगा। सहयोग-समितियाँ बनेगी या बनियों को बेच देना

होगा। अगर बनियों की मार्फत बेचना होगा तो उन पर कुछ अनुशासन होगा या नहीं। अगर अनुशासन रखना है तो कौन इसकी ज़िम्मेदारी ले—सरकार या उत्पादक समितियाँ ?

मैंने पिछले पत्र मे बताया है कि 'बेकारी की समस्या जटिल है और हमारे प्रान्त की बेकारी की स्थिति कितनी भयानक है। हमको इस प्रश्न पर गम्भीर विचार करना होगा कि जितनी आबादी है उस को किस तरह काम मे लगाया जाय। जितने परिवार खेती मे लगेंगे वे ज़मीन पर पूरा काम पा सकते हैं क्या ? अगर खेती से पूरा काम सम्भव नहीं है तो खाली समय मे किसान क्या करे ? खेती मे खपने के बाद बाकी आबादी के लिए क्या-क्या व्यवस्था सम्भव है। कितने ग्राम-उद्योगो मे खपेंगे और कितने नौकरी-चाकरी मे, कितने जंगल की व्यवस्था मे लगेंगे और कितने बड़े-बड़े केन्द्रीय उद्योगों मे काम करेंगे ? मज़दूरो की मज़दूरी का क्या सिद्धान्त हो ? उस सिद्धान्त से चलने पर काम चलेगा या नही ? इन सब बातों का पूरा-पूरा विचार करना होगा। क्योंकि बेकारी की समस्या हल करने और न करने पर ही इस योजना की सफलता और विफलता निर्भर करती है।

स्वास्थ्य की समस्याएँ क्या-क्या हैं ? ग्रामीण जनता का सुधार किस तरह हो सकेगा ? नाबदान कैसा बने ? गलियों का संस्कार कैसे हो ? नालियों के पानी का क्या-क्या उपयोग हो सकता है। टट्टियाँ कैसे बनें ? उनका इस्तेमाल किस प्रकार हो, इस प्रश्न को हल करने मे प्रथा का अड़ंगा दूर किया जा सकेगा क्या ? इस कठिनाई को कैसे पार किया जा सकेगा ? खेल-कूद व्यायामादि का संघटन करना होगा क्या ? अगर करना है तो किस प्रकार ? आमोद-प्रमोद के लिए किस-किस प्रकार के कार्यक्रम बनाये जा सकेंगे ? प्रसूति और शिशुपालन की शिक्षा किस प्रकार की हो ? क्या प्रसूतिगृह अलग बनाना है ? जब सब स्त्री पुरुषों के लिए काम निश्चित करने बैठेंगे और सब लड़कों को पढने भेज देंगे तो छोटे बच्चों की देख-भाल कौन करेगा और उसका

तरीका क्या होगा। डाक्टर वैद्य धात्री आदि की कैसी व्यवस्था करनी होगी। सारी आबादी की आवश्यकता के लिए काफी हों, इतने डाक्टर वैद्य आदि आज प्रान्त मे हैं क्या? अगर नहीं हैं तो नये लोगों को तैयार करने के लिए शिक्षा का क्या प्रबन्ध हो? कहाँ तक विश्वविद्यालयों में प्रबन्ध हो सकेगा, कितनों को व्यक्तिगत रूप से डाक्टर वैद्यों के साथ-साथ शिक्षा दी जा सकेगी? बरसात के पानी के निकास की व्यवस्था किस प्रकार हो? पानी का स्वाभाविक ढाल है या नही, इसकी जाँच करनी है। अगर नहीं है तो जो पानी रुकता है उससे किस प्रकार की समस्याएँ पैदा होती हैं। उनका हल क्या हो सकता है? क्या गढ़ैयाँ खाल आदि के सुधार का कुछ प्रबन्ध हो सकता है? फसली और संक्रामक रोगों का क्या क्या प्रतीकार संभव है और उनकी व्यवस्था किस प्रकार की हो?

शिक्षा और संस्कृति की उन्नति कैसे की जाय? कितने बच्चों को पढ़ाया जा सकेगा; कितने विद्यालयो की आवश्यकता होगी? किनकी किनकी पढ़ाई की व्यवस्था की जाय? आज प्रौढ़ साक्षरता की बहुत धूम सुनाई देती है। कहाँ तक उन्हे पढ़ाया जा सकता है? साक्षर बनाकर छोड़ देना है या उसे कायम करने के लिए कुछ खास कार्यक्रम रखना होगा? प्रौढ़ो के लिए और बच्चों के लिए पढ़ाई के रास्ते मे क्या-क्या क्या रुकावटे हैं और उन्हे किस प्रकार से पार किया जा सकता है? किस प्रणाली की शिक्षा होनी चाहिए? किस प्रकार के और कितने साधनों की आवश्यकता होगी? शिक्षा के कौन-कौन विभाग होंगे; रूप रेखा क्या होगी; इस पर विचार करने के बाद हमको यह तय करना होगा कि औद्योगिक, कृषि सम्बन्धी, सांस्कृतिक और साधारण शिक्षा सबके लिए विद्यालयों का प्रबन्ध करना होगा या कुछ शिक्षा ग्रामीण कार्यों के साथ-साथ होती रहेगी। इसके लिए गाँव का वायुमंडल किस प्रकार का बनाना होगा? अनुष्ठानादि की मार्फत भी सांस्कृतिक शिक्षा हो सकती है; उन्हे किस तरह संघटित किया जा

सकेगा ? इतने विस्तृत पैमाने मे शिक्षा का प्रसार करने के लिए जितने शिक्षको की आवश्यकता होगी उनके लिए आज की पढी हुई जनता की तादाद काफी है क्या ? अगर काफी नही है तो किस तरह शिक्षा-प्रसार की व्यवस्था की जाय ? अगर तादाद काफी है तो क्या उनकी शिक्षा तथा दृष्टिकोण हम जिस प्रकार की शिक्षा का प्रस्ताव करते हैं, उसके अनुकूल है ? अगर नहीं है तो उनको अपने तरीके की शिक्षा देने के योग्य बनाने का क्या प्रबन्ध हो सकता है ? शिक्षा के प्रश्न पर विचार करने के साथ ही ग्रामीण सामाजिक जीवन का संघटन किस प्रकार का किया जा सकता है और उसकी रूप-रेखा क्या होगी ? नाटक समाज, भजन-मडली, ग्रामसमिति आदि संस्थाओं का संघटन किस प्रकार होगा, इन बातों का भी निर्णय करना है ।

मैने पहले के एक पत्र मे लिखा था कि हमारे देहातों मे सड़कों का प्रायः पूर्ण रूप से अभाव है । अगर हमको आवश्यक सामान ग्राम-उद्योग से ही प्राप्त करना है और सांस्कृतिक विकास करना है तो यातायात की सुविधा होना अनिवार्य है । इसके लिए हमे सड़क किस प्रकार की बनानी है और कितनी सड़क बनानी है, इसका हिसाब लगा लेना है । हमारे गरीब देश की परिस्थिति मे उन्हें बनवाने का क्या तरीका हो सकता है ।

गाँव के झगड़े-फसाद कौन तय करेगा, यह भी एक जटिल प्रश्न है ? उसके लिए पचायतो का संघटन किस तरह हो सकता है ? पचायत सम्बन्धी आज की परिस्थिति को किस प्रकार तब्दील किया जा सकता है ? गुलामी के कारण इस दिशा मे खराबियाँ आ गई हैं उन्हे किस तरह दूर किया जा सकता है ?

आज गाँव की आर्थिक स्थिति जैसी है उसके रहते हुए हम किस तरह सघटन चला सकते हैं ? आज जिस प्रकार कर्ज लोगों पर लदा हुआ है उससे किस तरह छुटकारा मिल सकता है ? भविष्य मे कर्ज की व्यवस्था कैसे होगी; महाजनों को संघटित करना होगा या जनता

अपनी सोसाइटी की मार्फत व्यवस्था कर सकेगी ? अगर उनको अपना प्रबन्ध करना है तो उसके लिए पूजी कहाँ से आवेगी ?

सारी योजना चलाने के लिए सघटनों का स्वरूप किस प्रकार हो सकता है ? सरकारी संघटन कैसा हो और ग्रामीण व्यवस्था किस प्रकार की हो ? ग्राम-संघटनों पर किस हद तक सरकार का कट्रोल हो ? दोनों व्यवस्थाओं का पारस्परिक सम्बन्ध किस प्रकार का होना चाहिए ? सरकारी तथा ग्रामीण संघटनों को चलाने के लिए जो खर्च होगा वह रकम कहाँ से और कैसे वसूल की जाय ? जो सुधार-योजना बनेगी उसके लिए कितनी पूँजी चाहिए ? वह पूँजी कहा से प्राप्त की जायगी ? इत्यादि बातो पर पूर्ण रूप से विचार कर लेने पर ही हम भावी व्यवस्था के बारे मे कोई निश्चित नीति तय कर सकेगे। वस्तुतः अब तक सारी सुधार योजनाएँ, इसी बात पर खत्म कर दी जाती हैं कि सरकार के पास पैसा नही। पिछले दिनों कांग्रेस सरकार का भी यही रोना था। तुम योजनाएँ तो लम्बी लम्बी बना सकती हो लेकिन साथ-साथ इसका भी व्यावहारिक प्रस्ताव होना चाहिए कि योजना चलाने के लिए पैसा कहा से आवे ? और वह पैसा जुटाने मे जनता पर कर-भार बढ न जाय, इसका भी ख्याल रखना है। कार्यक्रमो के सचालन के अलावा जब हमारी परिस्थिति ऐसी है कि गाव मे कोई काम है ही नही और सभी काम नये सिरे से करना है तो पूजी की समस्या जटिल होगी। इसलिए ही मै पूजी और खर्च के सवाल को महत्व देता हूँ।

मेरे इस प्रकार एक सास मे इतनी समस्याओं और प्रश्नों का जमघट लगाते देख तुम परीशान होती होगी। कहोगी, भले आदमी प्रश्न पर प्रश्न करते ही चले जा रहे हैं, कही रुकोगे भी ? लेकिन अगर प्रान्त भर के देहातों को फिर से गढ़ने के लिए क्या तरीका होगा, उस पर विचार करना है तो ये सब प्रश्न तुम्हारे सामने निश्चित रूप से आवेगे ही। वस्तुतः अगर हम ऊपर-लिखे प्रश्नो का

संतोषजनक उत्तर दे सकें तो वही हमारे काम की योजना हो जायगी। लेकिन अगर मैने प्रश्नो का स्तूप बहुत भारी बना दिया है तो आज अब और नहीं लिखूँगा। कुछ समय इन पर विचार कर लो, फिर मै अपने विचार प्रकट करने की चेष्टा करूँगा।

---

[१०]

समस्याओं का समाधान

४-६-४४

पिछला पत्र लिखे एक माह से अधिक हो गया है। अब तक तुमने उसमे लिखे प्रश्नों पर विचार कर लिया होगा। आज के पत्र में मै कुछ अपनी बताई समस्याओं पर क्या करना चाहिए, यह लिखने की चेष्टा करूँगा।

आवश्यक भोजन सामग्री—मैने कहा है सबसे पहले हमको भोजन के प्रश्न पर ही विचार करना है। यह सभी जानते हैं कि हमारे यहाँ खाना सबको नही मिलता है। इस प्रान्त को लोग हिन्दुस्थान का अनाज गोदाम कहते हैं। फिर भी यहा की क्या परिस्थिति है, पहले के पत्र मे लिख चुका हूँ। भारत मे केवल ३६% लोगों को पेट भर खाना मिलता है। बाकी ४१% को थोड़ा खाना मिलता है और २०% तो प्रायः अनशन मे ही काटते हैं। यह राय मेरी नहीं है बल्कि-मेजर जेनरल सर मेगा की है जो इंडियन मेडिकल सर्विस के डाइरेक्टर-जेनरल थे। यह हिसाब शहर और गाव दोनों का है। केवल गाव का हिसाब अगर अलग जोड़ा जाय तो हालत इससे भी ख़राब होगी। अपने प्रान्त की ही स्थिति को अगर लिया जाय तो मालूम होगा कि यहा अनाज की कितनी कमी है। युक्तप्रान्त की सरकार ने खेती का जाच करने के लिए १९३९ मे एक कमेटी बनाई थी। उसका कहना है कि हमारे प्रान्त में २,३५,०१,००० मन आटा और दाल

की कमी है जब कि यह हिसाब लगाने के लिए प्रति व्यक्ति की खूराक मानी गई है ८ छटांक अनाज, और २ छटाक अन्य सामग्री। लेकिन यह सब हिसाब, आज साधारणतः जो भोजन का प्रकार है उसी पर लगाया गया है। हमको अगर भावी समाज को बनाना है तो हमारी भोजन-सामग्री इस प्रकार की और ऐसी होनी चाहिए जिससे हमारी समस्त जनता शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य अच्छी तरह कायम रख सके। खाना कितना होना चाहिए, उसका माप दुनिया मे खाने के शक्ति-मान से किया जाता है। यानी अमुक खाद्य मे कितनी शक्ति का तापमान होता है। सन् १६४३ में संसार के विशेषज्ञो ने यह तय किया था कि प्रति बालिग़ पुरुष के लिए विभिन्न आबोहवा के लिहाज़ से २५०० से ४५०० क्यालोरी, प्रति स्त्री के लिए २१०० से ३००० क्यालोरी और बच्चों के लिए १२०० से १८०० क्यालोरी शक्ति के भोजन की आवश्यकता है। अभी कुछ दिन पूर्व भारत के बड़े-बड़े व्यापारियों ने एक योजना देशभर के लिए बनाई है। उन लोगों ने विशेषज्ञों से राय लेकर, भारत की आबोहवा का विचार करके औसत प्रति मनुष्य के लिए २६०० क्यालोरी के शक्तिवाले भोजन की आवश्यकता बताई है। कुछ बरबादी का हिसाब लगाकर वे कहते हैं कि हमको २८०० क्यालोरी वाले भोजन की आवश्यकता होगी। इतनी शक्ति के लिए निम्नलिखित भोजन चाहिए:—

अनाज	८ छटाक	तरकारी	३ छटाक	दूध	४ छटाक
दाल	१½ ,,	फल	१ ,,	या मास, मछली	
चीनी	१ ,,	तेल घी	¾ ,,	या अडा	१¼ छटाक

यह हिसाब हमारे देश के भोजन-विशारदो का है।

अपने प्रान्त की देहाती जनता के लिए क्या भोजन होगा, तय करते समय हमे ऊपर बताई भोजन-शक्ति के माप का ख्याल तो करना

होगा लेकिन खाद्य-सामग्री का तर्ज यहां के लोग जिस प्रकार खाना खाने के आदी हैं उसके हिसाब से रखना पड़ेगा। भोजन के केवल शक्ति-माप से ही हम अपने स्वास्थ्य को ठीक नहीं रख सकते। शक्ति-माप चाहे काफी हो लेकिन भोजनान्तर अगर उसे हम पचा नहीं सके तो हमारा स्वास्थ्य कभी ठीक नहीं रह सकता। पचाने में भोजन से तृप्ति और संतोष का कम हिस्सा नहीं है। खाद्य सामग्री के तबियत के अनुकूल करने के लिए जरूरी है कि हम जो कुछ खायँ तृप्ति के साथ खायें। अतः हमारे भोजन का तर्ज ऐसा होना चाहिए जिससे हमारी जनता अपनी आदत के अनुसार पसन्द भी करे। इन सारी बातों का विचार करके मेरे ख्याल से इस प्रान्त की देहाती जनता के लिए निम्नलिखित हिसाब से भोजन-सामग्री चाहिए। इसमें शक्तिमान, स्वाद, आदत सबका उचित ख्याल रखा गया हैः—

आवश्यकता

ब्यौरा सामान	प्रति बालिग़ १६ से ऊपर	किशोर व बालक ६ से १५ साल	प्रति बच्चा ० से ५ साल तक
आटा	एक पाव	ढाई छटांक	एक छटाक
चावल	एक पाव	ढाई छटाक	एक छटाक
अन्य अनाज	आध पाव	डेढ़ छटाक	आधा छटाक
दाल	डेढ़ छटाक	एक छटाक	आधा छटाँक
तरकारी	छः छटाक	छः छटाक	दो छटाक
मसाला	¾ तोला	¾ तोला	×
नमक	डेढ तोला	डेढ तोला	आधा तोला
तेल	आधा छटाक	आधा छटाक	डेढ तोला
घी	डेढ तोला	डेढ तोला	आधा तोला
पूर्ण दूध	आध पाव	तीन छटाक	ढाई पाव
अपूर्ण दूध	डेढ़ पाव	डेढ़ पाव	आध पाव

मीठा	एक छटाक	एक छटाक	एक छटाक
तम्बाकू	आधा तोला	चौथाई तोला	×
फल	आध पाव	तीन छटांक	एक छटाक
खटाई	आधा तोला	चौथाई तोला	×
पकाने के लिए लकड़ी	डेढ़ सेर	डेढ़ सेर	तीन पाव

नोट--पौने चार छटाक दूध के स्थान पर एक छटाक गोश्त, मछली या अंडे से काम चल सकता है।

मैने मसाला बच्चों की आवश्यकता मे शामिल नहीं किया है। लेकिन जब प्रति बच्चे के लिए तरकारी आध पाव और दाल आधी छटांक का हिसाब किया गया है तो कुछ मसाला उसमे पड़ेगा ही। इतना मसाला बालिग और किशोर के लिए जो अनुमान किया गया है, उसमे से बच जायगा। लकड़ी का हिसाब कुछ ज्यादा ही रक्खा गया है। कारण यह है कि इस हिसाब से लकड़ी की व्यवस्था करने पर भी कुछ कम ईंधन मिलने की संभावना हो सकती है।

बच्चों की खूराक की तालिका मे अपूर्ण दूध का समावेश देख कर तुम्हे शायद अच्छा न लगे। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। तुम लोग माता की जाति हो, बच्चो के मामले मे तुम लोगों का चौकन्ना रहना स्वाभाविक ही है। लेकिन गौर से विचार करने पर डर की कोई बात नही मालूम होगी। बच्चो के लिए तो अपूर्ण दूध का अनुपात और भी बढ़ाया जा सकता है। लेकिन सावधानी के लिए मैने सिर्फ आध पाव प्रति बच्चा रक्खा है। वस्तुतः पूर्ण और अपूर्ण दूध का असर बच्चों पर करीब करीब बराबर पडता है। डाक्टर एन. सी. राइट की रिपोर्टो को इस विषय मे काफी प्रमाणित माना जाता है। उन्होंने अपनी रिपोर्ट मे बच्चों को तीन माह तक पूर्ण तथा अपूर्ण (मक्खन निकाला हुआ) पिलाने के प्रयोग का नतीजा बताया है। वह इस प्रकार है:—

	पूर्ण दूध से वृद्धि (औसत)		अपूर्ण दूध से वृद्धि औसत	
	ऊँचाई	वज़न	ऊँचाई	वज़न
बच्चे	.६७ इच	३. ८४ पौड	.६१ इंच	४ ७७ पौड
बच्चियाँ	.४१ —	५ ५४ पौड	.८० इच	४.८० पौड

ऊपर के अंको से मालूम हो जायगा कि पूर्ण और अपूर्ण दूध का असर बच्चों पर करीब-करीब बराबर होता है। बल्कि अपूर्ण दूध का असर कुछ अच्छा ही हुआ है। सम्भव हो सकता है कि दूसरों स्थानो का अनुभव इससे थोड़ा भिन्न हो लेकिन दोनो प्रकार के दूध का असर लगभग समान होगा, इतना तो माना ही जा सकता है। इसका कारण भी साफ है। जहाँ पूर्ण दूध अधिक पुष्टिकर है वहाँ वह अधिक दुष्पच भी है। अपूर्ण दूध के आसानी से पच जाने के कारण उसमे जितनी कमी है उतने अधिक अनुपात मे खाद्यगुण शरीर को मिल जाता है। इसलिए दोनों मे पुष्टि के लिहाज से विशेष अन्तर नहीं पड़ता है। हाँ, एक बात का ख्याल रखना। कहीं यह न समझ बैठना कि बड़ों के लिए यानी जिनकी पाचन शक्ति अधिक है यही बात लागू होगी। फिर भी बड़ों के लिए मैने अपूर्ण दूध का अनुपात ही अधिक रक्खा है इस पर भी प्रकाश डालना आवश्यक है। खाद्य गुण के विशेषज्ञों का कहना है कि प्रति व्यक्ति को ४ छटांक पूर्ण दूध पुष्टि के लिए काफी है। मैने बालिगो के लिए पूर्ण २ छटाँक और अपूर्ण ६ छटाँक तथा किशोर व बालकों के लिए पूर्ण ३ छटाँक और अपूर्ण ६ छटाक दूध की व्यवस्था का प्रास्तव किया है। दोनों दूध इस परिमाण मे देने पर ४ छटाँक पूर्ण दूध से जो पुष्टि मिलती है उससे कहीं अधिक लाभ होगा।

मेरी तालिका के हिसाब से खुराक की खाद्य शक्ति का क्या परिमाण है उसकी जाच करने का साधन मेरे पास यहाँ है नहीं। तुम किसी संस्था की मार्फत इसकी जाँच करा लो लेकिन मेरा अन्दाज यह है कि इसकी खाद्य शक्ति ३००० क्यालोरी से कम न होगी।

ऊपर की तालिका के आधार पर सारे गाँव की तथा प्रान्त की भोजन-सामग्री की आवश्यकता इस प्रकार होगी :—

सामान	बालिग (२८२)	किशोर बालक (१२२)	बच्चे (६६)	योग
आटा	६४३।ऽ२।।	१७३।।ऽ७।।–	३७।।ऽ५।।=	८५४।।।ऽ५।।।≡
चावल	६४३।ऽ२।।	१७३।।।ऽ७।।।–	३७।।ऽ५।।।=	८५४।।।ऽ५।।।≡
दाल	२४१।ऽ६।।≡	६६।।ऽ२	१८।।।ऽ२।।।–	३२६।।ऽ५।।=
अन्यअनाज	३२१।।ऽ६।	१०४ऽ५।–	१८।।।ऽ२।।।–	४४४।।।ऽ४।=
तरकारी	६६४।।।ऽ८।।।	४१७।ऽ८।।।	७५।ऽ१।	१४५७।।ऽ८।।।
मसाला	२४ऽ५	६।।।ऽ४।।।≡		३३।।।ऽ६।।।≡
नमक	४८।ऽ	१६।।ऽ६।।।=	४ऽ४।।।≡	७२ऽ४।।।–
तेल	८०।ऽ६।।–	३४।।।ऽ६।।–	१२।ऽ४।।।	१२७।।।ऽ२।।।=
घी	४८।ऽ	१६।।ऽ६।।।=	४ ऽ४।।।=	७२ऽ४।।।–
मीठा	१६०।।।ऽ३=	६६।।ऽ३=	३७।।ऽ५।।=	२६८ऽ१।।।≡
तम्बाकू	१६ऽ३।–	३।ऽ१।–	×	१६।ऽ४।।=
फल	३२१।।ऽ६।	२४८।।।ऽ।=	३७।।ऽ५।।=	५६८ऽ२।
खटाई	१६ऽ३।–	३।ऽ१।–	×	१६।ऽ४।।=
पूर्ण दूध	३२१।।ऽ६।	२०८।।।ऽ।=	३७।।ऽ५।।=	५६८ऽ२।
अधूरा दूध	६६४।।।ऽ८।।।	४८७ऽ१।।।=	७५।ऽ१।	१५२७।ऽ१।।।=
लकड़ी	३८५६।।।ऽ५	१६६६।।।ऽ५	४५१।।ऽ७।।	५६८१।ऽ७।।

आटे में गेहूँ ४१३), जव २२६), ज्वार ५०), वाजरा १००), और जोन्हरी (मकई) ६२|||)५|||≡ होगी। चावल मे धान ६५४), सावाँ १००), टाँगुन वाजरा कोदो आदि १००|||)५|||≡ होंगे। अन्य अनाजों मे—चना २१६), मटर १५०), जोन्हरी ७५|||)४|= होगी। और दाल मे—अरहर १३५), मूँग-उर्द १२५), और चना ६६||)५||≡ होगा।

पूर्ण दूध मे २८०) दूध के वदले ८०) गोश्त मछली अडा की आवश्यकता है।

ऊपर की तालिका के देखने से मालूम होगा कि खाद्य सामग्रियों को पाने के लिए तीन मुख्य साधनो की आवश्यकता है—(१) खेती (२) वाग़ तथा जगल (३) और पशु।

(१) खेती — खेती के ज़रिये जो खाद्य-सामग्री प्राप्त है उसे प्रधानतः चार श्रेणियों मे विभक्त कर सकते हैं :—(१) अनाज (२) मीठा (३) तेल और (४) तरकारी। तम्बाकू भी खेती से प्राप्य है। लेकिन आज की परिस्थिति मे आवश्यक सामग्री होने पर भी उसे तुम ठीक खाद्य-सामग्री नहीं कह सकती। वस्तुतः हमारी कोशिश यही होनी चाहिए कि इसका व्यवहार क्रमशः कम होता जाय।

अव हमको देखना है कि खेती से हमे कुल कितनी सामग्री लेनी है। इसका हिसाव करने के लिए हमे भोजन के अलावा कितना शहर की आवादी के लिए, कितना बीज के लिए और कितना खराव मौसम के रिजर्व के लिए और सामान चाहिए, इसका अन्दाज करना है। सन् १६४१ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट को देखने से मालूम होगा कि हमारे प्रान्त की शहरी आवादी देहाती आवादी की करीव १४ सैकड़ा पड़ती है। लेकिन शहरवालों को पैदावार की सभी चीजे गाँव के लोगों के साथ समान मात्रा मे आवश्यक नही होंगी। खाने-पीने के मामले मे उनका तर्ज-तरीका गाँववालों से भिन्न है। अतः उनकी आवश्यकताओं का अन्दाज करते समय इस वात का विचार

करना आवश्यक है कि वे कौन सामान किस मात्रा मे इस्तेमाल करेंगे।

संयुक्त प्रान्त की सरकार ने सन् १६३६ मे जो खेती-सघटन कमेटी बनाई थी उसने हिसाब जोड़कर बताया है कि इस प्रान्त की खेती के लिए पैदावार का औसत साढ़े सात प्रतिशत अनाज बीज के लिए आवश्यक है। मैने अपने हिसाब में इसी अनुपात से बीज का परिमाण निकाला है; इसमे जो कुछ थोड़ी-बहुत भिन्नता भिन्न भिन्न अनाज के लिए होगी, वह नगण्य है।

अब रही सूखा-पाला आदि दैव-दुर्घटना के लिए रिजर्व की बात। तुम्हे मालूम है कि हमारे देश की खेती प्रधानतः वर्षा पर ही निर्भर करती है लेकिन प्रकृति ने इस देश को वर्षा कुछ अजीब ढंग से दी है। यहाँ की वर्षा का औसत परिमाण ४५ इंच सालाना है। सम्पूर्ण खेती के लिए इतनी वर्षा की आवश्यकता भी नहीं है लेकिन हमारी ऋतुएँ इतनी असमान है कि हम अपने देश की वर्षा को पूरा २ काम मे नही ला सकते। खेती के शाही कमीशन का कहना है कि इधर हमारे देश में जितना पानी बारिश का होता है उसमे से ३५% तो ज़मीन सोख ही नहीं पाती और बहकर फिर समुद्र में जा मिलता है। और अपने साथ वहा ज़मीन पर की सारी उर्वरता भी ले जाता है। इस देश मे बहुत थोड़े समय मे बहुत अधिक वर्षा होने के कारण थोड़े समय के लिए भी अगर अतिवृष्टि या अनावृष्टि हो जाती है तो सारा पंजा चौरस ही हो जाता है। ऐसी हालत में हमारी किसी भी योजना मे दैव-दुर्घटना के लिए रिजर्व का स्थान बहुत महत्व का है। सौभाग्यवश हमारे प्रान्त मे साधारणतः इस प्रकार की दुर्घटनाएँ कम होती हैं, फिर भी कुछ हिस्सों मे कभी-कभी भयानक अकाल की परिस्थिति पैदा हो जाती है। पिछले ४०-५० साल का अनुभव यह है कि इस प्रान्त के किसी किसी हिस्से मे प्रति ६ से १० साल मे एक बार भयानक दुर्घटना हो जाती है। अगर यह मान

लिया जाय कि ऐसी दुर्घटनाओं मे साधारण पैदावार की २५ °/₀ पैदावार ही रह जाती है तो अब तक की परिस्थिति मे प्रति वर्ष आवश्यकता का १० सैकड़ा सामान रिजर्व रखते जाने पर ही काम चल सकता है। लेकिन योजनानुसार यातायात की सुविधा की मात्रा काफी बढ़ जायगी जिससे जल्दी से दूसरे क्षेत्रों से मदद पहुँचाना आसान हो जायगा। अतः हमको इस मद में औसत सारे प्रान्त की औसत के आधार पर ही निकालना है। फिर हम जब सारे क्षेत्र का पुनर्गठन करेंगे तो सिंचाई आदि का माकूल इन्तज़ाम करके वर्षा की असमानता से बचत का उपाय करेंगे ही। फिर भी मेरी समझ मे कम से कम भोजन के लिए जितना सामान चाहिए उसका ४ प्रतिशत सामान तो रिजर्व के लिए आवश्यक होगा। इस प्रकार प्रान्त को प्रति ग्राम कुल अनाज और उसके लिए भूमि निम्नलिखित मात्रा मे चाहिए।

ब्यौरा अनाज	भोजन	रिजर्व ४%	शहर के लिए प्रतिशत	शहर के लिए तौल	जोड़	बीज ७॥शत	कुल जोड़	पैदावार प्रति एकड़	आवश्यक भूमि एकड़ में
गेहूँ	४१३ऽ	१६ऽ	१५·०	६२ऽ	४९१ऽ	३७ऽ	५२८ऽ	१३ऽ	४०·६
जव	२२९ऽ	९ऽ	६·०	१४ऽ	२५२ऽ	१९ऽ	२७१ऽ	१३।।ऽ	२०·७
ज्वार	५०ऽ	२ऽ	४·०	२ऽ	५४ऽ	४ऽ	५८ऽ	७ऽ	८·४
बजरी	१००ऽ	४ऽ	४·०	४ऽ	१०८ऽ	८ऽ	११६ऽ	५ऽ	३·२
चना	३०७ऽ	१२ऽ	१०·०	३०ऽ	३४९ऽ	२४ऽ	३७३ऽ	१०।।ऽ	३५·६
जोन्हरी	१४०ऽ	५ऽ	५·५	८ऽ	१५३ऽ	११ऽ	१६४ऽ	१३।।ऽ	१२·१
मटर	१५०ऽ	६ऽ	८·०	१३ऽ	१६९ऽ	१३ऽ	१८२ऽ	१०।।ऽ	१७·४
चावल	६५४ऽ	२६ऽ	१५·०	९८ऽ	७७८ऽ	५६ऽ	८३४ऽ	१०ऽ	८३·४
सावां	१००ऽ	४ऽ	×	=	१०४ऽ	८ऽ	११२ऽ	१४ऽ	८·०
कोदो	१०१ऽ	४ऽ	×	=	१०५ऽ	८ऽ	११३ऽ	१४ऽ	८·१
अरहर	१६९ऽ	७ऽ	१०·०	१७ऽ	१९३ऽ	१४ऽ	२०७ऽ	१२ऽ	१७·२
उर्द	११२ऽ	४ऽ	१०·०	११ऽ	१२७ऽ	९ऽ	१३७ऽ	९ऽ	१५·१
मग	४४ऽ	२ऽ	१०·०	५ऽ	५१ऽ	३ऽ	५४ऽ	९ऽ	६·०

मैंने आवश्यक भूमि के लिए पैदावार की प्रति एकड़ मात्रा आज की स्थिति से ३० सैकड़ा के करीब अधिक रक्खी है। वैसे तो खाद और पानी की व्यवस्था करके ५० सैकड़ा पैदावार बढ़ाई जा सकती है लेकिन सावधानी के लिए बढ़ती की मात्रा को ३० सैकड़ा रखना अच्छा है। इसके उपरान्त पशुओं के खाने के लिए दाना के रूप मे कुछ और अनाज की आवश्यकता होगी, उसका हिसाब बाद को लिखूँगा।

मीठा मे हम गुड़ और चीनी का ही व्यवहार करते हैं। इसके लिए मुख्य साधन गन्ना ही है। हमारा प्रान्त इसकी खेती में विशेष स्थान रखता है। वस्तुतः अगर यह कहा जाय कि सारे भारत के लिए इसकी खेती केवल बिहार और युक्तप्रान्त मे ही होती है तो कोई अत्युक्ति न होगी। ईख के अलावा इस प्रान्त में खजूर और ताड़ के पेड़ भी काफी हैं। इसमे से भी गुड़ और चीनी मिल सकेगी। जब देश में राष्ट्रीय सरकार होगी तो शराबबन्दी का कार्यक्रम अवश्य ही चलेगा। वैसी हालत मे आज जितना खजूर और ताड़ का रस शराब बनाने मे नष्ट हो जाता है वह सब गुड़ और चीनी बनाने के काम आ सकेगा लेकिन ताड़ और खजूर खेती की चीज़ नही हैं। इसलिए उन्हे खेती मे शुमार नही करूँगा। इस मद से जितना गुड़ बनेगा, वह हमारी योजनानुसार आमदनी के अलावा होगा। यहाँ अपने काम के लिए कितना गन्ना चाहिए, उसी का हिसाब करना है।

खाद्य-सामग्री की आवश्यकता की तालिका मे मीठे की कुल आवश्यकता २६८ मन बताई गई है। देहातों मे गुड़ और चीनी दोनों चीज़ों का इस्तेमाल होगा। इनकी मात्रा गुड़ के लिए २००) और चीनी के लिये ६८) होनी चाहिये। इसके लिए गन्ने की आवश्यकता इस प्रकार होगी :—

भोजन के लिए २८६०) गन्ना { २००) गुड़ के लिए १६००)
  { ६८) चीनी के लिए १२६०)

रिजर्व के लिए ४% ११४) गन्ना

शहर के लिए २०% ५७२)

३५४६) + २६६) बीज के लिए = ३८१२)

५३७) प्रति एकड़ की पैदावार के हिसाब से ७.२ एकड़ भूमि चाहिए।

भोजन के लिए आवश्यक १२७ मन २२ सेर १४ छटांक तेल की उत्पत्ति मे तीन सौ तिरासी मन २८ सेर १० छटाक सरसो चाहिए। इसके आधार पर कुल सरसो की आवश्यकता इस प्रकार होगी।

भोजन ३८४)
रिजर्व ४% १५)
शहर के लिए १८% ६८)
} ४६७) + ३४) बीज के लिए = कुल ५०१)

इसी प्रकार तरकारी, मसाला और तम्बाकू की आवश्यकता निम्नलिखित मात्रा में होगी :—

सामान	भोजन	शहर के लिए प्रतिशत	तौल	जोड़	कुल जोड़	पैदावार प्रति एकड़	आवश्यक भूमि एकड़
तरकारी	१४५८)	२.०	२६)	१४८७)	१४८७) जिसमे ५००) आलू होगा	आलू १००)	५.०
मसाला	३४)	२०.०	७)	४१)	४२)	८)	५.६
तम्बाकू	२०)	२०.०	४)	२४)	२४)	२५)	१.०

नोट—इनके अलावा रिजर्व के लिए १ मन मसाला, १ मन तम्बाकू और बीज के लिए २ मन मसाले की ज़रूरत होगी।

मैने अपने हिसाब मे शहर के लिए केवल २% सब्जी की खपत होगी, ऐसा बताया है। तुम कह सकती हो कि जब शहर मे गाव की आबादी की १४% लोक-सख्या है तो इतनी कम सब्जी से काम कैसे चलेगा? यह ठीक है कि शहरवालो को कुछ अधिक सब्जी चाहिए लेकिन तुमने देखा है कि शहर की आबादी के अन्दर भी तरकारी की खेती होती रहती है। और अधिकाश तरकारी वे स्वय अपने यहा कर लेते हैं ऐसी हालत मे वे गाव से शाक-भाजी बहुत कम लेंगे। देहात मे भी जमीन के परिमाण का हिसाब करते समय मैने सिर्फ आलू के लिए ही जमीन की आवश्यकता बताई है। इसका कारण यह है कि मै अपनी योजना मे गाव की रचना इस ढंग से करना चाहता हूँ जिससे घरो के साथ साथ उनके काम की तरकारी हो जाय। आज भी अधिकाश देहातों मे आबादी के अन्दर ऐसी ज़मीन पड़ी है जो सब्जी के लिए इस्तेमाल हो सकती है। जब आबादी की रचना की बात लिखूगा तो इस बात पर प्रकाश डालने की कोशिश करूँगा। फिलहाल इतनी कैफियत काफी होगी।

उपर्युक्त अनाज आदि सामग्री के अलावा हमे पशुओं के लिए दाना भूसा चरी खली नमक आदि सामान भी चाहिए। इनका अन्दाज़ तभी लग सकता है जब अपने काम के लिए प्रति ग्राम कितने जानवर चाहिए, इसका अन्दाज़ लग जाय। पहले यह देखा जाय, हमे दूध कितना चाहिए।

एक सेर दूध मे सवा छटांक मक्खन निकलता है। बाकी पौने पन्द्रह छटांक अपूर्ण दूध होता है। यानी पौने पन्द्रह छटांक अपूर्ण दूध के लिए १ सेर पूर्ण दूध की आवश्यकता होगी। अतः १५२७ मन ११ सेर १४ छटांक अपूर्ण दूध के लिए १६५७ मन पूर्ण दूध चाहिए। इस तरह गोश्त के लिए २८० मन दूध काटकर कुल २२८४ मन दूध की आवश्यकता होगी। गाँव के लोग गाय भैस बकरी और भेड़ का दूध इस्तेमाल करते है। आज प्रति गाँव औसत १६ भेड़ और

५४ बकरियाँ हैं। बकरियों की तायदाद बढाने के लिए हमारे सामने कोई हेतु नहीं है। लेकिन ऊनी माल और खाद आदि के लिए भेड़ की तादाद बढ़ाने मे लाभ हो सकता है। मेरा अनुभव है कि अगर हम प्रति गाव ५० बकरियाँ और १०० भेड़े पाले तो गाँव का काम चल सकेगा। दूध के लिए हमे भैंस के स्थान पर गाय को ही तरजीह देनी है, यह मै पहले ही लिख चुका हूँ लेकिन सवाल यह है कि क्या हम अपनी योजना मे भैंस का कोई स्थान ही न रक्खें ? चाहे जितनी कोशिश करे १५ साल मे भैंस का अन्त नही हो सकेगा। हाँ, उन्हे घटाना तो आवश्यक है ही। व्यावहारिकता की दृष्टि से दूध के लिए निम्नलिखित संख्या मे जानवरो का रखने को प्रस्ताव हम करते हैं:—

२२८४ मन दूध प्रति वर्ष के लिए आवश्यक जानवर

संख्या जानवर		औसत दूध प्रति दिन	कुल दूध प्रतिवर्ष
भैंस	२४	ऽ३ सेर	६५७ऽ
बकरी	५०	ऽ॥ ,,	२२८ऽ५
भेड़	१००	ऽ। ,,	२२८ऽ५
गाय	६५	ऽ२ ,,	११८६।ऽ

आज भारत में दूध का औसत प्रति गाय ५०० पौंड और प्रति भैंस ७०० पौंड बताया जाता है। यह औसत आज की दुर्दशा का है। १०—१५ साल संयोजित चेष्टा के बाद यह औसत तिगुना होना आसान होगा। अतः मैंने अपनी योजना मे गाय और भैंस का जो औसत प्रति दिन का रक्खा है उस हिसाब से वार्षिक १४०० पौंड और २२०० पौंड का औसत पड़ेगा।

उपर्युक्त पशुओ के अलावा खेती के लिए बैल और भैंसों की भी आवश्यकता होगी।

आवश्यक भोजन पाने का उपाय

आज हमारे प्रान्त मे औसत प्रति ग्राम २४७.८ एकड़ ज़मीन पर खेती हो रही है। जिसमें २२.६ सैकड़ा जमीन पर अर्थात् ८६.८ एकड़ पर दोहरी खेती होती है। अर्थात् कुल ४३३.६ एकड़ जमीन जोतनी पड़ती है। इतनी जमीन जोतने के लिए आज ४५ जोड़े बैल और भैसे काम कर रहे हैं। इस तरह आज के बैल से हम प्रति हल ६.३ एकड़ ही जमीन जोत पाते हैं। यह काम बहुत कम है, ऐसा सर्वमान्य है। अपनी योजनानुसार सुधरे हुए बैल अधिक काम कर सकेंगे। शुरू शुरू मे जो जमीन पहले जोती जा रही हैं, हम अपने आवश्यक सामान पाने के लिए उसकी उन्नति करेंगे। परिमित खाद पानी की व्यवस्था करके हम अपनी पैदावार आज से ३० शत बढायेंगे और करीब २३२.२ एकड मे दोहरी खेती करके कुल ५८० बीघा जमीन जोत सकेंगे। यह किस प्रकार होगा, उसका व्यौरा फिर लिखूँगा। फिलहाल इतना बता देना काफ़ी है। गौ जाति की नस्ल सुधार कर हम कम से कम १५॥ एकड़ जमीन एक हल से जोत सकेंगे। इस हिसाब से हमको सिर्फ ३७ जोड़े हल की आवश्यकता है। अब सवाल यह है कि इसमे कितने बैल हों और कितने भैसे। हमको दूध के लिए ६५ गायें चाहिएँ। जानकार लोग कहते हैं कि गौ जाति में बछड़े और बछिया करीब-करीब समान सख्या मे पैदा होती हैं। अभी केन्द्रीय असेम्बली की बहस के रुख से मालूम होता है कि गौओं की हत्या कानून से बन्द कराने के पक्ष में करीब सभी चिन्ताशील हिन्दुस्तानी हैं। अतः खाने के लिए जो कुछ भी जानवर काम मे आवेंगे वे सब बैल ही होंगे। इस तरह जहाँ गाय की आबादी ६५ होगी, वहा बैल की ६० से अधिक नहीं होगी। बाकी १४ भैंसें होंगी। और २४ भैंस की आबादी में १४ भैंसा का होना अनुपात से ठीक भी पड़ेगा। इतने पशुओं के साथ बछड़ा, बछिया, पाड़ा, पाडी आदि बच्चे ६० की सख्या में होंगे। फुटकर जानवरों में

प्रति गाव का औसत १ घोड़ा और २ ऊँट माना जा सकता है।

इतने पशुओं के भोजन की व्यवस्था करनी है। इनके लिए हमे चाहिए चरी, भूसा, खली, दाना, दाल की भूसी और नमक। प्रत्येक जानवर को स्वस्थ और सबल रखने के लिए कितना सामान चाहिए और उस हिसाब से कुल कितने सामान की आवश्यकता होगी उसकी ब्योरेवार तालिका नीचे दी जाती है :—

प्रति जानवर आवश्यक भोजन (प्रति दिन)

जानवर	चरी एकड़ मे	भूसा पुआल आदि	खली	दाना	भूसी	नमक
बैल	$\frac{१}{६}$	ऽ६॥	ऽ।	ऽ॥	ऽ।	ऽ-
गाय	$\frac{१}{१०}$	ऽ५	ऽ।	ऽ।=	ऽ।	ऽ-
भैंस	$\frac{१}{६}$	ऽ६॥	ऽ।	ऽ॥	ऽ।	ऽ-
भैसा	$\frac{१}{६}$	ऽ६॥	ऽ।	ऽ॥	ऽ।	ऽ-
भेड़	.		...	ऽ=	ऽ।=	ऽ०॥
बकरी	...	...	..	ऽ=	ऽ।=	ऽ०॥
घोड़ा	...	ऽ५	ऽ।	ऽ२	ऽ१	ऽ=
बच्चे	$\frac{१}{१२}$	ऽ३	...	ऽ=	ऽ=	ऽ½

मनुष्य और पशु के लिए स्वास्थ्यकर भोजन के वास्ते कुल कितना सामान चाहिए और आज प्रान्त भर में कितना पैदा होता है, जिससे यह अन्दाज लग सके कि हमको करना क्या है? अगर तुम प्रधानतः अनाज की ओर नजर डालोगी तो स्थिति साफ हो जायगी। हमारी भोजन-सामग्री में प्रधान वस्तु अनाज ही है अतः तुम्हारी जानकारी के लिए हमको कितना अनाज चाहिए और कितना आज मिलता है, इसका हिसाब भेज रहा हूँ। इससे तुम ठीक-ठीक समझ सकोगी कि कितने सामान की कमी है और कितना काम हमको करना है। यह हिसाब निम्न प्रकार है।

प्रति ग्राम के लिए आवश्यक अनाज

नाम अनाज	मनुष्यों के लिए मनों मे	जानवरों के लिए मनों में	आज की उत्पत्ति मनो में
गेहूँ	५२८	...	७४३·०५
जव	३७१	...	३४८·२२
चना	३७३	६५	४१६·०२
चावल	८३४	...	५४५·६२
ज्वार	५८	...	६३·२६
बाजरा	११६	...	७८·३७
जोन्हरी	१६४	१४५	१६५·००
कोदो	११३	...	१०७·७०
सावाँ	११२	...	५६·३०
मटर	१८२	१५१	२०४·०६
अरहर	२०७	...	...
उर्द-मूँग	१३६	...	७३·८७
	५४	...	
जव केराई		८३०	...
	योग ३१४८	१२२१	२६६३·५३

इस प्रकार प्रति ग्राम अनाज की आवश्यकता कुल ४४६९८ की है और पैदावार कुल २९६४८ की है। अतः हमारे प्रांत के प्रति ग्राम १५०५८ अनाज की कमी पड़ती है। अर्थात् हमारे प्रांत में अगर सबको स्वास्थ्यकर भोजन देना है तो आज जितना अनाज पैदा होता है उसके उपरान्त १५,४०,९३,९४० मन और चाहिए। अगर हम प्रांत से बाहर जाने वाली अनाज की मात्रा से, बाहर से आनेवाली अनाज की मात्रा घटा दें तो प्रांत की खाद्य-सामग्री की कमी के परिमाण में (१,५५,८५,००० मन—१,१२,४८,००० मन =) ४२,३७००० मन और बढ़ जायेंगे।

इन हिसाबों से तुम समझ सकती हो कि आम तौर पर लोगों का जो ख्याल है कि "अगर हमारा अनाज विदेश जाने से रोका जाय तो हम सारे देश को पेट भर खाना दे सकते हैं" कितना गलत है। मैंने काफी पढ़े-लिखे लोगों को भी इस प्रकार की बातें कहते सुना है। इस तरह का ख्याल इतना गहरा है कि हमारे राष्ट्रीय कार्यकर्ता देहाती सभाओं में भाषण देते समय यहाँ तक कह डालते हैं कि अगर हमारा अनाज विदेश जाने से रोक दिया जाय तो हम एक साल पैदा करके तीन साल बैठकर खा सकते हैं। देखो, हमारी जनता कितनी घोर गलतफहमी में पड़ी हुई है। यह पन्द्रह-सोलह करोड़ मन अनाज की कमी उस प्रांत की है जिसे लोग भारत का गल्ला-गोदाम कहा करते हैं। भला बताओ अगर भारत की परिस्थिति का हिसाब लगाया जाय तो क्या दशा मालूम होगी ?

जमीन का हिसाब और कृषि-सुधार—अब सवाल यह है कि यह बढ़ती अनाज आवे कहां से ? इस प्रश्न से स्वभावतः हमारा ध्यान प्रांत में प्राप्य ज़मीन की ओर जाता है। मैंने पहले के पत्र में बताया है कि हमारे प्रांत में प्रति ग्राम ३४७·८ एकड़ में ही खेती होती है। अगर ८५·८ एकड़ दोहरी खेती की ज़मीन भी जोड़ी जाय तो कुल ४३३·६ एकड़ पर ही कुछ पैदावार हो रही है। इसके अलावा प्रति

ग्राम—(१) ३२·३ एकड़ ज़मीन ऐसी है जिस पर खेती हो सकती है लेकिन सामान्य साधन न होने से लोग जोतते नही (२) ६६·३ एकड़ ऐसी ज़मीन है जिसे विशेष-साधनो से खेती के उपयुक्त बनाया जा सकता है और (३) ४६·८ बीघा ऐसा ऊसर है जिसे वैज्ञानिक आविष्कारो का इस्तेमाल करके, काम में लाया जा सकता है।

अगर खेती की उन्नति करनी है तो किसी न किसी तरह गोबर जलाना बन्द करना ही है। इसका मतलब यह है ईंधन के लिए हमको लकड़ी चाहिए। फिर खाद्य की तालिका मे देखा होगा कि मैने योजना मे हर एक मनुष्य के लिए फल व खाना अनिवार्य बताया है। इसलिए फल और जंगल के लिए पेड़ लगाना जरूरी है। अतः ३२·३ एकड़ ज़मीन तो बाग और जंगल के काम मे ही समाप्त हो जायगी। बाकी दो किस्म की ज़मीनो मे से थोड़ा थोड़ा करके नया खेत बनाया जा सकता है। लेकिन हमको अपनी प्रस्तावित स्थिति पर पहुँचने मे कम से कम १५ साल लग जायँगे। तब तक हमारी आबादी भी काफी बढ़ जायगी। यह ठीक है—शिक्षा, संस्कृति और आर्थिक स्थिति के परिवर्तन के साथ-साथ आबादी की वृद्धि की गति कुछ कम हो सकती है। फिर भी वृद्धि तो होगी ही। इस तरह जो नया खेत बनता जायगा उसे नई आबादी के लिए छोड़ कर ही अपनी समस्या हल करनी होगी। इसका मतलब यह होता है कि आज जितने खेत जोते हैं उतने पर ही खेती की उन्नति करके हमे अनाज तथा अन्य भोजन सामग्री पूरी करनी होगी। यानी आज प्रति एकड़ जितनी औसत पैदावार है हमे उसकी ५०% पैदावार और बढ़ानी है। इसके दो उपाय हो सकते हैं। प्रथमतः प्रति एकड़ पैदावार आज जितनी है उसमे वृद्धि हो, फिर आज जितनी जमीन पर दोहरी खेती होती है उससे अधिक कोशिश इस बात की करनी होगी कि कुछ जमीन पर तीन फस्लें भी हो सकें।

उपज ड्योढी करो

जमीन की पैदावार बढाने के लिए प्रथमतः तीन उपाय बताये जाते हैं—(१) पुराने तरीके के हल आदि औजारों को तब्दील करके आजकल की मशीनो-द्वारा खेती का काम करना। (२) आज जो छोटी छोटी टुकड़ियों में जमीन बँटी है उन्हें मिलाकर चकबदी करना और (३) खाद तथा पानी की माकूल व्यवस्था करना।

ग्राम-सेवा के काम के सिलसिले में मैंने जितने लोगों से बात की हैं प्रायः सबका ही कहना है कि "इस तरह पुराकालीन हल आदि से जमीन को बिना ठीक से जोते हुए, किस तरह खेती सुधर सकती है। आज की वैज्ञानिक दुनियाँ में जो कुछ उन्नत मशीनों का आविष्कार हुआ है उन्हें इस्तेमाल किये बिना हमारा उद्धार नहीं हो सकता है।" इत्यादि। हमारे देश की दुर्दशा देखकर, और युरोप की खुशहाली से मिलान करके लोगों का ऐसा सोचना स्वाभाविक ही है। लेकिन किसी चीज़ पर एकांगी विचार करके निश्चय करना ठीक नहीं।

पश्चिमी देशों से हमारी परिस्थिति की भिन्नता

पश्चिमी देशों की परिस्थिति हमारे देश से भिन्न है। वहाँ दो ही प्रकार की परिस्थितियाँ हैं। युरोप और अमेरिका के खुशहाल देशों को तुम प्रधानतः दो श्रेणी में बाँट सकती हो। एक ऐसे मुल्क जिनपर आबादी बहुत थोड़ी है और इस्तेमाल करने के लिए प्रकृति की देन आबादी के अनुपात से अपार है। दूसरे ऐसे मुल्क जिनपर आबादी तो घनी है लेकिन लूटने के लिए साम्राज्य का विस्तार अपार है। अतः इन दोनों श्रेणियों में से एक के साथ भी भारत नहीं ठहर सकता है। हमारे यहाँ आबादी घनी है; लूटने के लिए न कोई साम्राज्य होनेवाला है न हम उसे श्रेय समझते हैं। अतः यहाँ की परिस्थिति और समस्या मौलिक है और हमें समाधान के लिए मौलिक रीति से विचार करना होगा। न तो हमको आवेश में आकर कुछ कर डालना है और न दूसरी परिस्थिति वाले देशों की नकल ही करना है। अतएव यह कहकर कि दूसरे

देशों में ट्रैक्टर आदि मशीनों से करीब हाथ भर मिट्टी की गोड़ाई करके फस्ल की जड़ों को खुराक लेने के लिए बहुत ज्यादा मौका देते हैं और थोड़ी जमीन पर अधिक फस्ल पैदा कर लेते हैं, और हमारा किसान सदियो की रूढि का गुलाम बनकर नाखून बराबर हल से दो-तीन इंच जमीन जोतकर फस्ल को बढने नही देता तथा अपनी जमीन से थोड़ा-बहुत पैदा करके, सन्तोष कर लेता है, अफसोस करने से कोई लाभ नहीं। अगर हम इन बातो को सोचकर, अपने यहाँ बड़ी-बड़ी मशीने लाने की कोशिश करने लगेगे तो हम थोड़े हिस्सों मे अपना खाका, यूरोप के ढ ग बना ज़रूर लेगे लेकिन अपनी समस्याओ को हल नहीं कर सकेगे। हमें इस सवाल पर गम्भीर विचार करके ही किसी नतीजे पर पहुँचना पड़ेगा।

वस्तुतः केवल पैदावार के अनुपात से ही खेती के तरीको की अच्छाई या बुराई का फैसला करना गलत होगा। पैदावार केवल ज़मीन की जोत पर ही निर्भर नहीं है। भूमि के प्रकार, जलवायु तथा ज़मीन की प्राचीनता और नवीनता पर भी पैदावार निर्भर रहती है। इसके उपरात किसानों के साधन की स्थिति भी उपज के मामले मे महत्व का स्थान रखती है। किन्हीं दो मुल्कों या दो भूमियों की तुलना करते समय उपर्युक्त समस्त बातों का ध्यान रखना होगा। स्पेन मे चावल की प्रति एकड़ उपज अमेरिका की तिगुनी है लेकिन कौन नही जानता कि यात्रिक खेती अमेरिका मे कही ज्यादा उन्नत है। अपने यहाँ ही देखो, एक जिले से दूसरे ज़िलों की पैदावार मे भिन्नता हो जाती है। इतका मतलब यह नही कि ज़िले जिले में हल भिन्न हैं या किसानों की योग्यता मे कमी-बेशी है। तुमको मालूम है कि अमेरिका के कैलिफोर्निया के बागवान बड़े योग्य और उनके ढ ग बिल्कुल वैज्ञानिक हैं। क्या वे हमारे देश के मुकाबले आम की फस्ल पैदा कर सकते हैं? मैंने सुना है कि अमेरिका मे

उपज अधिक होने के और भी कारण हैं

गेहूँ की दो फस्लें एक ही भूमि मे होती हैं। हमारे देश को वरसात की तर्ज और आवहवा इस प्रकार की है कि एक फुट क्या दस हाथ खोदकर जमीन बनाने पर भी एक रवी के अलावा दूसरे किसी मौसम में गेहूँ नही पैदा हो सकता। ज्यादा खुदाई की बात भी शिक्षित जनता की एक प्रकार की माया ही है। कहीं कही अधिक गहरी जोताई से लाभ के बजाय हानि होती है। बंबई की अधिकाश भूमि ऐसी है कि अगर तुम तीन चार हाथ से अधिक जोताई की चेष्टा करोगे तो पत्थर और बजर ही मिलेगा और थोड़ी जोताई से जो कुछ फस्ल मिल सकती है उससे भी हाथ धोना पड़ेगा। फिर ज़मीन की प्राचीनता और नवीनता पर भी पैदावार निर्भर रहती है यह कौन किसान नहीं जानता। तुम देहातों मे चले जाओ और किसानों से बात करो। हर स्थान का हर किसान कहेगा कि अगर उनके पास इतनी ज़मीन हो कि बारी-बारी से कुछ हिस्सा तीन-चार साल में एक बार परती छोड़ सके तो बिना मेहनत के पैदावार बढ सकती है। गोरखपुर के श्री महावीर प्रसाद पोद्दार को तो तुम जानती हो। वे हमारे साथ इसी जेल मे थे। उन्होने एक जंगल खरीद लिया था और उसे कटवाकर खेत बनवाया है। उनका कहना था कि दो-तीन साल से बिना खाद और विशेष परिश्रम से दूनी पैदावार होती है। भारत की खेतिहर सभ्यता हज़ारों वर्ष पुरानी है। यहा कब से खेती की कला का विकास होना प्रारंभ हुआ है इतिहास भी आजतक इसकी ठीक-ठीक गवाही नही दे सका है। अलग-अलग पडित अलग-अलग बात बताते हैं; मोहनजो दड़ो के शिलालेखों के पढे जाने पर कौन कौन विचित्र घटनाओं का आविष्कार होगा, इसका तो अभी कोई ठीक ही नही है। लेकिन यह बात तो सर्वमान्य है कि भारत और चीन संसार के सबसे प्राचीन खेतीप्रधान देश हैं। अतः यहा की भूमि की उर्वरा शक्ति का अत्यधिक ह्रास स्वाभाविक है। यह राय केवल मेरी नहीं बल्कि दुनिया के सभी विशेषज्ञों की है। चौधरी मुख्तियारसिंह जो युक्तप्रान्त सरकार की खेती

सुधार कुमेटी के चेयरमैन थे, 'एग्रीकल्चरल ट्रिब्यूनल ऑव् इनवेस्टिगेशस' के १६ पृष्ठ से निम्नलिखित वाक्य उद्धृत करके इस बात की पुष्टि करते हैं—"नये मुल्को की ताज़ी ज़मीन अपने अंदर पुंजीभूत उर्बरता के कारण अपेक्षाकृत थोड़े परिश्रम से ही सस्ते मे अधिक पैदावार तैयार कर सकती है।" उनका कहना है—"जो लोग भारत की पैदावार की आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, अमेरिका आदि देशों की पैदावार से तुलना करते हैं वे भूल जाते है कि इन मुल्कों को ज़मीन को खेती के लिए तोड़े अभी एक शताब्दी भी नही हुई है अतः वहा अधिक पैदा होना आश्चर्य की बात नहीं।" (चौधरी मुख्तारसिंह रूरल इंडिया पृष्ठ १३)

उपर्युक्त बातों के अलावा किसानों की आर्थिक स्थिति भी पैदावार घटाने का कम कारण नही है। यहा कितनी आबादी है और उस कारण किसानों के पास कितनी कम ज़मीन है, इसका हाल मै लिख चुका हूँ। खेती के शाही-कमीशन ने अपनी रिपोर्ट के ७५५ पृष्ठ पर लिखा हैं—"यह स्पष्ट है कि जहाँ जमीन पर की बढ़ती आबादी के बोझ के कारण किसानो को खराब ज़मीन जोतने के लिए मजबूर हो जाना पड़ता है, वहां की औसत उत्पत्ति मे कमी हो जाती है।" मैने देखा है, किसान कितने ही स्थानों पर, निदान ऊसर पर ही, अनाज वो देते है। हमारे प्रान्त के मनुष्य और पशुओ की बेकारी की मात्रा कितनी है, यह तो मैने तुम्हे लिखा ही है। ऐसी हालत मे किसान बैठे रहने से ऊसर बंजरों को जोतकर वीज डाल देना ही लाभप्रद समझते हैं। क्योंकि कुछ नही से बीज के उपरात कौर भर अन्न भी तो अच्छा ही है। हमारे शिक्षित भाई, जो केवल रिपोर्टों के पन्ने ही उलटते हैं, भूल जाते हैं कि यहाँ की औसत पैदावार के हिसाब मे इस प्रकार की "मजबूरन उत्पत्ति" ('डिसट्रेस्ड प्रोडक्शन') भी शामिल है। ऐसी खेती हमारे प्रान्त मे लाखो बीघे की है। कम खेती होने के कारण खेती के प्रकार मे भी फर्क हो जाता है। विदेशी

हमारे किसानों की विशेषताएँ

औद्योगिक आर्थिक व्यवस्था के कारण हमारी देहाती जनता के पास खेती के सिवा दूसरा कोई धंधा नहीं रह गया है। अतः उन्हें थोड़ी जमीन से ही अपना सारा काम चलाना पड़ता है। उनके पास विभिन्न अनाजों के लिए विभिन्न प्रकार की जमीन तो है नहीं। इसलिए वे एक ही ज़मीन पर कई प्रकार के अनाजों की खिचड़ी बनाकर बो देते हैं। इससे खाने के लिए न सही कम से कम देखने के लिए कुछ अन्न तो हर मौसम में मिल जाता है। हम में से किसी को भी अगर किसानों में रहने का सौभाग्य हुआ हो तो उन्होंने देखा होगा कि सामा काटने के बाद जब उसे वे खाकर खत्म कर डालते हैं तथा कुवारी धान की कटाई में थोड़ी देर हो जाती है और जब किसान भूखे रहकर या आमकी गुठली खाकर "कटिया" की बाट देखता रहता है तब वहाँ उसी बीच घर पर कोई अतिथि आ जाय तो उसका चेहरा कितना मलीन, कितना दीन हो जाता है। और जब हमारे अधिकांश किसानों के पास दो एकड़ से कम ज़मीन है तो प्रायः सभी जमीन पर ऐसा अनाज बोना पड़ता है जैसा उस ज़मीन पर बोना नहीं चाहिए था। इस कारण भी हमारी औसत पैदावार बहुत थोड़ी हो जाती है। फिर यहाँ खाद-पानी की कितनी कमी है, यह तुमको मालूम हो ही गया है। बाहरी मुल्कों से तुलना करते समय इन बातों को भूलने से कैसे चलेगा? यूरोप और अमेरिका के किसानों में प्रत्येक के पास काफी ज़मीन है। उन मुल्कों में या तो आबादी का बोझ स्वभावतः नाम मात्र है या सारे संसार के बाजारों में माल बेचने के लिए अधिकांश जन-संख्या को उद्योग में ठेलकर जमीन पर के बोझ को नाम-मात्र बनाये रखा गया है। वहाँ के किसानों को मजबूरन ऊसर-बंजर नहीं जोतना पड़ता। काफी जमीन होने से जिस खेत पर अनाज अधिक पैदा हो सकता है वहाँ उसे बो सकते हैं। वे ज़मीन को बारी-बारी से परती छोड़ सकते हैं और खाद पानी की माकूल व्यवस्था

कर सकते हैं। विदेशों मे किसानो के पास कितनी ज़मीन है उस का कुछ हिसाब देखना चाहती हो तो नीचे की तालिका की ओर एक नजर डाल लो—

इंग्लैड और वेल्स में—

प्रति किसान की जमीन का परिमाण	कुल किसानो का अनुपात
१ एकड़ से ५ एकड़ तक	१·१ प्रतिशत
५ एकड़ से २० एकड़ तक	५·० प्रतिशत
२० एकड़ से ५० एकड़ तक	६·७ प्रतिशत
५० एकड़ से १०० एकड़ तक	१८·० प्रतिशत
१०० एकड़ से १५० एकड़ तक	१४·५ प्रतिशत
१५० एकड़ से ३०० एकड़ तक	२६·० प्रतिशत
३०० से ऊपर	२४·७ प्रतिशत

जर्मनी मे -

१। एकड़ से नीचे	१·१ प्रतिशत
१। एकड़ से ५ एकड़ तक	४·३ प्रतिशत
५ एकड़ से १२॥ एकड़ तक	१०·४ प्रतिशत
१२॥ एकड़ से ५० एकड़ तक	४८·५ प्रतिशत
५० एकड़ से १२५ एकड़ तक	२१·४ प्रतिशत
१२५ एकड़ से २५० एकड़ तक	७·६ प्रतिशत
२५० एकड़ से ऊपर	२१·२ प्रतिशत

और हिन्दुस्थान में—

१ एकड़ से कम	२३ प्रतिशत
१ एकड़ से ५ एकड़ तक	३३ प्रतिशत
५ एकड़ से १० एकड़ तक	२० प्रतिशत
१० एकड़ से ऊपर	२४ प्रतिशत

ऊपर की तालिका से स्पष्ट हो जायगा कि इस दिशा में दूसरे मुल्कों से हमारी कोई तुलना ही नही की जा सकती।

फिर क्या यह बात सच है कि हमारे यहाँ की पैदावार इतने भयानक रूप से कम है? श्री चौधरी मुख्तारसिंह ने हमे एक तुलनात्मक हिसाव वताया है। उससे तुम जान सकोगी कि जिस कम पैदावार के लिए लोग इतना हल्ला मचाया करते हैं वह कहाँ तक सही है। उनकी तालिका इस प्रकार है:—

नाम मुल्क	गेहूँ बुशेल मे	अन्य अनाज बुशेल मे	जव बुशेल मे	चावल पौंडों में
हिंदुस्तान	११·४	१३·६	१६·२	८·६२
कनाडा	१६·३	४४·३	२५·४	—
युक्तराष्ट्र अमेरिका	११·६	२७·८	२४·८	१०.७६
मेक्सिको	५·०	११·८	—	६.८२
फ्रास	१३·३	१७·८	२५·३	—
स्पेन	६·६	२२·२	२१·२	३२.७०
पुर्तगाल	१७·२	—	११·३	१२.२२
रूस	१०·१	१७·४	१२·८	—
अफ्रिका	१०·६	—	१२·३	—
आस्ट्रेलिया	६·८	१६·५	६·४	—

अभी श्री टाटा आदि ने जो १५ वर्षीय योजना वनाई है उसमे सन् १६३६-४० का जो हाल का हिसाव वताया गया है उसमे भी गेहूँ की पैदावार प्रति एकड़ इस प्रकार है:—

देश के नाम	गेहूँ टनों मे
संयुक्त राष्ट्र	०·३७ टन
कनाडा	०·५२ टन
आस्ट्रेलिया	०·४२ टन
भारत	०·३२ टन

कनाडा, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, रूस और आस्ट्रेलिया मे मशीन की वैज्ञानिक खेती की पराकाष्ठा है। जमीन की नवीनता, बारिश की समता और साधन की अधिकता के होते हुए भी अगर मशीन की खेती का नतीजा भारत की तुलना में इतनी ही भिन्नता रखता है तो मैं कहूँगा कि हमारे किसानो को तालीम देने के लिए विदेशी लियाकत की आवश्यकता नही है। परम्परा से खेती करते हुए भारत के किसानों मे अनुभव के आधार पर खेती कला के ज्ञान का संस्कार-सा बन गया है। वर्षा की असमानता, सिंचाई की कमी, ज़मीन के टुकड़ो में बँटे होते हुए भी जिस निपुणता से यहा के लोग खेती करते हैं उसे देखकर विदेशी विशेषज्ञ स्तभित हो जाते हैं। हमारे किसानों का ज्ञान कितने ऊँचे दर्जे का है, इस बात की तारीफ डाक्टर भोयेलकर साहब की विस्तृत रिपोर्ट तथा खेती की शाही-कमीशन की रिपोर्ट के पन्नों मे भरी पड़ी है। घाघ की खेती-सम्बन्धी जिन उक्तियो का लोग मज़ाक उड़ाते थे, वर्षो की वैज्ञानिक खोजो के बाद उन्हे आज सही बताना पड़ रहा है। इन बातों से समझा जा सकता है कि दूसरे मुल्को मे अगर कुछ अधिक पैदावार है भी तो वह मशीन की जोताई के कारण नही है बल्कि उचित मात्रा में खाद-पानी की व्यवस्था तथा जमीन और फस्ल के उचित बँटवारे के कारण है। नई जमीन की जो खास सहूलियत है उसे तो घलुये मे भी डाल सकती हो। वस्तुतः मशीन की खेती की बाबत हमारी पढ़ी-लिखी जनता मे बहुत गलत-फहमी है। वे वैज्ञानिक खेती और यान्त्रिक खेती मे कोई फर्क नही करते हैं। वस्तुतः वैज्ञानिक खेती बिल्कुल अलग चीज़ है। वैज्ञानिक खेती के मतलब हैं—कितना खाद कितना पानी और ज़मीन की कैसी स्थिति (जिस पर खाद-पानी आदि पौधों के उपयोगी-पदार्थ कायम रह सके) आदि के ज्ञान के साथ खेती। मशीन की खेती तो खेती की विभिन्न प्रक्रियाओ को जल्दी करने का उपाय-

वैज्ञानिक खेती बनाम यांत्रिक खेती

मात्र है, पैदावार बढ़ाने का नही। हम बिना मशीन के वैज्ञानिक खेती कर सकते हैं और मशीन से अवैज्ञानिक खेती भी हो सकती है। मशीन की जोताई मे विशेष नाम न होने पर भी पश्चिम के देशो मे उत्तरोत्तर मशीनो की वृद्धि ही होती जा रही है। इसका वास्तविक कारण पैदावार बढाना नही है बल्कि मज़दूरों की कमी करना है। हम अपने यहा मजदूरो की कमी तो तब करने की सोचेंगे जब सब खाली आदमी काम मे लगने के बाद भी काम बाकी रह जायगा। तब तक तो हमको मौजूदा औज़ारो से सतोष करके उन साधनों की पूर्ति मे सारी शक्ति लगा देना है जिनके न होने से किसान इच्छानुसार खेती करने से मजबूर हो जाते हैं।

मेरे कहने का यह मतलब नही है कि हमको अपने हल आदि औजारो मे सुधार करने की आवश्यकता नही है। सुधार की चेष्टा तो करना ही है। प्रान्तीय सरकार को इस विषय के प्रयोग के लिए विशेष विभाग खोलना पडेगा। मेरा कहना केवल इतना ही है कि हमे आँख मूद कर विज्ञान के नाम पर दूसरे देशो मे इस्तेमाल होने वाले औजारो की नकल नहीं करनी है। हमे अपने देश की सारी परिस्थिति से सामंजस्य रख कर अपने प्रयोग तथा खोज के काम चलाने होंगे।

विदेशी हल और यहाँ की भूमि

अभी थोड़ी देर हुई, मै लिख चुका हूँ कि हमारे यहा वर्षा काफी होने पर भी सारी बरसात थोड़े दिनों मे समाप्त हो जाने के कारण बहुत सा पानी बह कर समुद्र मे चला जाता है। नतीजा यह होता है कि दूसरे मौसम में जमीन की नमी बनाये रखना हमारी खेती की एक विशेष समस्या है। जिन देशों मे पानी सालभर मे बँट कर बरसता है और हिम के कारण दूसरी ऋतुओ मे भी जमीन को नमी मिलती रहती है उन देशो मे गहरी खुदाई करके ज़मीन को उलटने वाला हल फायदे का होता है। लेकिन हमारे देश में, जहाँ बरसात थोड़े दिन होती है और बाकी मौसिम की आबहवा

काफी रूखी होती है वहाँ सीधी और थोड़ी गोड़ाई से भी लाभ हो सकता है। यहाँ उलटने वाले हल से लाभ के बजाय हानि ही होगी। रही जमीन को भुरभुरा बनाने की बात। जहाँ आदमी और बैल बेकार बैठे रहते है वहाँ एक बार के बजाय कई बार जोतने से जमीन उतनी ही भुरभुरी हो जाती है जितनी उलटने वाले हल से हो सकती है। इस तरह किसान जमीन को इच्छानुसार भुरभुरी बना कर भूमि की नमी कायम रखते है। केवल बेकार आदमी और बैलो को काम मे लगे रहने की ही बात नही है बल्कि रवी के लिए खेत जोताई का मौसम ऐसा होता है कि जमीन मे नमी पहुँचा कर उसे बनाये रखने के लिए भी बार-बार जोत कर उस पर बेलन या हेगा चलाना आवश्यक होता है। कार्तिक के महीने मे संध्या से रात तक जोतकर रात भर की ओस पड़ जाने के बाद सुबह सूर्योदय से पहले ही बेलन या हेगे से प्रतिदिन खेतो को दबाते हुए तुमने देखा ही होगा। ऐसा करने से काफी नमी जमा हो जाती है। साथ ही खेत काफी भुरभुरा भी हो जाता है। गेहूँ के खेत को यहा के किसान इतना नरम बना देते हैं कि यह कहावत मशहूर है कि बने खेत पर भरा हुआ घड़ा गिरने से अगर टूट जाय तो समझना चाहिए कि खेत तैयार ही नही हुआ है। तुम कह सकती हो कि अगर सिचाई का पूरा प्रबन्ध हो जाय तो सीचकर उलटने वाले हल से जोतकर भी तो जमीन को उतना ही नरम बनाया जा सकता है और साथ ही नमी भी काफी कायम की जा सकती है। लेकिन सीचकर जोतने से वह बात पैदा नही हो सकती है। सिंचाई से जमीन मे नमी के साथ सर्दी भी आ जायगी जो कि रवी के बीज के लिए लाभदायक नही होती। उसे तो नमी के साथ-साथ गर्मी भी चाहिए और उस गर्मी को कायम रखने के लिए आज के तरीके सर्वोत्तम है। हाँ, बरसात के दो माह जोतने के लिए उलटने वाले हल से लाभ होता है। वर्षा के दिनों मे बार बार उलटने पर काफी दूर तक जमीन सड़ जाने से लाभ हो सकता है। लेकिन एक तो साल में दो

माह का समय इतना कम है और उन दिनों मे जोतने के लिए खेत इतने कम खाली होते है कि इतने थोड़े लाभ के लिए किसान से कई प्रकार के औजारों के रखने की आशा करना बेकार है। यही कारण है कि खेती के शाही कमीशन ने राय दी है कि "यद्यपि भारत की जमीन पर कभी-कभी उलटने वाला हल चलाने मे लाभ होना निःसन्देह है, तथापि उनको अधिक समय तक ऐसी जोताई की आवश्यकता है जिससे जमीन की नमी बनी रहे। अतः जहाँ आर्थिक कारणों से दो हल रखना सम्भव नही है वहाँ सर्वोत्तम हल वही है जो ज़मीन को गोड़ता है लेकिन उलटता नही।" अतएव हमको अगर औजारों की उन्नति भी करनी है तो इन्ही समस्याओं को दृष्टि मे रखकर करनी होगी लेकिन किसी भी हालत में अपनी योजना मे बड़ी बडी मशीनों की नकल करने की सलाह मैं नहीं दे सकता। अगर केवल तर्क के लिए यह मान भी लिया जाय कि मशीनों की खेती से कुछ पैदावार वढ सकती है और उससे वेकारी भी नही वढेगी तव भी हमारी आज की स्थिति मे सारे देश को उन्हें ग्रहण करने के लिए जितनी पूँजी की आवश्यकता होगी उसे प्राप्त करने मे आज की सैनिक गुलामी से अपना गला छुड़ा कर भी आर्थिक गुलामी के नीचे हम दव जायँगे। क्योकि इतनी पूँजी तो उन्हीं देशों से मिल सकती है जो संसार भर चूस कर मोटे वन वैठे हैं। अतः सारी स्थिति पर विचार करते हुए हमे अपनी योजना मे खेती के वर्त्तमान तरीकों को कायम रखते हुए उनकी उन्नति का कार्यक्रम रखना ही श्रेय होगा।

यह सम्भव है कि लोग मुझको प्रतिक्रियावादी कहे। लेकिन प्रगति मे ही उन्नति है, यह वात हमेशा सव जगह लागू नही हो सकती है। सामने गड्ढा होते हुए भी आगे वढने के लिए ही आगे वढते जाना बुद्धिमानी नहीं है। फिर मै आगे वढने से रोकता नही हूँ। मैं केवल इतना ही कहता हूँ कि आँख मूँदकर युरोप के लगाम के साथ आगे न वढकर लोग आँखे खोलकर रास्ता किधर से है उसे देखते

हुए आगे बढ़े। गड्ढा, खाँई बचाकर अगर घूमकर चलना पड़े तो वैसे चलें। मेरा कहना है कि लोग अन्ध प्रगतिवादी न बन कर वास्तविकतावादी बनें। "मक्षिका स्थाने मक्षिका" के दुराग्रह को छोड़कर बुद्धि से विचार कर काम करें।

बस आज इतने पर ही समाप्त करता हूँ। अगले पत्र मे खेती की पैदावार की कमी के जो दूसरे कारण बताये जाते हैं, उन पर कुछ प्रकाश डालने की चेष्टा करूँगा।

आशा है, मेदनीपुर के शिक्षा-केन्द्र का काम सफलता के साथ चल रहा होगा। वहाँ कौन सञ्चालन कर रहे हैं ? मै स्वस्थ हूँ। अपने लोगो के कुशल-समाचार देना। नमस्कार।

---

[११]

समस्याओं का समाधान—२

१२—६—४४

पिछले सप्ताह एक पत्र लिखा था, मिला होगा। आज फिर लिखने बैठा हूँ। इधर जेल भर मे फिर से छूटने का वायुमडल बन रहा है। नये आर्डिनेंस के मुताबिक छः माह की नोटिस मिलती है। पहली नोटिस की मियाद १४ जुलाई को खत्म हो जाती है। लोग सोच रहे हैं कि बहुत से लोग उस दिन छूट जायेंगे। उधर बापू भी जोर लगा रहे हैं कुछ लोग तो जल्दी से स्वराज्य पाने का स्वप्न देखा रहे हैं। जिस बैरक में देखो उसी मे वही एक बात की चर्चा। शायद बाहर भी वही हालत होगी। अपने राम को क्या करना है। "ढेंकी स्वर्ग मे भी जावेगी तो धान ही कूटेगी।" बाहर चर्खा-धुनकी थी, जेल मे भी वही चर्खा-धुनकी कर रहा हूँ। मालूम नही बाहर जाकर अगर कुछ मिलेगा भी तो वह स्वराज्य होगा या स्वदेशी राज। फिर तो अपने

को वही चर्खा धुनकी का राग अलापना होगा। अतः मुझ पर इन बातों का विशेष असर नही है। हाँ, एक फिक्र जरूर लग गई है। ऐसा न हो, कहीं मुझको भी छोड़ दे तो मैंने जो वादा तुमसे किया था कि अपना विचार सब लिख भेजूँगा वह पूरा नही हो पायेगा। बाहर पढने-लिखने की फ़ुरसत ही कहाँ। लेकिन परमात्मा चाहेगा तो मैं इस बार नही छूटूँगा। फ़ैज़ाबाद वाले अधिकारी मुझको कब छोड़ने को कहेंगे? अतः विशेष चिन्ता की बात नहीं।

पिछले पत्रों मे जमीन की पैदावार किस प्रकार बढाई जा सकती है, इसका विचार कर रहा था। खेती के तरीकों को बदलने की बाबत मैं प्रकाश डाल चुका हूँ। अब दूसरे उपाय अलग-अलग टुकड़ियों को मिला कर जमीन की चकबन्दी से खेती के उन्नति करने के प्रश्न पर विचार करूँगा। वस्तुतः जमीन की छोटी छोटी टुकड़ियों मे बँटी रहने की समस्या केवल भारत के सामने ही नही बल्कि सारे संसार के किसानो के सामने है और सब देश के लोग इस समस्या का हल निकालने मे वर्षों से लगे हुए हैं। यह सच है कि ज़मीन छोटी-छोटी टुकड़ियों मे भिन्न-भिन्न मालिकों के पास बँटी रहने से फ़स्ल का उचित बँटवारा नही हो पाता है। नतीजा यह होता है कि विभिन्न प्रकार का अनाज गलत भूमि पर पड़कर पूरे तरह से पुष्ट नही हो पाता। भारत के किसी भी प्रान्त के देहातो मे चले जाओ, तुमको प्रायः एक ही बात सुनने मे आवेगी—"पहले खेती की पैदावार इतनी काफी होती थी कि पेट भर खाना तो मिल जाता था। आज तो धरती माता हमारे प्रति विमुख हैं।" इत्यादि। वे सब दुःख का एक ही कारण "हाय घोरकाल !!" बताकर लम्बी साँस लेकर चुप हो जाते हैं। बेचारे क्या जाने कि उनके दुःख के कारण एक नही हज़ार हैं। यह ठीक है कि जमीन पुरानी होने से उसकी ताकत घटती है। लेकिन वही एक कारण नही है। पहले जो खेती से अनाज अधिक मिलता था उसका एक प्रधान कारण यह है कि उन दिनों ज़मीन की व्यवस्था उचित

प्रकार से हो पाती थी। भारत के प्राचीन काल से ज़मीन का स्वामित्व किसी व्यक्ति का नही था बल्कि ग्राम-पचायत का था। यह सही है कि जमीन की व्यवस्था व जोताई बोआई आज

प्राचीन काल मे के समाजवादी तरीके से नही होती थी। जमीन
भूमि की व्यवस्था परिवारो को खेती करने के लिए दी जाती थी और वे परिवार काफी बड़े-बड़े होते थे। उस समय हमारा समाज बड़े-बड़े एकान्तवर्ती परिवारों की ही समष्टि था। भारत के ग्राम-उद्योग भी बहुत उन्नत हालत में थे। इस कारण भी आबादी की एक बड़ी संख्या उद्योग मे लगी हुई थी। इससे खेती पर बोझ भी कम था। इसलिए गाँव का सारा खेत थोड़े से संयुक्त परिवारो के हाथ मे होता था। एक एक परिवार के पास बड़े-बड़े भूखंड होते थे। एक परिवार के सब लोग जमीन पर अपनी-अपनी अलग मिल्कियत नही सोचा करते थे बल्कि परिवार के सभी लोग सम्मिलित रूप से काम करते थे और सम्मिलित रूप से उसका फल भोग करते थे। एक ही व्यवस्था के अन्तर्गत काफी जमीन होने से किसान शान्ति से विचार कर सकते थे कि किस भूमि में कौन फस्ल बोने से पैदावार अच्छी हो सकती है और वे फस्ल का बॅटवारा उसी ढंग से करते थे। विस्तृत भूखंड अपने पास होने से सिंचाई के लिए कुआँ, तालाब आदि का भी उचित प्रबन्ध करना आसान था। एक साथ बड़े क्षेत्र मे परती छोड़ने के कारण पशुपालन आसानी से हो पाता था और इस कारण हमेशा गोबर की खाद का प्राचुर्य बना रहता था। दुर्भाग्यवश आज किसानों की ऐसा हालन नही रह गई है। अग्रेज़ी राज्य के साथ-साथ युरोप के व्यक्तिगत स्वार्थ भाव का भी आगमन इस देश मे हुआ। क्रमश. लोगो मे स्वार्थ की वृद्धि होने लगी। इस कारण परिवारो का बॅटवारा होने लगा। अंग्रेज ऐसा करने के लिए परिवार के सदस्यो को उत्साहित भी करने लगे। अग्रेजी कचहरी और अग्रेजी विचारकों के फैसले भी इसी दिशा मे प्रगति करने की दृष्टि से होने लगे।

इस तरह बड़े बड़े परिवार और उसके साथ बड़ी-बड़ी जमीन के चक्र टूटकर कांच के टुकड़े जैसे तितर-बितर हो गये।

इसके उपरान्त अंग्रेजी सत्ता की साम्राज्यवादी नीति ने किस विभीषिका के साथ हमारे देश के ग्रामीण उद्योगों को दबा कर पीस डाला इसकी करुण कहानियाँ आज साधारण जनता की आम सम्पत्ति हो गई है। शायद ही कोई होगा जो इन बातों को न जानता हो। उद्योगों के ह्रास के साथ सारी आबादी को क्रमशः खेती की ओर झुकना पड़ा। यह देख कर रोना आता है कि १८६१ से १९३१ तक की अर्ध-शताब्दी के अन्दर किस प्रकार खेती पर बोझ क्रमशः बढता गया है। तब सारे भारत मे खेती पर गुज़र करने वालों की संख्या कुल आबादी की ५८ सै० थी। यह संख्या बढकर १८९१ मे ६१.०६ सै०, १९०१ मे ६६.५ सै०, १९११ मे ७१ सै०, १९२१ मे ७२.८ सै० और १९३१ मे ७५ सै० हो गई। इस कारण भी क्रमशः खेती के हिस्सेदार बढ़ते ही गये।

जमीन के टुकड़े—हमारे प्रभुओ को इतने मे सन्तोष नहीं हुआ। उनको इस बात की तो कोई फिक्र थी नहीं कि जनता मरती है या जीती। उन्हें तो चाहिए था सारी आबादी की ऐसी विभाजित स्थिति जिससे वे चैन से राज करते हुए अनन्त काल तक लूटते रहे। अतः उन्होंने जमींदारी और काश्तकारी कानून ऐसे ढंग से बनाये कि जमीन भी नमक मिर्च वाले पंसारी के दूकान का सौदा जैसी हो गई। ज़मीदारों के सम्मिलित परिवार के टूटने पर वे बँटवारे के कारण छोटे छोटे भूमिखंडो के मालिक रह गये थे। वे उन्हे भी टुकड़ो मे बॉटकर काश्तकारो को किराये पर उठाने लगे। काश्तकार उन टुकड़ों को भी तोड़कर शिकमी काश्तकार बनाने लगे। फिर हर विभाजन के समय ऐसा नहीं होता कि एक तरफ से हिस्सा बना दे। थोडी ज़मीन होने से हर एक व्यक्ति यह चाहता है कि उसको हर प्रकार की जमीन थोडी-थोड़ी मिले, जिससे वह दैवी खतरो से बचा कर दो कौर अन्न

हर माह पा सके। अतः जब कभी ज़मीन का बँटवारा होता है तो हर टुकड़े का हिस्सा हुआ करता है। इस तरह ज़मीन इतने छोटे छोटे टुकड़ो मे बँट गई कि किसी किसी पर हल भी नही चल पाता। अगर ज़मीदारो के बाद काश्तकारों के हाथ मे ही ज़मीन रह पाती तो स्थिति अत्यन्त दुर्दशा की होने पर भी इतनी भयावह न होती जितनी आज है। काश्तकार सहज में शिकमी काश्तकार को ज़मीन नही देते हैं। वे ज्यादा जमीन खुद जोतना चाहते हैं। लेकिन ऐसा नही हो पाया। जमीन पर बोझ बढने के कारण ज़मीदारों के लिए ज़मीन की आमदनी से काम चलना मुश्किल हो गया। ऐसी हालत मे महाजन की तादाद बढने लगी और क्रमशः ज़मीन भी उनके हाथ मे जाने लगी। महाजनो को काश्तकारी से न दिलचस्पी थी और न वे अपनी जमीन के पास रहते ही थे। अतः जमीन की व्यवस्था के लिए ठेकेदारी या दलाली प्रथा की सृष्टि हुई। और धीरे धीरे ठेकेदारी दर ठेकेदारी का क्रम बढ़ता ही गया। इस प्रकार अंग्रेजी सरकार की भूमि-नीति ने खेती की हालत ऐसी बना दी कि किसी प्रकार की उन्नति असम्भव हो गई। पहले सम्मिलित परिवारो की ज़मीन मे कुएँ और तालाब थे; उनका बाँटा जाना सम्भव नहीं था। अतः वे किसी एक की दिलचस्पी या औकात के बाहर की चीज़ होने के कारण क्रमशः नष्ट हो गये। परती छोड़ने की असमर्थता के कारण पशुपालन कठिन हो गया और इस प्रकार उचित मात्रा मे खाद का पाना भी दुर्लभ हो गया।

अतः इधर कुछ साल से ज़मीन की चकबन्दी के लिए जो अन्दोलन मचा हुआ है वह अच्छा ही है। आज शायद ही कोई चिन्ताशील व्यक्ति इसका विरोध करेगा। अब प्रश्न यह है कि चकबन्दी हो कैसे? सन् १६३८—३६ मे कांग्रेसी सरकार ने जो चकबन्दी कानून बनाया था उसके अनुसार मैने भी इसके लिए कोशिश की थी। लेकिन किस तरह मै असफल हुआ था, उसकी कहानी तो तुमको दो साल पहले आगरा जेल से लिख ही चुका हूँ।

ऐसा करना रोग के कारण की ओर न जाकर ऊपरी दर्द को शान्त करने की चेष्टा मात्र है। हमें अगर चकबन्दी की समस्या हल करनी है तो उसके सफल न होने का बुनियादी कारण ढूँढ निकालना होगा। इस प्रश्न को जड़ से हल करने की चेष्टा न होने के कारण जितने प्रयत्न इस दिशा में होते हैं, प्रायः सभी असफल हो जाते हैं। इस प्रश्न पर गहराई से विचार करने से पहले यह देखना है कि आज साधारणतः लोगों की धारणा क्या है? और वे कहाँ तक ठीक हैं? फिर हमें यह देखना होगा कि चकबन्दी के लिए जो उपाय बताया जाता है वह सफल क्यों नहीं होता?

ज़मीन टुकड़ों में रहने देने के विरुद्ध प्रधानतः निम्न-लिखित बातें कही जाती हैं :—

१- छोटे-छोटे टुकड़े अलग करने के कारण जो मेड़ की अधिकता होती है उससे बहुत ज़मीन बेकार चली जाती है।

२- किसानों को अपना हल-बैल लेकर दूर दूर की टुकड़ियों में जाने में समय तथा शक्ति का अपव्यय होता है।

३- लगातार खेत न होने से ठीक से सिंचाई नहीं होने पाती।

इन कठिनाइयों को देखते हुए यह प्रस्ताव किया जाता है कि ऐसा कानून बनाया जाय जिससे किसानों और ज़मीदारों को आपस में खेतों का बदलावन करके चकबन्दी करा दी जा सके। अब देखना चाहिए कि ये बातें कहाँ तक सही या व्यावहारिक हैं। मेड़ के कारण काफी जमीन फँसती रहती है, ऐसा सोचना सिर्फ कल्पना है। आखिर मेड़ों में कितनी जमीन दबती है? फिर चकबन्दी हो जाने से क्या बिना मेड़ के काम चल जायगा? तुमने देहातों में देखा होगा कि एक ही आदमी विस्तृत चक रखते हुए भी मेड़ बाँध कर छोटी-छोटी क्यारियाँ बनाता है। वस्तुतः अलग अलग किसानों की ज़मीन की हद के लिए, सिंचाई की सुविधा के वास्ते, समतल क्यारियाँ बनाने के लिए और बरसात का पानी रोकने तथा खेतों की

खाद बहने न देने के लिए मेड़ों का होना आवश्यक है। हमारे प्रान्त के खेती-विशारद घाघ के ज़माने मे ज़मीन के टुकड़े की समस्या इतनी जटिल नही थी फिर भी उनके दोहो की पॉतियो में "ऊँचा बाँधो मेड़" की वाणी भरी पड़ी है। हाँ, यह हो सकता है कि चकबन्दी हो जाने पर कही कही एक-आध मेंड़ कम कर दी जा सके। लेकि उससे कितनी ज़मीन निकलेगी? अगर कुछ निकलेगी भी तो नगण्य होगी।

किसानो के समय के अपव्यय का प्रश्न भी विशेष महत्व का नही मालूम होता है। आज किसानो के समय का मूल्य ही क्या है? लोग तो वैसे ही खाली रहते हैं। घर पर बैठे तम्बाकू न पीकर हल लेकर खेत खेत घूमना तो अच्छा ही है। न कुछ हो तो फँसे रहने के कारण झगड़ा फसाद मे कुछ कमी हो ही सकती है। आलस्य भी कुछ कम होगा। अतः यह कठिनाई भी कठिनाई मे शुमार करना व्यर्थ है।

हाँ, सिचाई की कठिनाई का प्रश्न कुछ विचारणीय अवश्य है। सिचाई का पानी ले जाने के लिए रास्ते के सवाल पर फ़ौजदारी हो जाना देहात के लिए कोई नई बात नही है। लेकिन चकबन्दीसे सिचाई का फायदा किस अनुपात से होगा। हमारे प्रान्त की कुल खेती के केवल एक तिहाई भाग पर ही सिचाई हो पाती है। उनमे काफी बड़ा हिस्सा उन ज़मींदारो का है जिनके पास बड़ी बड़ी सीर (खुदकाश्त) की ज़मीन है। अगर उनको निकाल दिया जाय तो बाकी खेतों मे से लगभग २५ सैकड़ा ज़मीन पर ही सिचाई की व्यवस्था होगी। आपस मे बदलावन करके चकबन्दी तो वही किसान कर कर सकते हैं जिनकी कुल ज़मीन एक चक लायक हो। ऐसे किसानो की सख्या भी तो बहुत थोड़ी है। सिचाई की सुविधा भी केवल उन्ही को होगी न? इस तरह सुविधा का अनुपात प्रान्त की कुल जमीन का कितने प्रतिशत होगा। मेरे ख्याल से १या २ प्रतिशत से अधिक न होगा। इससे प्रान्त की पैदावार मे जो वृद्धि होगी उससे हमारी समस्याओ का

कुछ भी हल नहीं हो सकता।

वस्तुतः अगर ज़मीन की चकबन्दी करनी है तो ज़मीदारी प्रथा के कारण जो काश्तकार को कभी एक किस्म की ज़मीन नहीं मिल पाती उसका अंत करना होगा। ज़मीदार लाभ के लिए अच्छी जमीन के साथ ऊसर, बाँगर तथा गोयॅड़ के साथ जंगल के पास की जमीन मिलाकर ही अपना खेत हमेशा उठाने की चेष्टा करेंगे। इस कारण काश्तकारों को एक चक जमीन मिलना असम्भव-सा ही है। रही जमींदारों की बात। अगर किसी तरह एक बार आपस में बदलवा कर कुछ जमीन एक चक में बना भी दी जाय तो भी २-१ पुश्त में जब बँटवारा होता रहेगा तो फिर उसका टुकड़ा हो ही जायगा। इतने परिश्रम, इतने प्रचार और इतनी कानूनी तब्दीलियों से भी कितनी जमीन की चकबन्दी कर लोगी। जिस देश में प्रति व्यक्ति एक एकड़ भी भूमि नहीं है, वहाँ अधिकाश काश्तकारों के पास १ या १॥ एकड़ से अधिक खेत नही हो सकता। उनकी सारी जमीन ही तो एक एक टुकड़े के बराबर है। कुछ औरों के पास २-४ एकड़ का हिस्सा होगा, ऐसा समझ लो। इन लोगों को चाहे जितने फायदे की बात कहो वे चकबन्दी करना नही चाहेंगे। विभिन्न ज़मीदारों के कोप का पात्र बनने से अपने को बचाने की सहज चेष्टा के अलावा इस असमान तथा अनिच्छित वर्षा के मुल्क में इतने छोटे काश्तकार एक चक जमीन का खतरा उठाने को हरगिज़ तैयार न होंगे। वे चाहेंगे कि उनको विभिन्न दिशा में विभिन्न प्रकार की ज़मीनें मिलें, क्योंकि इत्तफाक से एक स्थान की फस्ल किसी कारण खराब हो गई तो दूसरे स्थान की फस्ल तो बची रहेगी। इन सब कठिनाइयों को पार करके अगर कुछ बड़े जमींदार या काश्तकारों की जमीन मिला दी जाय तो औसत फायदा कम होगा। ऐसे बड़े काश्तकार कितने हैं जो चकबन्दी से लाभ उठाने में समर्थ हैं।

अतएव चकबन्दी के मसले को हल करने के लिए हमको मौलिक

क्रान्तिकारी उपायों की आवश्यकता

तथा क्रान्तिकारी कदम उठाना पड़ेगा। आखिर चकबन्दी हम करना क्यों चाहते हैं? इसलिए कि खेती के बेढंगी तरीके के बदले व्यवस्थित तरीका काम में लाया जा सके। फस्ल का बँटवारा उचित ढंग से हो; सिंचाई की व्यवस्था हो। परती क्रम से छोड़ी जा सके। इत्यादि। अगर हरएक अपने अपने "सवा डेढ बीघा" खेत लेकर सावाँ-कोदव-धान-उर्द-अरहर" की खिचड़ी वाली खेती करता रहे तो खेती-सुधार किस तरह होगा? खेती की उन्नति के लिए हमें सारी जमीन की निश्चित योजना बनानी होगी। गाँव में कितनी और कौन-कौन ज़मीन में गेहूँ अच्छा हो सकता है, धान अच्छा हो सकता है, आलू अच्छा हो सकता है, इत्यादि बातों की खोज करनी पड़ेगी। यह देखना होगा कि किस साल कितनी और कौन कौन जमीन को सहूलियत से परती छोड़ा जा सकता है। गाँव का स्वाभाविक ढाल किधर है, इसकी जाँच करके हमको यह तय करना होगा कि कुआँ तालाब आदि कहाँ कहाँ रक्खा जाय। लेकिन इस तरह एक चक जमीन आवे कहाँ से? क्या फिर पुराने तरीके के बड़े-बड़े कुटुम्ब पैदा हो सकेंगे? वैसा परिवार तो टूट चुका है। भूत को घसीट कर कहाँ तक लाओगी। अगर उसे लाने की चेष्टा करोगी तो वे भूत तुम्हारे कन्धे पर चढ़कर रीढ तोड़ देंगे। अतः बापू जी जैसा कहते हैं वैसा ही करना पड़ेगा। उनका कहना है "आज की अपनी स्थिति केवल कौटुम्बिक जीवन की है। ग्राम-सुधार का आधार कौटुम्बिक भावना को गाँव तक पहुँचाने पर निर्भर है।" अर्थात् साधारण भाषा में हमें सहयोग के आधार पर सम्मिलित खेती की ही व्यवस्था करनी होगी।

सम्मिलित खेती—सम्मिलित खेती दो प्रकार से हो सकती है। (१) खेत सम्मिलित करके या (२) खेती सम्मिलित करके। खेत सम्मिलित करने का मतलब यह है कि सरकार सबसे खेत लेकर

पंचायत को दे दे, पचायत उसकी जोताई वोआई आदि की व्यवस्था करे। गाव के लोग उसकी मजदूरी करें। मजदूरी देने के उपरान्त व्यवस्था-खर्च काटकर जो अनाज वचे उसे मजदूरी के अनुपात से सवको वाट दिया जाय। खेती सम्मिलित करने से मेरा मतलव यह है कि खेत तो सवका अपना हो केवल खेती करने के लिए वे सव मिल कर सहयोग समितिया कायम करे। इस प्रकार के सहयोग के दो रूप हो सकते हैं—(१) सारे गाँव की एक इकाई और (२) छोटी-छोटी कई इकाइया। मेरी राय मे इन्ही दो मे से कोई एक प्रकार की व्यवस्था हमे चुननी है। सम्मिलित खेती के प्रकार से प्रत्येक आदमी अपने को निःस्व समझने के कारण जमीन से अपनी दिलचस्पी नहीं रख सकेगा। फिर इससे विभिन्न प्रकृति वालों को अपनी व्यक्तिगत रुचि के अनुसार व्यवस्था का रूप वनाने के लिए कतई गु जाइश नहीं रहेगी। यह ठीक है कि व्यवस्थित संघटन मे अगर व्यक्तिगत रुचि ही चलने लगे तो कोई काम आगे नही वढ सकेगा। लेकिन हर एक चीज़ की एक हद होती है। हर व्यवस्था तथा संघटन मे अनुशासन के साथ एक आध जगह अगर मनुष्य—प्रकृति की विभिन्न ऋतुओं का स्वतन्त्र संचालन करने के लिए खाली नही छोड़ा जायगा तो लोगों की भावनाओ का आन्तरिक जमघट उस व्यवस्था और उस संघटन को फोड़कर ही वाहर निकलेगा। हमारी व्यवस्था और सघटन तो चेतन मनुष्य-समष्टि है। जड़यन्त्र या लोहे की मशीन मे भी अगर सेफ्टी वाल्व न हो तो उसका व्वायलर एक दिन फटकर अनर्थ पैदा कर सकता है। फिर हम यह चाहते भी नही कि लोगो के सारे जीवन पर केन्द्र-व्यवस्था का ही अधिकार हो। अतः भविष्य के संघटन तथा उन्नति के लिए सम्मिलित खेती की ही योजना वनाना श्रेय होने पर भी इस वात का प्रयास करना होगा कि इस प्रकार के सम्मेलन की इकाई कितनी वड़ी हो। जिससे मनुष्य तथा पशुओ को कम से कम श्रम पड़े और पैदावार अधिक से अधिक हो। इस सिद्धान्त का ध्यान रखना वहुत आवश्यक

है। कुछ लोग समझते हैं कि कम से कम ३ परिवार का सम्मेलन ठीक होगा। कोई ४ या ५ बताते हैं। मेरे ख्याल से विभिन्न क्षेत्रो में ज़मीन के प्रकार और अन्य परिस्थितियों के हिसाब से इस इकाई का रूप विभिन्न होगा।

प्रश्न यह है कि आज की परिस्थिति मे सम्मिलित खेती हो सकती है क्या? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमको यह तय करना होगा कि हमारी सम्मिलित खेती का रूप कैसा हो। पहले लिख चुका हूँ कि हमारे सघटन की इकाई ग्राम-समिति होगी। ग्राम समिति के अलावा विभिन्न उद्योगो के लिए अलग-अलग समितिया बन सकती हैं। खेती का काम सबसे अधिक व्यापक होने पर भी वह एक उद्योग ही है। अतः किसानो की एक खेतिहर समिति की कल्पना हम कर सकते हैं। उस समिति मे हरेक सदस्य की जमीन उसका हिस्सा होगा। इन्ही हिस्सो की समष्टि समिति की पूँजी होगी। जो जितना श्रम करेगा उसका दाम चुकाने के बाद बचत की रकम अपने अपने हिस्से के अनुपात से बाँट लेगे। इस प्रकार के सघटन की ब्यौरेवार नियमावली आज मै नही बनाऊँगा। उसे भविष्य के कानून बनाने वालो पर ही छोड़ना उचित होगा। मै तो सिर्फ किस सिद्धान्त से योजना बनानी होगी, उसकी रूप-रेखा बताना चाहता हूँ। और इस समय उससे अधिक कहना सम्भव भी नहीं है। इस प्रकार सहयोग-समितियो के संघटन के लिए आवश्यकता इस बात की है कि समिति के सदस्य पूँजी का जो हिस्सा समिति को दे उसका वह मालिक हो। आज जिस प्रकार की जमीदारी और काश्तकारी मौजूद है, उसके रहते हुए इसका होना सम्भव नही है। हमारे प्रान्त मे लगान-सम्बन्धी जो कानून बना हुआ है उसका बयान करने मे एक पोथा लिखना पड़ेगा। उसे इस पत्र मे लिखना बेकार ही होगा। अगर उसको समझना हो तो इस विषय पर कोई एक किताब लेकर देख लेना। लेकिन इतना कहना आवश्यक है कि हमारे प्रान्त का जमीन कानून ज़मीदारी प्रथा के आधार पर बना हुआ

है। जमींदारी प्रथा अच्छी है या बुरी, यह प्रथा भारत के प्राचीन काल मे थी या नही, किसने और कब इस प्रथा को चलाया आदि बातो की बहस पिछले दस-पन्द्रह साल से लोग काफी कर चुके हैं। इस बहस के दौरान मे लोग बाल की खाल भी निकालते रहे हैं। मै इस बहस मे पड़ना नही चाहता। यह प्रथा अच्छी है या बुरी, प्राचीन है या नवीन, इससे मुझको कतई दिलचस्पी नहीं है। मै सिर्फ यह देखता हूँ कि आज की परिस्थिति मे समाज-व्यवस्था तथा सघटन मे जमींदारो की उपयोगिता है या नही। जिस चीज की या सस्था की उपयोगिता नही होती या रहती, समाज उसका अन्त कर देता है, चाहे उसने पिछले दिनो कितनी भी सेवा की हो। यह सनातन नियम है। इस नियम के अनुसार आज के जमींदारो का स्थान वर्त्तमान व्यवस्था मे रहना सम्भव नहीं है। समाज युग-युग से अपनी समस्याओं का हल निकालता रहा है। इस प्रयोग मे उसे जिन चीज़ों की, जिन आदर्शों का और जिन समस्याओ की आवश्यकता होती है उन्हे वह ग्रहण करता है और जिनकी उसे ज़रूरत नहीं या जिनसे उसकी प्रगति में बाधा पहुँचती है उन्हे वह त्याग देता है। अतएव सहयोग के आधार पर अगर खेती का प्रबन्ध करना है और इसलिए जब काश्तकारों को अपनी जमीन का मालिक बनना है तो इस बात की आवश्यकता होगी कि आज की जमींदारी प्रथा का अन्त हो या दूसरे शब्दो मे जमींदारी प्रथा को सार्वजनिक बना देना होगा यानी सब जमीन के जोतने वालों को जमींदार हो जाना पड़ेगा।

मैंने कहा है काश्तकारो को अपनी जमीन का मालिक बना देना पड़ेगा। इसका मतलब यह नहीं है कि मैं आजकल की काश्तकारी प्रथा का समर्थक हूँ। वस्तुतः जिन प्रान्तो मे ज़मींदारी प्रथा नहीं है वहाँ की हालत कुछ बेहतर नहीं है। मेरे सामने काश्तकार और जमींदार के प्रकार मे कोई भेद नहीं है। अन्तर केवल यह है कि एक बड़ा है और एक छोटा। जमींदार बेचारे तो बदनाम

ही हुए हैं लेकिन मानसिक वृत्ति काश्तकारों की कम जमींदाराना नहीं है। उनके पास भी जब थोड़ा ज्यादा खेत हो जाता है तो वे शिक्मी किसानों को जमीन उठाकर उसी तरह व्यवहार करते हैं जैसा ज़मींदार अपने असामियों के साथ करते हैं। वे मज़दूरों से अपनी खेती कराकर उन पर उसी तरह अत्याचार करते हैं जिस तरह एक ज़मींदार करता है। दूसरी तरफ छोटे-छोटे गरीब ज़मींदारों की दशा काश्तकारों से भी खराब है। उनके स्त्री-पुरुष-बच्चे मेहनत करके भी दाने-दाने को मुहताज रहते हैं। गरीब ज़मींदार के बच्चे पड़ोसी काश्तकार के खेत पर मज़दूरी करते हैं, ऐसा उदाहरण विरल नहीं है। ज़मींदार के घर की स्त्रियों को पड़ोसी काश्तकार के घर मजदूरी करते भी देखा जाता है। अतएव मैं जिस चीज़ का अन्त करने को कहता हूं वह है न ज़मींदारी प्रथा और न काश्तकारी प्रथा। मैं अन्त करना चाहता हूं दूसरों की मेहनत से बैठे खाने की प्रथा का। पूंजीवादी **उत्पादक ही ज़मीन** समाज-व्यवस्था के कारण जो दलाली या ठेकेदारी **का मालिक होगा** प्रथा का प्रसार हो गया है, उसका स्थान स्वावलम्बी समाज-व्यवस्था में कहीं नहीं है। स्वावलम्बी समाज में उत्पत्ति के साधन तथा उत्पादित सामान का मालिक उत्पादक स्वयं ही हो सकता है, दूसरा कोई नहीं। अतएव भावी योजना में अगर मेरे बताये हिसाब से सारी आबादी के लिए अन्न की स्थायी व्यवस्था करनी है और आज जो खेत हैं उन्हीं की पैदावार काफी बढ़ानी है,— अगर इस कारण फुटकर ज़मीन के स्थान पर चकबन्द जमीन पर ही खेती करनी आवश्यक है और अगर इसके लिए सहयोग के आधार पर सम्मिलित खेती की व्यवस्था करनी जरूरी है तो आज के जमीन कानून का आमूल परिवर्त्तन करना होगा। आज जितने किस्म के काश्तकार हैं सब का अन्त करके एक ही प्रकार के किसान को रखना पड़ेगा। वे होंगे जमीन पर खुद परिश्रम करने वाले "किसान।" यह ठीक है कि ऐसा करने में हमें असीम कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।

सदियों के संस्कार के विरोध में चलना कोई आसान बात नहीं है। लेकिन हम जिस दुर्दशा के अन्तिम स्तर पर गिरे हुए हैं, अगर इस स्थिति से ऊपर उठना है तो जिन बोझों से हम दबे हुए हैं इन्हें तो अपने कन्धे पर से उतारना ही होगा, चाहे वह राजनीतिक गुलामी हो, आर्थिक शोषण हो, सामाजिक रूढि हो या संस्कारभूत परम्परा हो। अगर झटके से उन्हें उतार फेंकने में अपनी रीढ़ टूट जाने की सम्भावना हो तो आसानी से हटाने का क्रम बनाना होगा। इन पत्रों में मैं क्रमशः उन क्रमों पर भी प्रकाश डालने की चेष्टा करूँगा।

ऊपर की बातों से साफ हो गया होगा कि मेरी प्रस्तावित योजना में जमीन उसी को मिल सकेगी जो उस पर खुद मेहनत करे। अब प्रश्न यह उठता है कि हमारी कल्पित व्यवस्था में खेती के लिए मजदूरों का कोई स्थान है या नहीं? किसानों को अपने हाथ से जोतने पर भी कुछ ऐसा काम तो आ ही जाता है जिसके लिए मजदूरों की आवश्यकता होगी। यह ठीक है कि जब सब लोग परिश्रम करेंगे तो प्रायः बाहरी मज़दूर की आवश्यकता नहीं होगी। लेकिन खेती का काम ऐसा है कि किसी-किसी मौसम में अत्यधिक आदमी की आवश्यकता होती है। जिस क्षेत्र में चावल की ही अधिक उत्पत्ति है वहाँ साहनी, कटिया आदि काम के लिए स्थानीय कुल आबादी भी काफी नहीं होती है और बाहर से हजारों की तादाद में मजदूर उन स्थानों में पहुँचते हैं। अतएव खेती के काम के लिए किसानों के अलावा भी स्वतन्त्र मज़दूर का स्थान रहेगा ही। तुम कह सकती हो कि इस तरह से खेती-सहयोग-समिति के सदस्य कम से कम मेहनत करके क्रमशः अधिक से अधिक मज़दूरों से काम कराकर अनुचित लाभ उठा सकेंगे। लेकिन हमारी योजना के अनुसार व्यवस्था करने से इसकी गुंजाइश न रहेगी। मज़दूरों से अनुचित लाभ तभी उठाया जा सकता है जब आबादी का कुछ हिस्सा बेकार रहे। अगर तुम खेती में जितना परिवार खपा सको उतनों को ही ज़मीन देकर बाकी

के लिए ऐसे धन्धो की व्यवस्था कर सको जिससे वे अपना गुजर तुम्हारे धारणानुसार ही कर सके तो कोई दूसरो के लाभ का शिकार क्यो बनने जायगा। हमारी योजना मे "खेती के मज़दूर" नाम की कोई अलग श्रेणी नही रहेगी। मै जो प्रस्ताव करना चाहता हूँ उसमे गॉव की कुल आबादी के लिए निर्दिष्ट उद्योग होगा। तुम जानते ही हो कि हर उद्योग मे खाली तथा भीड़ का दो मौसम हुआ करता है। ऐसे खाली और भीड़ का मौसम सभी कामों मे एक ही समय नही होगा। एक के लिए जो समय खाली होगा वही दूसरो के लिए भीड़ का समय होगा। ऐसी हालत मे खेती मे जो बाहरी मज़दूर काम करेगे वे सम्भवतः दूसरे उद्योग के उत्पादक होगे। फिर किसानो की खुद कम मेहनत करके मज़दूरो से काम कराने की वृत्ति इसलिए भी नही हो सकेगी कि हमारी योजनानुसार हर काम करने वालो को मज़दूरी "जीवन-वेतन" के सिद्धान्त के अनुसार ही देनी पड़ेगी। बापू जी जो चर्खा कातने वालो को आठ आना मज़दूरी देने को कहते हैं, वह उत्पत्ति की तमाम मज़दूरी के विनिमय मूल्य मे समता लाने की चेष्टा मात्र ही है। ऐसी हालत मे अगर किसान खुद परिश्रम न करके दूसरो के श्रम से खेती कराना चाहेगा तो वह जमीन की पैदावार से अपनी गुज़र नही कर सकेगा। उसकी सारी उपज मज़दूरी देने मे ही ख़तम हो जायगी। अतः इस दिशा मे डरने की आवश्यकता नही है।

खेती की उन्नति के लिए मै चकबन्दी के प्रश्न पर बात कर रहा था। प्रसंगवश दूसरा प्रश्न भी आ पड़ा। लेकिन जो हुआ अच्छा ही हुआ; आखिर ग्राम-सुधार की सर्वाङ्गीण योजना के बनाने के लिए इन प्रश्नो पर विचार तो करना ही पड़ता। अगर आज ही इन पर विचार कर लिया तो क्या हर्ज ?

खाद की व्यवस्था—खेती की पैदावार बढाने के लिए तीसरा आवश्यक उपाय खाद और पानी की व्यवस्था है। मैने पहले बताया

है कि आज हमारे प्रान्त में जितने पशु हैं उनका गोवर अगर न भी जलाया जाय तो कुल २,६४,१८,०२,००० मन खाद सालाना मिल सकती है। यह सत्य है कि जहाँ लोग कुछ गोवर जला डालते हैं वहाँ वे जानवरो की पेशाव राख फूस आदि से भी कुछ खाद वनाते रहते हैं। इस तरह आज हमको खेती के लिए सव मिला कर उतनी खाद मिल ही जाती है, जितनी कुल गोवर से हो सकती थी। मामूली तौर से अच्छी खेती के लिए प्रति एकड़ कम से कम ३००ऽ प्रति वर्ष खाद की आवश्यकता होती है। उस हिसाव से हमे १०,३६,५७,६०.००० मन खाद की आवश्यकता प्रतिवर्ष होगी। अर्थात् हमारे प्रान्त की खेती के लिए हर साल ७७१•४ करोड मन खाद की कमी पडती है। यानी आज जहाँ प्रति ग्राम हमको केवल २८,७३१ऽ मन खाद मिलती है वहाँ पूरी खेती के लिए अर्थात् ३४८•८ एकड़ के लिए १०४,३४०ऽ मन खाद की आवश्यकता होगी। अगर हम २५ सैं० के करीव जमीन प्रति वर्ष परती छोड़ दे तो भी ७८,२५५ऽ मन खाद की आवश्यकता तो होगी ही अतः हमको इतनी खाद जुटाने की व्यवस्था करनी होगी। इसके लिए पहले यह देखा जाय कि हम किन-किन उपायों से खाद की उत्पत्ति कर सकते हैं। खाद के लिए प्रधानतः निम्नलिखित चीजे काम मे लाई जा सकती हैं—

१—गोवर की खाद। २—मवेशियो का पेशाव। ३—वकरे तथा भेड़ो की टट्टी-पेशाव। ४—वनस्पति की सड़न। ५—शोरा जातीय नमक। ६—जानवरो की हड्डी तथा मास। ७—सनई आदि हरी खाद। ८—तेलहन की खली। ९—मनुष्यों की टट्टी। १०—रासायनिक खाद (अमोनियम सल्फेट आदि)

१—गोवर की खाद—भारत मे प्राचीन काल से ही गोधन उत्तम धन माना गया है। इस कारण लोग अधिक संख्या मे गोपालन किया करते थे। अतः हमारे यहाँ गोवर की खाद ही प्रधानतः इस्तेमाल हुआ करती है। क्रमशः संसार के विभिन्न देशों मे नाना

प्रकार की खादो का आविष्कार होता गया। लेकिन संसार के सभी विशेषज्ञो का कहना है कि जमीन की नमी कायम रखने मे तथा उसकी उर्वर शक्ति को अधिक दिन टिकाऊ रखने के लिए गोवर की खाद ही सर्वोत्तम है। लेकिन आज की परिस्थिति मे हम पशुओ की आवादी को जरूरत से ज्यादा वढा नही सकते हैं। हमारी पुष्टि के लिए दूध की तथा जोताई के लिए हल की आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए कितने गाय बैल भंस भैंसा आदि की जरूरत होगी, उसका हिसाव मैंने पहले के पत्र मे लिखा है। उसे देखने से मालूम होगा कि आज प्रति ग्राम के मवेशियो की सख्या २६२ है और हमारे काम के लिए चाहिए केवल २५३ जानवर। अतः आज जितना गोबर मिलता है भविष्य में उससे अधिक गोबर पाने की सम्भावना नही है। अर्थात् गोबर से प्रति ग्राम केवल १२६००८ मन खाद मिल सकेगी।

२—मवेशियो के पेशाब—मवेशियो के पेशाब का अधिकाश भाग व्यर्थ चला जाता है। उनका सचय करने का उचित प्रवन्ध करके हम खाद की वृद्धि कर सकते है। गोशालाओ का फर्श पक्का करके उस पर धान का पोआल, गन्ना के पत्ते, वाग के वटोरे हुए पत्ते, चावल की भूसी, मूगफली का छिलका, मेथी का डंठल आदि ऐसी चीजे डाल देनी चाहिए जिसमे पेशाव जज्ब होकर उसे जल्दी सड़ा दे। फिर उसे अलग घूर में डाल कर खाद बना लेना चाहिए। ऐसी खाद भी हम काफी मात्रा मे तैयार कर सकेगे। मेरा अन्दाज यह है कि इस प्रकार साल भर में प्रति ग्राम जितनी खाद वनेगी वह कम से कम ८,०००८ मन गोवर की खाद के वरावर होगी।

३—बकरे तथा भेड की टट्टी-पेशाब—मैंने प्रति ग्राम ५० बकरियाँ और १०० भेड़ की जरूरत वताई है। वकरियो की टट्टी पेशाव की मात्रा खाद की दृष्टि से नगण्य है अर्थात् उसका हिसाव नही जोड़ना ही ठीक होगा। लेकिन भेड़ की टट्टी व पेशाव जमीन के लिए वहुत मुफीद वताते हैं। हमारे प्रान्त मे लोग भेड़ों के झुंड को

रात भर खेत पर बैठा देते हैं। इससे जमीन की जो उर्वरा शक्ति बढती है उससे गोबर की खाद से सवाई पैदावार बढती है, ऐसा आम किसानों का अनुभव है। किसानो का हिसाब यह है कि १०० भेड़ की तीन दिन की बैठाई एक एकड़ के लिए उतना ही फायदा करती है जितना १०० मन गोबर से लाभ हो सकता है। यानी १०० भेड़ से प्रतिदिन कम से कम ३० मन गोबर के बराबर जमीन के लिए खाद मिल सकती है। यह सही है कि हर मौसम मे खेतो मे भेडें नहीं बैठाई जा सकती। लेकिन उचित प्रबन्ध से इनकी पेशाब व टट्टी एकत्र की जा सकती है। ऐसी संचित खाद से उतना लाभ न होगा जितना उन्हे खेतो पर बैठाने से होता है। फिर भी खेत पर बैठाने और सचित खाद की औसत २० मन प्रतिदिन के बराबर हो ही जायगी। इस हिसाब से भेड़ो के द्वारा हमको लगभग ७३०० मन खाद मिल सकेगी।

४—वनस्पति की सड़न—पहले एक पत्र मे कम्पोस्ट खाद की बात लिखी थी। गाँव भर का जगल साफ करके उसे नाबदान का पानी, गोबर का पानी और सादा पानी छिड़क कर तथा उन्हें समय समय पर उलट कर यह खाद बनती है। इसके लिए गाँव के जंगल, बाग तथा जगल के पत्तो का इस्तेमाल किया जा सकता है। इस जरिये से भी काफी खाद मिल सकती है। मेरा अन्दाज यह है कि जब लकड़ी और फलों के लिए हम पेड़ लगा लेंगे तो इस प्रकार वनस्पति की खाद करीब १२००० मन गोबर के खाद के बराबर पैदा हो सकती है।

५—शोरा जातीय नमक—हमारे प्रान्त मे शोरा की मिट्टी प्रचुर परिमाण मे मौजूद है। आज भी हजारों मन शोरा इस प्रान्त में बनता है। लेकिन सरकारी नीति के कारण किसान इसे बना नहीं सकता। अगर शोरे की आम व्यवस्था की जाय तो इस जरिये से हमको काफी खाद मिल सकती है। युक्तप्रान्त की सरकारी खेती-

सुधार कमेटी का कहना है कि "शोरा मे १५ से० नाइट्रोजन है और बाकी हिस्सा पोटाश भी जमीन के खूराक का अच्छा साधन है।" यह सभी जानते है कि नाईट्रोजन वनस्पति का एक प्रधान भोज्य पदार्थ है। सरकार को पहले इसकी सम्भावनाओ की जाँच करनी होगी और किसानों को इसके द्वारा खाद बनाने के लिए उत्साहित करना होगा।

६—जानवरों की हड्डी तथा मांस—तुमने रेल के सफर मे स्टेशनो पर जानवरो की हड्डियो का ढेर जगह जगह देखा होगा। लेकिन देहात मे हड्डी की खाद काम मे लाते कही नही देखा है। कारण यह है कि हमारे यहाँ से कुल हड्डी विदेश चली जाती है। सारे भारतवर्ष में लगभग १।। करोड़ मन हड्डी होती है, और यह प्रायः व्यर्थ चली जाती है। केवल हमारे प्रान्त मे ही जितनी हड्डी वेकार जाती है उतनी की अगर खाद बनाई जाय तो प्रान्त भर मे हमको हर साल ६। लाख मन खाद मिल सकती है। इसके अलावा मास की भी कीमती खाद वन सकती है। हमारे प्रत्येक गाँव के लिए जानवरो की जो आवश्यकता बताई गई है उनमे से हर साल जितने पशु मरेंगे उनसे किस मात्रा मे खाद बन सकती है इसका हिसाव नीचे लिख रहा हूँ :—

नाम पशु	सख्या मरने की	वजन हड्डी की खाद	मास का वजन	जोड़
गाय बैल	१२।।	५।।ऽ	३।।ऽ	६।ऽ
भैंस-भैसा	४	३।ऽ	२ ऽ	५।ऽ
वच्चे	५	।ऽ५	।ऽ२	।।ऽ७
दूसरे विविधि पशु	५	ऽ८	ऽ५	।ऽ३
जोड़		८।।ऽ३	३ऽ७	१४।।ऽ

इस प्रकार हर साल प्रति ग्राम १५) मन के करीब हड्डी और मास की खाद बन सकती है। देहात के किसानों का अनुभव यह है कि अगर १) हड्डी की खाद खेतों में छोड़ी जाय तो २५) घूर की खाद कम डालने पर भी मामूली से ज्यादा पैदावार होती है। इस हिसाब से हाड़ और मास से ३५०) गोबर की खाद के बराबर खाद प्राप्त हो सकती है।

७—सनई और दूसरी हरी खाद—बरसात के शुरू में खेतों में सनई बोकर उसे फिर जोताई करने पर जमीन की ताकत बहुत बढ़ जाती है। किसानों को इस तरह सनई बोते देखा भी होगा। सनई के अलावा ढ़िंचा, अरुआ या वाकस के पत्ते आदि भी लाभदायक होते है। पश्चिमी जिलों मे गन्ना और कपास की खेती के लिए लोग मेथी भी बोते हैं। अगर इस दिशा मे खोज की जाय तो और बहुत सी वनस्पतियाँ मिलेंगी जिन्हे खाद के लिए बोया जा सकता है। प्रान्तीय सरकार की ओर से कृषि-विभाग मे इसका एक विशेष विभाग रखना पड़ेगा।

८—तेलहन की खली—भारत मे प्रचुर तेलहन की उत्पत्ति होती है। खेती से सरसों, तिल, अलसी, रेंड़, बरें आदि के अलावा जगलों मे महुआ, साल, नीम आदि का बीज करोड़ों मन पैदा होता है। इनमें से कुछ की खली मनुष्य तथा जानवरों की भोजन-सामग्री में शामिल हो सकती है। बाकी से ऊँचे दर्जे की खाद तैयार होती है। इस देश के किसान नाम की खली को फसल के लिए घी के बराबर मानते हैं। इससे केवल जमीन की ताकत ही नहीं बढती परन्तु इसके इस्तेमाल से दीमक आदि बहुत से हानिकारक कीट-कीटाणु मर जाते हैं। दुर्भाग्यवश इस प्रान्त में आज जितना बीज नीम का पैदा होता है उसके २ में० हीं का तेल निकाला जाता है; बाकी पडे पड़े पेड़ के नीचे सड़ जाते हैं। ग्राम-स्वावलम्बन योजना मे हमको खाने के अलावा जलाने के लिए, साबुन तथा अन्य उद्योगों के लिए प्रचुर

परिमाण में तेल की आवश्यकता होगी। अतः इनकी खली से भी हमको काफी खाद मिल सकेगी। नाईट्रोजन वनस्पति का प्रधान खाद्य है, यह तुमको मालूम है। अतः किस खली में कितने नाईट्रोजन का अनुपात है मालूम होने पर समझ सकोगी कि खाद के लिए खेती की कीमत क्या है? नीचे तेलहन की खली मे नाईट्रोजन की मात्रा कितनी है उसकी तालिका भेज रहा हूँ। इसे गौर से देखना।

नाम खली	नाईट्रोजन मात्रा प्रतिशत	नाम खली	नाईट्रोजन मात्रा प्रतिशत
मूंगफली	७·६६	अलसी	५·३०
तिल	६·६०	नीम	५·०४
वर्रें	६·३४	रेंड़ी	४·५०
कपास का बीज	५·५६	गरी	३·६७
राई व सरसो	५·५४	विनोला (छिलका उतार कर)	३·३८
महुआ	२·७२		

९—मनुष्य की टट्टी—अब मै उस कीमती खाद की बात बताना चाहता हूँ जिसके लिए बापू जी पिछले पचास साल से प्रचार करते आते है। वह है आदमियो की टट्टी। स्वय उन्ही के शब्दो में "यह पाख़ाना खेतिहर के लिए मानो सोना है।" इस विषय के विशेषज्ञ सर अलबर्ट हावर्ड का कहना है कि मनुष्य की साल भर की औसत टट्टी से २०० पौंड खाद होती है जिसमे १५ पौंड नाईट्रोजन ४ पौंड पोटास और ५ पौंड फोरिक एसिड रहता है। शायद तुमको इन वैज्ञानिक पदार्थों के अनुपात से पाखाने के खाद-गुण का ठीक-ठीक अन्दाज न हो। पाखाने का मूल्य कितना है उसका थोड़ा हिसाब कर लो तो अच्छा होगा। संयुक्तप्रान्तीय खेती-सुधार कमेटी की १९४१ की रिपोर्ट मे इसका एक हिसाब बनाया गया है। उनका कहना है कि अगर आठ आदमी का पाख़ाना जमा किया जाय तो एक एकड़ गन्ने

की खेती मे हद दर्जे की फस्ल उत्पन्न होगी। तुम्हें शायद मालूम होगा कि गन्ने की खेती वैसे ही कुछ ज्यादा खाद माँगती है। अगर हद दर्जे की उत्पत्ति करनी है तो कम से कम ४००) मन खाद एक एकड़ के लिए चाहिए। इस हिसाव मे एक आदमी का पाखाना ५०) मन खाद के वरावर ताकत देने वाली चीज है। प्रान्त के प्रति ग्राम की आवादी ४७० की है। अगर २० वच्चों को छोड़ दिया जाय तो भी ४५० आदमी का पाखाना २२५००) खाद के वरावर होगा। हम अगर यह मानले कि कितना भी प्रवन्ध किया जाय कुल पाखाना का सम्पूर्ण इस्तेमाल सम्भव नहीं होगा, मनुष्य की आदत, सस्कार आदि वातें भी इन मामलो मे असर करती ही हैं। फिर भी मेरा विश्वास है कि इस दिशा मे उचित सघटन करने पर लगभग १२०००) खाद के समान लाभ तो हम पाखाना से उठा ही सकते हैं।

पाखाने के इस्तेमाल के विषय मे भारत मे सवसे अधिक अनुभव वापू का ही है। अतः उनको हम सर्वश्रेष्ठ विशेषज्ञ मान सकते हैं। पाखाने से ज्यादा मे ज्यादा लाभ उठाने के लिए उन्हीं के वताये तरीके सर्वोत्तम हैं। जमीन मे गड्ढा करके ढक देने का संघटन गाँव गाँव करना होगा। इसका तरीका वापूजी के ही शब्दों मे कह देना ठीक होगा। उन्होंने पाखाने के इस्तेमाल के सिलसिले मे वताया है—"इस पाखाना को वहुत नीचे गड्ढे मे नही गाड़ना चाहिए। धरती के ६॥ इंच तक की परत मे वेशुमार परोपकारी जीव वसते हैं। उनका काम उतनी गहराई मे जो कुछ हो उसकी खाद वना डालने और सारे मैले को शुद्ध करने का होता है। सूर्य की किरण भी राम द्युति की भाँति भारी सेवा करती है।" इस नियम से गाँव में हर साल जो खेत परती छोडा जाता है उसपर पाखाना वनाने का प्रवन्ध ग्राम-समिति को या पचायत को करना होगा।

१०—रसायनिक खाद—तुमको इस वात से थोड़ा आश्चर्य

होता होगा कि मैंने रासायनिक खाद का स्थान अन्त में क्यों रक्खा है। आज कल शिक्षित जनता मे रासायनिक खाद की तारीफ की जो धूम मची हुई है उसे देखते हुए शायद इसका सबसे पहला स्थान रखना ही ठीक जँचता। आज की इस भीषण लड़ाई की भीड़ में भी भारत मे रासायनिक खाद का कितना क्षेत्र है, उसकी जाँच करने के लिए खास विलायती कमेटी नियुक्त हुई है। वे खास तौर पर जाँच करके हमारे प्रभुओ को इस बात की रिपोर्ट करेंगे कि भारत मे रासायनिक खाद कितनी खप सकती है। सम्भवतः इसका बाजार बनाने के लिए ही पिछले कुछ सालो से इसके महत्व का प्रचार किया जा रहा है।

खेतिहरों को रासायनिक खाद का व्यवहार करते मैंने भी देखा है। उसके असर की भी कुछ जाच करने की चेष्टा की है। मैंने रासायनिक खाद से एकाएक पौधो को बढते भी देखा है। इसके असर से कुछ पैदावार भी बढती है। लेकिन लगातार कुछ दिन अध्ययन करने से मुझको ऐसा लगा कि पौधों के लिए गोबर आदि की खाद और रासायनिक खाद मे उतना ही फर्क है जितना मनुष्य के लिए पुष्टिकर भोजन और शक्तिवर्धक सालसा मे। नियमित रूप से परिमित भोजन करने से शरीर पुष्ट और टिकाऊ होता है और अगर रासायनिक बलवर्द्धक औषधि से शरीर मे पुष्टि ली जाय तो प्रथमतः शक्ति देने का काम तो वह करेगी लेकिन आगे चलकर स्वास्थ्य की दृष्टि से वह हानिकारक होती है। उसी तरह रासायनिक खाद का लगातार व्यवहार जमीन के लिए हानिकारक होगा। यद्यपि पश्चिमी ढंग से खेती के वैज्ञानिक विशेषज्ञ रासायनिक खाद की बड़ी तारीफ किया करते हैं, लेकिन जिनको भारत की खेती की विशेष जानकारी है वे इसकी तारीफ के लिए इतना उत्साहित नही होते। वे इसकी इस्तेमाल करने की सिफारिश तो करते हैं लेकिन कुछ दबी ज़बान से। सन् १९३९ मे युक्तप्रान्तीय खेती-सुधार के लिए जो कमेटी

सरकार ने बनाई थी उसमें कुछ वैज्ञानिक विशेषज्ञ और कुछ अनुभवी खेतिहर भी थे। तीन साल तक सारी परिस्थितियों की जाच करके उन्होंने सरकार को सन् १६५२ में रिपोर्ट दी। उनकी राय उन्हीं के शब्दों मे उद्धृत कर देना शायद ठीक होगा। वे कहते हैं—" दूसरी तरफ 'रासायनिक खाद' से वनस्पति को तैयार खूराक मिल जाती है लेकिन इसका व्यवहार थोड़ी मात्रा मे हो सकता है; कारण यह है कि अगर अधिक मात्रा मे लगातार इसका इस्तेमाल किया जाय तो उससे जमीन को नुकसान ही पहुँचेगा।" एक दूसरे स्थान मे कहते हैं—"एमोनियम सलफेट के विस्तृत और काफी अर्से तक व्यवहार से, जिन ज़मीनो मे चूने की आवश्यकता नही है, उनमे अम्ल पदार्थ पैदा हो जाता है। रासायनिक खाद से जमीन मे नमी नहीं के बराबर पैदा होती।" अतएव हमको अगर रासायनिक खाद का इस्तेमाल करना होगा तो उतनी ही मात्रा मे हम उसे काम मे लावेंगे जितना मनुष्य की बल-वृद्धि के लिए टानिक यानी रासायनिक शक्तिवर्द्धक औषधि का इस्तेमाल किया जाता है। जिस प्रकार टानिक का भी एक स्थान है उसी तरह इस खाद को भी शायद हमको कोई स्थान अपनी योजना मे देना पड़ेगा लेकिन अगर दूसरे जरिये से स्वाभाविक खाद से ही काम चल जाय तो वह श्रेय ही होगा। इस हिसाब से हरी खाद, खली की खाद, शोरा और रासायनिक खाद के अलावा हमारी खाद की उत्पत्ति ५४० करोड़ मन के करीब होगी।

इस प्रकार उपर्युक्त जरियों से अपने काम के लिए काफी खाद की उत्पत्ति हम कर लेंगे। फिर जब हम कर्मक्षेत्र मे उतरेंगे और प्रयास करते रहेंगे तो नये-नये जरियों की भी जानकारी होती ही रहेगी।

सिंचाई की व्यवस्था—अब रही पानी की बात। वस्तुतः पानी ही वनस्पति की जान है। जहाँ भी नमी होगी वहाँ तुम्हारे पसन्द

न करने के बावजूद भी आप से कुछ न कुछ सब्जी पैदा हो ही जायगी। वस्तुतः अगर खाद न हो और पानी परिमित मिले तो पौधे उग तो आवेंगे ही, चाहे खाद के बिना वे पुष्ट न हो सके लेकिन पानी बिना चाहे जितनी खाद डालो पौधे उगेंगे ही नहीं। अतः खेती के लिए पानी ही सबसे महत्व का उपादान है। इतनी आवश्यक सामग्री होने पर भी हमारे खेतो के तिहाई हिस्सो में ही पानी पहुँचता है। अतः इस दिशा मे हमको विशेष प्रबन्ध करना पड़ेगा। प्रश्न यह है कि पानी की प्राप्ति के लिए हमारा ढंग क्या होगा। संसार में सिंचाई का काम ४-५ जरियों से किया जाता है। ये जरिये इस प्रकार हैः—(१) नहर, (२) ट्यूब वेल, (३) कुआँ, (४) तालाब और (५) नदी, नाला, झील आदि।

नहर के मामले मे मेरी राय तुमको मालूम ही है। नहर मे फायदा अवश्य है। लेकिन उससे नुकसान भी इतना है कि किसी योजना में नहर का प्रस्ताव करते समय हर पहलू पर गम्भीर विचार कर लेना चाहिए। नहर की व्यवस्था अनिवार्यतः केन्द्रीय सरकार के अधीन रखनी होगी जिसका अर्थ किसी दूसरे पर निर्भर रहना होगा। अगर हम व्यर्थ का तर्क न बढ़ाकर मौलिक स्वावलम्बन के सिद्धान्त को फिलहाल छोड़ भी दे तो भी कई व्यावहारिक हानियाँ भी नहर से होती हैं। तुमने देखा होगा, नहर से जो पानी आता है उसकी गहराई काफी नहीं होती और प्रवाह को कायम रखने के लिए जगह-जगह झरने का रूप दिया जाता है जिससे सारा पानी नीचे की सतह तक आलोड़ित हो जाता है। फलतः जितनी बालू नदी से बहकर नहर में जाती है वह नीचे बैठने नहीं पाती है और क्रमशः खेतो मे जाकर उन्हे बालूमय कर देती है। इस तरह बालू की अधिकता से खेतो को नुकसान होता है। तुम कहोगी, बलुआ खेत मे भी तो अनाज पैदा होता है। अनाज तो पत्थर पर भी पैदा होता है, इसका मतलब थोड़े ही है कि मटीली जमीन को भी पथरीली बना दिया जाय? फिर भिन्न-

भिन्न फस्ल के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की जमीन उपयोगी है। जहाँ की जमीन वालूमय है वहाँ उन्हीं को बोया जाता है जिनकी पैदावार वहाँ हो सकती है। इस तरह की जमीन के प्रकार-भेद भी किसी प्राकृतिक नियमानुसार ही होते हैं। ब्रह्मा के मनमाने खिलवाड़ की धुन के आधार पर इस तरह के सृष्टि वैचित्र्य का संघटन नहीं हुआ है। जमीन का प्रकार स्थानीय आब-हवा पर ही प्रधानतः निर्भर करता है; अपवाद जरूर मिलेगा लेकिन साधारण नियम तो इसका कोई एक है ही। इसी प्रकार प्रकृतिक नियम से जिस जमीन पर जो अनाज पैदा होता है उस स्थान की आब-हवा भी उसके लिए अनुकूल होती है। यह सच है कि एक ही आब-हवा में दो प्रकार की जमीन मिलती है लेकिन उसकी भी एक प्राकृतिक सीमा है। अगर थोड़ी देर के लिए यह मान भी लें कि तुम उपर्युक्त नियम में दिमाग का आविष्कार ही समझती होगी तब भी क्या सभी जमीन वालूमय होने से विभिन्न प्रकार की आवश्यक फस्लों का क्रम कायम रक्खा जा सकेगा? नहर के पास के किसानों से पूछो, ऐसा शायद ही कोई मिलेगा जो नहर की वजह से खेतों में जो वालू भर जाती है उसकी शिकायत न करे।

वालू भरने से फिर भी कुछ पैदावार हो जाती है लेकिन जब यह पानी उन इलाकों से होकर आता है जहां रेह और अन्य हानिकारक खार की अधिकता है तो वे खार वहकर खेतों में जमा होते रहते हैं और क्रमशः उन्हें वजर वनाकर ही छोड़ते हैं। श्री चौधरी मुख्तार सिंह को इस विषय का विशेषज्ञ माना जाता है। यही कारण है कि युक्तप्रान्तीय सरकार ने उन्हीं को खेती-सुधार कमेटी का अध्यक्ष चुना था। उन्होंने भी अपनी पुस्तक 'रूरल इंडिया' के १५३ पन्ने में यह रिपोर्ट दी है कि "वम्बई और दूसरे प्रान्तों के कई स्थानों में प्रचुर परिमाण की भूमि पर की खेती नहरों के कारण ही वन्द हो गई है।"

नहर-द्वारा एक दूसरी वड़ी समस्या पानी रुकने की पैदा होती है। मैं पहले पत्रों में लिख चुका हूँ कि हमारे देश की वर्षा थोड़े दिन की

होती है। वह इतनी मात्रा मे होती है कि सारा पानी जमीन मे जज्ब नही हो पाता और अधिकाश पानी वहकर समुद्र में वापस चला जाता है। इस कारण विशेष आवश्यकता इस बात की है कि इस देश में पानी बह जाने का रास्ता काफी हो ताकि अतिरिक्त पानी का उचित निकास हो। जब से रेल लाइनो की सृष्टि हुई है तब से जहाँ तहाँ पानी रुकने के कारण स्वास्थ्य की समस्या तो खड़ी हो ही गई थी उसके उपरान्त इधर नहरो के कारण यह समस्या और भी जटिल होती गई। रेलवे की समस्या जगह जगह पुलिया वनाकर हल भी की जा रही है और ये पुलियाएँ काफी चौड़ी होने के कारण उनके नीचे से पानी की अवाध गति कायम रखना आसान भी है। लेकिन नहर के नीचे से पानी के लिए जो सुरंग बनाई जाती है वह तो आँसू पोंछने भर के लिए ही काफी होती है। इस प्रकार पानी रुककर बड़े वड़े क्षेत्र मे सड़ता रहता है और सारे वायुमडल का स्वास्थ्य खराव करता है। केवल आदमी और पशुओं का स्वास्थ्य खराब करता है, यह बात नही। पौधे भी इनके कारण ठीक से वढ़ नही पाते। जहाँ कही हमेशा पानी जमा रहेगा उसके आस पास की जमीनों मे हमेशा नमी बनी रहेगी। ऐसी सील वाली जमीन पर कितनी पैदावार होती है, इसका वयान करके तुम लोगो की बुद्धि और अनुभव का अपमान न करना ही अच्छा होगा। यह तो सभी को मालूम है कि हमारे प्रान्त मे मेरठ कमिश्नरी स्वास्थ्य के लिए मशहूर रही है। लोग स्वास्थ्य सुधार के लिए वहा जाया करते थे। दुर्भाग्य-वश नहरे भी उसी तरफ ज्यादा बनी है। नतीजा यह हुआ कि अव उन जिलों मे भी स्वास्थ्य बिगड़ने लगा है। मेरठ आश्रम मे भी इधर कई साल से लोग मलेरिया से परीशान रहते हैं। यह अनुभव केवल आश्रम का ही है, ऐसी बात नहीं। मै जब वाहर था तो एक बार युक्तप्रान्तीय सरकार के स्वास्थ्य-विभाग की एक वार्षिक रिपोर्ट पढ रहा था। उसमें भी यही रोना रोया गया था कि नहर के कारण मेरठ के जिले मे मलेरिया आदि

वीमारियाँ वढ गई हैं। अतएव अगर हम मान भी लें कि नहर के कारण पैदावार वढती है तो भी इस वात का कौन हिसाव लगावेगा कि जमीन से अधिक अनाज मिलने के कारण हम अपने स्वास्थ्य की जितनी उन्नति करते हैं, वीमारी के कारण अवनति उससे अधिक होती है या नहीं। आजकल के अर्थशास्त्रीय युग में हर चीज का पड़ता जोड़ने का फैशन हो गया है। उन शास्त्रीय महानुभावों को इसका पड़ता भी जोड़ने को कहो तो अच्छा हो।

पानी के रुकने से एक दूसरी हानि और होती है। तुमने देखा होगा, जहाँ कही भी थोड़ी देर पानी रुक जाता है तो उस पर वारीक मिट्टी के कण जमा होकर पपड़ी पड़ जाती है। इससे जमीन की सतह के छिद्र वन्द हो जाते हैं। नतीजा यह होता है कि पानी छनकर नीचे वैठने नही पाता है। इस तरह पानी के न छन सकने से जमीन की सतह पर खार पैदा हो जाता है और वही खार क्रमशः फैलकर आस-पास के खेतों को खराव करता है। इस प्रकार पानी रुकने से जो जमीन नम होती रहती है वह क्रमशः बंजर होती जाती है।

नहर से मेरी इतनी दुश्मनी तुमको वहुत परीशान करती होगी। सोचती होगी इस वैज्ञानिक युग में रामायणी कथा कहने से क्या लाभ? यह सच है, नहरों का प्रस्ताव मुझको औरों से कुछ ज्यादा अखरता है। कारण यह है कि मैंने अधिकतर ऐसे क्षेत्र मे काम किया है जहाँ आवादी वहुत घनी है, जमीन के नीचे पानी १५-२० फुट के अन्दर मिल जाता है और वर्षा साधारणतः अच्छी होती है। वस्तुतः ऐसे क्षेत्र में नहर की हानियाँ अधिक विकराल रूप लेकर प्रकट होती हैं। वर्षा अधिक होने से पानी के निकास की समस्या जटिलतर हो जाती है। जहाँ आवादी घनी है वहाँ वैसे ही मनुष्य की वेकारी रहती है फिर सिंचाई के लिए नहर का ख़र्च देकर और वेकार वैठे खाना कहाँ तक लोगों की समर्थता के अन्तर्गत हो सकता है? जहाँ १५—२० फुट तक नीचे पानी मिल जाता है, वहाँ कुएँ से नहर मे खर्च

भी अधिक है। अभी श्री टाटा, बिड़ला आदि ने जो १५ वर्ष की योजना बनाई है उसमे उन्होंने बताया है कि नहर का खर्च प्रति एकड़ सत्तर रुपया होता है और प्रान्तीय सरकार की खेती-सुधार कमेटी ने इस प्रान्त मे २० एकड़ जमीन सींचने लायक कुआँ रहट के औसत खर्च का जो हिसाब बताया है वह इस प्रकार है।

कुआँ बनाने का खर्च ४००)
उन्नत रहट २००)
६००)

यानी कुएँ की सिंचाई के लिए प्रति एकड़ ३०) की लागत लगानी पड़ती है। इस तरह नहर के लिए दो सही एक बटे तीन गुनी पूँजी की जरूरत होती है। केन्द्रीय व्यवस्था के अन्तर्गत ही नहर बन सकती है। इस कारण सारी पूँजी केन्द्रित करने के लिए जो अलग से खर्च होता है उसे भी जोड़ा जाय तो नहर के लिए ढाई गुनी पूँजी की आवश्यकता हो जायगी।

इन सारी बातो को देखते हुए मेरा प्रस्ताव यह है कि हमें नहर का प्रबन्ध उन्ही स्थानों पर करना चाहिए जहाँ कुआँ बनाना प्रायः असम्भव हो। यानी जहाँ कुआ बन ही नही पाता हो, या बने तो उसके लिए हद से ज्यादा खर्च हो जाय या पानी इतने नीचे हो कि निकलना प्रायः असम्भव हो। इन स्थानों मे भी नहर बनाने के लिए इस बात की ओर ध्यान देना आवश्यक है कि पानी का निकास ठीक से कायम रहता है या नही। अतः जिन इलाकों मे नहर बननी हो वहाँ का पूरा 'सर्वे' करके स्वाभाविक निकासों का नक्शा पहले हो बना लेना चाहिए।

हमारे प्रान्त की परिस्थिति के अनुसार जितनी जमीन पर सिंचाई का प्रबन्ध करना है उसके २५ सै० से अधिक के लिए नहर की आवश्यकता न होगी। प्रान्त की जो खेती-सुधार योजना बनाई जाय उस मे निम्नलिखित हिसाब से सिंचाई करना ठीक होगा—

कुल जमीन जिस पर खेती होती है ३,५६,१६,२०० एकड़।
परिमाण ज़मीन जिसकी सिंचाई होती है १,१६,१७,५८७ ”
जमीन जिसकी सिंचाई की व्यवस्था करनी है २,३७,०१,६१३ एकड़ अर्थात् प्रति ग्राम २३१.५ एकड़ जमीन की सिंचाई की व्यवस्था करनी होगी। इनमे २५ सै० नहर से, ६३ सै० कुएँ से और ९ सै० तालाब आदि से व्यवस्था करना व्यावहारिक होगा। ३ सै० जमीन कछार आदि की ऐसी है जिस पर सिंचाई की आवश्यकता नहीं है।

ऊपर बताये अनुपात के हिसाब से प्रति ग्राम कुल २३१.५ एकड़ की सिंचाई इस प्रकार करनी होगी—

नहर से	५७.९ एकड	२२३.५ एकड़
कुएँ से	१४५.८ ”	
तालाबादि से	२०.८ ”	

बाकी ७ एकड़ की सिंचाई की आवश्यकता नही है।

नहरें हमको सारी नई बनवानी होंगी लेकिन कुएँ कुछ पुराने मरम्मत तथा उन्नत करने से काम चल जायगा; कुछ नये बनवाने पड़ेंगे। आज प्रान्त भर में ५५,५४,०५१ एकड़ ज़मीन पर १४,००,००० कुएँ से खेती होती है। यानी प्रति ग्राम ५४.२ एकड़ ज़मीन पर १२.६ कुएँ से सिंचाई होती है। अर्थात् आज एक कुएँ से ४ एकड़ ज़मीन की सिंचाई होती है।

कुएँ की उन्नति करते समय कई बातो का ख्याल रखना होगा। केवल गणित से समस्या का हल नही होगा। प्रथम यह कि बहुत से कुओं की हालत ऐसी है कि उनकी मरम्मत करने से अच्छा होगा कि नये कुएँ खोदे जायें। यानी वे मरम्मत के काबिल ही नहीं हैं। द्वितीय यह कि कुछ कुएँ ऐसे हैं जिनकी उन्नति करके अधिक जमीन की सिंचाई की जा सकती है कि लेकिन वे इतने पास हैं कि उस क्षेत्र मे अधिक जमीन सिंचाई के लिए खाली ही नहीं है। उन्हीं क्षेत्रों के कुओं का सुधार करना है जहाँ पानी की कमी के कारण

आस-पास की जमीन सिंचाई से रह जाती है। बाकी क्षेत्र मे नये कुएँ बनवाने होंगे। इस दृष्टि से हमें लगभग ३२% यानी प्रति ग्राम ४·५ कुओं को वैसे ही छोड़ देना होगा। उनसे आज के हिसाब से १८ एकड़ के करीब सिंचाई होती रहेगी। बाकी ६·१ कुएँ मे ३ कुएँ ऐसे होगे जिनकी उन्नति से कोई लाभ नही होगा। इन ३ कुओ से १२ एकड़ की सिचाई पूर्ववत् ही होती रहेगी। बाकी ६ १ कुओ की उन्नति कराकर ६·१ = ६६.६ (२०—४ एकड़ प्रति कुआँ) एकड़ जमीन की सिंचाई बढाई जा सकती है। बाकी ४८·२ एकड़ जमीन की सिंचाई के लिए २·४१ कुएँ नये बनाने पड़ेंगे। इस प्रकार प्रान्त भर के लिए हमको ६,२४, ५६७ कुओ की मरम्मत तथा रहट की व्यवस्था करनी होगी, और २,४६,७५५ कुये नये बनवाने होगे।

तालाब के मामले मे अधिक सख्या में नये तालाब बनाने की गुजाइश इस प्रान्त मे नही है। बरसात का पानी रोककर सिचाई के लिए निम्नलिखित उपायो को ही काम मे लाना होगा:—

१—जितने तालाब करीब भठकर बेकार पड़े हैं उनकी मरम्मत तथा खुदाई करानी होगी।

२—ईंट के भट्ठे के सिलसिले से जो कुछ तालाब बन जावे।

३—प्रान्त में बहुत ही ऐसी नीची जमीन है जो न तालाब है और न खेत। बरसात का पानी कुछ जमता जरूर है लेकिन फिर सूखकर दलदल बना रहता है। ऐसी नीची जमीनों के बीच के हिस्सों को खोदकर बड़े बड़े सागर बन सकते हैं और उन्ही मे से निकाली मिट्टी के चारों ओर की कम नीची जमीन को पटाकर खेत भी निकाला जा सकता है। अपनी योजना मे ऐसी जमीनो का उपयोग करने के इस तरीके का प्रोग्राम रखना होगा। नहरों से हमको ५६,२८,२६५ एकड़ नई जमीन की सिंचाई की व्यवस्था करनी है। नहर बनवाते समय भविष्य की राष्ट्रीय सरकार को पानी के स्वाभाविक निकास का 'सर्वे' करके ठीक-ठीक नक्शा बना लेना होगा और पानी निकास के बम्बे

इस प्रकार से बनाने होंगे जिन्हें हमेशा साफ रक्खा जा सके। नहर बनाते समय एक और बात की ओर ध्यान रखना भी जरूरी है। हमारे प्रान्त मे नदियों के वहाव इस ढ ग से हैं कि यातायात के लिए जलमार्ग की अच्छी योजना वन सकती है। नहरों की वनावट ऐसी हो कि नहरों को इस काम मे भी लाया जा सके। मेरे ख्याल से इतने से ही आवश्यक सिचाई हो सकेगी।

इस पत्र मे खेती की आवश्यकता की प्रायः सव वाते कह डाली। मालूम नही, कोई ऐसी वात रह गई हो जिसकी वावत मै अपनी राय ज़ाहिर न कर सका हूँ। अगर किसी वात पर तुम्हे या वहा के भाई-वहिनों को शका हो तो मुझको लिखना ताकि दूसरे पत्र मे साफ कर सकूँ।

इधर कई पत्रों मे काफी व्योरेवार हिसाव भेज रहा हूँ। तुम उससे ऊव तो नहीं जाती हो? अवकी वार मेरे इन विचारों की वावत अपना ख्याल लिखना।

---

[१२]

जमीन का बँटवारा

१६—६—४४

पिछले पत्र में जमीन की पैदावार वढाने के लिए क्या-क्या उपाय करना चाहिए, इस पर प्रकाश डाला था। आज इस वात पर अपना विचार प्रगट करने की चेष्टा करूँगा कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए हम किस तरह अपना संगठन वनावें और तमाम उत्पत्ति की व्यवस्था करें।

पहले के पत्र मे मैंने वताया था कि आज की जमींदारी तथा काश्तकारी प्रथा के रहते खेती मे सुधार नहीं हो सकता है। अव

प्रश्न यह है कि हम इस प्रथा को हटाये कैसे और नई प्रथा का संचालन कैसे करे। फिर इस प्रकार की तब्दीली के लिए फौज के बल से जबरदस्ती जमींदारों से जमीन छीन ली जाय या उन्हे उचित मुआवजा देकर जमीन की मिल्कियत का तबादला करे। मेरी राय मे हमको मुआवज़ा देने का रास्ता ही लेना पड़ेगा। यह सच है कि अब तक जमींदार जितनी रक़म कानूनी तथा गैरकानूनी तरीको से किसानों से ले चुके हैं वह लगान के अलावा जमीन की कीमत की कई गुनी होगी अतः उनको मुआवज़ा मांगने का कोई हक नहीं है। लेकिन इस प्रकार के परिवर्तन के समय हक़ के सवाल पर झगड़ा खड़ा करना व्यावहारिक नही होगा। हा, इतना अवश्य किया जा सकता है मुआवजे की रक़म निश्चित करके किस्त से चुकता करे। लेकिन इसका तर्क आज करना बेकार है। मुआवजे की रक़म किस तरीके से अदा होगी, यह समय आने पर परिस्थिति के अनुसार तय कर लिया जायगा। मेरा मतलब केवल इतना ही है कि जमींदारो को और काश्तकारों को, जो अपने हाथ से खेती नही करते हैं, उनसे खेत लेते समय उसका मुआवज़ा देना होगा। इस मुआवजे की रकम उन जोतने वालों से किस्त पर लेनी चाहिए जिनको खेत का स्वामित्व देना है। यह किस्त काफी साल तक के लिए होनी चाहिए।

जब लगान के लिए सरकार को सीधे उन्हीं से सम्बन्ध करना पड़ेगा जो खेत जोतेगे तो निःसन्देह तहसील की आज जो व्यवस्था है उतने से काम नही चलेगा। अतः व्यवस्था का संघटन बढ़ाना पड़ेगा। बढ़ते संघटन के लिए हमको मालगुज़ारी भी बढ़ानी पड़ेगी। इस बात को सुनते ही तुम घबड़ा जाओगी। सोचोगी, मै यह क्या कह रहा हूँ! जिस लगान को कम कराने के लिए इतना तूफान, इतना आन्दोलन हो रहा है उसी लगान को हम कैसे बढा सकेंगे। पर इतनी जल्दी घबड़ाने से काम नही चलेगा। हमको हर पहलू पर शान्ति से विचार करना पड़ेगा। आज हमारी प्रान्तीय सरकार की मालगुज़ारी की

आमदनी करीव ६ करोड़ रुपया वार्षिक है और जमींदार उन किसानों से करीव १८ करोड़ रुपया लगान के रूप मे लेते हैं जो उनकी ज़मीनें जोतते हैं। अगर इसी अनुपात से उन ज़मीनों का भी लगान जोड़ा जाय जिन्हें जमींदार खुदकाश्त करते हैं तो यह रक़म और भी वढ जायगी। इसके अलावा लाखों वीघा ज़मीन गुप्त रूप से लगान पर जोताई जाती है जो किसी हिसाव मे शुमार नही। इस प्रकार जो रकम समाज मे जायज़ मानी जाती है उसी का हिसाव पूरे तौर से जाँच करके जोड़ा जाय तो भी किसान औसत जिस दर से लगान देता है उसके अनुसार कुल लगान की रकम २५ करोड़ रुपये से कम नही होनी चाहिए। अव रहा नाजायज़ रकम का हिसाव। जमींदारो के नज़राना लेने की पद्धति की वावत किसको मालूम नहीं है। नज़राना तो ज्यादा लगान लेने का एक वहाना मात्र है। नज़राने के वहाने जो रकम जमींदार लेता है केवल उतना ही जोड़ने से किसान का बोझ नहीं मालूम होगा; नज़राना देने के लिए किसान जो रकम उधार लेता है उस पर का सूद दर सूद भी जोड़ना चाहिए। इस प्रकार नज़राना के वहाने किसान को काफी रुपया देना पड़ता है। नज़राना के उपरान्त कोल्हार आदि पचासो दस्तूरों, विवाहादि अनुष्ठानों का खर्च, घी दही तेल तथा अन्न सामान सस्ता देने के मद की रकम आदि सकड़ों जरियों से किसान जमींदार को कितना देता है उसका हिसाव करना असम्भव ही है। हिसाव करना तो दूर रहा, अन्दाज करना भी कठिन है। इसके मुकावले अगर हमारी भावी व्यवस्था में किसान को तमाम ज़मीन के लिए १० करोड़ रुपये के करीव भी देना पड़े तो लगान मे कितनी कमी हुई इसका जरा हिसाव तो करो। अगर नाजायज़ रकम को छोड़ भी दिया जाय तव भी तो लगान में आधे से ज्यादा कमी हो जायगी। इस लगान की रकम से केवल व्यवस्था की वृद्धि का खर्च पूरा होगा, यह वात नहीं वल्कि उसका कुछ अंश सुधार योजना मे भी खर्च किया जा सकेगा। लेकिन इस हिसाव की वहस में पड़ने का शायद

अभी समय नही आया है। संभव है, इससे कम मे भी काम चल जाय। इस प्रकार जब खेत जोतने वालो के पास अपनी जमीन हो जायगी तो वे अपनी खेती के लिए सहयोग समितियाँ बनायेंगे। ऐसी समितियो को ग्राम पंचायत के अधीन रखना अच्छा होगा। सहयोग समितियों के हिसाब आदि की जाच के लिए सरकारी महकमा कायम करना हागा। यह सारे प्रान्त में एम दम करना ठीक नही होगा बल्कि कुछ जिलों मे कानून लागू करके प्रयोग शुरू करना होगा। किसानो को स्वामित्व देने से पहले एक यह नियम भी रक्खा जा सकता है कि किसी गाँव की अमुक संस्था मे काश्तकार अगर सम्मिलित खेती की शर्त पर जमीन लेना चाहे तो उनको जमीन दिलाई जायगी। इस तरह इस काम मे क्रमशः आगे बढ़कर जब वातावरण अनकूल हो जायगा तो व्यापक रूप से कानून सब जगह लागू किया जा सकता है। अब सवाल यह आता है कि क्या ज़मीन गाँव मे रहने वाले सभी परिवारों को बाँट दी जायगी या इसके लिए कोई हद बाँधनी होगी। मैने पहले ही कहा है, आज जितनी आबादी जमीन पर गुज़र कर रही है उतनी का गुज़र खेती से हो नही सकता। केवल गुज़र ही नही बल्कि उतनी आबादी को जमीन पर काम भी नही मिल सकता अतः हमको गाँव की सारी जमीन उतनी आबादी मे बाँटनी होगी जितनी की आवश्यकता खेती के काम के लिए होगी। बाकी लोगों को उद्योगादि के काम मे लगाना होगा। मेरे हिसाब से ५ मनुष्य के प्रति परिवार को ८ एकड़ के करीब जमीन मिले तो वह उससे गुज़र भी कर लेगा और परिवार के लोगो को बेकार रहना भी नही पड़ेगा। आज हमारे प्रान्त के प्रति ग्राम के परिवारो की संख्या ६४ है। ऊपर के हिसाब से हम ५५ परिवार को ही ज़मीन दे सकते हैं। बाकी परिवारों के लिए दूसरा काम निकालना होगा।

फसल का बँटवारा—अब प्रश्न यह है कि जमीन की फसल को किस तरह बाँटें जिससे हमारे आवश्यक कुल अनाज मौजूदा खेत से

मिल सकें। इस तरह अनाज के लिए जमीन का बँटवारा करते समय एक बात का ध्यान रखना ज़रूरी है। हम जब तमाम जमीन की अधिक से अधिक जोताई करेंगे तो जमीन की ताकत पर काफी जोर पड़ना अवश्यम्भावी है। इससे जमीन का थक जाना स्वाभाविक है। ऐसी हालत मे हमे हर साल बारी-बारी से कुछ जमीन परती छोड़नी पड़ेगी।

हमारे प्रान्त मे प्रति ग्राम २४७.८ एकड़ जमीन है। मैंने यह भी कहा है कि हमें इसी जमीन मे परती भी छोड़ना है और आज जितने अनाज की कमी है उसे भी इसी में पैदा करना है। यह किस प्रकार सम्भव होगा उसके हिसाब की एक तालिका बनाकर भेज रहा हूँ।

इस तालिका मे मैंने कुल ४२.७५ एकड़ जमीन परती छोड़ने का प्रस्ताव किया है यानी ५॥। साल मे एक बार हर जमीन की बारी आयेगी। इसके अलावा जिस जमीन पर सिर्फ एक फसल मूँग और उर्द की ही लेने का प्रस्ताव है वह भी परती का काम करेगी। क्योंकि उर्द और मूँग जमीन की ताकत बढाते ही हैं, घटाते नहीं। इस हिसाब से (४२.७५+१२) यानी ५८.७५ एकड़ भूमि हर साल परती रूप मे रहेगी। इसी तरह तिल के ३ एकड़ और चरी के ५.५ एकड़ को भी एक फसल के बाद परती छोड़ा है। इस तालिका से मालूम होगा कि २३२ एकड़ जमीन पर दो फसल की उत्पत्ति होगी। तालिका पर विचार करते समय एक और बात पर ध्यान रखनी है। मैंने जो फसल का बँटवारा किया है वह प्रान्त के पूर्व के आधे जिलों की खेती के अनुभव से ही किया है। वास्तविक योजना बनाते समय यह हिसाब प्रत्येक जिला, तहसील और परगना के लिए अलग अलग बनाना पड़ेगा। मेरा हिसाब केवल इस बात का संकेत करता है कि हम किस प्रकार से और किस दृष्टि से अपनी खेती की व्यवस्था करें। इस तालिका को समझने मे शायद तुमको कुछ मुश्किल पड़े। लेकिन तालीमी संघ के काम का संचालन करते करते रिपोर्ट और चार्टो को देखने की तो

आदत पड़ गई होगी। यही सोचकर इतनी ब्योरेवार तालिका भेजने का साहस किया है :—

फसल की जमीन पर बँटवारा तथा उत्पत्ति (प्रति ग्राम)

मुख्य फसल			दूसरी फसल		
अनाज	एकड़	पैदावार	अनाज	एकड़	पैदावार
चावल (भदई)	५३	५३०)	चना	४८	४८३)
			मटर	.७	७३॥)
			सरसों	५३	१०६)
चावल (अघनी)	२३.३	२३२)	जवकेराई	२३.२	३२४॥।)
मकई	२८.५	३८६।)	पटुआ	२८.५	१७)
			बर्रे	२८.५	२८॥)
			सरसों	१७.५	३५)
			जव	१७.५	२३६।)
			जव केराई	११.०	१५४)
अरहर	१७.२	२०७)	उर्द	१७.२	८॥)
			चावल	,,	१२८)
			सावा	,,	५५)
			कोदो	,,	६८)
			रेंड़ी	,,	१७)
अनाज	एकड़	पैदावार	अनाज	एकड़	पैदावार
जुआर	८.४	५६)	उर्द	८.४	५६)
बाजरा	२३	११५)	मटर	२३	२४१॥)
			सरसों	२३	४६)
तोरी (सरसों)	३२	२४०)	जव केराई	२५	३५०)
			आलू	७	७००)

जमीन का बँटवारा

मूंग	६	५४)			
उर्द	६	५४)	जव केराई	६	८४)
कपास	६	८।)			८४)
चरी	५.५	.	उर्द की चरी	३०	
गेहूँ	६५	८४५)	अलसी (गेहूँ के साथ)	६५	६५)
मसाला	५	४०)	सन	११	११)
ईख	३	५५००)	तोरी	११	७.७)
तम्बाकू	१.२५	२६)			
तिल	३	२१)			
परती	४२.७५			२३२.३ एकड़	
जोड़	३४७.८ एकड़				

कुल पैदावार

अनाज	पैदावार
चावल	८६०)
मकई (जुन्हरी)	३८६।)
अरहर	२०७)
ज्वार	५६)
बाजरा	११५)
तोरी (सरसो)	३१७)
सरसो	१८७)

कुल पैदावार

अनाज	पैदावार
तिल	२१)
चना	४८३)
मटर	३१५)
जव केराई	६१२॥)
पटुआ सन	२८)
जव	२३६।)
बर्रे	२८॥)

मूग	५४ऽ	सावा	५५ऽ
उर्द	१२१॥ऽ	कोदो	८८ऽ
कपास	८॥ऽ	रेड़ी	१७ऽ
गेहूँ	८५४ऽ	आलू	७००ऽ
मसाला	४०ऽ	अलसी	६५ऽ
ईख	५५००ऽ	लकड़ी, रेड़ी, अरहर	
तम्बाकू	२६ऽ	आदि के सामान	१०००ऽ

उपर्युक्त पैदावार से प्रान्त की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति होकर भी कुछ बढ़ती रह जायगी। उसे हम उन प्रान्तो को भेज सकेंगे जहाँ अनाज की कमी रहेगी। इस हिसाब से हमें प्रति गाव निम्नलिखित मात्रा मे अनाज प्राप्त होगा।

अनाज	उत्पत्ति	अनाज	उत्पत्ति
चावल	८६०ऽ	गेहूँ	८५४ऽ
जोन्हरी	३८३॥ऽ	चना	४८३ऽ
अरहर	२०७ऽ	मटर	३१५ऽ
ज्वार	५६ऽ	जव बेराई	६२१॥ऽ
बाजरा	११५ऽ	जव	२३३॥ऽ
मूग	५४ऽ	सावा	५५ऽ
उर्द	१२१॥ऽ	कोदो	८८ऽ
	१८३२॥ऽ		२६३५ऽ

कुल जोड़ ४७६७॥ऽ

अर्थात् नई योजनानुसार प्रान्त भर के अनाज की उपज ४८,८१,७०,३८८ऽ मन की होगी। और हमारे प्रस्ताव के अनुसार हमे ४५,७५,८१,६७२ऽ मन अनाज की आवश्यकता है। इस प्रकार ३,०५,८८,४१६ऽ मन अनाज हम प्रति वर्ष उन प्रान्तों को भेज सकेंगे

जहाँ अनाज की कमी हो।

मैंने पहले ही कहा था कि खेती मे पैदावार बढ़ाने के लिए सहयोग के सिद्धान्त पर सम्मिलित खेती करनी आवश्यक है। अतः इन ५५ परिवारों की सहयोग समिति बनाने की चेष्टा करनी होगी। इन समितियों का क्या रूप होगा, क्या विधान तथा नियम होगा, सरकार के निरीक्षण तथा शासन का क्या रूप होगा, इत्यादि बातें वैधानिक पडितों के लिए छोड़ देना ठीक होगा। फिर इस समय इन बातो का ब्योरा बनाना भी कठिन है। समय आने पर उस समय की जनता के दृष्टिकोण तथा मानसिक स्थिति को देख कर ही सघटन की रूपरेखा बनाई जा सकती है। फिलहाल हमारे काम के लिए इतना कह देना काफी होगा कि उक्त ५५ परिवार अपनी जमीन समिति की जमीन मे अपने हिस्से के रूप मे जमा रक्खेगे। हल आदि सामान भी समिति का हो लेकिन बैल सदस्य खुद पालें और काम के समय हाजिर करे। बैल की मजदूरी भी निर्धारित की जा सकती है। लेकिन यह भी सकेत मात्र है। मै इस समय किसी बात का नियम निश्चित करना नहीं चाहता और न ऐसा करना अभी सम्भव ही है।

५५ परिवार के आदमी मिल कर किस तरह खेती का काम करेगे और उनके और बैलो के लिए कितने दिन का काम खेती मे लग जायगा, इसका हिसाब काफी दिलचस्प होगा। प्रत्येक फसल का अलग अलग हिसाब तुम्हारी जानकारी के लिए भेज रहा हूँ। इसमें जो थोड़े दिन लड़कों का काम दिखाई देता है वह उनकी पाठशालाओ के पाठ्यक्रम का हिस्सा है। वे अपने शिक्षक के साथ काम करेगे, जिससे शिक्षक खेती के काम के साथ उन्हें विविध पाठ की शिक्षा दे सकें। यह बात तुमको पसन्द आवेगी क्योंकि यह तुम्हारी बेसिक शिक्षा-पद्धति के अनुरूप होगी।

परिवारो के लोगों को किस तरह काम बाटा जाय, इसको तय करने के पहले इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि किसान

परिवारों मे कितने आदमी काम करने लायक होंगे। मै सक्षम आबादी १६ से ६० साल तक के लोगों को ही कहूँगा। यह सच है, कुछ लोग ६० से बहुत ज्यादा उम्र तक कार्यक्षम रहते हैं लेकिन उनको गृहस्थी के दूसरे फुटकर कार्य के संचालन आदि काम के लिए छोड़ कर ही अपना हिसाब करना ठीक होगा। इस प्रकार ५५ परिवारो के कुल २७४ आदमियों मे :—

६० साल से अधिक बूढ़े-बूढियाँ	१७
१६ साल से ६० साल तक प्रौढ पुरुष	७६
,, ,, ,, प्रौढ़ स्त्रियाँ	७३
६ से १५ तक के लड़के	३६
६ से १५ तक की लड़कियाँ	३४
बच्चे	२०
बच्चियाँ	१८

होंगे। हल के लिए बैल और भैसों की संख्या ७४ होनी चाहिए, यह मै पहले ही बता चुका हूँ। ७६ पुरुषो मे से मवेशियो के लिए ८ और विभिन्न फुटकर काम के लिए ३ पुरुष अलग रहेंगे। इस तरह खेती के लिए ६५ पुरुष प्राप्त होंगे।

६५ पुरुष, ७३ स्त्रियाँ और ७४ बैलो को निम्नलिखित हिसाब से काम करना होगा। किसानो के लड़कों के अलावा पाठशाला के कुल लड़के खेत में काम करेंगे। इस तरह १२२ लड़के काम के होंगे।

माह जेठ

	आदमी	बैल
निरवाई (खेत की दूबादि घास साफ करना) २७१·४ एकड़	२१७	×
खाद ढोआई—१७५·६ एकड़ (१५ गाड़ी प्रति एकड़ के हिसाब से २६३४ गाड़ी, १ गाड़ी ६ बार प्रति दिन = ४३६ गाड़ी)	८७८	८७८

जोताई—मकई, कपास, उर्द की चरी ६४·५ ए० (४ बाँह) प्रति हल से जोताई ⅘ एकड़ प्रतिदिन	३२३	६४६
सिंचाई—६४·५ एकड़ (प्रति रहट ३ आदमी ४ बैल से १॥ एकड़)	१२६	१७२
बुरदहानी (जमीन को हल से फाड़ना) मकई २८·५ एकड़	१४	२८
जोड़	१५६१	१७२४

अषाढ़

	आदमी	बैल
बेहन अघनी धान १ एकड़ जोताई बोआई ४ बाँह	५	१०
जोताई खेत अघनी धान २३·२ ए० १ बाँह	२६	५८
भदही जोताई बोआई ३ बाँह ५३ एकड़	२००	४००
भदही हेगाई बेदहनी	८०	१६०
जोताई ३ बाँह—उर्द, मूग, ज्वार, चरी, बाजरा, उर्द की चरी (परती में) और तिल—६३·६५ एकड़	३५१	७०२
हल्दी अदरक—२ एकड़ ६ बाँह जोताई+ बोआई+सोहनी	५०	—
	३६	२४
अरहर जोताई बोआई १७·२ एकड़	५५	११०
सनई गेहूँ+गन्ना के खेत मे ४६ एकड़	११५	२३०
अरहर बेदहनी १७·२ एकड़	६	१८
कपास मकई गोड़ाई २ बार ३४·५ एकड़ (१ एकड़ ८ आदमी १ बार)	५५२	—
जोड़	१४८२	१७१२

सावन

	आदमी	बैल
अघनी धान जोताई २३·२ एकड़	२९	५८
अघनी धान बोआई २३·२ एकड़	२८०	—
सोहनी-भदोही धान, अरहर, ज्वार, बाजरा, उर्द, मूग, अदरक, हल्दी, तिल (२ बार)	३७९५	—
तम्बाकू जोताई ४ बार १·२५ ए०	६	१२
सनई उलटना ४६ एकड़	५८	११६
जोड़	४१६८	१८६

(१२२ लड़के=८२ आदमी समझ कर) आदमियों मे १६३८ पु० १३०० स्त्रियाँ १८३० लड़के।

भादों

	आदमी	बैल
गेहूँ का खेत जोताई ४ वाँह ६५ एकड़	३२५	६५०
भदही धान सोहनी ५३ एकड़	२६५	—
मकई रखवाली (बूढ़ों से यह काम हो सकेगा)	—	—
तोरी (सरसों) जोताई बोआई ४३ एकड़	२१५	४३०
तम्बाकू जोताई २ बार १·२५ एकड़	३	६
शामा (अरहर की) कटाई १७·२ एकड़	१०३	—
जोड़	९११	१०८६

कुआर

	आदमी	बैल
जोताई खेत गेहूँ ४ वाँह ६५ एकड़	३२५	६५०
कटाई भदई ५३ एकड़	५३०	—

जमीन का बॅटवारा

दॅवाई भदई ५३ एकड़
मकई कटाई २८·५ एकड़
धान, कोदो, तथा उर्द (अरहर की) कटाई १७·२
धान, कोदो तथा दॅवाई
जोताई तम्बाकू १·२५ एकड़ २ बाँह
भदोही के खेत की जोताई ५३ एकड़ २ बाँह
खाद ढोआई ७२·२५ एकड

१५०	१६२
१४३	—
१३८	—
४५	५४
३	६
११२	२२४
३६८	३६८
जोड़ १७९९	१४६४

कपास चुनाई ६ एकड़ ३ वार ७२ स्त्रियाँ, ७२ लड़के

१७९९ आदमी = १४९९ पुरुष ३७२ स्त्रियाँ ७२ लड़के

जोड़ १४९९ पुरुष ३७२ स्त्रियाँ ७२ लड़के

कातिक

तोरी कटाई ४३ एकड़ + दॅवाई
जोताई—गेहूँ, चना, मटर, जव, तम्बाकू
१३६·७५ एकड़ + जव केराई ११ ए० ४ बाँह
तम्बाकू बोआई
आलू जोताई ६ बाँह ७ एकड़ + बोआई
आलू मिट्टी चढाई व सिंचाई (२ वार)
हल्दी अदरक २ एकड़ खोदाई
मसाला ३ ए० जोताई बोआई तथा सोहनी
कपास चुनाई ६ एकड़ ५ वार १८० स्त्रियाँ,
१५० लड़के

आदमी	बैल
५५५	६६
४३०	—
७३८	१४७६
३१	—
२२८	१०६
१४२	४०
२५	—
५४	१४
१७०३	१६६२

जोड़ १८०' स्त्रियाँ १५० लड़के,

अगहन

	आदमी	बैल
सिंचाई—गेहूँ, चना, मटर, जव, आलू, तम्बाकू जव केराई १५४·७५ एकड़	३६०	४१२
कटाई—अधनी धान, ज्वार और बाजरा ५४·६ एकड़	५४६	—
देंवाई अधनी धान २३·२ एकड़	६०	७२
दॅवाई ज्वार बाजरा ३१·४ एकड़	४०	४८
जोताई ६ बाँह—उर्द, मटर और जव केराई ५६·८ एकड़	४२२	८४४
खाद ढोआई ३४·२ एकड़ (८५ गाड़ी)	१७०	१७०
तिल कटाई ३ एकड़	२४	—
तिल दॅवाई ३ एकड़	५	६
जोताई २ बाँह तिल का खेत और ईख १४ ए०	३५	७०
जोड़	१६११	१६२२

पूस

	आदमी	बैल
जोताई बोआई जव केराई ४ बार २६·२ ए०	१४६	२६२
सिंचाई—गेहूँ, मटर, जव, जव केराई चना, आलू, तम्बाकू=२२०.६५	४४१	५८८
ईख ११ एकड़ कटाई छिलाई	२००	—
ईख पेराई २५ दिन १०० स्त्री	२००	२००
जुन्हरी पिटाई २८·५ एकड़ की	१७१	—
चुरी खेत ५ एकड़ जोताई २ बाँह	१२	२४
जोड़ १०० स्त्री	११७०	११०४

जमीन का बँटवारा

माघ

		आदमी	बैल
आलू तम्बाकू सिंचाई ८·२ एकड़		१८	२४
ईख कटाई छिलाई		२००	—
ईख पेराई २५ दिन	१०० स्त्रियाँ	२००	२००
जोताई २ बाह ११ एकड़		२८	५६
जोड़	१०० स्त्रिया	४४६	२८०

फागुन

	आदमी	बैल
आलू तम्बाकू सिंचाई ८·२५ एकड	१८	२४
गन्ना कटाई छिलाई	२००	—
गन्ना पेराई २५ दिन १०० स्त्रिया	२००	२००
गन्ना जोताई ११ एकड़	४२	८४
गन्ना बोआई ११ एकड़	४४	६६
पिछले गन्ने (पेड़ी) की जोताई ११ एकड़ ३ वार	१४	२८
मटर कटाई ७ एकड़	५६	—
मसाला कटाई खोदाई २·५ एकड़	६३	—
जोड़ १०० स्त्रियाँ	६३७	४०२

चैत

	आदमी	बैल
कटाई—गेहूँ, मटर, जव केराई, चना, जव	१७३४	—
आलू गोड़ाई तम्वाकू कटाई ८·२५ एकड़	९६	—
अरहर कटाई १७·२ एकड़	१०३	—

गन्ना सिंचाई ११ एकड़	२४	३२
तम्बाकू सिंचाई १·२५ एकड़	३	४
उर्द कटाई ८·४ एकड़	६७	—
जोड़	२०३०	३६

वैशाख

	आदमी	बैल
दँवाई जव केराई ११ एकड़	२८	३३
दँवाई—मटर, चना, जव केराई १३०·२ एकड़	३२५	३६०
दँवाई गेहूँ ६५ एकड़	९७५	११७०
दँवाई जव १७·५ एकड़	१७५	२१०
दँवाई अरहर १७·२ एकड़	१३७	—
दँवाई उर्द ८·४ एकड़	२०	२४
तम्बाकू कटाई १·२५ एकड़	१५	—
गन्ना सिंचाई ११ एकड़ २ बार	४५	६०
जोड़	१७२०	१८८७

कुल काम के दिन (कुल पुरुष ६५, कुल स्त्रिया ७३, कुल बैल ७४, कुल लड़के १२२)

कुल हाजिरी

माह	पुरुष	स्त्री	लड़के	बैल
जेठ	१५६१	—	—	१७२४
अषाढ़	१४८२	—	—	१७१२
सावन	१६३८	१३००	१८३०	१८६

भादों	६११	—		—	१०८६
कुआर	१४६६	३७२	(वड़े लड़के)	७२	१४६४
कातिक	१७०३	१८०	(वड़े लड़के)	१५०	१६६२
अगहन	१६११	—		—	१६२२
पूस	११७०	१००		—	११०४
माघ	४४६	१००		—	२८०
फागुन	६३६	१००		..	४०२
चैत	१५२२	१६		७३२	२६
वैशाख	१७२०	...		...	१८८७

सत्तम लोगो के काम के दिन

	पुरुष	स्त्री		लड़के	बैल
जेठ	२४	..			२३ ३
अषाढ	२३	...		..	२३·०
सावन	२५	१८		१५	२ ५
भादों	१४	.		..	१४·७
कुआर	२३	५	(बड़े)	१	१६.४
कातिक	२६	२.५	(बडे)	२	२३·०
अगहन	२५				२२·०
पूस	१८	१·४		...	१५·०
माघ	७	१·४			४·०
फागुन	१०	१·६		..	५·५
चैत	२६·५	·२		६	·५
वैशाख	१६·५	.		..	२५·५
जोड़	२४५	२६·६	कुल	२१	१७८·४
			वडे	३	

इस हिसाब से ५५ परिवार के पुरुष स्त्री, और बैलों के साल भर मे काम के तथा खाली दिन इस प्रकार रहेगे।

	काम के दिन	खाली दिन
पुरुष	२४५	१२०
स्त्री	३०	३३५
बैल	१७६	१८६

विद्यालय के कुछ लड़के और लड़कियाँ सावन मे १५ दिन और चैत मे ६ दिन पढाई बंद करके खेती में काम करेगे। बड़े लडके और लड़किया इसके अलावा ३ दिन और काम करेंगी। इसके अलावा वे विद्यार्थी, जो अपने विद्यालय के पाठ्यक्रम मे बुनियादी दस्तकारी खेती की मार्फत विद्याभ्यास करेंगे, खेती मे और अधिक समय काम करेगे क्योकि सीखने के लिए उन्हे खेती की सभी क्रियाओं मे शामिल रहना पड़ेगा। मैने उनके काम की हाज़िरी शामिल नही की है। कारण यह है कि अभी उनकी संख्या की कल्पना करना व्यर्थ हे। वे जितने दिन काम करेगे उतने दिन किसान परिवार के दूसरे लोगो को थोड़ी सहूलियत हो जायगी।

प्रश्न यह उठता है कि क्या ये खाली दिन लोगों को वेकार काटने होगे या इस समय वे दूसरे काम भी कर सकते हैं। कुछ समय तो घर-गृहस्थी के फुटकर काम मे लग जायगा। थोड़ा समय वीमारी, अतिथि-सेवा, अनुष्ठानादि मे खर्च होगा। वाकी समय मे वे विभिन्न प्रकार के गृह-उद्योगो मे लग जायँगे। गृह-उद्योग से मेरा मतलब क्या है, यह मैने पहले पत्र मे विस्तार से लिखा था। अगर इस समय याद नही आता है तो देख लेना। इस प्रकार गृह-उद्योगों मे काम का दिन नीचे लिखे हिसाब से रहेगा—

गृह-उद्योग के काम के दिन

उद्योग	हाजिरी		
	पुरुष	स्त्री	बैल
१—अनाज पिसाई बैल चक्की से ८२५ऽ आटा	१६५	...	३३०
२—धान कुटाई ८२५ऽ धान १००ऽ सावाँ (५ऽ प्रतिदिन २ पुरुष २ स्त्रियों से)	३७०	३७०	...
३—धान छँटाई	१३५	१३५	...
४—ईंट का भट्ठा ३ लाख ईंट के लिए (५०० ईंट पथाई और १५०० ईंट के भट्ठे पर लगाई प्रति व्यक्ति प्रतिदिन)	८००	.	..
जोड़	१४७०	५०५	३३०

अर्थात् गृह-उद्योगो मे पुरुष २३ दिन, स्त्रिया ७ दिन और बैल ५ दिन लगे रहेगे। इसके उपरान्त दूसरे कार्य-क्रमो में भी पुरुष और स्त्रिया लगी रहेगी; उनका व्योरा नीचे लिखे अनुसार हो सकता है।

कार्यक्रम का व्यौरा	काम के दिन	
	पुरुष	स्त्री
खेती मे आकस्मिक कार्य	५	...
मकान-निर्माण मरम्मत आदि निर्माण-सम्बंधी कार्य	१६	५
मेड़ बँधाई	१२	...
लकड़ी काटना, चीरना तथा ढोना	१०	...
अनाज ढुलाई बाजारों को बैलगाड़ी से	५	...
अनाज तथा अन्य सफाई	...	१५
अतिथि-सत्कार	२०	५
त्यौहारादि	१५	२०
बीमारी तथा सुश्रूषा	१०	३०

प्रसूति-गृह	...	१०
अन्य फुटकर	४	५
जोड़	६७	६०

इस प्रकार पुरुषो का पूरा समय व्यवस्थित हो जाता है लेकिन स्त्रियाँ फिर भी २३८ दिन खाली रहेगी। ये २३८ दिन वे चर्खे से सूत कातेंगी। लड़कों मे १२२ लड़के २१ दिन खेती मे काम करेंगे, २७० दिन विद्यालय के दिन और बाकी ७४ दिन सफाई तथा आराम के दिन होगे।

मैने तमाम काम की गति आज की गति के हिसाब से ही लगाई है। हमे इन तमाम संघटनो को पूरा करने के लिए १५ साल तो लग ही जायँगे। उतने दिन संघटित कार्य करते रहने से जनता की कर्म-शक्ति, योग्यता तथा गति की वृद्धि होगी। तब इससे कम दिनो मे ही ये सब काम हो जायँगे लेकिन मै इससे अधिक काम का प्रस्ताव इन ५५ परिवार के लोगो के लिए नही करूँगा। जब हमारी योजना ग्रामवासी की सर्वतोमुखी उन्नति की ओर होगी तो शिक्षा, कला तथा संस्कृति की उन्नति होगी। ऐसी हालत मे लोग खेती से बचे समय को सहूलियत के साथ इन चीजो मे लगायँगे। खेती की विभिन्न प्रक्रियाओ की गति मे वृद्धि होने पर बैलो के खाली दिन भी बढेगे ही। अब भी खेती के काम के अलावा १८६ दिन उनको बचते है। बैलगाड़ी, चक्की आदि और कुछ अन्य फुटकर कामों मे ३० दिन तथा महीने मे ५ दिन के हिसाब से आवश्यक आराम के ६० दिन घट कर भी ९६ दिन खाली रहते हैं। क्रमशः ग्राम-उद्योग की उन्नति के साथ बैलों के खाली दिन भी उद्योग मे लगते जायँगे। इस प्रकार उन ५५ परिवारों तथा उनके पशुओं के कुल समय का उचित उपयोग मौजूदा जमीन पर खेती तथा कुछ गृह-उद्योग के काम मे हो जायगा।

पशुओं का प्रश्न—खेती से पशुओ का सम्बन्ध इतना घनिष्ठ है कि इन पर विचार अभी कर लेना ठीक होगा। प्राचीन काल से भारत मे गोधन का बहुत महत्व रहा है। लोगो के पास जंगल काफी थे। चारागाह की भी कमी नही थी। अतः लोग जी भर कर गोपालन करते थे। एक एक हल के लिए कई बैल रखते थे जिससे वे आराम से बैठे रहे। गोजाति के कारण मनुष्य को अन्न मिलता था, दूध-घी मिलता था इसलिए उस भावना-प्रधान युग मे मनुष्य कृतज्ञता से जितना आराम गाय बैल को दे सकते थे, देते थे। यह भावना आज भी विस्तृत क्षेत्रों मे फैली है। केवल जनता मे ही ऐसी भावना का प्रसार है, ऐसी बात नही। अर्थ-शास्त्र के पडितों की राय मे भी आज जितने बैल हैं उन पर अधिक बोझ पड़ता है और बैलों की सख्या मे वृद्धि होनी चाहिए। श्री राधाकमल मुकर्जी ने भी अपने "लैंड प्रवलम्स आफ इंडिया" मे बैलों की सख्या मे घटनी देख कर अफसोस जाहिर करते हुए कहा है "पहले जमाने मे एक हल के लिए चार बैल की जरूरत समझी जाती थी लेकिन वह सख्या अब तीन और बहुत से स्थानों मे २ पर आ गिरी है। नतीजा यह हुआ है कि बैलों को अतिरिक्त परिश्रम करना पड़ता है।" किन्तु मेरा अनुभव इसके विपरीत ही है। मैंने देखा है, देहातों मे बैल अधिकाशतः खाली ही रहते हैं। पिछले पत्र में एक हिसाब से बताया भी है कि हमारे बैल अधिकतर खाली रहते हैं। युक्तप्रान्तीय खेती सुधार कमेटी १६४२ की रिपोर्ट मे भी कहा गया है कि "किसान मुश्किल से साल मे तीन माह बैलो को इस्तेमाल करता है और उन्हें ६ माह बैठा कर खिलाता है।" मेरी राय मे यह भी कुछ अतिरजित है। लेकिन चाहे जिस तरह से जाच करो इस प्रान्त मे ४-५ माह से ज्यादा बैलों के लिए काम नहीं है। हा, यह जरूर है कि किसी के पास जरूरत से ज्यादा बैल हैं और कोई बैल बिना जोत नहीं पाते हैं। अतः अतिरिक्त परिश्रम केवल उन्हीं के बैलों को होता है जिनके पास खेत के अनुपात से बैल कम

हैं। लेकिन किसी राष्ट्रीय समस्या को हल करते समय तुमको अपवादों को नही देखना है। हमे तो औसत स्थिति को देख कर ही विचार करना है। अगर प्रान्त भर के कुल बैलों का हिसाव लगाओ तो देखागी कि समस्या यह नही है कि हम बैलों की संख्या किस प्रकार बढावे, बल्कि यह है कि जितने बैल हैं उनको काम क्या दिया जाय। यही कारण है कि मैंने अपनी योजना मे प्रति ग्राम ६० बैलों के स्थान पर ७४ बैल रखने का प्रस्ताव किया है। और उतने मे ही किस तरह हमारा काम पूरा हो जाता है, उसका भी हिसाब बताया है। बैलों की कर्म शक्ति किस प्रकार बढाई जाय और नस्ल-सुधार के लिए हमे क्या-क्या करना चाहिए, यह मै पहले भी लिख चुका हूॅ। विस्तार से इस सवाल पर भी प्रकाश डाल चुका हूॅ कि दूध के लिए भैस और जोतने के लिए बैल रखने से हमारा काम चलेगा या नहीं। इस प्रश्न पर मैंने अपनी निश्चित राय जाहिर कर दी है। तदनुसार अपनी योजना मे प्रति ग्राम की भैस की संख्या घटाई है। आज जहा एक गाव मे औसत ३५ भैंसे हैं वहा मैने २४ ही रक्खी हैं। यह भी व्यावहारिकता के नाते मौजूदा परिस्थिति से समझौता ही किया है। कोशिश इस वात की करनी होगी कि यह संख्या भी कम हो जाय। प्रान्त मे चरने के लिए कितनी कम भूमि है, मालूम ही है। खेती मे का कितना हिस्सा जानवरों के लिए छोड़ा जा सकता है, यह भी तुमने देख लिया। अव बताओ भैसो के उपरान्त कुल गौओं को रख कर क्या खिला कर जिलाओगी। गौओ को ठीक से न जिला सकने से अच्छे बैल मिलना असम्भव है।

प्रश्न यह रह जाता है कि बैलो की सख्या घटाई कैसे जाय? दूध देने वाली गौओ की सख्या बढ़ने पर गोजाति की आवादी तो बढेगी; घटेगी कैसे? हां, यह सवाल कुछ जटिल जरूर है और इस विषय मे प्रयोग की काफी गुंजाइश है। आजकल विशेषज्ञों की राय अलग-अलग है। कुछ लोगो की राय मे ग्राम के औसत दूध की वृद्धि दो

तरह से हो सकती है, उचित आहार से और दूध देने की अवधि की वृद्धि करके। अगर दूध देने की अवधि बढती है तो गौएँ आज जिस हिसाब से बच्चे देती हैं उसमे कमी हो जायगी। कुछ लोग कहते हैं कि दूध देने की अवधि बढाई नही जा सकती। मेरे जैसे सामान्य ग्राम-सेवक के लिए इन विशेषज्ञों की राय का विचार करना मुश्किल है। इस प्रश्न पर मेरा निजी अनुभव भी विशेष कुछ है नहीं। लेकिन अगर हमे देहातो के आर्थिक प्रश्नों को हल करना है तो पशुओं की आबादी सीमित करनी ही पडेगी। इसके लिए भावी राष्ट्रीय सरकार को विशेष रूप से प्रयोग करना होगा। दूध देने की अवधि बढा सकने पर तो स्वभावतः पशुओं की सख्या कम होती जायगी। मालूम नही इस लड़ाई ने क्या परिस्थिति पैदा कर रक्खी है। अखबारों मे फौजों के खाने के लिए बैलो की हत्या के विरुद्ध आन्दोलन देखने को मिल रहा है। सम्भवतः लड़ाई के बाद हमको दूसरी स्थिति का सामना करना पड़े। उस समय बैलो की अधिकता के स्थान पर सम्भवतः कमी ही हो। अतः इस विषय पर कोई निश्चित योजना की कल्पना करना इस समय सम्भव नही है।

बाग़-जगल—ऊपर बताये हिसाब से हमने अनाज, तेल, मीठा और दूध की आवश्यकता पूरी करने की चेष्टा की। फल और लकड़ी की समस्या बाकी रहती है। हमे प्रति गाव ५६८८ मन फल की आवश्यकता है। वैसे तो बहुत किस्म के फल इस प्रान्त मे हो सकते हैं लेकिन आमतौर से निम्नलिखित फल से हमारा काम चल सकेगा :—

आम, कटहल, पपीता, गूलर, खिन्नी, फालसा, खजूर, जामुन, लीची, बेल, आवला, बेर, नासपाती, अमरूद, केला, महुआ, नीबू, अनार, आड़ू इत्यादि।

इनमे पपीता, केला, बेल आदि लोग अपने घर के साथ लगा सकते हैं। बाकी के लिए बाग की आवश्यकता है। मै समझता हूँ आज जितने बाग हैं उन्हें ठीक करके और घरों के साथ थोड़े पेड़

लगाकर फल की समस्या हल हो सकेगी। इसके लिए अलग बढ़ती जमीन की आवश्यकता नही है। फिर भी दो एकड़ प्रति ग्राम फल के लिए और अलग करना ठीक होगा।

पिछले पत्र मे भोजन-सामग्री की तालिका देखने से मालूम होगा कि खाना बनाने के लिए करीब ६०००) मन की लकड़ी की आवश्यकता प्रति ग्राम हर साल होगी। इसके अलावा मकान बनाने के लिए तथा घरेलू असबाब और उद्योग के औजार के लिए लकड़ी भी चाहिए। आज प्रान्त के कुल क्षेत्रफल के ५.८ % जमीन पर जंगल मौजूद है। इस हिसाब से कुल जंगल का क्षेत्रफल ६१६२ वर्ग मील = ३६,४३६८० एकड़ होगा। काम की लकड़ी के अलावा ईंधन के लिए एक एकड़ से प्रतिवर्ष १५ मन लकड़ी तो अवश्य मिल जायगी। इस प्रकार जंगलो से लगभग ६ करोड़ मन ईंधन मिल सकेगा। जगल से दूर के देहातो के लिए तो स्थानीय व्यवस्था लकड़ी के लिये करनी होगी। अब देखना है देहातो मे प्रति ग्राम ऐसी कितनी जमीन है जिस पर जगल लगाया जा सकेगा। पिछले पत्र मे मैने जो जमीन का हिसाब भेजा था। उसमे देखगी कि खेती के अलावा प्रति ग्राम निम्नलिखित जमीन काम मे आ सकती है।

१—आसानी से खेती हो सके ऐसी जमीन	३२.३	एकड
२—खेती लायक परती	६४.०	”
३—खेती लायक ऊसर	४६.८	”

गॉव में जो ६०००) मन लकड़ी की आवश्यकता होगी उसमे १०००) मन बाग और खेती के जरिए मिल जायगी। बाकी के लिए बबूल, पलाश आदि के जगल लगाने होगे। मैं बबूल लगाने का विशेष पक्ष-पाती हूँ। हमारे देहातो मे चमड़ा पकाने के उद्योग का खेती के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। अतः गॉव-गॉव इस उद्योग के प्रसार की विशेष सम्भावना है। बबूल की छाल चमड़ा पकाने का एक मुख्य साधन है। फिर बबूल बहुत से ऊसरो मे भी हो जाता है। जहाँ बबूल न हो

सके वहां पलाश का पेड़ ईंधन का अच्छा काम देता है। मैने देखा है वबूल के पेड जो लोग लगाते हैं वे एक एकड़ मे करीब २०० पेड़ लगाते हैं। दस साल मे काटकर दूसरे पेड़ लगाने पडते हैं। किसान तीन साल मे एक वार उनकी डालियाँ काट देते हैं। इस प्रकार डालियो से प्रति पेड़ ३६ मन लकड़ी १० साल मे मिल जाती है। फिर दस साल वाद पेड़ काटने पर छाल के अलावा ७८ मन लकड़ी प्रति पेड़ से मिल जाती है। इस तरह दस साल मे १०० मन लकड़ी प्रति पेड़ से मिल जाती है। पलाश का भी पड़ता करीब उतना ही पड़ता है केवल उसमें छाल की कीमत नही मिलती है। इस हिसाव से २००० मन लकड़ी के लिए हमे एक एकड़ का जगल लगाना होगा। इस हिसाव से २५ एकड़ भूमि पर जगल लगाने की आवश्यकता होगी। ईंट के भट्ठे आदि और काम मिलकर प्रति ग्राम कुल ३० एकड़ भूमि पर जगल लगाना पड़ेगा। यह जगल जहा तक सम्भव हो उन ऊसरों पर लगाना चाहिए जहा वबूल पलाशादि लग सके। वाकी दूसरी जमीन पर लगाना होगा।

वस्त्र का प्रश्न—अव तक मैने गाँव वालों की भोजन-सम्वन्धी सामान की आवश्यकता और उसे पाने का मार्ग वताने की चेष्टा की है। लेकिन केवल भोजन से ही हमारी जरूरतें पूरी नही होती। मनुष्य मात्र को दूसरी आवश्यकताएँ भी तो होती हैं। हमने खाने के लिए जो हिसाव वताया है दूसरी चीजे भी उसी अनुपात से जरूरी हैं। अन्न के वाद वस्त्र और आश्रय पर विचार करना आवश्यक है। आज भारत मे प्रति मनुष्य को १३ गज औसत कपड़े मिलते हैं। शहर को घटाकर १० गज से अधिक गाँव के प्रति मनुष्य को नही मिलता। इसके स्थान पर मैं चाहता हूँ कि लोगो को निम्नलिखित हिसाब से कपड़ा मिले।

प्रति वालिग़	३२	गज	वार्षिक
" लड़का	२०	"	"

प्रति लड़की	२२	गज़	वार्षिक
” बच्चा	४	”	”

बच्चो के लिए मैने ४ गज़ की आवश्यकता बताई है। कारण यह है कि खादी की धोती साड़ियाँ फट जाने पर भी उनके हिस्से बच्चों के कपड़ो मे काम आते हैं। मैने ऐसे परिवार देखे हैं जो बच्चो के करीब सब कपड़े बड़ो के फटे कपड़े से ही बना लेते है। केवल ख़ास शौक़ीनी कपड़े नये खरीदते हैं। मेरा अन्दाज यह है कि पुराने कपड़ों के साथ ४ गज़ नये कपड़े से बच्चो का काम अच्छी तरह चल जायगा। इस विषय पर तुम अपनी राय लिखना। शायद तुम्हारी राय सही हो। इस हिसाब से गाँव भर के लिए निम्नलिखित परिमाण मे कपड़े की आवश्यकता होगी :—

२८२	बालिग़ो के लिए	६०२४	गज़
६२	लड़को के लिए	१२४०	”
६०	लड़कियो के लिए	१३५०	”
६६	बच्चो के लिए	२६४	”
		११८४८	गज़

गाँव और घर का रूप—गाव मे मकान कैसे होते हैं, यह तुम से छिपा नही है। वस्तुतः गृहस्थी के काम को देखते हुए मेरे ख्याल से प्रति मनुष्य को २०० वर्गफुट जगह तो चाहिए ही। हमारे देहातो मे औसत प्रति परिवार ५ प्राणी का होता है। उनके लिए १००० वर्ग फुट ज़मीन चाहिए यानी देहाती भाषा मे एक परिवार को २० हाथ चौड़े २५ हाथ लम्बे मकान की आवश्यकता होगी। ऐसे मकान लगभग ३२५) मे बनते हैं। सवाल यह हैं कि क्या हमें कुल मकान तोड़कर नये बनाने हैं या जो मकान नये बने उन्हे अपने ढंग से बनवाना होगा। वस्तुतः कुल मकान तोड़कर बनाने की कोशिश करना बिल्कुल असम्भव ही है। न हमारे पास इतने साधन हैं और न हम इस मसले मे इतने

ज्यादा फँसकर दूसरे जरूरी कामों मे ढिलाई आने देना चाहते हैं। फिर भी कुछ मकान ऐसे हैं जिन्हे नये सिरे से वनवाना ही पड़ेगा। मेरे ख्याल से हमे प्रति ग्राम कम से कम ३० घर नये वनवाने होंगे। नये घर वनवाने के साथ-साथ पुराने घरों तथा गाँव के रूप का भी सुधार होना चाहिए। पहले एक पत्र मे मकान वनाने के तरीकों की आलोचना करते हुए मैंने वताया था कि आज के ग्रामो की सतह पानी निकलने के लायक नहीं है। कही ऊँची, कही नीची। क्रमशः ईंटों के व्यवहार से यह सतह हमे ठीक करनी होगी। फिर मिट्टी लेने के लिए ग्राम-पंचायत की ओर से गाँव के पास निश्चित स्थान निर्दिष्ट कर देना होगा। लोग मिट्टी उसी स्थान से ले जिससे वह स्थान तालाव का रूप ले सके। एक अलग योजना वनाकर धीरे धीरे गाँव के अन्दर के गड्ढों को पाटते जाना चाहिए। पाटने के लिए यह नियम वना देना चाहिए कि जव कोई भी मकान मरम्मत करें या गिराकर दूसरा वनावे तो उनके मलवे को गड्ढों मे ही डाले न कि आज कल की रीति के अनुसार जहाँ पर टूटे वहाँ ही फैला दे। अगर संघटित रूप से किया जाय तो मेरी निश्चित धारणा है कि यह काम १०-१२ साल में पूरा हो सकता है।

दूसरी वात यह है कि हमारे मकानों का नक़्शा इस ढंग से वनाना होगा जिससे वे हमारी योजनानुसार व्यवस्था के अनुरूप हों। यानी वे स्वास्थ्यकर, हवादार हों; नहाने, और वर्त्तन माँजने आदि पानी के काम के लिए उचित प्रवन्ध हो; खिड़की के पास थोडी जमीन हो जहाँ स्त्रियाँ स्वच्छंद बैठ सकें; थोड़ी तरकारी, केला, पपीता आदि के पेड़ लगा सकें; दरवाजे के सामने थोड़ी जमीन उठने-बैठने के लिए हो; एक नीम का पेड़ लगा सके और थोड़ चबूतरा वन सके। गाँव के किसी केन्द्रीय स्थान पर पाठशाला, क्लव तथा पंचायत घर का प्रवन्ध हो। इसके साथ ही कुछ जमीन होनी चाहिए। पशुओं को घर से अलग रखने की वावत मैंने पहले लिखा था। अच्छा हो, सहयोग के आधार

पर एक तरफ सम्मिलित मवेशीखाना हो, नही तो घर से अलग पशुओं के रहने का स्थान हो जिससे घर की वायु दूषित न होने पावे। ग्राम-उद्योग के प्रसार के साथ-साथ सभी गाँवो में काफी उद्योग का काम चलेगा। उद्योगशाला के लिए भी निश्चित स्थान होना चाहिए। जब सब बड़े बच्चो को पाठशाला मे भेजेंगे और स्त्रियो के लिए पूरे समय का काम निर्धारित कर देंगे तो बच्चों के लिए शिशु-विहार बनाना आवश्यक होगा। शिशु-विहार के लिए गाँव में कोई केन्द्रीय स्थान होना चाहिए जो सभी घरो से करीब समान दूरी पर हो। इसी प्रकार अनाज के खलिहान तथा खाद के घूरों का स्थान भी निश्चित होना चाहिए। इन तमाम कामो के लिए प्रति ग्राम लगभग २४ एकड़ जमीन की आवश्यकता होगी।

अन्य आवश्यकताएं—अन्न, वस्त्र और आश्रय के अलावा समाज-जीवन मे और बहुत सी आवश्यकताएँ हुआ करती हैं। हमे यह भी सोचना है कि एक परिवार को शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक सतोष के लिए साधारणतः क्या क्या साधन की जरूरत पड़ती है। मैने एक तालिका बनाई है। उसे तुम्हे भेज रहा हूँ। उसमे वस्त्र का दाम खादी के हिसाब से शामिल किया है।

भोजन के अलावा एक गांव की कुल अन्य आवश्यकताएँ

कपड़ा ११८४८ गज़ दर ।।≈)।।। प्रति गज़				७६६०।≈)
ऊनी कपड़ा	५)	प्रति परिवार के हिसाब से		४७०)
सिलाई एक रुपया साढे नौ आने प्रति परिवार				१५०)
मकान मरम्मत	१५)	प्रति	परिवार	१४१०)
वर्तन	३।।)	”	”	३२६)
अनुष्ठानादि	१०)	”	”	६४०)
स्वास्थ्य, सफाई, शृंगार	१५)	”	”	१४१०)
शिक्षा	४०)	”	”	३७६०)

विवाहादि	१५) प्रति परिवार	१४१०)
विनोद	× × ×	५०)
असबाब	५) ” ”	४७०)
रोशनी तेल ८५ दर १२) प्रति मन		१०२०)
विविध ५) प्रति परिवार		४७०)
जूता ३४० जोड़ा १॥ साल के लिए २२७ जोड़ा दर १) प्रति वर्ष		२२७)
चन्दा ग्राम समिति		१२०)
पुस्तकालय		२५)
आकस्मिक १०) प्रति परिवार		६४०)
	कुल जोड़	२११,६१।≈)

इसके साथ भोजन-सामग्री का दाम जोड़ने से गाँव भर के प्रस्तावित खर्च का अनुमान किया जा सकेगा। उसका हिसाब इस प्रकार है।

सामान	तौल	दर	दाम
आटा गेहूँ	४१३	३।)	१३४२।)
,, जव	२२६	२॥≈)	६०१≈)
,, ज्वार	५०	२॥≈)	१३१।)
,, बजरी	१००	२॥।≈)	२८७॥)
,, जुन्हरी	६३	२।)	१४१॥।)
जुन्हरी	७६	२)	१५२)
चावल	६५४	३॥)	२२८६)
साँवा	१००	१॥)	१५०)
कोदो	१०१	१॥)	१५१॥)
चना	२८६	३)	८६७)
मटर	१५०	२॥)	३७५)
दाल अरहर	१३५	४)	५४०)

दाल उर्द	९०ऽ	४)	३६०)
दाल मूंग	३५ऽ	४)	१४०)
तरकारी	१४५८ऽ	१॥)	२१८७)
मसाला	३४ऽ	८)	२७२)
नमक	७२ऽ	२॥)	१८०)
गुड़	२००ऽ	४)	८००)
चीनी	६८ऽ	६)	६२१)
फल	५६६ऽ	४)	२६७६)
तम्बाकू	१९॥ऽ	५)	९७॥)
तेल	१२७॥ऽ	१५)	१९१२॥)
घी	७२ऽ	४०)	२८८०)
पूर्ण दूध	६२७ऽ	४)	२५०८)
अपूर्ण दूध	१५२७॥ऽ	१॥)	२२९१)
खटाई	१९॥ऽ	१०)	१९५)
गोश्त आदि	८०ऽ	२॥)	२००)
लकड़ी	५९८२ऽ	।)	१४९५॥)
		जोड़	२५८३५≈)

इस प्रकार गांव भर के लोगों का कुल खर्च २११६१।≈)+२५८३५≈)=४६९९६॥) यानी नई योजना के अनुसार प्रति परिवार का खर्च ५००) वार्षिक होगा। किसानों के खेती-सम्बन्धी, दूसरे उद्योग में काम करने वालों का व्यापार खर्च तथा लगान कर आदि इसके अलावा होगा। इसके साथ ५५ किसान परिवारों के खेती के व्यय का हिसाब की तुलना करने से स्थिति स्पष्ट हो जायगी।

किसान की आमदनी-खर्च—इस पत्र के साथ खेती से कुल पैदावार की तालिका भेजी है। उनमें से साढ़े सात सैकड़ा सामान बीज मे चला जायगा। बाकी सामान, दूध-घी तथा घरों मे जो फल की

उत्पत्ति होगी उससे कुल मिलाकर ३१३६६) किसान को साल भर में मिलेगा। इसके अलावा इन परिवारों की कुछ दूसरी आमदनी भी इस प्रकार होगी। चर्खा—२३८ स्त्रिया २७।।।ऽ १६ नं० के सूत की

मजदूरी दर ३।।) सेर	२७७५)
चर्खा—स्कूल में ७१ लड़कों का २५० दिन का १३।।।ऽ५	१३८७।।)
ईंट—३,००,००० की मजदूरी दर १।-)	४००)
अनाज ढुलाई १२८ गाड़ी	१२८)
कीमत मरे हुए जानवर	६३४।।)
लड़कों की मजदूरी खेती में	१००)
	५४२५)
खेती आदि मे आमदनी	३१३६६)
	३६७६४)

इस प्रकार से किसानो के प्रति परिवार की आमदनी ६६६) होगी। इसमे से उनकी खेती सम्बन्धी निम्नलिखित खर्च घटेगा—

हल, रहट तथा खेती के औजार	७)
वैल भैसा	५।।।)
गाय	३।।)
भेस	२)
लगान व कर	२०)
झगड़ा मुकदमा आदि	४)
खाद	५)
सफर	२)
वैलगाड़ी	१।)
रिजर्व	१२।।)
घरेलू नौकर नौकरानी	२५)
नाई धोवी	१२)
जोड	१००।)

वैल, भैसा, गाय तथा भैस के लिए खर्च का हिसाव जोड़ते समय इनकी आयु दस साल मानी गई है।

इस तरह सब खर्च काट कर एक किसान परिवार की आमदनी ५६६) और घर खर्च कुल ५००) वार्षिक होगा। इसमें से सूखा बाढ आदि दुर्घटनाओ के लिए ६) और सुरक्षित करने पर भी ६०) बचता है। यह रकम पूंजी खर्च के काम आयगी। पूंजी खर्च किस प्रकार से होगा इसके ब्योरे पर उस समय प्रकाश डालूँगा जब पूजी के प्रश्न पर विचार करना होगा। फिलहाल इस रकम को यहाँ ही छोड़ना ठीक होगा।

आबादी का बँटवारा—हर गाँव में ६४ परिवार की बस्ती होती है। हमने अब तक ५५ परिवारो के लिए अपनी कल्पना के अनुसार समाज मे सुख-शान्ति से गुजर करने की व्यवस्था किस प्रकार से हो सकती है, उसकी रूप-रेखा बनाने की चेष्टा की। तुम पूछोगी, बाकी ३६ परिवारो का क्या होगा? हाँ, बाकी लोगो को भी ऐसा काम मिलना चाहिए जिससे वे भी किसानो के समान स्थिति में रह सके। खेती के अलावा निम्नलिखित विभागो के काम और हैं:—

१—उद्योग,
२—यातायात,
३—जंगल,
४—बागवानी,
५—सड़क मरम्मत,
६—व्यापार,
७—घरेलू सेवा,
८—वैद्य, डाक्टर, हकीम,
९—अध्यापक,
१०—सरकारी नौकर, फौज तथा अन्य पेशा,
११—विविध फुटकर काम

अब प्रश्न यह उठता है कि ३६ परिवारों को इन कामों में किस तरह बाँटने पर सब को सन्तोषजनक काम मिल सकेगा। इस प्रश्न पर फिर किसी दिन विचार करूँगा। इस पत्र को इतनी तालिकाओ से भर दिया है कि इतने पर विचार करने मे तुमको काफी समय लग जायगा, अब और ज्यादा बोझ डालना ठीक नही होगा। अतः आज विदा होता हूँ। सबको नमस्कार।

---

[१३]

ग्राम-उद्योग तथा अन्य पेशे

२३ ६—४४

पिछले पत्र मे किसान परिवारों के अलावा बाकी लोक-संख्या को किस तरह काम मे लगाया जाय, इस प्रश्न पर प्रकाश डालने का वादा किया था। विभिन्न कार्यक्रमों के नाम भी भेजे थे। इस पत्र मे उन कार्यक्रमों पर थोड़ा-थोड़ा करके अपना विचार प्रकट करने की चेष्टा करूँगा। वस्तुतः ससार मे जितने प्रकार के उद्यम हैं उन्हें प्रधानतः दो श्रेणी मे बाँटा जा सकता है। (१) उत्पत्ति और (२) सेवा। खेती, बागवानी, जगल, उद्योग आदि काम प्रथम श्रेणी के, और यातायात, व्यापार, घरलू सेवा, वैद्य, डाक्टर, हकीम, अध्यापक, सरकारी नौकर, फौज तथा अन्य पेशे सभी जनसेवा श्रेणी के अन्तर्गत कहे जा सकते हैं। खेती और उद्योग दोनों एक ही श्रेणी की चीजें हैं। अतः खेती के बाद उद्योग पर ही विचार करना ठीक होगा। पहले किसी पत्र मे मैने उन उद्योगों की एक तालिका लिख भेजी थी जो प्रधानतः गाँवों में चल सकते हैं। आशा है, वह तालिका तुम्हारे पास मौजूद होगी। उनके अलावा कुछ स्थानीय उद्योग भी होना सम्भव है। लेकिन वे बहुत थोड़े होंगे। सब से पहले हमे उन उद्योगो पर विचार करना चाहिए जो खेती से विशेष सम्बन्धित हैं या जो भोजन-सामग्री के काम की हों। तेल घानी, चीनी बनाना तथा अडा, मछली-गोश्त का काम ऐसा काम है।

१—तेल घानी—खेती की पैदावार की ओर देखने से मालूम होगा कि हमारे प्रान्त के प्रति ग्राम के तेलहन की उत्पत्ति (बीज काट कर) वार्षिक ५६१५ मन है। रोशनी के लिए नीम आदि के ८५९ तेल की आवश्यकता होगी यानी करीब २५०९ नीम के बीज की पेराई करनी है। इसके अलावा साबुन के लिए भी तेल चाहिए। ठीक तरह

से सफाई रखने के लिए प्रति परिवार को मासिक २ सेर साबुन तो लग ही जायगा। इस तरह गाँव के खर्च के लिए हमें वार्षिक ५६६ साबुन चाहिए। शहर के लिए २० सैकड़ा अधिक उत्पत्ति करनी है यानी प्रति ग्राम ६७६ साबुन बनाने की आवश्यकता है। इतने साबुन के लिए १००६ क करीब महुआ, गरी आदि तेलहन से तेल निकालना पड़ेगा। इस प्रकार हमें हर गाँव के लिए ६४१६ तेलहन पेरने की व्यवस्था करनी है। तुमने मगनवाड़ी की घानी का काम तो देखा ही है। वहाँ एक घानी से प्रतिदिन १६ तेलहन पेरा जाता है। इस तरह ढाई परिवार तेल पेरने के काम मे लग सकते हैं।

२—चीनी बनाने का काम—हमारे प्रबन्ध से ४६२॥६ मन राब प्रति ग्राम तैयार होगी। इतनी राब से चीनी बनाने के लिए १ परिवार का ४ माह का समय लग जायगा। तुमको मालूम है कि चीनी का काम पूरे साल भर नही होता। अतः एक ही परिवार को घानी और चीनी का काम बताया जा सकता है। इस हिसाब से प्रति ग्राम .५ (आधा) परिवार से चीनी का काम हो सकता है।

३—गोश्त, अडा, मछली आदि का काम—गाँव वालो की खाद्य-सामग्री की तालिका मे इस प्रकार की भोजन सामग्री का खर्च पूरे गाँव के लिए २००) बताया गया है। एक परिवार के गुजर के लिए ५००) चाहिए। अगर दो गाँव में एक परिवार इस काम मे रहे तो उनकी आमदनी निम्नलिखित रूप से होगी।

मछली आदि	१८० × २	=	३६०)
चर्खा ॥६४		=	६०)
लड़कों का चर्खा ६८		=	२०)
सिघाड़ा आदि फल		=	७०)
	जोड़	=	५१०)

इसी प्रकार गाँव के कपड़े ११८४८ गज़ और शहर के हिस्से के ३३१७ गज़ मिलाकर १५,१६५ गज़ कपड़े बुनने होंगे। अगर एक परिवार सप्ताह मे ६० गज़ बुन सके तो इतने के लिए ६ परिवारों की आवश्यकता होगी। इस तरह हर उद्योग की आवश्यकता की जाँच करके हिसाब करना होगा कि किस उद्योग में प्रति ग्राम कितने परिवार लग सकते हैं। इसके लिए सही हिसाब तो भविष्य में राष्ट्रीय सरकार स्थिति की जाँच करके ही वना सकेगी। सकेत रूप से मैंने जो हिसाब वनाया है उसका व्यौरा इस प्रकार है :—

उद्योग	सं० परिवार	उद्योग	स० परिवार
तेल घानी	२.५	दरी कालीन	.२५
चीनी का काम	.५	सिलाई	.५
बुनाई	६.०	अंडा मछली गोश्त	.५
साबुन	.६६	रंगाई छपाई	.०५
कागज	.५६	सींग का काम	.०५
चमड़ा सिझाना	.२	वाध रस्सी आदि का काम	.५
सरेस ताँत, जूता आदि	.५	दियासलाई वनाना	.०४
लोहारी	१.५	रोशनाई वनाना	.०२
वढ़ईगीरी	१.५	शीशा चूड़ी आदि	०.५
भेड़ पालना कम्वल वनाना	१.०	ठठेरी	.२०
कुम्हारी	.५	सोनारी	.०६
पेंसिल वनाना	.००५	तमोली	.०५
वाँस वनाना	.००५	वारी	.०२
संगतराशी	.०२	राजमिस्त्री	.५०
माली दवा जड़ी-बूटी	०.५	अन्य उद्योग	१.००
		खाद वनाना	.५०
			१९.७९५

इसके उपरान्त बागवानी तथा जगल में २.५ + ३.५ = ६ परिवार लगेंगे। इस हिसाब से उत्पत्ति के काम मे कुल ८०.७६५ परिवार लग जायँगे।

हमारी योजनानुसार जब लोगो की आर्थिक दशा सुधरेगी तो जन-सेवा श्रेणी का काम भी बढ़ेगा। अपनी आवश्यकताओं को देखते हुए मैंने इन बातों को निम्नलिखित रूप से बाँटने का सोचा है।

काम	प्रान्त की आबादी का मौजूदा अनुपात प्रतिशत (१६३१)	मेरे प्रस्तावित परिवार (केवल गाँव के)
यातायात	.८	.२०५ परिवार
घरेलू सेवा (नौकर, चाकर ५, धोबी १, नाऊ १)	२	७.० ,,
व्यापार	४.७	१.० ,,
वैद्य, हकीम, डाक्टर	६.५	.२ ,,
अध्यापक, सरकारी		२.५ ,,
नौकरी फौज तथा अन्य पेशा		२.० ,,
विविध	२.५	.३ ,,
	जोड़	१३.२०५ ,,

ऊपर बताये हिसाब के अनुसार गाँव की कुल आबादी का काम निश्चित हो जाता है। तुम कहोगी कि गाव की कुल आबादी इस प्रकार के कामों मे फँस जाती है तो बड़े उद्योग, जो केन्द्रीय व्यवस्था से ही चलना सम्भव है, किस तरह चलेंगे। उनके लिए आदमी कहाँ से आवेंगे। तुम्हारी ऐसी शका स्वाभाविक है। लेकिन बुनियादी

आवश्यकता की सभी सामग्री की ग्राम-उद्योग द्वारा उत्पत्ति होने पर आज की शहरी आबादी सब खाली हो जायगी। उनकी तादाद इतनी काफी होगी कि बड़े उद्योगो की जरूरते पूरी हो जायँगी अतः हमको इसकी विशेष चिन्ता नही है।

मशीन बनाम; हाथ का उद्योग—अभी यहाँ कुछ जेल के साथी बैठे थे। वे मेरी कल्पना को देखकर हँसते थे। उनका कहना था कि "आज के वैज्ञानिक और मशीन युग मे आप यह क्या प्रस्ताव करने जा रहे हैं। क्या आप मनुष्य समाज को फिर २००० वर्ष पीछे ले जाना चाहते हैं?" तुम ऐसी बात तो नही कहोगी लेकिन चारो तरफ एक ही आवाज़ सुनकर कही तुम्हारे मन मे भी सन्देह पैदा न हो जाय। भाई, मैं मानव समाज को २००० वर्ष पीछे नही ले जा रहा हूँ। मै केवल उसे उस दलदल से निकालना चाहता हूँ जिसमे वह फँस गया है। मशीनो के उद्योगों के कारण समाज जिस बेकारी और गुलामी मे फँस गया है उससे निकलने का एक मात्र उपाय ग्राम-उद्योग ही है, यह मैंने पहले एक पत्र मे लिखा था। अगर स्वावलम्बन के बुनियादी उसूलों को छोड भी दे तो भी परिस्थिति का तकाजा यही है कि हम ग्राम-उद्योग मे ही अपनी उत्पत्ति करें। आजकल वास्तविक स्थिति के वैज्ञानिक विचार की बात बहुत सुनी जाती है। देखना यह है कि भारत की आबादी की वास्तविक स्थिति क्या है और उस स्थिति पर वैज्ञानिक विचार हमको कहाँ ले जाता है। मैंने पहले कहा है कि भारत की आबादी, भूमि, तथा ऐतिहासिक परम्परा दूसरे देशो से भिन्न है। हम कोई भी योजना बनायेगे तो उसे अपनी आबादी की स्थिति की दृष्टि से ही बनाना होगा। अगर हम उद्योगो को मशीनों से ही चलाना चाहे तो अपनी उत्पत्ति के लिए कितने आदमी चाहिएँ उसका हिसाब कोई बता सकता है? अभी जो बम्बई योजना का बहुत प्रचार है उसमे उन्होंने केवल इतना ही कहा है कि खेतो से २०% आबादी निकाल ली जायगी। उन्होने भी इस बात का

ख्याल नहीं किया कि उनकी बताई आवश्यकता के लिए जितनी उत्पत्ति की आवश्यकता होगी उतनी उत्पत्ति वर्त्तमान सुधरी हुई मशीनों द्वारा करने में खेती से निकली कुल सक्षम जन-संख्या पूरी तौर से लग जायगी या नही। फिर जब मशीनो के ही सिद्धान्त पर अपनी आर्थिक व्यवस्था का आधार बनाया जायगा तो स्वभावतः खेती भी मशीनो से ही करनी होगी; और आधुनिक अर्थशास्त्री की राय भी यही है। उस हालत में बाकी आबादी, जो खेती के लिए छोड़ी जा रही है उनको पूरा काम मिलेगा या नही, इसका जवाब कोई निश्चित रूप से हिसाब लगाकर नहीं देता है। यह कहा जा सकता है कि फिलहाल खेती का साधारण सुधार करके हम केवल उत्पत्ति ही बढ़ायेंगे और उद्योग के काम मशीन से करेंगे; फिर समय आने पर खेती भी मशीनो से करने की समस्या पर विचार करेंगे। लेकिन उत्पत्ति बढ़ाने के लिए कुछ साधारण सुधार खेती के तरीके में करना ही होगा। आज के प्रकार मे बहुत सामान्य सुधार करके ही आज की खेती में कितने आदमी चाहिएँ, उसकी मासिक हाजिरी की तालिका मैंने पिछले पत्र के साथ तुमको भेजी थी। खेती की उसी गति के अनुसार ही, दूसरे उद्योगों के न होने पर, प्रति कार्यकर्ता ४ एकड़ जमीन की खेती कर सकता है। भारत में लगभग २८ करोड़ एकड़ मे खेती होती है। मौजूदा आबादी को नया खेत प्राप्य नहीं; यह मैंने पहले ही बताया है। जो कुछ जगह है भी उस पर जंगल, बाग और नई बढ़ती आबादी के लिए भोजन का काम मुश्किल से ही पूरा होगा। अतः वर्त्तमान स्थिति मे ७ करोड़ सक्षम आदमी खेती के लिए आवश्यक है। सन् १९४१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार भारत की कुल आबादी ३९ करोड़ के करीब है, जिसमे बृटिश भारत में ३० करोड़ है। हमारे यहा १५ से ५५ साल तक के लोग सक्षम कहे जा सकते हैं। वैसे तो बहुत से पंडितो की राय से ४० वर्ष तक ही भारत के लोग सक्षम रहते हैं। लेकिन ऐसा होना समाज की रोगी

अवस्था ही मानी जा सकती है। फिर कितनी उम्र तक सक्षम है इसके झगड़े मे पड़ने से क्या लाभ। अगर ४० वर्ष तक ही सक्षमता की उम्र मानी जाय तो उसके ऊपर वाले भी वेकार तो रहेगे ही। हमको यह देखना है कि हम कितने आदमियो को काम दे सकते हैं और कितने बेकार वाकार आदमियों की कमाई पर बोझ बनकर पड़े रहते हैं। यह बोझ सबल आदमियों का है या पंगुओ का, इस बहस मे पड़ने से स्थिति कुछ बदल थोड़े ही जायगी? मै तो १५ से ५५ साल तक के लोगो को सक्षम मानता हूँ। खेती के काम मे तो मैने ६० वर्ष तक के लोगों को सक्षम माना है। भारत की उम्र के अनुपात से हिसाब लगाने पर मालूम होता है कि यहाँ कुल २१ करोड़ सक्षम स्त्री-पुरुष हैं। ७ करोड़ खेती मे काम करने वालो को काटकर १४ करोड़ को उद्योग मे काम देना होगा। अगर मशीन से उत्पत्ति के काम मे इतने लोगों को लगाना चाहोगी तो जो माल पैदा होगा उसकी खपत कहा होगी? संसार में पाँच ही मुल्क अपनी औद्योगिक उत्पत्ति से सारे संसार के बाजारों को घेरे हुए है। केवल संसार के बाजार घेरे हुए हैं, ऐसी ही बात नही। वीच-वीच में उत्पन्न सामग्री को नष्ट करके अतिरिक्त उत्पत्ति की समस्याओ को भी हल करना पड़ता है। ये पाँच बड़े देश हैं—ग्रेट बृटेन, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, जर्मनी, फ्रास और जापान। इन देशों के तमाम उद्योग व्यापार व यातायात मिलाकर कितने आदमी काम करते हैं जानती हो? नीचे के हिसाब से उसका पूरा व्यौरा मालूम हो जायगा :—

औद्योगिक देशो के श्रमिकों की सख्या

नाम देश	उद्योग मे लगे श्रमिक	व्यापार तथा यातायात में लगे श्रमिक
ग्रेट बृटेन	९१,४१,८००	४०,००,०००
युक्तराष्ट्र अमेरिका	१,५४,७५,६००	१,२०,००,०००
जर्मनी	१,३२,४९,२००	५२,००,०००

फ्रास	७१,१४,८००	३६,००,०००
जापान	५७,१७,५००	५,००,०००
जोड़	५,०६,६८,६००	२,५३,००,०००
कुल जोड़	७,५६,६८,६००	

यह हिसाब दस साल पहले का है। बाद को लड़ाई की तैयारी के लिए कुछ आदमी और बढ़े होंगे। अब उद्योग, यातायात और व्यापार मिलाकर कुल ७,५६,६८,६०० आदमी की उत्पत्ति की समस्या हल करने के लिए आज हिंसा का इतना बड़ा ताडव हो रहा है तो भारत के १४ करोड़ आदमियो की उत्पत्ति संसार को कहा ले जायगी, उसकी कल्पना तो करो।

फिर इतने आदमी लगाने के लिए पूजी कितनी चाहिए, इसका हिसाब भी करना कठिन है। बम्बई योजना वाले जितनी उत्पत्ति करना चाहते हैं उसके लिए भी तो विदेश पर भरोसा करना होगा। अगर सब कारणो को छड़ भी दिया जाय तो भी पूजी की स्थिति देखते हुए हमको ग्राम-उद्योग के आधार पर ही आवश्यक सामान बनाकर केवल उतने उद्योगो को केन्द्रीय मशीन के लिए छोड़ देना चाहिए जो ग्राम-उद्योगो के जरिये हो नही सकते। ग्राम-उद्योग और केन्द्रीय उद्योग की पूॅजी की आवश्यकता मे कितना अन्तर है मालूम है ? एक कपड़े के उद्योग का ही हिसाब लगाने पर यह बात साफ़ हो जायगी। देखो—

कपड़े की मिल का हिसाब—भारत मे लगभग ४०० मिलें हैं जिनमे १ क़रोड़ तकुये और २ लाख करघे हैं। इनमे कुल पाच लाख आदमी काम करते हैं और स्थायी पूजी १०० करोड़ रुपया की है।

बम्बई योजनानुसार भारत में वार्षिक ३० गज प्रति व्यक्ति के हिसाब से लगभग १२०० करोड़ वर्ग गज कपड़े की आवश्यकता है।

अतः कुल उत्पत्ति के लिए हमे १० लाख और आदमी तथा २० करोड़ और स्थायी पूँजी लगानी पड़ेगी।

खादी का हिसाब—१२०० करोड़ वर्ग गज कपड़े के लिए १२०० × ३४०० करोड़ गज सूत की जरूरत होगी। १ आदमी एक दिन मे ३४०० गज कातने पर कुल उत्पत्ति के लिए ४ करोड़ आदमियों की आवश्यकता होगी। स्थायी पूँजी निम्नलिखित हिसाब से लगेगी।

कताई	४ करोड़ चर्खा सामान	८ करोड़ रुपया
बुनाई	६० लाख कर्घा	१२ करोड़ रुपया
		कुल २० करोड़ रुपया

वस्तुत. मशीन और ग्राम-उद्योग की आवश्यक पूँजी मे इतना अन्तर है कि अगर ग्राम-उद्योग की मार्फत उत्पत्ति न करें तो चीन का जो डर मैंने पहले बताया है वही डर हमको भी है। हमको भी पूँजीवादी देशों के आर्थिक साम्राज्य के अन्तर्गत हो जाना पड़ेगा। बम्बई योजना के निर्माताओं ने सम्भवतः आबादी और पूँजी की समस्या देखकर ही कहा है कि उनको ग्राम-उद्योग से भी कुछ उत्पत्ति करनी है। ग्राम-उद्योग की आवश्यकता बताते हुए वे कहते हैं—"हमारी योजना के औद्योगिक संघटन का एक जरूरी हिस्सा यह है कि बड़े उद्योगो के साथ-साथ छोटे-छोटे कुटीर-उद्योग भी शामिल रहेंगे। इसका महत्व केवल आबादी को काम में लगाने का नही बल्कि पूँजी की आवश्यकता कम करने के लिए भी है।" लेकिन वे यह नही बता सकते हैं कि कौन-कौन उद्योग गृह-उद्योग के आधार पर चलें और कौन-कौन मशीन उद्योग से। पता नही वे इस बात पर भी स्पष्ट विचार रखते हैं या नही कि जिस उद्योग को ग्राम-उद्योग के आधार पर संघटित करना होगा उसके लिए मशीन की उत्पत्ति बन्द की जाय या दोनों को साथ-साथ चलाया जाय। अगर साथ चलाये गये तो

दोनो मे खीचातानी होकर दोनों को हानि पहुँचेगी। अतः उनके अनुसार भी ग्राम-उद्योग का क्षेत्र अलग ही करना होगा। केवल बेकारी तथा पूँजी की बात थोड़े ही है। हमको तो उत्पत्ति की क्रियाओं को ऐसा बना रखना है जिससे जनता में मनुष्यता का विकास हो, उसका खातमा नही। तुमने फैक्टरी के मुहल्लो के लोगो को देखा होगा। उनसे बात करने से मालूम होता है, वे भी कुछ मशीन के पुर्जे से हो गये हैं। हम तो भावना-प्रधान देश के वासी हैं; लेकिन वैज्ञानिक युरोप के लोग भी महसूस करते रहे हैं कि मशीनों के साथ आदमी भी मशीन हो जाता है। कार्ल मार्क्स ने मशीन की उत्पत्ति और दस्तकारी की तुलना करते हुए अपने ग्रथ 'क्यापिटल' (पूजी) के प्रथम भाग मे कहा है—In manufacture and in handicrafts the worker uses a tool, in the factory he serves a machine. In the former case the movements for the instruments of labour proceed from the worker but in the latter the movements of the worker are subordinate to those of the machine, In manufacture the worker is part of a living mechanism In factory there exists a lifeless mechanism independent of them, and they are incorporated into that mechanism as its living appendages, A dull routine of a ceaseless drudgery and toil, in which the same mechanical process is incessasantly repeated resembles that of Sisyphus—the Toil like the rock, recoils perpetually upon the wearied operatries. While labour at the machine has a most depressing efect upon the nervous system, it at the same time hinders the much form activity of the muscles and prohibits free bodily and mental activity Even the lightening of the labour becomes a means of Torture for the machine does not free the worker from his work but merely deprives the work of interest "—

अर्थात् "निर्माण और दस्तकारी मे श्रमिक औज़ार का उपयोग

करता है; कारखाने में वह मशीन की सेवा मे लगता है। पहले मे श्रम के साधनों की गति का स्रोत श्रमिक है; पर दूसरे में श्रमिक की गति मशीन के अधीन होती है। गृह-उद्योग में श्रमिक एक चेतन यन्त्र-रचना का अंग होता है; कारखाने मे उनसे स्वतंत्र एक निर्जीव यान्त्रिकता होती है और वे जीवित पुछल्लों का तरह उस यान्त्रिकता से बँधे होते हैं। लगातार श्रम और मशक्कत का रूखा कार्यक्रम, जिसमें एक ही यान्त्रिक परिपाटी वार-वार वरावर दोहरानी पड़ती है सिसिपुस की भाति जो नीचे से धकेल कर चट्टान को वार-वार ऊपर पहाड़ की ओर ले जाता था और वह उसी को धकेलता हुआ नीचे आ जाता था,—उसकी मशक्कत उस चट्टान की भाति उसके ही थके अंगों पर गिरती है। मशीन पर श्रम के करने का श्रमिक के नाड़ी-मंडल पर तो वहुत बुरा प्रभाव पड़ता ही है, साथ ही पुट्ठों वा स्नायुओ की क्रिया में भी वाधा डालता है और स्वतत्र शारीरिक तथा मानसिक कर्तृत्व को रुद्ध कर देता है। मशक्कत को हल्का करना भी उत्पीड़न का साधन वन जाता है क्योंकि मशीन श्रमिक को उसके काम से छुट्टी नही देती वल्कि काम मे से दिलचस्पा दूर कर देती है।"

स्पष्ट है कि जनता के मनुष्यत्व को कायम रखने और उसका विकास करने के लिए भी उत्पत्ति के काम में ग्राम-उद्योग का प्राधान्य होना आवश्यक है।

ऊपर की वातो से स्पष्ट हो जायगा कि भारत की आर्थिक व्यवस्था के लिए आज कोई भी योजना वने उसमे प्रधानता खेती व ग्राम-उद्योग की ही होगी।

केन्द्रित बनाम विकेन्द्रित उद्योग—ग्राम उद्योगा के संघटन के सिलसिले मे एक और प्रश्न उठता है। हमारे उद्योगो के लिए कग़जावाद, जुलाहावाद, साबुनपुर आदि अलग अलग और वड़ी-वड़ी वस्तियाँ वसाई जाँय या उद्योगो को गाँव-गाँव फैलाकर संघटित किया जाय। अलग अलग वस्ती वसा कर काम चल सकता है।

शायद एक दूसरे के अनुभव से कारीगर अधिक कुशलता भी हासिल कर सकते हैं। लेकिन ऐसा करने से फिर हम को मध्यस्थता की संथाओ को मजबूत करना होगा और केन्द्रीय व्यवस्था के अधीन होना पड़ेगा। यह ठीक है कि अभी मैने आवादी और पूंजी का हिसाब करके यह बताने की चेष्टा की कि अगर हम आज मशीनो द्वारा उत्पत्ति की योजना वनावें तो एक तरफ बेकारी की समस्या जटिल होगी और दूसरी तरफ पूंजी के लिए अन्य मुल्को के चंगुल में फँस जाना पड़ेगा। मै ऊपर के हिसाब से यह बताना चाहता था कि अगर थोड़ी देर के लिए स्वावलम्बन तथा जन-साधारण की स्वतन्त्रता के प्रश्न को छोड़ दे तो भी मशीनों द्वारा उत्पत्ति की योजना इस देश में व्यावहारिक नही होगी। लेकिन ग्राम-उद्योग द्वारा उत्पत्ति का मेरा दृष्टिकोण तो दूसरा ही है। मै तो स्वावलम्बन के सिद्धान्त पर ही अपनी योजना बना रहा हूँ। अतः हमारा संघटन इस ढंग का होना चाहिए जिससे जहाँ तक सम्भव हो उत्पादक और ग्राहक का प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहे। तभी बुनियादी स्वावलम्बन की स्थापना हो सकती है। फिर तुम लोग तो तालीमी संघ के संचालक हो। तुम्ही लोगो का कहना है कि बौद्धिक विकास उत्पत्ति की प्रकिया के अनुभव के साथ-साथ होता है। अतः अगर जनता मे कला, कौशल, शिक्षा और सस्कृति को सार्वजनिक बनाना है तो उत्पत्ति की प्रक्रियाओ के अनुभवों को सार्वजनिक रूप से फैला रखना होगा। ताकि बचपन से ही मनुष्य उद्योग-प्रधान विचित्रता के वायुमंडल मे रहकर बौद्धिक विकास कर सके। मै तो सामान्य ग्राम-सेवक हूँ। आज संसार के सभी शिक्षा-शास्त्रियो का कहना है कि वास्तविक शिक्षा तो उद्योग के वायुमडल मे दस्तकारी के अनुभव से ही हो सकती है। श्री कार्ल मार्क्स ने अपनी प्रसिद्ध किताब 'क्यापिटल' के प्रथम भाग मे उद्योग की मार्फत शिक्षा की खूबी बताते हुए कहा है:— "This will be an education which in the case of every child over a certain age will

combine productive labour with instruction and physical culture not only as a means of increasing social production but as *the only way of producting fully developed human being."* अर्थात् यह एक ऐसी शिक्षा होगी जो एक विशेष उम्र के ऊपर बच्चों के लिए उत्पत्ति के साथ-साथ बौद्धिक शिक्षा तथा शरीर-सुधार का काम करेगी। यह न केवल समाज मे उत्पत्ति की वृद्धि का जरिया होगी बल्कि पूर्ण मनुष्यत्व के विकास की एक मात्र राह होगी।" मै इस विषय पर तुमसे अधिक बहस नहीं करूँगा क्योंकि तुम्हारी कमेटी वाले ही न कहते हैं—"आज कल के करीब-करीब सभी शिक्षा-शास्त्री इस बात की सिफारिश करते हैं कि बच्चों की शिक्षा किसी उपयोगी दस्तकारी के जरिए होनी चाहिए।"

लोग कह सकते हैं कि केन्द्रित बस्ती बनाकर आवश्यकता के लिए उत्पत्ति करने पर भी तो विद्यालयों मे दस्तकारी की प्रक्रियाओं को सिखाया जा सकता है और उनकी मार्फत बौद्धिक विकास हो सकता है। वस्तुतः इस तरह तनहाई मे बैठकर बौद्धिक विकास नही हो सकता; बौद्धिक विकास तो वायुमंडल पर निर्भर करता है। अगर वायुमंडल मे उद्योग की विचित्रता न हो और केवल खेती का एक रूखा जीवन हो और कुछ घंटे स्कूलों मे चर्खा आदि दस्तकारी से परिचय हो तो वैसी शिक्षा वास्तविक जीवन की शिक्षा न होगी। सयुक्त प्रान्तीय सरकार की ओर से आचार्य नरेन्द्रदेव जी की प्रधानता मे जो प्राथमिक शिक्षा कमेटी बनी थी उसका कहना है—"जिस शिक्षा मे बच्चा ही दिलचस्पी का केन्द्र होगा उसको बच्चे का प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण और बच्चे पर उसकी प्रतिक्रिया की बात का ख्याल करना ही पड़ेगा।"

अगर हम उत्पत्ति को केन्द्रित रूप देकर केवल स्कूलो मे थोड़ी दस्तकारी की शिक्षा देते जायँ तो वह दस्तकारी बच्चों के लिए जड़वत् श्रम हो जायगी, न कि समाज-जीवन की वास्तविक समस्या के हल

की चेष्टा। हाथ की कला का विकास भले ही हो जाय, बुद्धि तथा चिन्ता-शक्ति का विकास नहीं हो पावेगा। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के प्रसिद्ध दार्शनिक मि० डेवी ने शिक्षा के सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए कहा है—" "The School itself shall be made a genuine form of active community life, instead of a place set apart in which to learn lessons"

(विद्यालय ही क्रियाशील सामाजिक जीवन का एक वास्तविक रूप होगा, न कि सबक याद करने के लिए एक अलग सा स्थान।")

तुम लोगो की बेसिक शिक्षा-पद्धति में एक बात और कही जाती है कि ७ साल के बच्चे स्कूल में भर्ती होने से पहले भी समाज के स्वाभाविक वायुमंडल से शिक्षा पायेंगे। रूसो का कहना है—"दि चाइल्ड इज़ फर्स्ट रेस्टलेस, एंड देन क्यूरियस।" ("बच्चा पहले चंचल और फिर जिज्ञासु होता है।") इस जिज्ञासा के काल में अगर उसे केवल एक रूखा खेती का काम ही देखने को मिले तो उसके जानने की इच्छा को पूरी खूराक कहाँ से मिलेगी? २० साल पहले मैं जब गाँव के बच्चों से खेला करता था तो वे सवाल करके मुझको तंग कर देते थे। उस समय मैं यही सोचता था कि गाँव के इस उदासी भरे जीवन में इनके सवालो का जवाब कौन देगा। उन दिनो बच्चों को मैने कैसा देखा था, यह आगरा जेल से लिखे पत्रों में बयान कर चुका हूँ।

फिर सिर्फ बच्चो के बौद्धिक विकास की समस्या से प्रश्न थोड़े ही खत्म हो जाता है। स्कूल छोड़ने के बाद भी तो उनके लिए एक मात्र जरिया ग्रामीण समाज ही रह जाता है। उस अवस्था में भी अगर उन्हे अनुभव की विचित्रता के लिए उचित वायुमंडल न मिल सके तो उन की बौद्धिक प्रगति तो दूर रही विद्यालयो से प्राप्त बुद्धि पर भी काई जमती जायगी। इन तमाम बातो को देखते हुए मेरी निश्चित धारणा है कि हमारी उत्पत्ति का प्रकार केवल "दस्तकारी" न होकर

"ग्राम-उद्योग" होना चाहिए और उसका संघटन आवश्यकता के अनुपात से गाँव-गाँव मे फैलाकर होना चाहिए।

अब तक मैंने जो हिसाव वताया है वह सारी आवादी के आवश्यक सामान, उसकी प्राप्ति के उपाय और जनसंख्या के लिए कार्यक्रम का हिसाब था। हमको इस वात पर भी विचार करना होगा कि इन तमाम उद्योगों के संचालन के लिए संघटन कैसा हो। शुरू करते ही सारा समाज एकाएक कुछ सम्पूर्ण स्वावलम्वी तो नहीं हो जाता। हमको उद्योगो के लिए कारीगर तैयार करना है। उनके लिए कच्चे माल का स्टाक करना है; कुछ सामानों को स्थानान्तरित करना है। ग्रामीण आवश्यकता पूरी होने पर वढती मालों को वाहर ले जाकर वेचना है। इन तमाम वातों को करने के लिए कोई सघटन, व्यवस्था और कुछ सचालन की आवश्यकता होगी ही। इस वारे में मैंने अपना विचार संक्षेप मे पहले भी प्रकट किया था। उद्योगों को गृह-उद्योग, कुटुम्ब-उद्योग तथा ग्राम-उद्योग के रूप मे सचालित करने के विभिन्न तरीकों का जिक्र किया था। खेती में जिस प्रकार सहयोग के आधार पर सम्मिलित खेती का प्रवन्ध करने का प्रस्ताव है उसी तरह उद्योगों के लिए भी भिन्न-भिन्न सहयोग-समितियाँ वनानी पड़ेगी। प्रथमतः इन समितियों की देख-भाल, उनके लिए कच्चे माल आदि की व्यवस्था, वाजार की व्यवस्था आदि वहुत से काम सरकारी महकमों को करने होंगे। फिर क्रमशः ये समितियाँ स्वावलम्वी होती जायँगी।

अब देखना यह है उत्पत्ति की प्रक्रिया को उत्पादक व्यक्तिगत व स्वतन्त्र रूप से चलावे या समिति द्वारा उसका सचालन हो? विकेन्द्रीकरण का पूर्ण आदर्श तो अन्तिम व्यक्ति-स्वतन्त्रता है। अतः ग्राम-उद्योग का काम प्रधानतः व्यक्तिगत रूप से ही चलना चाहिए। केवल उन्हीं उद्योगों को समिति के संचालन मे चलाना है जिसे कोई कुटुम्ब अकेला न चला सके। विक्री के लिए जहाँ तक उत्पादक और

ग्राहक का प्रत्यक्ष लेन-देन हो सके वहा तक वे व्यक्तिगत रूप से अपना सम्बन्ध कायम रक्खे। लेकिन जहाँ बाहर भेजने की बात हो वहाँ व्यापारियों के बजाय उत्पादको की समितियों की मार्फत ही लेन-देन करना होगा।

उद्योगों का सिलसिला—ग्राम-उद्योग के संघटन का सिद्धान्त निश्चित करने के बाद राष्ट्रीय सरकार को प्रान्त भर के मौजूदा ग्राम उद्योगो के बारे में पूर्ण रूप से जाच करनी होगी। उनको देखना होगा कि (१) कौन-कौन उद्योग ऐसे हैं जो कुछ ठीक हालत पर अभी भी चल रहे हैं (२) कौन-कौन उद्योग मृतप्राय हालत में है और (३) कौन-कौन उद्योग बिल्कुल मृत हैं और (४) कौन-कौन उद्योगों को नये सिरे से चलाना है जो पहले कभी भारत में थे ही नहीं। इन बातों को देखकर उद्योगों के सघटन का सिलसिला जारी करना है क्योंकि इससे काम में सहूलियत होगी। कार्यक्रमों का सिलसिला निश्चित करते समय केवल उपयुक्त बातों पर ही ध्यान होगा, ऐसी बात नही। आवश्यकताओं के महत्व पर भी कार्यक्रमो का सिलसिला निर्भर करता है। जिस चीज की आवश्यकता ज्यादा है, उसका संघटन पहले करना है। ठठेर का काम आज अपने प्रान्त मे ठीक हालत में चल रहा है और चर्खा करीब मर चुका है लेकिन वस्त्र की आवश्यकता का महत्व देखते हुए हम चर्खे का संघटन पहले शुरू करेंगे। अतः योजना का व्यौरा बनाते समय उद्योग की हालत तथा महत्व दोनों पर ध्यान रखना होगा।

उद्योगो की हालत की जाँच के साथ-साथ कच्चे माल की प्राप्ति के जरियो की जाच करनी होगी। अब तक हमको यह मालूम नही कि प्रान्त के जंगलो से क्या-क्या कच्चा माल किस परिमाण में मिल सकता है। इनकीपूरी तालिका बननी चाहिए। जितने उद्योगों को घसंटन करना है उनके लिए कौन-कौन कच्चा माल कितने परिमाण मे चाहिए उसकी तालिका अलग से बननी चाहिए। फिर उनका

प्राप्त करने के लिए विशेष रूप से अलग योजना बनानी होगी। इस प्रकार के उद्योगो के लिए कच्चा माल प्राप्त करने की व्यवस्था शुरू-शुरू मे सरकार को ही करनी होगी।

जगल की व्यवस्था—उद्योगों के लिए कच्चा माल प्राप्त करने का एक प्रधान जरिया जंगल है। अतः भविष्य मे जंगलों की व्यवस्था के लिए काफी योग्य विभाग होना चाहिए। आज प्रान्त मे जो जंगल विभाग है वह किसी काम का नही है। उनका काम देखने से मालूम होता है कि कोई ठेकेदार काम कर रहा है। उनका मुख्य काम है लकड़ी काट-काट कर बेचना और जितनी जगह खाली होती जाय उतनी मे और पेड़ लगा देना। पिछले पत्र में कितना जगल इस प्रान्त में है उसका हिसाब लिख भेजा था। उससे ज्यादा जगल अब हो भी नही सकता। हमने अपनी ग्राम-सुधार योजना मे मकानादि की जो आवश्यकता का अन्दाज़ किया है उस हिसाब से जितनी लकड़ी चाहिए उतनी लकड़ी जंगलों से लेने से आज के जगलो की आयु कितनी रह जायगी, यह बताना कठिन है। उन पर माग का बोझ पहले से बढेगा, इसमे कोई सन्देह नही। अतः जगल विभाग को लकड़ी की व्यवस्था इस प्रकार करनी होगी जिससे बढ़ी माग के होते हुए भी जगल पर का बोझ इतना न हो जिससे काल-क्रम मे जंगल ही खत्म हो जावे। इसलिए आज की तरह महकमा का काम केवल पेड़ काट कर बेचना नही है बल्कि उसे सुखा कर तथा रासायनिक और अन्य प्रक्रियाओं से उनकी आयु बढ़ा कर ग्राहक को देना है जिससे अधिक टिकाऊ होने से लकड़ी के इस्तेमाल मे वृद्धि होने पर भी जगलो पर माग के बोझ मे विशेष बढती न हो सके।

तुम जंगली प्रान्त मे रहती हो इसलिए जगलों का अनुभव काफी होगा। तुमको मालूम है, पशुओं के चरने के लिए जगल का एक खास इलाका होता है। दूर गाव की गाय-भैंस जब दूध देना बन्द कर देती हैं तो उन्हें दूसरी बिआन तक जगल के पास के गाव मे भेज देने की

प्रथा की बात सुनी ही होगी। लेकिन जंगली इलाकों की जो हालत आज है उस पर गाय भैंस टहल ही सकती हैं, चर नहीं सकती हैं। आज उस पर घास की खेती नही की जाती है। हमारी योजना में जितनी चरने की जमीन है उस पर संयोजित रूप से घास पैदा करने की व्यवस्था करनी होगी। इस प्रकार जंगल विभाग के जिम्मे तीन मुख्य कार्य होंगे—(१) उद्योगो के लिए कच्चा माल पैदा करना, (२) लकड़ियो की वैज्ञानिक ढंग से व्यवस्था करना और (३) चरागाह का प्रबन्ध करना।

संक्षेप में मैंने उत्पत्ति-सम्बन्धी जितने कार्य-क्रम चलाने होंगे, उनका व्यौरा और किस तरह उनकी व्यवस्था की जायगी उसका कुछ संकेत इस पत्र मे लिख भेजा। इतने से भविष्य मे हमको जो योजना बनानी होगी उसका एक काम-चलाऊ आधार बन जाता है। इसके लिए मैंने उद्योगों की आवश्यकता और उनके लिए परिवारों की सख्या का जो हिसाब किया है वह बिल्कुल आनुमानिक है। वास्तविक योजना बनाते समय इनमें कुछ हेर-फेर अवश्य होगा। लेकिन मेरा विश्वास है कि मूलतः विशेष परिवर्त्तन इस हिसाब में शायद ही हो। अतः इस हिसाब को काफी निश्चित संकेत तथा आधार तो तुम निधड़क मान सकती हो।

अब जन सेवा-सम्बन्धी कार्यक्रम बाकी रह गया। उनकी बाबत २।४ दिन मे लिखूँगा। तुम मेरे पत्रों को साथियों को भी दिखाना। आज कल बापू जी रचनात्मक कार्यक्रम पर जोर दे रहे हैं। वे तो हमेशा ही जोर देते रहे हैं लेकिन आज कल जो कांग्रेस जन बाहर हैं वे कुछ पहले से ज्यादा इस बात की ओर ध्यान दे रहे हैं। मेरे इन पत्रो से उन साथियो की कुछ सेवा हो जाय तो अच्छा हो। इसलिए ही मै कह रहा था कि इन्हे अधिक से अधिक मित्रो को दिखा सको तो उपकार होगा। आज गर्मी बहुत रही है। अतः खतम करता हूँ।

सब भाई-बहिनो को मेरा सादर नमस्कार।

[१४]

जन-सेवा का कार्यक्रम

७—७—४४

हाँ, उस दिन जन-सेवा-सम्बन्धी कार्यक्रमों की बाबत अपना विचार प्रकट करने को कहा था। ग्राम-सुधार के लिए यह कार्यक्रम निम्नलिखित विभागों मे बाँटा जा सकता है :—

(१) सफाई व स्वास्थ्य (२) शिक्षा और संस्कृति, (३) यातायात (४) आर्थिक लेन-देन, बैंक आदि (५) संघटन तथा शासन।

अब अच्छा यह होगा कि हम एक-एक विषय पर अलग-अलग विचार करें।

१. सफाई व स्वास्थ्य—आज कल विदेशी समालोचको से सुर मिलाकर अपने यहा के शिक्षित लोगों का यह नारा हो गया है कि हमारे यहां के लोगों को प्रतिवेशी धर्म ('सोशल सेंस') नहीं है, वे केवल चौका साफ रखना जानते हैं इसलिए गाव भर मे गन्दगी फैली रहती है। लेकिन क्या यह बात सही है ? क्या भारत की सभ्यता मे प्रतिवेशी धर्म का स्थान नहीं है ? क्या यह गुण मानव-समाज को युरोप ने ही दिया है ? मेरे ख्याल से ऐसी बात नहीं है। भारत सफाई तथा स्वच्छता का जितना पुजारी रहा है उतना सम्भवतः आज तक संसार मे कोई जाति नहीं हुई है। आन्तरिक तथा बाहरी स्वच्छता ही भारत का प्रधान समाज-धर्म रहा है। केवल गाँव के अन्दर ही नहीं बल्कि जिससे गांव के चारों ओर की वायु शुद्ध रहे, उसकी फिक्र पंचायत को रखनी पड़ती थी। मुर्दा न गाड़कर जलाकर भस्म करने की स्वास्थ्यकर प्रथा केवल इस भारत में ही है। मृत पशुओं को दूर फेंकना पंचायती नियमों में ही शामिल था। केवल इतना ही नहीं भारत की सामाजिक प्रथा ने टट्टी, पेशाब, थूकना, खासना, छींकना, मुँह खोल कर जम्हाई लेना आदि प्रत्येक अस्वास्थ्यकर क्रिया के लिए स्थान,

काल तथा रीति निर्धारित कर रक्खी थी। और हरेक भारतवासी ने इन बातो को संस्कारभूत बना लिया था। सफाई, स्वास्थ्य आदि के नियम उल्लंघन करने के लिए पंचायत की ओर से दंड भी स्थिर कर रक्खा था। कौटिल्य अर्थशास्त्र मे नाबदान के नियमों को बयान करते हुए कहा गया है कि "प्रत्येक गृहस्थ को प्रतिवेशी की जमीन से कम से कम ३ पदो की दूरी पर से ऐसा नाबदान (नाली) बनाना होगा जिस से पानी सीधे नाली की ढाल से जोरों से बहता हुआ जाय या हमेशा नीचे गिरता रहे। इसका व्यतिक्रम होने पर ५४ पण का जुर्माना देना होगा।" इसी किस्म के बहुत से नियम बने थे। होली का होलिका जलाना, दीपावली की सफाई तथा सजावट सब है क्या चीज? सामाजिक सफाई ही न? धूप और हवाओ की रक्षा के लिए गांव के दक्षिण और पश्चिम दिशा में बाग लगाने आदि किसी ऐसे काम की मनाही है जिससे धूप रुक जाय। मनाही का नियम आज भी लोग बिना दंड-भय के पालन करते रहते हैं। हां, युरोप के लोग प्रतिवेशी धर्म-पालन करते हैं सजा के डर से और हमारे यहा संस्कृति और धर्म मे ये बातें शुमार करके इन्हें सहज बनाया गया था। लेकिन प्रत्येक देश के उत्थान-पतन का समय होता है। मैने पहले एक पत्र मे लिखा था कि सदियों से लूट और शोषण के भार से हमारे गावो के लोग गरीबी की दशा पार करके बेहोशी की दशा मे पहुँच गये हैं। निराशा और बेहोशी में आदमी प्रतिवेशी धर्म ही क्या किसी भी धर्म की रक्षा नही कर सकता है। अतः यह कहना कि भारत की संस्कृति मे प्रतिवेशी धर्म का कोई स्थान ही नही है, मिस मेयो के जातीय प्रचार के साथ वह जाना ही है। आचार, विचार, रीति व नीति है क्या चीज? समाजधर्म का उन्नत रूप ही न?

कारण कुछ हो, हमारे ग्रामो की आज की दशा तो दयनीय है ही। घरों मे नमी, धुआ आदि का हाल तो गाव गाँव मे देखने को मिलता है। मवेशियों को घर के अन्दर रखने की कुप्रथा की बावत

मैने लिखा ही है। गाव में गड्ढों की अधिकता, उसी मे तमाम गन्दगी का एकत्र होना और वही पानी काम मे लाने की कहानी भी तुम्हें मालूम है। मच्छड़ मक्खियों ने मानों अपना ही राज्य सा वना लिया है। हमारे गाँव की गंदगी की वावत वापू जी के शब्द ही स्थिति को स्पष्ट कर देंगे। उनका कहना है—"हमारे अधिकाश गाँव घूर की सी हालत में दिखाई देते हैं। उन में लोग जहाँ तहाँ पाखाना फिरते हैं, घर का अगवाड़ा तक नीचे छोड़ते। जहा पाख़ाना फिरते हैं वहाँ उसे तोपने की कोई फिक्र नहीं करते। गाँव में कही रास्ते ठीक नही रखे जाते; कहीं ऊँची मिट्टी का ढेर पड़ा है, कहीं गड्ढा हो रहा है; आदमी और पशु दोनों को चलने मे तकलीफ होती है। पोखरे और पोखरियों में वर्त्तन माँजे धोये जाते हैं; पशु पानी पीते हैं; नहाते हैं, पड़े रहते हैं। उनमे छोटे और बड़े भी आवदस्त लेते हैं; और पड़ोस ही में पाखाना फिरना तो आम वात है। यही पानी पीने पकाने के काम में लाया जाता है।

"घर वनाने में किसी भी तरह के नियम की परवाह नही की जाती। न पड़ोसी को सहूलियत का ख्याल किया जाता है, न अपनी धूप, रोशनी और हवा का।"

अतएव हमें गाँव को सफाई तथा स्वास्थ्य के प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करना होगा। पिछले पत्रों मे राष्ट्रीय सस्थाओं की मार्फत ग्राम-सुधारक-योजना के मार्ग निर्देश करते समय सफाई और स्वास्थ्य के मौलिक सिद्धान्तों पर अपना विचार लिखा था। सरकार-द्वारा सुधार-योजना मे भी उसी सिद्धान्तानुसार कार्यक्रम वनाना चाहिए। गड्ढों और जमीन की सतहों का सुधार मकान-निर्माण के साथ-साथ होता जायगा। सुधरे गाव का जो केन्द्रीय गड्ढा तालाव का रूप लेगा उसका पानी साफ रहे, यह पंचायत को जिम्मेदारी होनी चाहिए। ऐसा कानून वनाना चाहिए जिससे उसमे वर्त्तन माँजना, आवदस्त लेना, कपड़ा धोना आदि न कर सके। तालाव में विभिन्न प्रकार की मछलियाँ

पालकर उसका पानी स्वच्छ रखने का प्रबन्ध करना चाहिए। नाब-दान बनाने के लिए कुछ निश्चित रीति व नीति निर्धारित होनी चाहिए। घर के नावदान की बनावट ऐसी हो जिससे उसमें का पानी खाद बनने के काम में आ सके। उस पानी को एकत्र करके प्रति दिन साफ करने की प्रथा जारी करनी चाहिए। खेती की जो परती जमीन खाली होती है उसमे ग्राम-समिति की ओर से घेरा डालकर और नालियाँ खोदकर टट्टी बनाने का संघटन होना चाहिए। इन घेरों को इस ढंग से बनवाना चाहिए जिससे उन्हे स्थानान्तरित किया जा सके। तुम कहोगी, जीवन-व्यापी आदत एक दिन मे कैसे दूर होगी? मै इसे मानता हूँ और एक दिन में यह सब हो जायगा, ऐसी कभी कल्पना नहीं करता हूँ। लेकिन जब सर्वांगीण ग्राम-उत्थान के कार्य-क्रम बनाओगी तो शिक्षा, संस्कृति आदि सभी बातों की उन्नति की बात रहेगी न? कुछ शिक्षा से, कुछ संघटन से और कुछ कानून से सामाजिक कुप्रथाएँ बदला करती हैं। फिर धीरे-धीरे वही बात आदत के अन्तर्गत हो जाती है। टट्टी की समस्या हल करने के लिए एक दम गाँव भर को न छेड़कर पहले स्त्रियो के लिए अलग घेरा बनाकर कार्य आरम्भ करना चाहिए। पर्दे की आवश्यकता के कारण इस प्रकार की व्यवस्था का स्त्रियाँ स्वागत ही करेंगी। क्रमशः जब टट्टी के इस्तेमाल का फायदा दीखने लगेगा तो दूसरे भी इस व्यवस्था के चाहने वाले हो जायँगे। जब गाँव के लोगों की चाह काफी हो जायगी पर ढिलाई के कारण सार्वजनिक न बन पायेगी तब इस विषय में थोड़े कानून भी बनाने होंगे। साथ ही पुरुषों को टट्टी जाते समय खुरपी का इस्तेमाल करने की आदत डलवानी होगी जिससे गड्ढा खोदकर टट्टी फिर सके। गाव मे सभी कुओं की कोठी जमीन से ऊँची रहनी चाहिए और ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे कुएँ के आस-पास पानी भरने न पावे और बहकर दूर चला जाय। इस प्रकार कुएँ का पानी नाली से दूर तक लेजाकर केला, तरकारी आदि पैदा करने के काम में

इस्तेमाल करना चाहिए।

गाव के नक्शे के विषय मे लिखते समय मैंने पाठशाला के साथ खेल कूद, आमोद-प्रमोद आदि के लिए एक अखाड़ा यानी क्लब घर बनाने का जिक्र किया था। वस्तुतः खेल-कूद तथा आमोद-प्रमोद स्वास्थ्य बनाने का और रक्षा का बहुत जरूरी उपाय है। इन क्लबों का सघटन करने में कुछ भी कठिनाई न होगी। इन्ही अखाड़ों की मार्फत विभिन्न त्यौहारों का भी संघटन करना आसान होगा।

पाँच साल पहले फैजाबाद जिले के ग्राम-सुधार महकमा की मार्फत मैने जब ग्राम-सेविका शिक्षा-शिविर खोला था तो तुमसे भी उसके संचालन की बाबत सलाह की थी। तुमने धात्री-विज्ञान तथा शिशुपालन की शिक्षा की व्यवस्था रखने का प्रस्ताव किया था। सचमुच देहातों में शिशुपालन की पद्धतियों के अज्ञान के कारण लाखों शिशुओं की मृत्यु होती है। अतः स्त्री शिक्षा के साथ इस दिशा में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करनी पड़ेगी। इसके लिए प्रत्येक जिले मे सेविका-शिक्षा-शिविरों का सघटन करना होगा। ऐसे शिविर एक स्थान मे स्थायी न होकर जिले के विभिन्न क्षेत्रों मे घूमते रहें तो आम जनता की दृष्टि इस प्रकार की शिक्षा की ओर आकर्षित होगी और क्रमशः ग्राम-समितियों को इस प्रकार के केन्द्रों के संघटन की ओर दिलचस्पी होगी। शिशुपालन के प्रश्न के साथ एक दूसरा प्रश्न भी उठता है। मैंने उत्पत्ति के लिए कृषि और ग्राम-उद्योगो की जो योजना बनाई है उसमे सब स्त्रियो के लिए कोई न कोई कार्यक्रम निर्धारित किया गया है। १५ साल के लड़के-लड़कियों के लिए पढने की व्यवस्था भी की गई है। ऐसी हालत मे छोटे बच्चों को सम्हालने के लिए कोई ग्राम-सस्था कायम करनी ही होगी। इसके लिए प्रत्येक गाव में एक शिशु-विहार का संघटन करना होगा। इन बच्चों के लिए अलग आँगन और घर बनाना होगा। गाँव की वृद्धाओं के जिम्मे यह काम आसानी से दिया जा सकता है। बच्चों के लिए

खेल-कूद का सामान जुटाना पड़ेगा। इन्हीं खेलों के द्वारा उनकी बुद्धि तथा संस्कृति के विकास का सूत्रपात शिशुविहार में करना होगा। इस संस्था मे शिशुपालन तथा शिशु-शिक्षा दोनों काम साथ-साथ होना चाहिए। आज माताएँ काम के समय अपने छोटे बच्चों को जिस तरह एक बड़े बच्चे के साथ घर से बाहर भेज दिया करती हैं उसी तरह वे अपने छोटे बच्चो को अपने काम के समय इन विहारों के जिम्मे कर देंगी। शिशु विहार की देख-रेख में बच्चों की आदत तथा स्वास्थ्य शुद्धता के साथ बन सकेगा। आज कल लाजमी शिक्षा की बात दुनिया मे सब लोग करते है। लाजमी शिक्षा का अर्थ है सब पढ़ने लायक बच्चे विद्यालय जायॅ। वैसी हालत में बड़े बच्चे छोटे बच्चों को सम्हालने को नहीं रह जायॅगे। फिर शिशुविहार ही उपाय है।

सफाई तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी व्यवस्था के कारण लोग बीमार कम पड़ेंगे। लेकिन फिर भी कुछ सामान्य बीमारी और कुछ महामारी की समस्या तो बनी ही रहेगी। इसके लिए औषधालय, डाक्टर, वैद्य, हकीम आदि का प्रबन्ध ग्राम-सुधार विभाग को करना होगा। यह काम समितियों के अधीन संघटित करना ठीक होगा। केवल वैद्यों की शिक्षा का प्रबन्ध सरकार-द्वारा होगा। इसके लिए सरकार को यह तय करना होगा कि सारे प्रान्त के लिए कितने वैद्यों की आवश्यकता है और कितने मौजूद हैं। बाकी के लिए शिक्षा का प्रबन्ध करना होगा। मेरी राय मे साधारण प्राथमिक शिक्षा प्रत्येक जिले के औषधालय के साथ ही होनी चाहिए, फिर उच्च शिक्षा के लिए विशेष विद्यालयों की व्यवस्था कहीं-कही (प्रान्त भर मे ५-६ स्थानो मे) करना काफी होगा। डाक्टर, वैद्यों के उपरान्त हमारे प्रत्येक विद्यालय के पाठ्यक्रम मे गृहस्थ विज्ञान के साथ ग्रामीण जड़ी बूटियो से चिकित्सा तथा आरोग्य-विज्ञान का भी समावेश होना चाहिए ताकि चिकित्सा के इस प्राथमिक उपाय का ज्ञान सार्वजनिक हो सके।

इस प्रकार संक्षेप में मैंने गाँव के अन्दर की सफाई तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी प्रश्नों पर कुछ अपना विचार प्रकट करने की चेष्टा की। लेकिन गाँव के अन्दर की व्यवस्था ठीक कर लेने से ही स्वास्थ्य की समस्या हल नहीं हो जाती। पिछले पत्र में खेती-सम्बन्धी विविध प्रश्नों पर विचार करते समय मैंने रेल व नहरों के कारण पानी जमा होकर नमी तथा सड़न के कारण किस प्रकार मलेरिया आदि से सैकड़ों गाँव परेशान रहते हैं, यह भी बताया था। केवल नहर और रेल के कारण ही नहीं, वैसे भी हमारे देहाती इलाकों में बहुत से छिछले ताल-तलाइयाँ स्वाभाविक रूप से मौजूद हैं, और उनके किनारों के पत्ते आदि भी उसी मे गिरकर सड़ते हैं। इन तालों के कारण भी देहाती क्षेत्र की वायु दूषित होती है। इनका भी कुछ उपाय सरकार को करना होगा। प्रथमतः पानी के निकास का रास्ता रेल लाइन और नहरों के बीच काफी बढाना होगा। इसके लिए उचित जाँच करके सम्पूर्ण नकशा बनाकर ही काम करना होगा। जहाँ पानी के लगातार निकास के लिए ढाल मिलना सम्भव नहीं है वहाँ जमीन में कुएँ बनाकर पानी को भूगर्भ की ओर बहा देने का प्रबन्ध करना होगा। पानी बहाने का यह एक खास विज्ञान है जिसके ब्यौरे पर अभी विचार करना कठिन है। यह काम विशेषज्ञों का है। लेकिन इस प्रकार का प्रबन्ध अन्तिम स्थिति पर ही करना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो पानी रोककर जलाशयों की ही योजना बनानी चाहिए। ताल-तलाइयों के मध्य में गहरी खोदाई कर जलाशय बनाना और उसके चारों तरफ की जमीन खेती के लिए निकाल लेने का प्रस्ताव मैंने सिंचाई के प्रबन्ध के सिलसिले में किया है। इस प्रकार जलाशयों के पानी को सेवार मछली आदि के द्वारा साफ रखने का प्रबन्ध किया जा सकता है।

२—शिक्षा और संस्कृति—हमारे प्रान्त की शिक्षा की दशा कितनी शोचनीय है, इसका हिसाब मैं भेज चुका हूँ। वस्तुतः इस

प्रान्त के देहातों मे जितनी शिक्षा आज है उसे नहीं के बराबर समझना चाहिए। अतः अगर हमें शिक्षा का कुछ प्रबन्ध करना है तो उसे शुरू से ही आरम्भ करना होगा। हमें देखना है कि सारे प्रान्त में कितने लड़को को पढाना है। गांव की आबादी का व्यौरा लिखते समय बताया था कि पढने लायक लड़के तथा लड़किया हर गांव में १२२ हैं। हम चाहे जितना पढ़ाई को कानून से अनिवार्य कर दें फिर भी कुछ लड़के किन्हीं कारणों से नही पढ़ेगे। हाँ, ११० लड़के तो अवश्य ही पढ़ेगे। इसमें लगभग ६७ लड़के ६ से १२ साल के और ४३ लड़के १२ से १५ साल के होंगे यानी प्रति ग्राम ५६ लड़के दर्जा ४ और ५४ लड़के मिडिल तक के होंगे। इन सब को पढ़ाने के लिए प्रत्येक गाँव मे दर्जा ४ तक के स्कूल और हर तीन गाँव के बीच एक मिडिल स्कूल रखना होगा। अगर ३०% लड़के भी माध्यमिक शिक्षा लेना चाहे तो हर बीस गाँव मे एक माध्यमिक विद्यालय रखना पड़ेगा। इस हिसाब से प्रान्त भर में १,०२,३८८ दर्जा ४ तक के स्कूलो, ३४,१२६ मिडिल स्कूलों और ५११९ माध्यमिक विद्यालय की आवश्यकता होगी। इतने विद्यालयों का प्रबन्ध करने के लिए सब से पहले हमें शिक्षकों की आवश्यकता होगी। अतः यह देखना है कि इन विद्यालयो मे पढाने के लिए कितने शिक्षक चाहिएँ। हमारी योजना में पढ़ाई के साथ उद्योग का काम अवश्य रहेगा। अतः हमको क्रमशः दर्जा ४ तक के लिए ५ शिक्षक, दर्जा ७ तक के लिए ४ शिक्षक और माध्यमिक के लिए ४ शिक्षक प्रति विद्यालय चाहिएँ। इस हिसाब से प्रान्त भर मे हमको निम्नलिखित संख्या में शिक्षको की आवश्यकता होगी।

दर्जा ४ तक के लिए	१०२३८८ × ५	= ५११९४०
" ७ " " "	३४१२६ × ४	= १३६५१६
माध्यमिक दर्जों के लिए	५११९ × ४	= २०४७६
जोड़ =		६६८९३२

मैंने दर्जा ४ मे ५ शिक्षक की आवश्यकता वताई है। कारण यह है कि दर्जा १ से पहले भी एक शिशु-विभाग रखना शायद आवश्यक हो जाय। इतने शिक्षक तैयार करना कितना कठिन काम है, इसका अन्दाज तव लगेगा जव आज की स्थिति से अपने ध्येय की तुलना करोगी। नीचे की तालिका से स्थिति भलीभाँति मालूम हो जायगी :—

प्रकार स्कूल	आज की स्थिति				हमारा ध्येय	
	स० स्कूल		सं० शिक्षक			
	कन्या	वालक	कन्या	वालक	सं० स्कूल	सं० शिक्षक
दर्जा ४ तक	११०२	१६६३६	१२५४	३१,०८४	१०२३८८	५११९४०
दर्जा ७ तक	३६	४९३	१२८	२४२६	३४१२९	१३६५१६
माध्यमिक	×	१५	×	२३२	५११९	२०४७६
	१,१३८	१७१४१	१३८२	३३७४२	१४१६३६	३६८९३२
	१८,२७९		३५१२४		१४१६३६	६६८९३२

ऊपर की तालिका से स्पष्ट हो जायगा कि हमारे प्रान्त के गाँवों में जितने विद्यालय हैं उनके ७.७ गुने विद्यालयों और करीव ११ गुने शिक्षकों की आवश्यकता होगी। विद्यालय की संख्या का ७.७ गुना कहने से ठीक अन्दाज नही लगेगा। वस्तुतः हमको उससे अधिक का प्रवन्ध करना है क्योंकि दर्जा ४ तक के स्कूलों की जो संख्या तालिका मे दी हुई है उसमे वे स्कूल भी शामिल हैं जो सिर्फ दर्जा २ तक ही हैं। अतः उन्हें दर्जा ४ तक का वनाना भी एक काम है। तात्पर्य यह है कि शिक्षा-सम्वन्धी जितना प्रवन्ध करना है आज उसके दशमाश के करीव की ही व्यवस्था है, सो भी पुरानी प्रणाली की है जिसे नई पद्धति के अनुकूल उपयोगी वनाना पड़ेगा।

अव प्रश्न यह उठता है कि इतने शिक्षण के लिए उपयोगी शिक्षित जन हमारे प्रान्त मे हैं या नही। विद्यालयों के अध्यापन के

लिए हमारे शिक्षकों की कितनी योग्यता होनी चाहिए, यह तुम्हीं ठीक-ठीक बता सकोगी। मेरे ख्याल से प्रारम्भ मे निम्नलिखित योग्यता के लोगो को शिक्षा देकर शिक्षण के उपयोगी बनाया जा सकेगा।

दर्जा ४ तक के लिए   मिडिल पास
दर्जा ७ तक के लिए   माध्यमिक पास
माध्यमिक के लिए   डिग्री पास

अब देखना यह है कि इतनी योग्यतावाले कुल शिक्षक हमे मिल सकेंगे या नही। आज कल प्रान्त भर मे दर्जा ७ और ८ मे ६१६६५ छात्र हैं। इनमे लगभग ४०,००० छात्र तो पास करते ही हैं। अगर हम यह मान ले कि चार साल तक के पास किये छात्रों की संख्या को उचित काम नही मिलता है तो भी कुल १६०,००० मिडिल पास नवजवान मिलेंगे। इनमे अध्यापन के योग्य मुश्किल से २० प्रतिशत होगे। इस तरह दर्जा चार के शिक्षण के लिए ३०,००० से अधिक नही मिलेगे। मौजूदा शिक्षको मे से मुश्किल से १०,००० शिक्षक अपने काम के होंगे। इस तरह हमे ४०,००० शिक्षक इस काम के लिए प्राप्त होगे, और हमको चाहिएँ ५ लाख शिक्षक। मैने कहा था कि हमारी योजना पूरी होते १५ साल लग ही जायँगे। १५ साल में ४,६०,००० दर्जा ४ तक के लिए नये शिक्षक चाहिएँ यानी हर साल ३१००० नये शिक्षक मिडिल पास योग्यता वालों में से तैयार करना है। इसी प्रकार दर्जा १०,११, और १२ में आज कुल २१२६० छात्र हैं। इनमे १०,००० के करीब छात्र हर साल पास करेंगे। अगर यह मान लिया जाय कि ३ साल की पासशुदा आबादी बैठी होगी तो ३०,००० शिक्षित जन मिलेंगे जिनमे ६००० से अधिक शिक्षक योग्य न होंगे। इस दर्जे के स्कूलों में आज २४२६ शिक्षक मौजूद हैं जिनमे ज्यादा से ज्यादा ५०० अपने काम लायक होंगे। इस तरह ७ तक के स्कूलों के लिए आज हमको ६५०० शिक्षक प्राप्य हैं,

और हमारी योजना में आवश्यकता है १३७००० शिक्षको की, यानी हर साल हमें ८७०० शिक्षकों की आवश्यकता है। इसी प्रकार से माध्यमिक विद्यालयों के लिए शिक्षक-प्राप्ति की समस्या रहेगी। इन हिसाबों से तुम को स्पष्ट हो जायगा कि प्रथम १५ साल शिक्षा-विभाग के सामने शिक्षक ट्रेनिंग की समस्या ही सबसे जटिल और महत्व की होगी।

अगर इतने में ही हमारी समस्या हल हो जाय तो भी गनीमत है। प्राथमिक शिक्षा के पहले दर्जों के लिए शिक्षक चुनने के बारे में मेरी राय तुम को मालूम है। मेरी निश्चित धारणा यह है कि छोटे बच्चों की शिक्षा के लिए स्त्रियाँ ही उपयोगी हो सकती हैं। इस काम के लिए पुरुष शिक्षक नितान्त अयोग्य होते हैं। अतः प्रारम्भ में पुरुष शिक्षक से कार्यारम्भ करने पर भी क्रमशः स्त्री अध्यापिकाओं का प्रबन्ध करना होगा। अच्छा हो अगर शिक्षक सपत्नीक काम करने के योग्य हों। हम शिक्षक-ट्रेनिंग की जो भी योजना बनावें उसे ऊपर की बातों पर ध्यान देकर ही बनावें। इस तरह शिक्षक-प्राप्ति की समस्या पर मैने अपना विचार प्रकट किया। लेकिन अगर ऊपर लिखे सिद्धान्तानुसार १५ साल मे भी योग्य शिक्षक तैयार नही हो सके तो क्या मामूली पासशुदा लोगो से काम चलाकर अपनी योजना पूरी कर दे? मेरी राय यह है कि इस काम मे जल्दी नही करनी चाहिए। शिक्षक का दृष्टि-कोण और योग्यता हमारी धारणा के अनुसार ही होनी चाहिए, चाहे इसके लिए हमारी योजना की पूर्ति मे देर हो जाय।

शिक्षकों को किस दृष्टिकोण से शिक्षा दी जाय, यह विचारणीय है। इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि हम पहले निश्चय कर लें कि हमारी शिक्षा की पद्धति क्या हो। इस विषय पर मुझको अधिक सोचने की आवश्यकता ही क्या? तुम लोगों के तालीमी सघ के निर्देशानुसार बेसिक शिक्षा पद्धति को ही हमे ग्रहण करना है। विचार केवल इस बात का करना है कि हम एक दम तमाम विद्यालयों

को बेसिक पद्धति के अनुसार चलावे या कुछ स्कूलों मे नई तालीम का पाठ्य-क्रम जारी करके बाकी को पूर्ववत् चलने दे और क्रमशः नई तालीम के विद्यालयों की संख्या मे वृद्धि करते चलें अथवा, जैसा कि मै रणीवाँ में प्रयोग कर रहा था, पहले तमाम विद्यालयो में उद्योग का काम पढ़ाई के साथ शुरू किया जाय, और क्रमशः उद्योग का व्यावहारिक संगठन पूरा होने पर और औद्योगिक वायुमंडल सहज हो जाने पर नई तालीम पूर्ण रूप से शुरू कराई जाय। मै इस तीसरे प्रकार का मार्ग अच्छा समझता हूँ। प्रथमतः शिक्षको को उद्योग का काम और उसकी कला, कौशल तथा उपयोगिता के लिए योग्य बनाना ही बहुत बड़ा काम है। उस पर अगर साथ ही साथ नई तालीम भी उन्हे सघटित करनी पड़ेगी तो दोनों में सामंजस्य न रख सकने के कारण औद्योगिक उत्पत्ति को ऐसा बना देंगे कि उससे समाज का कोई लाभ नही हो सकेगा। फलस्वरूप शिक्षा इतनी खर्चीली हो जायगी कि व्यापक शिक्षा का प्रबन्ध असम्भव होगा। साथ ही नई तालीम के उद्योग से अनुबन्धित न कर सकने के कारण जनता में नई तालीम का ठीक बोध न हो सकेगा। पिछले दिनों युक्तप्रान्त की काग्रेस सरकार ने नई तालीम को चलाने में इसी तरह जल्दबाजी की। नतीजा यह हुआ कि लड़के न उद्योग सीख पाये और न उनकी पढाई हो पाई। अतः मेरा प्रस्ताव है कि पहले उद्योग के सघटन को ठोस बनाकर फिर नई तालीम की पद्धति जारी करनी चाहिए। साथ ही चुने हुए इलाकों मे पूर्ण रूप से नई तालीम का काम जारी कर देना चाहिए जिससे कम से कम शिक्षको की ट्रेनिंग का काम चलता रहे।

प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों में कृपि तथा उद्योग-सम्बन्धी प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा का प्रबन्ध आप से आप साधारण पाठ्य क्रम के साथ हो जायगा। लेकिन उन्नत तथा वैज्ञानिक ढंग से कृपि व ग्राम-उद्योग के कार्य-संचालन तथा प्रयोग के लिए हमारे

देहातों में विशेषज्ञों की आवश्यकता होगी। कृषि तथा विभिन्न उद्योगों के प्रयोग और शिक्षा के लिए विशेष सस्थाओ की जरूरत पड़ेगी। विशेष प्रयोग, प्रान्तीय निरीक्षण तथा कला-विशारदो की शिक्षा के लिए एक केन्द्रीय ग्राम-सुधार शिक्षा-निकेतन तथा प्रयोगशाला की स्थापना करनी होगी। उसके अलावा ग्राम-सुधार कार्यकर्त्ताओं और कृषि तथा उद्योग के विशेषज्ञों की शिक्षा के लिए प्रान्त भर में १० विशेष विद्यालय होने चाहिएँ और ज़िलों मे कुशल कारीगरों के शिक्षाकेन्द्रो का संघटन करना होगा।

विद्यालयों मे शिक्षा के अलावा साधारणतः समाज जीवन का हमें इस प्रकार सघटन करना होगा कि ग्रामीण जनता को शिक्षा तथा सस्कृति के वायुमडल से लाभ होता रहे। त्यौहारों के संघटन की बाबत् मै लिख चुका हूँ। इनके अलावा अखाड़ा और क्लबघरों के साथ स्थायी रूप से नाटक-समाज, भजन मडली, ग्राम-गोष्ठी आदि सस्थाओं का संघटन करना चाहिए, जिसमे नाटक, भजन, विभिन्न, विषयो पर विचार-विनिमय का कार्यक्रम समय-समय पर होता रहे। इनके उपरान्त प्रत्येक गाव के विद्यालय के साथ एक-एक पुस्तकालय का प्रवन्ध करना अच्छा होगा।

३-—यातायात—आज सेवाग्राम तक पक्की सड़क वन गई है। लेकिन बापू के वहाँ जाने से पहले क्या हालत थी, तुमको याद होगा। जितने मित्र रणीवा जाते हैं वे सव से पहले एक वार कह ही डालते हैं—"यह कहा आकर अपना आश्रम खोला है। यहा न सड़क, न सवारी। ऐसी जगहो पर आदमी किस तरह आयेगा?" मेरी समझ मे नही आता कि वे मित्र चाहते क्या है? क्या ग्राम-सुधार का काम शहरो में किया जाय? वस्तुतः अगर भारत के देहातों की ओर देखो तो मालूम होगा कि देहातों मे यातायात की कितनी असुविधा है। राजनैतिक तथा व्यापारिक आवश्यकता के लिए विभिन्न शहरों को मिलाने के लिए जो सड़कें वनी हैं उनके आस-पास मे जो थोड़े ग्राम

सौभाग्य से पड़ते हैं उनकी संख्या ही कितनी है ? सड़कों के बिना हमारे अधिकाश गांव दुनिया से बिल्कुल अलग रह जाते हैं। गांव में औद्योगिक और सास्कृतिक विकास के साथ-साथ यातायात की सुगमता होना जरूरी है। अतएव भविष्य मे सरकार की ओर से ग्राम-सुधार के लिए जो भी योजना बने उसमे यातायात की सुविधा का खास प्रोग्राम रखना होगा। इस बात का व्यौरा बनाना अभी मेरे लिए सम्भव नही है। उसे तो सारे प्रान्त के कुल गाँवों का नक्शा सामने रख कर ही बनाना होगा। लेकिन एक अन्दाज तो हम अब भी लगा सकते हैं। युक्तप्रान्त मे कुल १,०२,३८८ ग्राम हैं और क्षेत्रफल १०६२४७; यानी लगभग एक वर्ग मील प्रति ग्राम पड़ता है। अगर एक मील प्रति ग्राम की औसत के हिसाब से सड़क बन सके तो फिलहाल हमारा काम चल जायगा। शायद प्रारम्भिक योजना मे इससे अधिक करना सम्भव भी नही है। अब इस बात पर विचार करना है कि सड़क कच्ची बने या पक्की। पक्की सड़क के लाभ की बाबत सब को मालूम है और सब उसे पसन्द करते हैं। लेकिन देहाती सड़क बनाते समय इस बात का ध्यान होना चाहिए कि सड़कों पर अधिकतर बैलगाड़ी ही चलेगी और उन गाड़ियो में खेती के बैल ही जांते जायँगे। पक्की सड़क में चलने पर उनके खुर घिस जाने की शंका बनी रहती है। अगर सारी सड़क पक्की बन जाय तो खेती वाले बैल, जो साल मे बहुत काफी समय बेकार रहते हैं, गाड़ियों में काम नही आवेंगे। इसके उपरान्त एक लाख मील पक्की सड़क बनाने के लिए कितनी पूंजी चाहिए उसका हिसाब तो करो ? बम्बई योजना वालों ने हिसाब लगाया है कि एक मील के लिए १०,०००) रुपया की आवश्यकता होगी। इस हिसाब से एक अरब के ऊपर पूजी चाहिए। यह प्रान्त की हैसियत के बाहर होगा। अगर हम कच्ची सड़क बनाते हैं तो भी समस्या जटिल हो जाती है। मैने कहा है उद्योग, शिक्षा और संस्कृति के विकास के साथ यातायात की अधिकता

स्वभावतः बढेगी। कच्ची सड़क इस भीड़ के समय चलने वाली गाड़ियों के चक्कों से हमेशा कटती जायगी। नतीजा यह होगा कि सूखे समय मे धूल और बरसात मे कीचड़ से सड़को का उद्देश्य ही विफल हो जायगा। आजकल ग्रामीण जीवन मे यातायात की भीड़ नहीं है, फिर भी कच्ची सड़कों की क्या हालत है तुमसे छिपी नहीं। तब करना क्या है? पक्की सड़कों के लिए न हमारे पास पूजी होगी और न इतने साधन है जिनसे बैलगाड़ियो के लिए अतिरिक्त बैल ही रख सके। कच्ची सड़क बनाने से हमको विशेष लाभ नहीं होगा। इस समस्या को हल करने के लिए मेरे ख्याल से हमारी सड़क ऐसी होनी चाहिए जिसमे केवल उतना ही हिस्सा पक्का हो जितने पर गाड़ी के पहिए चलते हैं बाकी कच्ची रहे। गोरखपुर जिले में चीनी कारखानों को जो सड़के गई हैं उन्हें इसी प्रकार बनाया गया है। और वे सड़कें अच्छा काम देती हैं। इस प्रकार की सड़क बनाने में खर्च भी कम होगा और बैलो को आराम रहेगा।

४——आर्थिक लेनदेन—जहाँ इतने व्यापक रूप से उद्योगों का सघटन करना होगा वहाँ समय समय पर लोगों को रुपयों की आवश्यकता होगी। समाज चाहे जितना व्यवस्थित हो उद्योग के अलावा भी अबेर-सबेर लोगों को कुछ न कुछ लेन देन करना ही होगा। हमे इसके लिए भी कोई व्यवस्थित सघटन कायम करना है। आज देहातों के लोग वैसे भी कर्ज के भार से लदे हुए हैं। शायद ही कोई आदमी मिलेगा जिस पर कर्ज का बोझ न हो। अतः लेन-देन की संस्था कायम करने से पहले हमको आज के कर्ज की समस्या हल करनी होगी। पिछले दिनो, जब कांग्रेसी सरकार कायम थी, इस प्रश्न पर विचार हो रहा था। कुछ हिस्सों मे कानून भी बन गया था। लेकिन वह काम पूरा नहीं हो सका। फिर कोई भी कानून एक बार बनाने पर सही नहीं हो सकता। वैधानिक सभा तो समाज-व्यवस्था की प्रयोगशाला-मात्र है। एक कानून बनता है; उसका असर समाज पर क्या पड़ा

देखा जाता है। वाद को उस असर के आधार पर कानून की विभिन्न धाराओं में परिवर्तन किया जाता है। अतः यह कहना ग़लत न होगा कि क़ाग्रेस सरकार ने कर्ज की समस्या पर प्रयोग की अवस्था में ही पदत्याग किया। जो हो, जितना हुआ उससे कम से कम आगे के लिए अनुभव प्राप्त तो हो ही जायगा।

मै जहा तक समझता हूॅ कर्ज के सम्बन्ध मे हमको कोई मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता नही होगी और न समाज का ढाचा बदलना पड़ेगा। हमें केवल आज के लेनदेन के तरीकों का सुधार करना होगा। वस्तुतः आज जो लोग कर्जदार हैं उनमे वहुत से ऐसे हैं जिन्होंने अत्यधिक सूद के वहाने ली हुई कर्ज की कई गुनी रकम चुका दी है। हमको व्यवहार के इन अन्यायों को ठीक करना चाहिए। मेरी राय मे इसके कुछ नियम इस प्रकार वन जायँ तो अच्छा होगा। जिन लोगो ने कर्ज पर सरकार-द्वारा निर्धारित दर से सूद और मूल धन वापस कर दिया है उन्हे ऋणमुक्त माना जावे। जिनका कुछ बाकी रह गया उनके लिए नया दस्तावेज़ निर्धारित सूद के हिसाव से बनाया जाय। जो दिवालिया हैं उनका कर्ज रद्द हो। लोग कहेगे कि यह दिवालियापन क्या बला है? यह कोई वला नही है। यह वही चीज है जो बड़े आदमी के लिए जायज़ थी लेकिन गरीवों के लिए नहीं। अगर झुनझुनवाला बालटीवाला देवालिया होने पर भी दोनो वक्त खाना खा सकता है, कोठियों में रह सकता है, अच्छा कपड़ा पहन सकता है और शायद मोटर पर भी बैठ सकता हे तो गरीब ग्रामवासी को इतनी कानूनी रक्षा मिलनी ही चाहिए कि वे भी कर्ज से वरी होकर दोनों वक्त खा सकें, कपड़े पहन सकें और अपने मकान में आश्रय ले सकें। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि जो कर्ज चुकता करने को बाकी रह जाय उसके लिए ऐसे नियम बनें जिससे महाजन कर्जदार को जिन्दा रहने के आवश्यक साधनों से वंचित न कर सकें।

लेकिन एक बार कर्ज की समस्या हल हो जाने से ही स्थायी समाधान नहीं हो सकेगा। स्थायी समाधान तो ग्रामीण सहयोग समिति-द्वारा कर्ज की व्यवस्था से ही होगा। अतः भविष्य में गाँव के निजी कोआपरेटिव बैंक का सघटन होना चाहिए। बैंक की ओर से ऐसे नियम बनाना चाहिए जिससे लोग खामख़ाह कर्ज न ले। व्यक्तिगत महाजनी प्रथा को तो समाप्त ही कर देना श्रेय होगा। महाजनी कोई ऐसा काम नही है जिसके हटने से समाज को कुछ आपत्ति हो सके। ऐसे काम मे कुछ लोगों के खास तौर से पड़े रहने से समाज मे तामस की ही वृद्धि होगी।

५—सघटन तथा अनुशासन—उपर्युक्त तमाम कार्यक्रमों के संघटन तथा संचालन के लिए कोई व्यवस्था कायम तो अवश्य करनी है। हमारा ध्येय तो स्वावलम्बन है, लेकिन ध्येय तक पहुँचने का कोई न कोई रास्ता तो बनाना ही होगा। सारे कार्यक्रमों को चलाने के लिए दो प्रकार के सघटन की आवश्यकता होगी—(१) ग्रामीण व्यवस्था और (२) सरकारी महकमा। ग्रामीण व्यवस्था की रूपरेखा पर अपना विचार प्रसंगवश कई जगह मै प्रकट कर चुका हूँ। इस सघटन की बुनियादी इकाई ग्राम-समिति होगी। यह समिति ग्राम-पंचायत का काम भी करेगी। वस्तुतः ग्राम की सर्वांगीण व्यवस्था इसी समिति के अधीन होगी। इसके उपरान्त भिन्न-भिन्न उद्योगों के लिए विभिन्न तथा स्वतन्त्र सहकारी सस्थाएँ अलग रहेंगी। जैसे कृषक समिति, कताई समिति, बुनकर समिति, कागजी समिति आदि। इन समितियों के सदस्य व्यक्तिगत रूप से ग्राम-समिति के अनुशासन मे भी रहेंगे। इस प्रकार कुछ ग्राम-समितियाँ मिलकर यूनियन और कुछ यूनियन मिलकर केन्द्रीय यूनियन का संघटन करेंगे। इन समितियों का विधान ऐसा हो जिससे केन्द्रीय यूनियन में औद्योगिक समितियाँ भी शामिल हो सके। औद्योगिक समितियों का सदस्य वही हो सकेगा जो स्वयं कारीगर हो और एक निश्चित संख्या से अधिक हिस्सा

खरीदने का किसी को हक न हो। मैं इन समितियो के विभिन्न पहलुओं पर विधान का ढाँचा अभी नहीं बनाऊँगा; वह कुछ राजनैतिक बुद्धि वाले ही बना सकते हैं। इस दिशा में आवश्यक योग्यता का भी मुझमें अभाव है। जब समय आने पर वास्तविक योजना बनानी होगी तो इस काम को करने के लिए विशेषज्ञो की कमी न होगी। किस आधार पर संघटन वन सकता है उसका संकेत मात्र मैंने किया है। हाँ, एक वात जरूर विचारणीय है। हम एकाएक इतनी समितियाँ वनायेंगे तो आज की स्वार्थमय सामाजिक-बुद्धिहीन जनता मे घोर घपला तथा दूषित वातावरण हो सकता है। अतः बड़ी सावधानी से आगे बढ़ना है। मैंने पहले ही कहा है कि शुरू में ऐसा कार्यक्रम उठाना पड़ेगा जिससे गांव वालो पर पहले से जमे हुए स्थायी स्वार्थ पर विशेष आघात न पहुँचे। इस विषय पर जिस सिलसिले से कार्य-क्रमों का संघटन करना चर्खा-संघ तथा ग्राम-उद्योग सघ के लिए बताया है वही सिलसिला सरकार के लिए भी जरूरी है। प्रथमतः चर्खा तथा अन्य उद्योगों की समितियाँ बनाकर सहयोग का वायुमंडल तथा व्यक्तिगत चरित्र पैदा होने पर कृषक समिति और अन्त मे ग्राम-पचायत का संघटन करना चाहिए। इस सम्बन्ध में मै अपना विचार काफी प्रगट कर चुका हूँ, अतः यहां पर और बयान करना व्यर्थ होगा।

अव रही सरकारी संघटन की वात। मैने कहा है, मेरे सकेतानुसार योजना का पूरे तौर पर संघटन करने मे कम से कम १५ साल लग जायँगे। वस्तुतः अपने ढङ्ग से समाज को बनाने की तैयारी मे २५ साल से कम नहीं लगना चाहिए। शिक्षा के लिए १५ साल में उतनी सख्या मे योग्य शिक्षक प्राप्त कर लेना सन्देहजनक ही है। फिर भी योजना बनाने के लिए एक निर्दिष्ट काल की सीमा तो वनानी ही पड़ेगी। मै समझता हूँ, प्रथम योजना १५ साल की वनानी ठीक होगी क्योकि उससे कम समय में किसी भी कार्यक्रम को कोई निश्चित

रूप देना सम्भव नही होगा। इस पन्द्रह साल को भी पांच-पाच साल के तीन हिस्सों में बाटना होगा। प्रथम पाच साल मे साधनों की जाच, कार्यकर्त्ताओं का चुनाव तथा शिक्षा और संघटन के लिए अनुकूल वातावरण पैदा करना तथा प्रारम्भिक व्यवस्था करने का काम होगा। इसका मतलब यह नही है कि योजना के काम की प्रगति कुछ भी नहीं होगी। इस बीच अवश्य ऐसे चुने हुए क्षेत्रों मे प्रयोग करना होगा जहा वातावरण पहले से ही कुछ अनुकूल हो या जहा इस प्रकार के काम करने के लिए स्थानीय नेतृत्व मौजूद हो। दूसरे पाच साल मे ग्रामों के संघटनों की स्थापना और उनमें गति देने का काम होगा। इस पाच साल की अवधि मे मूल योजना का काम शुरू हो जायगा। तीसरे पाच सालों में योजना के विभिन्न कार्यक्रमों के पूरा करने की चेष्टा होगी। इस प्रकार १५ साल के तीन हिस्सों के कार्य की आवश्यकता के हिसाब से सरकारी सघटन का स्वरूप तैयार करना पड़ेगा।

पिछले दिनो मे काग्रेस सरकार ने पहले ही कार्यकर्त्ताओं को भर्त्ती करके संघटन कायम कर दिया; फिर योजना बनानी शुरू की। उसके बाद कार्यकर्त्ताओ की शिक्षा की व्यवस्था करनी शुरू की। वह शिक्षा भी गहराई की नहीं हुई। नतीजा यह हुआ कि किसी की समझ में कुछ नही आता था कि देहात की समस्या क्या है और कोई कुछ अन्दाज भी कर सका तो उसको सूझा नहीं कि कैसे काम शुरू करे। अगर भविष्य मे कभी सरकार की ओर से हमको काम करना पड़े तो हमें इन बातों को पहले ही सोच लेना होगा। मेरी राय यह है कि पहले ही सरकारी संघटन कायम नहीं करना चाहिए। शुरू में दो प्रान्तीय कमेटिया बनानी चाहिएँ। एक ग्राम-सुधार, जाच तथा योजना कमेटी और दूसरी प्रयोग कमेटी। जाच कमेटी प्रान्त की परिस्थितियों की जाच करके ब्योरेवार योजना बनायेगी। प्रयोग कमेटी प्रान्त भर के उन व्यक्तियों तथा संस्थाओं को इमदाद देकर कार्य की

प्रगति करावे जो पहले से कुछ प्रयोग कर रहे हैं या नई योजना के साथ प्रयोग करने के योग्य तथा अपना समय देने के इच्छुक हों। इस कमेटी का काम यह भी होगा कि इन कार्यक्रमों का निरीक्षण करना तथा विभिन्न प्रयोगो के नतीजो को एक दूसरे केन्द्रो में पहुँचाना और उनकी सम्मिलित रिपोर्ट योजना कमेटी के पास भेजते रहना। इनके साथ ही केन्द्रीय ग्राम सुधार-शिक्षा निकेतन की स्थापना करनी होगी। इस संस्था मे कृषि तथा ग्राम-उद्योग की विभिन्न प्रक्रियाओं का प्रयोग और उन उद्योगों की मार्फत जिला तथा कमिश्नरी के संचालको की शिक्षा की व्यवस्था की जाय। इन्ही सचांलकों को कमिश्नरी तथा जिला शिक्षा-केन्द्र तथा स्थानीय ग्राम-सुधार योजना के सचालन का काम करना होगा। जिले के विभिन्न क्षेत्रों के कार्यकर्त्ताओं को कमिश्नरी के शिक्षा-केन्द्रो में और कृषि तथा ग्राम-उद्योग की शिक्षा जनता तक पहुँचाने का काम जिला के विद्यालय को करना होगा। जब तक स्थानीय कोआपरेटिव यूनियन संघटित नही हो जाता तब तक ज़िले के विद्यालय को उत्पत्ति तथा बिक्री की व्यवस्था ठीक उसी तरह करनी होगी जिस तरह चर्खा संघ खादी की उत्पत्ति-बिक्री का काम करता रहा है। जॉच कमेटी का काम शायद २ या २॥ साल में पूरा हो जायगा और शिक्षाकेन्द्रों का सम्पूर्ण सघटन ५ साल में हो जायगा। लेकिन जिला का कार्य-क्रम चौथे वर्ष से शुरू हो जायगा और दशम वर्ष मे केन्द्रीय विद्यालय-सहित जिले की सम्पूर्ण योजना की व्यवस्था का भार स्थानीय कोआपरेटिव यूनियन को सौंप देना होगा। बाकी ५ साल मे सरकारी महकमा की देख-रेख मे उनके संघटन को मज़बूत बनाना होगा। बाद को सरकारी केन्द्रीय संस्था का काम कमिश्नरी के विद्यालय के लिए प्रयोग और विशेषज्ञो के लिए उच्च शिक्षा की व्यवस्था करने भर का रह जायगा। सरकारी केन्द्रीय ग्राम-सुधार विभाग का काम केवल इन शिक्षा संस्थाओं तथा विभिन्न यूनियनों की कार्यावली का निरीक्षण और परीक्षण करना रह

जायगा। सरकारी महकमा के कार्य के परीक्षण तथा निरीक्षण के लिए भी एक निरीक्षण कमेटी की स्थापना होनी जरूरी है जिसकी सदस्यता युनियनों के और प्रान्तीय असेम्वली के प्रतिनिधियों की की होनी चाहिए। इस तरह हमारा काम ऐसा होना चाहिए जिससे ग्रामीण सघटन तथा सरकारी सघटन दोनो एक दूसरे के कामों की जाँच कर सके। अव प्रश्न यह उठता है कि उन सस्थाओ का क्या होगा जिन्हे शुरू मे सरकारी मदद से कायम किया गया था। इसके लिए मै अगर कुछ भी न कहूँ तो भी तुम्हारे सामने वात साफ हो जायगी। जव हमारी सारी योजना का ध्येय यह है कि उत्पत्ति, विक्री तथा आन्तरिक समाज-सघटन और व्यवस्था सव के लिए ग्रामीण समाज स्वावलम्वी हो तो प्रारम्भ मे प्रयोग के लिए जिन सस्थाओ की स्थापना की जायगी वे सव ग्रामीण संस्था मे समाविष्ट हो जायँगी।

इस पत्र के साथ विभिन्न परिस्थितियो मे ग्राम सुधार का काम किस प्रकार का हो सकता है, उसकी वावत् मैने अपना विचार एक प्रकार से समाप्त कर दिया। मैंने जो कुछ लिखा सव अव तक के अनुभव पर आधारित हैं। सम्भव है भविष्य के अनुभव से कुछ राय वदल जाय। लेकिन भविष्य की वात भविष्य मे देखी जायगी।

---

[१५]

योजना के लिए पूँजी

२१ सितम्वर, १९४४

७ जुलाई को आखिरी पत्र लिखा था। मुझे डर था कि १४ जुलाई को छूटकर वाहर के दलदल मे न फँस जाऊँ। वैसा नही हुआ। मै रह गया। अव कम से कम १४ जनवरी तक यहाँ ही पड़ा रहूँगा। कुछ पढ़ भी लूँगा। इधर काफी दिन आँख के कारण पढ़ना नहीं हो सका था। उसकी पूर्ति भी कर लूँगा।

—७ जुलाई के बाद २॥ महीने हो गये; मैंने कोई पत्र नहीं लिखा। कुछ सुस्ती के कारण और कुछ इसलिए भी कि सोचता था ६ माह रहना ही है तो इस बीच २-१ पत्र और लिख लेना काफी होगा। ग्राम-सुधार की बातें तो प्रायः पहले ही समाप्त कर दी थी, अब लिखने को भी कुछ विशेष रह नही गया। पहले एक पत्र मे मैंने जो समस्याओं की बात कहीं थी उसमे से एक प्रश्न के सम्बन्ध में लिखने को रह गया था। वह यह कि हमारी सारी योजना चलाने के लिए पूजी और खर्च का क्या हिसाब हो। इस बीच तुम्हारा एक पत्र भी मिला। तुमने पूछा है कि १५ साल मे जो आबादी बढ़ेगी उसके लिए आवश्यक सामान पाने की क्या योजना होगी? हाँ, यह सवाल माकूल है और इस प्रश्न पर अपना विचार पहले ही प्रकट करना था। यह तो पिछले पत्र मे लिखा ही था कि जो आबादी बढेगी उसको खेती लायक परती से ही अपना पोषण लेना होगा। अब सवाल यह है कि क्या नई जमीन तोड़ने के लिए हमको १५ साल इन्तजार करना होगा या अभी से उसका प्रोग्राम रखना होगा। मै समझता हूँ, इस प्रश्न पर ज्यादा कुछ कहने की कोई बात नही है। आबादी जो बढेगी उसमे १५ साल के बाद एक दिन एकाएक बढ़ती तो नही हो जायगी। बढ़ना तो अब भी जारी है। अतः हमको योजना के शुरू से ही नई जमीन खेत मे मिलाने का निश्चिन कार्यक्रम बनाना चाहिए। इसके लिए जाँच करके एक नक्शा बनाकर निश्चित कर लेना चाहिए कि हमे कौन जमीन किस साल मे खेती में मिलानी है। वे खेत ऐसे किसानो को देने होगे जिनको आसानी से दूसरी जगह नही मिल सकती। यानी जिस इलाके मे हमारी योजना के हिसाब से अतिरिक्त आबादी हो वहा के लोगो को ऐसे खाली क्षेत्रों मे जमीन देकर बसाना होगा। फिर वे किसान स्थानीय किसानों की समिति मे शामिल हो सकेगे। मेरी राय में किसानों को बसाकर ही नई जमीन तोड़ना सम्भव होगा, सरकारी ढंग से नही। इस प्रकार जैसे-जैसे आबादी बढ़ती

जायगी वैसे-वैसे नई बस्ती भी बढती जायगी। फिर अन्य आवश्यकताओ के लिए दूसरे उद्योगों का काम भी बढता जायगा। दूसरी बात यह है कि हमने जमीन की पैदावार मे जितनी वृद्धि रक्खी है उचित साधन से उससे अधिक भी हो सकती है। मैने केवल सावधानी के लिए उतना ही रक्खा जितना आसानी से हो सकेगा। इस वृद्धि से भी बढती आबादी का कुछ लाभ होगा ही। लेकिन इसे उत्पत्ति की योजना के हिसाब मे नही लेना चाहिए। मै समझता हूँ तुम्हारे सवाल के लिए इतना संकेत काफी है।

अब अपनी योजना के आर्थिक पहलुओं पर विचार किया जाय। प्रथम प्रश्न यह है कि जब ग्राम-सुधार के लिए इतना विस्तृत आयोजन करना होगा तो उसके खर्च के लिए पैसा कहाँ से आवेगा। हम जब कभी कोई बड़ी योजना बनाते हैं तो पैसे के प्रश्न पर आकर हमारी गाड़ी रुक जाती है। तुमको याद होगा, पिछले दिनों जब कांग्रेस सरकार थी तो कोई भी योजना उनके सामने ले जाने पर एक ही जवाब सब जगह मिलता था कि "हमारे पास पैसा कहाँ ?" लेकिन राष्ट्रीय सरकार का आर्थिक दृष्टि-कोण पहले से भिन्न होगा। पहले तो शासन विभाग ही सम्पूर्ण सरकारी विभाग समझा जाता था; सुधार-विभाग मे पैसा नही होता था। अब तो हमारा बजट ऐसा बनाना पड़ेगा जिससे शासन विभागों में खर्च कम करके सुधार विभागों मे अधिक खर्च करना संभव हो। फिर अब तक जमीन से प्रान्तीय सरकार को ५-६ करोड़ रुपये मिलते थे। जमींदारी प्रथा समाप्त होने पर लगान दस करोड़ के करीब मिलेगा। इस बढती रकम मे से तहसील का बढ़ती खर्च पूरा करके भी करीब २-३ करोड़ रुपया सुधार-विभागों में खर्च किया जा सकता है। पिछले दिनों इन विभागों मे एक करोड़ के करीब खर्च होता था। वह और शासन-सम्बन्धी विभागों मे खर्च कम करके एक करोड़ रुपया अगर और इस दिशा के लिए बचाया जाय तो कुल ४ करोड़ रुपया सालाना खर्च सुधार-विभागों मे किया जा

सकता है। अगर एक करोड़ रुपया संघटन व्यय में लग जाय तो बाकी ३ करोड़ हर साल पूंजी खर्च मे लगाया जा सकता है।

ग्राम-समितियों का व्यापार-सम्बन्धी खर्च तो व्यापारिक लाभ से होगा। बाकी जन-सेवात्मक काम के खर्च के लिए प्रत्येक गाँव अपनी समिति को चन्दा दे। इन चन्दो में से कुछ भाग युनियनो को देने का नियम रखा जा सकता है। मैने जो ग्राम-वासी के खर्च का हिसाव बनाकर तुमको भेजा था उसमें देखोगी कि प्रति ग्राम १२०) चन्दा ग्राम-समिति की मद मे रक्खा गया है। शिक्षा के खर्च के लिए भी अलग रकम रक्खी गई है। देहाती समाज के आन्तरिक कार्य-क्रमों के खर्च के लिए समितियो के स्वावलम्बी हो जाने पर सरकारी सघटन के लिए काम भी बहुत कम हो जाता है। इसलिए भी प्रान्तीय सरकार को खर्च की समस्या उतनी जटिल न मालूम होगी जितना ख्याल किया जाता है।

अब देखना यह है कि इतने काम के लिए जो पूंजी लगेगी वह कहाँ से आवेगी। इसके लिए यह आवश्यक है कि हम हिसाव लगाकर जान ले कि हमको पूंजी चाहिए कितनी। कितनी पूजी चाहिए, इसका हिसाव एक दम प्रान्त भर का न करके अगर औसत प्रति ग्राम का निकाल कर फिर कुल कितनी पूजी प्रान्त को चाहिए, यह बताया जाय तो समझना आसान होगा। अतः प्रति ग्राम की पूजी का हिसाव नीचे लिख रहा हूँ।

१—खेती की सिंचाई—हमारे प्रान्त के प्रति ग्राम ३४७.८ एकड़ जमीन पर खेती होती है जिसमे ११६.३ एकड़ पर सिंचाई की व्यवस्था आज मौजूद है। अतः हमको २३१.५ एकड़ की सिचाई की व्यवस्था करनी होगी। मेरी राय मे इनमे २५% ऐसी जमीन है जिन पर नहर से सिन्चाई हो सकेगी यानी ५७.९ एकड़ जमीन की सिंचाई नहर से करनी होगी। इसके अलावा ६३ सै० = १५४.७ एकड़ कुओं से और बाकी १२ सै० यानी २८.९ एकड़ में २२.१ एकड़ की सिंचाई

तालाव से हो सकेगी और ६'८ एकड़ जमीन ऐसी होगी जिस पर सिचाई की आवश्यकता नही है। इतनी सिंचाई की व्यवस्था के लिए निम्नलिखित हिसाव से पूंजी चाहिए।

नहर—अभी श्री टाटा आदि ने जो वम्बई योजना वनाई है उसके हिसाव से प्रति एकड़ सिचाई के लिए नहर वनाने में ७०) पूंजी की आवश्यकता होती है। इस हिसाव से ५७'६ एकड़ की सिंचाई के लिए ४०५३) की पूजी चाहिए।

कुआँ—कुएँ का हिसाव लगाना नहर जैसा सरल नहीं है। इस विषय मे सरकारी, गैर सरकारी, जितने हिसाव लगाये जाते हैं वे सव एकांगी होते हैं। साधारणतः जो हिसाव लगाया जाता है उस तरह अगर हिसाव जोड़ा जाय तो प्रान्त की स्थिति इस प्रकार होगी।

"आज प्रान्त मे १,४०,००० कुएँ हैं। इतने कुएँ से ५,५५,४५१ एकड़ जमीन की सिंचाई होती है। यानी लगभग ४ एकड़ की सिंचाई एक कुए से होती है। सरकारी विशेषज्ञों की राय है कि कुओ का सुधार करके २० एकड़ प्रति कुएं से सिंचाई की व्यवस्था हो सकती है। अर्थात् कुओं की उन्नति करके २७ ७७,२५५ एकड़ की सिंचाई हो सकती है। अतः नये कुओ की आवश्यकता नही है।"

लेकिन वास्तविक समस्या इस तरह गणित से हल नहीं हुआ करती। व्यावहारिक काम करने के लिए पहले परिस्थिति की जाच करनी पड़ेगी। गांव मे कुएं कुछ समान दूरी पर वँटे हुए नहीं हैं। ऐसा एक चक इलाका तुमको मिलेगा जहाँ ५० एकड़ जमीन के वीच १२ कुए होगे तो कही १० एकड़ के वीच ४ कुएं मिलेगें और कही ४० एकड़ के वीच २ कुएँ होगे, तो कही ५० एकड के वीच एक भी कुआँ नही मिलेगा। इसका मतलव यह है कि कहीं तो कुएं इतने हैं कि अगर उनका सुधार न किया जाय तो भी आस-पास की जमीन की पूरी सिंचाई हो सकती है और उन कुओ के सुधार मे

खर्च करना बेकार है; कहीं की स्थिति ऐसी है कि अगर कुओं का सुधार कर दिया जाय तो उस क्षेत्र की सिंचाई पूरी हो सकती है, और कहीं कुएं कतई हैं ही नहीं और सिंचाई के लिये नये कुएं बनवाना आवश्यक है। इसके अलावा एक स्थिति और हो सकती है। कहीं ऐसा क्षेत्र भी देखोगी जहाँ कुएं हैं लेकिन पूरे इलाके के लिए काफी नही और अगर उन कुओं की उन्नति की जाय तो पूरे क्षेत्र मे सिंचाई हो सकती है। लेकिन दिक्कत यह है कि वहाँ कुएं इतनी जीर्णावस्था मे हैं कि उनका सुधार होना सम्भव नही और बढती जमीन की सिंचाई के लिए नये कुएं बनाने पड़ेंगे। वैसे तो कुओं का हिसाब पूरी सर्वे (जांच) करके ही लग सकता है। लेकिन देहात के अनुभव से एक हिसाब का अनुमान तो हम कर ही सकते हैं। हमारे प्रान्त की औसत स्थिति को देखते हुए कुओं के लिए निम्नलिखित हिसाब हो सकता है :—

प्रान्त के प्रति गाँव में १३·६ कुएं हैं। यह मान कर कि ३३% कुओ की दशा ऐसी है कि उनका सुधार हो ही नहीं सकता, कुल ९·१ कुएँ ऐसे होगे जिनकी उन्नति करके सिंचाई का क्षेत्र बढाया जा सकता है। लेकिन उनमें ३ कुएँ ऐसे होंगे जो इतने पास पास हैं कि उनके सुधार से कुछ लाभ नहीं होगा। बाकी ६·१ कुएँ से प्रति कुआँ १६ एकड़ के हिसाब से ९७.६ एकड़ बढ़ती जमीन की सिचाई की व्यवस्था की जा सकती है। बाकी ५७·१ एकड़ के लिए २·९ नये कुओं की आवश्यकता होगी। अतः कुएँ के लिए पूजी की आवश्यकता इस प्रकार होगी—

६·१ कुएं की उन्नति के लिए मरम्मत प्रति कुआ	१००)	×६·१
रहट ,, ,,	२००)	
	१८३०)	

२.६ नये कुएँ के लिए खुदाई व बँधाई	,, ,,	४००)	× २.६
रहट	,, ,,	२००)	
		१७४०)	
	जोड़	३५७०)	

तालाब—२२.१ एकड़ के लिए १२) प्रति एकड़ से २६५)

इस तरह सिंचाई के लिए औसत

प्रति ग्राम ७७८८) की पूंजी चाहिए।

पशुओं का नस्ल-सुधार

१६३ गाय-भैंस आदि के लिए ५) प्रति पशु के हिसाब से ८१५)

औजार-सुधार

३७ हल × ३)	१११)	१३६)
विविध	२५)	

खाद

हड्डी व मास के लिए	१००)	१५०)
विविध	५०)	

नये खेत बनाना—

३५ एकड़ के लिए ६०) प्रति एकड़ . २१००)

अर्थात् खेती-सुधार के लिए कुल पूजी की आवश्यकता इस प्रकार होगी :—

औसत प्रति ग्राम—

१.	सिंचाई	७७८८)
२	पशुओं की उन्नति	८१५)
३.	औजार-सुधार	१३६)
४.	खाद की व्यवस्था	१५०)
५.	नये खेत बनाना	२१००)
	जोड़	११०८९) (१)

उद्योग—विभिन्न उद्योगों के लिए औसत प्रति ग्राम निम्नलिखित हिसाब से पूंजी की आवश्यकता होगी :—

ब्यौरा उद्योग	परिवार प्रति ग्राम	आवश्यक पूँजी		मौजूद पूँजी प्रति ग्राम			बाकी आवश्यक पूजी प्रति ग्राम
		प्रति परिवार	प्रति ग्राम	उपस्थित कारखानो की	नये कारखानों का कच्चा माल	जोड़	
ईंटे का भट्ठा	...	...	५००)	५)	५)	१०)	४९०)
आटे की चक्की	...	..	१५)	...	५)	५)	१०)
धान कूटने की ढेकी	...	...	१५)	...	२)	२)	१३)
गन्ना पेरने का कोल्हू	...	...	२५०)	१२)	...	१२)	२३८)
गुड़ का कोल्हार	...	...	५०)	१०)	...	१०)	४०)
चर्खा १३०	...	.	३१०)	६)	१००)	१०६)	२०४)
धुनकी ९०	.	..	९०)	...	११।)	११।)	७८।।।)
तेल घानी	२.५	३६०)	९००)	१८०)	६१६)	७९६)	१०४)
चीनी मशीन	.५	१५८०)	७९०)	.	४५०)	४५०)	३४०)
बुनाई	६.०	११६)	६९६)	४००)	.	४००)	२९६)
साबुन	.६६	४५०)	३००)	...	८४)	८४)	२१६)
कागज	.५६	२५०)	१४०)		४०)	४०)	१००)
चमड़ा सिझाना	.२	५००)	१००)	१०)	२०)	३०)	७०)
सरेस,ताँत,जूता आदि	.५	३००)	१५०)	१२)	२०)	३२)	११८)

लोहारी	१.५	५००)	७५०)	२०)	..	२०)	७३०)
वढईगीरी	१.५	११०)	१६५)	१२)	५०)	६७)	६८)
कम्बल व भेड पालना	१.०	३७०)	३७०)	१००)	१००)	२००)	१७०)
कुम्हारी	.५	५०)	२५)	२)	.	२)	२३)
दरी कालीन	.२५	१००)	२५)	१)	१८)	१६)	६)
सिलाई	.५	१६५)	८३)	३॥)		३॥)	७६॥)
अंडा मछली गोश्त	.५	१००)	५०)	५)	३५)	४०)	१०)
रंगाई छपाई	.०५	२००)	१०)	१)	.	१)	६)
सींग का काम	०५	२००)	१०)	.	२॥)	२॥)	७॥)
वाध रस्सी आदि	.५०	२०)	१०)	३)	५)	८)	२)
दियासलाई	.०६	७००)	२८)		.	.	२८)
रोशनाई	.०२	१५०)	३)		१)	२१)	१॥)
शीशा चूड़ी	.०५	१०००)	५०)	२)	४॥)	६॥)	४३॥)
ठठेरी	.२०	५००)	१००)		..	..	१००)

सोनारी	.६०	१००)	६)	१)	...	१)	
पेंसिल बनाना	.००५	१०००)	५)	.	...	...	
ब्रश बनाना	.००५	५००)	२॥)	..	१)	१)	
लाख वार्निश आदि	.००५	५००)	२॥)	॥)	१)	१॥)	१)
संगतराशी	..२	२००)	४)	१॥)	१।)	२।॥)	१।)
माली दवा							
जड़ी बूटी	.०५	५०)	२॥)	॥)	१॥)	२)	॥)
तमोली	..५	२५)	१॥)	॥)	॥)	१)	।)
बारी	०२		..	...	.	..	...
राज मिस्त्री	.५०	१५)	॥)			.	॥)
अन्य उद्योग	.१००	२५०)	२५०)	५)	१००)	१०५)	१४५)
कुल जोड़—१६.२६५			६३५६।)	७६३॥)	१६७६।॥)	२४७३।)	३७८६)

.. ..(२)

मद									
३—हकीम वैद्य डाक्टर आदि									
	.२	७५०)		१५०)	१०)	✓	५०)	६०)	६०) [३]
४—शिक्षा			प्रति स्कूल						
दर्जा ४ तक स्कूल	१	६००)	६००)			१५०)	१३०)	२८०)	६७०)
” ७ ”	” .३३	८००)	३००)						
माध्यमिक	.०५	१०००)	५०)					४०)	७३)
ग्राम सेवक विद्यालय — केन्द्रीय		१३,००,०००)	१३)						
ग्राम सेवक विद्यालय — कमिश्नरी		३,००,०००)	३०)						
ग्राम सेवक विद्यालय — जिला		१,५०,०००)	७०)						
			१०६३)					३२०)	७४३) [४]
५—घरेलू सेवा									
घरेलू नौकर आदि	५			१०)		५)		५)	५)
धोबी	१			२०)		८)	८)	१६)	४)
नाई	१			५)		२)		२)	३)
		७)		३५)		१५)	८)	२३)	१२) [५]

६—सड़क	२०००)	२०)	२००)	२२०)	१७८०)
७—बनिया	१ ५००)	२००)	२५०)	४५०)	५०)
८—बागवानी	३ पू २००)	...	.		२००)
९—अन्य फुटकर	२००)	.	.	..	२००)

इस प्रकार सारी योजना के लिए औसत प्रति ग्राम के लिए कुल पूँजी की आवश्यकता निम्नलिखित होगी :

१—खेती-सुधार		११,०९९)
२—ग्राम-उद्योग	. . .	३,७८६)
३—हकीम वैद्यादि	... .	९०)
४—शिक्षा	... .	७४३)
५—घरेलू सेवा	. .	१२)
६—सड़क	. . .	१७८०)
७—बनिया	.. .	५०)
८—बागवानी	. ..	२००)
९—अन्य फुटकर	. ..	२००)
१०—मकानादि	३० × ३२५	९७५०)
११—शिशु-विहार	.	३००)
	जोड़	२८०१०)

अर्थात् प्रान्त भर के लिए २८६,७८,८७,८८०) यानी २८६.७९ करोड़ रुपये की पूँजी चाहिए।

अब प्रश्न यह है कि इतना रुपया आवे कहाँ से। पूँजी के लिए गाँव मे हमको प्रधानतः निम्नलिखित जरियो का हिसाब देखना होगा :—

१—गाँव मे प्राप्त कच्चा माल

२—लोगों के पास की नक़द

३—धर्मगोला मे रिजर्व रकम

४—ग्रामवासी की वचत में से

१ उद्योगों के लिए जो कच्चा माल लगता है और जो गाव में मिल सकता है उन्हें तो उद्योग की पूँजी के हिसाव में से ही घटा दिया गया है। अतः यह मद केवल मकान और शिशु-विहार के हिसाव से ही घटेगी। मेरे ख्याल से मकान के लिए लगभग ७०) प्रति घर के हिसाव से सामान गाव मे होगा और शिशु-विहार का ५०) का सामान मौजूद होगा। इस तरह मकानादि मे (३० × ७०)+५० = २१५०) पूँजी मौजूद है।

२—गाव की परिस्थिति को देखते हुए यह कहना गलत न होगा लोगों के पास लगभग ३०००) प्रतिग्राम मौजूद होगा। इसमे से पूँजी के काम में १०००) करीव मिल सकेगा।

३—पिछले पत्र में मैने अनाज का हिसाव करते समय वताया था कि धर्मगोला मे जमा सामान का दाम कुल पैदावार का ४ सैकड़ा होता है और कुल पैदावार का दाम ३०० ०) है। इस तरह इस मद मे प्रति ग्राम वार्षिक जमा १२००) है। पूरी पैदावार प्रथम से ही नहीं होगी। अतः हमे आधी रकम ही प्राप्त होगी। इस तरह इस मद से ६००) × १५ साल = ९०००) मिल सकेगा।

४—किसानों की आमदनी खर्च का जो हिसाव किया है उससे ६०) प्रति परिवार की वचत दिखाई देती है। लेकिन खेती-जैसे अनिश्चित उद्योग में आकस्मिक खर्च काफी होता है। दूसरे उद्योग मे२ ०) प्रति परिवार वचत होगी, ऐसा अन्दाज़ किया जा सकता है। स हिसाव से १८८०) प्रति ग्राम वचत होगी। इसमे से १०००) के करीव पूँजी के लिए प्राप्त हो सकती है। शुरू से ही वचत नहीं होगी, यह मानकर कुल ६००) × १५ साल = ९०००) इस मद से मिल सकता है।

अतः गाव में प्राप्त पूजी औसत इस प्रकार होगी:—

१—मकानादि के लिए मौजूद सामान	२१५०)
२—नकद	१०००)
३—धर्मगोला में रिजर्व	६०००)
४—ग्रामवासी की बचत	६०००)
	२११५०)

यानी प्रान्त भर के देहातों से प्राप्त पूंजी २१६,५५,०६,२००) =लगभग २१६·५५ करोड़।

इसके उपरान्त जैसा कि मैंने इस पत्र के पहले ही कहा है सरकारी वजट से ३ करोड़ रुपया सालाना पूंजी खर्च में लगाना कठिन न होगा। इस तरह १५ साल मे ४५ करोड़ रुपया सरकारी बजट से लगाया जा सकेगा। इस पूंजी को अगर जोड़ा जाय तो प्राप्त पूंजी २६१ ५५ करोड़ रुपया होगी। हमे कुल २७६.५५ करोड़ रुपया की ज़रूरत है। बाकी १५ करोड़ यानी सालाना १ करोड़ रुपया शहरों से उधार लेना पड़ेगा।

मै समझता हूँ, ग्राम-सुधार के करीव सभी प्रश्नों पर अपना विचार कुल पत्रो में प्रकट कर दिया है। इधर कई महीनो से बाहर सारे संसार मे योजनाओ की भरमार हो रही है। मालूम नही मेरे जैसे मामूली ग्रामसेवक का अनुभव आगामी राष्ट्रीय योजना-कार्य में कुछ काम देगा या नही। शायद इन वातों का विशेष मूल्य भी न होगा। लेकिन इससे हमे क्या मतलब। तुमने मेरे अनुभवों की कहानी सुननी चाही थी। मैने उसे लिख भेजा। अगर दुनिया की कुछ सेवा इससे हो तो अच्छी वात, न हो तो कोई हर्ज नही। लेकिन मेरा विश्वास है कि आज के प्रलयकालीन महा-सकट के दिन लोगों को वापू की शान्ति और समता की आवश्यकता है; और वैसी शान्ति तथा समता समाज को स्वावलम्बन के आधार पर संघटन करने से ही प्राप्त हो सकती है। मैने इन पत्रों में जो कुछ लिखा है वह सब उसी स्वावलम्बी समाज-संघटन के तरीकों के प्रति सकेत करता है। इस दृष्टि से शायद कभी इन बातों की भी कदर हो।